Chapter एक

ब्रह्माण्ड के प्रशासक मनु

सर्वप्रथम मैं अपने गुरुदेव कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद के चरणकमलों में विनम्र सादर नमस्कार करता हूँ। १९३५ में जब वे राधाकुण्ड में रुके हुए थे तो मैं बम्बई से उनके दर्शन करने गया था। उस समय उन्होंने मन्दिर बनवाने तथा पुस्तकें प्रकाशित करने के सम्बन्ध में मुझे अनेक महत्त्वपूर्ण आदेश दिये थे। उन्होंने स्वयं मुझसे कहा था कि पुस्तकें प्रकाशित करना मन्दिरों के बनवाने से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। निस्सन्देह, वे आदेश मेरे मन में अनेक वर्षों तक बने रहे। मैंने १९४४ में अपनी *बैक टु गॉडहेड* पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया और १९५ में जब मैं अपने पारिवारिक जीवन से विरक्त हो गया तो मैंने दिल्ली में *श्रीमद्भागवत* का प्रकाशन प्रारम्भ किया। जब भारत में *श्रीमद्भागवत* के तीन खण्ड छप चुके थे तो मैं १३ अगस्त १९६५ को संयुक्त राज्य अमरीका के लिए रवाना हो गया।

अपने गुरु के सुझाव के अनुसार मैं पुस्तकों के प्रकाशन का निरंतर प्रयत्न कर रहा हूँ। अब इस वर्ष १९७६ में मैंने *श्रीमद्भागवत* का सप्तम स्कन्ध पूरा किया है और दशम स्कन्ध का सारांश *लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्ण* के नाम से पहले ही प्रकाशित हो चुका है। अभी भी अष्टम, नवम, दशम, एकादश तथा द्वादश स्कन्धों का प्रकाशन शेष है। अतएव इस अवसर पर मैं अपने गुरु से प्रार्थना कर रहा हूँ कि वे इस कार्य को पूरा करने के लिए मुझे शक्ति प्रदान करें। मैं न तो कोई महान् विद्वान हूँ और न ही महान् भक्त, मैं तो अपने गुरु का केवल एक विनीत दास हूँ और अमरीका के अपने शिष्यों के सहयोग से इन पुस्तकों को प्रकाशित करके उन्हें प्रसन्न करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। सौभाग्य से विश्वभर के विद्वान इन ग्रंथों की प्रशंसा कर रहे हैं। आओ, हम मिल-जुलकर कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर को प्रसन्न करने के लिए *श्रीमद्भागवत* के अधिकाधिक खण्डों का प्रकाशन करें।

आठवें स्कन्ध के इस पहले अध्याय में चारों मनुओं—स्वायंभुव, स्वारोचिष, उत्तम तथा तामस—का संक्षिप्त वर्णन हुआ है। सप्तम स्कन्ध के अन्त तक स्वायंभुव मनु के वंश का वर्णन सुनकर महाराज

परीक्षित ने अन्य मनुओं के विषय में जानने की जिज्ञासा प्रकट की। वे यह भी जानना चाह रहे थे कि भगवान् किस प्रकार न केवल भूतकाल में, अपितु वर्तमान काल तथा भविष्यत् काल में भी अवतरित होते हैं और किस तरह वे विभिन्न लीलाओं में मनु की भूमिका निभाते हैं। चूँकि परीक्षित महाराज यह सब जानने को उत्सुक थे अतएव शुकदेव गोस्वामी ने भूतकाल में प्रकट हुए छह मनुओं से आरम्भ करके क्रमशः सभी मनुओं का वर्णन किया।

प्रथम मनु स्वायंभुव मनु थे। उनके दो पुत्रियाँ थीं—आकूति तथा देवहूति जिनसे क्रमशः यज्ञ तथा कपिल नामक दो पुत्र हुए। चूँकि शुकदेव गोस्वामी तृतीय स्कन्ध में कपिल के कार्यकलापों का वर्णन कर चुके थे अतएव उन्होंने अब यज्ञ के कार्यकलापों का वर्णन किया। आदि मनु अपनी पत्नी शतरूपा सहित सुनन्दा नामक नदी के तट पर तपस्या करने के लिए जंगल चले गये, उन्होंने वहाँ एक सौ वर्षों तक तपस्या की। तभी मनु ने समाधि में ही भगवान् की स्तुतियाँ तैयार कीं। तब राक्षसों तथा असुरों ने उन्हें निगल जाने का प्रयास किया, किन्तु यज्ञ ने अपने पुत्रों, यामों तथा देवताओं की सहायता से उन्हें मार डाला। तब यज्ञ ने स्वर्गलोकों के राजा इन्द्र का पद स्वयं ग्रहण कर लिया।

दूसरे मनु का नाम स्वारोचिष था और वे अग्नि के पुत्र थे। उनके पुत्रों में द्युमत, सुषेण तथा रोचिष्मत मुख्य थे। इस मनु के युग में रोचन स्वर्गलोकों का राजा इन्द्र बना और तुषित इत्यादि अनेक देवता हुए। अनेक साधुपुरुष भी हुए—यथा ऊर्ज तथा स्तम्भ। उन्हीं में वेदशिरा था जिसकी पत्नी तुषिता ने विभु को जन्म दिया। विभु ने अट्ठासी हजार *दृढव्रतों* अर्थात् साधुपुरुषों को आत्मसंयम तथा तपस्या का उपदेश दिया।

तृतीय मनु, प्रियव्रत का पुत्र उत्तम था। उसके पुत्रों में पवन, सृञ्जय तथा यज्ञहोत्र इत्यादि थे। इस मनु के राज्यकाल में वसिष्ठ के पुत्रों में प्रमद इत्यादि सप्तर्षि हुए। सत्य, देवश्रुत तथा भद्रगण देवता बने और सत्यजित इन्द्र बना। धर्म की पत्नी सुनृता के गर्भ से सत्यसेन के रूप में भगवान् उत्पन्न हुए जिन्होंने सत्यजित से युद्ध करने वाले यक्षों तथा राक्षसों का वध किया।

तृतीय मनु का भाई तामस चतुर्थ मनु बना। उसके दस पुत्र हुए जिनमें पृथु, ख्याति, नर तथा केतु प्रमुख थे। उसके राज्यकाल में सत्यकगण, हरिगण, वीरगण तथा अन्य देवता हुए। सप्तर्षियों में ज्योतिर्धाम मुख्य था और त्रिशिख इन्द्र बना। हरिमेधा के ही अपनी पत्नी हरिणी के गर्भ से हरि नामक

पुत्र उत्पन्न हुआ। भगवान् के इन्हीं अवतार हरि ने अपने भक्त गजेन्द्र को बचाया। यह घटना *गजेन्द्र मोक्षण* के नाम से वर्णित है। इस अध्याय के अन्त में परीक्षित महाराज इसी घटना के विषय में विशेष जिज्ञासा करते हैं।

श्रीराजोवाच
स्वायम्भुवस्येह गुरो वंशोऽयं विस्तराच्छ्रुतः ।
यत्र विश्वसृजां सर्गो मनूनन्यान्वदस्व नः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा (महाराज परीक्षित) ने कहा; स्वायम्भुवस्य—महापुरुष स्वायंभुव मनु का; इह—इस सम्बन्ध में; गुरो—हे गुरु; वंशः—वंश; अयम्—यह; विस्तरात्—विस्तार से; श्रुतः—मैंने (आपसे) सुना; यत्र—जिसमें; विश्व-सृजाम्—प्रजापति नामक महापुरुषों का, यथा मरीचि इत्यादि का; सर्गः—सृष्टि, जिसमें मनु की पुत्रियों से अनेक पुत्र तथा पौत्र उत्पन्न हुए; मनून्—मनुओं को; अन्यान्—अन्य; वदस्व—कृपया वर्णन करें; नः—हम से।

राजा परीक्षित ने कहा : हे स्वामी! हे गुरु! अभी मैंने आपके मुख से स्वायंभुव मनु के वंश के विषय में भलीभाँति सुना। किन्तु अन्य मनु भी तो हैं; अतएव मैं उनके वंशों के विषय में सुनना चाहता हूँ। कृपा करके उनका वर्णन करें।

मन्वन्तरे हरेर्जन्म कर्माणि च महीयसः ।
गृणन्ति कवयो ब्रह्मंस्तानि नो वद शृण्वताम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

मन्वन्तरे—मन्वन्तरों के परिवर्तन के समय (एक मनु से दूसरा मनु बनने का अन्तराल); हरेः—भगवान् का; जन्म—प्राकट्य; कर्माणि—तथा कर्म; च—भी; महीयसः—अत्यन्त यशस्वी का; गृणन्ति—वर्णन करते हैं; कवयः—विद्वान पुरुष जिन्हें पूर्ण बुद्धि है; ब्रह्मन्—हे विद्वान ब्राह्मण (शुकदेव गोस्वामी); तानि—उन सबों को; नः—हमसे; वद—कहिये; शृण्वताम्—सुनने के इच्छुक।

हे विद्वान ब्राह्मण शुकदेव गोस्वामी! बड़े-बड़े विद्वान पुरुष, जो नितान्त बुद्धिमान् हैं, विभिन्न मन्वन्तरों में भगवान् के कार्यकलापों का तथा उनके प्राकट्य का वर्णन करते हैं। हम इन वर्णनों को सुनने के लिए अत्यन्त उत्सुक हैं। कृपया उनका वर्णन करें।

तात्पर्य : भगवान् के अनेक प्रकार के अवतार होते हैं जिनके अन्तर्गत गुण-अवतार, मन्वन्तर अवतार, लीला अवतार तथा युग अवतार आते हैं और इन सबका वर्णन शास्त्रों में हुआ है। शास्त्रों के सन्दर्भ के बिना किसी को भी भगवान् का अवतार स्वीकार करने का प्रश्न ही नहीं उठता। अतएव जैसाकि यहाँ पर विशेष उल्लेख है—*गृणन्ति कवयः*—पूर्ण बुद्धिमान् एवं बड़े-बड़े विद्वान व्यक्ति विभिन्न अवतारों के विवरणों को स्वीकार करते हैं। इस समय, विशेष रूप से भारत में अनेक धूर्त

अपने को अवतार होने का दावा करते हैं और लोगों को गुमराह करते हैं। अतएव अवतार की पहचान की पुष्टि शास्त्रों के विवरणों तथा उनके विलक्षण कार्यकलापों से की जानी चाहिए। जैसाकि इस श्लोक के *महीयस:* शब्द से लक्षित है, अवतार के कार्यकलाप कोई साधारण जादू या बाज़ीगरी नहीं होते, अपितु विलक्षण होते हैं। अत: भगवान् के किसी भी अवतार की पुष्टि शास्त्रों के विवरणों द्वारा की जानी चाहिए और उनके कार्यकलाप यथार्थ विलक्षण होने चाहिए। परीक्षित महाराज विभिन्न युगों के मनुओं के विषय में सुनने को उत्सुक थे। ब्रह्मा के एक दिन में चौदह मनु होते हैं और प्रत्येक मनु इकहत्तर युगों तक जीवित रहता है। इस प्रकार ब्रह्मा के जीवनकाल में हजारों मनु होते हैं।

यद्यस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन्भगवान्विश्वभावनः ।
कृतवान्कुरुते कर्ता ह्यतीतेऽनागतेऽद्य वा ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

यत्—जो भी कार्यकलाप; यस्मिन्—किसी विशेष युग में; अन्तरे—मन्वन्तर में; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; भगवान्—भगवान्; विश्व-भावनः—इस दृश्य जगत को उत्पन्न करने वाला; कृतवान्—किया गया; कुरुते—कर रहा है; कर्ता—तथा करेगा; हि—निस्सन्देह; अतीते—भूतकाल में; अनागते—भविष्य में; अद्य—वर्तमान में; वा—अथवा।

हे विद्वान ब्राह्मण! कृपा करके इस दृश्य जगत को उत्पन्न करने वाले भगवान् के उन सारे कार्यकलापों का वर्णन हमसे करें जिन्हें उन्होंने विगत मन्वन्तरों में सम्पन्न किया, जो वे वर्तमान में सम्पन्न कर रहे हैं तथा जो वे भावी मन्वन्तरों में सम्पन्न करेंगे।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* में भगवान् ने कहा है कि युद्धभूमि में उपस्थित स्वयं वे तथा अन्य सारे जीव भूतकाल में विद्यमान थे, वे इस समय उपस्थित हैं और भविष्य में भी स्थित रहेंगे। भूत, वर्तमान तथा भविष्य भगवान् तथा सामान्य जीवों के लिए सदैव रहते हैं। *नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्।* भगवान् तथा जीव दोनों ही शाश्वत तथा सचेतन हैं, किन्तु इनमें अन्तर यह है कि भगवान् असीम हैं जबकि जीव सीमित हैं। भगवान् प्रत्येक वस्तु के स्रष्टा हैं और यद्यपि जीव उत्पन्न नहीं किये जाते, अपितु वे भगवान् के साथ नित्य रहते आये हैं, किन्तु उनके शरीर उत्पन्न होते हैं जबकि भगवान् का शरीर उत्पन्न नहीं होता। भगवान् तथा उनके शरीर में कोई अन्तर नहीं होता, लेकिन बद्धजीव, शाश्वत होते हुए भी, अपने शरीर से भिन्न होता है।

श्रीऋषिरुवाच

मनवोऽस्मिन्व्यतीताः षट्कल्पे स्वायम्भुवादयः ।
आद्यस्ते कथितो यत्र देवादीनां च सम्भवः ॥ ४॥

शब्दार्थ

श्री-ऋषिः उवाच—महान् ऋषि शुकदेव गोस्वामी ने कहा; मनवः—मनु; अस्मिन्—इस अवधि (ब्रह्मा के एक दिन) में; व्यतीताः—बीता हुआ; षट्—छः; कल्पे—ब्रह्मा के एक दिन में; स्वायम्भुव—स्वायंभुव मनु; आदयः—इत्यादि; आद्यः—प्रथम (स्वायंभुव); ते—तुमसे; कथितः—पहले कहा जा चुका; यत्र—जिसमें; देव-आदीनाम्—समस्त देवताओं का; च—भी; सम्भवः—प्राकट्य, जन्म।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : वर्तमान कल्प में छह मनु हो चुके हैं। मैं तुमसे स्वायंभुव मनु तथा अनेक देवताओं के प्राकट्य के विषय में वर्णन कर चुका हूँ। ब्रह्मा के इस कल्प में स्वायंभुव प्रथम मनु हैं।

आकूत्यां देवहूत्यां च दुहित्रोस्तस्य वै मनोः ।
धर्मज्ञानोपदेशार्थं भगवान्पुत्रतां गतः ॥ ५॥

शब्दार्थ

आकूत्याम्—आकूति के गर्भ से; देवहूत्याम् च—तथा देवहूति के गर्भ से; दुहित्रोः—दोनों पुत्रियों के; तस्य—उसकी; वै—निस्सन्देह; मनोः—स्वायंभुव मनु की; धर्म—धर्म; ज्ञान—तथा ज्ञान; उपदेश-अर्थम्—उपदेश देने के लिए; भगवान्—भगवान् ने; पुत्रताम्—आकूति तथा देवहूति का पुत्रत्व; गतः—स्वीकार किया।

स्वायंभुव मनु के दो पुत्रियाँ थीं—आकूति तथा देवहूति। उनके गर्भ से भगवान् दो पुत्रों के रूप में प्रकट हुए जिनके नाम क्रमशः यज्ञमूर्ति तथा कपिल थे। इन पुत्रों को धर्म तथा ज्ञान का उपदेश देने का कार्यभार सौंपा गया।

तात्पर्य : देवहूति के पुत्र का नाम कपिल था और आकूति के पुत्र का नाम यज्ञमूर्ति। दोनों ने ही धर्म तथा दार्शनिक ज्ञान की शिक्षा दी।

कृतं पुरा भगवतः कपिलस्यानुवर्णितम् ।
आख्यास्ये भगवान्यज्ञो यच्चकार कुरूद्वह ॥ ६॥

शब्दार्थ

कृतम्—पहले ही किया गया; पुरा—पहले; भगवतः—भगवान्; कपिलस्य—देवहूति के पुत्र कपिल का; अनुवर्णितम्—पूर्णतया वर्णन हो चुका है; आख्यास्ये—अब मैं वर्णन करूँगा; भगवान्—भगवान्; यज्ञः—यज्ञपति या यज्ञमूर्ति का; यत्—जो; चकार—सम्पन्न किया; कुरु-उद्वह—हे कुरुश्रेष्ठ।

हे कुरुश्रेष्ठ! मैं पहले ही (तृतीय स्कन्ध में) देवहूति के पुत्र कपिल के कार्यकलापों का वर्णन कर चुका हूँ। अब मैं आकूति के पुत्र यज्ञपति के कार्यकलापों का वर्णन करूँगा।

विरक्तः कामभोगेषु शतरूपापतिः प्रभुः ।
विसृज्य राज्यं तपसे सभार्यो वनमाविशत् ॥ ७॥

शब्दार्थ

विरक्तः—अनासक्त; काम-भोगेषु—इन्द्रियतृप्ति में (गृहस्थ जीवन में); शतरूपा-पतिः—शतरूपा के पति, स्वायंभुव मनु; प्रभुः—जो विश्व के स्वामी या राजा थे; विसृज्य—पूर्णतः त्यागकर; राज्यम्—अपने राज्य को; तपसे—तपस्या करने के लिए; स-भार्यः—अपनी पत्नी सहित; वनम्—जंगल में; आविशत्—प्रवेश किया।

शतरूपा के पति स्वायंभुव मनु स्वभाव से इन्द्रियभोग के प्रति तनिक भी आसक्त नहीं थे। अतएव उन्होंने अपने विलासमय राज्य को त्याग दिया और अपनी पत्नी सहित तपस्या करने के लिए जंगल में चले गये।

तात्पर्य : जैसा कि भगवद्गीता (४.२) में कहा गया है—*एवं परम्पराप्राप्तम् इमं राजर्षयो विदुः*—यह परम विज्ञान शिष्य-परम्परा द्वारा प्राप्त हुआ और राजर्षियों ने उसे इसी तरह से समझा। सारे मनु परिपूर्ण राजा थे—वे राजर्षि थे। दूसरे शब्दों में, यद्यपि वे विश्व के सम्राट् थे, किन्तु वे महान् सन्तों के समान ही थे। उदाहरण के लिए, स्वायंभुव मनु विश्व के सम्राट थे, किन्तु उन्हें इन्द्रियतृप्ति की कोई इच्छा न थी। राजतंत्र का यही अर्थ है। देश के राजा या साम्राज्य के सम्राट् को इस तरह प्रशिक्षित किया जाना चाहिए कि वह सहज ही इन्द्रियतृप्ति त्याग दे। ऐसा नहीं है कि क्योंकि वह राजा है, अतः वह इन्द्रियतृप्ति पर व्यर्थ ही धन खर्च करे। ज्योंही राजा इन्द्रियतृप्ति पर धन खर्च करके पतित हो गए त्योंही वे विनष्ट हो गए। इसी तरह इस समय राजतंत्र समाप्त हो चुका है और लोगों ने प्रजातंत्र स्थापित किया है, किन्तु वह भी असफल हो रहा है। अब प्रकृति के नियमानुसार वह समय आने वाला है जब तानाशाही से प्रजा को अधिकाधिक कष्ट भोगना पड़ेगा। यदि राजा या तानाशाह अकेले या सरकार के सदस्य संयुक्त रूप से राज्य या साम्राज्य को *मनुसंहिता* के नियमों के अनुसार चला नहीं पाते तो निश्चित रूप से उनकी सरकार नहीं चलेगी।

सुनन्दायां वर्षशतं पदैकेन भुवं स्पृशन् ।
तप्यमानस्तपो घोरमिदमन्वाह भारत ॥ ॥

शब्दार्थ

सुनन्दायाम्—सुनन्दा नदी के तट पर; वर्ष-शतम्—एक सौ वर्षों तक; पद-एकेन—एक पाँव पर; भुवम्—पृथ्वी को; स्पृशन्—छुऐ हुए; तप्यमानः—तपस्या की; तपः—तपस्या; घोरम्—अत्यन्त कठिन; इदम्—निम्नलिखित, यह; अन्वाह—कहा; भारत—हे भरतवंशी।

हे भरतवंशी! स्वायंभुव मनु अपनी पत्नी समेत जंगल में प्रविष्ट होने के बाद सुनन्दा नदी के

तट पर एक पाँव पर खड़े रहे। इस प्रकार केवल एक पाँव से पृथ्वी का स्पर्श करते हुए उन्होंने एक सौ वर्षों तक महान् तपस्या की। तपस्या करते समय वे इस प्रकार बोले।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने टीका की है कि *अन्वाह* शब्द का अर्थ है कि वे जप कर रहे थे या फुसफुसा रहे थे, किसी को भाषण नहीं दे रहे थे।

श्रीमनुरुवाच
येन चेतयते विश्वं विश्वं चेतयते न यम् ।
यो जागर्ति शयानेऽस्मिन्नायं तं वेद वेद सः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

श्री-मनुः उवाच—स्वायंभुव मनु ने उच्चारण किया; येन—जिससे (भगवान् से); चेतयते—चेतन हो जाता है; विश्वम्—सारा ब्रह्माण्ड; विश्वम्—सारा ब्रह्माण्ड (भौतिक जगत); चेतयते—चेतन होता है; न—नहीं; यम्—जिसको; यः—वह जो; जागर्ति—सदैव जागता रहता है (सारे कार्यकलापों का साक्षी बना हुआ); शयाने—सोते समय; अस्मिन्—इस शरीर में; न—नहीं; अयम्—यह जीव; तम्—उसको; वेद—जानता है; वेद—जानता है; सः—वह।

श्री-मनु ने कहा : परम पुरुष ने इस चेतन भौतिक जगत की सृष्टि की है; ऐसा नहीं है कि इस भौतिक जगत से उसकी उत्पत्ति हुई हो। जब सब कुछ मौन रहता है, तो परम पुरुष साक्षी रूप में जगा रहता है। जीव उसे नहीं जानता, किन्तु वह सब कुछ जानता है।

तात्पर्य : यहाँ भगवान् और जीवों का अन्तर दिया गया है। *नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्।* वेदों के अनुसार भगवान् परम नित्य जीव हैं। परम पुरुष तथा सामान्य जीव में यही अन्तर है कि जब इस भौतिक विश्व का संहार होता है, तो सारे जीव विस्मृति में, स्वप्न में या अचेतन अवस्था में मौन रहते हैं। किन्तु परम पुरुष प्रत्येक वस्तु के साक्षी बनकर जागते रहते हैं। इस भौतिक जगत का सृजन होता है, कुछ काल तक यह बना रहता है और फिर नष्ट हो जाता है। किन्तु इन सारे परिवर्तनों के दौरान परम पुरुष जगे रहते हैं। सभी जीवों की भौतिक दशा में स्वप्न की तीन अवस्थाएँ होती हैं। जब भौतिक जगत जाग्रत रहता है और कार्यशील होता है, तो यह एक प्रकार का स्वप्न है, जाग्रत स्वप्न। जब जीव सो जाते हैं, तो वे फिर स्वप्न देखते हैं। और जब प्रलय के समय वे अचेतनावस्था में होते हैं और यह जगत अप्रकट रहता है, तो सारे जीव एक अन्य स्वप्नावस्था में प्रवेश करते हैं। अतएव वे इस भौतिक जगत में किसी भी अवस्था में स्वप्न देखते रहते हैं। किन्तु आध्यात्मिक जगत में हर वस्तु जाग्रत होती है।

आत्मावास्यमिदं विश्वं यत्किञ्चिज्जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

आत्म—परमात्मा; आवास्यम्—सर्वत्र रहते हुए; इदम्—यह ब्रह्माण्ड; विश्वम्—सारे ब्रह्माण्ड, सारे स्थान; यत्—जो भी; किञ्चित्—प्रत्येक विद्यमान वस्तु; जगत्याम्—संसार में, सर्वत्र; जगत्—हर वस्तु, चर तथा अचर; तेन—उसके द्वारा; त्यक्तेन—नियत; भुञ्जीथाः—भोग कर सकते हो; मा—मत; गृधः—स्वीकार करो; कस्य स्वित्—किसी अन्य का; धनम्—धन।

इस ब्रह्माण्ड में भगवान् परमात्मा रूप में सर्वत्र, जहाँ कहीं भी चर तथा अचर प्राणी हैं, विद्यमान हैं। अतएव मनुष्य उतना ही स्वीकार करे जितना उसके लिए नियत है; उसे पराये धन में हस्तक्षेप करने की इच्छा नहीं करनी चाहिए।

तात्पर्य : स्वायंभुव मनु भगवान् की दिव्य स्थिति बतलाकर अपने पुत्रों तथा पौत्रों को अब उपदेश दे रहे हैं कि ब्रह्माण्ड की सारी सम्पत्ति भगवान् की है। मनु का यह उपदेश न केवल अपने पुत्रों-पौत्रों के लिए है, अपितु सारे मानव समाज के लिए है। *मनुष्य* शब्द मनु से व्युत्पन्न हैं क्योंकि मानव समाज के सारे सदस्य इत्यादि मनु के वंशज हैं। *भगवद्गीता* (४.१) में भी मनु का उल्लेख है जहाँ भगवान् कहते हैं—

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवान् अहमव्ययम् ॥

विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥

"मैंने इस अविनाशी योग विज्ञान की शिक्षा सूर्यदेव विवस्वान् को दी और विवस्वान् ने इसे मानव के पिता मनु को बतलाया; फिर मनु ने आगे इसे इक्ष्वाकु को बतलाया।" स्वायंभुव मनु तथा वैवस्वत मनु का उत्तरदायित्व एक जैसा है। वैवस्वत मनु सूर्यदेव विवस्वान् से उत्पन्न हुए जिनका पुत्र इक्ष्वाकु पृथ्वी का राजा हुआ। चूँकि मनु मानवता के इत्यादि पिता समझे जाते हैं अतएव मानव समाज को चाहिए कि उनके उपदेशों का पालन करे।

स्वायंभुव मनु उपदेश देते हैं कि जो कुछ भी आध्यात्मिक जगत तथा इस भौतिक जगत में विद्यमान है, वह उन भगवान् की सम्पत्ति है, जो सर्वत्र परम चेतना के रूप में उपस्थित हैं। जैसी कि *भगवद्गीता* (१३.३) में पुष्टि हुई है, *क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत*—प्रत्येक क्षेत्र में, अर्थात् प्रत्येक शरीर में परमेश्वर परमात्मा के रूप में उपस्थित हैं। प्रत्येक आत्मा को एक शरीर प्रदान किया जाता है, जिसमें वह रहे और परम पुरुष के आदेशानुसार कर्म करे। अतएव परमात्मा भी प्रत्येक शरीर में उपस्थित रहता है। हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि हम स्वतंत्र हैं, प्रत्युत हमें यह समझना चाहिए

कि हमें भगवान् की कुल सम्पत्ति का एक अंश मिला है।

ऐसे ज्ञान से पूर्ण साम्यवाद आ जाएगा। साम्यवादी अपने-अपने राष्ट्रों को लेकर सोचते हैं, किन्तु यहाँ पर जिस आध्यात्मिक साम्यवाद का उपदेश दिया गया है, वह राष्ट्रव्यापी नहीं, अपितु विश्वजनीन है। किसी राष्ट्र या किसी व्यष्टि व्यक्ति का अपना कुछ नहीं होता; प्रत्येक वस्तु भगवान् की है। इस श्लोक का यही अर्थ है। *आत्मावास्यम् इदं विश्वम्*—इस विश्व में जो कुछ भी है, वह भगवान् की सम्पत्ति है। आधुनिक साम्यवादी सिद्धान्त तथा संयुक्त राष्ट्र के विचार में सुधार लाया जा सकता है यदि हर वस्तु भगवान् की मानी जाये। भगवान् हमारी बुद्धि की उपज नहीं हैं प्रत्युत भगवान् ने हमें उत्पन्न किया है। *आत्मावास्यम् इदं विश्वम्। ईशावास्यमिदं सर्वम्।* यह वैश्व साम्यवाद जगत की सारी समस्याएँ हल कर सकता है।

मनुष्य को वैदिक वाङ्मय से यह सीखना चाहिए कि मनुष्य का शरीर भी उसकी सम्पत्ति नहीं है—यह तो उसे उसके कर्मों के अनुसार प्राप्त होता है। *कर्मणा दैवनेत्रेण जन्तुर्देहोपपत्तये।* चौरासी लाख योनियों के विभिन्न शरीर यंत्र हैं, जो प्रत्येक जीव को मिले हैं। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (१.६१) में की गई है—

ईश्वरः सर्वभूतानांहृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

"हे अर्जुन! भगवान् सबों के हृदय में स्थित हैं और सारे जीवों की गतिविधियों का निर्देश कर रहे हैं, जो भौतिक शक्ति से बने यंत्रों पर आरूढ़ जैसे हैं।" भगवान् परमात्मा रूप में हर एक के हृदय में स्थित रहते हैं और प्रत्येक जीव की इच्छाओं का अवलोकन करते रहते हैं। वे इतने दयालु हैं कि जीव को उपयुक्त शरीरों में नाना प्रकार की इच्छाओं का भोग करने का अवसर प्रदान करते हैं। ये शरीर मात्र मशीन (*यन्त्र*) जैसे हैं (*यन्त्रारूढानि मायया*)। ये यंत्र बहिरंगा शक्ति के भौतिक अवयवों से बनाये जाते हैं और इस प्रकार जीव अपनी-अपनी इच्छाओं के अनुसार सुख या दुख भोगते हैं। यह अवसर परमात्मा द्वारा प्रदत्त है।

चूँकि हर वस्तु परमेश्वर की है, अतएव मनुष्य को चाहिए कि दूसरे की सम्पत्ति का अपहरण न करे। हममें अनेक वस्तुओं को बनाने की प्रवृत्ति है। विशेष रूप से आजकल हम गगनचुम्बी प्रासादों

को बना रहे हैं और अन्य भौतिक सुविधाओं का विकास कर रहे हैं। किन्तु हमें यह जान लेना चाहिए कि गगनचुम्बी प्रासादों तथा यंत्रों को बनाने में जिन अवयवों की आवश्यकता होती है उन्हें भगवान् के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं बना सकता। सारा जगत पंच तत्त्वों के मेल के अतिरिक्त कुछ नहीं है (*तेजोवारिमृदां यथा विनिमयः*)। गगनचुम्बी प्रासाद मिट्टी, जल तथा अग्नि का ही रूपान्तर है। मिट्टी तथा जल को मिलाकर अग्नि में पकाकर ईटें बनाते हैं और इन्हीं ईटों से गगनचुम्बी प्रासाद की ऊँची रचना होती है। यद्यपि ईटें मनुष्य द्वारा निर्मित हैं, किन्तु उनके अवयव उसके द्वारा निर्मित नहीं होते। निस्सन्देह, निर्माता के रूप में मनुष्य भगवान् से वेतन प्राप्त कर सकता है। यही यहाँ पर कहा गया है—*तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः*—मनुष्य विशाल गगनचुम्बी प्रासाद तो बना सकता है, किन्तु निर्माता, व्यापारी या मजदूर कोई भी इसके स्वामित्व का दावा नहीं कर सकता। स्वामित्व तो उस व्यक्ति का होता है, जिसने इस प्रासाद के लिए धन व्यय किया है। भगवान् ने जल, मिट्टी, वायु, अग्नि तथा आकाश की रचना की है और कोई भी इनका उपयोग करके वेतन प्राप्त कर सकता है। (*तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः*)। किन्तु कोई स्वामित्व नहीं जता सकता। यह पूर्ण साम्यवाद है। बड़ी-बड़ी इमारतें बनाने की हमारी प्रवृत्ति का उपयोग केवल बड़े एवं कीमती मन्दिरों के बनवाने में होना चाहिए जिनमें भगवान् का अर्चाविग्रह स्थापित किया जाये। तब भवन बनवाने की हमारी इच्छा पूरी हो जाएगी।

चूँकि सारी सम्पत्ति भगवान् की है—अतएव प्रत्येक वस्तु भगवान् को अर्पित की जानी चाहिए और हमें मात्र प्रसाद ग्रहण करना चाहिए (*तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः*)। हमें आवश्यकता से अधिक प्राप्त करने के लिए आपस में लड़ना नहीं चाहिए, जैसाकि नारद ने महाराज युधिष्ठिर से कहा है—

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥

''मनुष्य को चाहिए कि उतनी ही सम्पत्ति के स्वामित्व का दावा करे जितनी शरीर-निर्वाह के लिए पर्याप्त है, किन्तु जो इससे अधिक के स्वामित्व की इच्छा करता है, वह चोर है और प्रकृति के नियमों के द्वारा दण्डित होने योग्य है।'' (*भागवत* ७.१४.)। निस्सन्देह, हमें खाने, सोने, मैथुन करने तथा रक्षा करने की आवश्यकता पड़ती है (*आहारनिद्राभयमैथुन*), किन्तु जब भगवान् ने पक्षियों तथा मधुमक्खियों तक को ये जीवन-आवश्यकताएँ दे रखी हैं, तो फिर वे मनुष्य के लिए क्यों न दें?

आर्थिक विकास की कोई आवश्यकता नहीं है, हरएक वस्तु पहले से दी हुई है। अतएव मनुष्य को यह समझना चाहिए कि प्रत्येक वस्तु कृष्ण की है और इसी विचार से प्रसाद ग्रहण किया जा सकता है। किन्तु यदि कोई दूसरों के हिस्से में हस्तक्षेप करता है, तो वह चोर है। हमें आवश्यकता से अधिक कोई भी वस्तु स्वीकार नहीं करनी चाहिए। अतएव यदि भाग्यवश हमें प्रचुर धन प्राप्त हो जाये तो हमें सदैव यह मानना चाहिए कि यह भगवान् का है। कृष्णभावनामृत में हमें पर्याप्त धन मिलता है, लेकिन हमें कभी यह नहीं समझना चाहिए कि यह धन हमारा है। यह तो भगवान् का है और कार्यकर्ताओं अर्थात् भक्तों में समान रूप से वितरित कर दिया जाना चाहिए। किसी भक्त को यह दावा नहीं करना चाहिए कि यह धन या सम्पत्ति उसकी है। यदि कोई यह सोचता है कि इस विराट ब्रह्माण्ड की सम्पत्ति का कोई भी अंश उसका है, तो उसे चोर समझना चाहिए और वह प्रकृति के नियमों द्वारा दण्डनीय है। *दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया*—कोई न तो प्रकृति की चौकसी से बच सकता है न उससे अपने इरादे छिपा सकता है। यदि मानव समाज नियम के विरुद्ध यह दावा करता है कि इस ब्रह्माण्ड की आंशिक या पूरी सम्पत्ति मनुष्य की है, तो ऐसे समाज को चोरों का समाज होने का शाप मिलेगा और उसे प्रकृति के नियमों द्वारा दण्डित किया जायेगा।

यं पश्यति न पश्यन्तं चक्षुर्यस्य न रिष्यति ।
तं भूतनिलयं देवं सुपर्णमुपधावत ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

यम्—जिसको; पश्यति—जीव देखता है; न—नहीं; पश्यन्तम्—सदैव देखते हुए; चक्षुः—आँख; यस्य—जिसकी; न—कभी नहीं; रिष्यति—कम होती है; तम्—उसको; भूत-निलयम्—सारे जीवों का मूल स्त्रोत; देवम्—भगवान् को; सुपर्णम्—जो मित्र के रूप में जीव के साथ-साथ रहता है; उपधावत—हर एक को पूजना चाहिए।

यद्यपि भगवान् विश्व के कार्यकलापों को निरन्तर देखते रहते हैं, किन्तु उन्हें कोई नहीं देख पाता। फिर भी किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि चूँकि उन्हें कोई नहीं देखता अतएव वे भी उसे नहीं देखते। स्मरण रहे कि उनकी देखने की शक्ति में कभी ह्रास नहीं आता अतएव प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि उन परमात्मा की पूजा करे जो प्रत्येक जीव के साथ मित्र रूप में सदैव रहते हैं।

तात्पर्य : कृष्ण की स्तुति करते हुए पाण्डवों की माता श्रीमती कुन्ती देवी ने कहा—*अलक्ष्यं सर्वभूतानाम् अन्तर्बहिरवस्थितम्*—हे कृष्ण! आप हरएक के अन्दर तथा बाहर निवास करते हैं, फिर

भी बुद्धिहीन बद्धजीव आपको देख नहीं पाता। *भगवद्गीता* में कहा गया है कि ज्ञान-चक्षुओं के द्वारा भगवान् को देखा जा सकता है। इन ज्ञान-चक्षुओं को खोलने वाले को गुरु कहते हैं। अतएव हम निम्नलिखित श्लोक से गुरु की प्रार्थना करते हैं—

ॐ अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।

चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

''मैं अपने गुरु को सादर नमस्कर करता हूँ जिन्होंने ज्ञान के दीप से मेरी उन आँखों को खोल दिया है, जो अज्ञान के अंधकार से अन्धी हो गई थीं'' (*गौतमीय तन्त्र*)। गुरु का कार्य शिष्य की ज्ञानरूपी आँखों को खोलना है। जब शिष्य अज्ञान से जगकर ज्ञान प्राप्त करता है, तो वह भगवान् को सर्वत्र देख सकता है क्योंकि भगवान् वास्तव में सर्वत्र हैं। *अण्डान्तरस्थ परमाणुचयान्तरस्थम्।* भगवान् इस ब्रह्माण्ड के भीतर, समस्त जीवों के हृदयों के भीतर, यहाँ तक कि परमाणु के भीतर भी, निवास करते हैं। चूँकि हममें पूर्णज्ञान का अभाव है अतएव हम ईश्वर को देख नहीं सकते, किन्तु थोड़े से सोच-विचार से हम ईश्वर को सर्वत्र देख सकते हैं। इसके लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता है। थोड़े से सोच-विचार से अधम से अधम व्यक्ति भी ईश्वर की उपस्थिति की अनुभूति कर सकता है। यदि हम इस पर विचार करें कि यह विशाल सागर किसकी सम्पत्ति है, यह विशाल भूखण्ड किसकी सम्पत्ति है, आकाश किस तरह टिका है, आकाश में किस तरह लाखों तारे तथा ग्रह टिके हुए हैं, इस ब्रह्माण्ड को किसने बनाया और यह किसकी सम्पत्ति है, तो हम निश्चित रूप से इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि सभी वस्तुओं का कोई स्वामी है। जब हम किसी भूखण्ड पर व्यक्तिगत रूप से या अपने परिवार तथा राष्ट्र के रूप में स्वामित्व का दावा करते हैं, तो हमें यह भी विचार करना चाहिए कि आखिर हम उसके स्वामी किस तरह बने? यह भूखण्ड हमारे जन्म के पूर्व भी वहीं था। तो फिर यह हमारी सम्पत्ति कैसे बना? ऐसा विचार-विमर्श हमें यह समझने में सहायक होगा कि हर वस्तु का एक परम स्वामी अर्थात् भगवान् होता है।

परमेश्वर सदा जाग्रत रहता है। बद्धावस्था में हम वस्तुओं को भूल जाते हैं क्योंकि हमारे शरीर बदलते रहते हैं, किन्तु क्योंकि भगवान् का शरीर नहीं बदलता अतएव वे भूत, वर्तमान तथा भविष्य को स्मरण रखते हैं। कृष्ण ने *भगवद्गीता* (४.१) में कहा है—*इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवान् अहमव्ययम्*—

मैंने कम से कम ४ करोड़ वर्ष पूर्व सूर्यदेव से यह ईश-विज्ञान— *भगवद्गीता*—कहा था। जब अर्जुन ने कृष्ण से पूछा कि वे इतने पहले घटी घटनाओं को किस प्रकार स्मरण रख सके तो भगवान् ने उत्तर दिया कि हे अर्जुन! उस समय तुम भी उपस्थित थे। चूँकि अर्जुन कृष्ण का सखा है अतएव जहाँ-जहाँ कृष्ण जाते है, वहाँ-वहाँ अर्जुन भी जाता है। लेकिन अन्तर यही है कि कृष्ण हर बात को स्मरण रखते हैं जबकि अर्जुन जैसा जीव परमेश्वर का सूक्ष्मकण होने के कारण भूल जाता है। अतएव यह कहा गया है कि भगवान् की चौकसी में कभी कमी नहीं आती। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (१५.१५) में भी हुई है—*सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनम् च*—परमात्मा रूप में भगवान् सारे जीवों के हृदयों में सदैव निवास करते हैं और उन्हीं से स्मृति, ज्ञान तथा विस्मृति उत्पन्न होती हैं। इस श्लोक में *सुपर्णम्* शब्द से इसी का संकेत मिलता है, जिसका अर्थ है 'मित्र'। अतएव *श्वेताश्वतर उपनिषद्* (४.६) में कहा गया है—*द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते*—एक ही वृक्ष पर दो पक्षी मित्रों के रूप में बैठे हैं। एक पक्षी वृक्ष के फल खा रहा है और दूसरा केवल देखता है। यह देखने वाला पक्षी खाने वाले पक्षी के मित्र रूप में सदैव उपस्थित रहता है और उसे उन वस्तुओं का स्मरण दिलाता रहता है, जो वह करना चाहता है। इस प्रकार यदि हम दैनिक मामलों में भगवान् पर विचार करें तो हम उन्हें देख सकते हैं या कम से कम उनकी उपस्थिति की अनुभूति सर्वत्र कर सकते हैं।

चक्षुर्यस्य न रिष्यति शब्दों का भावार्थ यह है कि यद्यपि हम उन्हें देख नहीं सकते, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि वे हमें नहीं देख सकते। न ही जब विराट विश्व का संहार होता है, तो वे मरते हैं। इस प्रसंग में उदाहरण दिया जाता है कि जब सूर्य रहता है, तो सूर्यप्रकाश रहता है। किन्तु जब सूर्य नहीं रहता या हम सूर्य को नहीं देख सकते तो इसका यह अर्थ नहीं होता कि सूर्य विनष्ट हो गया। सूर्य फिर भी रहता है, किन्तु हम उसे देख नहीं सकते। इसी प्रकार यद्यपि हम अपने वर्तमान अंधकार में या ज्ञान के अभाव में भगवान् को देख नहीं सकते तो भी वे हमारे कार्यकलापों को देखते रहते हैं और सर्वदा उपस्थित रहते हैं। वे परमात्मा के रूप में साक्षी तथा उपदेशक (*उपद्रष्टा* तथा *अनुमन्ता*) हैं। अतएव गुरु के उपदेशों का पालन करते हुए एवं प्रामाणिक ग्रंथों का अध्ययन करते हुए हम यह समझ सकते हैं कि ईश्वर हमारे समक्ष उपस्थित हैं और हर वस्तु को देख रहे हैं यद्यपि उन्हें देखने के लिए हमारे पास आँखें नहीं हैं।

न यस्याद्यन्तौ मध्यं च स्वः परो नान्तरं बहिः ।
विश्वस्यामूनि यद्यस्माद्विश्वं च तदृतं महत् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

न—**न तो**; यस्य—**जिसका (भगवान् का)**; आदि—**प्रारम्भ**; अन्तौ—**अन्त**; मध्यम्—**मध्य**; च—**भी**; स्वः—**अपना**; परः—**पराया**; न—**न तो**; अन्तरम्—**भीतर**; बहिः—**बाहर**; विश्वस्य—**सम्पूर्ण विश्व का**; अमूनि—**ऐसा विचार**; यत्—**जिसका रूप**; यस्मात्—**उससे, जो हर वस्तु का कारण है**; विश्वम्—**समग्र ब्रह्माण्ड**; च—**तथा**; तत्—**वे सब**; ऋतम्—**सत्य**; महत्—**अत्यन्त महान्**।

भगवान् का न तो आदि है, न अन्त और न मध्य। न ही वे किसी व्यक्ति विशेष या राष्ट्र के हैं। उनका न भीतर है न बाहर। इस जगत में दिखने वाले सारे द्वन्द्व—यथा आदि तथा अन्त, मेरा और उनका—उस परम पुरुष के व्यक्तित्व में अनुपस्थित हैं। यह ब्रह्माण्ड जो उनसे उद्भूत होता है उनका एक दूसरा स्वरूप है। अतएव भगवान् परम सत्य हैं और उनकी महानता पूर्ण है।

तात्पर्य : *ब्रह्मसंहिता* (५.१) में भगवान् कृष्ण का वर्णन मिलता है—

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द विग्रहः ।

अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम् ॥

"गोविन्द नाम से विख्यात कृष्ण परम नियन्ता हैं। उनका शरीर नित्य, आनन्दमय तथा आध्यात्मिक है। वे सबके उद्गम हैं। उनका कोई अन्य उद्गम नहीं है क्योंकि वे समस्त कारणों के मूल कारण हैं।" भगवान् के अस्तित्व का कोई कारण नहीं है क्योंकि वे सभी वस्तुओं के कारण हैं। वे प्रत्येक वस्तु में रहते हैं (*मया ततमिदं सर्वम्*), उनका विस्तार सभी वस्तुओं में है, किन्तु वे प्रत्येक वस्तु नहीं हैं। वे *अचिन्त्य-भेदाभेद* हैं अर्थात् एकसाथ एक तथा भिन्न हैं। इसी की व्याख्या इस श्लोक में हुई है। भौतिक दशा में आदि, मध्य तथा अन्त की धारणा होती है, लेकिन भगवान् में ऐसा कुछ नहीं होता। उनका ब्रह्माण्डीय स्वरूप वही विराट रूप है, जो *भगवद्गीता* में अर्जुन को प्रदर्शित किया गया था। अतएव वे सर्वत्र तथा सदैव विद्यमान रहने के कारण परम सत्य तथा महानतम हैं। उनकी महानता पूर्ण है। ईश्वर महान् हैं, किन्तु वे किस तरह महान् हैं इसकी व्याख्या यहाँ की गई है।

स विश्वकायः पुरुहूतईशः
सत्यः स्वयंज्योतिरजः पुराणः ।
धत्तेऽस्य जन्माद्यजयात्मशक्त्या

तां विद्ययोदस्य निरीह आस्ते ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

सः—भगवान्; विश्व-कायः—ब्रह्माण्ड का समग्र रूप (समग्र ब्रह्माण्ड भगवान् का बाह्य शरीर है); पुरु-हूतः—अनेक नामों से ज्ञेय; ईशः—परम नियन्ता; सत्यः—परम सत्य; स्वयम्—साक्षात्; ज्योतिः—स्वतः तेजवान्; अजः—अजन्मा, अनादि; पुराणः—सबसे प्राचीन; धत्ते—सम्पन्न करता है; अस्य—इस ब्रह्माण्ड का; जन्म-आदि—सृष्टि, पालन तथा संहार; अजया—अपनी बहिरंगा शक्ति से; आत्म-शक्त्या—अपनी निजी शक्ति से; ताम्—उस बहिरंगा शक्ति को; विद्यया—अपनी आध्यात्मिक शक्ति से; उदस्य—त्यागकर; निरीहः—निष्काम या निष्क्रिय; आस्ते—रह रहा है (भौतिक शक्ति का स्पर्श किये बिना)।

यह समग्र विश्व परम सत्य भगवान् का शरीर है जिनके लाखों नाम हैं और अनन्त शक्तियाँ हैं। वे आत्मतेजस्वी, अजन्मा तथा परिवर्तनहीन हैं। वे प्रत्येक वस्तु के आदि हैं, किन्तु स्वयं उनका कोई आदि नहीं है। चूँकि उन्होंने अपनी बहिरंगा शक्ति से इस विराट रूप की सृष्टि की है अतएव यह उनके द्वारा उत्पन्न, पालित तथा ध्वंसित प्रतीत होता है। फिर भी वे अपनी आध्यात्मिक शक्ति में निष्क्रिय रहते हैं और भौतिक शक्ति के कार्यकलाप उनका स्पर्श तक नहीं कर पाते।

तात्पर्य : श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने *शिक्षाष्टक* में कहा है—*नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्तिः*—भगवान् के अनेक नाम हैं, जो परम पुरुष से अभिन्न हैं। यही आध्यात्मिक अस्तित्व है। भगवान् के नामो से युक्त *हरे कृष्ण महामन्त्र* के जप से हमें ज्ञात होता है कि नाम में व्यक्ति की सारी शक्तियाँ रहती हैं। भगवान् के कार्यकलाप अनेक हैं और इन्हीं के अनुसार उनके अनेक नाम हैं। वे माता यशोदा के और माता देवकी के भी पुत्र रूप में प्रकट हुए, अतएव उन्हें देवकीनन्दन तथा यशोदानन्दन कहा जाता है। *परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते*—भगवान् की शक्तियाँ अनेक हैं, अतएव वे नाना प्रकार से कर्म करते हैं। फिर भी उनका एक विशेष नाम है। शास्त्र संस्तुति करते हैं कि हम किन नामों का कीर्तन करें—यथा हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे। ऐसा नहीं है कि हमें कोई नाम ढूँढना पड़े या बनाना पड़े। प्रत्युत हमें उनके पवित्र नाम के कीर्तन के लिए सन्तों तथा शास्त्रों का अनुगमन करना चाहिए।

यद्यपि भौतिक तथा आध्यात्मिक शक्तियाँ दोनों भगवान् की होती हैं, किन्तु जब तक हम भौतिक शक्ति में रहते हैं तब तक भगवान् को समझ पाना असम्भव है। किन्तु जब हम आध्यात्मिक शक्ति पर आते हैं, तो उन्हें जानना अत्यन्त सरल हो जाता है। जैसा कि *श्रीमद्भागवत* (१.७.२३) में कहा गया है—*मायां व्युदस्य चिच्छक्त्या कैवल्ये स्थित आत्मनि।* यद्यपि बहिरंगा शक्ति भगवान् की होती है, किन्तु बहिरंगा शक्ति में रहकर (*मम माया दुरत्यया*) भगवान् को समझ पाना मनुष्य के लिए अत्यन्त

कठिन है। किन्तु आध्यात्मिक शक्ति के प्राप्त होते ही उन्हें समझा जा सकता है। इसीलिए *भगवद्गीता* (१.५५) में कहा गया है— *भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः*—जो वास्तव में भगवान् को जानना चाहता है उसे भक्ति पद या कृष्णभावनामृत ग्रहण करना होगा। इस भक्ति में विविध क्रियाएँ सम्मिलित होती हैं (*श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्*) और भगवान् को समझने के लिए मनुष्य को यह भक्तिमार्ग ग्रहण करना चाहिए। यद्यपि विश्व के लोग ईश्वर को भूल चुके हैं, और यह कहें कि ईश्वर मर चुका है, किन्तु यह सच नहीं है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन ग्रहण करने पर मनुष्य ईश्वर को समझ सकता है और इस तरह सुखी बन सकता है।

अथाग्रे ऋषयः कर्माणीहन्तेऽकर्महेतवे ।
ईहमानो हि पुरुषः प्रायोऽनीहां प्रपद्यते ॥ १४॥

शब्दार्थ

अथ—अतएव; **अग्रे**—प्रारम्भ में; **ऋषयः**—सारे विद्वान ऋषियों या सन्त पुरुषों ने; **कर्माणि**—सकाम कर्म; **ईहन्ते**—करते हैं; **अकर्म**—कर्मफल से मुक्ति; **हेतवे**—के लिए; **ईहमानः**—ऐसे कार्यों में लगे रहकर; **हि**—निस्सन्देह; **पुरुषः**—पुरुष; **प्रायः**—सदा ही; **अनीहाम्**—कर्म से मुक्ति; **प्रपद्यते**—प्राप्त करता है।

अतएव लोगों को कर्मों की ऐसी अवस्था तक पहुँचने में समर्थ बनाने के लिए जो सकाम फलों से दूषित नहीं होते, बड़े-बड़े साधु पुरुष सर्वप्रथम लोगों को सकाम कर्म में लगाते हैं क्योंकि जब तक कोई शास्त्रानुमोदित कर्मों को सम्पन्न करना आरम्भ नहीं करता तब तक वह मुक्ति की अवस्था को या कर्मफल न उत्पन्न करने वाले कार्यों की अवस्था को प्राप्त नहीं होता।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (३.९) में भगवान् कृष्ण उपदेश देते हैं—*यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः*—विष्णु के लिए यज्ञ रूप में किया गया कर्म करणीय है, अन्यथा कर्म मनुष्य को इस संसार से बाँध देता है। सामान्यतया प्रत्येक व्यक्ति इस संसार में सुखी होने के लिए कठिन श्रम करने के लिए आकृष्ट होता है, किन्तु यद्यपि सारे विश्व में सुख के लिए ही विविध कार्यकलाप चल रहे हैं, लेकिन दुर्भाग्यवश ऐसे सकाम कर्मों से समस्याएँ ही उत्पन्न होती हैं। इसीलिए सलाह दी गई है कि कर्मठ लोग कृष्णभावनामृत के कार्यों में लगें, जिन्हें *यज्ञ* कहा जाता है क्योंकि ऐसा करने से वे लोग क्रमशः भक्तिपद को प्राप्त हो सकेंगे। यज्ञ का अर्थ है भगवान् विष्णु जो *यज्ञ-पुरुष* हैं—यज्ञों के भोक्ता हैं (*भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्*)। वास्तव में, भगवान् ही भोक्ता हैं, इसलिए यदि हम उनको तुष्ट

करने के लिए अपने कर्म करना प्रारम्भ करें तो हम धीरे-धीरे भौतिक कार्यों में रूचि खो देंगे।

सूत गोस्वामी ने नैमिषारण्य के मुनियों की महासभा में घोषित किया था—

अत:पुम्भिर्द्विजश्रेष्ठा वर्णाश्रमविभागश:।

स्वनुष्ठितस्य धर्मस्य संसिद्धिर्हरितोषणम्॥

''हे द्विजश्रेष्ठ! यदि वर्णाश्रम धर्म के अनुसार अपने नियत कार्य को करते रहने से कोई सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त की जा सकती है, तो वह भगवान् हरि का तोषण है।'' (*भागवत* १.२.१३)। वैदिक सिद्धान्तों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ या संन्यासी होने के अनुसार कर्म करना चाहिए। हर एक व्यक्ति को इस प्रकार कर्म करते हुए सिद्धि की ओर अग्रसर होना चाहिए जिससे कृष्ण प्रसन्न हो जाँए (*संसिद्धिर्हरितोषणम्*)। कोई अकर्मण्य बनकर कृष्ण को प्रसन्न नहीं कर सकता। उसे भगवान् को प्रसन्न करने के लिए गुरु के आदेशानुसार कर्म करना चाहिए। तभी वह धीरे-धीरे शुद्ध भक्ति की अवस्था तक पहुँचेगा। जैसी कि *श्रीमद्भागवत* (१.५.१२) में पुष्टि हुई है—

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाव वर्जितं

न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्।

''समस्त भौतिक आकर्षण से मुक्त होने पर भी आत्म-साक्षात्कार का ज्ञान अच्छा नहीं लगता यदि वह अच्युत (ईश्वर) की धारणा से विहीन हो।'' ज्ञानी कहते हैं कि मनुष्य कुछ न करता हुआ एकमात्र ब्रह्म का ध्यान करते हुए नैष्कर्म्य को ग्रहण करे, किन्तु यह तब तक असम्भव है जब तक उसे परब्रह्म कृष्ण की अनुभूति न हो ले। यदि कृष्णभावनामृत न हो तो कोई भी कर्म, चाहे परोपकारी हो, राजनीतिक या सामाजिक, *कर्मबन्धन* को ही उत्पन्न करता है।

जब तक मनुष्य *कर्मबन्धन* में फँसा रहता है तब तक उसे विभिन्न प्रकार के शरीर धारण करने पड़ते हैं, जो मनुष्य जीवन की सुविधा को नष्ट कर देते हैं। इसीलिए *भगवद्गीता* (६.३) में *कर्मयोग* की संस्तुति की गई है—

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।

योगारूढस्य तस्यैव शम: कारणमुच्यते॥

“जो योग पद्धति में नवदीक्षित है उसके लिए कर्म साधन है, किन्तु जिसने योग की प्राप्ति कर ली है उसके लिए सभी भौतिक कर्मों से विराम लेना ही साधन कहलाता है।” फिर भी :

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।

इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचार: स उच्यते॥

“जो इन्द्रियों को तथा कर्मेन्द्रियों को रोक लेता है, किन्तु जिसका मन इन्द्रिय-विषयों का चिन्तन करता रहता है, वह निश्चय ही अपने को धोखा देता है और वञ्चक कहलाता है।” (*भगवद्गीता* ३.६)। मनुष्य को चाहिए कि पूर्णत: कृष्णभावनाभावित होने के लिए वह कृष्ण के लिए गंभीर रूप से कर्म करे। उसे हरिदास ठाकुर जैसे महापुरुषों का अनुकरण नहीं करना चाहिए। *श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर* ने ऐसे अनुकरण की निन्दा करते हुए कहा है—

दुष्ट मन! तुमि किसेर वैष्णव?

प्रतिष्ठार तरे, निर्जनेर घरे,

तव हरिनाम केवल कैतव।

“मेरे मन! तुम कैसे भक्त हो? तुम केवल सस्ती प्रतिष्ठा के लिए निर्जन स्थान में बैठ जाते हो और हरे कृष्ण महामंत्र का जप करने का दिखावा करते हो, किन्तु यह सब ठगी है।” हाल ही में मायापुर में एक अफ्रीकी भक्त ने हरिदास ठाकुर का अनुकरण करना चाहा, किन्तु पन्द्रह दिन के बाद वह अशान्त हो उठा और भाग गया। एकाएक हरिदास ठाकुर का अनुकरण करने का प्रयत्न मत करो। तुम कृष्णभावनाभावित कर्मों में लगो। इससे तुम धीरे-धीरे मुक्ति की अवस्था को प्राप्त हो सकोगे। (*मुक्तिर्हित्वान्यथा रूपं स्वरूपेण व्यवस्थिति:*)।

ईहते भगवानीशो न हि तत्र विसज्जते ।
आत्मलाभेन पूर्णार्थो नावसीदन्ति येऽनु तम् ॥ १५॥

शब्दार्थ

ईहते—सृजन, पालन तथा संहार के कार्यों में लगता है; भगवान्—भगवान् कृष्ण; ईश:—परम नियन्ता; न—नहीं; हि—निस्सन्देह; तत्र—ऐसे कार्यों में; विसज्जते—फँस जाता है; आत्म-लाभेन—अपने लाभ के कारण; पूर्ण-अर्थ:—आत्मतुष्ट; न—नहीं; अवसीदन्ति—निराश होते हैं; ये—जो लोग; अनु—अनुसरण करते हैं; तम्—भगवान् को।

भगवान् अपने ही लाभ से ऐश्वर्यपूर्ण हैं, फिर भी वे संसार के स्त्रष्टा, पालक तथा संहर्ता के रूप में कार्य करते हैं। इस प्रकार से कर्म करने पर भी वे कभी बन्धन में नहीं पड़ते। अतएव जो

भक्तगण उनके चरण-चिह्नों का अनुगमन करते हैं, वे भी कभी बन्धन में नहीं पड़ते।

तात्पर्य : जैसाकि *भगवद्गीता* (३.९) में कहा गया है—*यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः*—विष्णु के यज्ञ रूप में किया गया कर्म करणीय है अन्यथा कर्म मनुष्य को इस संसार से बाँध देता है। यदि हम कृष्णभावनामृत में रहकर कर्म नहीं करते तो हम बन्धन में पड़ेंगे जिस तरह कि रेशम का कीड़ा अपने ही कृमिकोश में फँस जाता है। भगवान् कृष्ण हमें यह शिक्षा देने के लिए प्रकट होते हैं कि हम किस तरह कर्म करें जिससे जगत में हम फँसे नहीं। हमारी असली समस्या यह है कि हम भौतिकतावादी कार्यकलापों में फँसे हैं और हमारे बद्ध होने से हमारा संघर्ष एक शरीर से दूसरा शरीर धारण करने के दण्ड के रूप में चलता रहता है। जैसाकि *भगवद्गीता* (१५.७) में भगवान् कहते हैं—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति॥

''इस बद्ध जगत में सारे जीव मेरे नित्य अंश हैं। बद्ध जीवन के कारण वे मन समेत छहों इन्द्रियों द्वारा कठिन संघर्ष में लगे हैं।'' सारे जीव वास्तव में सूक्ष्म रूप हैं, जो भगवान् के अंश हैं। भगवान् हर वस्तु में पूर्ण हैं और भगवान् के छोटे कण भी मूलतः उन्हीं के समान गुणमय हैं, किन्तु अपने सूक्ष्म अस्तित्व के कारण वे भौतिक आकर्षण से दूषित होकर बद्ध हो जाते हैं। अतएव हमें भगवान् के आदेशों का पालन करना चाहिए। तब हमें भी कृष्ण की भाँति किसी भी बात पर पश्चाताप नहीं करना होगा। (*नावसीदन्ति येऽनु तम्*) क्योंकि वे सृजन, पालन तथा संहार जैसे अपने भौतिक कार्यों से कभी बँधते नहीं। *भगवद्गीता* में कृष्ण स्वयं उपदेश देते हैं और जो भी इनका पालन करता है, वह मुक्त हो जाता है।

कृष्ण के उपदेशों का पालन तभी सम्भव है जब कोई भक्त हो क्योंकि कृष्ण यह आदेश देते हैं कि हे मनुष्य! तुम भक्त बनो। *मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु*—''सदैव मेरा चिन्तन करो और मेरे भक्त बनो। मेरी पूजा करो और मुझे नमस्कार करो।'' (*भगवद्गीता* १.६५)। सदैव कृष्ण के चिन्तन का अर्थ होता है हरे कृष्ण मंत्र का कीर्तन, किन्तु जब तक कोई दीक्षित भक्त न बन ले, यह सम्भव नहीं। ज्योंही कोई भक्त बन जाता है, वह अर्चाविग्रह की पूजा में लग जाता है (*मद्याजी*)। भक्त

का कार्य है भगवान् तथा गुरु को सदा नमस्कार करना। भक्ति पद तक उठने का यह मान्य सिद्धान्त है। इस पद के प्राप्त होते ही मनुष्य भगवान् को धीरे-धीरे समझने लगता है और कृष्ण को समझ लेने मात्र से ही वह भवबन्धन से छूट जाता है।

तमीहमानं निरहङ्कृतं बुधं
निराशिषं पूर्णमनन्यचोदितम् ।
नृञ्शिक्षयन्तं निजवर्त्मसंस्थितं
प्रभुं प्रपद्येऽखिलधर्मभावनम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसी भगवान् को; ईहमानम्—हमारे लाभ के लिए कर्म करने वाले; निरहङ्कृतम्—जो बन्धन अथवा लाभ की इच्छा से रहित है; बुधम्—ज्ञानवान् को; निराशिषम्—अपने कर्मफल को भोगने की इच्छा न रखने वाले को; पूर्णम्—जो पूर्ण है अतएव जिसे इच्छा पूर्ति की आवश्यकता नहीं है; अनन्य—अन्यों के द्वारा; चोदितम्—प्रेरित, प्रोत्साहित; नृन्—सारा मानव समाज; शिक्षयन्तम्—शिक्षा देने के लिए (जीव के असली पथ की); निज-वर्त्म—अपनी निजी जीवन शैली; संस्थितम्—प्रतिष्ठित करने के लिए (विचलित हुए बिना); प्रभुम्—भगवान् से; प्रपद्ये—प्रार्थना करता हूँ; अखिल-धर्म-भावनम्—जो मनुष्यों के समस्त धार्मिक सिद्धान्तों अथवा वृत्तिपरक कर्मों के स्वामी हैं।

भगवान् कृष्ण एक सामान्य व्यक्ति की भाँति कर्म करते हैं, फिर भी वे कर्मफल भोगने की इच्छा नहीं रखते। वे ज्ञान से पूर्ण, भौतिक इच्छाओं तथा विक्षेपों से मुक्त एवं पूर्णतः स्वतंत्र हैं। वे मानव समाज के परम शिक्षक के रूप में अपनी ही कर्मशैली का उपदेश देते हैं और इस प्रकार धर्म के असली मार्ग का उद्घाटन करते हैं। मैं हर व्यक्ति से प्रार्थना करता हूँ कि वह उनका अनुसरण करे।

तात्पर्य : हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन का यही सार है। मानव समाज से हमारा मात्र यही अनुरोध है कि वे *भगवद्गीता* के उपदेशकर्ता के पदचिह्नों पर चलें। *भगवद्गीता यथारूप* के उपदेशों का पालन करने से तुम्हारा जीवन सफल हो जायेगा। कृष्णभावनामृत आन्दोलन का यही सार है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन का व्यवस्थापक हर एक को शिक्षा दे रहा है कि किस प्रकार भगवान् रामचन्द्र, भगवान् कृष्ण तथा श्री चैतन्य महाप्रभु का अनुसरण किया जाय। इस संसार में राजतंत्र या अच्छी सरकार के लिए नेता की आवश्यकता होती है। भगवान् रामचन्द्र ने अपने व्यावहारिक उदाहरण द्वारा यह प्रदर्शित किया कि किस प्रकार सारे मानव समाज के लाभ के लिए जिया जाये। उन्होंने रावण जैसे असुरों के साथ युद्ध किया, उन्होंने अपने पिता के आदेश का पालन किया और वे माता सीता के पत्नीव्रत पति बने रहे। अतएव आदर्श राजा के रूप में भगवान् रामचन्द्र के कार्यों की कोई तुलना नहीं

है। निस्सन्देह, लोग अब भी रामराज्य की लालसा करते हैं। इसी प्रकार कृष्ण ने भगवान् होते हुए भी अपने शिष्य तथा भक्त अर्जुन को शिक्षा दी कि किस तरह जीवन जिया जाये जिससे अन्ततः भगवद्धाम लौटा जा सके (*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन*)। *भगवद्गीता* में सभी प्रकार की शिक्षाएँ मिलती हैं—राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा दार्शनिक। मनुष्य को उनका दृढ़तापूर्वक पालन भर करना है। भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में शुद्ध भक्त की भूमिका मात्र अदा करने के लिए भी जन्म लेते हैं। इस तरह भगवान् हमारे जीवन को सफल बनाने के लिए हमें अनेक प्रकार से शिक्षा देते हैं और स्वायंभुव मनु हम सबों से अनुरोध कर रहे हैं कि हम उनका अनुसरण करें।

स्वायंभुव मनु मानव जाति के अग्रणी (नेता) हैं और उन्होंने मानव समाज के मार्गदर्शन हेतु *मनुसंहिता* नामक ग्रंथ प्रदान किया है। इसमें वे हमें भगवान् के विभिन्न अवतारों के अनुसार चलने का निर्देश देते हैं। ये अवतार वैदिक साहित्य में वर्णित हैं और जयदेव गोस्वामी ने दस महत्त्वपूर्ण अवतारों का संक्षेप में वर्णन किया है—*केशव धृतमीनशरीर जय जगदीश हरे, केशव धृतनरहरि-रूप जय जगदीश हरे, केशव धृतबुद्धशरीर जय जगदीश हरे, आदि आदि।* स्वायंभुव मनु हमें ईश्वर के अवतारों के उपदेशों का, विशेषतया *भगवद्गीता यथारूप* के उपदेशों का, पालन करने की शिक्षा देते हैं।

श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा उपदिष्ट *भक्तिमार्ग* की प्रशंसा करते हुए सार्वभौम भट्टाचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु के कार्यकलापों का चित्रण इस प्रकार किया है—

वैराग्यविद्यानिजभक्तियोगशिक्षार्थमेकः पुरुषः पुराणः।
श्रीकृष्णचैतन्यशरीरधारी कृपाम्बुधिर्यस्तमहं प्रपद्ये॥

"मैं भगवान् श्रीकृष्ण की शरण ग्रहण करता हूँ जो हमें असली ज्ञान, अपनी भक्ति तथा कृष्णचेतना में प्रोत्साहन न देने वाली प्रत्येक वस्तु से विरक्ति का उपदेश देने के लिए चैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतरित हुए हैं। वे इसलिए अवतरित हुए हैं क्योंकि वे दिव्य कृपा के सागर हैं। मैं उनके चरणकमलों में शरण लेता हूँ।" (*चैतन्य चन्द्रोदय नाटक* ६.७४)। इस कलिकाल में लोग भगवान् के उपदेशों का पालन नहीं कर सकते; अतएव भगवान् स्वयं ही लोगों को कृष्णभावनाभावित होने का पाठ पढ़ाने के लिए श्रीकृष्णचैतन्य की भूमिका निभाते हैं। वे हर एक से कहते हैं कि मेरा अनुसरण करो और

कलियुग की पतितात्माओं के उद्धार के लिए गुरु बनो।

यारे देख, तारे कह 'कृष्ण'-उपदेश।

आमार आज्ञाय गुरु हञा तार' ऐइ देश॥

''हर व्यक्ति को उपदेश दो कि वह *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* में दिये गये भगवान् कृष्ण के आदेशों का पालन करे। इस तरह गुरु बनकर इस भूमि के प्रत्येक व्यक्ति को मुक्त करने का प्रयास करो।'' (*चैतन्य चरितामृत* मध्य ७.१२)। भगवान् रामचन्द्र, भगवान् कृष्ण तथा भगवान् चैतन्य महाप्रभु का एक ही उद्देश्य था—मानव समाज को यह सिखाना कि किस प्रकार भगवान् के उपदेशों का पालन करके सुखी हुआ जाये।

श्रीशुक उवाच
इति मन्त्रोपनिषदं व्याहरन्तं समाहितम् ।
दृष्ट्वासुरा यातुधाना जग्धुमभ्यद्रवन्क्षुधा ॥ १७॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; मन्त्र-उपनिषदम्—वैदिक मंत्र (स्वायंभुव मनु द्वारा उच्चारित); व्याहरन्तम्—सिखाये गये या उच्चारित; समाहितम्—मन को केन्द्रित किया (भौतिक अवस्थाओं से विक्षुब्ध हुए बिना); दृष्ट्वा—देखकर; असुराः—असुरगण; यातुधानाः—राक्षसगण; जग्धुम्—निगल जाना चाहा; अभ्यद्रवन्—तेजी से दौते हुए; क्षुधा—अपनी भूख को शान्त करने के लिए।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : इस प्रकार स्वायंभुव मनु उपनिषदों के मंत्रों की जयध्वनि करते हुए समाधिस्थ हो गये। उन्हें देखकर राक्षसों तथा असुरगण ने अत्यन्त भूखे होने के कारण उन्हें निगल जाना चाहा। अतएव वे उनके पीछे द्रुतगति से दौने लगे।

तांस्तथावसितान्वीक्ष्य यज्ञः सर्वगतो हरिः ।
यामैः परिवृतो देवैर्हत्वाशासत्त्रिविष्टपम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

तान्—असुरों तथा राक्षसों को; तथा—इस प्रकार; अवसितान्—जो स्वायंभुव मनु को निगलने के लिए कृतसंकल्प थे; वीक्ष्य—देखकर; यज्ञः—भगवान् विष्णु, जो यज्ञ कहलाते हैं; सर्व-गतः—हर एक के हृदय में स्थित; हरिः—भगवान्; यामैः—याम नामक अपने पुत्रों के साथ; परिवृतः—घिरा हुआ; देवैः—देवताओं से; हत्वा—(असुरों को) मारकर; अशासत्—(इन्द्रपद ग्रहण करके) शासन चलाया; त्रि-विष्टपम्—स्वर्ग-लोकों का।

प्रत्येक हृदय में वास करने वाले भगवान् विष्णु यज्ञपति के रूप में प्रकट हुए और उन्होंने देखा कि राक्षस तथा असुर स्वायंभुव मनु को निगल जाने वाले हैं। इस प्रकार याम नामक अपने पुत्रों तथा अन्य सभी देवताओं को साथ लेकर भगवान् ने उन असुरों तथा राक्षसों को मार डाला।

तब उन्होंने इन्द्र का पद ग्रहण किया और स्वर्ग लोक पर शासन करने लगे।

तात्पर्य : देवताओं के विभिन्न नाम यथा ब्रह्मा, शिव, इन्द्र इत्यादि व्यक्तिगत नाम नहीं हैं। वे विभिन्न पदों के नाम हैं। इस प्रसंग में हमें पता लगता है कि इन पदों को ग्रहण करने योग्य उपयुक्त व्यक्तियों के न होने पर भगवान् विष्णु कभी ब्रह्मा बनते हैं, तो कभी इन्द्र।

स्वारोचिषो द्वितीयस्तु मनुरग्नेः सुतोऽभवत् ।
द्युमत्सुषेणरोचिष्मत्प्रमुखास्तस्य चात्मजाः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

स्वारोचिषः—स्वारोचिष; द्वितीयः—दूसरा; तु—निस्सन्देह; मनुः—मनु; अग्नेः—अग्नि का; सुतः—पुत्र; अभवत्—बना; द्युमत्—द्युमत्; सुषेण—सुषेण; रोचिष्मत्—रोचिष्मत्; प्रमुखाः—इत्यादि; तस्य—उसके (स्वारोचिष के); च—भी; आत्म-जाः—पुत्र।

अग्नि का पुत्र स्वारोचिष दूसरा मनु बना। उसके अनेक पुत्रों में द्युमत्, सुषेण तथा रोचिष्मत् प्रमुख थे।

तात्पर्य :

मन्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः ।

ऋषयोंऽशावतारश्च हरेः षड्विधमुच्यते ॥

भगवान् के अनेक अवतार हैं। मनु, *मनुपुत्राः* (मनु के पुत्र) स्वर्ग लोकों का राजा तथा सप्तर्षि—ये सभी भगवान् के अंशावतार हैं। स्वयं मनु, उनके पुत्र प्रियव्रत तथा उत्तानपाद, दक्ष द्वारा उत्पन्न देवता तथा मरीचि जैसे ऋषि—ये सभी स्वायंभुव मनु के राज्यकाल में भगवान् के अंशावतार थे। उस काल में भगवान् के अवतार यज्ञ ने स्वर्गलोकों के शासन का राज्यभार सँभाला। अगला मनु स्वारोचिष था। अगले ग्यारह श्लोकों में मनुओं, ऋषियों तथा देवताओं का और विस्तृत वर्णन हुआ है।

तत्रेन्द्रो रोचनस्त्वासीद्देवाश्च तुषितादयः ।
ऊर्जस्तम्भादयः सप्त ऋषयो ब्रह्मवादिनः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

तत्र—इस मन्वन्तर में; इन्द्रः—इन्द्र; रोचनः—रोचन, यज्ञ का पुत्र; तु—लेकिन; आसीत्—हुआ; देवाः—देवता; च—भी; तुषित-आदयः—तुषित तथा अन्य; ऊर्ज—ऊर्ज; स्तम्भ—स्तम्भ; आदयः—तथा अन्य; सप्त—सात; ऋषयः—ऋषिगण; ब्रह्म-वादिनः—सभी निष्ठावान् भक्त।

स्वारोचिष के शासनकाल में इन्द्र का पद यज्ञपुत्र रोचन ने ग्रहण किया। तुषित तथा अन्य

लोग प्रधान देवता बने और ऊर्ज, स्तम्भ इत्यादि सप्तर्षि हुए। ये सभी भगवान् के निष्ठावान् भक्त थे।

ऋषेस्तु वेदशिरसस्तुषिता नाम पत्न्यभूत् ।
तस्यां जज्ञे ततो देवो विभुरित्यभिविश्रुतः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

ऋषेः—ऋषि का; तु—निस्सन्देह; वेदशिरसः—वेदशिरा; तुषिता—तुषिता; नाम—नामक; पत्नी—पत्नी ने; अभूत्—उत्पन्न किया; तस्याम्—अपने (गर्भ) से; जज्ञे—जन्म लिया; ततः—तत्पश्चात्; देवः—भगवान्; विभुः—विभु; इति—इस प्रकार; अभिविश्रुतः—विख्यात।

वेदशिरा अत्यन्त विख्यात ऋषि थे। उनकी पत्नी तुषिता के गर्भ से विभु नामक अवतार ने जन्म लिया।

अष्टाशीतिसहस्राणि मुनयो ये धृतव्रताः ।
अन्वशिक्षन्व्रतं तस्य कौमारब्रह्मचारिणः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

अष्टाशीति—अट्ठासी; सहस्राणि—हजार; मुनयः—साधु पुरुष; ये—वे जो; धृत-व्रताः—व्रतधारी; अन्वशिक्षन्—शिक्षाएँ ग्रहण की; व्रतम्—व्रत; तस्य—उसका (विभु का); कौमार—अविवाहित; ब्रह्मचारिणः—तथा ब्रह्मचारी अवस्था में रहने वाला।

विभु ब्रह्मचारी बने रहे और जीवन पर्यन्त अविवाहित रहे। उनसे अट्ठासी हजार अन्य मुनियों ने आत्मनिग्रह, तपस्या तथा अन्य आचार सम्बन्धी शिक्षाएँ ग्रहण कीं।

तृतीय उत्तमो नाम प्रियव्रतसुतो मनुः ।
पवनः सृञ्जयो यज्ञहोत्राद्यास्तत्सुता नृप ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

तृतीयः—तीसरा; उत्तमः—उत्तम; नाम—नामक; प्रियव्रत—राजा प्रियव्रत का; सुतः—पुत्र; मनुः—मनु बना; पवनः—पवन; सृञ्जयः—सृञ्जय; यज्ञहोत्र-आद्याः—यज्ञहोत्र इत्यादि; तत्-सुताः—उत्तम के पुत्र; नृप—हे राजा।

हे राजा! तीसरा मनु राजा प्रियव्रत का पुत्र उत्तम था। इस मनु के पुत्रों में पवन, सृञ्जय तथा यज्ञहोत्र मुख्य थे।

वसिष्ठतनयाः सप्त ऋषयः प्रमदादयः ।
सत्या वेदश्रुता भद्रा देवा इन्द्रस्तु सत्यजित् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

वसिष्ठ-तनयाः—वशिष्ठ के पुत्र; सप्त—सात; ऋषयः—ऋषिगण; प्रमद-आदयः—प्रमद इत्यादि; सत्याः—सत्यगण; वेदश्रुताः—वेदश्रुतगण; भद्राः—भद्रगण; देवाः—देवतागण; इन्द्रः—स्वर्ग का राजा; तु—लेकिन; सत्यजित्—सत्यजित्।

तीसरे मनु के शासनकाल में वसिष्ठ के प्रमद तथा अन्य पुत्र सप्तर्षि बने। सत्यगण, वेदश्रुतगण तथा भद्रगण देवता बने और सत्यजित् को स्वर्ग का राजा इन्द्र चुना गया।

धर्मस्य सूनृतायां तु भगवान्पुरुषोत्तमः ।
सत्यसेन इति ख्यातो जातः सत्यव्रतैः सह ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

धर्मस्य—धर्म के देवता की; सूनृतायाम्—सूनृता नामक पत्नी के गर्भ में; तु—निस्सन्देह; भगवान्—भगवान्; पुरुष-उत्तमः—परमेश्वर; सत्यसेनः—सत्यसेन; इति—इस प्रकार; ख्यातः—विख्यात; जातः—जन्म लिया; सत्यव्रतैः—सत्यव्रतों के; सह—साथ।

इस मन्वन्तर में भगवान् धर्म की पत्नी सूनृता के गर्भ से प्रकट हुए और सत्यसेन नाम से विख्यात हुए। वे सत्यव्रत नामक अन्य देवताओं के साथ प्रकट हुए।

सोऽनृतव्रतदुःशीलानसतो यक्षराक्षसान् ।
भूतद्रुहो भूतगणांश्चावधीत्सत्यजित्सखः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (सत्यसेन); अनृत-व्रत—झूठ बोलने का व्रत लेने वाला; दुःशीलान्—दुराचारी; असतः—दुष्ट; यक्ष-राक्षसान्—यक्षों तथा राक्षसों को; भूत-द्रुहः—अन्य जीवों की उन्नति का सदैव विरोध करने वाले; भूत-गणान्—भूत प्रेतों का; च—भी; अवधीत्—वध कर दिया; सत्यजित्-सखः—अपने मित्र सत्यजित सहित।

सत्यसेन ने अपने मित्र सत्यजित् सहित जो उस काल के स्वर्ग के राजा इन्द्र थे समस्त झूठे, अपवित्र तथा दुराचारी यक्षों, राक्षसों तथा भूतप्रेतों का वध कर दिया क्योंकि वे सारे जीवों को कष्ट पहुँचाते थे।

चतुर्थ उत्तमभ्राता मनुर्नाम्ना च तामसः ।
पृथुः ख्यातिर्नरः केतुरित्याद्या दश तत्सुताः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

चतुर्थ—चौथा मनु; उत्तम-भ्राता—उत्तम का भाई; मनुः—मनु बना; नाम्ना—नाम से विख्यात; च—भी; तामसः—तामस; पृथुः—पृथु; ख्यातिः—ख्याति; नरः—नर; केतुः—केतु; इति—इस प्रकार; आद्याः—इत्यादि; दश—दस; तत्-सुताः—तामस मनु के पुत्र।

तीसरे मनु उत्तम का भाई जो तामस नाम से विख्यात था चौथा मनु बना। तामस के दस पुत्र थे जिनमें पृथु, ख्याति, नर तथा केतु प्रमुख थे।

सत्यका हरयो वीरा देवास्त्रिशिख ईश्वरः ।
ज्योतिर्धामादयः सप्त ऋषयस्तामसेऽन्तरे ॥ २ ॥

शब्दार्थ

सत्यकाः—सत्यकगण; हरयः—हरिगण; वीराः—वीरगण; देवाः—देवगण; त्रिशिखः—त्रिशिख; ईश्वरः—स्वर्ग का राजा; ज्योतिर्धाम-आदयः—ज्योतिर्धाम इत्यादि; सप्त—सात; ऋषयः—ऋषिगण; तामसे—तामस मनु के राज्यकाल; अन्तरे—में।

तामस मनु के शासन में सत्यकगण, हरिगण तथा वीरगण देवताओं में से थे। स्वर्ग का राजा इन्द्र त्रिशिख था। सप्तर्षि-धाम के ऋषियों में ज्योतिर्धाम प्रमुख था।

देवा वैधृतयो नाम विधृतेस्तनया नृप ।
नष्टाः कालेन यैर्वेदा विधृताः स्वेन तेजसा ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

देवाः—देवतागण; वैधृतयः—वैधृतिगण; नाम—नामक; विधृतेः—विधृति के; तनयाः—पुत्र; नृप—हे राजा; नष्टाः—नष्ट हो गये थे; कालेन—समय के प्रभाव से; यैः—जिससे; वेदाः—वेद; विधृताः—सुरक्षित थे; स्वेन—अपने; तेजसा—बल से।

हे राजा! तामस मन्वन्तर में विधृति के पुत्र भी जो वैधृति कहलाते थे, देवता बने। चूँकि कालक्रम से वैदिक स्वत्व विनष्ट हो गया था, अतएव इन देवताओं ने अपने बल से वैदिक स्वत्व की रक्षा की।

तात्पर्य : तामस मन्वन्तर में दो प्रकार के देवता थे जिनमें से एक वैधृति कहलाते थे। देवताओं का कार्य वेदों के स्वत्व की रक्षा करना है। देवता शब्द वेदों के स्वत्व को वहन करने वाले का सूचक है, जबकि राक्षस वे हैं, जो वैदिक स्वत्व का उल्लंघन करते हैं। यदि वेदों का स्वत्व जाता रहता है, तो समग्र ब्रह्माण्ड अशान्त हो उठता है। अतएव देवताओं के साथ-साथ राजाओं तथा सरकार के सहायकों का कर्तव्य है कि वे वेदों के स्वत्व को पूरा संरक्षण प्रदान करें; अन्यथा मानव समाज में अशान्ति छा जायेगी और तब उसमें शान्ति अथवा समृद्धि नहीं रह सकती।

तत्रापि जज्ञे भगवान्हरिण्यां हरिमेधसः ।
हरिरित्याहृतो येन गजेन्द्रो मोचितो ग्रहात् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

तत्रापि—उस काल में; जज्ञे—प्रकट हुआ; भगवान्—भगवान्; हरिण्याम्—हरिणी के गर्भ में; हरिमेधसः—हरिमेधा से उत्पन्न; हरिः—हरि; इति—इस प्रकार; आहृतः—कहलाया; येन—जिसके द्वारा; गज-इन्द्रः—हाथियों का राजा; मोचितः—छुड़ाया गया था; ग्रहात्—घड़ियाल के मुख से।

इस मन्वन्तर में भगवान् विष्णु ने भी हरिमेधा की पत्नी हरिणी के गर्भ से जन्म लिया और वे हरि कहलाये। हरि ने हाथियों के राजा एवं अपने भक्त गजेन्द्र को घड़ियाल के मुख से छुड़ाया।

श्रीराजोवाच

बादरायण एतत्ते श्रोतुमिच्छामहे वयम् ।
हरिर्यथा गजपतिं ग्राहग्रस्तममूमुचत् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा परीक्षित ने कहा; बादरायणे—हे बादरायण (व्यासदेव) के पुत्र; एतत्—यह; ते—तुमसे; श्रोतुम् इच्छामहे—सुनने की इच्छा करते हैं; वयम्—हम; हरिः—भगवान् हरिः; यथा—जिस तरह से; गज-पतिम्—हाथियों के राजा को; ग्राह-ग्रस्तम्—घड़ियाल द्वारा आक्रमण किये जाने पर; अमूमुचत्—छुड़ाया, उद्धार किया।

राजा परीक्षित ने कहा : हे बादरायणि प्रभु! हम आपसे विस्तार से यह सुनना चाहते हैं कि घड़ियाल द्वारा आक्रमण किये जाने पर हाथियों के राजा (गजेन्द्र) को हरि ने किस प्रकार छुड़ाया?

तत्कथासु महत्पुण्यं धन्यं स्वस्त्ययनं शुभम् ।
यत्र यत्रोत्तमश्लोको भगवान्गीयते हरिः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

तत्-कथासु—उन कथाओं में; महत्—महान्; पुण्यम्—पवित्र; धन्यम्—धन्य; स्वस्त्ययनम्—कल्याणप्रद; शुभम्—शुभ; यत्र—जब भी; यत्र—जहाँ भी; उत्तमश्लोकः—उत्तमश्लोक नाम से प्रसिद्ध; भगवान्—भगवान्; गीयते—गायन किया जाता है; हरिः—भगवान्।

कोई भी साहित्य या कथा जिसमें भगवान् उत्तमश्लोक का वर्णन और उनकी महिमा का गायन किया जाता है, वह निश्चय ही महान्, शुद्ध, धन्य, कल्याणप्रद तथा उत्तम है।

तात्पर्य : कृष्णभावनामृत आन्दोलन कृष्ण का वर्णन करने मात्र से सारे विश्व में फैल रहा है। हमने कई पुस्तकें प्रकाशित की हैं जिनमें *श्रीचैतन्य-चरितामृत* (सत्रह खण्डों में, प्रत्येक चार-चार सौ पृष्ठ का, है), *भगवद्गीता* तथा *भक्तिरसामृतसिन्धु* सम्मिलित हैं। हम *श्रीमद्भागवत* का प्रकाशन साठ खण्डों में कर रहे हैं। जहाँ कहीं भी कोई वक्ता इन पुस्तकों से व्याख्यान देगा तथा श्रोता उसे सुनेंगे, उससे उत्तम तथा शुभ वातावरण उत्पन्न होगा। अतएव कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सदस्यों को, विशेषतया संन्यासियों को बड़ी सावधानी से कृष्णभावनामृत का प्रचार करना चाहिए। इससे शुभ वातावरण उत्पन्न होगा।

श्रीसूत उवाच

परीक्षितैवं स तु बादरायणिः

प्रायोपविष्टेन कथासु चोदितः ।
उवाच विप्राः प्रतिनन्द्य पार्थिवं
मुदा मुनीनां सदसि स्म शृण्वताम् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

श्री-सूतः उवाच—श्री सूत गोस्वामी ने कहा; परीक्षिता—महाराज परीक्षित के द्वारा; एवम्—इस प्रकार; सः—वह; तु—निस्सन्देह; बादरायणिः—शुकदेव गोस्वामी; प्राय-उपविष्टेन—आसन्न मृत्यु की प्रतीक्षा करने वाले परीक्षितमहाराज ने; कथासु—शब्दों से; चोदितः—प्रोत्साहित होकर; उवाच—कहा; विप्राः—हे ब्राह्मणो; प्रतिनन्द्य—बधाई देकर; पार्थिवम्—महाराज परीक्षित को; मुदा—अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक; मुनीनाम्—मुनियों की; सदसि—सभा में; स्म—निस्सन्देह; शृण्वताम्—सुनने के इच्छुक।

श्री सूत गोस्वामी ने कहा : हे ब्राह्मणो! जब आसन्न मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे परीक्षित महाराज ने शुकदेव गोस्वामी से ऐसा बोलने के लिए प्रार्थना की तो मुनि ने राजा के शब्दों से प्रोत्साहित होकर, राजा का अभिनन्दन किया और वे सुनने के इच्छुक मुनियों की सभा में अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक बोले।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कन्ध के अन्तर्गत ''ब्रह्माण्ड के प्रशासक मनु'' नामक प्रथम अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter दो

गजेन्द्र का संकट

इस स्कंध के द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ अध्यायों में यह बताया गया है कि भगवान् ने किस तरह चतुर्थ मनु के राज्यकाल में हाथियों के राजा (गजेन्द्र) को संरक्षण प्रदान किया। इस द्वितीय अध्याय में बताया गया है कि जब हाथियों का राजा अपनी पत्नियों सहित जलविहार कर रहा था, तो सहसा एक घड़ियाल (मगरमच्छ) ने उस पर आक्रमण कर दिया और गजेन्द्र ने अपनी रक्षा के लिए भगवान् के चरणकमलों पर आत्मसमर्पण कर दिया।

क्षीरसागर के मध्य में एक अत्यन्त ऊँचा तथा सुन्दर पर्वत है, जिसकी ऊँचाई दस हजार योजन अर्थात् अस्सी हजार मील है। यह पर्वत त्रिकूट कहलाता है। त्रिकूट पर्वत की घाटी में एक सुरम्य उद्यान है, जिसका नाम ऋतुमत है, जिसे वरुण ने बनाया था। उस क्षेत्र में एक अत्यन्त सुन्दर सरोवर भी है। एक बार हाथियों का प्रमुख अपनी पत्नियों सहित उस सरोवर में जलविहार करने गया जिससे जलचरों में हलचल मच गई। इससे उस सरोवर के अत्यन्त बलशाली प्रमुख घड़ियाल ने तुरन्त ही

हाथी के पाँव पर आक्रमण कर दिया। इस तरह हाथी तथा घड़ियाल में महान्‌युद्ध छिड़ गया। यह युद्ध एक हजार वर्षों तक चलता रहा। उसमें न तो हाथी मरा, न घड़ियाल, किन्तु जल में रहने से धीरे-धीरे हाथी का बल घटने लगा और घड़ियाल का बल बढ़ता रहा। इससे घड़ियाल को अधिकाधिक प्रोत्साहन मिलता रहा। तब अपने को असहाय पाकर एवं अपनी रक्षा का अन्य साधन न देखकर हाथी ने भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण की।

श्रीशुक उवाच

आसीद्‌गिरिवरो राजंस्त्रिकूट इति विश्रुतः ।
क्षीरोदेनावृतः श्रीमान्योजनायुतमुच्छ्रितः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; आसीत्—था; गिरिवरः—विशाल पर्वत; राजन्—हे राजा; त्रि-कूटः—त्रिकूट; इति—इस प्रकार; विश्रुतः—विख्यात; क्षीर-उदेन—क्षीरसागर द्वारा; आवृतः—घिरा हुआ; श्रीमान्—अत्यन्त सुन्दर; योजन—आठ मील की नाप; अयुतम्—दस हजार; उच्छ्रितः—अत्यन्त उच्च।.

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजन्! त्रिकूट नाम का एक विशाल पर्वत है। यह दस हजार योजन (० हजार मील) ऊँचा है। चारों ओर से क्ष ीरसागर द्वारा घिरे होने के कारण इसकी स्थिति अत्यन्त रमणीक है।

तावता विस्तृतः पर्यक्त्रिभिः शृङ्गैः पयोनिधिम् ।
दिशः खं रोचयन्नास्ते रौप्यायसहिरण्मयैः ॥ २ ॥
अन्यैश्च ककुभः सर्वा रत्नधातुविचित्रितैः ।
नानाद्रुमलतागुल्मैर्निर्घोषैर्निर्झराम्भसाम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

तावता—उस प्रकार से; विस्तृतः—लम्बाई तथा चौड़ाई (० हजार मील) ; पर्यक्—चारों ओर; त्रिभिः—तीन; शृङ्गैः—चोटियों से; पयः-निधिम्—क्षीरसागर में एक द्वीप में स्थित; दिशः—सारी दिशाएँ; खम्—आकाश; रोचयन्—सुहावना; आस्ते—खड़ा हुआ; रौप्य—चाँदी; अयस—लोह; हिरण्मयैः—तथा सोने से बना; अन्यैः—अन्य चोटियों समेत; च—भी; ककुभः—दिशाएँ; सर्वाः—सभी; रत्न—रत्न; धातु—तथा खनिज से; विचित्रितैः—सुन्दर ढंग से अलंकृत; नाना—अनेक; द्रुम-लता—पौधे तथा लताओं; गुल्मैः—तथा झाड़ियों से; निर्घोषैः—ध्वनि से; निर्झर—झरने के; अम्भसाम्—जल की।.

पर्वत की लम्बाई तथा चौड़ाई समान (० हजार मील) है। इसकी तीन प्रमुख चोटियाँ, जो लोहे, चाँदी तथा सोने की बनी हैं, सारी दिशाओं एवं आकाश को सुन्दर बनाती हैं। पर्वत में अन्य चोटियाँ भी हैं, जो रत्नों तथा खनिजों से पूर्ण हैं और सुन्दर वृक्षों, लताओं एवं झाड़ियों से अलंकृत हैं। पर्वत के झरनों से जो ध्वनि उत्पन्न होती है, वह सुहावनी है। इस प्रकार यह पर्वत

सभी दिशाओं में सुन्दरता को बढ़ाते हुए खड़ा है।

स चावनिज्यमानाङ्घ्रिः समन्तात्पयऊर्मिभिः ।
करोति श्यामलां भूमिं हरिन्मरकताश्मभिः ॥ ४॥

शब्दार्थ

सः—वह पर्वत; च—भी; अवनिज्यमान-अङ्घ्रिः—जिसका चरण सदा प्रक्षालित होता है; समन्तात्—चारों ओर से; पयः-ऊर्मिभिः—दूध की लहरों से; करोति—बनाता है; श्यामलाम्—गहरा हरा; भूमिम्—भूमि को; हरित्—हरी; मरकत—मरकत मणि; अश्मभिः—पत्थरों से।.

पर्वत के पाद की भूमि सदैव दूध की लहरों से प्रक्षालित होती रहती है, जो आठों दिशाओं में (उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम तथा इनके बीच की दिशाओं में) मरकत मणियाँ उत्पन्न करती रहती है।

तात्पर्य : हमें *श्रीमद्भागवत* से पता चलता है कि समुद्र कई प्रकार के हैं। कहीं दूध का सागर है, कहीं सुरा का सागर, तो कहीं घृत, तेल या मीठे जल का सागर है। इस तरह इस ब्रह्माण्ड में नाना प्रकार के समुद्र हैं। आधुनिक विज्ञानी अपने सीमित ज्ञान के बल पर इन कथनों को चुनौती नहीं दे सकते; वे हमें किसी भी लोक के विषय में पूरी जानकारी नहीं दे सकते यहाँ तक कि जिस लोक में हम रह रहे हैं उसके विषय में भी। इस श्लोक से हम समझ सकते हैं कि यदि किन्हीं पर्वतों की घाटियाँ दुग्ध से प्रक्षालित हों तो उनमें मरकत मणियाँ उत्पन्न होती हैं। किसी में इतनी सामर्थ्य नहीं कि भगवान् द्वारा संचालित भौतिक प्रकृति के कार्यकलापों का अनुकरण कर सके।

सिद्धचारणगन्धर्वैर्विद्याधरमहोरगैः ।
किन्नरैरप्सरोभिश्च क्रीडद्भिर्जुष्टकन्दरः ॥ ५॥

शब्दार्थ

सिद्ध—सिद्ध लोक के वासी; चारण—चारणलोक के वासी; गन्धर्वैः—तथा गन्धर्वलोक के वासियों द्वारा; विद्याधर—विद्याधर लोक के वासी; महा-उरगैः—सर्पलोक के वासियों द्वारा; किन्नरैः—किन्नरों के द्वारा; अप्सरोभिः—अप्सराओं से; च—तथा; क्रीडद्भिः—खेलकूद में लगी; जुष्ट—विलास में लगे; कन्दरः—गुफाएँ।.

उच्चलोकों के वासी—सिद्ध, चारण, गन्धर्व, विद्याधर, उरग, किन्नर तथा अप्सराएँ—इस पर्वत में क्रीड़ा करने के लिए जाते हैं। इस तरह पर्वत की सारी गुफाएँ स्वर्गलोकों के निवासियों से भरी रहती हैं।

तात्पर्य : जिस प्रकार सामान्य लोग खारे (लवण) सागर में क्रीड़ा करते हैं उसी प्रकार उच्चलोकों

के निवासी क्षीर सागर में जाते हैं। वे क्षीरसागर में तैरते हैं और त्रिकूट पर्वत की गुफाओं में नाना प्रकार की क्रीड़ाओं का आनन्द लेते हैं।

यत्र सङ्गीतसन्नादैर्नदद्गुहममर्षया ।
अभिगर्जन्ति हरयः श्लाघिनः परशङ्कया ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

यत्र—उस (त्रिकूट) पर्वत में; सङ्गीत—गायन की; सन्नादैः—ध्वनि से; नदत्—प्रतिध्वनित; गुहम्—गुफाएँ; अमर्षया—असह्य क्रोध या ईर्ष्या के कारण; अभिगर्जन्ति—दहाड़ते हैं; हरयः—सिंह; श्लाघिनः—अपने बलपर अत्यन्त गर्वित; पर-शङ्कया—दूसरे सिंह की आशंका से।.

गुफाओं में स्वर्ग के निवासियों के गायन की गूँजती हुई ध्वनियों के कारण वहाँ के सिंह, जिन्हें अपनी शक्ति पर गर्व है, असह्य ईर्ष्या के कारण यह सोचकर गर्जना करते हैं कि वहाँ पर कोई अन्य सिंह वैसे ही दहाड़ रहा है।

तात्पर्य : उच्चतर लोकों में, न केवल विभिन्न प्रकार के मनुष्य ही हैं, अपितु सिंह तथा हाथी जैसे पशु भी हैं। वहाँ वृक्ष हैं और वहाँ की धरती मरकतों से बनी है। ऐसी है भगवान् की सृष्टि! इस प्रसंग में श्रील भक्ति विनोद ठाकुर का गीत है—*केशव! तुया जगत् विचित्र*—हे केशव! आपकी सृष्टि रंग-बिरंगी तथा नाना किस्मों से पूर्ण है। भूविज्ञानी, वनस्पतिविज्ञानी तथा अन्य तथाकथित विज्ञानी अन्य लोकों के विषय में मनोकल्पना करते हैं, किन्तु उनकी विविधताओं का अनुमान न लगा पाने के कारण वे झूठे ही यह कल्पना करते हैं कि इस लोक को छोड़कर अन्य सारे लोक शून्य, निर्जन तथा धूल से भरे हैं। इस तरह वे ब्रह्माण्ड में विद्यमान विभिन्न किस्मों का अनुमान तक न लगा सकने पर भी अपने ज्ञान से गर्वित रहते हैं और अपनी ही क्षमता वाले लोगों द्वारा विद्वान माने जाते हैं। जैसाकि *श्रीमद्भागवत* (२.३.१९) में कहा गया है—*श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः संस्तुतः पुरुषः पशुः*—भौतिकतावादी नेताओं की प्रशंसा कुत्ते, सुअर, ऊँट तथा गधे करते हैं, जो स्वयं भी बड़े पशु हैं। मनुष्य को बड़े पशु द्वारा प्रदत्त ज्ञान से संतुष्ट नहीं होना चाहिए। प्रत्युत उसे शुकदेव गोस्वामी जैसे सिद्ध पुरुष से ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। *महाजनो येन गतः स पन्थाः*—हमारा कर्तव्य है कि महाजनों के उपदेशों का पालन करें। महाजनों की संख्या बारह है और शुकदेव गोस्वामी उनमें से एक हैं (*भागवत* ६.३.२०)।

स्वयम्भूर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः ।

प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिर्वैयासकिर्वयम् ॥

वैयासकि ही शुकदेव गोस्वामी हैं। वे जो कुछ भी कहते हैं वह तथ्यात्मक है। यही पूर्ण ज्ञान है।

नानारण्यपशुव्रातसङ्कुलद्रोण्यलङ्कृतः ।
चित्रद्रुमसुरोद्यानकलकण्ठविहङ्गमः ॥ ७॥

शब्दार्थ

नाना—अनेक प्रकार के; अरण्य-पशु—जंगली जानवर; व्रात—झुंड; सङ्कुल—पूर्ण; द्रोणि—घाटियाँ; अलङ्कृतः—सुन्दर ढंग से सजायी गई; चित्र—किस्में; द्रुम—वृक्ष; सुर-उद्यान—देवताओं का बगीचा; कलकण्ठ—चहकती हुए; विहङ्गमः—पक्षी।.

त्रिकूट पर्वत के नीचे की घाटियाँ अनेक प्रकार के जंगली जानवरों से सुशोभित हैं और देवताओं के उद्यानों में जो वृक्ष हैं उन पर नाना प्रकार के पक्षी सुरीली तान से चहकते रहते हैं।

सरित्सरोभिरच्छोदैः पुलिनैर्मणिवालुकैः ।
देवस्त्रीमज्जनामोदसौरभाम्ब्वनिलैर्युतः ॥ ॥

शब्दार्थ

सरित्—नदियों; सरोभिः—तथा झीलों से; अच्छोदैः—निर्मल जल से पूर्ण; पुलिनैः—किनारे; मणि—छोट-छोटे रत्नों से; वालुकैः—बालू के कणों से मिलते-जुलते; देव-स्त्री—देवताओं की स्त्रियाँ; मज्जन—(जल में) स्नान द्वारा; आमोद—शारीरिक सुगंध; सौरभ—अत्यन्त सुगंधित; अम्बु—जल; अनिलैः—तथा वायु से; युतः—(त्रिकूट पर्वत के वातावरण से) समृद्ध।.

त्रिकूट पर्वत में अनेक नदियाँ तथा झीलें हैं जिनके किनारे बालू के कणों के सदृश छोटे-छोटे रत्नों से ढके हैं। उनका जल मणियों की भाँति निर्मल है। जब देवताओं की स्त्रियाँ उनमें स्नान करती हैं, तो उनके शरीरों से जल तथा पवन सुगन्धि ग्रहण कर लेते हैं जिससे वायुमण्डल और भी सुगन्धित हो जाता है।

तात्पर्य : इस भौतिक जगत में भी अनेक प्रकार के जीव हैं। पृथ्वी लोक के जीव सामान्यतया अपने शरीरों की दुर्गन्ध रोकने के लिए बाहर से सुगन्धित पदार्थ लगाते हैं, किन्तु यहाँ हम पाते हैं कि देवताओं की स्त्रियों की शारीरिक सुगंधि से नदियाँ, झीलें, वायु तथा त्रिकूट पर्वत का सारा वातावरण भी सुगंधित हो जाता है। चूँकि उच्चलोकों की स्त्रियों के शरीर अत्यन्त सुन्दर होते हैं अतएव हम सहज ही कल्पना कर सकते हैं कि वैकुण्ठ की स्त्रियों या वृन्दावन की गोपियों के शरीर कितने सुन्दर होंगे?

तस्य द्रोण्यां भगवतो वरुणस्य महात्मनः ।
उद्यानमृतुमन्नाम आक्रीडं सुरयोषिताम् ॥ ९॥
सर्वतोऽलङ्कृतं दिव्यैर्नित्यपुष्पफलद्रुमैः ।

मन्दारैः पारिजातैश्च पाटलाशोकचम्पकैः ॥ १० ॥

चूतैः पियालैः पनसैराम्रैराम्रातकैरपि ।
क्रमुकैर्नारिकेलैश्च खर्जूरैर्बीजपूरकैः ॥ ११ ॥

मधुकैः शालतालैश्च तमालैरसनार्जुनैः ।
अरिष्टोडुम्बरप्लक्षैर्वटैः किंशुकचन्दनैः ॥ १२ ॥

पिचुमर्दैः कोविदारैः सरलैः सुरदारुभिः ।
द्राक्षेक्षुरम्भाजम्बुभिर्बदर्यक्षाभयामलैः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उस पर्वत (त्रिकूट) की; द्रोण्याम्—घाटी में; भगवतः—महापुरुष; वरुणस्य—वरुण देव का; महा-आत्मनः—भगवान् का महान् भक्त; उद्यानम्—बगीचा; ऋतुमत्—ऋतुमत; नाम—नामक; आक्रीडम्—आमोद-प्रमोद का स्थान; सुर-योषिताम्—देवताओं की स्त्रियों के; सर्वतः—सर्वत्र; अलङ्कृतम्—सुन्दर ढंग से सजाया हुआ; दिव्यैः—देवताओं से सम्बन्धित; नित्य—सदैव; पुष्प—फूलों; फल—तथा फलों के; द्रुमैः—वृक्षों से; मन्दारैः—मन्दार से; पारिजातैः—पारिजात से; च—भी; पाटल—पाटल; अशोक—अशोक; चम्पकैः—चम्पा से; चूतैः—आम के विशेष फलों से; पियालैः—पियाल फलों से; पनसैः—पनस फल से; आम्रैः—आमों से; आम्रातकैः—आम्रातक नामक खट्टे फलों से; अपि—भी; क्रमुकैः—क्रमुक फलों से; नारिकेलैः—नारियल वृक्षों से; च—तथा; खर्जूरैः—खजूर के वृक्षों से; बीजपूरकैः—अनारों से; मधुकैः—मधुक फलों से; शाल-तालैः—ताड़ फलों से; च—तथा; तमालैः—तमाल वृक्षों से; असन—असन वृक्ष; अर्जुनैः—अर्जुन वृक्षों से; अरिष्ट—अरिष्ट फलों से; उडुम्बर—उडुम्बर का बड़ा वृक्ष; प्लक्षैः—प्लक्ष वृक्ष से; वटैः—बरगद के पेड़ से; किंशुक—गंधविहीन लाल फूलों से; चन्दनैः—चंदन के वृक्षों से; पिचुमर्दैः—पिचुमर्द फूलों से; कोविदारैः—कोविदार फलों से; सरलैः—सरल वृक्षों से; सुर-दारुभिः—सुर-दारु वृक्षों से; द्राक्षा—अंगूर; इक्षुः—गन्ना; रम्भा—केला; जम्बुभिः—जम्बु फलों से; बदरी—बदरी फल; अक्ष—अक्ष फल; अभय—अभय फल; आमलैः—आमलकी या आँवलों के फलों से।

त्रिकूट पर्वत की घाटी में ऋतुमत् नामक उद्यान था। यह उद्यान महान् भक्त वरुण का था और यह देवांगनाओं का क्रीड़ास्थल था। यहाँ सभी ऋतुओं में फूल-फल उगते रहते थे। इनमें से मन्दार, पारिजात, पाटल, अशोक, चम्पक, आम्रविशेष (चूत), पियाल, पनस, आम, आम्रातक, क्रमुक, नारियल, खजूर तथा अनार मुख्य थे। वहाँ पर मधुक, ताड़, तमाल, असन, अर्जुन, अरिष्ट, उडुम्बर, प्लक्ष, बरगद, किंशुक तथा चन्दन के वृक्ष थे। वहाँ पर पिचुमर्द, कोविदार, सरल, सुरदारु, अंगूर, गन्ना, केला, जम्बु, बदरी, अक्ष, अभय तथा आमलकी भी थे।

बिल्वैः कपित्थैर्जम्बीरैर्वृतो भल्लातकादिभिः ।
तस्मिन्सरः सुविपुलं लसत्काञ्चनपङ्कजम् ॥ १४ ॥

कुमुदोत्पलकह्लारशतपत्रश्रियोर्जितम् ।
मत्तषट्पदनिर्घुष्टं शकुन्तैश्च कलस्वनैः ॥ १५ ॥

हंसकारण्डवाकीर्णं चक्राह्वैः सारसैरपि ।
जलकुक्कुटकोयष्टिदात्यूहकुलकूजितम् ॥ १६ ॥

मत्स्यकच्छपसञ्चारचलत्पद्मरजःपयः ।
कदम्बवेतसनलनीपवञ्जुलकैर्वृतम् ॥ १७ ॥

कुन्दैः कुरुबकाशोकैः शिरीषैः कूटजेङ्गुदैः ।
कुब्जकैः स्वर्णयूथीभिर्नागपुन्नागजातिभिः ॥ १ ॥
मल्लिकाशतपत्रैश्च माधवीजालकादिभिः ।
शोभितं तीरजैश्चान्यैर्नित्यर्तुभिरलं द्रुमैः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

बिल्वैः—बिल्व वृक्ष; कपित्थैः—कपित्थ वृक्ष; जम्बीरैः—जम्बीर वृक्षों से; वृतः—घिरा हुआ; भल्लातक-आदिभिः—भल्लातक आदि वृक्षों से; तस्मिन्—उस उद्यान में; सरः—झील; सु-विपुलम्—अत्यन्त विशाल; लसत्—चमकीली; काञ्चन—सुनहरी; पङ्क-जम्—कमलों से पूर्ण; कुमुद—कुमुद पुष्पों का; उत्पल—उत्पल फूल; कह्लार—कह्लार फूल; शतपत्र—तथा शत्रपत्र के फूल; श्रिया—सौन्दर्य सहित; ऊर्जितम्—श्रेष्ठ; मत्त—नशेमें; षट्-पद—भौंरे; निर्घुष्टम्—गुनगुनाते; शकुन्तैः—पक्षियों की चहचहाहट से; च—तथा; कल-स्वनैः—मीठे गानों से; हंस—हंस; कारण्डव—कारण्डव; आकीर्णम्—झुंड में; चक्राह्वैः—चक्रावकों के साथ; सारसैः—सारसों से; अपि—भी; जलकुक्कुट—जल मुर्गाबी; कोयष्टि—कोयष्टि; दात्यूह—दात्यूह; कुल—झुंड; कूजितम्—कूजन करते; मत्स्य—मछली; कच्छप—तथा कछुवों का; सञ्चार—गति करने से; चलत्—विक्षुब्ध; पद्म—कमलों के; रजः—परागकण से; पयः—जल (अलंकृत था); कदम्ब—कदम्ब; वेतस—बेंत; नल—नल, नरकट; नीप—नीप; वञ्जुलकैः—वंजुलक से; वृतम्—घिरा हुआ; कुन्दैः—कुंदों से; कुरुबक—कुरुबक; अशोकैः—अशोक से; शिरीषैः—शिरीष से; कूटज-—कुटज; इङ्गुदैः—इंगुद से; कुब्जकैः—कुब्जक से; स्वर्ण-यूथीभिः—स्वर्णयूथी से; नाग—नाग; पुन्नाग—पुन्नाग; जातिभिः—जाति से; मल्लिका—मल्लिका; शतपत्रैः—शतपत्रों से; च—भी; माधवी—माधवी; जालकादिभिः—जालका आदि से; शोभितम्—अलंकृत; तीरजैः—किनारे पर उगे हुए; च—तथा; अन्यैः—अन्य; नित्य-ऋतुभिः—सभी ऋतुओं में; अलम्—प्रचुर मात्रा में; द्रुमैः—वृक्षों से (फल-फूल से लदे)।

उस उद्यान में एक विशाल सरोवर था, जो चमकीले सुनहरे कमल के फूलों से तथा कुमुद, कह्लार, उत्पल एवं शतपत्र फूलों से भरा था जिनसे पर्वत की सुन्दरता में वृद्धि हो रही थी। उस उद्यान में बिल्व, कपित्थ, जम्बीर तथा भल्लातक वृक्ष भी थे। मदमत्त भौंरें मधुपान कर रहे थे और अत्यन्त मधुर ध्वनि में गान करने वाले पक्षियों की चहचहाहट के साथ वे भी गुनगुना रहे थे। सरोवर में हंसों, कारण्डवों, चक्रावकों, सारसों, जलमुर्गियों, दात्यूहों, कोयष्टियों तथा अन्य चहचहाते पक्षियों के झुंड के झुंड थे। मछलियों तथा कछुवों के इधर-उधर तेजी से गति करने से कमल के फूलों से जो परागकण गिरे थे उनसे जल सुशोभित था। सरोवर के चारों ओर कदम्ब, वेतस, नल, नीप, वञ्जुलक, कुन्द, कुरुबक, अशोक, शिरीष, कूटज, इंगुद, कुब्जक, स्वर्णयूथी, नाग, पुन्नाग, जाति, मल्लिका, शतपत्र, जालका तथा माधवी लताएँ थीं। सरोवर के तट ऐसे वृक्षों से भलीभान्ति अलंकृत थे, जो सभी ऋतुओं में फूल तथा फल देने वाले थे। इस तरह पूरा पर्वत भव्य रूप से सजा हुआ था।

तात्पर्य : त्रिकूट पर्वत की नदियों तथा सरोवरों के ऐसे विशद वर्णन से यह निर्णय निकलता है कि पृथ्वी पर ऐसे अति-सौन्दर्य की कोई तुलना नहीं हो सकती। किन्तु अन्य लोकों में ऐसे अनेक आश्चर्य हैं। उदाहरणार्थ, हमें ज्ञात होता है कि वहाँ बीस लाख किस्म के वृक्ष हैं, किन्तु ये सभी पृथ्वी पर नहीं

पाये जाते। *श्रीमद्भागवत* ब्रह्माण्ड की सारी बातों का पूरा-पूरा ज्ञान प्रदान करता है। इसमें न केवल इस ब्रह्माण्ड का वर्णन मिलता है, अपितु इसके परे आध्यात्मिक जगत का भी विवरण दिया गया है। कोई भी व्यक्ति *श्रीमद्भागवत* में वर्णित भौतिक तथा आध्यात्मिक जगतों के इन वर्णनों को चुनौती नहीं दे सकता। पृथ्वी से चन्द्रमा तक जाने के प्रयास असफल हो चुके हैं, किन्तु पृथ्वी के लोग यह समझ सकते हैं कि अन्य लोकों में क्या-क्या विद्यमान है। इसके लिए किसी कल्पना की आवश्यकता नहीं है, कोई भी व्यक्ति *श्रीमद्भागवत* से वास्तविक ज्ञान ग्रहण करके संतुष्ट हो सकता है।

तत्रैकदा तद्गिरिकाननाश्रयः
करेणुभिर्वारणयूथपश्चरन् ।
सकण्टकं कीचकवेणुवेत्रवद्
विशालगुल्मं प्ररुजन्वनस्पतीन् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ पर; एकदा—एक बार; तत्-गिरि—उस पर्वत (त्रिकूट) के; कानन-आश्रयः—जंगल में रहने वाला; करेणुभिः—हथिनियों के साथ; वारण-यूथ-पः—हाथियों का अगुवा; चरन्—विचरण करते (सरोवर की ओर); स-कण्टकम्—काँटों से भरा स्थान; कीचक-वेणु-वेत्र-वत्—विभिन्न नामों वाले पौधों तथा लताओं से युक्त; विशाल-गुल्मम्—अनेक जंगल; प्ररुजन्—तोड़ते हुए; वनः-पतीन्—वृक्षों और पौधों को।

एक बार हाथियों का अगुवा (प्रमुख), जो त्रिकूट पर्वत के जंगल में रह रहा था, अपनी हथिनियों के साथ सरोवर की ओर घूमने निकला। उसने अनेक पौधों, लताओं तथा गुल्मों को उनके चुभने वाले काँटों की परवाह न करते हुए नष्ट-भ्रष्ट कर डाला।

यद्गन्धमात्राद्धरयो गजेन्द्रा
व्याघ्रादयो व्यालमृगाः सखड्गाः ।
महोरगाश्चापि भयाद्द्रवन्ति
सगौरकृष्णाः सरभाश्चमर्यः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

यत्-गन्ध-मात्रात्—उस हाथी की गन्ध से ही; हरयः—सिंह; गज-इन्द्राः—अन्य हाथी; व्याघ्र-आदयः—बाघ जैसे हिंस्त्र पशु; व्याल-मृगाः—अन्य हिंस्त्र पशु; सखड्गाः—गैंडे; महा-उरगाः—बड़े-बड़े सर्प; च—भी; अपि—निस्सन्देह; भयात्—डर से; द्रवन्ति—भाग रहे थे; स—सहित; गौर-कृष्णाः—उनमें से कुछ श्वेत और कुछ काले; सरभाः—सरभ; चमर्यः—तथा चमरी भी।

उस हाथी की सुगंध पाकर ही सारे अन्य हाथी, बाघ तथा अन्य हिंस्त्र पशु—यथा सिंह, गैंडे, सर्प एवं सफेद-काले सरभ—भय से भाग गये। यहाँ तक कि चमरी हिरन भी भाग निकले।

वृका वराहा महिषर्क्षशल्या
गोपुच्छशालावृकमर्कटाश्च ।
अन्यत्र क्षुद्रा हरिणाः शशादय-
श्चरन्त्यभीता यदनुग्रहेण ॥ २२॥

शब्दार्थ

वृकाः—लोमड़ियाँ; वराहाः—भालू; महिष—भैंसा; ऋक्ष—रीछ; शल्याः—सेही; गोपुच्छ—एक प्रकार का हिरन; शालावृक—भेड़िए; मर्कटाः—बन्दर; च—और; अन्यत्र—और कहीं; क्षुद्राः—छोटे पशु; हरिणाः—हिरन; शश-आदयः—खरगोश इत्यादि; चरन्ति—(जंगल में) इधर-उधर घूमते हैं; अभीताः—निर्भय; यत्-अनुग्रहेण—उस हाथी की कृपा से।

इस हाथी की कृपा से लोमड़ी, भेड़िया, भैंसें, भालू, सुअर, गोपुच्छ, सेही, बन्दर, खरहे, हिरन तथा अन्य छोटे पशु जंगल में सर्वत्र विचरण करते रहते थे। वे उससे भयभीत नहीं थे।

तात्पर्य : लगभग सभी पशु इसी हाथी से नियंत्रित थे। फिर भी, यद्यपि वे भयरहित होकर विचरण कर सकते थे, किन्तु सम्मान के कारण वे उसके समक्ष खड़े नहीं रहते थे।

स घर्मतप्तः करिभिः करेणुभि-
र्वृतो मदच्युत्करभैरनुद्रुतः ।
गिरिं गरिम्णा परितः प्रकम्पयन्
निषेव्यमाणोऽलिकुलैर्मदाशनैः ॥ २३॥
सरोऽनिलं पङ्कजरेणुरूषितं
जिघ्रन्विदूरान्मदविह्वलेक्षणः ।
वृतः स्वयूथेन तृषार्दितेन तत्
सरोवराभ्यासमथागमद्द्रुतम् ॥ २४॥

शब्दार्थ

सः—वह (हाथियों का सरदार); घर्म-तप्तः—पसीने से तर; करिभिः—अन्य हाथियों से; करेणुभिः—तथा हथिनियों से; वृतः—घिरा हुआ; मद-च्युत्—मुँह से लार चुवाता; करभैः—हाथी के बच्चों द्वारा; अनुद्रुतः—पीछे-पीछे चलते हुए; गिरिम्—उस पर्वत को; गरिम्णा—शरीर के भार से; परितः—चारों ओर; प्रकम्पयन्—हिलाते हुए; निषेव्यमाणः—सेवित होकर; अलिकुलैः—भौंरों के झुंड द्वारा; मद-अशनैः—शहद पिये हुए; सरः—सरोवर या झील से; अनिलम्—मन्द वायु; पङ्कज-रेणु-रूषितम्—कमल फूलों से रज ले जाता हुआ; जिघ्रन्—सूँघते हुए; विदूरात्—दूर से; मद-विह्वल—मदग्रस्त होकर; ईक्षणः—चितवन; वृतः—घिरा हुआ; स्व-यूथेन—अपने ही संगियों से; तृषार्दितेन—प्यास से पीड़ित; तत्—उस; सरोवर-अभ्यासम्—सरोवर के किनारे तक; अथ—इस प्रकार; अगमत्—गया; द्रुतम्—तुरन्त।

वह हाथियों का राजा गजपति झुंड के अन्य हाथियों तथा हथिनियों से घिरा था और उसके पीछे-पीछे हाथी के बच्चे चल रहे थे। वह अपने शरीर के भार से त्रिकूट पर्वत को चारों ओर से हिला रहा था। उसके पसीना छूट रहा था, उसके मुँह से मद की लार टपक रही थी और उसकी दृष्टिमद से भरी थी। मधु पी-पीकर भौंरें उसकी सेवा कर रहे थे और वह दूर से ही उन कमल फूलों के रजकणों की सुगंध का अनुभव कर रहा था, जो मन्द पवन द्वारा उस सरोवर से ले जाई

जा रही थी। इस प्रकार प्यास से पीड़ित अपने साथियों से घिरा वह गजपति तुरन्त सरोवर के तट पर आया।

विगाह्य तस्मिन्नमृताम्बु निर्मलं
हेमारविन्दोत्पलरेणुरूषितम् ।
पपौ निकामं निजपुष्करोद्धृत-
मात्मानमद्भिः स्नपयन्गतक्लमः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

विगाह्य—घुस कर; तस्मिन्—उस सरोवर में; अमृत-अम्बु—अमृत के समान स्वच्छ जल; निर्मलम्—अत्यन्त विमल; हेम—अत्यन्त शीतल; अरविन्द-उत्पल—कुमुदिनियों तथा कमलों से; रेणु—धूल से; रूषितम्—मिश्रित; पपौ—पिया; निकामम्—पूर्णतया सन्तुष्ट होने तक; निज—अपनी; पुष्कर-उद्धृतम्—सूँड़ से खींच कर; आत्मानम्—अपने आप; अद्भिः—जल से; स्नपयन्—पूरी तरह स्नान करते हुए; गत-क्लमः—थकान से मुक्त हुआ।

वह हाथियों का राजा (गजपति गजेन्द्र) सरोवर में घुस गया, पूरी तरह नहाया और अपनी थकान से मुक्त हो गया। तब उसने अपनी सूँड़ से जी भरकर शीतल, स्वच्छ अमृततुल्य जल पिया जो कमलपुष्पों तथा जल कुमुदिनियों की रज से मिश्रित था।

स पुष्करेणोद्धृतशीकराम्बुभि-
र्निपाययन्संस्नपयन्यथा गृही ।
घृणी करेणुः करभांश्च दुर्मदो
नाचष्ट कृच्छ्रं कृपणोऽजमायया ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (गजराज); पुष्करेण—अपनी सूँड़ से; उद्धृत—खींचकर; शीकर-अम्बुभिः—तथा जल छिड़क कर; निपाययन्—उन्हें पिलाकर; संस्नपयन्—तथा उन्हें नहला कर; यथा—जिस प्रकार; गृही—गृहस्थ; घृणी—सदैव (अपने परिवार वालों पर) दयालु; करेणुः—हथिनियों को; करभान्—बच्चों को; च—तथा; दुर्मदः—अपने परिवार वालों से अत्यधिक आसक्त; न—नहीं; आचष्ट—विचार किया; कृच्छ्रम्—कठिनाई से; कृपणः—आध्यात्मिक ज्ञान से रहित; अज-मायया—भगवान् की माया के प्रभाव से।

आध्यात्मिक ज्ञान से विहीन एवं अपने परिवार वालों के प्रति अत्यधिक आसक्त मनुष्य की भाँति उस हाथी ने कृष्ण की बहिरंगा शक्ति (माया) द्वारा मोहित होकर अपनी पत्नी तथा बच्चों को स्नान कराया और पानी पिलाया। उसने अपनी सूंड़ में सरोवर का पानी भरकर उन सबके ऊपर छिड़का। उसने इस प्रयास में लगने वाले कठिन श्रम की परवाह नहीं की।

तं तत्र कश्चिन्नृप दैवचोदितो

ग्राहो बलीयांश्चरणे रुषाग्रहीत् ।
यदृच्छयैवं व्यसनं गतो गजो
यथाबलं सोऽतिबलो विचक्रमे ॥ २७॥

शब्दार्थ

तम्—उसको (गजेन्द्र को); तत्र—वहाँ (जल में); कश्चित्—कोई; नृप—हे राजा; दैव-चोदितः—भाग्य द्वारा प्रेरित; ग्राहः—घड़ियाल; बलीयान्—अत्यन्त शक्तिशाली; चरणे—उसका पाँव; रुषा—क्रुद्ध होकर; अग्रहीत्—पकड़ लिया; यदृच्छया—भाग्य से होने वाली; एवम्—ऐसी; व्यसनम्—खतरनाक परिस्थिति; गतः—प्राप्त करके; गजः—हाथी ने; यथा-बलम्—अपनी शक्ति के अनुसार; सः—वह; अति-बलः—अत्यधिक प्रयास से; विचक्रमे—बाहर निकलने का प्रयत्न किया।

हे राजा! भाग्यवश एक बलिष्ठ घड़ियाल ने, जो हाथी पर क्रुद्ध था, जल के भीतर से ही हाथी के पैर पर आक्रमण कर दिया। हाथी निश्चय ही बलवान् था और उसने भाग्य द्वारा प्रेषित इस संकट से अपनी शक्ति भर अपने को छुड़ाने का प्रयत्न किया।

तथातुरं यूथपतिं करेणवो
विकृष्यमाणं तरसा बलीयसा ।
विचुक्रुशुर्दीनधियोऽपरे गजाः
पार्ष्णिग्रहास्तारयितुं न चाशकन् ॥ २॥

शब्दार्थ

तथा—तब; आतुरम्—उस विकट स्थिति में; यूथ-पतिम्—हाथियों के सरदार को; करेणवः—उसकी पत्नियाँ; विकृष्यमाणम्—आक्रमण किया जाकर; तरसा—बल से; बलीयसा—बल से (घड़ियाल के); विचुक्रुशुः—चिंग्घाड़ने लगीं; दीन-धियः—अल्पज्ञ; अपरे—दूसरे; गजाः—हाथी; पार्ष्णि-ग्रहाः—पीछे से पकड़ कर; तारयितुम्—मुक्त कराने के लिए; न—नहीं; च—भी; अशकन्—असमर्थ थे।

तत्पश्चात् गजेन्द्र को उस विकट स्थिति में देखकर उसकी पत्नियाँ अत्यधिक दुखी हुईं और चिंग्घाड़ने लगीं। दूसरे हाथियों ने गजेन्द्र की सहायता करनी चाही, किन्तु घड़ियाल की विपुल शक्ति के कारण वे उसे पीछे से पकड़कर उसको नहीं बचा सके।

नियुध्यतोरेवमिभेन्द्रनक्रयोर्
विकर्षतोरन्तरतो बहिर्मिथः ।
समाः सहस्रं व्यगमन्महीपते
सप्राणयोश्चित्रममंसतामराः ॥ २९॥

शब्दार्थ

नियुध्यतोः—लड़ते हुए; एवम्—इस प्रकार; इभ-इन्द्र—हाथी; नक्रयोः—तथा घड़ियाल का; विकर्षतोः—खींचना; अन्तरतः—जल के भीतर; बहिः—जल के बाहर; मिथः—एक दूसरे; समाः—वर्ष; सहस्रम्—एक हजार; व्यगमन्—बीत गये; मही-पते—हे राजा; स-प्राणयोः—दोनों जीवित; चित्रम्—आश्चर्यजनक; अमंसत—विचार किया; अमराः—देवताओं ने।

हे राजा! इस तरह हाथी तथा घड़ियाल जल के बाहर तथा जल के भीतर एक दूसरे को घसीट कर एक हजार वर्षों तक लड़ते रहे। इस लड़ाई को देखकर देवतागण अत्यन्त चकित थे।

ततो गजेन्द्रस्य मनोबलौजसां
कालेन दीर्घेण महानभूद्व्ययः ।
विकृष्यमाणस्य जलेऽवसीदतो
विपर्ययोऽभूत्सकलं जलौकसः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; गज-इन्द्रस्य—हाथियों के राजा का; मनः—उत्साहबल का; बल—शारीरिक शक्ति; ओजसाम्—तथा इन्द्रियों का बल; कालेन—वर्षों से लड़ते रहने से; दीर्घेण—दीर्घकालीन; महान्—महान्; अभूत्—गई; व्ययः—चुक; विकृष्यमाणस्य—(घड़ियाल द्वारा) खींचा जाने वाला; जले—जल में; अवसीदतः—घट गई (मानसिक, शारीरिक तथा ऐन्द्रिय शक्ति); विपर्ययः—विपरीत; अभूत्—हो गया; सकलम्—सभी; जल-ओकसः—घड़ियाल, जिसका घर जल है।

तत्पश्चात् जल के भीतर खींचे जाने तथा दीर्घकाल तक लड़ते रहने के कारण हाथी की मानसिक, शारीरिक तथा ऐन्द्रिय शक्ति घटने लगी। इसके विपरीत जल का पशु होने के कारण घड़ियाल का उत्साह, उसकी शारीरिक शक्ति तथा ऐन्द्रिय शक्ति बढ़ती रही।

तात्पर्य : हाथी तथा घड़ियाल की लड़ाई में अन्तर यह था कि हाथी अत्यन्त शक्तिशाली होते हुए भी पराये स्थान अर्थात् जल में था। एक हजार वर्षों की लड़ाई के दौरान उसे कोई भोजन नहीं मिल पाया जिससे उसकी शारीरिक शक्ति क्षीण होने लगी। उसकी शारीरिक शक्ति क्षीण होने से मन भी कमजोर पड़ने लगा और उसकी इन्द्रियाँ शिथिल पड़ गईं। किन्तु घड़ियाल तो जल का प्राणी ठहरा। उसे किसी तरह की कठिनाई नहीं हुई। उसे भोजन प्राप्त होता रहा जिससे उसे मानसिक शक्ति तथा ऐन्द्रिय प्रोत्साहन मिल रहा था। इस प्रकार जहाँ हाथी का बल घटता गया वहाँ घड़ियाल अधिकाधिक बलशाली बनता गया। अब हम इससे यह शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं कि माया से लड़ाई लड़ने में हम ऐसी स्थिति में न पड़ें जिस से कि हमारा बल, उत्साह तथा इन्द्रियाँ शक्तिपूर्वक लड़ने में असमर्थ हो जाँए। हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन ने सचमुच माया के विरुद्ध युद्ध ठान लिया है, जिसमें सारे जीव सभ्यता की झूठी मानसिकता लेकर सड़ रहे हैं। इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सिपाहियों में सदा शारीरिक शक्ति, उत्साह तथा ऐन्द्रिय शक्ति रहनी चाहिए। स्वस्थ रहने के लिए उन्हें अपने को सामान्य दशा में रखना चाहिए। सामान्य दशा हर एक के लिए एक सी नहीं होती; अतएव वर्णाश्रम विभाग बनाए गए हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास। विशेषतया इस कलियुग में संन्यास लेने की सलाह नहीं दी जाती है—

अश्वमेधं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम्।

देवरेण सुतोत्पत्तिं कलौ पञ्च विवर्जयेत॥

(*ब्रह्मवैवर्त पुराण*)

इससे हम समझ सकते हैं कि इस युग में *संन्यास* आश्रम इसलिए वर्जित हैं क्योंकि लोग बलवान् नहीं हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु ने चौबीस वर्ष की आयु में संन्यास लेकर आदर्श प्रस्तुत किया है, लेकिन सार्वभौम भट्टाचार्य तक ने श्री चैतन्य महाप्रभु को सतर्क रहने की सलाह दी थी क्योंकि उन्होंने कम उम्र में संन्यास ले लिया था। हम प्रचार करने के लिए तरुण बालकों को संन्यास प्रदान करते हैं, किन्तु ऐसा अनुभव किया जा रहा है कि वे संन्यास ग्रहण करने के योग्य नहीं हैं। इसमें कोई हानि नहीं है यदि कोई यह सोचे कि वह संन्यास के योग्य नहीं है; किन्तु यदि वे काम-भोग से सदैव विचलित होते हों तो उन्हें ऐसे आश्रम में जाना चाहिए जिसमें काम-भोग की छूट हो अर्थात् वे गृहस्थ आश्रम में जाँए। यदि कोई एक स्थान में अशक्त जान पड़े तो इसका अर्थ यह नहीं होता कि वह घड़ियाल रूपी माया से लड़ना बन्द कर दे। हमें कृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण करनी चाहिए जैसाकि गजेन्द्र ने किया था। उसी के साथ वह गृहस्थ भी बना रह सकता है यदि वह काम-भोग में लिप्त रहने से संतुष्ट है। लड़ाई बन्द करने की आवश्यकता नहीं है। अतएव श्री चैतन्य महाप्रभुने संस्तुति की है—*स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभिः।* कोई अपने अनुकूल किसी भी आश्रम में रह सकता है; संन्यास ग्रहण करना अनिवार्य नहीं है। यदि उसका मन काम-भोग से चलायमान रहता है, तो वह गृहस्थ आश्रम में प्रवेश कर सकता है। लेकिन उसे लड़ाई जारी रखनी चाहिए। जो दिव्य पद को प्राप्त नहीं है उसके लिए कृत्रिम रूप से संन्यास ग्रहण करना कोई श्रेय की बात नहीं है। यदि संन्यास उपयुक्त नहीं है, तो वह गृहस्थ आश्रम में प्रविष्ट होकर माया के विरुद्ध बलपूर्वक लड़ सकता है। लेकिन उसे लड़ाई बन्द करके भागना नहीं चाहिए।

इत्थं गजेन्द्रः स यदाप सङ्कटं
प्राणस्य देही विवशो यदृच्छया ।
अपारयन्नात्मविमोक्षणे चिरं
दध्याविमां बुद्धिमथाभ्यपद्यत ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

इत्थम्—इस प्रकार से; गज-इन्द्रः—हाथियों के राजा ने; सः—उस; यदा—जब; आप—प्राप्त की; सङ्कटम्—ऐसी भयानक स्थिति; प्राणस्य—जीवन की; देही—देहधारी; विवशः—परिस्थितिवश असहाय; यदृच्छया—दैव की इच्छा से; अपारयन्—

असमर्थ होकर; आत्म-विमोक्षणे—अपनी रक्षा करने में; चिरम्—दीर्घकाल तक; दध्यौ—गम्भीरतापूर्वक सोचने लगा; इमाम्—यह; बुद्धिम्—निर्णय; अथ—तत्पश्चात्; अभ्यपद्यत—प्राप्त हुआ, पहुँचा।

जब गजेन्द्र ने देखा कि वह दैवी इच्छा से घड़ियाल के चंगुल में है और बंधन में फंसकर परिस्थितिवश असहाय है एवं अपने को संकट से नहीं उबार सकता तो वह मारे जाने से अत्यन्त भयभीत हो उठा। फलस्वरूप उसने दीर्घकाल तक सोचा और अन्ततोगत्वा वह इस निर्णय पर पहुँचा।

तात्पर्य : प्रत्येक प्राणी इस भौतिक जगत में जीवन-संघर्ष में लगा है। प्रत्येक प्राणी अपने को संकट से बचाना चाहता है, किन्तु जब वह अपने को नहीं बचा पाता और यदि वह पवित्र है, तो वह भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण करता है। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (७.१६) में हुई है—

चतुर्विधा भजन्ते मां जना: सुकृतिनोऽर्जुन।

आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

चार प्रकार के पवित्र व्यक्ति—जो संकट में हों, जिन्हें धन की आवश्यकता हो, जो ज्ञान की खोज में हों तथा जो जिज्ञासु हों—अपनी रक्षा के लिए या प्रगति करने के लिए भगवान् की शरण ग्रहण करते हैं। गजेन्द्र ने इस संकट की घड़ी में भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण करने का निर्णय लिया। पर्याप्त विचार करने के बाद ही वह इस सही निर्णय पर पहुँचा था। ऐसा निर्णय पापी व्यक्ति नहीं ले पाता। अतएव *भगवद्गीता* में कहा गया है कि जो पवित्र (सुकृती) हों वे यह निर्णय ले सकते हैं कि संकट या विषम परिस्थिति में मनुष्य को कृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण करनी चाहिए।

न मामिमे ज्ञातय आतुरं गजा:
कुत: करिण्य: प्रभवन्ति मोचितुम् ।
ग्राहेण पाशेन विधातुरावृतो-
ऽप्यहं च तं यामि परं परायणम् ॥ ३२॥

शब्दार्थ

न—नहीं; माम्—मुझको; इमे—ये सब; ज्ञातय:—मित्र तथा सम्बन्धी (अन्य हाथी); आतुरम्—मेरे दुख में; गजा:—हाथी; कुत:—कैसे; करिण्य:—मेरी पत्नियाँ; प्रभवन्ति—समर्थ हैं; मोचितुम्—(इस संकटमय स्थिति से) उद्धार करने में; ग्राहेण—घड़ियाल से; पाशेन—फन्दे से; विधातु:—भाग्य के; आवृत:—बन्दी; अपि—यद्यपि (मैं ऐसी स्थिति में हूँ); अहम्—मैं; च—भी; तम्—उस (भगवान्) की; यामि—शरण में जाता हूँ; परम्—जो दिव्य हैं; परायणम्—जो ब्रह्मा तथा शिव जैसे सम्मानित देवताओं की भी शरण हैं।

जब मेरे मित्र तथा अन्य सम्बन्धी हाथी मुझे इस संकट से नहीं उबार सके तो मेरी पत्नियों

का तो कहना ही क्या? वे कुछ नहीं कर सकतीं। यह दैवी इच्छा थी कि इस घड़ियाल ने मुझ पर आक्रमण किया है, अतएव मैं उन भगवान् की शरण में जाता हूँ जो हर एक को, यहाँ तक कि महापुरुषों को भी, सदैव शरण प्रदान करते हैं।

तात्पर्य : यह संसार *पदं पदं यद्विपदाम्* रूप में वर्णित है, जिसका अर्थ है कि इसमें पग-पग पर संकट है। मूर्ख झूठे ही सोचता है कि वह इस भौतिक जगत में सुखी है, लेकिन वास्तव में वह सुखी रहता नहीं क्योंकि जो ऐसा सोचता है, वह मोहग्रस्त है। इसमें पग-पग पर और हर क्षण संकट है। आधुनिक सभ्यता में मनुष्य सोचता है कि यदि उसके पास सुन्दर मकान और सुन्दर कार हो तो उसका जीवन पूर्ण है। पाश्चात्य जगत में, विशेषतया अमरीका में, अच्छी कार रखना उत्तम बात है, किन्तु ज्योंही वह सड़क पर कार चलाता है, तो उसे संकट बना रहता है क्योंकि वह किसी भी क्षण दुर्घटना में मर सकता है। आँकड़े बताते हैं कि ऐसी दुर्घटनाओं में अनेक लोग मरते रहते हैं। अतएव यदि हम वास्तव में यह सोचते हैं कि यह संसार अत्यन्त सुखमय स्थान है, तो यह हमारा अज्ञान है। असली ज्ञान यह है कि यह भौतिक जगत संकट से पूर्ण है। हम वहीं तक जीवन-संघर्ष कर सकते हैं जहाँ तक हमारी बुद्धि काम करती है और इस तरह अपनी सुरक्षा करने का प्रयास कर सकते हैं, किन्तु जब तक भगवान् कृष्ण हमें अन्ततः संकट से बचा नहीं लेते तब तक हमारे प्रयास व्यर्थ रहेंगे। अतएव प्रह्लाद महाराज कहते हैं (*भागवत* ७.९.१९)—

बालस्य नेह शरणं पितरौ नृसिंह

नार्तस्य चागदम् उदन्वति मज्जतो नौः।

तप्तस्य तत्प्रतिविधिर्य इहाञ्जसेष्टस्

तावद् विभो तनुभृतां त्वदुपेक्षितानाम्॥

भले ही हम सुखी रहने या इस भौतिक जगत के संकटों का सामना करने के लिए कितने ही साधन क्यों न ढूँढ लें, किन्तु जब तक हमारे प्रयासों को भगवान् से पुष्टि नहीं मिल जाती, वे हमें कभी सुखी नहीं बना पाएँगे। जो लोग भगवान् की शरण लिए बिना सुखी रहने का प्रयास करते हैं, वे मूढ़ हैं। *न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।* अधम लोग कृष्णभावनामृत ग्रहण करने से मना कर देते हैं क्योंकि वे सोचते हैं कि कृष्ण की रक्षा के बिना ही वे अपनी रक्षा कर लेंगे। यह उनकी भूल है।

गजेन्द्र का निर्णय सही था। ऐसी संकटमय स्थिति में उसने भगवान् की शरण ग्रहण की।

यः कश्चनेशो बलिनोऽन्तकोरगात्
प्रचण्डवेगादभिधावतो भृशम् ।
भीतं प्रपन्नं परिपाति यद्भया
न्मृत्युः प्रधावत्यरणं तमीमहि ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

यः—जो (भगवान्); कश्चन—कोई; ईशः—परमनियन्ता; बलिनः—अत्यन्त शक्तिशाली; अन्तक-उरगात्—मृत्यु लाने वाले काल रूपी विशाल सर्प से; प्रचण्ड-वेगात्—अत्यन्त भयानक बल से; अभिधावतः—पीछा करता हुआ; भृशम्—निरन्तर (हर घड़ी); भीतम्—मृत्यु से डरा हुआ; प्रपन्नम्—शरणागत (भगवान् के); परिपाति—रक्षा करता है; यत्-भयात्—जिस भगवान् के डर से; मृत्युः—साक्षात् मृत्यु; प्रधावति—भाग जाती है; अरणम्—हर एक के वास्तविक आश्रय; तम्—उसकी; ईमहि—मैं शरण लेता हूँ।

भगवान् निश्चय ही हर एक को ज्ञात नहीं हैं, किन्तु वे हैं अत्यन्त शक्तिशाली तथा प्रभावशाली। अतएव यद्यपि काल रूपी सर्प प्रचण्ड वेग से निरन्तर मनुष्य का पीछा कर रहा है और उसे निगलने को उद्यत है, तथापि, यदि वह इस सर्प से डरकर भगवान् की शरण में जाता है, तो भगवान् उसे संरक्षण प्रदान करते हैं क्योंकि भगवान् के भय से मृत्यु भी भाग जाती है। अतएव मैं उनकी शरण ग्रहण करता हूँ जो महान् एवं शक्तिशाली परम सत्ता हैं और हर एक के वास्तविक आश्रय हैं।

तात्पर्य : जो बुद्धिमान् है, वह समझता है कि सबों के ऊपर एक महान् तथा परम सत्ता है। यह महान् सत्ता निर्दोष व्यक्तियों को उत्पातों से बचाने के लिए विभिन्न अवतारों में प्रकट होती है। जैसाकि *भगवद्गीता* (४.) में पुष्टि हुई है— *परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्*—भगवान् दो कारणों से—दुष्कृती का संहार करने तथा अपने भक्तों की रक्षा करने के उद्देश्य से विभिन्न अवतारों में प्रकट होते हैं। गजेन्द्र ने इनकी ही शरण में जाने का निर्णय लिया। यह बुद्धिमानी है। मनुष्य को उस महान् भगवान् को जानना चाहिए और अपने शरण ग्रहण करनी चाहिए। भगवान् प्रत्यक्ष रूप में हमें यह उपदेश देने आते हैं कि किस तरह सुखी रहा जाये। केवल मूर्ख तथा धूर्त ही बुद्धि होते हुए भी इस परम सत्ता—परम पुरुष—को नहीं देख पाते। *श्रुति मन्त्र* (*तैत्तिरीय उपनिषद्* २.) में कहा गया है—

भीषास्माद् वातः पवते भीषोदेति सूर्यः ।

भीषास्माद् अग्निश्चन्द्रश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः ॥

भगवान् के भय से ही वायु बहती है, सूर्य उष्मा तथा प्रकाश का वितरण करता है और मृत्यु हर एक का पीछा करती है। इस प्रकार एक परमनियन्ता है, जैसाकि *भगवद्गीता* से (९.१०) पुष्टि होती है—*मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।* यह भौतिक जगत परमनियन्ता के कारण ही इतनी अच्छी तरह कार्य करता है। अतएव कोई भी बुद्धिमान् व्यक्ति समझ सकता है कि किसी परमनियन्ता का अस्तित्व है। यही नहीं, यह परमनियन्ता साक्षात् कृष्ण के रूप में, चैतन्य महाप्रभु के रूप में तथा भगवान् रामचन्द्र के रूप में उपदेश देने तथा अपने उदाहरण से भगवान् की शरण में जाने की विधि बताने के लिए प्रकट होते हैं। फिर भी जो लोग अधम हैं (दुष्कृती) वे उनकी शरण में नहीं जाते (*न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः*)।

भगवद्गीता में भगवान् स्पष्ट कहते हैं—*मृत्युः सर्व हरश्चाहम्*—"मैं सर्वभक्षी मृत्यु हूँ।" अतः मृत्यु वह प्रतिनिधि है, जो प्रत्येक देहधारी जीव से सब कुछ छीन लेती है। कोई यह नहीं कह सकता "मैं मृत्यु से नहीं डरता।" यह झूठी धारणा है। हर व्यक्ति मृत्यु से डरता है। किन्तु जो भगवान् की शरण ग्रहण करता है, वह मृत्यु से बच सकता है। कोई यह तर्क कर सकता है "क्या भक्त नहीं मरता?" इसका उत्तर यह है कि निश्चित रूप से उसे शरीर त्यागना होगा क्योंकि शरीर भौतिक है। किन्तु अन्तर इतना ही है कि जो कृष्ण की पूर्ण शरण में जाता है और कृष्ण द्वारा रक्षित होता है, उसका वर्तमान शरीर अन्तिम शरीर होता है, उसे फिर से भौतिक शरीर धारण करके मृत्यु के अधीन नहीं होना होता। *भगवद्गीता* (४.९) में इसका आश्वासन दिया गया है—*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन*—भक्त अपना शरीर त्यागने के बाद भौतिक शरीर नहीं पाता अपितु वह भगवद्धाम वापस जाता है। हम सदा संकट में रहते हैं क्योंकि किसी भी क्षण मृत्यु हो सकती है। ऐसा नहीं है कि गजेन्द्र ही मृत्यु से भयभीत था। हरएक को मृत्यु से डरना चाहिए क्योंकि हरएक व्यक्ति काल-रूपी घड़ियाल द्वारा पकड़ा जाता है और किसी भी क्षण मर सकता है। अतएव सर्वोत्तम मार्ग यही है कि भगवान् श्रीकृष्ण की शरण ग्रहण करने का प्रयास किया जाये और इस संसार के जीवन-संघर्ष से बचा जाये जिसमें मनुष्य को बारम्बार जन्म लेना और मरना पड़ता है। इसी ज्ञान तक पहुँचना जीवन का चरम लक्ष्य है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के आठवें स्कंध के अन्तर्गत "गजेन्द्र पर संकट" नामक दूसरे अध्याय

के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter तीन

गजेन्द्र की समर्पण-स्तुति

इस अध्याय में गजेन्द्र की स्तुतियों का वर्णन हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि गजेन्द्र पूर्वजन्म में इन्द्रद्युम्न नामक मनुष्य था जिसने परमेश्वर की एक स्तुति सीखी हुई थी। सौभाग्यवश उसे वह स्तुति स्मरण हो आई और वह मन ही मन उसका जप करने लगा। सर्वप्रथम उसने भगवान् को नमस्कार किया। किन्तु घड़ियाल द्वारा आक्रमण के फलस्वरूप अपनी विषम स्थिति के कारण ठीक से स्तुति न कर सकने के लिए उसने अपनी असमर्थता व्यक्त की। फिर भी उसने मंत्र का जप करने का प्रयास किया और निम्नलिखित उचित शब्दों में अपनी बात कह सुनाई।

भगवान् समस्त कारणों के कारण हैं। वे आदि पुरुष हैं जिनसे प्रत्येक वस्तु पैदा हुई है। वे इस विराट जगत के मूल कारण हैं और सारा विश्व उन्हीं पर टिका है; तो भी वे दिव्य हैं क्योंकि वे सभी इस जगत में अपनी बहिरंगा शक्ति से ही कार्य करते हैं। वे अध्यात्मजगत—वैकुण्ठ या गोलोक वृन्दावन—में सदैव स्थित रहते हैं जहाँ वे अपनी नित्य लीलाओं में मग्न रहते हैं। यह भौतिक जगत उनकी बहिरंगा शक्ति या भौतिक प्रकृति का प्रतिफल है, जो उनके निर्देशन में कार्य करती है। इसी कारण से सृजन, पालन तथा संहार होता रहता है। भगवान् सदा विद्यमान रहते हैं। अभक्त के लिए इसे समझ पाना दुरूह है। यद्यपि दिव्य भगवान् सबों के लिए अनुभवगम्य हैं, किन्तु केवल शुद्ध भक्त ही उनकी उपस्थिति तथा कार्यकलापों का अनुभव कर पाते हैं। वे जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधि से सर्वथा मुक्त हैं। निस्सन्देह, यदि कोई इस जगत में उनकी शरण ग्रहण करता है, तो वह भी उस दिव्य पद को प्राप्त होता है। भगवान् भक्तों के सन्तोष के लिए (*परित्राणाय साधूनाम्*) प्रकट होते हैं और अपने कार्यकलापों का प्राकट्य करते हैं। उनका प्राकट्य, तिरोधान तथा उनकी अन्य लीलाएँ तनिक भी भौतिक नहीं होतीं। जो भी इस रहस्य को जानता है, वह भगवद्धाम में प्रवेश कर सकता है। भगवान् में सारे प्रतिकूल तत्त्वों का समंजन होता है। वे प्रत्येक हृदय में स्थित रहते हैं। वे हर वस्तु के नियामक हैं, सारे कार्यों के साक्षी हैं और समस्त जीवों के आदि स्रोत हैं। निस्सन्देह, सारे जीव उनके अंश हैं

क्योंकि वे महाविष्णु के उद्‌गम हैं, जो इस संसार में रहने वाले सारे जीवों के स्रोत हैं। भगवान् हमारी इन्द्रियों के कार्यों का अवलोकन कर सकते हैं क्योंकि भगवान् की कृपा से ही वे कार्य कर सकती हैं और भौतिक फल प्राप्त करती हैं। यद्यपि वे प्रत्येक वस्तु के आदि स्रोत हैं, किन्तु उनका कोई भी उपजात द्रव्य उनका स्पर्श नहीं कर पाता। इस प्रकार वे उस सोने की खान के समान हैं, जो आभूषणों के स्वर्ण का उद्‌गम तो है, किन्तु आभूषणों से सर्वथा भिन्न है। भगवान् की पूजा *पंचरात्र* में बताई विधि से की जाती है। वे हमारे ज्ञान के उद्‌गम हैं और हमें मुक्ति प्रदान करने वाले हैं। अतएव हमारा कर्तव्य है कि हम भक्तों के उपदेशों के अनुसार, विशेषतया गुरु के उपदेश के अनुसार, उन्हें समझें। यद्यपि हमसे सतोगुण प्रच्छन्न रहता है, किन्तु सन्त पुरुषों तथा गुरु के उपदेशों का पालन करने से हम भवबन्धन से मुक्त हो सकते हैं।

''अभक्त भगवान् के आत्म-प्रकाशित भौतिक स्वरूप की आराधना करते हैं, ज्ञानी लोग उनके निर्विशेष रूप की आराधना करते हैं और योगीजन उनके अन्तर्यामी परमात्मा रूप की प्रशंसा करते हैं। किन्तु पुरुष के रूप में उनके आदि स्वरूप को केवल भक्त ही समझ पाते हैं। भगवान् बद्धजीवों के अंधकार को *भगवद्‌गीता* में दिये गये अपने उपदेशों द्वारा दूर करने में समर्थ हैं। वे दिव्य गुणों के सागर हैं और देहात्मबुद्धि से मुक्त हुए पुरुषों द्वारा ही समझे जा सकते हैं। वे अपनी अहैतुकी कृपा से बद्धजीव को भवबन्धन से छुड़ाकर भगवद्धाम वापस भेज सकते हैं और अपना निजी पार्षद बना सकते हैं। फिर भी शुद्ध भक्त भगवद्धाम वापस जाने की इच्छा नहीं रखता; वह तो इसी जगत में सेवा करके ही प्रसन्न रहता है। वह भगवान् से किसी वस्तु की याचना नहीं करता। उसकी एकमात्र प्रार्थना यही रहती है कि वह देहात्मबुद्धि से छूटकर भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में लगा रहे।''

इस प्रकार गजेन्द्र ने सीधे भगवान् की स्तुति की और उसे उनमें किसी देवता का भ्रम नहीं हुआ। उसे देखने कोई भी देवता नहीं आये, यहाँ तक कि ब्रह्मा या शिव भी नहीं; प्रत्युत गरुड़ पर आसीन साक्षात् भगवान् नारायण उसके समक्ष प्रकट हुए। गजेन्द्र ने अपनी सूँड़ उठाकर उनका अभिवादन किया और भगवान् ने तुरन्त ही घड़ियाल समेत जिसने उसका पाँव पकड़ रखा था उसे जल के बाहर निकाल लिया। तब भगवान् ने उस घड़ियाल को मार डाला और इस तरह गजेन्द्र की रक्षा की।

श्रीबादरायणिरुवाच

एवं व्यवसितो बुद्ध्या समाधाय मनो हृदि ।
जजाप परमं जाप्यं प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-बादरायणिः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; व्यवसितः—स्थिर; बुद्ध्या—बुद्धि से; समाधाय—केन्द्रित करने के लिए; मनः—मन को; हृदि—हृदय में या चेतना में; जजाप—जप किया; परमम्—परम; जाप्यम्—उस मंत्र को जिसे उसने महान् भक्तों से सीखा था; प्राक्-जन्मनि—पूर्वजन्म में; अनुशिक्षितम्—अभ्यास किया हुआ।

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : तत्पश्चात् गजेन्द्र ने अपना मन पूर्ण बुद्धि के साथ अपने हृदय में स्थिर कर लिया और उस मंत्र का जप प्रारम्भ किया जिसे उसने इन्द्रद्युम्न के रूप में अपने पूर्वजन्म में सीखा था और जो कृष्ण की कृपा से उसे स्मरण था।

तात्पर्य : ऐसे स्मरण का वर्णन *भगवद्गीता* (६.४३-४४) में इस प्रकार हुआ है—

तत्र तं बुद्धि संयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।

यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन॥

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः

इन श्लोकों में यह विश्वास दिलाया गया है कि यदि भक्ति में लगा हुआ व्यक्ति नीचे गिर भी जाता है, तो वह पतित नहीं होता, अपितु उसे ऐसे पद पर रखा जाता है, जिससे वह कालक्रम में भगवान् को स्मरण करेगा। जैसाकि बाद में बताया जायेगा, गजेन्द्र पहले इन्द्रद्युम्न नामक राजा था, किन्तु किन्ही कारणों से वह अगले जन्म में गजेन्द्र बना। अब गजेन्द्र संकट में था और यद्यपि उसका शरीर मनुष्य से भिन्न था, किन्तु उसे वह स्तोत्र स्मरण था जिसे वह पूर्वजन्म में जपा करता था। *यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन।* मनुष्य को सिद्धि प्राप्त करने में समर्थ होने के लिए कृष्ण उसे फिर से अपना स्मरण कराने का अवसर प्रदान करते हैं। यहाँ यह सिद्ध हो जाता है क्योंकि यद्यपि गजेन्द्र संकट में पड़ गया था, किन्तु यह उसके लिए अवसर था कि वह अपने पूर्व भक्तिकार्यों को स्मरण करे जिससे वह तुरन्त भगवान् द्वारा उबारा जा सके।

इससे यह अनिवार्य हो जाता है कि कृष्णभावनामृत के सारे भक्त किसी मंत्र का जप करने का अभ्यास करें। निश्चय ही, मनुष्य को हरे कृष्ण मंत्र का जप करना चाहिए क्योंकि यह महामंत्र है। मनुष्य को चाहिए कि वह *चिन्तामणि प्रकर सद्मसु* या नृसिंह स्तोत्र (*इतो नृसिंहः परतो नृसिंहो यतो यतो यामि ततो नृसिंहः*) के जाप का अभ्यास करे। प्रत्येक भक्त को किसी न किसी मंत्र के पूर्णरूपेण

जप का अभ्यास करना चाहिए जिससे भले ही वह इस जीवन में पूर्ण आध्यात्मिक चेतना न प्राप्त कर सके, किन्तु अगले जीवन में वह पशु होने पर भी कृष्णभावनामृत को न भूल सकेगा। निस्सन्देह, भक्त को प्रयास करना चाहिए कि वह इसी जीवन में कृष्णभावनामृत को पूर्ण कर ले क्योंकि कृष्ण तथा उनके उपदेशों को समझ लेने मात्र से ही मनुष्य शरीर छोड़ने पर भगवद्धाम को वापस जा सकता है। यदि किसी का पतन भी हो तो भी कृष्णभावनामृत का अभ्यास व्यर्थ नहीं जाता। उदाहरणार्थ, अजामिल ने बचपन में अपने पिता के निर्देशन में नारायण जप का अभ्यास किया था, किन्तु बाद में अपनी युवावस्था में उसका पतन हो गया—वह शराबी, स्त्रीगामी, चोर तथा उचक्का बन गया। यद्यपि उसने अपने पुत्र नारायण को बुलाने के लिए नारायण के नाम का उच्चारण किया था फिर भी पापकर्मों में लिप्त होकर भी वह उन्नति कर गया। अतएव हमें किसी भी परिस्थिति में हरे कृष्ण मंत्र का जप करना नहीं भूलना चाहिए। इससे हमें बड़े से बड़े संकट में सहायता मिलेगी जैसाकि हम गजेन्द्र के जीवन में पाते हैं।

श्रीगजेन्द्र उवाच
ॐ नमो भगवते तस्मै यत एतच्चिदात्मकम् ।
पुरुषायादिबीजाय परेशायाभिधीमहि ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-गजेन्द्रः उवाच—गजेन्द्र ने कहा; **ॐ**—हे भगवान्; **नमः**—मैं सादर नमस्कार करता हूँ; **भगवते**—भगवान् को; **तस्मै**—उस; **यतः**—जिनसे; **एतत्**—यह शरीर तथा भौतिक जगत; **चित्-आत्मकम्**—चेतना (आत्मा) के कारण गतिशील; **पुरुषाय**—परम पुरुष को; **आदि-बीजाय**—जो उद्गम या प्रत्येक वस्तु के मूल कारण हैं, उन्हें; **पर-ईशाय**—परम, दिव्य तथा पूज्य; **अभिधीमहि**—उनका ध्यान करता हूँ।

गजेन्द्र ने कहा : मैं परम पुरुष वासुदेव को सादर नमस्कार करता हूँ (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय)। उन्हीं के कारण यह शरीर आत्मा की उपस्थिति के कारण कर्म करता है; अतएव वे प्रत्येक जीव के मूल कारण हैं। वे ब्रह्मा तथा शिव जैसे महापुरुषों के लिए पूजनीय हैं और वे प्रत्येक जीव के हृदय में प्रविष्ट हैं। मैं उनका ध्यान करता हूँ।

तात्पर्य : इस श्लोक में *एतच्चिदात्मकम्* पद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। भौतिक शरीर निश्चय ही भौतिक तत्त्वों से बना हुआ है, किन्तु जब कृष्णभावनामृत का ज्ञान हो जाता है, तो यह शरीर भौतिक न रहकर आध्यात्मिक बन जाता है। भौतिक शरीर इन्द्रियभोग के लिए है, किन्तु आध्यात्मिक शरीर भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में लगा रहता है। अतएव जो भक्त भगवान् की सेवा में लगकर निरन्तर

उन्हीं का चिन्तन करता रहता है उसके शरीर को कभी भी भौतिक नहीं मानना चाहिए। इसीलिए आदेश दिया गया है *गुरुषु नरमतिः*—गुरु को कभी भी भौतिक शरीरधारी सामान्य मनुष्य नहीं समझना चाहिए। *अर्च्ये विष्णौ शिलाधीः*—प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि मन्दिर का अर्चाविग्रह पत्थर का बना होता है, किन्तु यह सोचना अपराध है कि अर्चाविग्रह मात्र पत्थर है। इसी प्रकार गुरु के शरीर को भौतिक अवयवों से बना सोचना अपराध है। नास्तिक लोग सोचते हैं कि भक्तगण मूर्खतावश पत्थर की मूर्ति की पूजा ईश्वर के रूप में करते हैं और एक सामान्य पुरुष की गुरु के रूप में। किन्तु तथ्य यह है कि कृष्ण की सर्वशक्तिमानता से अर्चाविग्रह की तथाकथित पत्थर-मूर्ति प्रत्यक्ष भगवान् होती है और गुरु का शरीर प्रत्यक्ष आध्यात्मिक होता है। ऐसे शुद्ध भक्त को, जो अनन्य भक्ति में लगा रहता है, दिव्यपद पर स्थित मानना चाहिए (*स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते*)। अतएव हमें चाहिए कि भगवान् को सादर नमस्कार करें जिनकी कृपा से तथाकथित भौतिक वस्तुएँ भी आध्यात्मिक कार्य में लग जाने पर आध्यात्मिक बन जाती हैं।

ओङ्कार (प्रणव) भगवान् की प्रतीकात्मक ध्वनि-अभिव्यक्ति है। *ॐ तत्सद् इति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः*—*ॐ तत् सत्* ये तीन शब्द तुरन्त परम पुरुष का आह्वान करते हैं। अतएव कृष्ण कहते हैं कि वे सभी मंत्रों में ओङ्कार हैं (*प्रणवः सर्ववेदेषु*)। सारे वैदिक मंत्रों का उच्चारण तुरन्त भगवान् को इंगित करने के लिए ओङ्कार से प्रारम्भ होता है। उदाहरणार्थ, *श्रीमद्भागवत* का शुभारम्भ *ॐ नमो भगवते वासुदेवाय* से होता है। भगवान् वासुदेव एवं ओङ्कार (प्रणव) में कोई अन्तर नहीं है। हमें यह समझने में सतर्क रहना चाहिए कि ओङ्कार किसी निराकार का सूचक नहीं है। निस्सन्देह, इस श्लोक में तुरन्त *ॐ नमो भगवते* आया है। भगवान् एक व्यक्ति हैं। इस तरह ओङ्कार परम पुरुष का स्वरूप है। ओङ्कार का अर्थ निराकार नहीं होता जैसाकि मायावादी चिन्तक मानते हैं। *पुरुषाय* शब्द से यहाँ यह स्पष्ट रूप से व्यक्त है। ओङ्कार से सम्बोधित परम सत्य परम पुरुष है; वह निराकार नहीं है। यदि वह पुरुष न होता तो वह इस ब्रह्माण्ड का इतना बड़ा अग्रणी नियामक कैसे बनता? यद्यपि ब्रह्मा, शिव तथा विष्णु इस ब्रह्माण्ड के परम नियन्ता हैं, किन्तु भगवान् विष्णु को शिव तथा ब्रह्मा भी नमस्कार करते हैं। इसीलिए इस श्लोक में *परेशाय* शब्द व्यवहृत हुआ है, जो यह सूचित करता है कि भगवान् बड़े-बड़े देवताओं द्वारा भी आराध्य हैं। *परेशाय* का अर्थ है *परमेश्वर*। ब्रह्मा तथा शिव ईश्वर या

महान् नियन्ता हैं, किन्तु भगवान् विष्णु परमेश्वर अर्थात् परम नियन्ता हैं।

यस्मिन्निदं यतश्चेदं येनेदं य इदं स्वयम् ।
योऽस्मात्परस्माच्च परस्तं प्रपद्ये स्वयम्भुवम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

यस्मिन्—जिस मूल पद पर; **इदम्**—यह ब्रह्माण्ड टिका है; **यतः**—जिन अवयवों से; **च**—तथा; **इदम्**—यह विराट विश्व बना है; **येन**—जिसके द्वारा; **इदम्**—यह विराट विश्व रचित तथा पालित है; **यः**—जो; **इदम्**—यह भौतिक जगत है; **स्वयम्**—स्वयं; **यः**—जो; **अस्मात्**—इस भौतिक जगत (फल) से; **परस्मात्**—कारण से; **च**—तथा; **परः**—दिव्य या भिन्न; **तम्**—उस; **प्रपद्ये**—शरण में जाता हूँ; **स्वयम्भुवम्**—आत्म-निर्भर की।

भगवान् ही वह परम पद है, जिस पर प्रत्येक वस्तु टिकी हुई है; वे वह अवयव हैं जिससे प्रत्येक वस्तु उत्पन्न हुई है तथा वे वह पुरुष हैं जिसने सृष्टि की रचना की और जो इस विराट विश्व के एकमात्र कारण हैं। फिर भी वे कारण-कार्य से पृथक् हैं। मैं उन भगवान् की शरण ग्रहण करता हूँ जो सभी प्रकार से आत्म-निर्भर हैं।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (९.४) में भगवान् कहते हैं—*मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना*—मैं भगवान् हूँ, किन्तु सभी कुछ मेरी शक्ति पर निर्भर है, जिस प्रकार मिट्टी का पात्र मिट्टी पर निर्भर रहता है।" जिस स्थान पर मिट्टी का पात्र टिका रहता है, वह भी मिट्टी है। यह मिट्टी का पात्र कुम्हार द्वारा बनाया जाता है, जिसका शरीर मिट्टी का बना होता है। कुम्हार का चाक, जिससे मिट्टी का पात्र बनता है, मिट्टी का अंश होता है और जिन अवयवों से पात्र बना रहता है वे भी मिट्टी के होते हैं। जैसी कि *श्रुतिमन्त्र* से पुष्टि होती है—*यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।* प्रत्येक वस्तु का मूल कारण भगवान् है और संहार होने पर प्रत्येक वस्तु उन्हीं में प्रविष्ट होती है (*प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्*) इस तरह परमेश्वर—भगवान् रामचन्द्र या भगवान् कृष्ण—हर वस्तु के मूल कारण हैं—

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः ।

अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम् ॥

"गोविन्द नाम से प्रसिद्ध कृष्ण परमनियन्ता हैं। उनका शरीर नित्य, आनन्दमय तथा आध्यात्मिक है। वे सबों के उद्गम हैं। उनका कोई अन्य उद्गम नहीं है क्योंकि वे समस्त कारणों के मूल कारण हैं (*ब्रह्मसंहिता* ५.१)।" भगवान् हर वस्तु के कारण हैं, किन्तु उनका कोई कारण नहीं है। *सर्वं खल्विदं*

ब्रह्म। मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः। यद्यपि भगवान् सब कुछ हैं, किन्तु उनका व्यक्तित्व विराट विश्व से पृथक् है।

यः स्वात्मनीदं निजमाययार्पितं
क्वचिद्विभातं क्व च तत्तिरोहितम् ।
अविद्धदृक्साक्ष्युभयं तदीक्षते
स आत्ममूलोऽवतु मां परात्परः ॥ ४॥

शब्दार्थ

यः—जो भगवान्; स्व-आत्मनि—अपने में; इदम्—इस विराट जगत को; निज-मायया—अपनी निजी शक्ति से; अर्पितम्—लगा हुआ; क्वचित्—कभी-कभी, कल्प के प्रारम्भ में; विभातम्—प्रकट होता है; क्व च—कभी-कभी, प्रलय के समय; तत्—वह (जगत); तिरोहितम्—अदृश्य; अविद्ध-दृक्—वह सब कुछ देखता है (इन सभी परिस्थितियों में); साक्षी—गवाह; उभयम्—दोनों (उत्त्पत्ति तथा प्रलय); तत् ईक्षते—दृष्टि की हानि के बिना सब कुछ देखता है; सः—वह भगवान्; आत्म-मूलः—आत्मनिर्भर, अन्य कारण न होने पर; अवतु—कृपया हमें संरक्षण दें; माम्—मुझको; परात्-परः—दिव्य से भी दिव्य, समस्त अध्यात्म से परे।

भगवान् अपनी शक्ति के विस्तार द्वारा कभी इस दृश्य जगत को व्यक्त बनाते हैं और कभी इसे अव्यक्त बना देते हैं। वे सभी परिस्थितियों में परम कारण तथा परम कार्य (फल), प्रेक्षक तथा साक्षी दोनों हैं। इस प्रकार वे सभी वस्तुओं से परे हैं। ऐसे भगवान् मेरी रक्षा करें।

तात्पर्य : भगवान् की शक्तियाँ अनेक हैं (*परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते*)। अतएव जब भी वे चाहते हैं अपनी किसी एक शक्ति का उपयोग करते हैं और इस तरह विस्तार करके इस दृश्य जगत की सृष्टि करते हैं। पुनः जब यह दृश्य जगत विनष्ट होता है, तो यह उन्हीं में आश्रय पाता है। फिर भी वे अच्युत परम प्रेक्षक हैं। वे किसी भी परिस्थिति में परिवर्तनरहित रहते हैं। वे मात्र साक्षी के रूप में सारी सृष्टि तथा संहार से पृथक् रहते हैं।

कालेन पञ्चत्वमितेषु कृत्स्नशो
लोकेषु पालेषु च सर्वहेतुषु ।
तमस्तदासीद्गहनं गभीरं
यस्तस्य पारेऽभिविराजते विभुः ॥ ५॥

शब्दार्थ

कालेन—कालान्तर में (लाखों वर्ष बाद); पञ्चत्वम्—जब प्रत्येक मायावी वस्तु विनष्ट हो जाती है; इतेषु—सारे विकार; कृत्स्नशः—इस दृश्य जगत के भीतर की प्रत्येक वस्तु सहित; लोकेषु—सारे लोकों में, या इनमें स्थित हर वस्तु में; पालेषु—ब्रह्मा जैसे पालनकर्ताओं में; च—भी; सर्व-हेतुषु—सारे कारणों में; तमः—महान् अंधकार; तदा—तब; आसीत्—था; गहनम्—अत्यन्त घना; गभीरम्—अत्यन्त गहरा; यः—जो भगवान्; तस्य—इस अंधकारपूर्ण स्थिति के; पारे—इसके अतिरिक्त; अभिविराजते—स्थित है या चमकता है; विभुः—परमेश्वर।

कालक्रम से जब लोकों तथा उनके निदेशकों एवं पालकों समेत ब्रह्माण्ड के सारे कार्य-कारणों का संहार हो जाता है, तो गहन अंधकार की स्थिति आती है। किन्तु इस अंधकार के ऊपर भगवान् रहता है। मैं उनके चरणकमलों की शरण ग्रहण करता हूँ।

तात्पर्य : वैदिक मंत्रों से हमें पता चलता है कि भगवान् सबों के ऊपर हैं। वे ब्रह्मा तथा शिव समेत समस्त देवताओं से ऊपर सर्वश्रेष्ठ हैं। वे परम नियन्ता हैं। जब उनकी शक्ति से हर वस्तु अदृश्य हो जाती है, तो विराट जगत में घना अंधकार छा जाता है। किन्तु भगवान् सूर्य-प्रकाश हैं जैसी कि वैदिक मंत्रों में पुष्टि हुई है—*आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्।* हमारा दैनिक अनुभव है कि जब हम इस धरती पर रात्रि के अंधकार में होते हैं, तो सूर्य आकाश में कहीं न कहीं सदैव चमकता रहता है। इसी प्रकार भगवान् परम सूर्य की भाँति सदैव चमकते रहते हैं, तब भी जब कालक्रम से समग्र विराट जगत विनष्ट हो जाता है।

न यस्य देवा ऋषयः पदं विदु-
र्जन्तुः पुनः कोऽर्हति गन्तुमीरितुम् ।
यथा नटस्याकृतिभिर्विचेष्टतो
दुरत्ययानुक्रमणः स मावतु ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

न—न तो; यस्य—जिसका; देवाः—देवतागण; ऋषयः—बड़े-बड़े मुनि; पदम्—पद; विदुः—समझ सकते हैं; जन्तुः—पशुओं के समान बुद्धिहीन जीव; पुनः—फिर; कः—कौन; अर्हति—समर्थ है; गन्तुम्—ज्ञान में प्रवेश करने में; ईरितुम्—अथवा शब्दों द्वारा व्यक्त करने में; यथा—जिस प्रकार; नटस्य—कलाकार के; आकृतिभिः—शारीरिक स्वरूप से; विचेष्टतः—विभिन्न प्रकार से नाचते हुए; दुरत्यय—अत्यन्त कठिन; अनुक्रमणः—उसकी गतियाँ; सः—वही भगवान्; मा—मुझको; अवतु—संरक्षण प्रदान करें।

आकर्षक वेशभूषा से ढके रहने तथा विभिन्न प्रकार की गतियों से नाचने के कारण रंगमंच के कलाकार को श्रोता समझ नहीं पाते। इसी प्रकार परम कलाकार के कार्यों तथा स्वरूपों को बड़े-बड़े मुनि या देवतागण भी नहीं समझ पाते और बुद्धिहीन तो तनिक भी नहीं (जो पशुओं के तुल्य हैं)। न तो देवता तथा मुनि, न ही बुद्धिहीन मनुष्य भगवान् के स्वरूप को समझ सकते हैं और न ही वे उनकी वास्तविक स्थिति को अभिव्यक्त कर सकते हैं। ऐसे भगवान् मेरी रक्षा करें।

तात्पर्य : ऐसी ही बात कुन्ती देवी ने अभिव्यक्त की थी। भगवान् सर्वत्र भीतर-बाहर विद्यमान हैं,

यहाँ तक कि वे हृदय के भीतर भी विद्यमान रहते हैं। *सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो। ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।* इस प्रकार यह सूचित किया गया है कि भगवान् को प्रत्येक हृदय में ढूँढा जा सकता है। अनेकानेक योगी उन्हें पाने का प्रयत्न करते हैं। *ध्यानावस्थित तद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनः।* फिर भी बड़े-बड़े योगी, देवता, सन्त तथा मुनि न तो उस महान् कलाकार (नट) के स्वरूप को समझ पाये, न ही वे उनकी गतियों का अर्थ समझ पाये। तो फिर इस जगत के सामान्य चिन्तकों, यथा तथाकथित दार्शनिकों के विषय में क्या कहा जा सकता है? उनके लिए उन्हें समझ पाना असम्भव है। उनके लिए उन्हीं कथनों को स्वीकार करना चाहिए जिनका उपदेश वे हमारे बीच कृपा करके अवतरित होकर देते हैं। हमें भगवान् रामचन्द्र, भगवान् कृष्ण तथा भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के वचनों को स्वीकार मात्र करना चाहिए और उनके पदचिह्नों पर चलना चाहिए। तभी उनके अवतारों के प्रयोजन को जाना जा सकता है।

जन्म कर्म च मे दिव्यम् एवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।

(*भगवद्गीता ४.९*)

यदि भगवत्कृपा से उन्हें कोई जान लेता है, तो उसका इसी शरीर में भी तुरन्त उद्धार हो जाएगा। तब भौतिक शरीर का कोई कार्य नहीं रह जाता। फिर शरीर जितने भी कार्य करेगा वे कृष्णभावनामृत के कार्यकलाप होंगे। इस प्रकार मनुष्य अपना शरीर त्यागकर भगवद्धाम वापस जा सकता है।

दिदृक्षवो यस्य पदं सुमङ्गलं
विमुक्तसङ्गा मुनयः सुसाधवः ।
चरन्त्यलोकव्रतमव्रणं वने
भूतात्मभूताः सुहृदः स मे गतिः ॥ ७॥

शब्दार्थ

दिदृक्षवः—(भगवान् को) देखने के इच्छुक; यस्य—जिसके; पदम्—चरणकमल; सु-मङ्गलम्—कल्याणप्रद; विमुक्त-सङ्गाः—भौतिक दशाओं से पूरी तरह मुक्त; मुनयः—मुनिगण; सु-साधवः—आध्यात्मिक चेतना में बढ़े-चढ़े; चरन्ति—अभ्यास करते हैं; अलोक-व्रतम्—ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ या संन्यास के व्रत; अव्रणम्—बिना किसी त्रुटि के; वने—वन में; भूत-आत्म-भूताः—जो समस्त जीवों के प्रति समान भाव रखते हैं; सुहृदः—जो सबों के मित्र हैं; सः—वही भगवान्; मे—मेरा; गतिः—गन्तव्य।

जो सभी जीवों को समभाव से देखते हैं, जो सबों के मित्रवत् हैं तथा जो जंगल में ब्रह्मचर्य,

वानप्रस्थ तथा संन्यास व्रत का बिना त्रुटि के अभ्यास करते हैं, ऐसे विमुक्त तथा मुनिगण भगवान् के कल्याणप्रद चरणकमलों का दर्शन पाने के इच्छुक रहते हैं। वही भगवान् मेरे गन्तव्य हों।

तात्पर्य : इस श्लोक में भक्तों या उच्च आध्यात्मिक चेतना वाले व्यक्तियों के गुणों का वर्णन है। भक्त सबों पर समान दृष्टि रखते हैं; वे उच्च तथा निम्न जातियों में कोई अन्तर नहीं देखते। *पण्डिता: समदर्शिन: ।* वे हर एक को आत्मा के रूप में देखते हैं, जो भगवान् का अंश होता है। इस प्रकार वे भगवान् की खोज करने के पात्र होते हैं। यह समझते हुए कि भगवान् हर एक के मित्र हैं (*सुहृदं सर्वभूतानाम्*) वे भगवान् की ओर से हर एक से मित्रवत् व्यवहार करते हैं। वे राष्ट्रों या जातियों में भेदभाव न बरतते हुए सर्वत्र कृष्णभावनामृत अर्थात् *भगवद्गीता* के आदेशों का उपदेश देते हैं। इस प्रकार वे भगवान् के चरणकमलों का दर्शन पाने के पात्र होते हैं। कृष्णभावनामृत में ऐसे उपदेशकों को *परमहंस* कहा जाता है। जैसाकि *विमुक्तसङ्ग* शब्द से सूचित होता है, उन्हें भौतिक परिस्थितियों से कुछ भी लेना-देना नहीं रहता। मनुष्य को चाहिए कि भगवान् का दर्शन करने के लिए वह ऐसे भक्त की शरण में जाये।

न विद्यते यस्य च जन्म कर्म वा
न नामरूपे गुणदोष एव वा ।
तथापि लोकाप्ययसम्भवाय य:
स्वमायया तान्यनुकालमृच्छति ॥ ॥
तस्मै नम: परेशाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।
अरूपायोरुरूपाय नम आश्चर्यकर्मणे ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; विद्यते—विद्यमान है; यस्य—जिसका (भगवान् का); च—भी; जन्म—जन्म; कर्म—कर्म; वा—अथवा; न—न तो; नाम-रूपे—कोई नाम या भौतिक स्वरूप; गुण—गुण; दोष:—त्रुटि; एव—निश्चय ही; वा—अथवा; तथापि—फिर भी; लोक—इस दृश्य जगत का; अप्यय—विनाश; सम्भवाय—तथा सृष्टि; य:—जो; स्व-मायया—अपनी निजी शक्ति से; तानि—कार्यों को; अनुकालम्—शाश्वत रीति से; ऋच्छति—स्वीकार करता है; तस्मै—उसको; नम:—नमस्कार करता हूँ; पर—दिव्य; ईशाय—परमनियन्ता को; ब्रह्मणे—परब्रह्म को; अनन्त-शक्तये—असीमित शक्ति से; अरूपाय—निराकार; उरु-रूपाय—अवतारों के विविध रूपों वाला; नम:—नमस्कार करता हूँ; आश्चर्य-कर्मणे—जिनके कार्य अद्भुत होते हैं।

भगवान् भौतिक जन्म, कार्य, नाम, रूप, गुण या दोष से रहित हैं। यह भौतिक जगत जिस अभिप्राय से सृजित और विनष्ट होता रहता है उसकी पूर्ति के लिए वे अपनी मूल अन्तरंगा शक्ति

द्वारा रामचन्द्र या भगवान् कृष्ण जैसे मानववत् रूप में आते हैं। उनकी शक्ति महान् है और वे विभिन्न रूपों में भौतिक कल्मष से सर्वथा मुक्त होकर अद्‌भुत कर्म करते हैं। अतएव वे परब्रह्म हैं। मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : *विष्णु पुराण* में कहा गया है—*गुणांश्च दोषांश्च मुने व्यतीत समस्तकल्याण-गुणात्मको हि।* भगवान् के न तो भौतिक रूप होता है, न भौतिक गुण या दोष। वे आध्यात्मिक हैं और समस्त आध्यात्मिक गुणों के एकमात्र आगार हैं। भगवान् ने *भगवद्‌गीता* (४.) में कहा है— *परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।* भक्तों को बचाने तथा असुरों का संहार करने के भगवान् के कार्य दिव्य होते हैं। भगवान् जिसका संहार करते हैं उसे भगवान् द्वारा रक्षित भक्त की ही तरह फल मिलता है— दोनों का ही आध्यात्मिक उत्थान होता है। अन्तर केवल इतना ही रहता है कि भक्त सीधे वैकुण्ठ जाकर भगवान् का संगी बनता है, जबकि असुर *ब्रह्मलोक* को जाता है, जो भगवान् का निर्विशेष तेज है। किन्तु दोनों का ही आध्यात्मिक उत्थान होता है। भगवान् द्वारा असुरों का वध या संहार इस भौतिक जगत के वध जैसा नहीं होता। यद्यपि वे प्रकृति के गुणों के अन्तर्गत कार्य करते प्रतीत होते हैं, किन्तु वे *निर्गुण* अर्थात् प्रकृति के गुणों से ऊपर होते हैं। उनका नाम भौतिक नहीं होता अन्यथा कोई हरे कृष्ण हरे राम का जप करके मुक्ति कैसे पा सकता है? राम तथा कृष्ण जैसे भगवान् के नाम साक्षात् राम तथा कृष्ण से अभिन्न हैं। इस तरह हरे कृष्ण मंत्र के जप से मनुष्य भगवान् राम तथा कृष्ण का निरन्तर सान्निध्य प्राप्त करता है और मुक्त हो जाता है। इसका जीवन्त उदाहरण अजामिल है, जो नारायण का नाम जपने मात्र से अपने कार्यकलापों से सदैव परे रहा। यदि अजामिल के साथ यह सही उतरता है, तो भगवान् के लिए क्या कहा जा सकता है? जब भगवान् इस भौतिक जगत में अवतरित होते हैं, तो वे पदार्थ से उत्पन्न नहीं होते। सम्पूर्ण *भगवद्‌गीता* में इसकी पुष्टि हुई है (*जन्म कर्म च मे दिव्यम्, अवजानन्ति मां मूढा: मानुषीं तनुमाश्रितम्*)। अतएव जब हमारे लाभ के लिए दिव्य कर्म करने हेतु भगवान् राम या कृष्ण अवतरित होते हैं, तो हमें चाहिए कि हम उन्हें सामान्य मनुष्य न मानें। जब भगवान् अवतरित होते हैं, तो वे अपनी आध्यात्मिक शक्ति के बल पर ऐसा करते हैं (*सम्भवाम्यात्ममायया*)। चूँकि वे अवतरित होने के लिए भौतिक शक्ति द्वारा बाध्य नहीं किए जाते अतएव वे सदैव दिव्य हैं। मनुष्य को चाहिए कि वह भगवान् को सामान्य व्यक्ति न माने। भौतिक नाम

तथा रूप तो दूषित होते हैं, किन्तु आध्यात्मिक नाम तथा रूप दिव्य होते हैं।

नम आत्मप्रदीपाय साक्षिणे परमात्मने ।
नमो गिरां विदूराय मनसश्चेतसामपि ॥ १० ॥

शब्दार्थ

नमः—मैं नमस्कार करता हूँ; आत्म-प्रदीपाय—आत्म-प्रकाशित को या जीवों को प्रकाश देने वाले को; साक्षिणे—प्रत्येक के हृदय में साक्षी स्वरूप स्थित; परम-आत्मने—परमात्मा में; नमः—नमस्कार करता हूँ; गिराम्—वाणी से; विदूराय—अत्यन्त दूर, अगम्य; मनसः—मन से; चेतसाम्—या चेतना से; अपि—भी।

मैं उन आत्मप्रकाशित परमात्मा को नमस्कार करता हूँ जो प्रत्येक हृदय में साक्षी स्वरूप स्थित हैं, व्यष्टि जीवात्मा को प्रकाशित करते हैं और जिन तक मन, वाणी या चेतना के प्रयासों द्वारा नहीं पहुँचा जा सकता।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण को मानसिक, शारीरिक या बौद्धिक प्रयासों से मनुष्य द्वारा नहीं समझा जा सकता। भगवान् की कृपा से ही व्यष्टि आत्मा प्रकाशित होता है। इसीलिए भगवान् को यहाँ पर *आत्मप्रदीप* कहा गया है। भगवान् सूर्य के समान हैं, जो प्रत्येक वस्तु को प्रकाशित करते हैं, किन्तु किसी के द्वारा प्रकाशित नहीं होते। अतएव जो उन्हें जानने का इच्छुक हो उसे चाहिए कि उनसे प्रकाश प्राप्त करे जैसाकि *भगवद्गीता* में उपदेश दिया गया है। अपने मानसिक, शारीरिक या बौद्धिक बल से कोई भी भगवान् को नहीं समझ सकता।

सत्त्वेन प्रतिलभ्याय नैष्कर्म्येण विपश्चिता ।
नमः कैवल्यनाथाय निर्वाणसुखसंविदे ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

सत्त्वेन—शुद्ध भक्ति से; प्रति-लभ्याय—भगवान् को, जो ऐसी भक्ति से प्राप्त किये जाते हैं; नैष्कर्म्येण—दिव्य कार्यों से; विपश्चिता—अत्यन्त विद्वान व्यक्तियों द्वारा; नमः—नमस्कार करता हूँ; कैवल्य-नाथाय—दिव्यलोक के स्वामी को; निर्वाण—भौतिक कार्यों से पूर्ण मुक्ति; सुख—सुख का; संविदे—प्रदान करने वाला।

भगवान् की अनुभूति उन शुद्ध भक्तों को होती है, जो भक्तियोग की दिव्य स्थिति में रहकर कर्म करते हैं। वे अकलुषित सुख के दाता हैं और दिव्यलोक के स्वामी हैं। अतएव मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है, भगवान् केवल भक्ति से जाने जा सकते हैं। *भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः।* यदि कोई सचमुच भगवान् को जानना चाहता है, तो उसे भक्ति

के कार्यों में जुट जाना चाहिए। ये कार्य *सत्त्व* या *शुद्धसत्त्व* कहलाते हैं। भौतिक जगत में सतोगुणी कार्यों की प्रशंसा की जाती है क्योंकि ये शुद्ध ब्राह्मण के लक्षण हैं। किन्तु भक्ति के कार्य *शुद्धसत्त्व* हैं; दूसरे शब्दों में, वे दिव्य पद पर होते हैं। केवल भक्ति से ही परमेश्वर को समझा जा सकता है।

भक्ति को *नैष्कर्म्य* कहा जाता है। किन्तु मात्र भौतिक कार्यों के निषेध से काम नहीं चलता। *नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितम्।* जब तक कृष्णभावनामृत के लिए कार्य नहीं किये जाते तब तक भौतिक कार्यों को बन्द करना लाभप्रद नहीं होगा। *नैष्कर्म्य* प्राप्त करने की आशा से अनेक उच्च संन्यासियों ने अपने कार्यकलाप बन्द कर दिये; फिर भी वे असफल रहे और भौतिक व्यक्तियों की भ्रान्ति कर्म करने के लिए पुन: भौतिक पद पर लौट आये। किन्तु एक बार भक्तियोग के आध्यात्मिक कार्यों में संलग्न हो जाने पर मनुष्य नीचे नहीं गिरता। अतएव हमारा कृष्णभावनामृत आन्दोलन हरएक को नित्य आध्यात्मिक कार्य में लगाने का एक प्रयास है, जिससे मनुष्य भौतिक कर्मों से छूट जाता है। भक्तिमार्ग के आध्यात्मिक कार्य हैं—*श्रवणं कीर्तनं विष्णो: स्मरणं पादसेवनम्*—जिनसे भगवान् को समझा जा सकता है। अतएव, जैसाकि यहाँ पर कहा गया है—*सत्त्वेन प्रतिलभ्याय नैष्कर्म्येण विपश्चिता*—उन शुद्ध भक्तों को भगवान् की अनुभूति होती है, जो दिव्य *भक्तियोग* में रहकर कर्म करते हैं।

गोपाल तापनी उपनिषद् (१५) का कथन है—*भक्तिरस्य भजनं तदिहामुत्रोपाधिनैरास्येनैवामुष्मिन् मनस: कल्पनम् एतद् एव च नैष्कर्म्यम्।* यह नैष्कर्म्य की परिभाषा है। कोई मनुष्य तभी नैष्कर्म्य में कर्म करता है जब वह इस जीवन में या भावी जीवन में (इह अमुत्र), इसी लोक में या स्वर्गलोक में, निष्काम भाव से कृष्णभावनाभावित कार्यों में पूरी तरह लगा रहता है। *अन्याभिलाषिताशून्यम्।* जब मनुष्य सारे कल्मष से मुक्त हो जाता है और गुरु के निर्देशन में भक्ति में रहकर कर्म करता है, तो वह नैष्कर्म्य के पद पर होता है। भगवान् की सेवा ऐसी दिव्य भक्ति से होती है। मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ।

नम: शान्ताय घोराय मूढाय गुणधर्मिणे ।
निर्विशेषाय साम्याय नमो ज्ञानघनाय च ॥ १२॥

शब्दार्थ

नम:—नमस्कार; **शान्ताय**—जो समस्त भौतिक गुणों से ऊपर है और पूर्णतया शान्त है उसे अथवा प्रत्येक जीव में वास करने वाले परमात्मा स्वरूप वासुदेव को; **घोराय**—भगवान् के भयानक रूपों को यथा जामदग्न्य तथा नृसिंह देव को; **मूढाय**—पशु रूप में भगवान् के स्वरूप को यथा वराह को; **गुण-धर्मिणे**—जो भौतिक जगत में विभिन्न गुण स्वीकार करता है;

निर्विशेषाय—भौतिक गुणों से विहीन और पूर्णतया आध्यात्मिक; **साम्याय**—भगवान् बुद्ध को जो निर्वाण रूप हैं, जहाँ भौतिक कार्यकलाप रुक जाते हैं; **नमः**—मैं सादर नमस्कार करता हूँ; **ज्ञान-घनाय**—ज्ञान या निर्विशेष ब्रह्म को; **च**—भी।

मैं सर्वव्यापी भगवान् वासुदेव को, भगवान् के भयानक रूप नृसिंह देव को, भगवान् के पशुरूप (वराह देव) को, निर्विशेषवाद का उपदेश देने वाले भगवान् दत्तात्रेय को, भगवान् बुद्ध को तथा अन्य सारे अवतारों को नमस्कार करता हूँ। मैं उन भगवान् को सादर नमस्कार करता हूँ जो निर्गुण हैं, किन्तु भौतिक जगत में सतो, रजो तथा तमो गुणों को स्वीकार करते हैं। मैं निर्विशेष ब्रह्मतेज को भी सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : पिछले श्लोकों में बताया गया है कि भगवान् निराकार होते हुए भी अपने भक्तों का पक्ष लेने तथा असुरों को मारने के लिए असंख्य रूप धारण करते हैं। जैसा कि *श्रीमद्भागवत* में कहा गया है, भगवान् के इतने अवतार हैं कि वे नदी की लहरों की तरह हैं। नदी की लहरें निरन्तर प्रवाहित होती रहती हैं जिससे उन्हें गिन पाना सम्भव नहीं है। इसी प्रकार कोई यह गणना नहीं कर सकता कि कब और कैसे देश, काल तथा पात्र की आवश्यकताओं के अनुसार भगवान् के विविध अवतार प्रकट होते हैं। भगवान् शाश्वत रूप से प्रकट होते रहते हैं। जैसाकि *भगवद्गीता* (४.७) में कृष्ण ने कहा है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

''हे भरतवंशी! जब-जब धर्म का ह्रास होता है और अधर्म का प्रमुख उत्थान होता है उस समय मैं अवतरित होता हूँ।'' भौतिक जगत में कृष्णभावनामृत से विपथ होने की सदा सम्भावना रहती है अतएव कृष्ण तथा उनके भक्त ऐसी ईश्वर-विहीनता को रोकने के लिए विभिन्न रूपों में कार्य करते हैं।

निर्विशेषवादी भी, जो भगवान् के ज्ञानस्वरूप पर बल देते हैं, भगवान् के तेज में लीन होना चाहते हैं। अतएव यहाँ *ज्ञानघनाय* शब्द सूचित करता है कि भगवान् के रूप तथा अस्तित्व पर अविश्वास करने वाले नास्तिकों के लिए ही ये विभिन्न अवतार प्रकट होते हैं। चूँकि भगवान् शिक्षा देने के लिए अनेकानेक रूपों में आते हैं अतएव कोई यह नहीं कह सकता कि ईश्वर नहीं है। *ज्ञानघनाय* शब्द का प्रयोग यहाँ विशेषतया उन लोगों के लिए हुआ है जिनका ज्ञान मानसिक चिन्तन के माध्यम से भगवान् की खोज करते-करते पथरा गया है। भगवान् को जानने के लिए उथला ज्ञान व्यर्थ होता है, किन्तु जब किसी का ज्ञान गहन तथा गम्भीर हो जाता है, तो वह वासुदेव को समझता है (*वासुदेवः सर्वमिति स*

महात्मा सुदुर्लभः)। ज्ञानी इस अवस्था को अनेकानेक जन्मों के बाद प्राप्त करता है। अतएव यहाँ पर *ज्ञानघनाय* शब्द व्यवहृत हुआ है। *शान्ताय* शब्द सूचित करता है कि भगवान् वासुदेव प्रत्येक जीव के हृदय में स्थित हैं, किन्तु जीव के साथ कोई कर्म नहीं करते। निर्विशेषवादी ज्ञानी वासुदेव की अनुभूति तभी कर पाते हैं जब वे ज्ञान में पूर्णतया परिपक्व हो जाते हैं (*वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः*)।

क्षेत्रज्ञाय नमस्तुभ्यं सर्वाध्यक्षाय साक्षिणे ।
पुरुषायात्ममूलाय मूलप्रकृतये नमः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

क्षेत्र-ज्ञाय—बाह्य शरीर की प्रत्येक वस्तु जानने वाले को; नमः—मैं नमस्कार करता हूँ; तुभ्यम्—तुमको; सर्व—सब कुछ; अध्यक्षाय—अध्यक्ष को; साक्षिणे—जो साक्षी परमात्मा या अन्तर्यामी हैं; पुरुषाय—परम पुरुष को; आत्म-मूलाय—मूल स्रोत को; मूल-प्रकृतये—पुरुष-अवतार को, जो प्रकृति तथा प्रधान का उद्गम है; नमः—मैं नमस्कार करता हूँ।

मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप परमात्मा, हर एक के अध्यक्ष तथा जो कुछ भी घटित होता है उसके साक्षी हैं। आप परम पुरुष, प्रकृति तथा समग्र भौतिक शक्ति के उद्गम हैं। आप भौतिक शरीर के भी स्वामी हैं। अतएव आप परम पूर्ण हैं। मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (१३.३) में भगवान् कहते हैं—*क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत*—हे भरतवंशी! तुम्हें यह समझ लेना चाहिए कि मैं सारे शरीरों का ज्ञाता भी हूँ। हममें से हर व्यक्ति सोचता है "मैं यह शरीर हूँ" या "यह मेरा शरीर है," किन्तु वास्तव में सच्चाई इससे भिन्न है। हमें ये शरीर परम स्वामी द्वारा प्राप्त है। जीव, जो कि *क्षेत्रज्ञ* भी है, शरीर का एकमात्र स्वामी नहीं है; शरीर का वास्तविक स्वामी तो भगवान् है, जो परम *क्षेत्रज्ञ* है। उदाहरणार्थ, हम किराये का मकान लेकर उस मकान में रह सकते हैं, किन्तु इस मकान का असली स्वामी तो मकान मालिक होता है। इसी प्रकार हमें भी किसी एक प्रकार का शरीर मिलता है, जिससे हम इस भौतिक जगत का भोग कर सकते हैं, किन्तु इस शरीर का वास्तविक स्वामी तो भगवान् होता है। वह *सर्वाध्यक्ष* कहलाता है क्योंकि इस भौतिक संसार में सारी वस्तुएँ उसी की अध्यक्षता में कार्य करती हैं। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (९.१०) में की गई है जहाँ भगवान् कहते हैं—*मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्*—हे कुन्तीपुत्र! यह प्रकृति मेरी अध्यक्षता में कार्य करती हुई सभी चर तथा अचर प्राणियों को उत्पन्न करती है। प्रकृति से न जाने कितनी तरह के जीव प्रकट होते हैं जिनमें जलचर, पेड़-पौधे, कीट, पक्षी, पशु, मनुष्य तथा देवता

सम्मिलित हैं। प्रकृति माता है और भगवान् पिता हैं (*अहं बीजप्रद: पिता।*)

प्रकृति हमें भौतिक शरीर प्रदान कर सकती है, किन्तु आत्मा के रूप में हम रहते हैं भगवान् के ही अंश रूप में। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (१५.७) में हुई है—*ममैवांशो जीवलोके जीवभूत: सनातन:।* जीव ईश्वर का अंश होने के कारण इस भौतिक जगत की उपज नहीं है। अतएव इस श्लोक में भगवान् को *आत्ममूल* अर्थात् प्रत्येक वस्तु का मूल स्रोत कहा गया है। वे सारे जीवों के बीज रूप हैं (*बीजं मां सर्वभूतानाम्*) *।* *भगवद्गीता* (१४.४) में भगवान् कहते हैं—

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तय: सम्भवन्ति या:।

तासां ब्रह्म महद् योनिरहं बीजप्रद: पिता॥

"हे कुन्तीपुत्र! यह समझ लो कि सारी योनियों के जीव इस प्रकृति में ही जन्म लेते हैं और मैं वीर्यदाता पिता हूँ।" पौधे, वृक्ष, कीड़े, जलचर, देवता, पशु, पक्षी तथा अन्य सारे जीव भगवान् के पुत्र या अंश हैं, किन्तु भिन्न-भिन्न मानसिक प्रवृत्तियों के साथ संघर्ष करने के कारण उन्हें भिन्न-भिन्न प्रकार के शरीर मिलते हैं (*मन: षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति*)। इस प्रकार वे उस प्रकृति के पुत्र हैं जिसके वीर्यदाता भगवान् हैं। इस जगत में प्रत्येक जीव अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहा है और जन्म-मृत्यु के चक्र से एकमात्र मोक्ष या छुटकारे की विधि है पूर्ण आत्मसमपर्ण। इसका संकेत *नम:* शब्द से मिलता है—"मैं आपको नमस्कार करता हूँ।"

सर्वेन्द्रियगुणद्रष्ट्रे सर्वप्रत्ययहेतवे ।
असता च्छाययोक्ताय सदाभासाय ते नमः ॥ १४॥

शब्दार्थ

सर्व-इन्द्रिय-गुण-द्रष्ट्रे—सभी इन्द्रिय-विषयों के द्रष्टा में; सर्व-प्रत्यय-हेतवे—सभी संशयों के समाधान (और जिनके बिना सभी असमर्थताएँ तथा सारे संदेह हल नहीं किये जा सकते); असता—असत्य या भ्रम के प्रकट होने से; छायया—समानता के कारण; उक्ताय—कहलाया; सत्—सत्य का; आभासाय—प्रतिबिम्ब के लिए; ते—तुमको; नमः—नमस्कार करता हूँ।.

हे भगवान्! आप समस्त इन्द्रिय-विषयों के द्रष्टा हैं। आपकी कृपा के बिना सन्देहों की समस्या के हल होने की कोई सम्भावना नहीं है। यह भौतिक जगत आपके अनुरूप छाया के समान है। निस्सन्देह, मनुष्य इस भौतिक जगत को सत्य मानता है क्योंकि इससे आपके अस्तित्व की झलक मिलती है।

तात्पर्य : इस श्लोक का भावानुवाद इस प्रकार होगा "ऐन्द्रिय कर्मों के विषय वास्तव में आपके

द्वारा देखे जाते हैं। आपके निर्देशन के बिना जीव एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकता। जैसी कि *भगवद्गीता* (१५.१५) में पुष्टि हुई है—*सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।* आप हरएक के हृदय में स्थित हैं और आपसे ही स्मृति तथा विस्मृति आती है। *छायेव यस्य भुवनानि विभर्ति दुर्गा। माया* के वशीभूत जीव इस भौतिक जगत का आनन्द लूटना चाहता है, किन्तु जब तक आप आदेश नहीं देते तथा उन्हें स्मरण नहीं दिलाते तब तक वह अपने जीवन के छायाव्रत (आभासी) उद्देश्य का अनुसरण करने में प्रगति नहीं कर सकता। बद्धजीव जन्म-जन्मांतर गलत लक्ष्य की ओर प्रगति करता जाता है और उसे इस लक्ष्य का स्मरण आप द्वारा ही दिलाया जाता है। एक जन्म में बद्धजीव किसी एक लक्ष्य की ओर प्रगति करना चाहता है, किन्तु शरीर बदलने पर वह हर बात भूल जाता है। फिर भी हे प्रभु! चूँकि वह इस जगत का कुछ न कुछ भोग करना चाहता था अतएव आप उसे उसके अगले जन्म में इसका स्मरण दिलाते हैं। *मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।* चूँकि बद्धजीव आपको भूलना चाहता है अतएव आप कृपापूर्वक जन्म-जन्मांतर उसे ऐसे अवसर प्रदान करते रहते हैं जिससे वह आपको सतत् भुला सकता है। अतएव आप बद्धजीव के नित्य निर्देशक हैं। चूँकि आप हर वस्तु के मूल कारण हैं अतएव हर वस्तु सत्य प्रतीत होती है। चरम सत्य तो आप ही हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ।''

सर्वप्रत्ययहेतवे शब्द की व्याख्या श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने की है। वे कहते हैं कि फल (कार्य) से कारण की झलक मिल जाती है। उदाहरणार्थ, मिट्टी का पात्र कुम्हार के कार्य का फल है अतएव पात्र को देखकर कुम्हार के अस्तित्व का अनुमान लगाया जा सकता है। इसी प्रकार यह भौतिक जगत आध्यात्मिक जगत से मिलता जुलता है और कोई भी बुद्धिमान् व्यक्ति अंदाजा लगा सकता है कि यह किस प्रकार कार्य कर रहा है। जैसाकि *भगवद्गीता* में बताया गया है—*मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।* भौतिक जगत की गतिविधियों से ऐसा प्रतीत होता है कि उनके पीछे भगवान् की अध्यक्षता कार्य कर रही है।

नमो नमस्तेऽखिलकारणाय
निष्कारणायाद्भुतकारणाय ।
सर्वागमाम्नायमहार्णवाय

नमोऽपवर्गाय परायणाय ॥ १५॥

शब्दार्थ

नमः—मैं नमस्कार करता हूँ; नमः—पुनः नमस्कार करता हूँ; ते—तुम्हें; अखिल-कारणाय—हर वस्तु के परम कारण को; निष्कारणाय—कारणरहित को; अद्भुत-कारणाय—हर वस्तु के अद्‌भुत कारण को; सर्व—समस्त; आगम-आम्नाय—वैदिक वाङ्मय की परम्परा पद्धति के स्त्रोत को; महा-अर्णवाय—ज्ञान के विशाल सागर को अथवा उस विशाल समुद्र को जिसमें ज्ञान की समस्त सरिताएँ मिलती हैं; नमः—नमस्कार करता हूँ; अपवर्गाय—मोक्ष दाता को; पर-अयणाय—समस्त अध्यात्मवादियों के आश्रय को।

हे भगवान्! आप समस्त कारणों के कारण हैं, किन्तु आपका अपना कोई कारण नहीं है, अतएव आप हर वस्तु के अद्‌भुत कारण हैं। मैं आपको अपना सादर नमस्कार अर्पित करता हूँ। आप पञ्चरात्र तथा वेदान्तसूत्र जैसे शास्त्रों में निहित वैदिक ज्ञान के आश्रय हैं, जो आपके साक्षात् स्वरूप हैं और परम्परा पद्धति के स्त्रोत हैं। चूँकि मोक्ष प्रदाता आप ही हैं अतएव आप ही अध्यात्मवादियों के एकमात्र आश्रय हैं। मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : यहाँ पर भगवान् को अद्‌भुत कारण कहा गया है। वे इस बात में अद्‌भुत हैं कि उनसे असंख्य वस्तुएँ उद्‌भूत होने पर भी (*जन्माद्यस्य यतः*) वे पूर्ण बने रहते हैं (*पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण एवावशिष्यते*)। भौतिक जगत में हमारा अनुभव है कि यदि हमारे बैंक खाते में दस लाख डालर हों तो हम ज्यों-ज्यों धन निकालते जाते हैं त्यों-त्यों बैंक की रकम घटती जाती है और अन्त में वह शून्य हो जाती है। किन्तु भगवान् इतने पूर्ण हैं कि यदि उनके असंख्य विस्तार हो जायें तो भी वे वही भगवान् बने रहते हैं। *पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण एवावशिष्यते।* इसीलिए वे अद्‌भुत कारण हैं। *गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि।*

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द विग्रहः।

अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्॥

"गोविन्द नाम से विख्यात कृष्ण परमनियन्ता हैं। उनका शरीर शाश्वत, आनन्दमय तथा आध्यात्मिक है। वे सबों के उद्‌गम हैं। उनका कोई अन्य उद्‌गम नहीं है क्योंकि वे सभी कारणों के कारण हैं।" (*ब्रह्मसंहिता* ५.१)।

इस भौतिक जगत से भी हम समझ सकते हैं कि सूर्य लाखों वर्षों से अस्तित्व में है और उष्मा तथा प्रकाश देता रहा है फिर भी उसकी वही शक्ति बनी हुई है। उसमें कोई परिवर्तन नहीं आता। तो फिर उस परम कारण, *परब्रह्म* कृष्ण के विषय में क्या कहा जाये? उनसे हर वस्तु निरन्तर उद्‌भूत होती

रहती है फिर भी वे मूल स्वरूप (*सच्चिदानन्द विग्रह:*) बनाये रहते हैं। कृष्ण स्वयं *भगवद्गीता* (१०.) में कहते हैं— *मत्तः सर्वं प्रवर्तते*—मुझी से हर वस्तु उद्भूत है। हर वस्तु कृष्ण से निरन्तर उद्भूत होती है, तो भी वे वही कृष्ण बने रहते हैं और बदलते नहीं हैं। अतएव वे उन समस्त आध्यात्मवादियों के आश्रय हैं, जो भवबन्धन से छूटने के इच्छुक हैं।

हरएक को कृष्ण की शरण में जाना चाहिए। इसीलिए सलाह दी गई है—

अकाम: सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधी: ।

तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥

''चाहे कोई सकाम हो, या निष्काम या फिर भगवान् के अस्तित्व में तल्लीन होना चाहता हो, वह तभी बुद्धिमान् कहा जायेगा जब वह दिव्य प्रेमाभक्ति करके भगवान् कृष्ण की पूजा करता हो।'' (*भागवत* २.३.१०)। कृष्ण *परंब्रह्म* तथा *परंधाम* हैं। अतएव कुछ भी चाहने वाले को—चाहे वह *कर्मी* हो, ज्ञानी हो या योगी हो—गम्भीरतापूर्वक भगवान् की अनुभूति करने का प्रयत्न करना चाहिए; तभी उसकी सारी इच्छाएँ पूर्ण हो सकेंगी। भगवान् कहते हैं—*ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्*—जीव जिस प्रकार से मेरी शरण में आते हैं उन्हें मैं उसी प्रकार पुरस्कृत करता हूँ। यहाँ तक कि *कर्मी* भी भगवान् से हर मनवांछित वस्तु प्राप्त कर सकता है। कृष्ण के लिए इच्छित वस्तु की पूर्ति करना तनिक भी कठिन नहीं है। किन्तु मुक्ति प्राप्त करने के लिए मनुष्य को वास्तव में भगवान् कृष्ण की पूजा करनी आवश्यक है।

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्य:। मनुष्य को चाहिए कि वैदिक साहित्य का अध्ययन करके कृष्ण को समझे। जैसी कि यहाँ पुष्टि की गई है—*सर्वागमाम्नाय महार्णवाय।* वे समुद्र के तुल्य हैं और सारा वैदिक ज्ञान उन्हीं की ओर प्रवाहित होता है; अतएव बुद्धिमान् अध्यात्मवादी भगवान् की शरण ग्रहण करते हैं (*सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज*)। यही चरम लक्ष्य है।

गुणारणिच्छन्नचिदुष्मपाय
तत्क्षोभविस्फूर्जितमानसाय ।
नैष्कर्म्यभावेन विवर्जितागम-
स्वयंप्रकाशाय नमस्करोमि ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

गुण—प्रकृति के तीन गुणों (सत्त्व, रजस् तथा तमस्) द्वारा; अरणि—अरणि काष्ठ द्वारा; छन्न—आवृत; चित्—ज्ञान का; उष्मपाय—उसको जिसकी अग्नि; तत्-क्षोभ—प्रकृति के तीनों गुणों के क्षोभ से; विस्फूर्जित—बाहर; मानसाय—उसको जिसका मन; नैष्कर्म्य-भावेन—आध्यात्मिक ज्ञान की अवस्था के कारण; विवर्जित—त्याग देने वालों में; आगम—वैदिक सिद्धान्त; स्वयम्—स्वयं; प्रकाशाय—जो प्रकट है उसको; नमः करोमि—मैं सादर नमस्कार करता हूँ।

हे प्रभु! जिस प्रकार अरणि-काष्ठ में अग्नि ढकी रहती है उसी प्रकार आप तथा आपका असीम ज्ञान प्रकृति के भौतिक गुणों से ढका रहता है। किन्तु आपका मन प्रकृति के गुणों के कार्यकलापों पर ध्यान नहीं देता। जो लोग आध्यात्मिक ज्ञान में बढ़े-चढ़े हैं, वे वैदिक वाङ्मय में निर्देशित विधि-विधानों के अधीन नहीं होते। चूँकि ऐसे उन्नत लोग दिव्य होते हैं अतएव आप स्वयं उनके शुद्ध मनों में प्रकट होते हैं। इसलिए मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (१०.११) में कहा गया है—

तेषां एवानुकम्पार्थम् अहं अज्ञानजं तमः।

नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥

जिस भक्त ने अपने हृदय में भगवान् के चरणकमलों को धारण कर रखा है उसे भगवान् भीतर से विशेष कृपा करके *ज्ञानदीप* नामक दिव्य प्रकाश प्रदान करते हैं। इस *ज्ञानदीप* की तुलना अरणि-काष्ठ के भीतर छिपी अग्नि से की गई है। पूर्वकाल में यज्ञ सम्पन्न करने के लिए ऋषिगण सीधे अग्नि नहीं जलाते थे; अग्नि का आवाहन अरणि-काष्ठ से किया जाता था। इसी प्रकार सारे जीव प्रकृति के गुणों से आच्छन्न हैं तथा ज्ञान की अग्नि (ज्ञानदीप) भगवान् द्वारा ही जलाई जा सकती है यदि उन्हें कोई अपने हृदय में धारण करे। *स वै मनः कृष्णपदारविन्दयोः।* यदि कोई अपने हृदय के भीतर स्थित कृष्ण के चरणकमलों की शरण गम्भीरतापूर्वक ग्रहण करता है, तो भगवान् सारे अज्ञान का उच्छेदन कर देते हैं। ज्ञान के दीप से मनुष्य विशेष भगवत्कृपा के कारण तुरन्त ही सब कुछ उचित रूप से समझ लेता है और स्वरूपसिद्ध बन जाता है। दूसरे शब्दों में, बाह्य रूप से सुशिक्षित न होने पर भी भक्त को भक्ति के कारण भगवान् भीतर से प्रकाश देते हैं। यदि भगवान् भीतर से प्रकाश दें तो भला कोई अज्ञान में कैसे रह सकता है? अतएव मायावादियों का यह दोषारोपण कि भक्ति का मार्ग बुद्धिहीन या अशिक्षित के लिए है सत्य नहीं उतरता।

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना

सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः

(*भागवत* ५.१.१२)

यदि कोई भगवान् का अनन्य भक्त बन जाता है, तो उसमें सारे सद्गुण स्वत: आ जाते हैं। ऐसा भक्त वेदों के उपदेशों से ऊपर होता है। वह परमहंस होता है। वैदिक वाङ्मय का अवगाहन किये बिना भी भक्त भगवत्कृपा से शुद्ध तथा प्रबुद्ध हो जाता है। भक्त कहता है "अतएव हे प्रभु! मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।"

मादृक्प्रपन्नपशुपाशविमोक्षणाय
मुक्ताय भूरिकरुणाय नमोऽलयाय ।
स्वांशेन सर्वतनुभृन्मनसि प्रतीत-
प्रत्यग्दृशे भगवते बृहते नमस्ते ॥ १७॥

शब्दार्थ

मादृक्—मेरे समान; प्रपन्न—शरणागत; पशु—पशु; पाश—बन्धन से; विमोक्षणाय—छुड़ाने वाले को; मुक्ताय—प्रकृति के कल्मष से अछूते परमेश्वर को; भूरि-करुणाय—असीम दयालु को; नम:—नमस्कार करता हूँ; अलयाय—कभी भी असावधान या अकर्मण्य न रहने वाले को (मेरे उद्धार के लिए); स्व-अंशेन—आपके परमात्मा रूप अंश से; सर्व—सबों का; तनु-भृत्—प्रकृति में देहधारी जीव; मनसि—मन में; प्रतीत—कृतज्ञ; प्रत्यक्-दृशे—(समस्त कार्यों के) प्रत्यक्ष द्रष्टा के रूप में; भगवते—भगवान् को; बृहते—असीम; नम:—नमस्कार करता हूँ; ते—तुमको।

चूँकि मुझ जैसे पशु ने परममुक्त आपकी शरण ग्रहण की है, अतएव आप निश्चय ही मुझे इस संकटमय स्थिति से उबार लेंगे। निस्सन्देह, अत्यन्त दयालु होने के कारण आप निरन्तर मेरा उद्धार करने का प्रयास करते हैं। आप अपने परमात्मा-रूप अंश से समस्त देहधारी जीवों के हृदयों में स्थित हैं। आप प्रत्यक्ष दिव्य ज्ञान के रूप में विख्यात हैं और आप असीम हैं। हे भगवान्! मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने *बृहते नमस्ते* शब्दों की व्याख्या *बृहते श्रीकृष्णाय* के रूप में की है। भगवान् तो कृष्ण हैं। *तत्त्व* अनेक हैं यथा *विष्णुतत्त्व, जीवतत्त्व* तथा *शक्तितत्त्व,* किन्तु सबों से ऊपर *विष्णुतत्त्व* है, जो सर्वव्यापी है। भगवान् के इस सर्वव्यापी रूप की व्याख्या *भगवद्गीता* (१०.४२) में की गई है, जिसमें भगवान् कहते हैं—

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।

विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नम् एकांशेन स्थितो जगत्॥

"किन्तु हे अर्जुन! इस विस्तृत ज्ञान की क्या आवश्यकता है? अपने एक अंश से मैं इस सम्पूर्ण

ब्रह्माण्ड में व्याप्त हूँ और इसका पालन करता हूँ।'' इस प्रकार कृष्ण कहते हैं कि सारा भौतिक जगत उनके आंशिक स्वरूप, परमात्मा, द्वारा पालित है। भगवान् प्रत्येक ब्रह्माण्ड में पहले गर्भोदकशायी विष्णु के रूप में प्रवेश करते हैं और फिर क्षीरोदकशायी विष्णु के रूप में विस्तार करके सभी जीवों के हृदयों में, यहाँ तक कि परमाणुओं में भी, प्रवेश करते हैं। *अण्डान्तरस्थपरमाणुचयान्तरस्थम्।* प्रत्येक ब्रह्माण्ड परमाणुओं से ओतप्रोत है और भगवान् न केवल ब्रह्माण्ड के भीतर अपितु परमाणुओं के भीतर भी विद्यमान हैं। इस प्रकार वे प्रत्येक परमाणु में विष्णु के अंश परमात्मा रूप में स्थित हैं, किन्तु जितने भी विष्णुतत्त्व हैं, वे कृष्ण से उद्भूत हैं। जैसी कि *भगवद्गीता* (१०.२) में पुष्टि की गई है—*अहम् आदिर्हि देवानाम्*—कृष्ण इस भौतिक जगत के देवों—ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर—के आदि हैं। इसलिए यहाँ पर उन्हें *भगवते बृहते* कहा गया है। हर व्यक्ति भगवान् है अर्थात् ऐश्वर्य युक्त है, किन्तु कृष्ण *बृहान् भगवान्*—असीम ऐश्वर्य के स्वामी—हैं। *ईश्वरः परमः कृष्णः।* कृष्ण हर एक के उद्गम हैं। *अहं सर्वस्य प्रभवः।* यहाँ तक कि ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर भी कृष्ण से उत्पन्न हैं। *मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय*—कृष्ण से श्रेष्ठ कोई व्यक्ति नहीं है। अतएव विश्वनाथ चक्रवती ठाकुर कहते हैं कि *भगवते बृहते* का अर्थ है ''श्रीकृष्ण को।''

इस भौतिक जगत में प्रत्येक मनुष्य पशु है क्योंकि वह देहात्मबुद्धि से युक्त है—

यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रि-धातुके
स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः।
यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचि-
ज्जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः॥

''जो मनुष्य तीन तत्त्वों से बने शरीर को आत्मा मानता है, जो शरीर के उपजातों को अपने सम्बन्धी मानता है, जो अपनी जन्मभूमि को पूज्य मानता है और जो तीर्थ स्थानों में दिव्य ज्ञानवान् व्यक्तियों से भेंट करने नहीं अपितु केवल स्नान के लिए जाता है, वह गाय या गधे के समान माना जाता है।'' (*भागवत* १०.४.१३)। इस तरह प्रत्येक व्यक्ति एक तरह से पशु है और हर एक पर भौतिक संसार-रूपी घड़ियाल आक्रमण करता है। वह न केवल गजेन्द्र पर आक्रमण करता है, अपितु हममें से हर एक पर आक्रमण करता है और हम उसके दुष्परिणाम भोगते हैं।

केवल कृष्ण ही हमें इस भौतिक जगत से छुटकारा दिला सकते हैं। निस्सन्देह, वे सदैव हमारा उद्धार करने के प्रयास में लगे रहते हैं। *ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।* वे हमारे हृदयों के भीतर रहते हैं और तनिक भी असावधानी नहीं बरतते। उनका एकमात्र उद्देश्य भौतिक जीवन से हमारा उद्धार करना रहता है। ऐसा नहीं है कि जब हम उनकी प्रार्थना करते हैं तभी वे हमारी ओर ध्यान देते हैं। वे हमारे प्रार्थना करने के पूर्व से ही हमारा उद्धार करने के लिए सतत प्रयत्नशील रहते हैं। वे हमारे उद्धार के विषय में तनिक भी प्रमाद नहीं करते। अतएव इस श्लोक में कहा गया है—*भूरि करुणाय नमोऽलयाय।* यह भगवान् की अहैतुकी कृपा ही है कि वे हमें सदा भगवद्धाम वापस ले जाने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। ईश्वर मुक्त हैं अतएव वे हमें भी मुक्त बनाना चाहते हैं और यद्यपि वे निरन्तर इसके लिए प्रयत्नशील रहते हैं, किन्तु हम उनके उपदेशों का पालन करने से इनकार करते रहते हैं (*सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज*)। इतने पर भी वे क्रुद्ध नहीं होते। इसीलिए उन्हें यहाँ *भूरिकरुणाय* कहा गया है—वे हमें इस कष्टप्रद भौतिक जीवन से उबारने तथा भगवद्धाम वापस ले जाने के लिए अत्यन्त दयालु रहते हैं।

आत्मात्मजाप्तगृहवित्तजनेषु सक्तै-
र्दुष्प्रापणाय गुणसङ्गविवर्जिताय ।
मुक्तात्मभिः स्वहृदये परिभाविताय
ज्ञानात्मने भगवते नम ईश्वराय ॥ १ ॥

शब्दार्थ

आत्म—मन तथा शरीर; आत्म-ज—पुत्र तथा पुत्रियाँ; आप्त—मित्र तथा सम्बन्धी; गृह—घर, जाति, समाज तथा राष्ट्र; वित्त—धन; जनेषु—विभिन्न दास तथा सहायक तक; सक्तैः—आसक्त लोगों द्वारा; दुष्प्रापणाय—आपको, जो दुष्प्राप्य हैं; गुण-सङ्ग—तीन गुणों द्वारा; विवर्जिताय—कलुषित न होने वाले को; मुक्त-आत्मभिः—पहले से मुक्त हुए पुरुषों के द्वारा; स्व-हृदये—अपने हृदय के भीतर; परिभाविताय—ध्यान किये जाने वाले आपको; ज्ञान-आत्मने—समस्त ज्ञान के आगार; भगवते—भगवान् को; नमः—नमस्कार करता हूँ; ईश्वराय—परमनियन्ता को।.

हे प्रभु! जो लोग भौतिक कल्मष से पूर्णतः मुक्त हैं, वे अपने अन्तस्थल में सदैव आपका ध्यान करते हैं। आप मुझ जैसों के लिए दुष्प्राप्य हैं, जो मनोरथ, घर, सम्बन्धियों, मित्रों, धन, नौकरों तथा सहायकों के प्रति अत्यधिक आसक्त रहते हैं। आप प्रकृति के गुणों से निष्कलुषित भगवान् हैं। आप सारे ज्ञान के आगार, परमनियन्ता हैं। अतएव मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : यद्यपि भगवान् इस भौतिक जगत में आते हैं, किन्तु वे प्रकृति के गुणों से अप्रभावित रहते हैं। इसकी पुष्टि *ईशोपनिषद्* द्वारा होती है—*अपापविद्धम्*—वे कलुषित नहीं होते। इसी तथ्य को यहाँ पर बताया गया है। *गुणसङ्ग-विवर्जिताय।* यद्यपि भगवान् इस भौतिक जगत में अवतार के रूप में प्रकट होते हैं, किन्तु वे प्रकृति के गुणों से अप्रभावित रहते हैं। जैसाकि *भगवद्गीता* (९.११) में कहा गया है—*अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्*—अल्पज्ञ एवं मूर्ख लोग भगवान् का उपहास करते हैं क्योंकि वे एक मनुष्य की भाँति प्रकट होते हैं। अतएव मुक्तात्मा ही भगवान् को समझ सकते हैं। *मुक्तात्मभिः स्वहृदये परिभाविताय*—केवल मुक्तात्मा ही कृष्ण के विषय में निरन्तर चिन्तन कर सकता है। ऐसा व्यक्ति सबसे बड़ा योगी होता है। (*भगवद्गीता* ६.४७)

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।

श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥

"समस्त योगियों में से जो योगी दिव्य प्रेमाभक्ति से युक्त होकर मुझ में स्थित रहता है। मेरी पूजा करता है और वह योग में मुझसे घनिष्ठतापूर्वक युक्त हो जाता है और वही सर्वश्रेष्ठ है।"

यं धर्मकामार्थविमुक्तिकामा
भजन्त इष्टां गतिमाप्नुवन्ति ।
किं चाशिषो रात्यपि देहमव्ययं
करोतु मेऽदभ्रदयो विमोक्षणम् ॥ १९॥

शब्दार्थ

यम्—जिस भगवान् को; धर्म-काम-अर्थ-विमुक्ति-कामाः—ऐसे व्यक्ति जो धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चार सिद्धान्तों की कामना करते हैं; भजन्तः—पूजा द्वारा; इष्टाम्—लक्ष्य को; गतिम्—गन्तव्य; आप्नुवन्ति—प्राप्त कर सकते हैं; किम्—क्या कहा जाये; च—भी; आशिषः—अन्य आशीर्वाद; राति—प्रदान करता है; अपि—भी; देहम्—शरीर को; अव्ययम्—आध्यात्मिक; करोतु—आशीष दें; मे—मुझको; अदभ्र-दयः—अत्यधिक दयालु भगवान्; विमोक्षणम्—वर्तमान संकट से तथा भौतिक जगत से मोक्ष।

भगवान् की पूजा करने पर जो लोग धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—इन चारों में रुचि रखते हैं, वे उनसे अपनी इच्छानुसार इन्हें प्राप्त कर सकते हैं। तो फिर अन्य आशीर्वादों के विषय में क्या कहा जा सकता है? कभी-कभी भगवान् ऐसे महत्वाकांक्षी पूजकों को आध्यात्मिक शरीर प्रदान करते हैं। जो भगवान् असीम कृपालु हैं, वे मुझे वर्तमान संकट से तथा भौतिकतावादी जीवन शैली से मुक्ति का आशीर्वाद दें।

तात्पर्य : इस भौतिक जगत में कुछ लोग *अकामी* होते हैं, कुछ *सकामी* तथा कुछ धर्म, अर्थ, काम एवं अन्ततः मोक्ष की कामना करते हैं।

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्॥

(*भागवत २.३.१०*)

यह संस्तुति की गई है कि मनुष्य की चाहे जो भी स्थिति हो—चाहे वह भौतिक लाभ चाहता हो, या न चाहता हो, या अतंतः मोक्ष चाहता हो, उसे भगवान् की श्रद्धा-पूर्वक भक्ति करनी चाहिए। तभी उसे मनवांछित वस्तु प्राप्ति होगी। *ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्*। भगवान् आदान-प्रदान करते हैं। यहाँ तक कि एक सामान्य जीव भी जो चाहता है, उसे कृष्ण प्रदान करते हैं। कृष्ण हर एक के हृदय में स्थित रहते हैं और जीव को मनवांछित वस्तु देते हैं।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

''हे अर्जुन! भगवान् सबों के हृदय में आसीन हैं और भौतिक शक्ति से निर्मित यंत्र पर आरूढ़ सारे जीवों को घुमाते रहते हैं।'' (*भगवद्गीता* १.६१) भगवान् हर एक को अप नी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति का अवसर प्रदान करते हैं। यहाँ तक कि ध्रुव महाराज जैसे भक्त भी अपने पिता के साम्राज्य से अधिक बड़े साम्राज्य का वर चाहते थे। यद्यपि उन्हें आध्यात्मिक शरीर प्राप्त हुआ, किन्तु उन्हें साम्राज्य भी प्राप्त हुआ क्योंकि जो भी भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण करता है उसे भगवान् निराश नहीं करते। चूँकि गजेन्द्र ने वर्तमान संकट से या यूँ कहें कि भौतिकतावादी जीवन के वर्तमान संकट से मुक्त होने के लिए शरण ग्रहण की थी तो भगवान् उसकी इच्छापूर्ति क्यों न करते?

एकान्तिनो यस्य न कञ्चनार्थं
वाञ्छन्ति ये वै भगवत्प्रपन्नाः ।
अत्यद्भुतं तच्चरितं सुमङ्गलं
गायन्त आनन्दसमुद्रमग्नाः ॥ २० ॥
तमक्षरं ब्रह्म परं परेश-
मव्यक्तमाध्यात्मिकयोगगम्यम् ।

अतीन्द्रियं सूक्ष्ममिवातिदूर-
मनन्तमाद्यं परिपूर्णमीडे ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

एकान्तिनः—अनन्य भक्त (जिन्हें कृष्णचेतना के अतिरिक्त अन्य कोई चाह नहीं रहती); यस्य—जिस भगवान् का; न—नहीं; कञ्चन—कुछ; अर्थम्—आशीष; वाञ्छन्ति—इच्छा करते हैं; ये—जो भक्त; वै—निस्सन्देह; भगवत्-प्रपन्नाः—भगवान् के चरणकमलों में पूरी तरह शरणागत; अति-अद्भुतम्—जो अद्‌भुत हैं; तत्-चरितम्—भगवान् के कार्यकलाप; सु-मङ्गलम्—तथा जो सुनने में अत्यन्त शुभ हैं; गायन्तः—कीर्तन तथा श्रवण द्वारा; आनन्द—दिव्य आनन्द रूपी; समुद्र—समुद्र में; मग्नाः—डूबे हुए; तम्—उनको; अक्षरम्—अक्षर; ब्रह्म—ब्रह्म; परम्—दिव्य; पर-ईशम्—परम पुरुषों के स्वामी को; अव्यक्तम्—अदृश्य अथवा मन तथा इन्द्रियों से अनुभव न किए जा सकने वाले; आध्यात्मिक—दिव्य; योग—भक्तियोग द्वारा; गम्यम्—प्राप्य (भक्त्या मामभिजानाति); अति-इन्द्रियम्—भौतिक इन्द्रियों की अनुभूति से परे; सूक्ष्मम्—सूक्ष्म; इव—सदृश; अति-दूरम्—अत्यन्त दूर; अनन्तम्—असीम; आद्यम्—आदि कारण को; परिपूर्णम्—सर्वतः पूर्ण; ईडे—मैं नमस्कार करता हूँ।

ऐसे अनन्य भक्त जिन्हें भगवान् की सेवा करने के अतिरिक्त अन्य कोई चाह नहीं रहती, वे पूर्णतः शरणागत होकर उनकी पूजा करते हैं और उनके आश्चर्यजनक तथा शुभ कार्यकलापों के विषय में सदैव सुनते तथा कीर्तन करते हैं। इस प्रकार वे सदैव दिव्य आनन्द के सागर में मग्न रहते हैं। ऐसे भक्त भगवान् से कोई वरदान नहीं माँगते, किन्तु मैं तो संकट में हूँ। अतएव मैं उन भगवान् की स्तुति करता हूँ जो शाश्वत रूप में विद्यमान हैं, जो अदृश्य हैं, जो ब्रह्मा जैसे महापुरुषों के भी स्वामी हैं और जो केवल दिव्य भक्तियोग द्वारा ही प्राप्य हैं। अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण वे मेरी इन्द्रियों की पहुँच से तथा समस्त बाह्य अनुभूति से परे हैं। वे असीम हैं, वे आदि कारण हैं और सभी तरह से पूर्ण हैं। मैं उनको नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य :

अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥

(*भक्ति रसामृतसिंधु* १.१.११)

"मनुष्य को चाहिए कि भगवान् कृष्ण की दिव्य प्रेमाभक्ति, अनुकूल होकर तथा सकाम कर्म या दार्शनिक चिन्तन द्वारा किसी भौतिक लाभ की इच्छा के बिना करे। यह शुद्ध भक्ति कहलाती है।" अनन्य भक्तों को भगवान् से कुछ भी नहीं माँगना होता, किन्तु गजेन्द्र परिस्थितिवश अविलम्ब वर माँग रहा था क्योंकि उसके समक्ष बचाव का कोई अन्य उपाय नहीं था। कभी-कभी जब कोई विकल्प नहीं रहता तो शुद्ध भक्त भगवान् की कृपा पर पूर्णरूपेण आश्रित रहने के कारण किसी न किसी वर के लिए प्रार्थना करता है। किन्तु ऐसी प्रार्थना में खेद भी व्यक्त किया जाता है। जो भगवान् की दिव्य लीलाओं

के विषय में सदैव श्रवण तथा कीर्तन करता रहता है, वह सदैव ऐसे दिव्य पद पर स्थित रहता है जहाँ किसी भी भौतिक लाभ की याचना नहीं करनी पड़ती। जब तक कोई नितान्त शुद्ध भक्त नहीं होता तब तक वह *सङ्कीर्तन* आन्दोलन में कीर्तन करने तथा नाचने से मिलने वाले दिव्य आनन्द का भोग नहीं कर सकता। ऐसा आनन्द सामान्य भक्त को मिलना सम्भव नहीं है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने हमें दिखलाया है कि किस तरह भावविभोर होकर कीर्तन, श्रवण तथा नृत्य मात्र के द्वारा दिव्य आनन्द उठाया जा सकता है। यही भक्तियोग है। अतएव गजेन्द्र ने कहा—*आध्यात्मिक योगगम्यम्*—जिससे सूचित होता है कि जब तक कोई इस दिव्य पद पर स्थित न हो, तब तक वह भगवान् तक नहीं पहुँच सकता। भगवान् पास पहुँच सकने का वर अनेकानेक जन्मों के बाद प्राप्त होता है फिर भी श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह वर सबों को प्रदान किया है—उन पतितात्माओं तक को जिनके पास आध्यात्मिक जीवन की कोई भी विरासत नहीं है। वास्तव में कृष्णभावनामृत आन्दोलन में ऐसा ही देखा जाता है। अतएव भक्तियोग का मार्ग वह निर्मल विधि है, जिससे भगवान् तक पहुँचा जा सकता है। *भक्त्याहमेकया ग्राह्य:*—केवल भक्ति के माध्यम से भगवान् तक पहुँचा जा सकता है। भगवान् *भगवद्गीता* (७.१) में कहते हैं—

मय्यासक्तमना: पार्थ योगं युञ्जन् मदाश्रय: ।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥

"हे पृथापुत्र (अर्जुन)! अब सुनो कि किस तरह मेरी भावना से पूर्णतया भावित होकर योगाभ्यास करने और मन को मुझमें अनुरक्त करने से तुम मुझे पूरी तरह संशयरहित होकर जान सकते हो।" मात्र कृष्णभावनामृत में अनुरक्त होने तथा निरन्तर कृष्ण के चरणकमलों के चिन्तन से मनुष्य भगवान् को संशयरहित पूरी तरह जान सकता है।

यस्य ब्रह्मादयो देवा वेदा लोकाश्चराचरा: ।
नामरूपविभेदेन फल्ग्व्या च कलया कृता: ॥ २२॥

यथार्चिषोऽग्ने: सवितुर्गभस्तयो
निर्यान्ति संयान्त्यसकृत्स्वरोचिष: ।
तथा यतोऽयं गुणसम्प्रवाहो
बुद्धिर्मन: खानि शरीरसर्गा: ॥ २२॥

स वै न देवासुरमर्त्यतिर्यङ्

न स्त्री न षण्ढो न पुमान्न जन्तुः ।
नायं गुणः कर्म न सन्न चासन्
निषेधशेषो जयतादशेषः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

यस्य—भगवान् का; ब्रह्म-आदयः—ब्रह्मा इत्यादि देवता; देवाः—तथा अन्य देवता; वेदाः—वैदिक ज्ञान; लोकाः—विभिन्न पुरुष; चर-अचराः—जड़ (यथा वृक्ष) तथा चेतन; नाम-रूप—विभिन्न नामों तथा विभिन्न रूपों के; विभेदेन—ऐसे विभागों द्वारा; फल्ग्व्या—कम महत्त्वपूर्ण; च—भी; कलया—अंशों से; कृताः—उत्पन्न; यथा—जिस तरह; अर्चिषः—स्फुलिंग; अग्नेः—अग्नि के; सवितुः—सूर्य से; गभस्तयः—चमकीले कण; निर्यान्ति—बाहर निकलते हैं; संयान्ति—तथा प्रवेश करते हैं; असकृत्—पुनः पुनः; स्व-रोचिषः—अंशरूप; तथा—उसी प्रकार से; यतः—भगवान् जिससे; अयम्—यह; गुण-सम्प्रवाहः—प्रकृति के विभिन्न गुणों का निरन्तर प्राकट्य; बुद्धिः मनः—बुद्धि तथा मन; खानि—इन्द्रियाँ; शरीर—शरीर की (स्थूल तथा सूक्ष्म); सर्गाः—विभाग; सः—वह परमात्मा; वै—निस्सन्देह; न—नहीं है; देव—देवता; असुर—असुर; मर्त्य—मनुष्य; तिर्यक्—पक्षी या पशु; न—न तो; स्त्री—स्त्री; न—न तो; षण्ढः—क्लीव; न—न तो; पुमान्—मनुष्य; न—न तो; जन्तुः—जीव या पशु; न अयम्—न तो वह है; गुणः—भौतिक गुण; कर्म—सकाम कर्म; न—न तो; सत्—प्राकट्य; न—न तो; च—भी; असत्—अप्राकट्य; निषेध—नेति-नेति का भेदभाव; शेषः—वह अन्त है; जयतात्—उनकी जय हो; अशेषः—जो अनन्त है।.

भगवान् अपने सूक्ष्म अंश जीव तत्त्व की सृष्टि करते हैं जिसमें ब्रह्मा, देवता तथा वैदिक ज्ञान के अंग (साम, ऋग्, यजुर् तथा अथर्व) से लेकर अपने-अपने नामों तथा गुणों सहित समस्त चर तथा अचर प्राणी सम्मिलित हैं। जिस प्रकार अग्नि के स्फुलिंग या सूर्य की चमकीली किरणें अपने स्त्रोत से निकल कर पुनः उसी में समा जाती हैं उसी प्रकार मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, स्थूल भौतिक तथा सूक्ष्म भौतिक शरीर तथा प्रकृति के गुणों के सतत रूपान्तर (विकार)—ये सभी भगवान् से उद्भूत होकर पुनः उन्हीं में समा जाते हैं। वे न तो देव हैं न दानव, न मनुष्य न पक्षी या पशु हैं। वे न तो स्त्री या पुरुष या क्लीव हैं और न ही पशु हैं। न ही वे भौतिक गुण, सकाम कर्म, प्राकट्य या अप्राकट्य हैं। वे ''नेति-नेति'' का भेदभाव करने में अन्तिम शब्द हैं और वे अनन्त हैं। उन भगवान् की जय हो।

तात्पर्य : यह भगवान् की असीम शक्ति का संक्षिप्त वर्णन है। परम पुरुष अपने अंशों को प्रकट करके विभिन्न अवस्थाओं में कर्म करते हैं और ये अंश उनकी विभिन्न शक्तियों (*परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते*) के रूप में एकसाथ भिन्न-भिन्न रूप में स्थित हैं। प्रत्येक शक्ति सहज रूप से कार्यशील है (*स्वाभाविकी ज्ञान बलक्रिया च*)। अतएव भगवान् अनन्त हैं। *न तत् समश्चाभ्याधिकश्च दृश्यते*—न तो कुछ उनके तुल्य हैं, न कोई वस्तु उनसे बढ़कर है। यद्यपि वे अनेक प्रकार से अपने को प्रकट करते हैं लेकिन उन्हें स्वयं कुछ भी नहीं करना होता (*न तस्य कार्यं करणं च विद्यते*) क्योंकि उनकी असीम शक्तियों के विस्तारों से ही सब कुछ किया जाता है।

जिजीविषे नाहमिहामुया कि-
मन्तर्बहिश्चावृतयेभयोन्या ।
इच्छामि कालेन न यस्य विप्लव-
स्तस्यात्मलोकावरणस्य मोक्षम् ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

जिजीविषे—दीर्घकाल तक रहने की इच्छा; न—नहीं; अहम्—मैं; इह—इस जीवन में; अमुया—या अगले जीवन में (इस संकट से बच जाने पर मैं जीना नहीं चाहता); किम्—क्या लाभ; अन्तः—भीतर से; बहिः—बाहर से; च—तथा; आवृतया—अज्ञान से आच्छादित; इभ-योन्या—हाथी रूप इस जन्म में; इच्छामि—मेरी इच्छा है; कालेन—काल के प्रभाव से; न—नहीं है; यस्य—जिसका; विप्लवः—संहार; तस्य—उस; आत्म-लोक-आवरणस्य—आत्म-साक्षात्कार के आवरण से; मोक्षम्—मोक्ष।

घड़ियाल के आक्रमण से मुक्त किये जाने के बाद मैं और आगे जीवित रहना नहीं चाहता। हाथी के शरीर से क्या लाभ जो भीतर तथा बाहर से अज्ञान से आच्छादित हो? मैं तो अज्ञान के आवरण से केवल नित्य मोक्ष की कामना करता हूँ। यह आवरण काल के प्रभाव से विनष्ट नहीं होता।

तात्पर्य : इस भौतिक जगत में प्रत्येक जीव अज्ञान के अंधकार से आच्छादित है। इसलिए वेदों का आदेश है कि मनुष्य को गुरु के माध्यम से भगवान् तक पहुँचना चाहिए जिनका वर्णन तथा स्तुति *गौतमीय तन्त्र* में इस प्रकार की गई है—

ॐ अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

"मैं अपने गुरु को सादर नमस्कार करता हूँ जिन्होंने ज्ञान के दीपक से मेरी उन आँखों को खोल दिया है, जो अज्ञान के अंधकार से अंधी हो चुकी थीं।" भले ही मनुष्य इस जगत में जीवन-संघर्ष क्यों न करे, किन्तु उसके लिए सदैव जीवित रह पाना असम्भव है। फिर भी मनुष्य को समझना चाहिए कि यह जीवन-संघर्ष अज्ञान के कारण है, क्योंकि प्रत्येक जीव परमेश्वर का नित्य अंश है। किसी को हाथी या भारतीय या अमरीकी पुरुष के रूप में जीवित रहने की कोई आवश्यकता नहीं है। मनुष्य को जन्म-मृत्यु के चक्कर से मुक्ति प्राप्त करने की एकमात्र कामना करनी चाहिए। अज्ञान के कारण प्रकृति द्वारा प्रदत्त प्रत्येक जीवन को हम सुखी तथा आनन्ददायक मानते हैं, किन्तु इस भौतिक जगत के पतित जीवन में ब्रह्मा से लेकर एक क्षुद्र चींटी तक कोई भी वास्तव में सुखी नहीं है। हम सुखपूर्वक रहने के लिए अनेक योजनाऐ बनाते हैं, किन्तु इस भौतिक जगत में कोई सुखी नहीं हो सकता भले ही हम इस

जीवन में या उस जीवन में स्थायी आवास बनाने का कितना ही प्रयत्न क्यों न करें।

सोऽहं विश्वसृजं विश्वमविश्वं विश्ववेदसम् ।
विश्वात्मानमजं ब्रह्म प्रणतोऽस्मि परं पदम् ॥ २६॥

शब्दार्थ

सः—वह; अहम्—मैं (भौतिक जीवन से छुटकारा चाहने वाला); विश्व-सृजम्—इस विश्व का सृजन करने वाले को; विश्वम्—जो स्वयं सम्पूर्ण विश्व स्वरूप है; अविश्वम्—विश्व से परे; विश्व-वेदसम्—इस विश्व के ज्ञाता को या इस विश्व के अवयव को; विश्व-आत्मानम्—विश्व की आत्मा को; अजम्—अजन्मा को; ब्रह्म—परम; प्रणतः अस्मि—नमस्कार करता हूँ; परम्—दिव्य; पदम्—आश्रय, शरण।

भौतिक जीवन से मोक्ष की कामना करता हुआ अब मैं उस परम पुरुष को सादर नमस्कार करता हूँ जो इस ब्रह्माण्ड का स्त्रष्टा है, जो साक्षात् विश्व का स्वरूप होते हुए भी इस विश्व से परे है। वह इस जगत में हर वस्तु का परम ज्ञाता है, ब्रह्माण्ड का परमात्मा है। वह अजन्मा है और परम पद पर स्थित भगवान् है। उसे मैं सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : कभी-कभी जब सामान्य व्यक्ति को भक्तियोग या कृष्णभावनामृत का उपदेश दिया जाता है, तो लोग तर्क करते हैं "कहाँ हैं कृष्ण? कहाँ है ईश्वर? क्या आप हमें उनका दर्शन करा सकते हैं?" इस श्लोक में इसका उत्तर मिलता है कि यदि हम पर्याप्त बुद्धिमान् हैं, तो हमें यह जानना चाहिए कि कोई ऐसा भी है, जिसने सम्पूर्ण विश्व की रचना की है, जिसने इस विश्व के लिए अवयव प्रदान किये और स्वयं अवयव बन गया, जो नित्य है, किन्तु इस विश्व के भीतर नहीं है। केवल इसी बात पर भगवान् को सादर नमस्कार किया जा सकता है। भक्तिमय जीवन की यही शुरुआत है।

योगरन्धितकर्माणो हृदि योगविभाविते ।
योगिनो यं प्रपश्यन्ति योगेशं तं नतोऽस्म्यहम् ॥ २७॥

शब्दार्थ

योग-रन्धित-कर्माणः—ऐसे व्यक्ति जिनके सकाम कर्मों के फल भक्तियोग द्वारा जलाये जा चुके हैं; हृदि—हृदय में; योग-विभाविते—पूर्णतः शुद्ध तथा विमल; योगिनः—दक्ष योगी; यम्—भगवान् को; प्रपश्यन्ति—प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं; योग-ईशम्—समस्त योग के स्वामी, भगवान् को; तम्—उसको; नतः अस्मि—नमस्कार करता हूँ; अहम्—मैं।

मैं उन ब्रह्म, परमात्मा, समस्त योग के स्वामी को सादर नमस्कार करता हूँ जो सिद्ध योगियों द्वारा अपने हृदयों में तब देखे जाते हैं जब उनके हृदय भक्तियोग के अभ्यास द्वारा सकाम कर्मों के फलों से पूर्णतया शुद्ध तथा मुक्त हो जाते हैं।

तात्पर्य : गजेन्द्र ने इतना ही स्वीकार किया कि कोई न कोई ऐसा होगा जिसने इस ब्रह्माण्ड की

रचना की है और इसको अवयव प्रदान किये हैं। इतना तो हर एक को, यहाँ तक कि कट्टर नास्तिक को भी मान लेना चाहिए। तो फिर अभक्त तथा सामान्य नास्तिक इसे क्यों नहीं स्वीकार करते? इसका कारण यह है कि वे अपने सकाम कर्मों के फलों से दूषित रहते हैं। मनुष्य को एक के बाद एक सम्पन्न किए गए सकाम कर्मों के फलस्वरूप हृदय में जमी हुई धूल से मुक्त होना चाहिए। उसे भक्तियोग के अभ्यास से इस धूल को धो डालना चाहिए। *योगरन्धित कर्मणः।* जब तक मनुष्य भौतिक प्रकृति के रजो तथा तमो गुणों से आच्छादित है तब तक भगवान् को जान पाने की कोई सम्भावना नहीं है। *तदा रजस्तमो भावाः कामलोभादयश्च ये।* जब मनुष्य रजो तथा तमो गुणों से मुक्त हो जाता है, तो वह काम तथा लोभ जैसे निम्नतम दुर्गुणों से मुक्त हो जाता है।

आजकल ऐसी बहुत सी योग की पाठशालाएँ हैं, जो लोगों को योग के अभ्यास से काम तथा लोभ विकसित करने के लिए प्रोत्साहित करती हैं। अतएव लोग तथाकथित योग अभ्यास के लिए अत्यन्त लालायित रहते हैं। किन्तु योग की वास्तविक विधि यहाँ पर वर्णित है। जैसाकि अधिकृत रूप में *श्रीमद्भागवत* (१२.१३.१) में कहा गया है—*ध्यानावस्थित तद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनः*—योगी वह है, जो भगवान् के चरणकमलों का सदैव ध्यान करता है। इसी की पुष्टि *ब्रह्म-संहिता* (५.३) में भी हुई है—

प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्तिविलोचनेन
सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति।
यं श्यामसुन्दरमचिन्त्यगुणस्वरूपं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

"मैं आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ जो साक्षात् श्यामसुन्दर या कृष्ण हैं, जिनके गुण अचिन्त्य एवं असंख्य हैं, जिन्हें शुद्ध भक्त अपने हृदयों में प्रेम रूपी अञ्जन लगी हुई भक्तिमयी आँखों से देखते हैं।" भक्तियोगी श्यामसुन्दर को—श्याम वर्ण वाले सुन्दर कृष्ण को—निरन्तर देखता है। चूँकि गजेन्द्र अपने को सामान्य पशु समझ रहा था अतएव उसने अपने आपको भगवान् का दर्शन पाने के लिए अयोग्य समझा। विनयवश उसने सोचा कि वह योग का अभ्यास नहीं कर सकता। दूसरे शब्दों में, भला ऐसे लोग जो देहात्मबुद्धि के कारण पशुओं के समान हैं और जिनकी चेतना शुद्ध नहीं है योग का

अभ्यास कैसे कर सकते हैं? वर्तमान काल में जिन लोगों की इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं, जिन्हें दर्शन का ज्ञान नहीं है और जो धर्म के सिद्धान्तों या विधि-विधानों का पालन नहीं करते, वे भी योगी होने का अभिनय करते हैं। योग अभ्यास में यह सबसे बड़ी विडम्बना है।

नमो नमस्तुभ्यमसह्यवेग
शक्तित्रयायाखिलधीगुणाय ।
प्रपन्नपालाय दुरन्तशक्तये
कदिन्द्रियाणामनवाप्यवर्त्मने ॥ २ ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार करता हूँ; नमः—पुनः नमस्कार है; तुभ्यम्—तुमको; असह्य—दुस्तर; वेग—वेग, प्रवाह; शक्ति-त्रयाय—तीन शक्तियों वाले परम पुरुष को; अखिल—ब्रह्माण्ड का; धी—बुद्धि के लिए; गुणाय—इन्द्रिय-विषयों के रूप में प्रकट होने वाले; प्रपन्न-पालाय—शरणागतों को शरण देने वाले ब्रह्म को; दुरन्त-शक्तये—दुर्जय शक्ति वाले; कत्-इन्द्रियाणाम्—उन व्यक्तियों द्वारा जो इन्द्रिय-संयम करने में अक्षम हैं; अनवाप्य—दुर्लभ; वर्त्मने—पथ पर।

हे प्रभु! आप तीन प्रकार की शक्तियों के दुस्तर वेग के नियामक हैं। आप समस्त इन्द्रियसुख के आगार हैं और शरणागत जीवों के रक्षक हैं। आप असीम शक्ति के स्वामी हैं, किन्तु जो लोग अपनी इन्द्रियों को वश में रखने में अक्षम हैं, वे आप तक नहीं पहुँच पाते। मैं आपको बारम्बार सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : आसक्ति, लोभ तथा काम—ये तीन दुस्तर वेग हैं, जो भगवान् के चरणकमलों पर मन को एकाग्र करने में बाधक होते हैं। ये वेग इसलिए कार्यशील रहते हैं क्योंकि भगवान् नहीं चाहते कि अभक्तों तथा नास्तिकों को उनका साक्षात्कार हो। किन्तु भगवान् के चरणकमलों की शरण लेने पर ये अवरोध हट जाते हैं और भगवान् का साक्षात्कार हो सकता है। अतएव भगवान् शरणागतों के रक्षक हैं। भगवान् के चरणकमलों की शरण में गये बिना कोई व्यक्ति भक्त नहीं बन सकता। तब भगवान् उसे भीतर से बुद्धि प्रदान करते हैं जिससे वह भगवद्धाम वापस जा सकता है।

नायं वेद स्वमात्मानं
यच्छक्त्याहंधिया हतम् ।
तं दुरत्ययमाहात्म्यं
भगवन्तमितोऽस्म्यहम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; अयम्—सामान्य लोग; वेद—जानते हैं; स्वम्—अपनी; आत्मानम्—पहचान; यत्-शक्त्या—जिसके प्रभाव से; अहम्—मैं स्वतंत्र हूँ; धिया—इस बुद्धि से; हतम्—पराजित या आच्छादित; तम्—उसको; दुरत्यय—समझने में कठिन; माहात्म्यम्—जिसका यश; भगवन्तम्—भगवान् का; इतः—शरण लेकर; अस्मि अहम्—मैं हूँ।

मैं उन भगवान् को सादर नमस्कार करता हूँ जिनकी माया से ईश्वर का अंश जीव देहात्मबुद्धि के कारण अपनी असली पहचान को भूल जाता है। मैं उन भगवान् की शरण ग्रहण करता हूँ जिनके यश को समझ पाना कठिन है।

तात्पर्य : जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है प्रत्येक जीव—चाहे वह मनुष्य हो, देवता, पशु, पक्षी, मक्खी या कुछ और हो—भगवान् का अंश है। भगवान् तथा जीव पिता तथा पुत्र के समान घनिष्ठतापूर्वक जुड़े हैं। दुर्भाग्यवश, भौतिक सम्पर्क के कारण, जीव इसे भूल जाता है और अपनी ही योजना के अनुसार स्वतंत्र रूप से भौतिक जगत का भोग करना चाहता है। इस माया को पार कर पाना अत्यन्त कठिन है। माया जीव को आच्छादित कर लेती है क्योंकि जीव भगवान् को भूलना चाहता है और इस जगत का भोग करने के लिए अपनी योजना बनाना चाहता है। जब तक यह कलुष (कल्मष) बना रहता है तब तक बद्धजीव अपनी वास्तविक पहचान को समझने में असमर्थ बना रहेगा और जन्म-जन्मांतर भ्रम में पड़ा रहेगा। *अतो गृहक्षेत्रसुताप्तवित्तैर्जनस्य मोहोऽयम् अहं ममेति* (*भागवत* ५.५.)। जब तक जीव इतना प्रबुद्ध नहीं हो लेता कि वह अपनी वास्तविक स्थिति को समझ सके तब तक वह भौतिकतावादी जीवन के प्रति तथा घर, देश अथवा क्षेत्र, समाज, पुत्र, परिवार, जाति, बैंक बचत आदि के प्रति आकृष्ट रहता रहेगा। इन सबसे आच्छादित होने से वह सोचता रहेगा "मैं यह शरीर हूँ और इससे सम्बन्धित प्रत्येक वस्तु मेरी है।" इस भौतिकवादी देहात्मबुद्धि से ऊपर उठ पाना अत्यन्त कठिन है, किन्तु जो भगवान् के शरणागत हो जाता है, जैसाकि गजेन्द्र ने किया, वह ब्रह्मपद को प्राप्त करके प्रबुद्ध हो जाता है—

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।

समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥

"जो अध्यात्मपद पर स्थित है उसे तुरन्त ही परब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है और वह पूर्ण प्रसन्न हो जाता है। वह न तो पछताता है, न ही किसी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा करता है। वह समस्त जीवों के प्रति समान भाव रखता है। उस अवस्था में वह मेरी शुद्धभक्ति को प्राप्त करता है।" (*भगवद्गीता* १.५४)। चूँकि भक्त पूर्णरूपेण ब्रह्मपद पर रहता है अतएव वह किसी अन्य जीव से

ईर्ष्या नहीं करता (*समः सर्वेषु भूतेषु*)।

श्रीशुक उवाच

एवं गजेन्द्रमुपवर्णितनिर्विशेषं
ब्रह्मादयो विविधलिङ्गभिदाभिमानाः ।
नैते यदोपससृपुर्निखिलात्मकत्वात्
तत्राखिलामरमयो हरिराविरासीत् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; गजेन्द्रम्—गजेन्द्र को; उपवर्णित—जिसका वर्णन; निर्विशेषम्—किसी विशेष व्यक्ति के लिए न होकर (किन्तु ब्रह्म के लिए यद्यपि वह यह नहीं जानता था कि ब्रह्म कौन है); ब्रह्मा-आदयः—ब्रह्मा, शिव, इन्द्र तथा चन्द्र जैसे देवता; विविध—नाना प्रकार के; लिङ्ग-भिदा—पृथक्-पृथक् स्वरूपों से; अभिमानाः—अपने को पृथक् सत्ता मानते हुए; न—नहीं; एते—सभी; यदा—जब; उपससृपुः—पास आया; निखिल-आत्मकत्वात्—भगवान् के हरएक के परमात्मा होने से; तत्र—वहाँ; अखिल—ब्रह्माण्ड का; अमर-मयः—देवताओं से युक्त (जो शरीर के केवल बाहरी अंग हैं); हरिः—भगवान्, जो हर वस्तु का हरण कर सकते हैं; आविरासीत्—प्रकट हुआ (हाथी के समक्ष)।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : जब गजेन्द्र किसी व्यक्ति विशेष का नाम न लेकर परम पुरुष का वर्णन कर रहा था, तो उसने ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, चन्द्र इत्यादि देवताओं का आह्वान नहीं किया। अतएव इनमें से कोई भी उसके पास नहीं आये। किन्तु चूँकि भगवान् हरि परमात्मा, पुरुषोत्तम हैं अतएव वे गजेन्द्र के समक्ष प्रकट हुए।

तात्पर्य : गजेन्द्र के वर्णन से लग रहा है कि वह किसी परम सत्ता को लक्ष्य कर रहा था, यद्यपि उसे यह कोई पता न था कि यह परम सत्ता कौन है। उसने अटकल लगाई "ऐसी कोई परम सत्ता अवश्य है, जो सबों से ऊपर है।" ऐसी स्थिति में भगवान् के विविध अंशों ने यथा ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, चन्द्र इत्यादि ने सोचा कि यह तो सहायता के लिए हमें नहीं बुला रहा, यह तो उस ब्रह्म को बुला रहा है; जो हम सबों के ऊपर हैं। जैसाकि गजेन्द्र ने वर्णन किया है, भगवान् के विविध अंश हैं जिनमें देवता, मनुष्य तथा पशु सम्मिलित हैं, जो विभिन्न रूपों से आच्छादित हैं। यद्यपि देवताओं के जिम्मे ब्रह्माण्ड के विविध भागों की देखभाल का उत्तरदायित्व है, किन्तु गजेन्द्र ने सोचा कि ये सब उसकी रक्षा कर पाने में असमर्थ हैं। *हरिं विना नैव मृतिं तरन्ति*—कोई भी व्यक्ति किसी को जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधि के संकट से बचा नहीं सकता। केवल भगवान् ही संसार के खतरों से रक्षा कर सकते हैं। अतएव इस भयानक संसारी से मुक्त होने के लिए बुद्धिमान् व्यक्ति भगवान् के पास जाता है, किसी देवता के पास नहीं। जैसाकि *भगवद्गीता* (७.२०) में पुष्टि की गई है—*कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः*

प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः—जो लोग अज्ञानी हैं, वे क्षणिक भौतिक लाभ के लिए विभिन्न देवताओं के पास जाते हैं, किन्तु वास्तविकता तो यह है कि ये देवता जीव को भौतिक संसार के खतरों से बचा नहीं सकते। अन्य जीवों की तरह देवता भी भगवान् के दिव्य शरीर के बाह्य अंग मात्र हैं। जैसाकि वैदिक मंत्रों में कहा गया है—*स आत्मा अङ्गान्यन्या देवताः।* शरीर के भीतर आत्मा रहता है और शरीर के विभिन्न भाग यथा हाथ-पाँव बाह्य हैं। इसी प्रकार समग्र विश्व की आत्मा नारायण या भगवान् विष्णु हैं और सारे देवता, मनुष्य तथा अन्य जीव उनके शरीर के अंग हैं।

यह भी निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि चूँकि वृक्ष अपनी जड़ों के बल पर जीवित रहता है और जब जड़ों को पानी दिया जाता है, तो वृक्ष के सारे अंगों को भोजन मिल जाता है उसी तरह मनुष्य को चाहिए कि वह भगवान् की वह पूजा करे जो सबों के आदि मूल हैं। यद्यपि भगवान् के पास तक पहुँचना अत्यन्त कठिन है, किन्तु वे हमारे अत्यन्त समीप रहते हैं क्योंकि उनका वास हमारे हृदयों में होता है। ज्योंही भगवान् यह समझ लेते हैं कि कोई मनुष्य पूर्णतया उनकी शरण में आकर कृपायाचना कर रहा है त्योंही वे तुरन्त कार्यवाही करते हैं। फलतः गजेन्द्र की रक्षा करने के लिए यद्यपि देवता नहीं आये किन्तु उसकी भावप्रवण स्तुति के कारण भगवान् तुरन्त ही उसके समक्ष प्रकट हुए। इसका अर्थ यह नहीं है कि देवता गजेन्द्र से अप्रसन्न थे बल्कि वास्तव में जब विष्णु की पूजा की जाती है, तो अन्य सारे देवताओं की भी पूजा हो जाती है। *यस्मिन् तुष्टे जगत् तुष्टम्*—यदि भगवान् प्रसन्न हैं, तो सभी प्रसन्न हैं।

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या॥

''जिस प्रकार वृक्ष की जड़ में पानी डालने से तना, शाखाएँ तथा अन्य सभी भाग ऊर्जित हो उठते हैं, जिस प्रकार उदर में भोजन के पहुँचने से इन्द्रियाँ तथा शरीर के अंग चैतन्य हो उठते हैं उसी प्रकार भक्ति द्वारा भगवान् की पूजा करने से भगवान् के अंश रूप देवता स्वतः संतुष्ट हो जाते हैं। (*भागवत* ४.३१.१४)। जब भगवान् की पूजा की जाती है, तो सारे देवता तुष्ट हो जाते हैं।

तं तद्वदार्तमुपलभ्य जगन्निवासः

स्तोत्रं निशम्य दिविजैः सह संस्तुवद्भिः ।
छन्दोमयेन गरुडेन समुह्यमान-
श्चक्रायुधोऽभ्यगमदाशु यतो गजेन्द्रः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको (गजेन्द्र को); तद्वत्—उस तरह से; आर्तम्—दुखी (घड़ियाल के आक्रमण से); उपलभ्य—समझकर; जगत्-निवासः—भगवान्, जो सर्वत्र विद्यमान हैं; स्तोत्रम्—स्तुति; निशम्य—सुनकर; दिविजैः—स्वर्गलोक के निवासियों के; सह—साथ; संस्तुवद्भिः—स्तुति करने वालों के द्वारा; छन्दोमयेन—उनकी इच्छित गति से; गरुडेन—गरुड़ द्वारा; समुह्यमानः—ले जाये जाकर; चक्र—चक्रधारण किये हुए; आयुधः—अन्य हथियार यथा गदा; अभ्यगमत्—आ गये; आशु—तुरन्त; यतः—जहाँ; गजेन्द्रः—गजेन्द्र स्थित था।

गजेन्द्र के प्रार्थना करने के कारण उसकी विकट स्थिति को समझने के पश्चात् सर्वत्र निवास करने वाले भगवान् हरि देवताओं समेत वहाँ प्रकट हुए। ये देवता उनकी स्तुति कर रहे थे। अपने हाथों में चक्र तथा अन्य आयुध लिए और अपने वाहन गरुड़ की पीठ पर सवार होकर वे तीव्र गति से अपनी इच्छानुसार गजेन्द्र के समक्ष प्रकट हुए।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने विशेष रूप से संकेत किया है कि चूँकि गजेन्द्र अत्यधिक संकट में था और भगवान् से कृपा करने के लिए प्रार्थना कर रहा था अतएव देवता वहाँ जाने से सकुचाये यद्यपि वे रक्षा करने के लिए तुरन्त जा सकते थे। चूँकि उन्होंने सोचा कि गजेन्द्र की प्रार्थना भगवान् को लक्षित करके की गई है, अत: उन्होंने इसे अपमान समझा, किन्तु यह स्वयं में एक अपराध था। फलस्वरूप जब भगवान् वहाँ गये तो वे भी गये और उन्होंने भगवान् की स्तुति की जिससे उनका अपराध क्षमा हो सके।

सोऽन्तःसरस्युरुबलेन गृहीत आर्तो
दृष्ट्वा गरुत्मति हरिं ख उपात्तचक्रम् ।
उत्क्षिप्य साम्बुजकरं गिरमाह कृच्छ्रा-
न्नारायणाखिलगुरो भगवन्नमस्ते ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (गजेन्द्र); अन्तः-सरसि—जल में; उरु-बलेन—बलपूर्वक; गृहीतः—जो घड़ियाल द्वारा पकड़ा गया था; आर्तः—तथा अत्यन्त पीड़ित; दृष्ट्वा—देखकर; गरुत्मति—गरुड़ की पीठ पर; हरिम्—भगवान् को; खे—आकाश में; उपात्त-चक्रम्—अपना चक्र घुमाते; उत्क्षिप्य—उठा कर; स-अम्बुज-करम्—कमल का फूल लिए अपनी सूंड़ को; गिरम्-आह—शब्द कहे; कृच्छ्रात्—कठिनाई से; नारायण—हे भगवान्, नारायण; अखिल-गुरो—हे विश्व के स्वामी; भगवन्—हे भगवान्; नमः ते—मैं नमस्कार करता हूँ।

घड़ियाल ने गजेन्द्र को जल में बलपूर्वक पकड़ रखा था जिससे वह अत्यधिक पीड़ा का अनुभव कर रहा था, किन्तु जब उसने देखा कि नारायण अपना चक्र घुमाते हुए गरुड़ की पीठ

पर बैठ कर आकाश में आ रहे हैं, तो उसने तुरन्त ही अपनी सूंड़ में कमल का एक फूल ले लिया और अपनी वेदना के कारण अत्यन्त कठिनाई से निम्नलिखित शब्द कहे ''हे भगवान्, नारायण, हे ब्रह्माण्ड के स्वामी! हे परमेश्वर! मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।''

तात्पर्य : गजेन्द्र भगवान् का दर्शन पाने के लिए इतना इच्छुक था कि जब उसने भगवान् को आकाश में आते देखा तो उसने अत्यन्त पीड़ा से तथा मन्द स्वर में भगवान् को नमस्कार किया। भक्त भयावह स्थिति को भी भयानक नहीं मानता क्योंकि ऐसी संकटपूर्ण स्थिति में वह अत्यन्त आनन्द से भगवान् से प्रार्थना कर सकता है। इस प्रकार भक्त संकट को एक सुअवसर मानता है। *तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाण: ।* जब भक्त विकट संकट में होता है, तो वह इस संकट को भगवान् की महती कृपा मानता है क्योंकि यह संकट भगवान् का निष्ठापूर्वक तथा एकाग्र चित्त से चिन्तन करने का अवसर प्रदान करता है। *तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमानो भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्* (*भागवत* १०.१४.)। वह भगवान् पर दोषारोपण नहीं करता कि उनके कारण भक्त ऐसी संकटपूर्ण स्थिति में फँस गया है प्रत्युत वह अपनी संकटपूर्ण स्थिति को अपने विगत दुष्कर्मों का फल मानता है और इस अवसर को भगवान् की प्रार्थना करने का सुयोग समझता है और भगवान् को धन्यवाद देता है कि उसे ऐसा अवसर मिला। जब भक्त इस प्रकार रहता है, तो उसकी मुक्ति—भगवद्धाम-पुनरागमन—सुनिश्चित रहती है। हम इसे गजेन्द्र के उदाहरण से सत्य मान सकते हैं क्योंकि उसने अत्यन्त आतुरता से भगवान् की प्रार्थना की और इस तरह उसे तुरन्त भगवद्धाम लौटने का अवसर प्राप्त हो गया।

तं वीक्ष्य पीडितमजः सहसावतीर्य
सग्राहमाशु सरसः कृपयोज्जहार ।
ग्राहाद्विपाटितमुखादरिणा गजेन्द्रं
संपश्यतां हरिरमूमुचदुच्छ्रियाणाम् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको (गजेन्द्र को); वीक्ष्य—(उस अवस्था में) देख कर; पीडितम्—पीड़ित; अजः—अजन्मा भगवान्; सहसा—अचानक; अवतीर्य—(गरुड़ से) उतरकर; स-ग्राहम्—घड़ियाल सहित; आशु—तुरन्त; सरसः—जल से; कृपया—कृपा करके; उज्जहार—बाहर निकाल लिया; ग्राहात्—घड़ियाल से; विपाटित—अलग किया; मुखात्—मुख से; अरिणा—चक्र से; गजेन्द्रम्—गजेन्द्र को; सम्पश्यताम्—जो देख रहे थे; हरिः—भगवान्; अमूम्—उसको (गजेन्द्र को); उचत्—बचा लिया; उच्छ्रियाणाम्—सभी देवताओं की उपस्थिति में।

तत्पश्चात् गजेन्द्र को ऐसी पीड़ित अवस्था में देखकर, अजन्मा भगवान् हरि तुरन्त अहैतुकी

कृपावश गरुड़ की पीठ से नीचे उतरे और गजेन्द्र को घड़ियाल समेत जल के बाहर खींच लाये। तब समस्त देवताओं की उपस्थिति में जो सारा दृश्य देख रहे थे, भगवान् ने अपने चक्र से घड़ियाल के मुख को उसके शरीर से पृथक् कर दिया। इस प्रकार उन्होंने गजेन्द्र को बचा लिया।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कंध के अन्तर्गत ''गजेन्द्र की समर्पण-स्तुति'' नामक तीसरे अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter चार

गजेन्द्र का वैकुण्ठ गमन

इस अध्याय में गजेन्द्र तथा घड़ियाल के पूर्व जन्मों का वर्णन हुआ है। इसमें बताया गया है कि किस तरह घड़ियाल गन्धर्व और गजेन्द्र भगवान् का पार्षद बना।

गन्धर्व लोक में हूहू नाम का एक राजा रहता था। एक बार जब वह स्त्रियों के साथ जल-क्रीड़ा कर रहा था, तो उसने स्नान करते हुए देवल ऋषि का पाँव खींच लिया। इस पर ऋषि अत्यन्त क्रुद्ध हो गये और उसे तुरन्त घड़ियाल बनने का शाप दे डाला। जब हूहू को इस तरह शाप मिल गया तो वह अत्यन्त दुखी हुआ और उसने ऋषि से क्षमा माँगी। ऋषि को दया आ गई; अतएव उन्होंने वर दिया कि जब गजेन्द्र का उद्धार भगवान् द्वारा होगा तो वह मुक्त हो जायेगा। इस तरह जब नारायण ने घड़ियाल को मार डाला तो उसका उद्धार हो गया।

भगवान् की कृपा से जब गजेन्द्र वैकुण्ठ में भगवान् का पार्षद बना तो उसे चार हाथ मिल गये। यह उपलब्धि *सारूप्य मुक्ति* कहलाती है—नारायण के ही समान आध्यात्मिक शरीर प्राप्त करने की मुक्ति। यह गजेन्द्र पूर्व-जन्म में भगवान् विष्णु का महान् भक्त रहा था। उसका नाम इन्द्रद्युम्न था और वह तामिल देश का राजा था। वैदिक सिद्धान्तों का पालन करते हुए इस राजा ने गृहस्थ-जीवन त्याग दिया और वह मलयाचल पर्वत में एक छोटी सी कुटी बना कर मौन भाव से भगवान् की सदैव पूजा करने लगा। एक बार अगस्त्य ऋषि अपने अनेक शिष्यों समेत इन्द्रद्युम्न के आश्रम पधारे, किन्तु भगवान् के ध्यान में तल्लीन रहने के कारण वह राजा उनका उचित सत्कार न कर सका। अतएव ऋषि अत्यन्त क्रुद्ध हो गये और उन्होंने राजा को आलसी हाथी बनने का शाप दे डाला। इस शाप के अनुसार

राजा ने हाथी के रूप में जन्म लिया और वह भक्ति के अपने पहले सारे कार्यों को भूल गया। तो भी अपने हाथी जन्म में, जब घड़ियाल ने उस पर घोर आक्रमण किया, तो उसे अपना भक्ति-पूर्ण पूर्वजीवन याद आया और उस जीवन में उसने जो स्तुति सीखी थी उसका स्मरण किया। इस स्तुति के कारण उसे पुनः भगवत्कृपा प्राप्त हो गई। इस तरह तुरन्त उसका उद्धार हो गया और वह भगवान् का एक चतुर्भुज पार्षद बन गया।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने इस अध्याय की समाप्ति हाथी के सौभाग्य-वर्णन के साथ की है। उनका कथन है कि गजेन्द्र-मोक्ष की कथा सुनने से मनुष्य को भी उद्धार का अवसर प्राप्त हो सकता है। शुकदेव स्वामी इसका स्पष्टता-पूर्ण वर्णन करते हैं और इस प्रकार अध्याय समाप्त हो जाता है।

श्रीशुक उवाच
तदा देवर्षिगन्धर्वा ब्रह्मेशानपुरोगमाः ।
मुमुचुः कुसुमासारं शंसन्तः कर्म तद्धरेः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; तदा—उस अवसर पर (जब गजेन्द्र का उद्धार हो गया); देव-ऋषि-गन्धर्वाः—देवता, ऋषि तथा गन्धर्व; ब्रह्म-ईशान-पुरोगमाः—ब्रह्मा तथा शिवजी इत्यादि ने; मुमुचुः—वर्षा की; कुसुम-आसारम्—फूलों का आवरण; शंसन्तः—प्रशंसा करते हुए; कर्म—दिव्य कर्म; तत्—उस (गजेन्द्र मोक्षण); हरेः—भगवान् का।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जब भगवान् ने गजेन्द्र का उद्धार कर दिया तो सारे ऋषियों, गन्धर्वों तथा ब्रह्मा, शिव इत्यादि देवताओं ने भगवान् के इस कार्य की प्रशंसा की और भगवान् तथा गजेन्द्र दोनों के ऊपर पुष्पवर्षा की।

तात्पर्य : इस अध्याय से स्पष्ट है कि देवल ऋषि, नारद मुनि तथा अगस्त्य मुनि जैसे बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी कभी-कभी किसी को शाप देते हैं। किन्तु ऐसे महापुरुषों का शाप वास्तव में वरदान होता है। पिछले जन्म में घड़ियाल एक गन्धर्व था तथा गजेन्द्र राजा इन्द्रद्युम्न था—ये दोनों शापित हुए, किन्तु दोनों को लाभ मिला। इन्द्रद्युम्न को हाथी के जन्म में मोक्ष मिला और वह वैकुण्ठ में भगवान् का पार्षद बना तथा घड़ियाल को उसका गन्धर्व पद पुनः मिल गया। हम प्रायः देखते हैं कि बड़े सन्त या भक्त का शाप, शाप न रहकर वरदान होता है।

नेदुर्दुन्दुभयो दिव्या गन्धर्वा ननृतुर्जगुः ।

ऋषयश्चारणाः सिद्धास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ॥ २॥

शब्दार्थ

नेदुः—बजने लगीं; दुन्दुभयः—दुन्दुभियाँ; दिव्याः—स्वर्ग लोक के आकाश में; गन्धर्वाः—गन्धर्व लोक के वासी; ननृतुः—नाचने लगे; जगुः—तथा गाने लगे; ऋषयः—सारे ऋषि; चारणाः—चारण लोक के निवासी; सिद्धाः—सिद्ध लोक के वासियों ने; तुष्टुवुः—स्तुति की; पुरुष-उत्तमम्—पुरुषोत्तम भगवान् की।

स्वर्ग लोक में दुन्दुभियाँ बजने लगीं, गन्धर्वलोक के वासी नाचने और गाने लगे तथा महान् ऋषियों और चारणलोक एवं सिद्धलोक के निवासियों ने भगवान् पुरुषोत्तम की स्तुतियाँ कीं।

योऽसौ ग्राहः स वै सद्यः परमाश्चर्यरूपधृक् ।
मुक्तो देवलशापेन हूहूर्गन्धर्वसत्तमः ॥ ३॥
प्रणम्य शिरसाधीशमुत्तमश्लोकमव्ययम् ।
अगायत यशोधाम कीर्तन्यगुणसत्कथम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

यः—जो; असौ—वह; ग्राहः—घड़ियाल बन गया; सः—वह; वै—निस्सन्देह; सद्यः—तुरन्त; परम—अत्यन्त सुन्दर; आश्चर्य—अद्भुत; रूप-धृक्—रूप धारण किये (अपने मूल गन्धर्व रूप को); मुक्तः—मुक्त हो गया; देवल-शापेन—देवल ऋषि के शाप से; हूहूः—हूहू नामक; गन्धर्व-सत्तमः—गन्धर्वों में श्रेष्ठ; प्रणम्य—प्रणाम करके; शिरसा—सिर के बल; अधीशम्—परम प्रभु को; उत्तम-श्लोकम्—श्रेष्ठ श्लोकों द्वारा पूजा किया जाने वाला; अव्ययम्—नित्य; अगायत—उच्चारण करने लगा; यशः-धाम—भगवान् की महिमा; कीर्तन्य-गुण-सत्-कथम्—जिसकी दिव्य लीलाएँ तथा गुण यशस्वी हैं।

गन्धर्वों में श्रेष्ठ राजा हूहू देवल मुनि द्वारा शापित होने के बाद घड़ियाल बन गया था। अब भगवान् द्वारा उद्धार किये जाने पर उसने एक सुन्दर गन्धर्व का रूप धारण कर लिया। यह समझकर कि यह सब किसकी कृपा से सम्भव हो सका, उसने तुरन्त सिर के बल प्रणाम किया और श्रेष्ठ श्लोकों से पूजित होने वाले परम नित्य भगवान् के लिए उपयुक्त स्तुतियाँ कीं।

तात्पर्य : जिस तरह गन्धर्व घड़ियाल बना उसकी कथा आगे कही जायेगी। जिस शाप से गन्धर्व को यह पद मिला था वह वास्तव में शाप नहीं था अपितु वरदान था। जब किसी को कोई सन्त पुरुष शाप दे तो अप्रसन्न नहीं होना चाहिए क्योंकि अप्रत्यक्ष रूप से उसका यह शाप वरदान होता है। इस गन्धर्व में स्वर्गलोक के निवासी की मानसिकता थी। इसे भगवान् का पार्षद बनने में लाखों वर्ष लगते। किन्तु देवल ऋषि के शाप से वह घड़ियाल बन गया और एक ही जीवन में उसे साक्षात् भगवान् का दर्शन करने तथा वैकुण्ठ जाकर भगवान् का पार्षद बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसी प्रकार गजेन्द्र का भी उद्धार भगवान् ने किया जब वह अगस्त्य मुनि के शाप से मुक्त हो गया।

सोऽनुकम्पित ईशेन परिक्रम्य प्रणम्य तम् ।
लोकस्य पश्यतो लोकं स्वमगान्मुक्तकिल्बिषः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (राजा हूहू); अनुकम्पितः—कृपा पात्र बनकर; ईशेन—भगवान् द्वारा; परिक्रम्य—परिक्रमा करके; प्रणम्य—प्रणाम करके; तम्—उसको; लोकस्य—सारे देवताओं तथा मनुष्यों के; पश्यतः—देखते-देखते; लोकम्—लोक को; स्वम्—अपने; अगात्—वापस चला गया; मुक्त—मुक्त होकर; किल्बिषः—अपने पापों के फलों से।.

भगवान् की अहैतुकी कृपा से अपने पूर्व रूप को पाकर राजा हूहू ने भगवान् की प्रदक्षिणा की और उन्हें नमस्कार किया। तब ब्रह्मा इत्यादि समस्त देवताओं की उपस्थिति में वह गन्धर्व लोक लौट गया। वह सारे पापफलों से मुक्त हो चुका था।

गजेन्द्रो भगवत्स्पर्शाद्विमुक्तोऽज्ञानबन्धनात् ।
प्राप्तो भगवतो रूपं पीतवासाश्चतुर्भुजः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

गजेन्द्रः—हाथियों का राजा गजेन्द्र; भगवत्-स्पर्शात्—भगवान् के हाथों का स्पर्श पाने से; विमुक्तः—तुरन्त मुक्त हो गया; अज्ञान-बन्धनात्—सब प्रकार के अज्ञान से, विशेषतया देहात्मबुद्धि से; प्राप्तः—पाकर; भगवतः—भगवान् के; रूपम्—वही शारीरिक स्वरूप; पीत-वासाः—पीले वस्त्र पहने; चतुः-भुजः—तथा चार भुजाओं वाला, जिनमें वह शंख, चक्र, गदा तथा कमल लिए था।.

चूँकि गजेन्द्र का प्रत्यक्ष स्पर्श भगवान् ने अपने करकमलों से किया था अतएव वह समस्त भौतिक अज्ञान तथा बन्धन से तुरन्त मुक्त हो गया। इस प्रकार उसे सारूप्य-मुक्ति प्राप्त हुई जिसमें उसे भगवान् जैसा ही शारीरिक स्वरूप प्राप्त हुआ। वह पीत वस्त्र धारण किये चार भुजाओं वाला बन गया।

तात्पर्य : यदि किसी पर भगवान् की कृपा होती है और वे उसका स्पर्श अपने हाथ से कर देते हैं, तो उसका शरीर आध्यात्मिक बन जाता है और वह भगवद्धाम वापस जा सकता है। जब भगवान् ने गजेन्द्र का स्पर्श किया, तो उसे आध्यात्मिक शरीर प्राप्त हो गया। ध्रुव महाराज को भी आध्यात्मिक शरीर इसी प्रकार मिला था। *अर्चना पद्धति* में भगवान् का शरीर स्पर्श करने का सुअवसर मिलता है, जिससे आध्यात्मिक शरीर प्राप्त होने का सौभाग्य मिल सकता है और भगवद्धाम वापस जाया जा सकता है। न केवल भगवान् के शरीर का स्पर्श करके, अपितु उनकी लीलाओं का श्रवण करके, उनकी महिमाओं का गान करके, उनके चरणों का स्पर्श करके तथा उनकी पूजा करके—दूसरे शब्दों में भगवान् की किसी भी प्रकार से सेवा करके—मनुष्य भौतिक कल्मष से शुद्ध हो जाता है। भगवान् का स्पर्श पाने का यह परिणाम होता है। जो शुद्ध भक्त है (*अन्याभिलाषिताशून्यम्*), जो शास्त्र एवं भगवान्

के वचनों के अनुसार कर्म करता है, वह निश्चित रूप से शुद्ध हो जाता है। वह भी गजेन्द्र की तरह आध्यात्मिक शरीर धारण करके भगवद्धाम लौट जाता है।

स वै पूर्वमभूद्राजा पाण्ड्यो द्रविडसत्तमः ।
इन्द्रद्युम्न इति ख्यातो विष्णुव्रतपरायणः ॥ ७॥

शब्दार्थ

सः—वह हाथी (गजेन्द्र); वै—निस्सन्देह; पूर्वम्—पूर्वजन्म में; अभूत्—था; राजा—राजा; पाण्ड्यः—पाण्डय नामक देश का; द्रविड-सत्-तमः—द्रविड़ देश (दक्षिण भारत) में उत्पन्न होने वालों में श्रेष्ठ; इन्द्रद्युम्नः—महाराज इन्द्रद्युम्न; इति—इस प्रकार; ख्यातः—प्रसिद्ध; विष्णु-व्रत-परायणः—भगवान् की सेवा में सदैव लगा रहने वाला प्रथम कोटि का वैष्णव।

यह गजेन्द्र पहले वैष्णव था और द्रविड़ (दक्षिण भारत) प्रान्त के पाण्डय नामक देश का राजा था। अपने पूर्व जन्म में वह इन्द्रद्युम्न महाराज कहलाता था।

स एकदाराधनकाल आत्मवान्
गृहीतमौनव्रत ईश्वरं हरिम् ।
जटाधरस्तापस आप्लुतोऽच्युतं
समर्चयामास कुलाचलाश्रमः ॥ ॥

शब्दार्थ

सः—वह, इन्द्रद्युम्न महाराज; एकदा—एक बार; आराधन-काले—देव पूजा के समय; आत्मवान्—अत्यन्त मनोयोग से भक्ति में लगा; गृहीत—धारण किये; मौन-व्रतः—किसी से न बोलने का अनुष्ठान; ईश्वरम्—परम नियन्ता; हरिम्—भगवान् को; जटा-धरः—जटाधारी; तापसः—तपस्या में तल्लीन; आप्लुतः—भगवत्प्रेम में तल्लीन; अच्युतम्—अच्युत भगवान् को; समर्चयाम् आस—पूजा कर रहा था; कुलाचल-आश्रमः—कुलाचल (मलयपर्वत) स्थित उसका आश्रम।

इन्द्रद्युम्न महाराज ने गृहस्थ जीवन से वैराग्य ले लिया और मलय पर्वत चला गया जहाँ उसका आश्रम एक छोटी सी कुटिया के रूप में था। उसके सिर पर जटाएँ थीं और वह सदैव तपस्या में लगा रहता था। एक बार वह मौन व्रत धारण किये भगवान् की पूजा में तल्लीन था और भगवत्प्रेम के आनंद में डूबा हुआ था।

यदृच्छया तत्र महायशा मुनिः
समागमच्छिष्यगणैः परिश्रितः ।
तं वीक्ष्य तूष्णीमकृतार्हणादिकं
रहस्युपासीनमृषिश्चुकोप ह ॥ ९॥

शब्दार्थ

यदृच्छया—अपनी इच्छा से (बिना बुलाये); तत्र—वहाँ; महा-यशाः—सुविख्यात; मुनिः—अगस्त्य मुनि; समागमत्—पधारे; शिष्य-गणैः—अपने शिष्यों से; परिश्रितः—घिरे हुए; तम्—उसको; वीक्ष्य—देखकर; तूष्णीम्—मौन; अकृत-अर्हण-

आदिकम्—स्वागत-सत्कार किये बिना; रहसि—एकान्त स्थान में; उपासीनम्—ध्यान में बैठे; ऋषिः—ऋषि; चुकोप—अत्यन्त क्रुद्ध हुआ; ह—ऐसा हुआ कि।.

जब इन्द्रद्युम्न महाराज भगवान् की पूजा करते हुए ध्यान में तल्लीन थे तो अगस्त्य मुनि अपनी शिष्य-मण्डली समेत वहाँ पधारे। जब मुनि ने देखा कि राजा इन्द्रद्युम्न एकान्त स्थान में बैठकर मौन साधे हैं और उनके स्वागत के शिष्टाचार का पालन नहीं कर रहे हैं, तो वे अत्यन्त क्रुद्ध हुए।

तस्मा इमं शापमदादसाधु-
रयं दुरात्माकृतबुद्धिरद्य ।
विप्रावमन्ता विशतां तमिस्त्रं
यथा गजः स्तब्धमतिः स एव ॥ १० ॥

शब्दार्थ

तस्मै—महाराज इन्द्रद्युम्न को; इमम्—यह; शापम्—शाप; अदात्—दे डाला; असाधुः—अभद्र; अयम्—यह; दुरात्मा—नीच व्यक्ति; अकृत—अशिक्षित; बुद्धिः—उसकी बुद्धि; अद्य—अब; विप्र—ब्राह्मण का; अवमन्ता—अपमान करने वाला; विशताम्—प्रवेश करे; तमिस्त्रम्—अंधकार में; यथा—जिस तरह; गजः—एक हाथी; स्तब्ध-मतिः—कुन्द बुद्धि वाला; सः—वह; एव—निस्सन्देह।.

तब अगस्त्य मुनि ने राजा को यह शाप दे डाला—''इन्द्रद्युम्न तनिक भी भद्र नहीं है। नीच तथा अशिक्षित होने के कारण इसने ब्राह्मण का अपमान किया है। अतएव यह अंधकार प्रदेश में प्रवेश करे और आलसी मूक हाथी का शरीर प्राप्त करे।''

तात्पर्य : हाथी अत्यन्त बलिष्ठ होता है, उसका शरीर अत्यन्त भारी होता है, वह कठोर श्रम कर सकता है और प्रचुर भोजन खा सकता है; फिर भी उसकी बुद्धि उसके आकार तथा बल के अनुरूप नहीं होती। इस तरह इतनी शारीरिक शक्ति होते हुए भी वह मनुष्य का चाकर बनकर काम करता है। अगस्त्य मुनि ने यही ठीक समझा कि इस राजा को हाथी बनने का शाप दिया जाये क्योंकि इस शक्तिशाली राजा ने मेरा स्वागत उस रूप में नहीं किया जैसा कि *ब्राह्मण* का होना चाहिए। यद्यपि अगस्त्य मुनि ने महाराज इन्द्रद्युम्न को हाथी बनने का शाप दे डाला, किन्तु यह शाप अप्रत्यक्षः वरदान था क्योंकि हाथी का जीवन बिताने से उसके पूर्वजन्म के पापों के सारे फल समाप्त हो गये। हाथी-जीवन का अन्त होते ही वह भगवान् जैसा शरीर पाकर उनका पार्षद बनने के लिए वैकुण्ठ लोक भेज दिया गया। यह *सारूप्य-मुक्ति* कहलाती है।

श्रीशुक उवाच
एवं शप्त्वा गतोऽगस्त्यो भगवान्नृप सानुगः ।
इन्द्रद्युम्नोऽपि राजर्षिर्दिष्टं तदुपधारयन् ॥ ११ ॥
आपन्नः कौञ्जरीं योनिमात्मस्मृतिविनाशिनीम् ।
हर्यर्चनानुभावेन यद्गजत्वेऽप्यनुस्मृतिः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; शप्त्वा—शाप देने के बाद; गतः—उस स्थान को त्याग दिया; अगस्त्यः—अगस्त्य मुनि ने; भगवान्—इतने शक्तिशाली; नृप—हे राजा; स-अनुगः—अपने संगियों समेत; इन्द्रद्युम्नः—राजा इन्द्रद्युम्न; अपि—भी; राजर्षिः—यद्यपि वह राजर्षि था; दिष्टम्—विगत कर्मों के कारण; तत्—वह शाप; उपधारयन्—मानते हुए; आपन्नः—प्राप्त किया; कौञ्जरीम्—हाथी की; योनिम्—योनि; आत्म-स्मृति—अपनी याद; विनाशिनीम्—नष्ट करने वाली; हरि—भगवान्; अर्चन-अनुभावेन—पूजा करने के कारण; यत्—उस; गजत्वे—हाथी के शरीर में; अपि—यद्यपि; अनुस्मृतिः—अपनी विगत भक्ति को स्मरण करने का सुअवसर।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : हे राजा! अगस्त्य मुनि राजा इन्द्रद्युम्न को इस तरह शाप देने के बाद अपने शिष्यों समेत उस स्थान से चले गये। चूँकि राजा भक्त था अतएव उसने अगस्त्य मुनि के शाप का स्वागत किया क्योंकि भगवान् की ऐसी ही इच्छा थी। अतएव अगले जन्म में हाथी का शरीर प्राप्त करने पर भी भक्ति के कारण उसे यह स्मरण रहा कि भगवान् की पूजा और स्तुति किस तरह की जाती है।

तात्पर्य : भगवान् के भक्त की यह अद्वितीय स्थिति है। यद्यपि राजा को शाप मिला था, किन्तु उसने इसका स्वागत किया क्योंकि भक्त सदैव जानता रहता है कि भगवान् की इच्छा के बिना कुछ भी घटित नहीं हो सकता। यद्यपि राजा का कोई दोष न था, फिर भी अगस्त्य मुनि ने उसे शाप दे डाला और जब ऐसा हो गया तो राजा ने इसे अपने विगत दुष्कर्मों के कारण हुआ समझा। *तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणः* (*भागवत* १०.१४.)। यह भक्त के सोचने का व्यावह ारिक उदाहरण है। वह जीवन की किसी भी असफलता को भगवान् का आशीर्वाद मानता है; अतएव वह इन असफलताओं से क्षुब्ध न होकर अपने भक्ति कार्यों में लगा रहता है और कृष्ण उसकी रक्षा करते हैं तथा भगवद्धाम वापस जाने में उसे सक्षम बनाते हैं। यदि भक्त को अपने विगत दुष्कर्मों के फल भोगने ही पड़ें तो भगवान् उसे इनका नाममात्र फल चखाकर तुरन्त ही उनसे मुक्त कर देते हैं। अतएव मनुष्य को भक्ति में दृढ़ रहना चाहिए। भगवान् स्वयं ऐसे व्यक्ति को बहुत जल्दी वैकुण्ठ लोक भेजने की व्यवस्था करेंगे। भक्त को कभी भी दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियों से विक्षुब्ध नहीं होना चाहिए, अपितु भगवान् पर ही पूरी तरह आश्रित रहकर अपने नियमित कार्यक्रम में आगे बढ़ते रहना चाहिए। इस श्लोक में *उपधारयन* शब्द

अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसका अर्थ "विचार करते हुए" है, जो यह सूचित करता है कि भक्त जानता है कि कौन क्या है; वह समझता है कि इस भौतिक बद्ध जीवन में क्या हो रहा है।

एवं विमोक्ष्य गजयूथपमब्जनाभ-
स्तेनापि पार्षदगतिं गमितेन युक्तः ।
गन्धर्वसिद्धविबुधैरुपगीयमान-
कर्माद्भुतं स्वभवनं गरुडासनोऽगात् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; विमोक्ष्य—उद्धार करके; गज-यूथ-पम्—हाथियों के राजा, गजेन्द्र को; अब्ज-नाभः—भगवान् जिनकी नाभि से कमल निकलता है; तेन—उसके (गजेन्द्र) द्वारा; अपि—भी; पार्षद-गतिम्—भगवान् के पार्षद का पद; गमितेन—पहले से प्राप्त; युक्तः—के साथ-साथ; गन्धर्व—गन्धर्व लोक के निवासी; सिद्ध—सिद्ध लोक के निवासी; विबुधैः—तथा बड़े-बड़े ऋषि मुनियों के द्वारा; उपगीयमान—महिमामंडित होकर; कर्म—जिसके कार्यकलाप; अद्धुतम्—आश्चर्यजनक; स्व-भवनम्—अपने धाम को; गरुड-आसनः—गरुड़ पर आसीन होकर; अगात्—लौट गये।

गजेन्द्र को घड़ियाल के चंगुल से तथा इस भौतिक संसार से जो घड़ियाल जैसा लगता है। घड़ियाल जैसे ही इस भौतिक जगत छुड़ाकर भगवान् ने उसे सारूप्य मुक्ति प्रदान की। भगवान् के अद्भुत दिव्य कार्यकलापों का यश बखान करने वाले गन्धर्वों, सिद्धों तथा अन्य देवताओं की उपस्थिति में, भगवान् अपने वाहन गरुड़ की पीठ पर बैठकर अपने अद्भुत धाम को लौट गये और अपने साथ गजेन्द्र को भी लेते गये।

तात्पर्य : इस श्लोक में *विमोक्ष्य* शब्द महत्त्वपूर्ण है। भक्त के लिए मोक्ष या मुक्ति का अर्थ है भगवान् के पार्षद का पद प्राप्त करना। निर्विशेषवादी ब्रह्म ज्योति में तल्लीन होने की मुक्ति से ही संतुष्ट रहते हैं, किन्तु भक्त के लिए मुक्ति का अर्थ भगवान् के तेज में तल्लीन होना नहीं, अपितु वैकुण्ठ लोक जाकर भगवान् का पार्षद बनना है। इस सम्बन्ध में *श्रीमद्भागवत* (१०.१४.) में एक श्लोक है—

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो
भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते जीवेत
यो मुक्तिपदे स दायभाक्॥

"जो आपकी कृपा का इच्छुक है और इस तरह अपने विगत कर्मों के फल के कारण सभी विषम परिस्थितियों को सह लेता है, जो मन, वाणी तथा शरीर से आपकी भक्ति में सदा लगा रहता है और

सदैव आपको नमस्कार करता है, वह निश्चय ही मुक्ति का योग्य पात्र है।'' जो भक्त इस भौतिक जगत में सब कुछ सहकर धैर्यपूर्वक भक्ति करता है, वह *मुक्तिपदे स दायभाक्* अर्थात् मुक्ति का प्रामाणिक पात्र होता है। *दायभाक्* शब्द भगवान् की कृपा के उत्तराधिकार को बताता है। भक्त को सांसारिक परिस्थितियों की परवाह न करके एकमात्र भक्ति में लगे रहना चाहिए। तब वह वैकुण्ठ लोक जाने का स्वत: अधिकारी बन जाता है। जो भक्त भगवान् की अनन्य भक्ति करता है उसे वैकुण्ठ लोक जाने का उसी तरह अधिकार प्राप्त होता है, जिस प्रकार पुत्र को अपने पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकार प्राप्त होता है।

जब कोई भक्त मुक्ति पाता है, तो वह भौतिक कल्मष से छूट जाता है और भगवान् का दास नियुक्त हो जाता है। इसकी व्याख्या *श्रीमद्‌भागवत* (२.१०.६) में की गई है—*मुक्तिर्हित्वान्यथा रूपं स्वरूपेण व्यवस्थिति:।* *स्वरूप* शब्द *सारूप्य मुक्ति* का सूचक है, जिसका अर्थ है भगवान् के धाम को वापस जाना और भगवान् के ही समान चतुर्भुजी आध्यात्मिक शरीर प्राप्त करके, जो शंख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण किये रहता है भगवान् का नित्य पार्षद बने रहना। निर्विशेषवादी तथा भक्त की मुक्ति में यही अन्तर है कि भक्त तुरन्त ही भगवान् का नित्य दास नियुक्त हो जाता है, जबकि निर्विशेषवादी *ब्रह्मज्योति* में विलीन होकर भी असुरक्षित रहता है और सामान्यत: इस भौतिक जगत में फिर गिर जाता है। *आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं तत: पतन्त्यधोऽनादृत युष्मदङ्घ्रय:* (*भागवत* १०.२.३२)। यद्यपि निर्विशेषवादी, *ब्रह्मज्योति* तक उठकर, उसी में प्रवेश कर जाता है, किन्तु भगवान् की सेवा में न लगा होने के कारण पुन: भौतिकतावादी परोपकारी कार्यों के प्रति आकृष्ट होता है। इस तरह वह अस्पताल तथा शैक्षणिक संस्थान खोलने, गरीबों को भोजन कराने तथा इसी प्रकार की सांसारिक गतिविधियाँ सम्पन्न करने के लिए नीचे आता है जिन्हें वह भगवान् की सेवा करने की अपेक्षा अधिक मूल्यवान समझता है। *अनादृतयुष्मदङ्घ्रय:।* निर्विशेषवादी यह नहीं सोचते कि भगवान् की सेवा करना गरीब की सेवा करने या स्कूल अथवा अस्पताल खोलने की अपेक्षा अधिक मूल्यवान है। यद्यपि वे यह कहते हैं कि *ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या*—अर्थात् ब्रह्म सत्य है और भौतिक जगत मिथ्या है—तो भी वे इस मिथ्या जगत की सेवा करने के अत्यन्त इच्छुक रहते हैं और भगवान् के चरणकमलों की सेवा की उपेक्षा करते हैं।

एतन्महाराज तवेरितो मया
कृष्णानुभावो गजराजमोक्षणम् ।
स्वर्ग्यं यशस्यं कलिकल्मषापहं
दु:स्वप्ननाशं कुरुवर्य शृण्वताम् ॥ १४॥

शब्दार्थ

एतत्—यह; महा-राज—हे राजा परीक्षित; तव—तुमसे; ईरित:—वर्णन किया गया; मया—मेरे द्वारा; कृष्ण-अनुभाव:—भगवान् कृष्ण की असीम शक्ति (जिससे वे भक्त का उद्धार कर सकते हैं); गज-राज-मोक्षणम्—हाथियों के राजा की मोक्ष-प्राप्ति; स्वर्ग्यम्—स्वर्गलोक के लिए प्रोन्नति; यशस्यम्—भक्त के रूप में अपनी ख्याति बढ़ाने; कलि-कल्मष-अपहम्—कलियुग के कल्मष को कम करने; दु:स्वप्न-नाशम्—बुरे स्वप्नों के कारणों का निराकरण करने; कुरु-वर्य—हे कुरुश्रेष्ठ; शृण्वताम्—इस कथा के सुनने वालों को।

हे राजा परीक्षित! अब मैंने तुमसे कृष्ण की अद्भुत शक्ति का वर्णन कर दिया है, जिसे भगवान् ने गजेन्द्र का उद्धार करके प्रदर्शित किया था। हे कुरुश्रेष्ठ! जो लोग इस कथा को सुनते हैं, वे उच्चलोकों में जाने के योग्य बनते हैं। इस कथा के श्रवण मात्र से वे भक्त के रूप में ख्याति अर्जित करते हैं, वे कलियुग के कल्मष से अप्रभावित रहते हैं और कभी दु:स्वप्न नहीं देखते।

यथानुकीर्तयन्त्येतच्छ्रेयस्कामा द्विजातय: ।
शुचय: प्रातरुत्थाय दु:स्वप्नाद्युपशान्तये ॥ १५॥

शब्दार्थ

यथा—विचलित हुए बिना; अनुकीर्तयन्ति—कीर्तन करते हैं; एतत्—गजेन्द्र मोक्ष की यह कथा; श्रेय:-कामा:—अपना कल्याण चाहने वाले; द्वि-जातय:—ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य जाति वाले; शुचय:—विशेषतया ब्राह्मण, जो सदा स्वच्छ रहते हैं; प्रात:—प्रात:काल; उत्थाय—निद्रा से उठकर; दु:स्वप्न-आदि—रात्रि में ठीक से नींद न आने; उपशान्तये—सारे कष्टों को शमन करने के लिए।

अतएव जो लोग अपना कल्याण चाहते हैं—विशेष रूप से ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य और इनमें से भी मुख्यत: ब्राह्मण वैष्णव—उन्हें प्रात:काल बिस्तर से उठकर अपने दु:स्वप्नों के कष्टों को दूर करने के लिए इस कथा का बिना विचलित हुए यथारूप पाठ करना चाहिए।

तात्पर्य : वैदिक साहित्य का और विशेषतया श्रीमद्भागवत तथा भगवद्गीता का प्रत्येक श्लोक वैदिक मंत्र है। यहाँ पर प्रयुक्त यथानुकीर्तयन्ति शब्दों से यह संस्तुति की गई है कि इस साहित्य को यथारूप में प्रस्तुत किया जाये। किन्तु ढोंगी लोग वास्तविक कथा से हटकर अपने व्याकरणिक वाग्जाल से मूल पाठ का मनमाना अर्थ लगाते हैं। इस तरह के हेरफेर से बचना चाहिए। यह वैदिक आदेश है,

जिसका समर्थन श्री शुकदेव गोस्वामी जैसे महा–जन द्वारा किया गया है। वे कहते हैं— यथानुकीर्तयन्ति—मनुष्य को चाहिए कि कोई फेर–बदल किए बिना मंत्र का यथारूप पाठ करे क्योंकि तब उसे सौभाग्य के पद तक उठने की योग्यता प्राप्त हो सकेगी। शुकदेव गोस्वामी ने तो विशेष संस्तुति की है कि ब्राह्मण लोग इन सभी मंत्रों का पाठ प्रात:काल शय्या से उठते ही करें।

पापपूर्ण कर्मों के कारण हमें रात में दु:स्वप्न आते हैं, जो अत्यन्त कष्टप्रद होते हैं। महाराज युधिष्ठिर को तो भगवद्भक्ति में थोड़े से विचलन के कारण नरक–दर्शन करना पड़ा था। अतएव दु:स्वप्न पापपूर्ण कार्यों के फलस्वरूप आते हैं। भक्त कभी–कभी किसी पापी व्यक्ति को अपना शिष्य बना लेता है और अपने शिष्य से स्वीकार किए गए पापकर्मों के फल को समाप्त करने के लिए भक्त को बुरे स्वप्न देखने पड़ते हैं। फिर भी गुरु इतना दयालु होता है कि अपने पापी शिष्य के कारण दु:स्वप्न देखने पर भी वह इस कष्टदायक कार्य को कलियुग के भुक्त भोगियों का उद्धार करने के लिए स्वीकार करता है। अतएव दीक्षा के बाद शिष्य को सतर्क रहना चाहिए कि वह फिर से कोई पापपूर्ण कर्म न करे जिससे स्वयं उसे तथा उसके गुरु को कठिनाई उठानी पड़े। अतएव सच्चा शिष्य अर्चाविग्रह, अग्नि, गुरु तथा वैष्णवों के समक्ष वचन देता है कि वह सभी पापपूर्ण कार्यों से दूर रहेगा। इसलिए उसे पुन: पापपूर्ण कृत्य करके कठिन परिस्थिति उत्पन्न नहीं कर लेनी चाहिए।

इदमाह हरिः प्रीतो गजेन्द्रं कुरुसत्तम ।
शृण्वतां सर्वभूतानां सर्वभूतमयो विभुः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

इदम्—यह; आह—कहा; हरिः—भगवान् ने; प्रीतः—प्रसन्न होकर; गजेन्द्रम्—गजेन्द्र से; कुरु-सत्-तम—हे कुरुवंश में सर्वश्रेष्ठ; शृण्वताम्—सुनते हुए; सर्व-भूतानाम्—हरएक की उपस्थिति में; सर्व-भूत-मयः—सर्वव्यापी भगवान् ने; विभुः—महान्।

हे कुरुश्रेष्ठ! इस प्रकार हरएक के परमात्मा अर्थात् भगवान् ने प्रसन्न होकर सबों के समक्ष गजेन्द्र को सम्बोधित किया। उन्होंने निम्नलिखित आशीष दिए।

श्रीभगवानुवाच

ये मां त्वां च सरश्चेदं गिरिकन्दरकाननम् ।

वेत्रकीचकवेणूनां गुल्मानि सुरपादपान् ॥ १७॥
शृङ्गाणीमानि धिष्ण्यानि ब्रह्मणो मे शिवस्य च ।
क्षीरोदं मे प्रियं धाम श्वेतद्वीपं च भास्वरम् ॥ १॥
श्रीवत्सं कौस्तुभं मालां गदां कौमोदकीं मम ।
सुदर्शनं पाञ्चजन्यं सुपर्णं पतगेश्वरम् ॥ १९॥
शेषं च मत्कलां सूक्ष्मां श्रियं देवीं मदाश्रयाम् ।
ब्रह्माणं नारदमृषिं भवं प्रह्लादमेव च ॥ २०॥
मत्स्यकूर्मवराहाद्यैरवतारैः कृतानि मे ।
कर्माण्यनन्तपुण्यानि सूर्यं सोमं हुताशनम् ॥ २१॥
प्रणवं सत्यमव्यक्तं गोविप्रान्धर्ममव्ययम् ।
दाक्षायणीर्धर्मपत्नीः सोमकश्यपयोरपि ॥ २२॥
गङ्गां सरस्वतीं नन्दां कालिन्दीं सितवारणम् ।
ध्रुवं ब्रह्मऋषीन्सप्त पुण्यश्लोकांश्च मानवान् ॥ २३॥
उत्थायापररात्रान्ते प्रयताः सुसमाहिताः ।
स्मरन्ति मम रूपाणि मुच्यन्ते तेऽंहसोऽखिलात् ॥ २४॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; ये—जो; माम्—मुझको; त्वाम्—तुमको; च—भी; सरः—झील, तालाब; च—भी; इदम्—यह; गिरि—(त्रिकूट) पर्वत; कन्दर—गुफाएँ; काननम्—उद्यान; वेत्र—बेंत; कीचक—खोखला बाँस; वेणूनाम्—अन्य प्रकार के बाँस के; गुल्मानि—समूह, कुंज; सुर-पादपान्—स्वर्गिक वृक्ष; शृङ्गाणि—चोटियाँ; इमानि—ये; धिष्ण्यानि—घर, धाम; ब्रह्मणः—ब्रह्मा को; मे—मेरा; शिवस्य—शिव का; च—भी; क्षीर-उदम्—दुग्धसागर; मे—मेरा; प्रियम्—अत्यन्त प्रिय; धाम—स्थान; श्वेत-द्वीपम्—श्वेत द्वीप नामक; च—भी; भास्वरम्—आध्यात्मिक किरणों से सदैव चमचमाता; श्रीवत्सम्—श्रीवत्स नामक चिह्न; कौस्तुभम्—कौस्तुभ मणि; मालाम्—माला; गदाम्—गदा; कौमोदकीम्—कौमोदकी नामक; मम—मेरा; सुदर्शनम्—सुदर्शन चक्र; पाञ्चजन्यम्—पाञ्चजन्य नामक शंख; सुपर्णम्—गरुड़; पतग-ईश्वरम्—पक्षी-राज; शेषम्—शेष नाग नामक आसन; च—तथा; मत्-कलाम्—मेरा अंश; सूक्ष्माम्—अत्यन्त सूक्ष्म; श्रियम् देवीम्—सम्पत्ति की देवी को; मत्-आश्रयाम्—मुझ पर आश्रित; ब्रह्माणम्—ब्रह्माजी को; नारदम् ऋषिम्—नारद ऋषि को; भवम्—शिवजी को; प्रह्लादम् एव च—तथा प्रह्लाद को भी; मत्स्य—मत्स्य अवतार; कूर्म—कूर्म अवतार; वराह—वराह अवतार; आद्यैः—आदि; अवतारैः—विभिन्न अवतारों के द्वारा; कृतानि—किये गये; मे—मेरे; कर्माणि—कार्यकलाप; अनन्त—असीम; पुण्यानि—शुभ, पवित्र; सूर्यम्—सूर्यदेव को; सोमम्—चन्द्र देव को; हुताशनम्—अग्निदेव को; प्रणवम्—ओंकार मंत्र को; सत्यम्—परम सत्य को; अव्यक्तम्—सम्पूर्ण भौतिकशक्ति को; गो-विप्रान्—गायों तथा ब्राह्मणों को; धर्मम्—भक्ति को; अव्ययम्—अव्यय; दाक्षायणीः—दक्ष की पुत्रियाँ; धर्म-पत्नीः—वैध्य पत्नियाँ; सोम—चन्द्र देव की; कश्यपयोः—तथा कश्यप ऋषि की; अपि—भी; गङ्गाम्—गंगा नदी को; सरस्वतीम्—सरस्वती नदी को; नन्दाम्—नन्दा नदी को; कालिन्दीम्—यमुना नदी को; सित-वारणम्—ऐरावत हाथी को; ध्रुवम्—ध्रुव महाराज को; ब्रह्म-ऋषीन्—बड़े-बड़े ऋषियों को; सप्त—सात; पुण्य-श्लोकान्—अत्यन्त पवित्र; च—तथा; मानवान्—मनुष्यों को; उत्थाय—उठकर; अपर-रात्र-अन्ते—रात्रि के अन्त में; प्रयताः—अत्यन्त सतर्क रहकर; सु-समाहिताः—एकाग्र चित्त से; स्मरन्ति—स्मरण करते हैं; मम—मेरे; रूपाणि—रूपों को; मुच्यन्ते—छूट जाते हैं; ते—ऐसे पुरुष; अंहसः—पापकर्मों के फल से; अखिलात्—सभी प्रकार के।

भगवान् ने कहा : समस्त पापपूर्ण कर्मों के फलों से ऐसे व्यक्ति मुक्त हो जाते हैं, जो रात्रि बीतने पर प्रातःकाल ही जग जाते हैं, अत्यन्त ध्यानपूर्वक अपने मनों को मेरे रूप, तुम्हारे रूप, इस सरोवर, इस पर्वत, कन्दराओं, उपवनों, बेंत के वृक्षों, बाँस के वृक्षों, कल्पतरु, मेरे, ब्रह्मा तथा शिव के निवास स्थानों, सोना, चाँदी तथा लोहे से बनी त्रिकूट पर्वत की तीन चोटियों, मेरे

सुहावने धाम (क्षीरसागर), आध्यात्मिक किरणों से नित्य चमचमाते श्वेत द्वीप, मेरे चिन्ह श्रीवत्स, कौस्तुभ मणि, मेरी वैजयन्ती माला, कौमोदकी नामक मेरी गदा, मेरे सुदर्शन चक्र, तथा पाञ्चजन्य शंख, मेरे वाहन पक्षीराज गरुड़, मेरी शय्या शेषनाग, मेरी शक्ति का अंश लक्ष्मीजी, ब्रह्मा, नारद मुनि, शिवजी, प्रह्लाद, मेरे सारे अवतारों यथा मत्स्य, कूर्म तथा वराह, मेरे अनन्त शुभ कार्यकलापों में जो सुनने वाले को पवित्रता प्रदान करते हैं, मेरे सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, ओङ्कार मंत्र, परम सत्य, समग्र भौतिक शक्तियों, गायों तथा ब्राह्मणों में, भक्ति, सोम तथा कश्यप की पत्नियों में जो राजा दक्ष की पुत्रियाँ हैं, गंगा, सरस्वती, नन्दा तथा यमुना नदियों, ऐरावत हाथी, ध्रुव महाराज, सप्तर्षि तथा पवित्र मनुओं में एकाग्र करते हैं।

ये मां स्तुवन्त्यनेनाङ्ग प्रतिबुध्य निशात्यये ।
तेषां प्राणात्यये चाहं ददामि विपुलां गतिम् ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

ये—जो; माम्—मुझको (मेरी); स्तुवन्ति—प्रार्थना करते हैं; अनेन—इस प्रकार; अङ्ग—हे राजा; प्रतिबुध्य—जगकर; निश-अत्यये—रात्रि के अन्त में; तेषाम्—उनके लिए; प्राण-अत्यये—मृत्यु के समय; च—भी; अहम्—मैं; ददामि—देता हूँ; विपुलाम्—नित्य, असीम; गतिम्—वैकुण्ठ लोक को स्थानान्तरण।.

हे प्रिय भक्त! जो लोग रात्रि बीतने पर बिस्तर से उठकर तुम्हारे द्वारा अर्पित इस स्तुति से मेरी प्रार्थना करते हैं मैं उन्हें उनके जीवन के अन्त में वैकुण्ठ लोक में नित्य आवास प्रदान करता हूँ।

श्रीशुक उवाच
इत्यादिश्य हृषीकेशः प्राध्माय जलजोत्तमम् ।
हर्षयन्विबुधानीकमारुरोह खगाधिपम् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; आदिश्य—उपदेश देकर; हृषीकेशः—हृषीकेश नाम से विख्यात भगवान्; प्राध्माय—बजाकर; जल-ज-उत्तमम्—जलचरों में उत्तम, शंख; हर्षयन्—प्रसन्न करते; विबुध-अनीकम्—देवताओं के समूह को, जिसमें ब्रह्मा तथा शिव प्रमुख हैं; आरुरोह—चढ़ गये; खग-अधिपम्—गरुड़ की पीठ पर।.

श्री शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : इस उपदेश को देकर हृषीकेश भगवान् ने अपना पाञ्चजन्य शंख बजाया और इस प्रकार ब्रह्मा इत्यादि सारे देवताओं को हर्षित किया। तब वे अपने वाहन गरुड़ की पीठ पर चढ़ गये।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कंध के अन्तर्गत "गजेन्द्र का वैकुण्ठ गमन" नामक चौथे अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter पाँच

देवताओं द्वारा भगवान् से सुरक्षा याचना

इस अध्याय में पाँचवे तथा छठे मनुओं का वर्णन है। साथ ही इसमें देवताओं की स्तुतियों एवं दुर्वासा मुनि के शाप का भी वर्णन हुआ है।

चतुर्थ मनु तामस जिसका वर्णन पहले हो चुका है, का भाई रैवत पाँचवाँ मनु था। रैवत के पुत्रों में अर्जुन, बलि तथा विन्ध्य प्रमुख थे। इस मनु के राज्यकाल में स्वर्ग का राजा इन्द्र विभु के नाम से जाना जाता था, भूतरयगण देवता थे और हिरण्यरोमा, वेदशिरा तथा ऊर्ध्वबाहु इत्यादि सप्तर्षि थे। शुभ्र नामक ऋषि की पत्नी विकुण्ठा के गर्भ से भगवान् वैकुण्ठ ने जन्म लिया। इन भगवान् ने रमादेवी के आग्रह पर वैकुण्ठ लोक उत्पन्न किया। तृतीय स्कंध में इनकी शक्ति तथा कार्यकलापों का उल्लेख हो चुका है।

छठे मनु चाक्षुष थे, जो चक्षु मनु के पुत्र थे। इस छठे मनु के पुत्रों में पुरु, पुरुष तथा सुद्युम्न हुए। इस मनु के शासन काल में मंत्रद्रुम स्वर्ग का राजा इन्द्र था, आप्यगण देवता थे और हविष्मान तथा वीरक इत्यादि सप्तर्षि थे। वैराज की पत्नी देवसम्भूति ने अजित नामक भगवान् के अवतार को जन्म दिया। इसी अजित ने कछुवे का रूप बना कर अपनी पीठ पर मंदर पर्वत को धारण किया और समुद्र मन्थन करके देवताओं के लिए अमृत उत्पन्न किया।

महाराज परीक्षित समुद्र मंथन के विषय में सुनने के लिए बहुत उत्सुक थे; अतएव शुकदेव गोस्वामी ने उन्हें बताना शुरू किया कि किस प्रकार दुर्वासा मुनि के शाप से देवतागण असुरों द्वारा युद्ध में परास्त हुए। जब देवताओं से उनका स्वर्ग का राज्य छिन गया तो वे ब्रह्मा के सभा-भवन में गये और ब्रह्माजी को सब कुछ कह सुनाया। तब ब्रह्मा सारे देवताओं को साथ लेकर क्षीर सागर के तट पर गये और उन्होंने क्षीरोदकशायी विष्णु की स्तुति करना प्रारम्भ किया।

श्रीशुक उवाच
राजन्नुदितमेतत्ते हरेः कर्माघनाशनम् ।
गजेन्द्रमोक्षणं पुण्यं रैवतं त्वन्तरं शृणु ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—**श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा**; **राजन्**—**हे राजा**; **उदितम्**—**पहले ही वर्णन किया जा चुका**; **एतत्**—**यह**; **ते**—**तुमसे**; **हरेः**—**भगवान् का**; **कर्म**—**कर्म**; **अघ-नाशनम्**—**जिसे सुनकर मनुष्य सारे पापों से मुक्त हो सकता है**; **गजेन्द्र-**

मोक्षणम्—गजेन्द्र के मोक्ष को; पुण्यम्—सुनने तथा वर्णन करने में अत्यन्त पवित्र; रैवतम्—रैवत मनु के विषय में; तु—लेकिन; अन्तरम्—इस युग में; शृणु—कृपया मुझसे सुनो।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : हे राजा! मैंने तुमसे गजेन्द्रमोक्षण लीला का वर्णन किया है, जो सुनने में अत्यन्त पवित्र है। भगवान् की ऐसी लीलाओं के विषय में सुनकर मनुष्य सारे पापों के फलों से छूट सकता है। अब मैं रैवत मनु का वर्णन कर रहा हूँ, कृपया उसे सुनो।

पञ्चमो रैवतो नाम मनुस्तामससोदरः ।
बलिविन्ध्यादयस्तस्य सुता हार्जुनपूर्वकाः ॥ २॥

शब्दार्थ

पञ्चमः—पाँचवाँ; रैवतः—रैवत; नाम—नामक; मनुः—मनु; तामस-सोदरः—तामस मनु का भाई; बलि—बलि; विन्ध्य—विन्ध्य; आदयः—इत्यादि; तस्य—उसके; सुताः—पुत्र; ह—निश्चय ही; अर्जुन—अर्जुन; पूर्वकाः—इनके पुत्रों में प्रधान।

तामस मनु का भाई रैवत पाँचवाँ मनु था। उसके पुत्रों में अर्जुन, बलि तथा विन्ध्य प्रमुख थे।

विभुरिन्द्रः सुरगणा राजन्भूतरयादयः ।
हिरण्यरोमा वेदशिरा ऊर्ध्वबाह्वादयो द्विजाः ॥ ३॥

शब्दार्थ

विभुः—विभु; इन्द्रः—स्वर्ग का राजा; सुर-गणाः—देवता; राजन्—हे राजा; भूतरय-आदयः—भूतरय आदि; हिरण्यरोमा—हिरण्यरोमा; वेदशिरा—वेदशिरा; ऊर्ध्वबाहु—ऊर्ध्वबाहु; आदयः—इत्यादि; द्विजाः—ब्राह्मण या सातों लोकों के ऋषि।

हे राजा! रैवत मनु के युग में स्वर्ग का राजा (इन्द्र) विभु था, देवताओं में भूतरय इत्यादि थे और सप्त लोकों के अधिपति सात ब्राह्मण हिरण्यरोमा, वेदशिरा तथा ऊर्ध्वबाहु इत्यादि थे।

पत्नी विकुण्ठा शुभ्रस्य वैकुण्ठैः सुरसत्तमैः ।
तयोः स्वकलया जज्ञे वैकुण्ठो भगवान्स्वयम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

पत्नी—पत्नी; विकुण्ठा—विकुण्ठा नाम की; शुभ्रस्य—शुभ्र की; वैकुण्ठैः—वैकुण्ठों सहित; सुर-सत्-तमैः—देवताओं के साथ; तयोः—विकुण्ठा तथा शुभ्र से; स्व-कलया—स्वांश से; जज्ञे—प्रकट हुआ; वैकुण्ठः—भगवान्; भगवान्—भगवान्; स्वयम्—साक्षात्।

शुभ्र तथा उसकी पत्नी विकुण्ठा के संयोग से भगवान् वैकुण्ठ अपने स्वांश देवताओं सहित प्रकट हुए।

वैकुण्ठः कल्पितो येन लोको लोकनमस्कृतः ।
रमया प्रार्थ्यमानेन देव्या तत्प्रियकाम्यया ॥ ५॥

शब्दार्थ

वैकुण्ठः—वैकुण्ठ लोक; कल्पितः—बनाया गया; येन—जिसके द्वारा; लोकः—लोक; लोक-नमस्कृतः—सभी लोकों द्वारा पूजित; रमया—रमा, धन की देवी द्वारा; प्रार्थ्यमानेन—प्रार्थना किये जाने पर; देव्या—देवी द्वारा; तत्—उसको; प्रिय-काम्यया—प्रसन्न करने के लिए।

धन की लक्ष्मी (रमा) को प्रसन्न करने के लिए भगवान् वैकुण्ठ ने उनकी प्रार्थना पर एक अन्य वैकुण्ठ लोक की रचना की जो सब के द्वारा पूजा जाता है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की टिप्पणी है कि यह वैकुण्ठ लोक *श्रीमद्भागवत* की तरह प्रकट होता है और उत्पन्न हुआ या सृजित कहलाता है, किन्तु *श्रीमद्भागवत* तथा वैकुण्ठ दोनों ही आठ प्रकार के आवरणों से ढके भौतिक ब्रह्माण्डों से परे सदैव विद्यमान रहते हैं। जैसाकि द्वितीय स्कंध में बताया जा चुका है, ब्रह्मा ने ब्रह्माण्ड की सृष्टि के पूर्व वैकुण्ठ देखा था। वीरराघव आचार्य उल्लेख करते हैं कि यह वैकुण्ठ इस ब्रह्माण्ड के भीतर है। यह लोकालोक नामक पर्वत के ऊपर स्थित है और सबके द्वारा पूजित है।

तस्यानुभावः कथितो गुणाश्च परमोदयाः ।
भौमान्रेणून्स विममे यो विष्णोर्वर्णयेद्गुणान् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

तस्य—वैकुण्ठ के रूप में प्रकट होने वाले भगवान् को; अनुभावः—महान् कार्यकलाप; कथितः—बताये जा चुके; गुणाः—दिव्य गुण; च—भी; परम-उदयाः—अत्यन्त यशस्वी; भौमान्—पृथ्वी के; रेणून्—कण; सः—जो कोई; विममे—गिन सकता है; यः—ऐसा पुरुष; विष्णोः—विष्णु के; वर्णयेत्—गिन सकता है; गुणान्—दिव्य गुणों को।

यद्यपि भगवान् के विविध अवतारों के महान् कार्यों तथा दिव्य गुणों का अद्भुत रीति से वर्णन किया जाता है, किन्तु कभी-कभी हम उन्हें नहीं समझ पाते। किन्तु भगवान् विष्णु के लिए सब कुछ सम्भव है। यदि कोई ब्रह्माण्ड के सारे परमाणुओं को गिन सके तो वह भगवान् के गुणों की गणना कर सकता है। किन्तु ऐसा कर पाना सम्भव नहीं है। अतः कोई भी भगवान् के दिव्य गुणों को नहीं गिन सकता।

तात्पर्य : इस प्रसंग में भगवान् के जिन यशस्वी कार्यों का उल्लेख है वे जय तथा विजय नामक उनके निजी अंगरक्षकों को सनक, सनातन, सनत्कुमार तथा सनन्दन महान् ऋषियों द्वारा शाप दिये जाने के बाद दैत्य बनने पर घटित हुए। जय को हिरण्याक्ष के रूप में वराहदेव से युद्ध करना पड़ा और इन्हीं वराहदेव का वर्णन रैवत कल्प के सम्बन्ध में किया जा रहा है। किन्तु यह युद्ध प्रथम मनु स्वायंभुव के

शासनकाल में हुआ। अतएव कुछ विद्वानों के अनुसार वराह दो हुए हैं। किन्तु अन्यों का मत है कि वराह स्वायंभुव मनु के राज्यकाल में प्रकट हुए और रैवत मनु के काल तक जल के भीतर रहते रहे। कुछ लोगों को सन्देह हो सकता है कि यह कैसे घटित हुआ होगा, किन्तु उत्तर यह है कि कुछ भी घटित हो सकता है। यदि कोई ब्रह्माण्ड के परमाणुओं की गणना कर ले तो वह भगवान् विष्णु के गुणों को गिन सकता है। किन्तु न तो कोई परमाणुओं को गिन सकता है और न भगवान् के दिव्य गुणों को ही।

षष्ठश्च चक्षुषः पुत्रश्चाक्षुषो नाम वै मनुः ।
पूरुपूरुषसुद्युम्नप्रमुखाश्चाक्षुषात्मजाः ॥ ७॥

शब्दार्थ

षष्ठः—छठा; च—तथा; चक्षुषः—चक्षु का; पुत्रः—पुत्र; चाक्षुषः—चाक्षुष; नाम—नामक; वै—निस्सन्देह; मनुः—मनु; पूरु—पूरु; पूरुष—पूरुष; सुद्युम्न—सुद्युम्न; प्रमुखाः—प्रमुख; चाक्षुष-आत्म-जाः—चाक्षुष के पुत्र।

चक्षु का पुत्र चाक्षुष कहलाया जो छठा मनु था। उसके कई पुत्र थे जिनमें पूरु, पूरुष तथा सुद्युम्न प्रमुख थे।

इन्द्रो मन्त्रद्रुमस्तत्र देवा आप्यादयो गणाः ।
मुनयस्तत्र वै राजन्हविष्मद्वीरकादयः ॥ ॥

शब्दार्थ

इन्द्रः—स्वर्ग का राजा; मन्त्रद्रुमः—मंत्रद्रुम नाम का; तत्र—छठे मन्वन्तर में; देवाः—देवतागण; आप्य-आदयः—आप्य तथा अन्य; गणाः—वह सभा; मुनयः—सप्तर्षि; तत्र—वहाँ; वै—निस्सन्देह; राजन्—हे राजा; हविष्मत्—हविष्मान् नाम का; वीरक-आदयः—वीरक तथा अन्य।

चाक्षुष मनु के राज्यकाल में स्वर्ग का राजा मंत्रद्रुम के नाम से विख्यात था। देवताओं में आप्यगण तथा सप्तर्षियों में हविष्मान् तथा वीरक प्रमुख थे।

तत्रापि देवसम्भूत्यां वैराजस्याभवत्सुतः ।
अजितो नाम भगवानंशेन जगतः पतिः ॥ ९॥

शब्दार्थ

तत्र अपि—पुनः उसी छठे मन्वन्तर में; देवसम्भूत्याम्—देवसम्भूति से; वैराजस्य—उसके पति वैराज का; अभवत्—हुआ; सुतः—पुत्र; अजितः नाम—अजित नामक; भगवान्—भगवान्; अंशेन—अंश से; जगतः पतिः—ब्रह्माण्ड का स्वामी।

इस छठे मन्वन्तर में ब्रह्माण्ड के स्वामी भगवान् विष्णु अपने अंश रूप में प्रकट हुए। वे वैराज की पत्नी देवसम्भूति के गर्भ से उत्पन्न हुए और उनका नाम अजित था।

पयोधिं येन निर्मथ्य सुराणां साधिता सुधा ।
भ्रममाणोऽम्भसि धृतः कूर्मरूपेण मन्दरः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

पयोधिम्—क्षीर सागर; येन—जिसके द्वारा; निर्मथ्य—मथा जाकर; सुराणाम्—देवताओं का; साधिता—उत्पन्न किया; सुधा—अमृत; भ्रममाणः—इधर-उधर भ्रमण करते हुए; अम्भसि—जल के भीतर; धृतः—टिका हुआ था; कूर्म-रूपेण—कछुवे के रूप में; मन्दरः—मन्दर पर्वत।

क्षीरसागर का मंथन करके अजित ने देवताओं के लिए अमृत उत्पन्न किया। कछुवे के रूप में वे महान् मन्दर पर्वत को अपनी पीठ पर धारण किये इधर-उधर हिल-डुल रहे थे।

श्रीराजोवाच
यथा भगवता ब्रह्मन्मथितः क्षीरसागरः ।
यदर्थं वा यतश्चाद्रिं दधाराम्बुचरात्मना ॥ ११ ॥
यथामृतं सुरैः प्राप्तं किं चान्यदभवत्ततः ।
एतद्भगवतः कर्म वदस्व परमाद्भुतम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा परीक्षित ने प्रश्न किया; यथा—जिस तरह; भगवता—भगवान् के द्वारा; ब्रह्मन्—हे विद्वान ब्राह्मण; मथितः—मथा गया; क्षीर-सागरः—दूध का सागर; यत्-अर्थम्—क्या उद्देश्य था; वा—अथवा; यतः—जहाँ से, किस कारण से; च—तथा; अद्रिम्—पर्वत को (मन्दर); दधार—धारण किया; अम्बुचर-आत्मना—कछुवे के रूप में; यथा—जिस तरह; अमृतम्—अमृत; सुरैः—देवताओं द्वारा; प्राप्तम्—प्राप्त किया गया था; किम्—क्या; च—तथा; अन्यत्—दूसरा; अभवत्—बन गया; ततः—तत्पश्चात्; एतत्—ये सभी; भगवतः—भगवान् के; कर्म—कार्यकलाप, लीलाएँ; वदस्व—कृपा करके बतलायें; परम-अद्भुतम्—जो इतने अद्भुत हैं।

राजा परीक्षित ने पूछा : हे परम ब्राह्मण, शुकदेव गोस्वामी! भगवान् विष्णु ने क्षीरसागर का मंथन क्यों और कैसे किया? वे कच्छप रूप में जल के भीतर किसलिए रहे और मन्दर पर्वत को क्यों धारण किये रहे? देवताओं ने किस तरह अमृत प्राप्त किया? और सागर मन्थन से अन्य कौन-कौन सी वस्तुएँ उत्पन्न हुईं? कृपा करके भगवान् के इन सारे अद्भुत कार्यों का वर्णन करें।

त्वया सङ्कथ्यमानेन महिम्ना सात्वतां पतेः ।
नातितृप्यति मे चित्तं सुचिरं तापतापितम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

त्वया—आपके द्वारा; सङ्कथ्यमानेन—वर्णन किया जा रहे; महिम्ना—सारी महिमा से; सात्वताम् पतेः—भक्तों के स्वामी, भगवान् का; न—नहीं; अति-तृप्यति—अत्यधिक तुष्ट होता है; मे—मेरा; चित्तम्—हृदय; सुचिरम्—दीर्घकाल तक; ताप—दुख से; तापितम्—दुखित होकर।

मेरा हृदय भौतिक जीवन के तीन तापों से विचलित है, किन्तु वह अब भी आपके द्वारा वर्णित किये जा रहे भक्तों के स्वामी भगवान् के यशस्वी कार्यकलापों को सुनकर तृप्त नहीं हुआ है।

श्रीसूत उवाच
सम्पृष्टो भगवानेवं द्वैपायनसुतो द्विजाः ।
अभिनन्द्य हरेर्वीर्यमभ्याचष्टुं प्रचक्रमे ॥ १४॥

शब्दार्थ

श्री-सूतः उवाच—श्रीसूत गोस्वामी ने कहा; सम्पृष्टः—पूछे जाने पर; भगवान्—शुकदेव गोस्वामी ने; एवम्—इस प्रकार; द्वैपायन-सुतः—व्यासदेव के पुत्र; द्वि-जाः—यहाँ पर समवेत ब्राह्मण; अभिनन्द्य—महाराज को बधाई देकर; हरेः वीर्यम्—भगवान् के यश को; अभ्याचष्टुम्—वर्णन करने के लिए; प्रचक्रमे—प्रयास किया।

श्रीसूत गोस्वामी ने कहा : यहाँ नैमिषारण्य में एकत्रित हे विद्वान ब्राह्मणो! जब द्वैपायन पुत्र शुकदेव गोस्वामी से राजा ने इस तरह से प्रश्न पूछा तो उन्होंने राजा को बधाई दी और भगवान् के यश को और भी आगे वर्णन करने का प्रयास किया।

श्रीशुक उवाच
यदा युद्धेऽसुरैर्देवा बध्यमानाः शितायुधैः ।
गतासवो निपतिता नोत्तिष्ठेरन्स्म भूरिशः ॥ १५॥
यदा दुर्वासः शापेन सेन्द्रा लोकास्त्रयो नृप ।
निःश्रीकाश्चाभवंस्तत्र नेशुरिज्यादयः क्रियाः ॥ १६॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; यदा—जब; युद्धे—युद्ध में; असुरैः—असुरों द्वारा; देवाः—देवतागण; बध्यमानाः—बाँधे गये; शित-आयुधैः—सर्प-आयुधों द्वारा; गत-आसवः—प्रायः मृत; निपतिताः—गिरे हुए कुछ लोग; न—नहीं; उत्तिष्ठेरन्—पुनः उठ पाये; स्म—ऐसे हो गये; भूरिशः—उनमें से अधिकांश; यदा—जब; दुर्वासः—दुर्वासा मुनि के; शापेन—शाप से; स-इन्द्राः—इन्द्र समेत; लोकाः त्रयः—तीनों लोक; नृप—हे राजा; निःश्रीकाः—बिना किसी भौतिक ऐश्वर्य के; च—भी; अभवन्—हो गया; तत्र—उस समय; नेशुः—सम्पन्न नहीं हो सका; इज्य-आदयः—यज्ञ; क्रियाः—अनुष्ठान।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जब असुरों ने अपने-अपने सर्प-आयुधों से युद्ध में देवताओं पर घमासान आक्रमण कर दिया तो अनेक देवता धराशायी हो गये और मर गये। वे फिर से जीवित नहीं किये जा सके। हे राजा! उस समय देवताओं को दुर्वासा मुनि ने शाप दिया हुआ था, तीनों लोक दरिद्रता से पीड़ित थे; इसीलिए अनुष्ठान सम्पन्न नहीं हो पा रहे थे। इसके प्रभाव अत्यन्त गम्भीर थे।

तात्पर्य : ऐसा वर्णन मिलता है कि जब दुर्वासा मुनि मार्ग पर जा रहे थे तो उन्होंने इन्द्र को अपने

हाथी की पीठ पर बैठे देखा। उन्होंने प्रसन्न होकर अपनी एक माला उतारकर इन्द्र के गले में डाल दी। किन्तु गर्वित होने के कारण इन्द्र ने दुर्वासा मुनि के आदर का ध्यान न रखते हुए वह माला उठाकर अपने वाहन हाथी की सूंड़ में पहना दी। हाथी पशु होने के कारण उस माला के महत्त्व को नहीं समझ पाया; अतएव उसने वह माला नीचे गिरा दी और उसे अपने पैरों से रौंद डाला। इस अपमानजनक व्यवहार को देखकर दुर्वासा मुनि ने तुरन्त ही इन्द्र को समग्र भौतिक ऐश्वर्य से रहित दरिद्र होने का शाप दे डाला। इस प्रकार एक ओर युद्ध कर रहे असुरों से दुखी होकर और दूसरी ओर दुर्वासा मुनि के शाप के कारण देवताओं ने तीनों लोकों का अपना सारा भौतिक ऐश्वर्य खो दिया।

भौतिकतावादी उन्नति में अत्यधिक ऐश्वर्यवान् होना कभी-कभी घातक होता है। ऐश्वर्यवान् व्यक्ति किसी की परवाह नहीं करता और इस तरह वह महापुरुषों यथा भक्तों तथा महान् सन्तों के प्रति अपराध करता है। भौतिक ऐश्वर्य की यही शैली है। जैसाकि शुकदेव गोस्वामी ने कहा है—*धनदुर्मदान्ध*—अर्थात् अत्यधिक धन से आदमी अन्धा बन जाता है। स्वर्ग में इन्द्र तक के साथ यही होता है; तो फिर इस भौतिक लोक के लोगों के विषय में क्या कहा जा सकता है? ऐश्वर्यवान् होने पर मनुष्य को वैष्णवों एवं सन्त पुरुषों के प्रति गम्भीर होना तथा अच्छा व्यवहार करना सीखना चाहिए अन्यथा उसका पतन हो जायेगा।

निशाम्यैतत्सुरगणा महेन्द्रवरुणादयः ।
नाध्यगच्छन्स्वयं मन्त्रैर्मन्त्रयन्तो विनिश्चितम् ॥ १७॥
ततो ब्रह्मसभां जग्मुर्मेरोर्मूर्धनि सर्वशः ।
सर्वं विज्ञापयां चक्रुः प्रणताः परमेष्ठिने ॥ १ ॥

शब्दार्थ

निशाम्य—सुनकर; एतत्—यह घटना; सुर-गणाः—सारे देवता; महा-इन्द्र—राजा इन्द्र; वरुण-आदयः—वरुण तथा अन्य देवता; न—नहीं; अध्यगच्छन्—पहुँचे; स्वयम्—साक्षात्; मन्त्रैः—मंत्रणा द्वारा, आपसी विचार-विमर्श करके; मन्त्रयन्तः—विचार-विमर्श करते हुए; विनिश्चितम्—असली निष्कर्ष; ततः—तत्पश्चात्; ब्रह्म-सभाम्—ब्रह्माजी की सभा में; जग्मुः—गये; मेरोः—सुमेरु पर्वत की; मूर्धनि—चोटी पर; सर्वशः—सबों ने; सर्वम्—सारी बातें; विज्ञापयाम् चक्रुः—सूचित किया; प्रणताः—नमस्कार किया; परमेष्ठिने—ब्रह्मा को।.

अपने जीवनों को ऐसी स्थिति में देखकर इन्द्र, वरुण तथा अन्य देवताओं ने परस्पर विचार-विमर्श किया, किन्तु उन्हें कोई हल न मिल सका। तब सारे देवता एकत्र हुए और वे एकसाथ सुमेरु पर्वत की चोटी पर गये। वहाँ पर ब्रह्मा जी की सभा में सब ने ब्रह्मा जी को साष्टांग प्रणाम

किया और जितनी सारी घटनाओं से अवगत कराया।

स विलोक्येन्द्रवाय्वादीन्निःसत्त्वान्विगतप्रभान् ।
लोकानमङ्गलप्रायानसुरानयथा विभुः ॥ १९ ॥
समाहितेन मनसा संस्मरन्पुरुषं परम् ।
उवाचोत्फुल्लवदनो देवान्स भगवान्परः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

सः—ब्रह्मा ने; विलोक्य—देखकर; इन्द्र-वायु-आदीन्—इन्द्र, वायु इत्यादि देवताओं को; निःसत्त्वान्—आध्यात्मिक शक्ति से विहीन; विगत-प्रभान्—सारे तेज से रहित; लोकान्—तीनों लोकों को; अमङ्गल-प्रायान्—दुर्भाग्य में डूबे; असुरान्—सारे असुरों को; अयथाः—समृद्धि वाले; विभुः—ब्रह्मा, जो इस जगत में परम हैं; समाहितेन—पूरी तरह समंजित करके; मनसा—मन से; संस्मरन्—पुनः पुनः स्मरण करके; पुरुषम्—परम पुरुष को; परम्—दिव्य; उवाच—कहा; उत्फुल्ल-वदनः—प्रसन्न मुख; देवान्—देवताओं को; सः—वह; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; परः—देवताओं का।

यह देखकर कि सारे देवता प्रभावहीन तथा बलहीन हो गये हैं जिसके फलस्वरूप तीनों लोक अमंगलमय हो चुके हैं तथा यह देखकर कि देवताओं की स्थिति अटपटी है, किन्तु असुरगण फल-फूल रहे हैं ब्रह्मा ने, जो समस्त देवताओं के ऊपर हैं और अत्यन्त शक्तिशाली हैं अपना मन भगवान् पर केन्द्रित किया। इस प्रकार प्रोत्साहित होने से उनका मुख चमक उठा और वे देवताओं से इस प्रकार बोले।

तात्पर्य : देवताओं से असली स्थिति के बारे में सुनकर ब्रह्माजी अत्यन्त चिन्तित हुए क्योंकि असुर बिना कारण अत्यधिक बलशाली बन चुके थे। जब असुर बलशाली बन जाते हैं, तो सारा संसार विकट स्थिति में पड़ जाता है क्योंकि असुरगण केवल अपनी इन्द्रियतृप्ति में लगे रहते हैं, विश्व कल्याण से उन्हें कोई सरोकार नहीं रहता, किन्तु देवता या भक्तगण सारे जीवों के कल्याण के लिए चिन्तित रहते हैं। उदाहरणार्थ, श्रील रूप गोस्वामी मंत्री पद त्याग कर सारे विश्व के लाभ हेतु वृन्दावन चले गये (*लोकानां हितकारिणौ*)। यह सन्त पुरुष या देवता का गुण है। निर्विशेषवादी तक सभी लोगों का कल्याण-चिन्तन करते हैं। इस प्रकार ब्रह्माजी असुरों को शक्तिशाली होते देखकर अत्यधिक चिन्तित हुए।

अहं भवो यूयमथोऽसुरादयो
मनुष्यतिर्यग्द्रुमघर्मजातयः ।
यस्यावतारांशकलाविसर्जिता

व्रजाम सर्वे शरणं तमव्ययम् ॥ २१॥

शब्दार्थ

अहम्—मैं; भवः—शिवजी; यूयम्—तुम सारे देवता; अथो—तथा; असुर-आदयः—असुर इत्यादि; मनुष्य—मनुष्य; तिर्यक्—पशु; द्रुम—वृक्ष एवं पौधे; घर्म-जातयः—पसीने से उत्पन्न कीड़े-मकोड़े; यस्य—जिस (भगवान्) का; अवतार—पुरुष अवतार का; अंश—उनके अंश, गुण अवतार, ब्रह्मा का; कला—ब्रह्मा के पुत्रों का; विसर्जिताः—पीढ़ी दर पीढ़ी उत्पन्न; व्रजाम—जायेंगे; सर्वे—हम सभी; शरणम्—शरण में; तम्—उस; अव्ययम्—अव्यय ब्रह्म की।

ब्रह्माजी ने कहा : मैं, शिवजी, तुम सारे देवता, असुर, स्वेदज प्राणी, अण्डज, पृथ्वी से उत्पन्न पेड़-पौधे तथा भ्रूण से उत्पन्न सारे जीव—सभी भगवान् से उन के रजोगुण अवतार (ब्रह्मा, गुणअवतार) से तथा ऋषियों से जो मेरे ही अंश हैं। अतएव हम सभी उन भगवान् के पास चलें और उनके चरणकमलों की शरण ग्रहण करें।

तात्पर्य : कुछ प्राणी भ्रूण से उत्पन्न होते हैं, कुछ पसीने से और कुछ बीज से। इस प्रकार सारे जीव भगवान् के गुणावतार से उत्पन्न होते हैं। अन्ततोगत्वा भगवान् ही सारे जीवों के आश्रय हैं।

न यस्य वध्यो न च रक्षणीयो
नोपेक्षणीयादरणीयपक्षः ।
तथापि सर्गस्थितिसंयमार्थं
धत्ते रजःसत्त्वतमांसि काले ॥ २२॥

शब्दार्थ

न—नहीं; यस्य—जिसके (भगवान्) द्वारा; वध्यः—मारा जाने वाला; न—न तो; च—भी; रक्षणीयः—रक्षा का पात्र; न—न तो; उपेक्षणीय—उपेक्षणीय; आदरणीय—पूजनीय; पक्षः—अंश; तथापि—फिर भी; सर्ग—सृष्टि; स्थिति—पालन; संयम—तथा संहार; अर्थम्—के लिए; धत्ते—स्वीकार करता है; रजः—रजोगुण; सत्त्व—सतोगुण; तमांसि—तथा तमोगुण को; काले—समय आने पर।

भगवान् के लिए न तो कोई वध्य है, न रक्षणीय, न उपेक्षणीय और न पूजनीय। फिर भी समयानुसार सृष्टि, पालन तथा संहार के लिए वे सतो, रजो या तमो गुण में विभिन्न रूपों में अवतार लेना स्वीकार करते हैं।

तात्पर्य : यह श्लोक बताता है कि भगवान् सब पर समभाव रखते हैं। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (९.२९) में स्वयं भगवान् करते हैं—

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।

ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥

"न तो मैं किसी से ईर्ष्या करता हूँ, न किसी का पक्ष लेता हूँ। मैं सब पर समभाव रखता हूँ।

किन्तु जो भी भक्तिपूर्वक मेरी सेवा करता है, वह मेरा मित्र है, वह मुझमें है और मैं भी उसका मित्र हूँ।'' यद्यपि भगवान् निष्पक्ष रहते हैं, किन्तु वे अपने भक्तों का विशेष ध्यान रखते हैं। अतएव भगवान् *भगवद्गीता* (४.) में कहते हैं—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

''पुण्यात्माओं का उद्धार तथा दुष्टों का संहार करने के साथ-साथ धर्म के सिद्धान्तों की पुनः स्थापना करने के लिए मैं युग-युग में अवतरित होता हूँ।'' भगवान् को किसी की रक्षा या विनाश से कोई सरोकार नहीं रहता, किन्तु इस भौतिक जगत के सृजन, पालन तथा संहार के लिए उन्हें बाह्य रूप से सतो, रजो या तमोगुण में कर्म करना पड़ता है। किन्तु वास्तव में वे भौतिक प्रकृति के इन गुणों से प्रभावित नहीं होते। वे हरएक के परमेश्वर हैं। जैसे राजा विधि तथा व्यवस्था बनाये रखने के लिए कभी-कभी किसी को दण्ड देते हैं या पुरस्कृत करते हैं वैसे ही इस जगत के कार्यकलापों से कुछ सरोकार न होने पर भी वे कभी-कभी देश, काल तथा वस्तु के अनुसार विभिन्न अवतारों में प्रकट होते हैं।

अयं च तस्य स्थितिपालनक्षणः
सत्त्वं जुषाणस्य भवाय देहिनाम् ।
तस्माद्व्रजामः शरणं जगद्गुरुं
स्वानां स नो धास्यति शं सुरप्रियः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

अयम्—यह अवधि; च—भी; तस्य—भगवान् की; स्थिति-पालन-क्षणः—पालन या अपना शासन स्थापित करने का समय; सत्त्वम्—सतोगुण; जुषाणस्य—(अब बिना प्रतीक्षा किये) स्वीकार करते हुए; भवाय—अधिक उन्नति के लिए; देहिनाम्—भौतिक शरीरधारियों का; तस्मात्—इसलिए; व्रजामः—जाना चाहिए; शरणम्—शरण में; जगत्-गुरुम्—भगवान् के चरणकमलों पर, जो संसार भर के गुरु हैं; स्वानाम्—हमारा अपना; सः—वह (भगवान्); नः—हमको; धास्यति—देगा; शम्—आवश्यक सौभाग्य; सुर-प्रियः—देवताओं को स्वभावतः अत्यन्त प्रिय।

देहधारी जीवों के सतोगुण का आह्वान करने का यही अवसर है। सतोगुण भगवान् के शासन की स्थापना करने के निमित्त होता है, जो सृष्टि के अस्तित्व का पालन करेगा। अतएव भगवान् की शरण ग्रहण करने के लिए यह उपयुक्त समय है। चूँकि वे देवताओं पर स्वभावतः अत्यन्त दयालु हैं और उन्हें प्रिय हैं अतएव वे हमें निश्चय ही सौभाग्य प्रदान करेंगे।

तात्पर्य : भौतिक जगत का संचालन तीन गुणों से होता है—ये हैं सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण। रजोगुण से भौतिक वस्तुओं का सृजन होता है, सत्त्वगुण से उनका ठीक से पालन होता है और जब सृष्टि ठीक से स्थित नहीं रहती तो तमोगुण से उनका विनाश हो जाता है।

इस श्लोक से हम कलियुग की स्थिति समझ सकते हैं जिसमें इस समय हम गुजर रहे हैं। कलियुग के प्रारम्भ में या यों कहें कि द्वापरयुग के अन्त में भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हुए और *भगवद्गीता* के रूप में अपने उपदेश छोड़ते गये जिसमें उन्होंने सभी जीवों को अपनी शरण में आने के लिए कहा है। किन्तु कलियुग के प्रारम्भ से ही लोग कृष्ण के चरणकमलों पर आत्मसमर्पण नहीं कर पा रहे हैं; अतएव लगभग पाँच हजार वर्षों के बाद कृष्ण पुनः श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में सारे विश्व को यह सिखाने के लिए आये कि कृष्ण की शरण कैसे ग्रहण की जाये और किस तरह शुद्ध हुआ जाये।

भगवान् कृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण करने का अर्थ है पूर्ण शुद्धि प्राप्त करना। *भगवद्गीता* (१.६६) में कृष्ण कहते हैं—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

"तुम सारे विभिन्न धर्मों को त्याग दो और केवल मेरी शरण में आओ। मैं तुम्हें सारे पापों के फल से बचा लूँगा। तुम डरो मत।" इस तरह जैसे ही कोई कृष्ण के चरणकमलों की शरण में जाता है त्योंही वह निश्चित रूप से समस्त कल्मष से मुक्त हो जाता है।

कलियुग कल्मष से ओतप्रोत है। इसका वर्णन *श्रीमद्भागवत* (१२.३.५१) में हुआ है—

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्॥

यह कलियुग अनन्त दोषों से पूर्ण है। निस्सन्देह, यह दोषों के सागर (दोष-निधि) के समान है। किन्तु इसमें एक ऐसा अवसर भी है—*कीर्तनाद् एव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्*—केवल हरे कृष्ण मंत्र का कीर्तन करके मनुष्य कलियुग के कल्मष से छूट सकता है और वह अपने मूल आध्यात्मिक शरीर में भगवद्धाम को लौट सकता है। कलियुग का यही शुभ अवसर है।

जब कृष्ण प्रकट हुए तो उन्होंने आदेश दिये और जब वे भक्त रूप में श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में स्वयं प्रकट हुए तो उन्होंने हमें वह मार्ग दिखलाया जिससे कलियुग के सागर को पार किया जा सके। वह हरे कृष्ण आन्दोलन का मार्ग है। जब श्री चैतन्य महाप्रभु प्रकट हुए तो उन्होंने *सङ्कीर्तन* आन्दोलन के युग का सूत्रपात किया। यह भी कहा जाता है कि यह युग दस हजार वर्षों तक रहेगा। इसका अर्थ होता है कि *सङ्कीर्तन* आन्दोलन को स्वीकार करने तथा हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन करने मात्र से इस कलियुग की पतितात्माओं का उद्धार हो जायेगा। कुरुक्षेत्र युद्ध जिसमें *भगवद्गीता* का प्रवचन हुआ था, के पश्चात् कलियुग को ४,३२,००० हजार वर्षों तक रहना है, जिसमें से केवल ५,००० हजार वर्ष बीते हैं। इस प्रकार अब भी ४,२७,००० वर्ष शेष हैं। इनमें से अगले १०,००० वर्षों तक श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा ५०० वर्ष पूर्व उद्घाटित सङ्कीर्तन आन्दोलन कलियुग की पतितात्माओं को कृष्णभावनामृत आन्दोलन स्वीकार करने, हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन करने एवं संसार के पाश से छूटकर भगवद्धाम वापस जाने का सुअवसर प्राप्त होता रहेगा।

हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन सदैव शक्तिमान रहा है, किन्तु कलियुग के लिए यह विशेषतया शक्तिमान है। अतएव महाराज परीक्षित को उपदेश देते हुए शुकदेव गोस्वामी ने हरे कृष्ण मंत्र के कीर्तन पर बल दिया—

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्॥

"हे राजा! यद्यपि यह कलियुग दोषों से पूर्ण है, किन्तु फिर भी इस युग का एक उत्तम गुण है। वह गुण यह है कि हरे कृष्ण महामंत्र के कीर्तन से ही मनुष्य भवबन्धन से मुक्त होकर दिव्य लोक को जा सकता है।" (*भागवत* १२.३.५१)। जिन लोगों ने पूर्णतया कृष्णभावनामृत में रहकर हरे कृष्ण महामंत्र का प्रसार करने का कार्य स्वीकार किया है उन्हें लोगों को भवबन्धन से आसानी से उबारने के इस सुअवसर का लाभ उठाना चाहिए। अतएव, हमारा कर्तव्य है कि श्री चैतन्य महाप्रभु के उपदेशों का अनुगमन करें और निष्ठापूर्वक सारे विश्व में कृष्णभावनामृत आन्दोलन (कृष्ण भक्ति) का प्रचार करें। मानव समाज की शान्ति तथा समृद्धि के लिए यह सर्वोत्तम कल्याण-कार्य है।

श्री चैतन्य महाप्रभु का आन्दोलन *कृष्ण-सङ्कीर्तन* के प्रसार में निहित है। *परं विजयते श्रीकृष्ण*

सङ्कीर्तनम्—श्रीकृष्ण-सङ्कीर्तन की जय हो। यह इतना यशस्वी क्यों है? इसकी भी व्याख्या श्री चैतन्य महाप्रभु ने की है। *चेतो दर्पणमार्जनम्*—हरे कृष्ण महामंत्र के कीर्तन से मनुष्य का हृदय स्वच्छ होता है। सारी कठिनाई तो यह है कि इस कलियुग में सत्त्वगुण नहीं रह गया है और लोगों के हृदय स्वच्छ नहीं हैं; अतएव लोग अपने शरीर को ही आत्मा मानने की भूल कर रहे हैं। यहाँ तक कि बड़े-बड़े विचारक तथा विज्ञानी भी जिनसे हमारा सम्पर्क होता है इस विचार के हैं कि वे शरीर हैं। अभी उसी दिन हम एक प्रमुख विचारक टामस हक्सले से विचार-विमर्श कर रहे थे, जिन्हें अंग्रेज होने का गर्व था। इसका अर्थ यह हुआ कि उनमें देहात्मबुद्धि थी। यह भ्रम हमें सर्वत्र मिलता है। मनुष्य में देहात्मबुद्धि के आने पर वह बिल्ली या कुत्ते जैसा पशु बन जाता है (*स एव गोखरः*)। इस प्रकार हमारे हृदयों में जो सबसे गंदी वस्तुएँ हैं, उनमें से सब से अधिक खतरनाक वस्तु शरीर को ही आत्मा मानने की भ्रान्त धारणा है। इस भ्रान्ति में आकर मनुष्य सोचता है "मैं यह शरीर हूँ। मैं अंग्रेज हूँ। मैं भारतीय हूँ। मैं अमरीकी हूँ। मैं हिन्दू हूँ। मैं मुसलमान हूँ।" यही भ्रान्त धारणा सबसे बड़ा अवरोध है और इसे हटाना होगा। *भगवद्गीता* का और श्री चैतन्य महाप्रभु का यही आदेश है। निस्सन्देह, *भगवद्गीता* का शुभारम्भ ही इस आदेश से होता है—

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।

तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥

"जिस प्रकार देहधारी आत्मा इस शरीर में निरन्तर बचपन से युवावस्था और फिर बुढ़ापे में चलता रहता है उसी तरह आत्मा मृत्यु के समय दूसरे शरीर में चला जाता है।" किन्तु इस परिवर्तन के स्वयं सिद्ध आत्मा विचलित नहीं होता (*भगवद्गीता* २.१३)। यद्यपि आत्मा शरीर के भीतर रहता है लेकिन भ्रान्ति एवं पशु-प्रवृत्ति के कारण मनुष्य शरीर को ही आत्मा मान बैठता है। अतएव श्री चैतन्य महाप्रभु का कहना है—*चेतोदर्पणमार्जनम्।* भ्रान्तियों से पूर्ण हृदय को पूरी तरह स्वच्छ करना मात्र *श्रीकृष्ण सङ्कीर्तन* के माध्यम से सम्भव है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन के अग्रणी लोगों को इस सुअवसर पर गम्भीरता से विचार करके पतितात्माओं पर दयालु बनकर उन्हें भौतिक जीवन की भ्रान्तियों से उबारना चाहिए।

मनुष्य इस भौतिक संसार में किसी भी तरह से सुखी नहीं हो सकता। जैसाकि *भगवद्गीता*

(.१६) में कहा गया है—

आब्रह्म भुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन

"इस भौतिक जगत में सर्वोच्च लोक से निम्नतम लोक तक सभी दुख के स्थान हैं जहाँ बारम्बार जन्म तथा मृत्यु होते रहते हैं।" अतएव चन्द्रमा तक जाने की कौन कहे, यदि कोई सर्वोच्च लोक, ब्रह्मलोक, भी चला जाये तो भी इस भौतिक जगत में कहीं सुख नहीं है। यदि कोई सचमुच सुख चाहता है, तो उसे वैकुण्ठलोक जाना चाहिए। भौतिक जगत जीवन-संघर्ष के लिए प्रसिद्ध है और योग्यतम की उत्तरजीविता सुप्रसिद्ध सिद्धान्त हैं, किन्तु इस जगत के बेचारे लोग यह नहीं जानते कि उत्तरजीविता क्या है और सक्षम कौन है? उत्तरजीविता का अर्थ यह नहीं होता कि कोई मर जाये। इसका अर्थ यह है कि वह मरे नहीं अपितु ज्ञान के शाश्वत आनन्दमय जीवन का भोग करे। यह उत्तरजीविता है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन हर व्यक्ति को उत्तरजीविता के लिए सक्षम बनाने के निमित्त है। निस्सन्देह, यह जीवन-संघर्ष को रोकने के निमित्त है। *श्रीमद्भागवत* तथा *भगवद्गीता* जीवन-संघर्ष को रोकने के लिए निश्चित आदेश देते हैं और बताते हैं कि नित्य जीवन में किस प्रकार उत्तरजीवी बना जाये। अतएव सङ्कीर्तन आन्दोलन एक महान् अवसर है। मात्र *भगवद्गीता* का श्रवण करने एवं हरे कृष्ण महामंत्र का सङ्कीर्तन करने से मनुष्य पूर्ण शुद्ध हो जाता है। इस तरह जीवन-संघर्ष का अन्त हो जाता है और मनुष्य भगवद्धाम को वापस जाता है।

श्रीशुक उवाच
इत्याभाष्य सुरान्वेधाः सह देवैररिन्दम ।
अजितस्य पदं साक्षाज्जगाम तमसः परम् ॥ २४॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; आभाष्य—बातें करके; सुरान्—देवताओं को; वेधाः—ब्रह्माण्ड के प्रधान तथा सब को वैदिक ज्ञान प्रदान करने वाले ब्रह्माजी; सह—साथ; देवैः—देवताओं के; अरिम्-दम—सारे शत्रुओं (यथा इन्द्रियों) का दमन करने वाले, हे महाराज परीक्षित; अजितस्य—भगवान् के; पदम्—स्थान तक; साक्षात्—प्रत्यक्ष; जगाम—गये; तमसः—अंधकार के संसार से; परम्—परे।

हे समस्त शत्रुओं का दमन करने वाले महाराज परीक्षित! देवताओं से बातें करने के बाद ब्रह्माजी उन्हें भगवान् के धाम ले गये जो इस भौतिक जगत से परे है। भगवान् का धाम श्वेतद्वीप नामक टापू में है, जो क्षीर सागर में स्थित है।

तात्पर्य : यहाँ पर महाराज परीक्षित को *अरिन्दम* अर्थात् 'शत्रुओं का दमन करने वाला' कहा गया

है। ऐसा नहीं है कि हमारे शत्रु शरीर के बाहर ही हैं, अपितु हमारे शरीर के भीतर भी अनेक हैं—यथा काम, क्रोध, लोभ। महाराज परीक्षित को विशेष रूप से *अरिन्दम* कहा गया है क्योंकि वे अपने राजनैतिक जीवन में सभी प्रकार के शत्रुओं का दमन करने में समर्थ थे और तरुण नृप होते हुए भी जब उन्होंने सुना कि वे सात दिनों के भीतर मरने वाले हैं, तो उन्होंने तुरन्त अपना साम्राज्य त्याग दिया। उन्होंने अपने शरीर के भीतर स्थित शत्रुओं यथा काम, क्रोध तथा लोभ के आदेशों को नहीं माना। वे उस मुनि के पुत्र पर तनिक भी क्रुद्ध नहीं हुए जिसने उन्हें शाप दिया था। प्रत्युत उस शाप को स्वीकार करते हुए उन्होंने शुकदेव गोस्वामी के सान्निध्य में मरने की तैयारी की। मृत्यु अवश्यम्भावी है, कोई भी मृत्यु की शक्ति पार नहीं पा सकता। अतएव महाराज परीक्षित यह सब जानते हुए *श्रीमद्भागवत* सुनने के इच्छुक थे। फलस्वरूप उन्हें यहाँ *अरिन्दम* कहा गया है।

एक अन्य शब्द *सुर-प्रिय* भी महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि भगवान् कृष्ण सब पर समान भाव रखते हैं, किन्तु वे अपने भक्तों पर विशेष तौर पर कृपालु रहते हैं (*ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्*)। सारे भक्त देवता होते हैं। इस संसार में दो प्रकार के लोग हैं—एक *देव* कहलाते हैं और दूसरे *असुर*। *पद्मपुराण* का कथन है—

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च।
विष्णुभक्तः स्मृतो दैव आसुरस्तद्विपर्ययः॥

जो कोई भी भगवान् कृष्ण का भक्त है, वह देव कहलाता है और अन्य लोग, चाहे वे देवताओं के भक्त ही क्यों न हों, असुर कहलाते हैं। उदाहरणार्थ, रावण शिवजी का महान् भक्त था, किन्तु उसे असुर कहा जाता है। इसी प्रकार हिरण्यकशिपु को ब्रह्मा का महान् भक्त कहा जाता है, तो भी वह असुर था। अतएव केवल भगवान् विष्णु का भक्त *सुर* कहलाता है, *असुर* नहीं। भगवान् कृष्ण अपने भक्तों पर अत्यन्त प्रसन्न रहते हैं, भले ही ये भक्त भक्ति की चरमावस्था को प्राप्त न हों। भक्ति की निम्नतर अवस्थाओं में भी मनुष्य दिव्य होता है और यदि वह भक्ति करता रहे तो वह *देव* या *सुर* ही बना रहता है। यदि कोई इसी तरह रहे तो कृष्ण उस पर सदैव प्रसन्न रहेंगें और उसे उपदेश देंगे जिससे वह आसानी से भगवद्धाम वापस जा सके।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने भौतिक जगत के क्षीरसागर स्थित भगवान् के निवास स्थान,

अजितस्य पदम् के विषय में इस प्रकार कहा है— *पदं क्षीरोदधिस्थ श्वेतदीपं तमस: प्रकृते: परम्*—यह द्वीप श्वेतद्वीप कहलाता है, जो क्षीरसागर में है और दिव्य है। इसका इस भौतिक जगत से कोई वास्ता नहीं है। किसी शहर में सरकार का विश्राम-गृह होता है जहाँ राज्यपाल तथा अन्य महत्त्वपूर्ण सरकारी अधिकारी ठहरते हैं। ऐसा विश्राम-गृह सामान्य घर नहीं होता। इसी प्रकार से श्वेतद्वीप जो क्षीरसागर में स्थित है इसी जगत में है, किन्तु यह *परं पदम्* या दिव्य है।

तत्राद्दष्टस्वरूपाय श्रुतपूर्वाय वै प्रभुः ।
स्तुतिमब्रूत दैवीभिर्गीर्भिस्त्ववहितेन्द्रियः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ (श्वेतद्वीप में); अद्दष्ट-स्वरूपाय—भगवान् को, जिन्हें ब्रह्मा तक ने नहीं देखा था; श्रुत-पूर्वाय—किन्तु जो वेदों से सुने गए थे; वै—निस्सन्देह; प्रभुः—ब्रह्माजी; स्तुतिम्—वैदिक वाङ्मय से प्राप्त स्तुति; अब्रूत—की गई; दैवीभिः—स्तुतियों द्वारा, या वैदिक सिद्धान्तों को पालने वाले व्यक्तियों द्वारा; गीर्भिः—ऐसे गीतों या उच्चारणों द्वारा; तु—तब; अवहित-इन्द्रियः—स्थिरचित्त।

वहाँ (श्वेतद्वीप में) ब्रह्माजी ने भगवान् की स्तुति की, यद्यपि उन्होंने परमेश्वर को इसके पूर्व कभी नहीं देखा था। चूँकि उन्होंने वैदिक वाङ्मय से भगवान् के विषय में सुना हुआ था अतएव उन्होंने स्थिरचित्त होकर भगवान् की उसी तरह स्तुति की जिस प्रकार वैदिक साहित्य में लिखी हुई या मान्य है।

तात्पर्य : कहा जाता है कि जब ब्रह्मा तथा अन्य देवता श्वेतद्वीप में भगवान् का दर्शन करने जाते हैं, तो वे उनका साक्षात् दर्शन नहीं कर पाते अपितु उनकी प्रार्थना सुनकर भगवान् आवश्यक कार्यवाही करते हैं। ऐसा हमने अनेक बार देखा है। *श्रुतपूर्वाय* शब्द महत्त्वपूर्ण है। प्रत्यक्ष दर्शन करने या सुनने से हमें अनुभव होता है। यदि किसी का प्रत्यक्ष दर्शन कर पाना सम्भव नहीं होता तो उसके विषय में प्रामाणिक स्रोतों से सुना जा सकता है। कभी-कभी लोग पूछते हैं कि क्या हम उन्हें ईश्वर का दर्शन करा सकते हैं? यह अत्यन्त हास्यास्पद है। ईश्वर को स्वीकार करने के पूर्व उनका दर्शन करना आवश्यक नहीं होता। हमारा इन्द्रियबोध सदा अपूर्ण रहता है; अतएव ईश्वर का दर्शन कर लेने पर भी हम उन्हें नहीं समझ सकेंगे। जब कृष्ण इस धरा पर थे तो अनेकानेक लोगों ने उन्हें देखा था, किन्तु वे यह नहीं समझ पाये कि वे भगवान् हैं। *अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।* यद्यपि धूर्तों तथा मूर्खों ने कृष्ण को साक्षात् देखा था, किन्तु वे यह नहीं समझ सके थे कि वे भगवान् हैं। ईश्वर का

साक्षात् दर्शन करके भी अभागा मनुष्य उन्हें समझ नहीं सकता। अतएव हमें प्रामाणिक वैदिक साहित्य से तथा वेदों को समुचित रूप से समझने वाले पुरुषों से भगवान् कृष्ण के विषय में सुनना होता है। यद्यपि ब्रह्मा ने भगवान् को इसके पूर्व नहीं देखा था, किन्तु उनका दृढ़ विश्वास था कि वे श्वेतद्वीप में थे। इस तरह उन्होंने अवसर का लाभ उठाया, वे वहाँ गये और उनकी स्तुति की।

ये स्तुतियाँ सामान्य कल्पित स्तुतियाँ नहीं थीं। स्तुतियों को वेदसम्मत होना चाहिए जैसाकि इस श्लोक में आगत *दैविभिर्गीर्भि:* शब्दों से सूचित होता है। हम अपने कृष्णभावनामृत आन्दोलन में किसी ऐसे गीत की अनुमति नहीं देते जो पहले से स्वीकृत न हो या प्रामाणिक भक्तों द्वारा गाया न गया हो। हम मन्दिर में फिल्मी गानों को गाये जाने की अनुमति नहीं दे सकते। हम प्राय: दो गीत गाते हैं। एक है—*श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द श्री अद्वैतगदाधर श्रीवासादि-गौर-भक्तवृन्द।* यह प्रामाणिक गीत है। इसका उल्लेख *चैतन्य चरितामृत* में सदा होता है और आचार्यों ने इसे स्वीकार किया है। दूसरा गीत है—महामंत्र—हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे। हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे। हम नरोत्तम दास ठाकुर, भक्तिविनोद ठाकुर तथा लोचनदास ठाकुर के भी गीत गा सकते हैं लेकिन उपर्युक्त दोनों गीत भगवान् को प्रसन्न करने के लिए पर्याप्त हैं, भले ही हम उनका दर्शन न कर सकें। भगवान् का दर्शन करना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना कि प्रामाणिक साहित्य या अधिकारी जनों के प्रामाणिक वक्तव्यों के द्वारा उनकी प्रंशसा करना।

श्रीब्रह्मोवाच
अविक्रियं सत्यमनन्तमाद्यं
गुहाशयं निष्कलमप्रतर्क्यम् ।
मनोऽग्रयानं वचसानिरुक्तं
नमामहे देववरं वरेण्यम् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

श्री-ब्रह्मा उवाच—ब्रह्माजी ने कहा; अविक्रियम्—अविकारी भगवान् को; सत्यम्—परम सत्य; अनन्तम्—अनन्त; आद्यम्—समस्त कारणों के आदि कारण; गुहा-शयम्—प्रत्येक हृदय में उपस्थित; निष्कलम्—शक्ति का ह्रास हुए बिना; अप्रतर्क्यम्—अचिन्त्य, जो भौतिक तर्कों की सीमा से परे हैं; मन:-अग्रयानम्—मन से भी अधिक वेगवान्; वचसा—शब्द जाल से; अनिरुक्तम्—अवर्णनीय; नमामहे—हम सभी देवता आपको नमस्कार करते हैं; देव-वरम्—उन परमेश्वर को जिनकी न तो कोई तुलना कर सकता है, न उनसे बढ़कर है; वरेण्यम्—परम पूज्य, जिनकी पूजा गायत्री मंत्र द्वारा की जाती है।

ब्रह्माजी ने कहा : हे परमेश्वर, हे अविकारी, असीम परम सत्य! आप हर वस्तु के उद्गम हैं। सर्वव्यापी होने के कारण आप प्रत्येक के हृदय में और परमाणु में भी रहते हैं। आपमें कोई

भौतिक गुण नहीं पाये जाते। निस्सन्देह, आप अचिन्त्य हैं। मन आपको कल्पना से नहीं ग्रहण कर सकता और शब्द आपका वर्णन करने में असमर्थ हैं। आप सब के परम स्वामी हैं; अतएव आप हर एक के आराध्य हैं। हम आपको सादर नमस्कार करते हैं।

तात्पर्य : भगवान् कोई भौतिक सृष्टि की वस्तु नहीं। प्रत्येक भौतिक वस्तु एक से दूसरे रूप में बदलती रहती है। उदाहरणार्थ, मिट्टी से पहले मिट्टी का पात्र बनता है और मिट्टी के पात्र से पुन: मिट्टी बनती है। हमारी सारी सृष्टियाँ क्षणिक एवं अस्थायी हैं, किन्तु भगवान् शाश्वत हैं। इसी प्रकार जीव, जो भगवान् के अंश हैं, भी शाश्वत हैं (*ममैवांशो जीवलोके जीवभूत: सनातन:*)। भगवान् सनातन या शाश्वत हैं और जीव भी सनातन हैं। अन्तर इतना ही है कि कृष्ण अर्थात् भगवान् परम सनातन हैं और जीव सूक्ष्म अंशरूप सनातन हैं। जैसाकि *भगवद्गीता* (१३.३) में कहा गया है—*क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।* यद्यपि भगवान् जीव हैं और सारे व्यष्टि जीव भी जीव हैं, किन्तु भगवान्, जीवों से भिन्न होने के कारण, विभु (सर्वव्यापी) तथा अनन्त हैं। भगवान् हर वस्तु के कारणस्वरूप हैं। जीव असंख्य हैं, किन्तु भगवान् एक हैं। न तो कोई उनसे बड़ा है, न ही उनके तुल्य है। इस तरह जैसाकि वैदिक मंत्रों से पता चलता है, भगवान् परम पूज्य हैं (*न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते*)। भगवान् परम हैं क्योंकि कोई भी व्यक्ति कल्पना या वाग्जाल से उनका मूल्यांकन नहीं कर सकता। भगवान् मन से भी अधिक वेग से घूम सकते हैं। *ईशोपनिषद्* के श्रुतिमंत्रों में कहा गया है—

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्षत्।

तद्धावतोऽन्यानत्येतितिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिष्वा दधाति॥

"यद्यपि भगवान् अपने धाम में स्थिर हैं, किन्तु वे मन से भी अधिक वेगवान् हैं और दौने में अन्य सब को पिछाड़ सकते हैं। शक्तिशाली देवता उन तक नहीं पहुँच पाते। एक ही स्थान में रहते हुए वे वायु तथा वर्षा की पूर्ति करने वालों को नियंत्रित करते हैं। वे सर्वश्रेष्ठ हैं।" (*ईशोपनिषद्* ४)। इस तरह ब्रह्म की तुलना कभी भी अधीनस्थ जीवों से नहीं की जानी चाहिए।

चूँकि भगवान् सबके हृदय में स्थित हैं किन्तु व्यष्टि जीव ऐसा नहीं है, अतएव जीव की तुलना परमेश्वर से नहीं करनी चाहिए। *भगवद्गीता* (१५.१५) में भगवान् कहते हैं—*सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्ट:*—मैं हरएक के हृदय में स्थित हूँ। किन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं होता कि हर व्यक्ति

भगवान् के तुल्य है। श्रुतिमंत्रों में यह भी कहा गया है—*हृदि ह्ययमात्मा प्रतिष्ठितः।* *श्रीमद्‌भागवत* के प्रारम्भ में कहा गया है—*सत्यं परं धीमहि।* वेद मंत्र कहते हैं—*सत्यं ज्ञानमनन्तम्* तथा *निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यम्।* ईश्वर सर्वश्रेष्ठ हैं। यद्यपि वे स्वयं कुछ नहीं करते फिर भी वे ही सब कुछ करते हैं। जैसाकि *भगवद्‌गीता* (९.४) में भगवान् कहते हैं—

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।

मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः॥

"यह सारा ब्रह्माण्ड मेरे अव्यक्त रूप से व्याप्त है, सारे प्राणी मुझमें हैं, किन्तु मैं उनमें नहीं हूँ।"

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।

हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते॥

"हे कुन्तीपुत्र! यह प्रकृति मेरी अध्यक्षता में कार्य करती है और समस्त चर तथा अचर प्राणियों को उत्पन्न करती है। अपने नियम के अनुसार यह सृष्टि बारम्बार उत्पन्न और विनष्ट होती रहती है।" (*भगवद्‌गीता* ९.१०)। इस तरह भगवान् अपने धाम में मौन रहकर भी अपनी विभिन्न शक्तियों के द्वारा सब कुछ करते रहते हैं (*परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते*)।

ब्रह्मा द्वारा उच्चरित सारे वैदिक मंत्र या श्रुतिमंत्र, इस श्लोक में आये हैं, क्योंकि ब्रह्मा तथा उनके अनुयायी, जो ब्रह्मसम्प्रदाय के हैं, भगवान् को परम्परा-पद्धति से जानते हैं। हमें अपने पूर्वगामियों के वचनों से ज्ञान प्राप्त करना होता है। कुल बारह महाजन हैं जिनमें से ब्रह्मा भी एक हैं—

स्वयम्भूर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः।

प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिर्वैयासकिर्वयम्॥

(*भागवत* ६.३.२०)

हम लोग ब्रह्मा की परम्परा के हैं अतएव ब्रह्मसम्प्रदाय के नाम से जाने जाते हैं। चूँकि भगवान् को जानने के लिए देवता ब्रह्माजी का अनुसरण करते हैं अतएव हमें भी भगवान् को समझने के लिए परम्परा-पद्धति के महाजनों का अनुसरण करना चाहिए।

विपश्चितं प्राणमनोधियात्मना-

मर्थेन्द्रियाभासमनिद्रमव्रणम् ।
छायातपौ यत्र न गृध्रपक्षौ
तमक्षरं खं त्रियुगं व्रजामहे ॥ २७॥

शब्दार्थ

विपश्चितम्—सर्वज्ञ को; प्राण—किस तरह प्राण कार्यशील है; मनः—किस तरह मन कार्यशील है; धिय—किस तरह बुद्धि कार्यशील है; आत्मनाम्—सारे जीवों का; अर्थ—इन्द्रिय-विषय; इन्द्रिय—इन्द्रियाँ; आभासम्—ज्ञान; अनिद्रम्—सदैव जाग्रत तथा अज्ञान से मुक्त; अव्रणम्—सुख तथा दुख से प्रभावित होने वाले भौतिक शरीर के बिना; छाया-आतपौ—अज्ञान से दुखी समस्त लोगों के आश्रय; यत्र—जहाँ; न—नहीं; गृध्र-पक्षौ—किसी भी जीव का पक्षपात; तम्—उसको; अक्षरम्—अच्युत; खम्—आकाश के समान सर्वत्र व्याप्त; त्रि-युगम्—तीन युगों (सत्य, त्रेता तथा द्वापर) में छह ऐश्वर्यों समेत प्रकट होकर; व्रजामहे—मैं शरण ग्रहण करता हूँ।.

भगवान् प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से जानते रहते हैं कि किस प्रकार प्राण, मन तथा बुद्धि समेत प्रत्येक वस्तु उनके नियंत्रण में कार्य करती है। वे हर वस्तु के प्रकाशक हैं और अज्ञान उन्हें छू तक नहीं गया। उनका भौतिक शरीर नहीं होता जो पूर्वकर्मों के फलों से प्रभावित हो। वे पक्षपात तथा भौतिकतावादी विद्या के अज्ञान से मुक्त हैं। अतएव मैं उन भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण करता हूँ जो नित्य, सर्वव्यापक तथा आकाश के समान विशाल हैं और तीनों युगों (सत्य, त्रेता तथा द्वापर) में अपने षड्ऐश्वर्यों समेत प्रकट होते हैं।

तात्पर्य : *श्रीमद्भागवत* के प्रारम्भ में भगवान् का वर्णन इस प्रकार हुआ है—*जन्माद्यस्य यतोऽन्वयाद् इतरश्चार्थेष्वभिज्ञः।* भगवान् समस्त उद्भावों के उद्गम हैं और वे अपनी सृष्टि के भीतर होने वाले प्रत्येक कार्यकलाप के विषय में प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से सब कुछ जानते हैं। अतएव भगवान् को यहाँ पर *विपश्चितम्* कहकर सम्बोधित किया गया है, जिसका अर्थ है ''समस्त ज्ञान से पूर्ण या सब कुछ जानने वाला।'' भगवान् परमात्मा हैं और वे सारे जीवों तथा उनकी इन्द्रियों के विषय में सब कुछ जानते हैं।

इस श्लोक में *अनिद्रम्* शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, जिसका अर्थ है ''सदैव जागरूक तथा अज्ञान से रहित।'' जैसाकि *भगवद्गीता* (१५.१५) में कहा गया है—*मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च*—भगवान् ही हर एक को बुद्धि प्रदान करते हैं और उनमें विस्मृति उत्पन्न करते हैं। प्राणियों की संख्या करोड़ों में है और भगवान् उन को निर्देश देते हैं। अतएव उन्हें सोने का समय ही नहीं मिल पाता और वे हमारे कार्यकलापों से कभी भी अनभिज्ञ नहीं रहते। वे हर एक घटना के साक्षी हैं। हम प्रतिक्षण जो भी कर रहे हैं उसे वे देखते रहते हैं। भगवान् कर्म से उत्पन्न शरीर से प्रच्छन्न नहीं रहते। हमारे शरीर हमारे

विगत कर्मों के फलस्वरूप निर्मित होते हैं (*कर्मणादैवनेत्रेण*), किन्तु भगवान् के भौतिक शरीर नहीं होता; अतएव उनमें अविद्या नहीं रहती। वे सोते नहीं, अपितु सदैव सतर्क तथा जाग्रत रहते हैं।

भगवान् को त्रियुग कहा गया है क्योंकि वे सतयुग, त्रेता तथा द्वापर युगों में नाना रूपों में प्रकट हुए थे, किन्तु जब वे कलियुग में अवतरित हुए तो उन्होंने अपने आपको कभी भगवान् घोषित नहीं किया—

कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्र पार्षदम्

भगवान् कलियुग में भक्त के रूप में प्रकट होते हैं। इस तरह यद्यपि वे कृष्ण होते हैं, किन्तु वे भक्त की भाँति 'हरे कृष्ण मंत्र' का कीर्तन करते हैं। फिर भी *श्रीमद्भागवत* (११.५.३२) संस्तुति करती है—

यज्ञैः सङ्कीर्तनप्रायैर्यजन्तिहि सुमेधसः

श्री चैतन्य महाप्रभु जिनका रंग कृष्ण की भाँति साँवला नहीं है, अपितु सुनहला (*त्विषाकृष्णम्*) है, भगवान् हैं। उनके साथ नित्यानन्द, अद्वैत, गदाधर तथा श्रीवास जैसे पार्षद रहते हैं। जो लोग पर्याप्त बुद्धिमान् हैं, वे सङ्कीर्तन-यज्ञ द्वारा इन भगवान् की पूजा करते हैं। इस अवतार में भगवान् अपने आपको परमेश्वर कहकर घोषित नहीं करते, अतएव वे त्रियुग कहलाते हैं।

अजस्य चक्रं त्वजयेर्यमाणं
मनोमयं पञ्चदशारमाशु ।
त्रिनाभि विद्युच्चलमष्टनेमि
यदक्षमाहुस्तमृतं प्रपद्ये ॥ २ ॥

शब्दार्थ

अजस्य—जीव का; चक्रम्—पहिये को (इस जगत में जन्म-मृत्यु के चक्र को); तु—लेकिन; अजया—भगवान् की बहिरंगा शक्ति द्वारा; ईर्यमाणम्—अत्यन्त वेग के साथ घूमती हुई; मनः-मयम्—जो मुख्यतः मन पर आधारित मानसिक सृष्टि के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है; पञ्चदश—पन्द्रह; अरम्—तीलियों वाला; आशु—शीघ्र ही; त्रि-नाभि—तीन नाभियों वाला (भौतिक प्रकृति के तीन गुणों वाला); विद्युत्—बिजली की भाँति; चलम्—गतिमान्; अष्ट-नेमि—आठ नेमियों (परिधियों) से बनी (भगवान् की आठ बहिरंगा शक्तियाँ, भूमिरापोऽनलो वायु इत्यादि); यत्—जो; अक्षम्—धुरी; आहुः—वे कहते हैं; तम्—उनको; ऋतम्—सत्य; प्रपद्ये—हम नमस्कार करें।

भौतिक कार्यों के चक्र में, भौतिक शरीर मानसिक रथ के पहिये जैसा होता है। दस इन्द्रियाँ (पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ) तथा शरीर के भीतर के पाँच प्राण मिलकर रथ के पहिये के पन्द्रह अरे (तीलियाँ) बनाते हैं। प्रकृति के तीन गुण (सत्त्व, रजस् तथा तमस्)

कार्यकलापों के केन्द्रबिन्दु हैं और प्रकृति के आठ अवयव (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा मिथ्या अहंकार) इस पहिए की बाहरी परिधि बनाते हैं। बहिरंगा भौतिक शक्ति इस पहिए को विद्युत् शक्ति की भाँति घुमाती है। इस प्रकार यह पहिया बड़ी तेजी से अपनी धुरी या केन्द्रीय आधार अर्थात् भगवान् के चारों ओर घूमता है, जो परमात्मा तथा चरम सत्य हैं। हम उन्हें सादर नमस्कार करते हैं।

तात्पर्य : यहाँ पर अलंकारिक ढंग से बारम्बार जन्म-मृत्यु के चक्र का वर्णन हुआ है। जैसाकि *भगवद्गीता* (७.५) में कहा गया है—

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।

जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥

सारा संसार इसलिए गतिशील है क्योंकि भगवान् का अंश-रूप जीव भौतिक शक्ति का उपयोग करता है। भौतिक शक्ति के पाश में रहकर जीवात्मा भगवान् के निर्देशन में जन्म तथा मृत्यु के चक्र पर आरूढ़ होकर चक्कर लगा रहा है। इसका केन्द्रबिन्दु परमात्मा है। जैसाकि *भगवद्गीता* (१.६१) में कहा गया है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

''हे अर्जुन! भगवान् सबके हृदय में स्थित हैं और उन सारे जीवों की गति का निर्देशन कर रहे हैं, जो मानो भौतिक शक्ति से बने किसी यंत्र पर आसीन हैं।'' जीव का भौतिक शरीर बद्ध-जीव के कार्यकलापों का परिणाम है और चूँकि इसका आश्रय देने वाला परमात्मा है अतएव परमात्मा ही वास्तविकता है। इसलिए हमें चाहिए कि इस केन्द्रीय सत्य को सादर नमस्कार करें। मनुष्य को इस जगत के कार्यकलापों से दिग्भ्रमित नहीं होना चाहिए और केन्द्रीय बिन्दु अर्थात् परम सत्य को भूलना नहीं चाहिए। यही यहाँ पर ब्रह्माजी का उपदेश है।

य एकवर्णं तमसः परं त-
दलोकमव्यक्तमनन्तपारम् ।
आसां चकारोपसुपर्णमेन-

मपासते योगरथेन धीराः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

यः—जो भगवान्; एक-वर्णम्—चरम, जो शुद्ध सतोगुणी हैं; तमसः—भौतिक जगत के अंधकार को; परम्—दिव्य; तत्—वह; अलोकम्—जो देखा नहीं जा सकता; अव्यक्तम्—अप्रकट; अनन्त-पारम्—असीम, भौतिक काल तथा दिक् की माप के परे; आसाम् चकार—स्थित; उप-सुपर्णम्—गरुड़ की पीठ पर; एनम्—उनको; उपासते—पूजते हैं; योग-रथेन—योग के यान द्वारा; धीराः—गम्भीर व्यक्ति, जो भौतिक क्षोभ से अविचलित रहते हैं।.

भगवान् शुद्ध सत्त्व में स्थित हैं; अतएव वे एकवर्ण—ओङ्कार (प्रणव) हैं। चूँकि भगवान् अंधकार माने जाने वाले दृश्य जगत से परे हैं, अतएव वे भौतिक नेत्रों से नहीं दिखते। फिर भी वे दिक् या काल द्वारा हमसे पृथक् नहीं होते, अपितु वे सर्वत्र उपस्थित रहते हैं। अपने वाहन गरुड़ पर आसीन उनकी पूजा क्षोभ से मुक्ति पा चुके व्यक्तियों के द्वारा योग शक्ति से की जाती है। हम सभी उनको सादर नमस्कार करते हैं।

तात्पर्य : *सत्त्वं विशुद्धं वसुदेवशब्दितम्* (*भागवत* ४.३.२३)। इस भौतिक जगत में सतो, रजो तथा तमो—ये तीनों गुण पाये जाते हैं। इन तीनों में से सतोगुण ज्ञान का आधार है, रजोगुण ज्ञान तथा अज्ञान के मिश्रण को लाने वाला है, किन्तु तमोगुण अंधकार से पूर्ण होता है। अतएव भगवान् तमो तथा रजो गुणों से परे होते हैं। वे ऐसे पद पर होते हैं जहाँ सतोगुण या ज्ञान रजो तथा तमोगुण द्वारा विचलित नहीं होता। यह वसुदेव पद कहलाता है। इसी वसुदेव पद पर ही वासुदेव या कृष्ण प्रकट हो सकते हैं। इस प्रकार कृष्ण इस लोक में वसुदेव के पुत्ररूप में प्रकट हुए। चूँकि भगवान् प्रकृति के तीनों गुणों के परे हैं अतएव जिन लोगों में इन तीनों गुणों की प्रधानता होती है, वे उन्हें नहीं दिखते। अतएव मनुष्य को धीर बनना चाहिए या प्रकृति के गुणों द्वारा अविचलित रहना चाहिए। योग का अभ्यास वही कर सकता है, जो इन गुणों के विक्षोभ से मुक्त हो। अतएव योग की परिभाषा इस प्रकार की जाती है—*योग इन्द्रिय संयमः।* जैसा पहले बताया जा चुका है, हम सभी इन्द्रियों द्वारा विचलित होते रहते हैं। साथ ही, हम बहिरंगा शक्ति द्वारा लादे जाने वाले प्रकृति के तीन गुणों द्वारा विचलित किये जाते हैं। बद्ध जीवन में जीव जन्म-मृत्यु के चक्रवात में तेजी से घूमता है, किन्तु जब कोई *विशुद्ध सत्त्व* के दिव्य पद पर स्थित होता है, तो वह गरुड़ की पीठ पर आसीन भगवान् का दर्शन पा सकता है। ब्रह्माजी ऐसे भगवान् को सादर नमस्कार करते हैं।

न यस्य कश्चातितितर्ति मायां

यया जनो मुह्यति वेद नार्थम् ।
तं निर्जितात्मात्मगुणं परेशं
नमाम भूतेषु समं चरन्तम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; यस्य—जिसका (भगवान् का); कश्च—कोई; अतितितर्ति—जीतने में समर्थ; मायाम्—माया को; यया—जिसके द्वारा (माया द्वारा); जनः—सामान्य लोग; मुह्यति—मोहित हो जाता है; वेद—समझो; न—नहीं; अर्थम्—जीवन लक्ष्य; तम्—उस (भगवान्) को; निर्जित—पूरी तरह वशीभूत; आत्मा—जीव; आत्म-गुणम्—तथा उनकी बहिरंगा शक्ति; पर-ईशम्—दिव्य पद पर स्थित भगवान्; नमाम—हम नमस्कार करते हैं; भूतेषु—सारे जीवों मे; समम्—समभाव; चरन्तम्—उन्हें वश में करते या उन पर शासन करते।.

कोई भी व्यक्ति भगवान् की माया का पार नहीं पा सकता जो इतनी प्रबल होती है कि हर व्यक्ति इससे भ्रमित होकर जीवन के लक्ष्य को समझने की बुद्धि खो देता है। किन्तु वही माया उन भगवान् के वश में रहती है, जो सब पर शासन करते हैं और सभी जीवों पर समान दृष्टि रखते हैं। हम उन्हें नमस्कार करते हैं।

तात्पर्य : भगवान् विष्णु अपने पराक्रम से निश्चय ही सभी जीवों को वश में रखते हैं यहाँ तक कि सारे जीव जीवन के लक्ष्य को भूल गए हैं। *न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुम्*—लोग भूल गये हैं कि जीवन लक्ष्य भगवान् के धाम को वापस जाना है। भगवान् की बहिरंगा शक्ति अर्थात् माया सभी बद्धजीवों को ऐसा अवसर प्रदान करती प्रतीत होती है, जिससे वे इस भौतिक जगत में सुखी रहें, किन्तु यह रहती है माया ही। दूसरे शब्दों में, यह ऐसा स्वप्न है, जो कभी पूरा नहीं होता। इस प्रकार हर व्यक्ति भगवान् की बहिरंगा शक्ति अर्थात् माया से भ्रमित होता है। यह माया निस्सन्देह, अत्यन्त प्रबल है, किन्तु यह पूर्णतया उस दिव्य व्यक्ति के वश में रहती है, जिसे इस श्लोक में *परेशम्* अर्थात् दिव्य भगवान् कहा गया है। भगवान् इस भौतिक सृष्टि के अंग नहीं हैं, वे सृष्टि से परे हैं। अतएव वे अपनी बहिरंगा शक्ति के द्वारा न केवल बद्धजीवों को वश में रखते हैं अपितु बहिरंगा शक्ति को भी अपने वश में रखते हैं। *भगवद्गीता* में स्पष्ट कहा गया है कि प्रबल माया हर एक को नियंत्रित करती है और उसके नियंत्रण से छूट पाना अत्यन्त कठिन है। यह नियंत्रक शक्ति भगवान् की है और उनके नियंत्रण में कार्य करती है। किन्तु सारे जीव इस भौतिक शक्ति के अधीन हो जाने से भगवान् को भूल गये हैं।

इमे वयं यत्प्रिययैव तन्वा

सत्त्वेन सृष्टा बहिरन्तराविः ।
गतिं न सूक्ष्मामृषयश्च विद्महे
कुतोऽसुराद्या इतरप्रधानाः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

इमे—ये; वयम्—हम (देवता); यत्—जिसको; प्रियया—अत्यन्त प्रिय लगने वाले; एव—निश्चय ही; तन्वा—भौतिक शरीर; सत्त्वेन—सतोगुण से; सृष्टाः—उत्पन्न; बहिः-अन्तः-आविः—यद्यपि बाहर तथा भीतर से पूर्णतया अवगत; गतिम्—लक्ष्य; न—नहीं; सूक्ष्माम्—अत्यन्त सूक्ष्म; ऋषयः—सन्त पुरुष; च—भी; विद्महे—समझते हैं; कुतः—कैसे; असुर-आद्याः—असुर तथा नास्तिक; इतर—अन्य नगण्य लोग; प्रधानाः—यद्यपि वे अपने समाज के नेता हैं।

चूँकि हमारे शरीर सत्त्वगुण से निर्मित हैं इसलिए हम देवगण भीतर तथा बाहर से सतोगुण में स्थित हैं। सारे सन्त पुरुष भी इसी प्रकार स्थित हैं। अतएव यदि हम भगवान् को न भी समझ सकते हों तो उन नगण्य प्राणियों के विषय में क्या कहा जाये जो रजो तथा तमो गुणों में स्थित हैं? भला वे भगवान् को कैसे समझ सकते हैं? हम उन भगवान् को सादर नमस्कार करते हैं।

तात्पर्य : नास्तिक तथा असुर भगवान् को नहीं समझ पाते यद्यपि भगवान् हर एक के भीतर स्थित हैं। उनके लिए भगवान् अन्त में काल रूप में प्रकट होते हैं जैसाकि *भगवद्गीता* में पुष्ट हुआ है (*मृत्युः सर्वहरश्चाहम्*)। नास्तिक लोग सोचते हैं कि वे स्वतंत्र हैं, अतः वे भगवान् की सर्वश्रेष्ठता की परवाह नहीं करते; फिर भी भगवान् अपनी सर्वश्रेष्ठता तब जताते हैं जब वे काल के रूप में उन को अभिभूत करते हैं। मृत्यु के समय उनका तथाकथित वैज्ञानिक ज्ञान तथा भगवान् की सर्वश्रेष्ठता को नकारने की दार्शनिक कल्पना विफल हो जाती है। उदाहरणार्थ, हिरण्यकशिपु नास्तिक वर्ग के लोगों का उच्च प्रतिनिधि था। वह सदैव ईश्वर के अस्तित्व को चुनौती देता था और इस प्रकार वह अपने पुत्र के प्रति भी शत्रुता रखने लगा था। प्रत्येक व्यक्ति हिरण्यकशिपु के नास्तिक सिद्धान्तों से भयभीत था। किन्तु जब भगवान् नृसिंह देव उसे मारने के लिए प्रकट हुए तो उसके नास्तिक सिद्धान्त उसे बचा नहीं पाये। भगवान् नृसिंहदेव ने हिरण्यकशिपु को मार डाला और उसके सारे बल, प्रभाव तथा गर्व को चूर-चूर कर दिया। किन्तु नास्तिक लोग यह कभी नहीं समझ पाते कि उनके द्वारा सृजित प्रत्येक वस्तु किस तरह विनष्ट कर दी जाती है। यद्यपि परमात्मा उनके भीतर स्थित हैं, किन्तु रजो तथा तमो गुणों की प्रधानता के कारण वे भगवान् की सर्वश्रेष्ठता को समझ नहीं पाते। यहाँ तक कि देवता तथा भक्त भी भगवान् के गुणों एवं उनकी स्थिति से पूर्णतः अवगत नहीं हैं यद्यपि वे दिव्य पद पर या सत्त्व पद पर आसीन होते हैं। फिर भला असुर तथा नास्तिक लोग भगवान् को कैसे समझ सकते हैं? ऐसा सम्भव

नहीं है। अतएव इस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए ब्रह्मा इत्यादि देवताओं ने भगवान् को सादर नमस्कार किया।

पादौ महीयं स्वकृतैव यस्य
चतुर्विधो यत्र हि भूतसर्गः ।
स वै महापूरुष आत्मतन्त्रः
प्रसीदतां ब्रह्म महाविभूतिः ॥ ३२॥

शब्दार्थ

पादौ—उनके चरणकमल; मही—पृथ्वी; इयम्—यह; स्व-कृत—उन्हीं के द्वारा उत्पन्न; एव—निस्सन्देह; यस्य—जिसका; चतुः-विधः—चार प्रकार के जीवों का; यत्र—जहाँ पर; हि—निस्सन्देह; भूत-सर्गः—भौतिक सृष्टि; सः—वह; वै—निस्सन्देह; महा-पूरुषः—परम पुरुष; आत्म-तन्त्रः—आत्मनिर्भर, आत्माराम; प्रसीदताम्—वे हम पर कृपालु हों; ब्रह्म—महानतम; महा-विभूतिः—असीम शक्ति से युक्त।

इस पृथ्वी पर चार प्रकार के जीव हैं और ये सारे के सारे उन्हीं के द्वारा उत्पन्न किये गये हैं। यह भौतिक सृष्टि उनके चरणकमलों पर टिकी है। वे एश्वर्य तथा शक्ति से पूर्ण परम पुरुष हैं। वे हम पर प्रसन्न हों।

तात्पर्य : *मही* शब्द पाँच भौतिक तत्त्वों—पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि तथा आकाश—का सूचक है, जो भगवान् के चरणकमलों पर आश्रित हैं। *महत्पदं पुण्ययशो मुरारेः। महत्-तत्त्व* अर्थात् समग्र भौतिक शक्ति भगवान् के चरणकमलों पर टिकी है क्योंकि यह विराट जगत भगवान् का एक दूसरा ऐश्वर्य ही है। इस विराट जगत में चार प्रकार के जीव हैं—*जरायुज* (भ्रूण से उत्पन्न), *अण्डज* (अण्डों से उत्पन्न), *स्वेदज* (पसीने से उत्पन्न) तथा *उद्भिज* (बीजों से उत्पन्न)। जैसी कि *वेदान्त सूत्र* से पुष्टि होती है (*जन्माद्यस्य यतः*) प्रत्येक वस्तु भगवान् से उत्पन्न होती है। कोई भी स्वतंत्र नहीं है, किन्तु परमात्मा पूर्ण स्वतंत्र हैं। *जन्माद्यस्य यतोऽन्वयाद् इतरश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्।* स्वराट् शब्द का अर्थ है "स्वतंत्र।" हम स्वतंत्र हैं किन्तु भगवान् पूर्णतया स्वतंत्र हैं। अतएव भगवान् सब से बड़े हैं। यहाँ तक कि ब्रह्मा भी, जिन्होंने विराट जगत की सृष्टि की है, भगवान् के एक दूसरे ऐश्वर्य मात्र ही हैं। भौतिक सृष्टि भगवान् द्वारा सक्रिय बनाई जाती है अतएव भगवान् भौतिक सृष्टि के अंग नहीं हैं। वे अपने मूल आध्यात्मिक पद पर बने रहते हैं। भगवान् का विश्वरूप, *वैराजमूर्ति,* भगवान् का एक अन्य स्वरूप है।

अम्भस्तु यद्रेत उदारवीर्यं

सिध्यन्ति जीवन्त्युत वर्धमानाः ।
लोका यतोऽथाखिललोकपालाः
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

अम्भः—इस लोक में या अन्य लोकों में दिखने वाली जलराशि; तु—लेकिन; यत्-रेतः—उनका वीर्य; उदार-वीर्यम्—इतना शक्तिशाली; सिध्यन्ति—उत्पन्न किये जाते हैं; जीवन्ति—जीवित रहते हैं; उत—निस्सन्देह; वर्धमानाः—फूलते-फलते हैं; लोकाः—तीनों लोक; यतः—जिससे; अथ—भी; अखिल-लोक-पालाः—ब्रह्माण्ड भर के सारे देवता; प्रसीदताम्—प्रसन्न हों; नः—हम पर; सः—वह; महा-विभूतिः—असीम शक्ति वाला पुरुष।

सारा विराट जगत जल से निकला है और जल ही के कारण सारे जीव स्थित हैं, जीवित रहते तथा विकसित होते हैं। यह जल भगवान् के वीर्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अतएव इतनी महान् शक्ति वाले भगवान् हम पर प्रसन्न हों।

तात्पर्य : तथाकथित विज्ञानियों के सिद्धान्तों के बावजूद, इस पृथ्वीलोक पर तथा अन्य लोकों में जल की विपुल मात्रा की सृष्टि हाइड्रोजन तथा आक्सीजन के मिश्रण से नहीं होती है। प्रत्युत जल को कभी-कभी भगवान् का पसीना तथा कभी-कभी वीर्य कहा जाता है। जल से ही सारे जीव प्रकट होते हैं और जल से ही वे जीवित रहते तथा बढ़ते हैं। यदि जल न होता तो सारा जीवन समाप्त हो जाता। जल हर एक के जीवन का स्रोत है। अतएव भगवत्कृपा से हमें सारे विश्व में इतना जल उपलब्ध है।

सोमं मनो यस्य समामनन्ति
दिवौकसां यो बलमन्ध आयुः ।
ईशो नगानां प्रजनः प्रजानां
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

सोमम्—चन्द्रमा; मनः—मन; यस्य—जिस (भगवान्) का; समामनन्ति—वे कहते हैं; दिवौकसाम्—उच्चलोक के निवासियों का; यः—जो; बलम्—बल; अन्धः—अन्न; आयुः—उम्र; ईशः—परमेश्वर; नगानाम्—वृक्षों का; प्रजनः—प्रजनन का स्रोत; प्रजानाम्—सारे जीवों का; प्रसीदताम्—वे प्रसन्न हों; नः—हम पर; सः—वे भगवान्; महा-विभूतिः—सारे ऐश्वर्यों का स्रोत।

सोम (चन्द्रमा) समस्त देवताओं के लिए अन्न, बल तथा दीर्घायु का स्रोत है। वह सारी वनस्पतियों का स्वामी तथा सारे जीवों की उत्पत्ति का स्रोत भी है। जैसा कि विद्वानों ने कहा है, चन्द्रमा भगवान् का मन है। ऐसे समस्त ऐश्वर्यों के स्रोत भगवान् हम पर प्रसन्न हों।

तात्पर्य : सोम, जो चन्द्रमा का अधिष्ठाता देव है, अन्न का स्रोत है अतएव वह दैवी प्राणियों, देवताओं की भी शक्ति का स्रोत है। वह सारी वनस्पतियों का प्राण है। दुर्भाग्यवश तथाकथित आधुनिक विज्ञानी चन्द्रमा को पूरी तरह न समझ सकने के कारण, उसे मरुस्थल से पूर्ण बताते हैं। चूंकि चन्द्रमा

हमारी वनस्पतियों का स्रोत है, अत: वह मरुस्थल कैसे हो सकता है? चन्द्रमा का प्रकाश (चाँदनी) सारी वनस्पतियों का प्राण है; अतएव सम्भवत: हम यह नहीं मान सकते कि चन्द्रमा मरुस्थल है।

अग्निर्मुखं यस्य तु जातवेदा
जात: क्रियाकाण्डनिमित्तजन्मा ।
अन्त:समुद्रेऽनुपचन्स्वधातून्
प्रसीदतां न: स महाविभूति: ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

अग्नि:—अग्नि; मुखम्—मुँह जिससे भगवान् खाते हैं; यस्य—जिसका; तु—लेकिन; जात-वेदा:—सम्पत्ति या जीवन की समस्त आवश्यकताओं को उत्पन्न करने वाला; जात:—उत्पन्न किया; क्रिया-काण्ड—अनुष्ठान; निमित्त—के लिए; जन्मा—इसीलिए निर्मित; अन्त:-समुद्रे—समुद्र की गहराई में; अनुपचन्—सदैव पचाते हुए; स्व-धातून्—सारे तत्त्वों को; प्रसीदताम्—प्रसन्न हों; न:—हम पर; स:—वह; महा-विभूति:—परम शक्तिशाली।

अनुष्ठानों की आहुति ग्रहण करने के लिए उत्पन्न अग्नि भगवान् का मुख है। सागर की गहराइयों के भीतर भी सम्पत्ति उत्पन्न करने के लिए अग्नि रहती है और उदर में भोजन पचाने के लिए तथा शरीर पालन हेतु विभिन्न स्त्रावों को उत्पन्न करने के लिए भी अग्नि उपस्थित रहती है। ऐसे परम शक्तिमान भगवान् हम पर प्रसन्न हों।

यच्चक्षुरासीत्तरणिर्देवयानं
त्रयीमयो ब्रह्मण एष धिष्ण्यम् ।
द्वारं च मुक्तेरमृतं च मृत्यु:
प्रसीदतां न: स महाविभूति: ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

यत्—जो; चक्षु:—आँख; आसीत्—बना; तरणि:—सूर्यदेव; देव-यानम्—देवताओं के मोक्ष पथ का अधिष्ठाता देव; त्रयी-मय:—कर्मकाण्ड के वैदिक ज्ञान के मार्गदर्शन हेतु; ब्रह्मण:—परम सत्य का; एष:—यह; धिष्ण्यम्—साक्षात्कार का स्थान; द्वारम् च—तथा द्वार; मुक्ते:—मुक्ति के लिए; अमृतम्—नित्य जीवन का मार्ग; च—भी; मृत्यु:—मृत्यु का कारण; प्रसीदताम्—हम पर प्रसन्न हों; न:—हमपर; स:—वे भगवान्; महा-विभूति:—परम शक्तिशाली।

सूर्यदेव मुक्ति के मार्ग को चिन्हित करते हैं, जो *अर्चिरादि वर्त्म* कहलाता है। वे वेदों के ज्ञान के प्रमुख स्त्रोत हैं; वे परम सत्य के पूजे जाने वाले धाम हैं। वे मोक्ष के द्वार हैं; वे नित्य जीवन के स्त्रोत हैं; वे मृत्यु के भी कारण हैं। वे भगवान् की आँख हैं। ऐसे परम ऐश्वर्यवान् भगवान् हम पर प्रसन्न हों।

तात्पर्य : सूर्यदेव को देवताओं में प्रधान माना जाता है। उन्हें ब्रह्माण्ड के उत्तरी भाग की निगरानी करने वाला देवता भी माना जाता है। वे वेदों को समझने में सहायता करते हैं। *ब्रह्मसंहिता* (५.५२) में

पुष्टि की गई है—

यच्चक्षुरेष सविता सकलग्रहाणां

राजा समस्तसुरमूर्तिरशेषतेजा: ।

यस्याज्ञया भ्रमति संभृतकालचक्रो

गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि ॥

''असीम तेज से पूर्ण सूर्य समस्त लोकों का राजा है और उत्तम आत्मा की मूर्ति है। सूर्य भगवान् की आँख के समान है। मैं उन आदि-गोविन्द की पूजा करता हूँ जिनके आदेश से सूर्य कालचक्र पर आरूढ़ होकर अपनी यात्रा करता है।'' सूर्य वस्तुत: भगवान् की आँख है। वैदिक मंत्रों में कहा गया है कि जब तक भगवान् नहीं देखते, कोई भी प्राणी देख नहीं सकता। यदि सूर्यप्रकाश न रहे, तो किसी भी लोक का कोई भी जीव न देख सके। अतएव सूर्य को परमेश्वर की आँख माना जाता है। इसकी पुष्टि यहाँ पर *यच्चक्षुरासीत्* शब्दों द्वारा और *ब्रह्मसंहिता* में *यच्चक्षुरेष सविता* शब्दों द्वारा हुई है। सविता शब्द का अर्थ है सूर्यदेव।

प्राणादभूद्यस्य चराचराणां
प्राण: सहो बलमोजश्च वायु: ।
अन्वास्म सम्राजमिवानुगा वयं
प्रसीदतां न: स महाविभूति: ॥ ३७॥

शब्दार्थ

प्राणात्—प्राण से; अभूत्—उत्पन्न हुआ; यस्य—जिसका; चर-अचराणाम्—समस्त चर तथा अचर जीवों का; प्राण:—प्राण; सह:—जीवन का मूल सिद्धान्त; बलम्—बल; ओज:—प्राण; च—तथा; वायु:—वायु; अन्वास्म—अनुसरण करते हैं; सम्राजम्—सम्राट्; इव—सदृश; अनुगा:—अनुयायी; वयम्—हम सभी; प्रसीदताम्—प्रसन्न हों; न:—हम पर; स:—वह; महा-विभूति:—परम शक्तिशाली।

सारे चर तथा अचर प्राणी अपनी जीवनी शक्ति (प्राण), अपनी शारीरिक शक्ति तथा अपना जीवन तक वायु से प्राप्त करते हैं। हम सभी अपने प्राण के लिए वायु का उसी तरह अनुसरण करते हैं जिस प्रकार नौकर राजा का अनुसरण करता है। वायु की जीवनी शक्ति भगवान् की मूल जीवनी शक्ति से उत्पन्न होती है। ऐसे भगवान् हम पर प्रसन्न हों।

श्रोत्राद्दिशो यस्य हृदश्च खानि

प्रजज्ञिरे खं पुरुषस्य नाभ्याः ।
प्राणेन्द्रियात्मासुशरीरकेतः
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

श्रोत्रात्—कानों से; दिशः—विभिन्न दिशाएँ; यस्य—जिसके; हृदः—हृदय से; च—भी; खानि—शरीर के छेद; प्रजज्ञिरे—उत्पन्न किया; खम्—आकाश; पुरुषस्य—परम पुरुष की; नाभ्याः—नाभि से; प्राण—जीवनी शक्ति का; इन्द्रिय—इन्द्रियाँ; आत्मा—मन; असु—प्राण; शरीर—तथा शरीर; केतः—आश्रय; प्रसीदताम्—प्रसन्न हों; नः—हम पर; सः—वे; महा-विभूतिः—परम शक्तिमान।

परम शक्तिशाली भगवान् हम पर प्रसन्न हों। विभिन्न दिशाएँ उनके कानों से उत्पन्न होती है, शरीर के छिद्र उनके हृदय से निकलते हैं एवं प्राण, इन्द्रियाँ, मन, शरीर के भीतर की वायु तथा शरीर आश्रय रूपी शून्य (आकाश) उनकी नाभि से निकलते हैं।

बलान्महेन्द्रस्त्रिदशाः प्रसादा-
न्मन्योर्गिरीशो धिषणाद् विरिञ्चः ।
खेम्यस्तुछन्दांस्यृषयो मेढ्रतः कः
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३९ ॥

बलात्—उनके बल से; महा-इन्द्रः—राजा इन्द्र बन सके; त्रि-दशाः—तथा देवता; प्रसादात्—प्रसन्न होने से; मन्योः—क्रोध से; गिरि-ईशः—शिवजी; धिषणात्—गम्भीर बुद्धि से; विरिञ्चः—ब्रह्माजी; खेभ्यः—शारीरिक छिद्रों से; तु—तथा; छन्दांसि—वैदिक मंत्र; ऋषयः—बड़े-बड़े मुनि; मेढ्रतः—जननेन्द्रियों से; कः—प्रजापति-गण; प्रसिदताम्—प्रसन्न हों; नः—हम पर; सः—वे; महा-विभूतिः—परम शक्तिशाली भगवान्।

स्वर्ग का राजा महेन्द्र भगवान् के बल से उत्पन्न हुआ था, देवतागण भगवान् की कृपा से उत्पन्न हुए थे, शिवजी भगवान् के क्रोध से उत्पन्न हुए थे और ब्रह्माजी उनकी गम्भीर बुद्धि से उत्पन्न हुए थे। सारे वैदिक मंत्र भगवान् के शरीर के छिद्रों से उत्पन्न हुए थे तथा ऋषि और प्रजापतिगण उनकी जननेन्द्रियों से उत्पन्न हुए थे। ऐसे परम शक्तिशाली भगवान् हम पर प्रसन्न हों!

श्रीर्वक्षसः पितरश्छाययासन्
धर्मः स्तनादितरः पृष्ठतोऽभूत् ।
द्यौर्यस्य शीर्ष्णोऽप्सरसो विहारात्
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

श्रीः—धन की देवी; वक्षसः—उनके वक्षस्थल से; पितरः—पितृलोक के निवासी; छायया—उनकी छाया से; आसन्—बन सके; धर्मः—धर्म का सिद्धान्त; स्तनात्—उनके स्तन से; इतरः—अधर्म (धर्म का विपरीत); पृष्ठतः—पीठ से; अभूत्—सम्भव हो सका; द्यौः—स्वर्ग लोक; यस्य—जिसका; शीर्ष्णः—चोटी से; अप्सरसः—अप्सरोलोक के निवासी; विहारात्—उनके इन्द्रिय भोग से; प्रसीदताम्—कृपया प्रसन्न हों; नः—हम पर; सः—वे (भगवान्); महा-विभूतिः—समस्त पराक्रम में महानतम।

लक्ष्मी उनके वक्षस्थल से उत्पन्न हुई, पितृलोक के वासी उनकी छाया से, धर्म उनके स्तन से

तथा अधर्म उनकी पीठ से उत्पन्न हुआ। स्वर्ग लोक उनके सिर की चोटी से तथा अप्सराएँ उनके इन्द्रिय भोग से उत्पन्न हुईं। ऐसे परम शक्तिमान भगवान् हम पर प्रसन्न हों!

विप्रो मुखाद्ब्रह्म च यस्य गुह्यं
राजन्य आसीद्भुजयोर्बलं च ।
ऊर्वोर्विडोजोऽङ्घ्रिरवेदशूद्रौ
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

विप्रः—ब्राह्मण-गण; मुखात्—भगवान् के मुख से; ब्रह्म—वैदिक साहित्य; च—भी; यस्य—जिसका; गुह्यम्—अपने गुप्त ज्ञान से; राजन्यः—क्षत्रियगण; आसीत्—सम्भव हो सका; भुजयोः—उनकी दोनों भुजाओं से; बलम् च—तथा शारीरिक शक्ति; ऊर्वोः—जाँघों से; विट्—वैश्यगण; ओजः—तथा उनका सक्षम उर्वर ज्ञान; अङ्घ्रिः—उनके चरणों से; अवेद—वैदिक ज्ञान की सीमा से परे रहने वाले; शूद्रौ—श्रमिक वर्ग; प्रसीदताम्—प्रसन्न हों; नः—हम पर; सः—वे; महा-विभूतिः—परम शक्तिमान भगवान्।

ब्राह्मण तथा वैदिक ज्ञान भगवान् के मुख से निकले, क्षत्रिय तथा शारीरिक शक्ति उनकी भुजाओं से, वैश्य तथा उत्पादकता एवं सम्पत्ति सम्बन्धी उनका दक्ष ज्ञान उनकी जाँघों से तथा वैदिक ज्ञान से विलग रहने वाले शूद्र उनके चरणों से निकले। ऐसे भगवान्, जो पराक्रम से पूर्ण हैं, हम पर प्रसन्न हों।

लोभोऽधरात्प्रीतिरुपर्यभूद्द्युति-
र्नस्तः पशव्यः स्पर्शेन कामः ।
भ्रुवोर्यमः पक्ष्मभवस्तु कालः
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

लोभः—लालच; अधरात्—निचले होठ से; प्रीतिः—प्यार; उपरि—ऊपरी होठ से; अभूत्—सम्भव हो सका; द्युतिः—शारीरिक कान्ति; नस्तः—नाक से; पशव्यः—पशुओं के उपयुक्त; स्पर्शेन—स्पर्श से; कामः—कामेच्छाएँ; भ्रुवोः—भौंहों से; यमः—यमराज; पक्ष्म-भवः—पलकों से; तु—लेकिन; कालः—नित्यकाल, जो मृत्यु लाता है; प्रसीदताम्—प्रसन्न हों; नः—हम पर; सः—वे; महा-विभूतिः—परम पराक्रम वाले भगवान्।

लोभ उनके निचले होठ से, प्यार उनके ऊपरी होठ से, शारीरिक कान्ति उनकी नाक से, पाशविक वासनाएँ उनकी स्पर्शेन्द्रियों से, यमराज उनकी भौहों से तथा नित्यकाल उनकी पलकों से उत्पन्न होते हैं। वे भगवान् हम सबों पर प्रसन्न हों।

द्रव्यं वयः कर्म गुणान्विशेषं

यद्योगमायाविहितान्वदन्ति ।
यद्दुर्विभाव्यं प्रबुधापबाधं
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

द्रव्यम्—भौतिक जगत के पाँच तत्त्व; वयः—काल; कर्म—सकाम कर्म; गुणान्—प्रकृति के तीन गुणों को; विशेषम्—तेईस तत्त्वों के संयोग से उत्पन्न किस्में; यत्—जो; योग-माया—भगवान् की सृजनात्मक शक्ति से; विहितान्—किया गया; वदन्ति—विद्वान लोग कहते हैं; यत् दुर्विभाव्यम्—जिसे समझ पाना वास्तव में कठिन है; प्रबुध-अपबाधम्—जो लोग पूर्णतया अवगत हैं उन विद्वानों के द्वारा तिरस्कृत; प्रसीदताम्—प्रसन्न हों; नः—हम पर; सः—वह; महा-विभूतिः—हर वस्तु के नियन्ता।.

सभी विद्वान लोग कहते हैं कि पाँचों तत्त्व, नित्यकाल, सकाम कर्म, प्रकृति के तीनों गुण तथा इन गुणों से उत्पन्न विभिन्न किस्में—ये सब योगमाया की सृष्टियाँ हैं। अतएव इस भौतिक जगत को समझ पाना अत्यन्त कठिन है, किन्तु जो लोग अत्यन्त विद्वान हैं उन्होंने इसका तिरस्कार कर दिया है। जो सभी वस्तुओं के नियन्ता हैं ऐसे भगवान् हम सब पर प्रसन्न हों।

तात्पर्य : इस श्लोक का *दुर्विभाव्यम्* शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। कोई भी यह नहीं समझ सकता कि भगवान् की भौतिक शक्तियों के माध्यम से भगवान् की व्यवस्था द्वारा प्रत्येक वस्तु किस तरह से इस जगत में घटित हो रही है। जैसाकि *भगवद्गीता* (९.१०) में कहा गया है—*मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्*—वस्तुतः प्रत्येक वस्तु भगवान् के निर्देशन में घटित हो रही है। बस हम इतना ही जान सकते हैं, किन्तु यह सब कैसे हो रहा है इसे समझ पाना दुष्कर है। हम तो इतना भी नहीं समझ पाते कि हमारे शरीर के भीतर किस तरह व्यवस्थित रूप से सब कुछ हो रहा है। यह शरीर एक छोटा सा ब्रह्माण्ड है किन्तु हम यह भी समझ नहीं सकते कि इस छोटे से ब्रह्माण्ड में कैसे सब कुछ हो रहा है, तो फिर इससे कहीं अधिक बड़े ब्रह्माण्ड के कार्यकलापों के विषय में हम कैसे जान सकते हैं? वस्तुतः इस ब्रह्माण्ड को समझ पाना अत्यन्त कठिन है; फिर भी विद्वान संतों ने उपदेश दिया है और कृष्ण ने भी यही उपदेश दिया है कि यह भौतिक जगत—*दुःखालयम् अशाश्वतम्*—दुख तथा नश्वरता का स्थान है। मनुष्य को चाहिए कि इसे त्याग दे और भगवद्धाम को वापस जाये। भौतिकतावादी लोग तर्क कर सकते हैं कि, "यदि यह भौतिक जगत तथा इसके कार्यकलापों को समझना असम्भव है, तो हम इसका तिरस्कार कैसे कर सकते हैं?" इसका उत्तर *प्रबुधापबाधम्* शब्द से मिल जाता है। हमें इस भौतिक जगत का परित्याग करना चाहिए क्योंकि इसका त्याग वेदविदों द्वारा होता है। यद्यपि हम यह नहीं समझ पाते कि यह भौतिक जगत क्या है, किन्तु हमें विद्वानों के उपदेशानुसार, विशेष रूप से कृष्ण

के उपदेश के अनुसार, इसे त्यागने के लिए तैयार रहना चाहिए। कृष्ण कहते हैं—

मामुपेत्य पुनर्जन्म दु:खालयमशाश्वतम्।

नाप्नुवन्ति महात्मान: संसिद्धिं परमां गता:।

''मुझे प्राप्त करके भक्ति में स्थित योगीजन कभी इस दुख से पूर्ण नश्वर जगत में नहीं लौटते क्योंकि वे परम सिद्धि प्राप्त कर चुके होते हैं।'' (*भगवद्गीता* .१५) मनुष्य को भगवद्धाम लौटना होता है क्योंकि जीवन की यह परम सिद्धि है। भगवद्धाम जाने का अर्थ है इस भौतिक जगत का तिरस्कार। यद्यपि हम इस भौतिक जगत के कार्यों को समझ नहीं सकते और यह हमारे लिए चाहे अच्छा हो या बुरा, हमें महाजन के उपदेश के अनुसार इसका तिरस्कार कर देना चाहिए और भगवद्धाम वापस जाना चाहिए।

नमोऽस्तु तस्मा उपशान्तशक्तये
स्वाराज्यलाभप्रतिपूरितात्मने ।
गुणेषु मायारचितेषु वृत्तिभि-
र्न सज्जमानाय नभस्वदूतये ॥ ४४॥

शब्दार्थ

नमः—हमारा नमस्कार; अस्तु—हो; तस्मै—उसको; उपशान्त-शक्तये—जो अन्य कुछ उपलब्ध करने का प्रयास नहीं करता, जो अशान्त नहीं रहता; स्वाराज्य—पूर्णतया स्वतंत्र; लाभ—सारे लाभों का; प्रतिपूरित—पूरी तरह प्राप्त; आत्मने—भगवान् में; गुणेषु—भौतिक जगत का, जो तीन गुणों के कारण गतिशील है; माया-रचितेषु—माया द्वारा उत्पन्न वस्तुओं का; वृत्तिभिः—इन्द्रियों के ऐसे कार्यों से; न सज्जमानाय—जो आसक्त नहीं होता है या भौतिक सुख-दुख से परे है; नभस्वत्—वायु; ऊतये—भगवान् को जिसने अपने लीला-रूप में इस भौतिक जगत की सृष्टि की।

हम उन भगवान् को सादर नमस्कार करते हैं, जो पूर्णतया शान्त, प्रयास से मुक्त तथा अपनी उपलब्धियों से पूर्णतया सन्तुष्ट हैं। वे अपनी इन्द्रियों द्वारा भौतिक जगत के कार्यों में लिप्त नहीं होते। निस्सन्देह, इस भौतिक जगत में अपनी लीलाएँ सम्पन्न करते समय वे अनासक्त वायु की तरह रहते हैं।

तात्पर्य : हम इतना तो जान सकते हैं कि प्रकृति के सारे कार्यकलापों के पीछे भगवान् हैं जिनके संकेत से प्रत्येक घटना घटती है, भले ही हम उन्हें देख न पाएँ। हमें चाहिए कि उन्हें न देख सकने पर भी उन्हें सादर नमस्कार करें। हमें यह ज्ञात होना चाहिए कि वे पूर्ण हैं। उनकी शक्तियों के द्वारा (*परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते*) सब कुछ व्यवस्थापूर्वक सम्पन्न होता रहता है अतएव उन्हें कुछ भी नहीं

करना होता है (*न तस्य कार्यं करणं च विद्यते*) । जैसाकि यहाँ पर *उपशान्त-शक्तये* शब्द से सूचित होता है, उनकी विभिन्न शक्तियाँ कार्य करती हैं और यद्यपि वे इन शक्तियों को क्रिया-शील करते हैं, किन्तु स्वयं उन्हें कुछ नहीं करना पड़ता। वे हर वस्तु से अनासक्त हैं क्योंकि वे भगवान् हैं। अतएव हम सबको चाहिए कि उन्हें सादर नमस्कार करें।

स त्वं नो दर्शयात्मानमस्मत्करणगोचरम् ।
प्रपन्नानां दिदृक्षूणां सस्मितं ते मुखाम्बुजम् ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (भगवान्); त्वम्—तुम मेरे भगवान् हो; नः—हमारे लिए; दर्शय—दिखाई पड़ो; आत्मानम्—अपने मूल रूप में; अस्मत्-करण-गोचरम्—हमारी प्रत्यक्ष इन्द्रियों द्वारा विशेष रूप से आँखों से देखने योग्य; प्रपन्नानाम्—हम सभी शरणागतों का; दिदृक्षूणाम्—फिर भी आपको देखने को इच्छुक; सस्मितम्—मुस्काते; ते—तुम्हारा; मुख-अम्बुजम्—कमल जैसा मुख।.

हे भगवान्! हम आपके शरणागत हैं फिर भी हम आपका दर्शन करना चाहते हैं। कृपया अपने आदि रूप को तथा अपने मुस्काते मुख को हमारे नेत्रों को दिखलाइये और अन्य इन्द्रियों द्वारा अनुभव करने दीजिये।

तात्पर्य : भक्तगण भगवान् को उनके आदि रूप में उनके कमल सदृश मुस्काते मुख सहित देखना चाहते हैं। वे निराकार रूप की अनुभूति में रुचि नहीं रखते। भगवान् के साकार तथा निराकार दोनों ही रूप होते हैं। निर्विशेषवादियों को भगवान् के साकार रूप का कोई बोध नहीं होता, किन्तु ब्रह्माजी तथा उनकी शिष्य परम्परा वाले सदस्य भगवान् को उनके साकार रूप में देखना चाहते हैं। साकार रूप के बिना मुस्काते मुख की बात ही नहीं उठती, जिसका स्पष्ट संकेत यहाँ *सस्मितम् ते मुखाम्बुजम्* शब्दों से मिलता है। जो लोग ब्रह्मा के वैष्णव सम्प्रदाय के हैं, वे सदैव भगवान् का दर्शन करना चाहते हैं। वे भगवान् के साकार रूप का साक्षात्कार करना चाहते हैं, निराकार रूप का नहीं। जैसाकि यहाँ पर स्पष्ट कहा गया है—*अस्मत् करण-गोचरम्*—भगवान् के साकार रूप की अनुभूति हम अपनी इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्षत: कर सकते हैं।

तैस्तैः स्वेच्छाभूतै रूपैः काले काले स्वयं विभो ।
कर्म दुर्विषहं यन्नो भगवांस्तत्करोति हि ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

तैः—ऐसे प्राकट्यों द्वारा; तैः—ऐसे अवतारों द्वारा; स्व-इच्छा-भूतैः—आपकी निजी इच्छा से सब कुछ प्रकट; रूपैः—वास्तविक रूपों द्वारा; काले काले—विभिन्न युगों में; स्वयम्—स्वयं; विभो—हे ब्रह्म; कर्म—कर्म; दुर्विषहम्—असामान्य (अन्य किसी से न किया जा सकने वाला); यत्—जो; नः—हम पर; भगवान्—भगवान्; तत्—वह; करोति—सम्पन्न करता है; हि—निस्सन्देह।

हे भगवान्! आप विभिन्न युगों में अपनी इच्छा से विभिन्न अवतारों में प्रकट होते हैं और ऐसे असामान्य कार्य आश्चर्यजनक ढंग से करते हैं, जिन्हें हम सब के लिए कर पाना दुष्कर है।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (४.७) में भगवान् कहते हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

''जब-जब और जहाँ जहाँ धर्म की हानि होती है और अधर्म की प्रधानता होती है, उस समय, हे भरतवंशी! मैं स्वयं अवतरित होता हूँ।'' अतएव यह एक कल्पना नहीं, अपितु तथ्य है कि भगवान् अपनी इच्छा से भिन्न-भिन्न अवतारों में—यथा मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, रामचन्द्र, बलराम, बुद्ध तथा अन्य अनेक रूपों में प्रकट होते हैं। भक्तगण भगवान् के नाना रूपों में से किसी एक का दर्शन पाने के लिए लालायित रहते हैं। कहा जाता है कि जिस प्रकार समुद्र की लहरों को गिन पाना सम्भव नहीं, उसी तरह भगवान् के रूपों को भी नहीं गिना जा सकता। किन्तु इसका मतलब यह नहीं होता कि चाहे जो कोई अपने को भगवान् का स्वरूप होने का दावा कर दे और उसे अवतार मान लिया जाये। भगवान् के अवतार को स्वीकार किये जाने के लिए शास्त्रों में दिए विवरणों के अनुरूप होना चाहिए। ब्रह्माजी भगवान् के अवतार या समस्त अवतारों के मूल स्रोत का दर्शन पाने के इच्छुक हैं, किसी कपटी के दर्शन के लिए नहीं। अवतार के कार्यकलाप भगवान् की पहचान के प्रमाण हैं। शास्त्रों में वर्णित सारे अवतार अद्भुत कर्म करते हैं (*केशव धृत-मीन शरीर जय जगदीश हरे*)। यह तो भगवान् की निजी इच्छा पर है कि वे प्रकट होते हैं और अन्तर्धान होते हैं। केवल भाग्यशाली भक्त ही उनका साक्षात् दर्शन प्राप्त करने की आशा कर सकते हैं।

क्लेशभूर्यल्पसाराणि कर्माणि विफलानि वा ।
देहिनां विषयार्तानां न तथैवार्पितं त्वयि ॥ ४७॥

शब्दार्थ

क्लेश—कठिनाई; भूरि—अत्यधिक; अल्प—बहुत कम; साराणि—अच्छा फल; कर्माणि—कार्यकलाप; विफलानि—निराशा; वा—अथवा; देहिनाम्—मनुष्यों का; विषय-अर्तानाम्—भौतिक जगत का भोग करने के इच्छुक; न—नहीं; तथा—उसी तरह; एव—निस्सन्देह; अर्पितम्—अर्पित; त्वयि—आपको।

कर्मीजन अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए सदैव धनसंग्रह करने के लिए लालायित रहते हैं, किन्तु इसके लिए उन्हें अत्यधिक श्रम करना पड़ता है। इतने कठोर श्रम के बावजूद भी उन्हें सन्तोषप्रद फल नहीं मिल पाता। निस्सन्देह ही कभी-कभी तो उनके कर्मफल से निराशा ही उत्पन्न होती है। किन्तु जिन भक्तों ने भगवान् की सेवा में अपना जीवन अर्पित कर रखा है वे कठोर श्रम किये बिना ही पर्याप्त फल प्राप्त कर सकते हैं। ये फल भक्तों की आशा से बढ़कर होते हैं।

तात्पर्य : हम यह व्यावहारिक रूप से देख सकते हैं कि जिन भक्तों ने कृष्णभावनामृत आन्दोलन में अपना जीवन कृष्ण की सेवा में अर्पित कर दिया है वे किस तरह बिना कठिन श्रम किये भगवान् की सेवा का प्रचुर अवसर प्राप्त कर रहे हैं। वास्तव में कृष्णभावनामृत आन्दोलन केवल चालीस रुपये से चालू हुआ था किन्तु इस समय उसके पास चालीस करोड़ से भी अधिक की सम्पत्ति है, जो आठ-दस वर्षों के भीतर ही प्राप्त की गई है। कोई भी कर्मी इतनी तेजी से अपने व्यापार में उन्नति करने की आशा नहीं रख सकता; साथ ही कर्मी जो कुछ प्राप्त करता है, वह नाशवान् है और कभी-कभी निराशाजनक भी। किन्तु कृष्णभावनामृत में सब कुछ प्रेरणाप्रद एवं प्रगति लाने वाला है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन कर्मियों के बीच अधिक लोकप्रिय नहीं है क्योंकि यह आन्दोलन अवैध मैथुन, मांसाहार, जुआ खेलने तथा मादकद्रव्य सेवन से दूर रहने की संस्तुति करता है। ये ऐसे प्रतिबन्ध हैं, जिन्हें कर्मी बहुत नापसन्द करते हैं। फिर भी इतने सारे शत्रुओं के होते हुए भी यह आन्दोलन बिना किसी अवरोध के प्रगति करता जा रहा है। यदि भक्तगण कृष्ण के चरणकमलों पर अपने जीवन को समर्पित करके इस आन्दोलन का प्रसार करते रहें तो इसे कोई भी रोक नहीं सकेगा। वह बिना किसी सीमा के आगे बढ़ सकेगा। हरे कृण का जप करो।

नावमः कर्मकल्पोऽपि विफलायेश्वरार्पितः ।
कल्पते पुरुषस्यैव स ह्यात्मा दयितो हितः ॥ ४॥

शब्दार्थ

न—नहीं; अवमः—अत्यल्प, नगण्य; कर्म—कर्म; कल्पः—ढंग से सम्पन्न किया गया; अपि—भी; विफलाय—व्यर्थ जाते हैं; ईश्वर-अर्पितः—भगवान् को समर्पित होने के कारण; कल्पते—ऐसा मान लिया जाता है; पुरुषस्य—सारे पुरुषों का; एव—निस्सन्देह; सः—भगवान्; हि—निश्चय ही; आत्मा—परमात्मा, परम पिता; दयितः—अत्यन्त प्रिय; हितः—लाभप्रद।

भगवान् को समर्पित कार्य, भले ही छोटे पैमाने पर क्यों न किये जाँए, कभी भी व्यर्थ नहीं जाते। अतएव स्वाभाविक है कि परम पिता होने के कारण भगवान् अत्यन्त प्रिय हैं और वे जीवों के कल्याण के लिए सदैव कर्म करने के लिए तैयार रहते हैं।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (२.४०) में भगवान् कहते हैं—*स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्*—यह धर्म या भक्ति इतनी महत्त्वपूर्ण है कि यदि यह अत्यल्प, लगभग नगण्य मात्रा में भी की जाये तो भी श्रेष्ठ परिणाम मिल सकता है। विश्व-इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण प्राप्त हैं जिनमें भगवान् की थोड़ी-सी सेवा करने से भी जीव महानतम संकट से बचा है। उदाहरणार्थ, भगवान् ने अजामिल को नरक जाने के महानतम संकट से बचा लिया। वह इसलिए बचाया जा सका क्योंकि अपने जीवन के अन्त में उसने नारायण के पवित्र नाम का उच्चारण किया था। अजामिल ने नारायण के पवित्र नाम का उच्चारण जानबूझ कर नहीं किया था। वास्तव में वह अपने सबसे छोटे पुत्र को बुला रहा था जिसका नाम नारायण था। फिर भी भगवान् नारायण ने इस उच्चारण (जप) को गम्भीरता से लिया और इस तरह अजामिल को *अन्ते नारायणस्मृतिः*—अन्तकाल में नारायण का स्मरण करने का फल मिला। यदि कोई किसी भी तरह नारायण, कृष्ण या राम के पवित्र नाम का स्मरण जीवन के अन्त समय करता है, तो वह तुरन्त ही भगवद्धाम को जाने का दिव्य फल प्राप्त करता है।

वास्तव में भगवान् हमारे प्रेम के एकमात्र लक्ष्य हैं। जब तक हम इस जगत में रहते हैं हमें अनेक इच्छाओं की पूर्ति करनी होती है, किन्तु ज्योंही हम भगवान् के सम्पर्क में आते हैं त्योंही हम पूर्ण तथा पूरी तरह तुष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार छोटा बालक अपनी माता की गोद में पहुँचते ही संतुष्ट हो जाता है। ध्रुव महाराज तपस्या द्वारा कुछ भौतिक लाभ प्राप्त करने के लिए जंगल गये थे, किन्तु जब उन्होंने साक्षात् भगवान् के दर्शन किये तो उन्होंने कहा ''मैं कोई भौतिक वरदान नहीं चाहता। मैं पूरी तरह सन्तुष्ट हूँ।'' यदि कोई भगवान् की सेवा करके कोई लाभ चाहता भी है, तो यह लाभ अत्यन्त आसानी से बिना कठोर श्रम के ही प्राप्त किया जा सकता है। अतएव शास्त्र की संस्तुति है—

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।

तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत् पुरुषं परम्॥

''कोई मनुष्य हर वस्तु को चाहे या कुछ भी न चाहे या भगवान् के अस्तित्व में तल्लीन होने की

इच्छा करे, किन्तु वह तभी बुद्धिमान् है यदि वह भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति सम्पन्न करके भगवान् कृष्ण की पूजा करता है।'' (*भागवत* २.३.१०)। यदि भौतिक इच्छाएँ रहें भी तो मनुष्य निस्सन्देह, भगवान् की सेवा करके उन्हें प्राप्त कर सकता है।

यथा हि स्कन्धशाखानां तरोर्मूलावसेचनम् ।
एवमाराधनं विष्णोः सर्वेषामात्मनश्च हि ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस प्रकार; हि—निस्सन्देह; स्कन्ध—तने; शाखानाम्—तथा डालों का; तरोः—वृक्ष की; मूल—जड़; अवसेचनम्—सिंचाई; एवम्—इस प्रकार; आराधनम्—पूजा; विष्णोः—भगवान् विष्णु की; सर्वेषाम्—सब का; आत्मनः—परमात्मा का; च—भी; हि—निस्सन्देह।

जब वृक्ष की जड़ में पानी डाला जाता है, तो वृक्ष का तना तथा शाखाएँ स्वतः तुष्ट हो जाती हैं। इसी प्रकार जब कोई भगवान् विष्णु का भक्त बन जाता है, तो इससे हर एक की सेवा हो जाती है क्योंकि भगवान् हर एक के परमात्मा हैं।

तात्पर्य : जैसाकि *पद्मपुराण* में कहा गया है—

आराधनानां सर्वेषां विष्णोराराधनं परम्।

तस्मात् परतरं देवि तदीयानां समर्चनम्॥

''सभी प्रकार की पूजाओं में से भगवान् विष्णु की पूजा सर्वश्रेष्ठ है और विष्णु की पूजा से भी श्रेष्ठ है उनके भक्त वैष्णव की पूजा।'' जो लोग भौतिक इच्छाओं के प्रति आसक्त हैं, वे अनेक देवताओं की पूजा करते हैं (*कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः*)। चूँकि लोग अनेकानेक भौतिक इच्छाओं के कारण चिन्तित रहते हैं, वे शिव, ब्रह्मा, काली, दुर्गा, गणेश तथा सूर्य की पूजा विभिन्न फलों की प्राप्ति के लिए करते हैं। किन्तु भगवान् विष्णु की पूजा करके इन सारे फलों को एक साथ प्राप्त किया जा सकता है। जैसाकि *भागवत* (४.३१.१४) में अन्यत्र कहा गया है—

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः।

प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या॥

''जिस प्रकार वृक्ष की जड़ को सींचकर वृक्ष के तने तथा सभी डालियों, फूलों तथा फलों को पोषित किया जाता है और जिस प्रकार उदर में भोजन की पूर्ति करके शरीर के सारे अंगों की तुष्टि की जाती है उसी प्रकार विष्णु की पूजा करके हरएक को तुष्ट किया जा सकता है।'' कृष्णभावनामृत कोई

साम्प्रदायिक धार्मिक आन्दोलन नहीं है प्रत्युत यह विश्व के सर्वकल्याणकारी कार्यकलापों के निमित्त है। इस आन्दोलन में जाति-पाति, धर्म या राष्ट्रीयता के भेदभाव से रहित होकर कोई भी व्यक्ति प्रवेश कर सकता है। यदि मनुष्य विष्णुतत्त्व के स्रोत भगवान् कृष्ण की पूजा करने का प्रशिक्षण प्राप्त कर लेता है, तो वह पूर्ण संतुष्ट हो जाता है और सभी तरह से पूर्ण बन जाता है।

नमस्तुभ्यमनन्ताय दुर्वितर्क्यात्मकर्मणे ।
निर्गुणाय गुणेशाय सत्त्वस्थाय च साम्प्रतम् ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; तुभ्यम्—हे भगवान्, तुम्हें; अनन्ताय—जो काल की तीनों अवस्थाओं (भूत, वर्तमान तथा भविष्य) को पार करके सदैव जीवित है उसको; दुर्वितर्क्य-आत्म-कर्मणे—आपको, जो अचिन्त्य कार्यकलाप करने वाले हैं; निर्गुणाय—जो दिव्य तथा भौतिक गुणों की उन्मत्तता से मुक्त हैं; गुण-ईशाय—आपको, जो प्रकृति के तीनों गुणों को वश में रखने वाले हैं; सत्त्व-स्थाय—सतोगुण में स्थित; च—भी; साम्प्रतम्—इस समय।

हे भगवान्! आपको नमस्कार है क्योंकि आप नित्य हैं, भूत, वर्तमान तथा भविष्य की काल सीमा से परे हैं। आप अपने कार्यकलापों में अचिन्त्य हैं, आप भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों के स्वामी हैं और समस्त भौतिक गुणों से परे रहने के कारण आप भौतिक कल्मष से मुक्त हैं। आप प्रकृति के तीनों गुणों के नियन्ता हैं, किन्तु इस समय आप सतोगुण में स्थित हैं। मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : भगवान् प्रकृति के तीन गुणों द्वारा व्यक्त भौतिक कार्यकलापों को नियंत्रण में रखते हैं। जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है—*निर्गुणं गुणभोक्तृ च*—भगवान् सदा ही भौतिक गुणों से परे रहते हैं। फिर भी वे उनके नियामक हैं। भगवान् इन तीनों गुणों को वश में रखने के लिए अपने आपको तीन रूपों में प्रकट करते हैं—ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर। वे विष्णु के रूप में सत्त्वगुण का भार स्वयं संभालते हैं और रजोगुण तथा तमोगुण का भार ब्रह्माजी तथा शिवजी को सौंप देते हैं। किन्तु अन्ततः वे ही तीनों गुणों के नियामक हैं। ब्रह्माजी ने प्रशंसा करते हुए कहा कि चूँकि भगवान् विष्णु ने अब सत्त्वगुण का भार ले लिया है अतएव पूरी आशा है कि देवताओं की इच्छाएँ पूरी होंगी। देवताओं को तमोगुणी असुरगण सता रहे थे। किन्तु जैसाकि ब्रह्माजी पहले कह चुके हैं, चूँकि सत्त्वगुण का समय अब आ गया है अतएव देवतागण अपनी इच्छापूर्ति की आशा कर सकते हैं। देवताओं को ज्ञान में उन्नत माना जाता है फिर भी वे भगवान् के ज्ञान (ईशज्ञान) को नहीं समझ पाये। अतएव भगवान् को यहाँ

पर अनन्ताय कहकर सम्बोधित किया गया है। यद्यपि ब्रह्माजी भूत, वर्तमान तथा भविष्य को जानते हैं, फिर भी वे भगवान् के असीम ज्ञान को समझने में असमर्थ रहते हैं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के आठवें स्कन्ध के अन्तर्गत ''देवताओं द्वारा भगवान् से सुरक्षा-याचना'' नामक पाँचवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter छह

देवताओं तथा असुरों द्वारा सन्धि की घोषणा

इस अध्याय में बताया गया है कि जब देवताओं ने भगवान् की स्तुति की तो वे उनके समक्ष किस प्रकार प्रकट हुए। भगवान् की सलाह के अनुसार देवताओं ने समुद्र-मन्थन से अमृत प्राप्ति के लिए असुरों के साथ सन्धि कर ली।

पिछले अध्याय में वर्णित देवताओं की स्तुति से क्षीरोदकशायी विष्णु प्रसन्न होकर उनके समक्ष प्रकट हो गये। सारे देवता उनके दिव्य शारीरिक तेज से लगभग चकाचौंध हो गये। अतएव प्रारम्भ में तो वे उनके शरीर का कोई भी अंग नहीं देख पाये, किन्तु कुछ समय बाद जब ब्रह्माजी ने उन्हें देखा तो उन्होंने शिव समेत भगवान् की स्तुति करनी प्रारम्भ कर दी।

ब्रह्माजी ने कहा ''जन्म-मृत्यु से परे होने के कारण भगवान् नित्य हैं। वे भौतिक गुणों से रहित हैं; तो भी वे असीम शुभ गुणों के सागर हैं। वे सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर हैं, वे अदृश्य हैं और उनका रूप अचिन्त्य है। वे सभी देवताओं के लिए पूज्य हैं। उनके स्वरूप में असंख्य ब्रह्माण्ड स्थित रहते हैं अतएव वे काल, दिक् या परिस्थिति के द्वारा इन ब्रह्माण्डों से कभी विलग नहीं होते। वे प्रधान हैं। यद्यपि वे भौतिक सृष्टि के आदि, मध्य तथा अन्त हैं, लेकिन मायावादी दार्शनिकों द्वारा कल्पित सर्वेश्वरवाद में कोई दम नहीं है। भगवान् अपने अधीन बहिरंगा शक्ति के द्वारा समस्त भौतिक जगत को नियंत्रित करते हैं। वे अपनी अचिन्त्य दिव्य स्थिति के कारण भौतिक शक्ति के सदैव स्वामी बने रहते हैं। भगवान् अपने नाना रूपों में इस भौतिक जगत में भी सदैव विद्यमान रहते हैं, किन्तु भौतिक गुण उन्हें छू भी नहीं पाते। *भगवद्गीता* में दिये गये उपदेशों के द्वारा ही उनकी स्थिति समझी जा सकती है। जैसाकि *भगवद्गीता* (१०.१०) में कहा गया है—*ददामि बुद्धियोगं तम्। बुद्धियोग* का अर्थ है

भक्तियोग। केवल *भक्तियोग* की विधि से परमेश्वर को समझा जा सकता है।

जब शिवजी तथा ब्रह्माजी ने भगवान् की स्तुति की तो भगवान् प्रसन्न हो गये। अत: उन्होंने सारे देवताओं को उचित आदेश दिया। भगवान् अजित ने देवताओं को सलाह दी कि वे असुरों के समक्ष शान्ति प्रस्ताव रखें जिससे सन्धि हो जाने पर देवता तथा असुरगण क्षीरसागर का मन्थन कर सकें। इसके लिए सब से बड़े वासुकि सर्प को रस्सी और मन्दराचल पर्वत को मथानी बनाया जाये। इस मन्थन से विष भी उत्पन्न होगा, किन्तु उसे शिवजी ग्रहण कर लेंगे; अतएव भय की कोई आवश्यकता नहीं है। इस मन्थन से अनेक आकर्षक वस्तुएँ उत्पन्न होंगी, किन्तु भगवान् ने देवताओं को सावधान कर दिया कि वे ऐसी वस्तुओं से मोहित न हों और यदि कोई उपद्रव हो तो भी देवता क्रुद्ध न हों। देवताओं को ऐसी सलाह देकर भगवान् उस स्थान से अन्तर्धान हो गये।

भगवान् के आदेशानुसार देवताओं ने असुरों के राजा महाराज बलि से सन्धि कर ली। तब देवता तथा असुर दोनों ही मन्दर पर्वत को अपने साथ लेकर समुद्र की ओर चल पड़े। इस पर्वत की गुरुता के कारण देवता तथा असुर दोनों ही थक गये और कुछ तो वास्तव में मर गये। तब भगवान् विष्णु अपने वाहन गरुड़ की पीठ पर बैठकर वहाँ प्रकट हुए और उन्होंने अपनी कृपा से इन देवताओं और असुरों को पुन: जीवित कर दिया। तब भगवान् ने उस पर्वत को अपने एक हाथ से उठाकर गरुड़ की पीठ पर रख दिया और उस पर्वत पर बैठकर उस स्थान पर गये जहाँ मन्थन होना था। गरुड़ ने उस पर्वत को समुद्र के मध्य में रख दिया और तब विष्णु ने गरुड़ को आदेश दिया कि वह वहाँ से चला जाये क्योंकि उसके रहने पर वासुकि वहाँ नहीं आ सकता था।

श्रीशुक उवाच
एवं स्तुतः सुरगणैर्भगवान्हरिरीश्वरः ।
तेषामाविरभूद्राजन्सहस्रार्कोदयद्युतिः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; स्तुतः—स्तुति किये जाने पर; सुर-गणैः—देवताओं द्वारा; भगवान्—भगवान्; हरिः—समस्त अशुभों को मिटाने वाले; ईश्वरः—परम नियन्ता; तेषाम्—ब्रह्माजी तथा सारे देवताओं के समक्ष; आविरभूत्—प्रकट हुए; राजन्—हे राजा परीक्षित; सहस्र—एक हजार; अर्क—सूर्य; उदय—उगते हुए; द्युतिः—उनका तेज।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा परीक्षित! देवताओं तथा ब्रह्मा जी द्वारा इस प्रकार स्तुतियों से पूजित भगवान् हरि उन सब के समक्ष प्रकट हो गये। उनका शारीरिक तेज एकसाथ

हजारों सूर्यों के उदय होने के समान था।

तेनैव सहसा सर्वे देवाः प्रतिहतेक्षणाः ।
नापश्यन्खं दिशः क्षौणीमात्मानं च कुतो विभुम् ॥ २॥

शब्दार्थ

तेन एव—इसके कारण; सहसा—एकाएक; सर्वे—सभी; देवाः—देवतागण; प्रतिहत-ईक्षणाः—उनकी दृष्टि चकाचौंध हो गई; न—नहीं; अपश्यन्—देख सके; खम्—आकाश को; दिशः—दिशाओं को; क्षौणीम्—पृथ्वी को; आत्मानम् च—तथा अपने आपको भी; कुतः—तथा देखने का प्रश्न ही कहाँ है; विभुम्—परमेश्वर को।

भगवान् के तेज से सारे देवताओं की दृष्टि चौंधिया गई। वे न तो आकाश, दिशाएँ, पृथ्वी देख सके, न ही अपने आपको देख सके। अपने समक्ष उपस्थित भगवान् को देखना तो दूर रहा।

विरिञ्चो भगवान्दृष्ट्वा सह शर्वेण तां तनुम् ।
स्वच्छां मरकतश्यामां कञ्जगर्भारुणेक्षणाम् ।
तप्तहेमावदातेन लसत्कौशेयवाससा ॥ ३॥
प्रसन्नचारुसर्वाङ्गीं सुमुखीं सुन्दरभ्रुवम् ।
महामणिकिरीटेन केयूराभ्यां च भूषिताम् ॥ ४॥
कर्णाभरणनिर्भातकपोलश्रीमुखाम्बुजाम् ।
काञ्चीकलापवलयहारनूपुरशोभिताम् ॥ ५॥
कौस्तुभाभरणां लक्ष्मीं बिभ्रतीं वनमालिनीम् ।
सुदर्शनादिभिः स्वास्त्रैर्मूर्तिमद्भिरुपासिताम् ॥ ६॥
तुष्टाव देवप्रवरः सशर्वः पुरुषं परम् ।
सर्वामरगणैः साकं सर्वाङ्गैरवनिं गतैः ॥ ७॥

शब्दार्थ

विरिञ्चः—ब्रह्माजी; भगवान्—भगवान् (ब्रह्मा को उनके शक्तिशाली पद के कारण भगवान् कहकर सम्बोधित किया गया); दृष्ट्वा—देखकर; सह—सहित; शर्वेण—शिवजी; ताम्—भगवान् के; तनुम्—दिव्य रूप को; स्वच्छाम्—स्वच्छ भौतिक कल्मष के बिना; मरकत-श्यामाम्—नीले मणि के प्रकाश के समान शारीरिक कान्ति से युक्त; कञ्ज-गर्भ-अरुण-ईक्षणाम्—कमल के फूल के गर्भ सदृश गुलाबी आँखों वाले; तप्त-हेम-अवदातेन—पिघले सोने जैसी कान्ति से युक्त; लसत्—चमकता; कौशेय-वाससा—पीला रेशमी वस्त्र धारण किये; प्रसन्न-चारु-सर्व-अङ्गीम्—जिसके शरीर के सारे अंग अत्यन्त शोभनीय और सुन्दर; सु-मुखीम्—मुस्काते मुखमंडल से युक्त; सुन्दर-भ्रुवम्—जिसकी भौंहें अत्यन्त सुन्दर थीं; महा-मणि-किरीटेन—बहुमूल्य मणियों से जटितमुकुट वाले; केयूराभ्याम् च भूषिताम्—सभी तरह के आभूषणों से सज्जित; कर्ण-आभरण-निर्भात—कानों की मणियों की किरणों से प्रकाशित; कपोल—कपोल; श्री-मुख-अम्बुजाम्—जिसका सुन्दर कमल मुख; काञ्ची-कलाप-वलय—आभूषण यथा कमर की करधनी तथा हाथ के बाजूबंद; हार-नूपुर—वक्षस्थल पर हार तथा पाँवों में पायल पहने; शोभिताम्—सुशोभित; कौस्तुभ-आभरणाम्—जिनका वक्षस्थल कौस्तुभ मणि से अलंकृत था; लक्ष्मीम्—लक्ष्मी; बिभ्रतीम्—चलायमान; वन-मालिनीम्—फूलों की मालाएँ पहने; सुदर्शन-आदिभिः—सुदर्शन चक्र आदि धारण किये; स्व-अस्त्रैः—अपने हथियारों से; मूर्तिमद्भिः—अपने आदि रूप में; उपासिताम्—पूजित होकर; तुष्टाव—संतुष्ट; देव-प्रवरः—देवताओं में प्रमुख; स-शर्वः—शिवजी के सहित; पुरुषम् परम्—परम पुरुष को; सर्व-अमर-गणैः—सभी देवताओं के साथ-साथ; साकम्—सहित; सर्व-अङ्गैः—शरीर के सारे भागों से; अवनिम्—भूमि पर; गतैः—गिरकर प्रणाम किया।

शिवजी सहित ब्रह्माजी ने भगवान् के निर्मल शारीरिक सौन्दर्य को देखा जिनका श्यामल

शरीर मरकत मणि के समान है, जिनकी आँखें कमल के फूल के भीतरी भाग जैसी लाल-लाल हैं, जो पिघले सोने जैसे पीले वस्त्र धारण किये हैं और जिनका समूचा शरीर आकर्षक ढंग से सज्जित है। उन्होंने उनके सुन्दर मुस्काते कमल जैसे मुखमण्डल को देखा जिसके ऊपर बहुमूल्य रत्नों से जड़ित मुकुट था। भगवान् की भौहें आकर्षक हैं और उनकी गालों पर कान के कुण्डल शोभित रहते हैं। ब्रह्मा जी तथा शिव जी ने भगवान् की कमर में पेटी, उनकी बाहों में बाजूबंद, वक्षस्थल पर हार और पाँवों में पायल देखे। भगवान् फूल की मालाओं से अलंकृत थे, उनकी गर्दन में कौस्तुभ मणि अलंकृत थी और उनके साथ लक्ष्मीजी थीं तथा वे चक्र, गदा इत्यादि निजी आयुध लिए हुए थे। जब ब्रह्मा जी ने शिवजी तथा अन्य देवताओं के साथ भगवान् के स्वरूप को इस तरह देखा तो सब ने भूमि पर गिरकर उन्हें प्रणाम किया।

श्रीब्रह्मोवाच
अजातजन्मस्थितिसंयमाया-
गुणाय निर्वाणसुखार्णवाय ।
अणोरणिम्नेऽपरिगण्यधाम्ने
महानुभावाय नमो नमस्ते ॥ ॥

शब्दार्थ

श्री-ब्रह्मा उवाच—ब्रह्माजी ने कहा; अजात-जन्म-स्थिति-संयमाय—भगवान् को, जो कभी उत्पन्न नहीं होता, किन्तु जिनका विविध अवतारों में प्राकट्य कभी बन्द नहीं होता; अगुणाय—प्रकृति के तीनों गुणों से कभी भी प्रभावित नहीं होने वाले; निर्वाण-सुख-अर्णवाय—भौतिक सृष्टि से परे शाश्वत आनन्द के सागर को; अणोः अणिम्ने—अणु से भी छोटा; अपरिगण्य-धाम्ने—जिनके शारीरिक स्वरूप की अनुभूति भौतिक चिन्तन से नहीं की जाती; महा-अनुभावाय—जिनका अस्तित्व अचिन्त्य है; नमः—नमस्कार; नमः—फिर से नमस्कार; ते—तुमको।

ब्रह्माजी ने कहा : यद्यपि आप अजन्मा हैं, किन्तु अवतार के रूप में आपका प्राकट्य तथा अन्तर्धान सदैव चलता रहता है। आप सदैव भौतिक गुणों से मुक्त रहते हैं और सागर के समान दिव्य आनन्द के आश्रय हैं। अपने दिव्य स्वरूप में नित्य रहते हुए आप अत्यन्त सूक्ष्म से भी सूक्ष्म हैं। अतएव हम आपको जिनका अस्तित्व अचिन्त्य है। सादर नमस्कार करते हैं।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (४.६) में भगवान् कहते हैं—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।

प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

''यद्यपि मैं अजन्मा हूँ और मेरा दिव्य शरीर कभी नष्ट नहीं होता, यद्यपि मैं सारे सचेतन जीवों का

स्वामी हूँ, फिर भी मैं प्रत्येक युग में अपने मूल दिव्य रूप में प्रकट होता हूँ।'' *भगवद्गीता* के निम्नलिखित श्लोक (४.७) में भगवान् कहते हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

''जब-जब धर्म का पतन होता है और अधर्म का प्राधान्य हो जाता है तब-तब हे भारत! मैं स्वयं अवतरित होता हूँ।'' इस तरह यद्यपि भगवान् अजन्मा हैं, किन्तु कृष्ण तथा राम जैसे अवतारों के विविध रूपों में प्रकट होते रहते हैं। चूँकि उनके अवतार नित्य हैं अतएव इन अवतारों द्वारा सम्पन्न किये गये कार्यकलाप भी नित्य होते हैं। भगवान् का प्राकट्य इसलिए नहीं होता कि सामान्य जीवों की तरह उन्हें कर्म के द्वारा बाध्य होकर विशेष शरीर धारण करना होता है। यह समझना होगा कि भगवान् का शरीर तथा उनके कार्यकलाप दिव्य हैं क्योंकि वे भौतिक प्रकृति के गुणों के कल्मष से मुक्त होते हैं। ये लीलाएँ भगवान् के लिए दिव्य आनन्द हैं। *अपरिगण्य-धाम्ने* शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। भगवान् द्वारा विभिन्न अवतारों में प्रकट होने की कोई सीमा नहीं है। ये सारे अवतार सच्चिदानन्द स्वरूप होते हैं।

रूपं तवैतत्पुरुषर्षभेज्यं
श्रेयोऽर्थिभिर्वैदिकतान्त्रिकेण ।
योगेन धातः सह नस्त्रिलोकान्
पश्याम्यमुष्मिन्नु ह विश्वमूर्तौ ॥ ९॥

शब्दार्थ

रूपम्—रूप; तव—तुम्हारा; एतत्—यह; पुरुष-ऋषभ—हे पुरुषों में श्रेष्ठ; इज्यम्—पूज्य; श्रेयः—चरम कल्याण; अर्थिभिः—कामना करने वाले व्यक्तियों द्वारा; वैदिक—वैदिक आदेशों के अनुसार; तान्त्रिकेण—नारद पञ्चरात्र जैसे तंत्रों के अनुयायियों द्वारा अनुभव किया गया; योगेन—योगाभ्यास द्वारा; धातः—हे परम नियन्ता; सह—साथ; नः—हम (देवताओं) को; त्रि-लोकान्—तीनों लोकों को नियंत्रित करने वाले; पश्यामि—प्रत्यक्ष देखता हूँ; अमुष्मिन्—आप में; उ—ओह; ह—पूर्णतया प्रकट; विश्व-मूर्तौ—विश्व रूप आप में।

हे पुरुषश्रेष्ठ, हे परम नियन्ता! जो लोग सचमुच परम सौभाग्य की कामना करते हैं, वे वैदिक तंत्रों के अनुसार आपके इसी रूप की पूजा करते हैं। हे प्रभु! हम आपमें तीनों लोकों को देख सकते हैं।

तात्पर्य : वैदिक मंत्रों का कथन है—*यस्मिन् विज्ञाते सर्वम् एवं विज्ञातं भवति।* जब भक्त अपने

ध्यान में भगवान् का दर्शन करता है या जब वह उनका साक्षात् दर्शन करता है तब वह इस ब्रह्माण्ड के भीतर की प्रत्येक वस्तु से अवगत हो जाता है। निस्सन्देह, उसके लिए कुछ भी अज्ञात नहीं रहता। इस भौतिक जगत की प्रत्येक वस्तु उस भक्त को पूरी तरह प्रकट हो जाती है, जिसने भगवान् के दर्शन कर लिये हैं। अतएव *भगवद्गीता* का (४.३४) उपदेश है—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।

"गुरु के पास जाकर सत्य जानने का प्रयत्न करो। उनसे विनीत होकर प्रश्न पूछो और उनकी सेवा करो। स्वरूपसिद्ध व्यक्ति तुम्हें ज्ञान प्रदान कर सकता है क्योंकि उसने सत्य के दर्शन किये हैं।" ब्रह्माजी ऐसे ही स्वरूपसिद्ध महात्मा हैं (*स्वयम्भूर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः*)। अतएव मनुष्य को चाहिए कि ब्रह्मा से चली आने वाली शिष्य-परम्परा को स्वीकार करे। तभी वह भगवान् को पूरी तरह समझ सकेगा। यहाँ पर *विश्वमूर्तौ* शब्द संकेत करता है कि भगवान् के स्वरूप में प्रत्येक वस्तु स्थित है। जो उनकी पूजा करने में समर्थ है, वह प्रत्येक वस्तु को उनमें और प्रत्येक वस्तु में उनको देख सकता है।

त्वय्यग्र आसीत्त्वयि मध्य आसीत्
त्वय्यन्त आसीदिदमात्मतन्त्रे ।
त्वमादिरन्तो जगतोऽस्य मध्यं
घटस्य मृत्स्नेव परः परस्मात् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

त्वयि—तुम (भगवान्) में; अग्रे—प्रारम्भ में; आसीत्—था; त्वयि—तुममें; मध्ये—मध्य में; आसीत्—था; त्वयि—तुममें; अन्ते—अन्त में; आसीत्—था; इदम्—यह सारा दृश्य जगत; आत्म-तन्त्रे—पूर्णतया आपके नियंत्रण में; त्वम्—तुम; आदिः—आदि; अन्तः—अन्त; जगतः—दृश्य जगत के; अस्य—इस; मध्यम्—मध्य; घटस्य—मिट्टी के पात्र का; मृत्स्ना इव—मिट्टी के समान; परः—दिव्य; परस्मात्—प्रमुख होने के कारण।

सदैव पूर्ण स्वतंत्र रहने वाले मेरे प्रभु! यह सारा दृश्य जगत आपसे उत्पन्न होता है, आप पर टिका रहता है और आपमें तल्लीन हो जाता है। आप ही प्रत्येक वस्तु के आदि, मध्य तथा अन्त हैं जिस तरह पृथ्वी मिट्टी के पात्र का कारण है; वह उस पात्र को आधार प्रदान करती है और जब पात्र टूट जाता है, तो अन्ततः उसे अपने में मिला लेती है।

त्वं माययात्माश्रयया स्वयेदं
निर्माय विश्वं तदनुप्रविष्टः ।
पश्यन्ति युक्ता मनसा मनीषिणो
गुणव्यवायेऽप्यगुणं विपश्चितः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—आप; मायया—अपनी नित्य शक्ति द्वारा; आत्म-आश्रयया—जिसका अस्तित्व आपकी शरण के अधीन है; स्वया—आपसे उद्भूत; इदम्—यह; निर्माय—उत्पन्न करने के लिए; विश्वम्—सारे ब्रह्माण्ड को; तत्—उसमें; अनुप्रविष्टः—आप प्रवेश करते हैं; पश्यन्ति—वे देखते हैं; युक्ताः—आपके सम्पर्क में रहने वाले व्यक्ति; मनसा—मन से; मनीषिणः—उच्च चेतना वाले लोग; गुण—भौतिक गुणों के; व्यवाये—रूपान्तर में; अपि—यद्यपि; अगुणम्—भौतिक तत्त्वों से अछूता; विपश्चितः—शास्त्र के सत्य से भलीभाँति अभिज्ञ लोग।

हे परब्रह्म! आप अपने में स्वतंत्र हैं और दूसरों से सहायता नहीं लेते। आप अपनी शक्ति से इस दृश्य जगत का सृजन करके इसमें प्रवेश कर जाते हैं। जो लोग कृष्णभावनामृत में बढ़े-चढ़े हैं, जो प्रामाणिक शास्त्रों से भलीभाँति परिचित हैं और जो भक्तियोग के अभ्यास से सारे भौतिक कल्मष से शुद्ध हो जाते हैं, वे यह शुद्ध मन से देख सकते हैं कि आप भौतिक गुणों के रूपान्तरों के भीतर रहते हुए भी इन गुणों से अछूते रहते हैं।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (९.१०) में भगवान् कहते हैं—

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।

हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते।

"हे कुन्तीपुत्र! यह प्रकृति मेरे निर्देश में कार्य करती है और सारे चर तथा अचर प्राणियों को उत्पन्न करती है। इसके आदेश से यह जगत बारम्बार उत्पन्न और विनष्ट होता है।" भौतिक शक्ति समग्र दृश्य जगत का सृजन, पालन तथा संहार उन भगवान् के आदेशों से करती है, जो इस ब्रह्माण्ड में गर्भोदकशायी विष्णु के रूप में प्रवेश करते हैं, किन्तु भौतिक गुणों से अछूते रहते हैं। *भगवद्गीता* में भगवान् माया अर्थात् बहिरंगा शक्ति को जो यह भौतिक जगत उत्पन्न करती है *मम माया* कहते हैं क्योंकि यह शक्ति भगवान् के पूर्ण नियंत्रण में कार्य करती है। इन तथ्यों की अनुभूति उन्हीं व्यक्तियों को हो सकती है, जो वैदिक ज्ञान में पटु हैं और कृष्णभावनामृत में बढ़े-चढ़े हैं।

यथाग्निमेधस्यमृतं च गोषु
भुव्यन्नमम्बूद्यमने च वृत्तिम् ।
योगैर्मनुष्या अधियन्ति हि त्वां

गुणेषु बुद्ध्या कवयो वदन्ति ॥ १२॥

शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; अग्निम्—अग्नि; एधसि—काष्ठ में; अमृतम्—अमृत तुल्य दुग्ध; च—तथा; गोषु—गायों में; भुवि—भूमि पर; अन्नम्—अनाज; अम्बु—जल; उद्यमने—उद्यम में; च—भी; वृत्तिम्—जीविका; योगैः—भक्तियोग के अभ्यास से; मनुष्याः—लोग; अधियन्ति—प्राप्त करते हैं; हि—निस्सन्देह; त्वाम्—तुमको; गुणेषु—गुणों में; बुद्ध्या—बुद्धि से; कवयः—महापुरुष; वदन्ति—कहते हैं।

जिस प्रकार काठ से अग्नि, गाय के थन से दूध, भूमि से अन्न तथा जल और औद्योगिक उद्यम से जीविका के लिए समृद्धि प्राप्त की जा सकती है उसी तरह इस भौतिक जगत में मनुष्य भक्तियोग के अभ्यास द्वारा आपकी कृपा प्राप्त कर सकता है या बुद्धि से आपके पास पहुँच सकता है। जो पुण्यात्मा हैं, वे इसकी पुष्टि करते हैं।

तात्पर्य : यद्यपि भगवान् निर्गुण हैं और इस भौतिक जगत के भीतर नहीं पाये जाते, तथापि सारा भौतिक जगत उनसे व्याप्त है जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है (*मया ततमिदं सर्वम्*)। यह भौतिक जगत भगवान् की भौतिक शक्ति के प्रसार के अतिरिक्त कुछ नहीं है और सारा जगत उन्हीं पर टिका है (*मत्स्थानि सर्वभूतानि*)। फिर भी भगवान् को यहाँ पर नहीं पाया जा सकता (*न चाहं तेष्ववस्थितः*)। किन्तु भक्तियोग के अभ्यास द्वारा भक्त भगवान् का दर्शन कर सकता है। सामान्यतया कोई व्यक्ति तब तक भक्तियोग का अभ्यास प्रारम्भ नहीं करता जब तक उसने पूर्वजन्म में इसका अभ्यास न किया हो। इसके अतिरिक्त गुरु तथा कृष्ण की कृपा से ही भक्तियोग शुरू किया जा सकता है। *गुरु-कृष्ण-प्रसादे पाय भक्तिलता-बीज।* भक्तियोग का बीज गुरु तथा भगवान् कृष्ण की कृपा से प्राप्य है।

केवल भक्तियोग के अभ्यास से ही भगवान् की कृपा प्राप्त की जा सकती है और उनका साक्षात्कार किया जा सकता है (*प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्तिविलोचनेन सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति*) भगवान् को कर्म, ज्ञान या योग जैसी अन्य विधियों से नहीं देखा जा सकता। मनुष्य भक्तियोग का अनुशीलन गुरु के निर्देशन में कर सकता है (*श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद-सेवनम्*)। तब भक्त भगवान् को इस जगत में भी देख सकता है यद्यपि वे अदृश्य रहते हैं। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* में (*भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः*) तथा *श्रीमद्भागवत* में (*भक्त्याहमेकया ग्राह्यः*) हुई है। इस प्रकार भक्ति के द्वारा भगवान् की अनुकम्पा प्राप्त की जा सकती है यद्यपि अभक्तों को वे न तो दिखते हैं न ही उनकी समझ में आते हैं।

इस श्लोक में भक्तियोग के अनुशीलन की तुलना कई भौतिक कार्यकलापों से की गई है। काष्ठ

को रगड़ने से अग्नि प्राप्त हो सकती है, धरती को खोदने से अन्न तथा जल मिल सकता है और गाय के थन को दुहने से अमृततुल्य दूध प्राप्त हो सकता है। दूध की तुलना अमृत से की गई है, जिसे पीकर अमर बना जा सकता है। हाँ, केवल दूध पीने से कोई अमर नहीं हो जाता, किन्तु दूध आयु की अवधि को बढ़ा सकता है। आधुनिक सभ्यता में लोग दूध को महत्त्वपूर्ण नहीं मानते अतएव वे दीर्घजीवी नहीं होते। यद्यपि इस युग में लोग एक सौ वर्षों तक जीवित रह सकते हैं, किन्तु अधिक मात्रा में दूध न पीने के कारण उनकी आयु घट जाती है। यह कलियुग का लक्षण है। कलियुग में लोग दूध पीने की अपेक्षा पशु का वध करके उसका मांस खाना अधिक अच्छा मानते हैं। *भगवद्गीता* में दिये गये उपदेशों में भगवान् गोरक्षा का उपदेश देते हैं। गायों की सुरक्षा करनी चाहिए, उनसे दूध प्राप्त करना चाहिए और इस दूध के विविध पकवान बनाने चाहिए। मनुष्य को चाहिए कि पर्याप्त दूध पिये। इससे उसकी आयु बढ़ सकती है, मस्तिष्क विकसित हो सकता है, वह भक्ति कर सकेगा और अन्तत: भगवान् की कृपा प्राप्त कर सकता है। जिस प्रकार अन्न तथा जल प्राप्त करने के लिए धरती को खोदना आवश्यक है उसी प्रकार गायों को सुरक्षा प्रदान करना और उनके थनों से अमृत-तुल्य दूध प्राप्त करना आवश्यक है।

इस युग के लोग सुखी जीवन के लिए औद्योगिक उद्यमों में प्रवृत्ति रखते हैं, किन्तु वे उस भक्ति को करने से इनकार करते हैं जिससे उन्हें भगवद्धाम वापस जाकर जीवन का अन्तिम लक्ष्य प्राप्त हो सकता है। दुर्भाग्यवश, जैसाकि कहा गया है—*न ते विदु: स्वार्थ-गतिं हि विष्णुं दुराशया ये बहिरर्थमानिन:।* आध्यात्मिक ज्ञान से विहीन लोग यह नहीं जानते कि जीवन का अन्तिम लक्ष्य भगवद्धाम को वापस जाना है। जीवन के इस उद्देश्य को भुलाकर वे निराशा तथा हताशा में कठोर श्रम करते रहते हैं। (*मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतस:*)। तथाकथित वैश्य लोग—उद्योगपति या व्यापारी—बड़े-बड़े औद्योगिक उद्यमों में लगे हैं, किन्तु वे अन्न तथा दूध में कोई रुचि नहीं रखते। किन्तु जैसाकि यहाँ पर संकेत किया गया है, मरुस्थल में भी धरती खोदकर जल प्राप्त करके अन्न उत्पन्न किया जा सकता है। जब हम अन्न तथा तरकारी उत्पन्न करते हैं, तो गायों को संरक्षण प्राप्त हो सकता है और इन गायों से प्रचुर दूध मिल सकता है। पर्याप्त दूध मिलने से तथा इसे अन्न और तरकारी के साथ मिलाकर हम सैंकड़ों अमृतमय व्यंजन तैयार कर सकते हैं। हम इन व्यंजनों को खा सकते हैं

और औद्योगिक उद्यमों से तथा बेकारी से बच सकते हैं।

कृषि तथा गोरक्षा निष्पाप होने के साधन हैं और इन से भक्ति के प्रति आकृष्ट हुआ जा सकता है। जो लोग पापी हैं, वे भक्ति के प्रति अनुरक्त नहीं होते। जैसाकि *भगवद्गीता* (७.२) में कहा गया है—

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।

ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः॥

''जिन लोगों ने पूर्वजन्मों में तथा इस जन्म में पुण्य कार्य किये हैं, जिनके पाप समूल नष्ट हो चुके हैं तथा जो मोह के द्वन्द्व से मुक्त हैं, वे संकल्पपूर्वक मेरी सेवा में प्रवृत्त होते हैं।'' इस कलियुग में अधिकांश लोग पापी, अल्पायु, अभागे तथा विक्षुब्ध हैं (*मन्दाः सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुताः*) उनके लिए चैतन्य महाप्रभु ने सलाह दी है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

''इस कलह तथा कपट के युग में उद्धार का एकमात्र साधन भगवान् के पवित्र नाम का जप है। इसका कोई अन्य रास्ता नहीं है। कोई अन्य रास्ता नहीं है। कोई अन्य रास्ता नहीं है।''

तं त्वां वयं नाथ समुज्जिहानं
सरोजनाभातिचिरेप्सितार्थम् ।
दृष्ट्वा गता निर्वृतमद्य सर्वे
गजा दवार्ता इव गाङ्गमम्भः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

तम्—हे भगवान्; त्वाम्—आपको; वयम्—हम सभी; नाथ—हे स्वामी; समुज्जिहानम्—अपनी समस्त महिमा के साथ अब हमारे समक्ष प्रकट होने वाले; सरोज-नाभ—कमल फूल के समान नाभि वाले भगवान् अथवा जिनकी नाभि से कमल निकलता है; अति-चिर—दीर्घकाल तक; ईप्सित—चाहते हुए; अर्थम्—जीवन के चरम लक्ष्य के लिए; दृष्ट्वा—देखकर; गताः—अपनी दृष्टि के अन्तर्गत; निर्वृतम्—दिव्य सुख; अद्य—आज; सर्वे—हम सभी; गजाः—हाथी; दव-अर्ताः—जंगल की अग्नि से पीड़ित; इव—सदृश; गाङ्गम् अम्भः—गंगा के जल से।

जंगल की अग्नि से पीड़ित हाथी गंगाजल प्राप्त होने पर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। इसी प्रकार, हे प्रभु! कमलनाभ प्रभु! चूँकि आप हमारे समक्ष अब प्रकट हुए हैं अतएव हम दिव्य सुख का अनुभव कर रहे हैं। हमें आपके दर्शन की दीर्घकाल से आकांक्षा थी अतएव आपका दर्शन

पाकर हमने अपने जीवन के चरम लक्ष्य को पा लिया है।

तात्पर्य : भगवद्भक्त भगवान् का साक्षात् दर्शन पाने के लिए सदैव अत्यन्त उत्सुक रहते हैं, किन्तु वे कभी यह माँग पेश नहीं करते कि भगवान् उनके समक्ष आयें क्योंकि भक्त ऐसी माँग को भक्ति के विरुद्ध मानता है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने *शिक्षाष्टक* में यही पाठ पढ़ाया है। *अदर्शनान् मर्महतां करोतु वा।* भक्त भगवान् का साक्षात्कार करने के लिए सदैव उत्सुक रहता है, किन्तु यदि जन्म-जन्मातर तक भगवान् के दर्शन न होने से उसका हृदय टूट भी जाये तो भी वह भगवान् से प्रकट होने की माँग कभी नहीं करेगा। यह शुद्ध भक्ति का लक्षण है। अतएव इस श्लोक में *अतिचिरईप्सितअर्थम्* शब्द आया है, जिसका अर्थ है कि भक्त भगवान् का दर्शन पाने के लिए दीर्घ समय से आकांक्षा करता रहता है। यदि भगवान् स्वेच्छा से भक्त के समक्ष प्रकट होते हैं, तो वह अत्यन्त सुख का अनुभव करता है, जिस प्रकार ध्रुव महाराज ने भगवान् का प्रत्यक्ष दर्शन पाने पर किया था। जब ध्रुव महाराज ने भगवान् को देखा तो उन्हें कोई वर माँगने की इच्छा नहीं हुई। वे भगवान् को देख कर ही इतने तुष्ट हो गये थे कि उन्होंने भगवान् से कोई वर माँगना नहीं चाहा (*स्वामिन् कृतार्थोऽस्मि वरं न याचे*)। शुद्ध भक्त चाहे भगवान् का दर्शन कर सके या नहीं, वह सदैव इस आशा से भगवान् की सेवा-भक्ति करता है कि कभी न कभी वे उस पर प्रसन्न होकर प्रकट होंगे जिससे उसे उनका साक्षात् दर्शन हो सकेगा।

स त्वं विधत्स्वाखिललोकपाला
वयं यदर्थास्तव पादमूलम् ।
समागतास्ते बहिरन्तरात्मन्
किं वान्यविज्ञाप्यमशेषसाक्षिणः ॥ १४॥

शब्दार्थ

सः—वह; त्वम्—आप; विधत्स्व—कृपया जो आवश्यक हो करें; अखिल-लोक-पालाः—देवता, इस ब्रह्माण्ड के विभिन्न विभागों के निर्देशक; वयम्—हम सभी; यत्—जो; अर्थाः—प्रयोजन; तव—आपके; पाद-मूलम्—चरणकमलों पर; समागताः—हम आये हैं; ते—आपको; बहिः-अन्तः-आत्मन्—हे सबके परमात्मा, हे बाह्य तथा अन्तर के सतत साक्षी; किम्—क्या; वा—अथवा; अन्य-विज्ञाप्यम्—आपको सूचित करते हैं; अशेष-साक्षिणः—हर वस्तु के साक्षी तथा ज्ञाता।

हे भगवान्! हम विविध देवता, इस ब्रह्माण्ड के निर्देशक आपके चरणकमलों के निकट आये हैं। जिस प्रयोजन से हम आये हैं कृपया उसे पूरा करें। आप भीतर तथा बाहर से हर वस्तु के साक्षी हैं। आपसे कुछ भी अज्ञात नहीं है, अतएव आपको किसी बात के लिए पुनः सूचित करना व्यर्थ है।

तात्पर्य : जैसाकि *भगवद्गीता* (१३.३) में कहा गया है—*क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।* जीवात्माएँ अपने-अपने शरीर की स्वामी हैं, किन्तु भगवान् सभी शरीरों के स्वामी हैं। चूँकि वे हर एक के शरीर के साक्षी हैं, अतएव उनसे कुछ भी छिपा नहीं है। वे जानते हैं कि हमें क्या चाहिए। अतएव हमारा कर्तव्य है कि गुरु के निर्देशन में निष्ठापूर्वक भक्ति करें। भक्ति करने के लिए हमें जो भी चाहिए उसकी पूर्ति कृपा-पूर्वक कृष्ण करेंगे। कृष्णभावनामृत आन्दोलन में हमें कृष्ण तथा गुरु के आदेशों मात्र को पूरा करना होता है। तब हमारी सारी आवश्यकताएँ हमारे न माँगने पर भी कृष्ण द्वारा पूरी हो जायेंगी।

अहं गिरित्रश्च सुरादयो ये
दक्षादयोऽग्नेरिव केतवस्ते ।
किं वा विदामेश पृथग्विभाता
विधत्स्व शं नो द्विजदेवमन्त्रम् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

अहम्—मैं (ब्रह्मा); गिरित्रः—शिवजी; च—भी; सुर-आदयः—तथा सारे देवता; ये—जैसे भी हम हैं; दक्ष-आदयः—महाराज दक्ष इत्यादि; अग्नेः—अग्नि के; इव—सदृश; केतवः—चिनगारियाँ; ते—तुम्हारा; किम्—क्या; वा—अथवा; विदाम—हम समझ सकते हैं; ईश—हे प्रभु; पृथक्-विभाताः—आपसे स्वतंत्र होकर; विधत्स्व—हमें प्रदान करें; शम्—सौभाग्य; नः—हमारा; द्विज-देव-मन्त्रम्—ब्राह्मणों तथा देवताओं के लिए उपयुक्त मोक्ष का साधन।

मैं (ब्रह्मा), शिवजी तथा सारे देवताओं के साथ-साथ, दक्ष जैसे प्रजापति भी चिनगारियाँ मात्र हैं, जो मूल अग्नि स्वरूप आपके द्वारा प्रकाशित हैं। चूँकि हम आपके कण हैं अतएव हम अपनी कुशलता के विषय में समझ ही क्या सकते हैं? हे परमेश्वर! हमें मोक्ष का वह साधन प्रदान करें जो ब्राह्मणों तथा देवताओं के लिए उपयुक्त हो।

तात्पर्य : इस श्लोक में *द्विजदेवमन्त्रम्* शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। मंत्र शब्द का अर्थ है "जो भौतिक जगत से उद्धार करता है।" इस भौतिक जगत से केवल द्विज (ब्राह्मण) तथा देव (देवता) ही भगवान् के आदेशानुसार मोक्ष पा सकते हैं। भगवान् जो कुछ भी बोलते हैं वह मंत्र है और बद्धजीवों को मानसिक चिन्तन से उद्धार कराने के लिए पर्याप्त है। सारे बद्धजीव जीवन-संघर्ष में लगे हुए हैं (*मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति*)। इस संघर्ष से मोक्ष सर्वोच्च लाभ है, किन्तु भगवान् से मंत्र प्राप्त किये बिना मोक्ष असम्भव है। आदि मंत्र गायत्री मंत्र है। अतएव संस्कार के बाद जब कोई व्यक्ति ब्राह्मण (द्विज) बनने के योग्य हो जाता है, तो उसे गायत्री मंत्र प्रदान किया जाता है। मात्र गायत्री मंत्र

के जप से मनुष्य मोक्ष पा सकता है। किन्तु यह मंत्र केवल ब्राह्मणों तथा देवताओं के लिए ही उपयुक्त होता है। कलियुग में हम सभी अत्यन्त कठिन स्थिति में हैं जिसमें ऐसे उचित मंत्र की आवश्यकता है, जो हमें इस युग के संकटों से उबार सके। अतएव भगवान् अपने चैतन्य-अवतार में हमें हरे कृष्ण मंत्र प्रदान करते हैं—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

"इस कलह तथा कपट के युग में मोक्ष का एकमात्र साधन भगवान् के पवित्र नाम का जप है। इसके अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग नहीं है, कोई अन्य मार्ग नहीं है, कोई अन्य मार्ग नहीं है।" *शिक्षाष्टक* में भगवान् चैतन्य कहते हैं—*परं विजयते श्रीकृष्ण-सङ्कीर्तनम्*—श्रीकृष्ण सङ्कीर्तन की जय हो। हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे। हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे—यह महामंत्र स्वयं भगवान् जपते हैं, जिन्होंने हमें मोक्ष के लिए यह मंत्र प्रदान किया है।

हम इस संसार के संकटों से उद्धार पाने का कोई साधन नहीं खोज सकते। यहाँ तो ब्रह्मा तथा शिवजी जैसे देवता एवं दक्ष जैसे प्रजापति भी उन परमेश्वर के समक्ष प्रकाशमान चिनगारी के तुल्य हैं जिनकी तुलना महान् अग्नि से की जाती है। चिनगारियाँ तभी तक सुन्दर लगती हैं जब तक वे अग्नि में रहती हैं। उसी प्रकार हमें भगवान् के सान्निध्य में रहकर सदैव भक्ति में लगना चाहिए क्योंकि तभी हम सदा दीप्तिमान रह सकेंगे। ज्योंही हम भगवान् की सेवा से नीचे गिर जाते हैं हमारा तेज तथा हमारी चमक तुरन्त समाप्त हो जाएगी या कुछ काल के लिए रुक जाएगी। जब मूल अग्नि रूपी परमेश्वर की चिनगारी तुल्य हम सारे जीव इस जगत में बद्धजीव की स्थिति में आ गिरते हैं, तो हमें भगवान् से उसी तरह मंत्र ग्रहण करना चाहिए जैसाकि श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रदान किया जाता है। इस हरे कृष्ण मंत्र का उच्चारण करने से हम इस भौतिक जगत की सारी कठिनाइयों से मुक्त हो सकेंगे।

श्रीशुक उवाच

एवं विरिञ्चादिभिरीडितस्तद्
विज्ञाय तेषां हृदयं यथैव ।
जगाद जीमूतगभीरया गिरा
बद्धाञ्जलीन्संवृतसर्वकारकान् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; विरिञ्चि-आदिभिः—ब्रह्मा इत्यादि सारे देवताओं द्वारा; ईडितः—पूजित; तत् विज्ञाय—आशा को जानकर; तेषाम्—उन सब का; हृदयम्—हृदय; यथा—जिस तरह; एव—निस्सन्देह; जगाद—उत्तर दिया; जीमूत-गभीरया—बादलों की गरज के समान; गिरा—शब्दों से; बद्ध-अञ्जलीन्—हाथ जोड़कर खड़े देवताओं को; संवृत—संयमित; सर्व—सभी; कारकान्—इन्द्रियों को।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : जब ब्रह्मा समेत सारे देवताओं ने भगवान् की स्तुति की तो वे उनके वहाँ आने का प्रयोजन समझ गये। अतएव भगवान् ने बादल की गर्जना के समान गम्भीर वाणी में उन देवताओं को उत्तर दिया जो हाथ जोड़कर सावधानी से वहाँ खड़े थे।

एक एवेश्वरस्तस्मिन्सुरकार्ये सुरेश्वरः ।
विहर्तुकामस्तानाह समुद्रोन्मथनादिभिः ॥ १७॥

शब्दार्थ

एकः—अकेला; एव—निस्सन्देह; ईश्वरः—भगवान्; तस्मिन्—उस; सुर-कार्ये—देवताओं के कार्यों में; सुर-ईश्वरः—देवताओं के ईश्वर, भगवान्; विहर्तु—लीलाओं का आनन्द भोगने के लिए; कामः—इच्छा करते हुए; तान्—देवताओं से; आह—कहा; समुद्र-उन्मथन-आदिभिः—समुद्र-मन्थन के कार्यों से।

यद्यपि देवताओं के स्वामी भगवान् देवताओं के कार्यकलापों को स्वयं सम्पन्न करने में समर्थ थे फिर भी उन्होंने समुद्र-मन्थन की लीला का आनन्द उठाना चाहा। अतएव वे इस प्रकार बोले।

श्रीभगवानुवाच
हन्त ब्रह्मन्नहो शम्भो हे देवा मम भाषितम् ।
शृणुतावहिताः सर्वे श्रेयो वः स्याद्यथा सुराः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; हन्त—उनको सम्बोधित करते हुए; ब्रह्मन् अहो—हे ब्रह्माजी; शम्भो—हे शिवजी; हे—हे; देवाः—देवतागण; मम—मेरा; भाषितम्—कथन; शृणुत—सुनो; अवहिताः—ध्यानपूर्वक; सर्वे—तुम सभी; श्रेयः—कल्याण; वः—तुम सबका; स्यात्—हो; यथा—जिस तरह; सुराः—देवताओं के लिए।

भगवान् ने कहा! हे ब्रह्मा, शिव तथा अन्य देवताओ! तुम सभी ध्यानपूर्वक मेरी बात सुनो क्योंकि मैं जो कुछ कहूँगा उससे तुम सब का कल्याण होगा।

यात दानवदैतेयैस्तावत्सन्धिर्विधीयताम् ।
कालेनानुगृहीतैस्तैर्यावद्वो भव आत्मनः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

यात—सम्पन्न करो; दानव—दानवों के साथ; दैतेयैः—तथा असुरों के साथ; तावत्—तब तक; सन्धिः—सन्धि; विधीयताम्—सम्पन्न करो; कालेन—अनुकूल समय के द्वारा (या काव्येन—शुक्राचार्य द्वारा); अनुगृहीतैः—आशीष प्राप्त करते हुए; तैः—उन सब से; यावत्—जब तक; वः—तुम्हारा; भवः—सौभाग्य; आत्मनः—तुम सब का।

जब तक तुम उन्नति नहीं कर रहे हो, तुम सब को दानवों तथा असुरों के साथ सन्धि कर लेनी चाहिए क्योंकि सम्प्रति समय उनके अनुकूल है।

तात्पर्य : इस श्लोक के एक शब्द के दो पाठ हैं—*कालेन* तथा *काव्येन*। *कालेन* का अर्थ है "समय की कृपा से" तथा *काव्येन* का अर्थ है "शुक्राचार्य की कृपा से।" शुक्राचार्य दैत्यों के आध्यात्मिक गुरु हैं। असुरों तथा दैत्यों को दोनों ओर से लाभ था अतएव भगवान् ने देवताओं को सलाह दी कि वे तब तक के लिए उनसे सन्धि कर लें जब तक समय उनके अनुकूल न हो जाये।

अरयोऽपि हि सन्धेयाः सति कार्यार्थगौरवे ।
अहिमूषिकवद्देवा ह्यर्थस्य पदवीं गतैः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

अरयः—शत्रुगण; अपि—यद्यपि; हि—निस्सन्देह; सन्धेयाः—सन्धि के योग्य; सति—ऐसा होकर; कार्य-अर्थ-गौरवे—महत्त्वपूर्ण कर्तव्य के मामले में; अहि—सर्प; मूषिक—चूहा; वत्—सदृश; देवाः—हे देवताओ; हि—निस्सन्देह; अर्थस्य—हित का; पदवीम्—पद; गतैः—ऐसा होकर।

हे देवताओ! अपना हित इतना महत्वपूर्ण होता है कि मनुष्य को अपने शत्रुओं से सन्धि भी करनी पड़ सकती है। अपने हित (लाभ) के लिए मनुष्य को सर्प तथा चूहे के तर्क के अनुसार कार्य करना चाहिए।

तात्पर्य : एक बार एक साँप तथा एक चूहा एक पिटारी में पकड़ लिए गये। चूँकि चूहा सर्प का भोजन है अतएव सर्प के लिए यह सुनहरा अवसर था। किन्तु चूँकि दोनों ही पिटारी में बन्द थे अतएव यदि सर्प चूहे को खाता भी, तो वह बाहर निकलने में असमर्थ रहता। इसलिए सर्प ने चूहे से सन्धि करना बुद्धिमानी समझा और उसने चूहे से पिटारी में छेद करने के लिए कहा जिससे वे दोनों बाहर जा सकें। सर्प की योजना थी कि जब चूहा छेद बना लेगा तो सर्प चूहे को खाकर छेद से होकर पिटारी से निकल भागेगा। यही सर्प तथा चूहे का तर्क कहलाता है।

अमृतोत्पादने यत्नः क्रियतामविलम्बितम् ।
यस्य पीतस्य वै जन्तुर्मृत्युग्रस्तोऽमरो भवेत् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

अमृत-उत्पादने—अमृत उत्पन्न करने में; यत्नः—यत्न; क्रियताम्—करो; अविलम्बितम्—देर किये बिना, तुरन्त; यस्य—जिस अमृत के; पीतस्य—पीने वाले का; वै—निस्सन्देह; जन्तुः—जीव; मृत्यु-ग्रस्तः—यद्यपि आसन्न मृत्यु संकट में; अमरः—अमर; भवेत्—हो सकता है।

तुरन्त ही अमृत उत्पन्न करने का प्रयत्न करो जिसे पीकर मरणासन्न व्यक्ति अमर हो जाये।

क्षिप्त्वा क्षीरोदधौ सर्वा वीरुत्तृणलतौषधीः ।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिम् ॥ २२॥
सहायेन मया देवा निर्मन्थध्वमतन्द्रिताः ।
क्लेशभाजो भविष्यन्ति दैत्या यूयं फलग्रहाः ॥ २३॥

शब्दार्थ

क्षिप्त्वा—डालकर; क्षीर-उदधौ—क्षीरसागर में; सर्वाः—सभी प्रकार की; वीरुत्—लताएँ; तृण—घास; लता—वनस्पतियाँ; औषधीः—तथा दवाएँ; मन्थानम्—मथानी; मन्दरम्—मन्दर पर्वत को; कृत्वा—बनाकर; नेत्रम्—मथने की डोरी; कृत्वा—बनाकर; तु—लेकिन; वासुकिम्—वासुकि सर्प को; सहायेन—सहायक के साथ; मया—मेरे द्वारा; देवाः—सारे देवता; निर्मन्थध्वम्—मथते रहो; अतन्द्रिताः—सावधानी से, एकाग्र मन से; क्लेश-भाजः—कष्टों को बँटाने वाले; भविष्यन्ति—होंगे; दैत्याः—दैत्य; यूयम्—तुम सब; फल-ग्रहाः—वास्तविक फल का लाभ उठाने वाले।

हे देवताओ! क्षीरसागर में सभी प्रकार की वनस्पतियाँ, तृण, लताएँ तथा औषधियाँ डाल दो। तब मेरी सहायता से मन्दर पर्वत को मथानी तथा वासुकि को मथने की रस्सी बनाकर अविचल चित्त से क्षीरसागर का मन्थन करो। इत तरह से दैत्यगण श्रम कार्य में लग जायेंगे, किन्तु तुम देवताओं को वास्तविक फल—समुद्र से उत्पन्न अमृत—प्राप्त होगा।

तात्पर्य : ऐसा प्रतीत होता है कि जब दूध में सभी प्रकार की औषधियाँ, लताएँ, तृण तथा वनस्पतियाँ डालकर दूध को मथा जाता है, जिस तरह मक्खन निकालने के लिए दूध को मथा जाता है, तो वनस्पतियों तथा औषधियों के सक्रिय तत्त्व दूध से मिल जाते हैं और उसके परिणामस्वरूप अमृत मिलता है।

यूयं तदनुमोदध्वं यदिच्छन्त्यसुराः सुराः ।
न संरम्भेण सिध्यन्ति सर्वार्थाः सान्त्वया यथा ॥ २४॥

शब्दार्थ

यूयम्—तुम सभी; तत्—वह; अनुमोदध्वम्—स्वीकार करो; यत्—जो भी; इच्छन्ति—वे चाहते हैं; असुराः—असुरगण; सुराः—हे देवताओ; न—नहीं; संरम्भेण—क्रुद्ध होने पर; सिध्यन्ति—सफल होते हैं; सर्व-अर्थाः—सारी वांछनाएँ; सान्त्वया—शान्तिपूर्वक सम्पन्न करने से; यथा—जिस तरह।

हे देवताओ! धैर्य तथा शान्ति से हर कार्य सम्पन्न किया जा सकता है, किन्तु यदि कोई क्रोध से क्षुब्ध रहे तो लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो पाती। अतएव असुरगण जो भी माँगें उनके प्रस्ताव को

स्वीकार कर लो।

न भेतव्यं कालकूटाद्विषाज्जलधिसम्भवात् ।
लोभः कार्यो न वो जातु रोषः कामस्तु वस्तुषु ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; भेतव्यम्—डरना चाहिए; कालकूटात्—कालकूट से; विषात्—विष से; जलधि—क्षीरसागर से; सम्भवात्—प्रकट हुए; लोभः—लालच; कार्यः—कार्य; न—नहीं; वः—तुमको; जातु—किसी समय; रोषः—क्रोध; कामः—विषयवासना; तु—तथा; वस्तुषु—वस्तुओं में।

क्षीरसागर से कालकूट नामक विष उत्पन्न होगा, किन्तु तुम्हें उससे डरना नहीं है और जब समुद्र के मन्थन से विविध उत्पाद प्राप्त हों तो तुम्हें उनको प्राप्त करने के लिए न तो लालच करना होगा, न ही उत्सुक होना होगा, और न ही क्रुद्ध होना होगा।

तात्पर्य : ऐसा लगता है कि क्षीरसागर के मन्थन से अनेक वस्तुएँ उत्पन्न होंगी जिनमें विष, बहुमूल्य रत्न, अमृत तथा अनेक सुन्दरियाँ सम्मिलित हैं। किन्तु देवताओं को सलाह दी गई थी कि वे रत्नों या सुन्दरियों के प्रति लोभ न दिखायें अपितु धैर्यपूर्वक अमृत की प्रतीक्षा करें। वास्तविक उद्देश्य अमृत प्राप्त करना था।

श्रीशुक उवाच
इति देवान्समादिश्य भगवान्पुरुषोत्तमः ।
तेषामन्तर्दधे राजन्स्वच्छन्दगतिरीश्वरः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; देवान्—सारे देवताओं को; समादिश्य—उपदेश देकर; भगवान्—भगवान्; पुरुष-उत्तमः—पुरुषों में श्रेष्ठ; तेषाम्—उन सब से; अन्तर्दधे—अन्तर्धान हो गये; राजन्—हे राजा; स्वच्छन्द—मुक्त; गतिः—गति वाले; ईश्वरः—भगवान्।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : हे राजा परीक्षित! देवताओं को इस प्रकार से सलाह देकर समस्त जीवों में श्रेष्ठ, स्वच्छन्द रहने वाले भगवान् उनके समक्ष से अन्तर्धान हो गये।

अथ तस्मै भगवते नमस्कृत्य पितामहः ।
भवश्च जग्मतुः स्वं स्वं धामोपेयुर्बलिं सुराः ॥ २७॥

शब्दार्थ

अथ—इसके बाद; तस्मै—उस; भगवते—भगवान् को; नमस्कृत्य—नमस्कार करके; पिता-महः—ब्रह्माजी; भवः च—तथा शिवजी; जग्मतुः—लौट गये; स्वम् स्वम्—अपने-अपने; धाम—घरों को; उपेयुः—पास गये; बलिम्—राजा बलि के; सुराः—अन्य सारे देवता।

तब भगवान् को सादर नमस्कार करने के बाद ब्रह्मा जी तथा शिवजी अपने-अपने धामों को लौट गये। फिर सारे देवता महाराज बलि के पास गये।

दृष्ट्वारीनप्यसंयत्ताञ्जातक्षोभान्स्वनायकान् ।
न्यषेधद्दैत्यराट्श्लोक्यः सन्धिविग्रहकालवित् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देखकर; अरीन्—शत्रुओं को; अपि—यद्यपि; असंयत्तान्—लड़ने के किसी प्रयास बिना; जात-क्षोभान्—विक्षुब्ध हुए; स्व-नायकान्—अपने सेनानायकों को; न्यषेधत्—रोका; दैत्य-राट्—दैत्यों के सम्राट, महाराज बलि; श्लोक्यः—अत्यन्त सम्मानित तथा प्रमुख; सन्धि—समझौता कराने के लिए; विग्रह—तथा लड़ने के लिए; काल—समय; वित्—पूर्णतया अवगत।

दैत्यों में सर्वाधिक विख्यात महाराज बलि भलीभाँति जानते थे कि कब सन्धि करनी चाहिए और कब युद्ध करना चाहिए। इस तरह से यद्यपि उनके सेनानायक विक्षुब्ध थे और देवताओं का वध कर देना चाहते थे, किन्तु जब महाराज बलि ने देखा कि सारे देवता उनके पास आक्रमक प्रवृत्ति त्याग कर आ रहे हैं, तो उन्होंने अपने सेनानायकों को मना कर दिया कि वे देवताओं को मारें नहीं।

तात्पर्य : वैदिक शिष्टाचार कहता है—*गृहे शत्रुमपि प्राप्तं विश्वस्तमकुतोभयम्।* जब शत्रु अपने विपक्षी के घर आयें तो उनका स्वागत इस तरह से होना चाहिए कि वे यह भूल जायें कि दोनों पक्षों में शत्रुता है। बलि महाराज सन्धि करने तथा युद्ध करने की कला में दक्ष थे। अत: उन्होंने देवताओं का ठीक से स्वागत किया यद्यपि उनके सेनानायक विक्षुब्ध थे। इस तरह का व्यवहार पाण्डवों तथा कुरुओं के युद्ध के समय भी प्रचलित था। दिन के समय कौरव तथा पाण्डव पूरे बल से लड़ते थे, किन्तु जब दिन ढल जाता तो वे एक दूसरे के शिबिरों में मित्रों की तरह जाते और उनका स्वागत भी उसी रूप में होता था। ऐसे मैत्रीपूर्ण मिलापों में एक शत्रु दूसरे को मुँहमाँगी वस्तु देता था। ऐसी थी पद्धति।

ते वैरोचनिमासीनं गुप्तं चासुरयूथपैः ।
श्रिया परमया जुष्टं जिताशेषमुपागमन् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

ते—सभी देवता; वैरोचनिम्—विरोचन के पुत्र बलिराज को; आसीनम्—बैठा हुआ; गुप्तम्—सुरक्षित; च—तथा; असुर-यूथ-पैः—असुरों के सेनानायकों द्वारा; श्रिया—ऐश्वर्य से; परमया—परम; जुष्टम्—वर प्राप्त; जित-अशेषम्—समस्त जगतों का स्वामी; उपागमन्—के पास पहुँचे।

देवगण विरोचन के पुत्र बलि महाराज के पास गये और उनके निकट बैठ गये। उस समय

बलि महाराज की रक्षा असुरों के सेनानायकों द्वारा की जा रही थी और वे अत्यन्त ऐश्वर्यशाली थे। उन्होंने सारे ब्रह्माण्डों को जीत लिया था।

महेन्द्रः श्लक्ष्णया वाचा सान्त्वयित्वा महामतिः ।
अभ्यभाषत तत्सर्वं शिक्षितं पुरुषोत्तमात् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

महा-इन्द्रः—स्वर्ग का राजा इन्द्र; श्लक्ष्णया—अत्यन्त विनीत; वाचा—वचनों से; सान्त्वयित्वा—बलि महाराज को अत्यधिक प्रसन्न करते हुए; महा-मतिः—अत्यन्त बुद्धिमान् मनुष्य; अभ्यभाषत—सम्बोधित किया; तत्—वह; सर्वम्—सब कुछ; शिक्षितम्—जो कुछ सीखा था; पुरुष-उत्तमात्—भगवान् विष्णु से।

अत्यन्त बुद्धिमान् एवं देवताओं के राजा इन्द्र ने बलि महाराज को विनीत शब्दों से प्रसन्न कर लेने के बाद उन सारे प्रस्तावों को अत्यन्त विनयपूर्वक प्रस्तुत किया जिन्हें भगवान् विष्णु ने उसे सिखलाया था।

तत्त्वरोचत दैत्यस्य तत्रान्ये येऽसुराधिपाः ।
शम्बरोऽरिष्टनेमिश्च ये च त्रिपुरवासिनः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

तत्—वे सारे शब्द; तु—लेकिन; अरोचत—अत्यन्त रुचिकर थे; दैत्यस्य—बलि महाराज के लिए; तत्र—तथा; अन्ये—अन्य; ये—जो; असुर-अधिपाः—असुरों के प्रधान; शम्बरः—शम्बर; अरिष्टनेमिः—अरिष्टनेमि; च—भी; ये—अन्य जो; च—तथा; त्रिपुर-वासिनः—त्रिपुर के सारे निवासी।

राजा इन्द्र द्वारा रखे गये प्रस्तावों को बलि महाराज ने, उनके सहायकों ने, जिनमें शम्बर तथा अरिष्टनेमि प्रमुख थे एवं त्रिपुर के अन्य सारे निवासियों ने तुरन्त ही मान लिया।

तात्पर्य : इस श्लोक से प्रकट होता है कि उच्च लोकों में भी इस लोक में व्याप्त राजनीति, राजनय, ठगी की प्रवृत्ति तथा दो पक्षों के बीच पाये जाने वाले व्यक्तिगत तथा सामाजिक समझौते पाये जाते हैं। देवतागण बलि महाराज के पास अमृत बनाने का प्रस्ताव लेकर गये थे और असुरों ने इसे यह सोचते हुए तुरन्त स्वीकार कर लिया कि देवता पहले से निर्बल हैं, अतएव जब अमृत निकलेगा तो असुर उसे प्राप्त करके अपने निजी कार्य में ला सकेंगे। निस्सन्देह, देवताओं के भी मनोभाव ऐसे ही थे। अन्तर इतना ही था कि विष्णु भगवान् देवताओं के पक्ष में थे क्योंकि वे उनके भक्त थे जबकि असुर विष्णु की कोई परवाह नहीं करते थे। सारे ब्रह्माण्ड में ही दो दल हैं—विष्णु दल या ईश्वर-भावनाभावित दल तथा ईश्वरविहीन दल। ईश्वरविहीन दल कभी भी सुखी या विजयी नहीं होता जबकि

ईश्वर-भावनाभावित दल सदैव सुखी तथा विजयी होता है।

ततो देवासुराः कृत्वा संविदं कृतसौहृदाः ।
उद्यमं परमं चक्रुरमृतार्थे परन्तप ॥ ३२॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; देव-असुराः—देवता तथा असुर दोनों; कृत्वा—सम्पन्न करके; संविदम्—संकेत करते हुए; कृत-सौहृदाः—उनके बीच सन्धि प्रस्ताव; उद्यमम्—उद्यम; परमम्—परम; चक्रुः—उन्होंने किया; अमृत-अर्थे—अमृत के हेतु; परन्तप—हे शत्रुओं को दण्ड देने वाले महाराज परीक्षित।

हे शत्रुओं को दण्ड देने वाले महाराज परीक्षित! तब देवताओं तथा असुरों ने परस्पर सन्धि कर ली और उन्होंने इन्द्र द्वारा प्रस्तावित अमृत उत्पन्न करने की योजना को बड़े ही उद्यमपूर्वक कार्यान्वित करने की व्यवस्था की।

तात्पर्य : इस श्लोक का *संविदम्* शब्द महत्त्वपूर्ण है। देवता तथा असुर दोनों ने, कुछ काल के लिए ही सही, युद्ध बन्द रखना स्वीकार कर लिया और वे अमृत उत्पन्न करने का प्रयास करने लगे। इस प्रसंग में *श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर* की टीका है—

संविद युद्धे प्रतिज्ञायामाचारे नाम्नि तोषणे।

सम्भाषणे क्रियाकारे संकेत ज्ञानयोरपि॥

"*संवित* शब्द का प्रयोग कई अर्थों में किया जाता है—'युद्ध में', 'वचन देने में', 'तुष्ट करने के लिए', 'सम्बोधन में', 'व्यावहारिक कर्म के द्वारा', 'संकेत' तथा 'ज्ञान'।"

ततस्ते मन्दरगिरिमोजसोत्पाट्य दुर्मदाः ।
नदन्त उदधिं निन्युः शक्ताः परिघबाहवः ॥ ३३॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; ते—सारे देवता तथा असुर; मन्दर-गिरिम्—मन्दर पर्वत को; ओजसा—बलपूर्वक; उत्पाट्य—उखाड़कर; दुर्मदाः—अत्यन्त शक्तिशाली तथा दक्ष; नदन्त—जोर-जोर से चिल्लाते; उदधिम्—समुद्र की तरफ; निन्युः—लाया; शक्ताः—अत्यन्त शक्तिशाली; परिघ-बाहवः—लम्बी-लम्बी बलशाली भुजाओं वाले।

तत्पश्चात् देवताओं तथा अत्यन्त शक्तिशाली एवं लम्बी-लम्बी बलशाली भुजाओं वाले असुरों ने अत्यन्त बलपूर्वक मन्दर पर्वत को उखाड़ा और जोरों से चिल्लाते हुए वे उसे क्षीरसागर की ओर ले चले।

दूरभारोद्वहश्रान्ताः शक्रवैरोचनादयः ।
अपारयन्तस्तं वोढुं विवशा विजहुः पथि ॥ ३४॥

शब्दार्थ

दूर—दूर तक; भार-उद्वह—भारी बोझा ले जाने से; श्रान्ताः—थके हुए; शक्र—इन्द्र; वैरोचन-आदयः—तथा महाराज बलि इत्यादि; अपारयन्तः—असमर्थ; तम्—पर्वत को; वोढुम्—उठापाने; विवशाः—अशक्त; विजहुः—छोड़ दिया; पथि—रास्ते में।

विशाल पर्वत को दूर तक ले जाने के कारण राजा इन्द्र, महाराज बलि तथा अन्य सारे देवता एवं असुर थक गये। पर्वत को ले जाने में असमर्थ होने के कारण उन्होंने उसे रास्ते में छोड़ दिया।

निपतन्स गिरिस्तत्र बहूनमरदानवान् ।
चूर्णयामास महता भारेण कनकाचलः ॥ ३५॥

शब्दार्थ

निपतन्—गिरते हुए; सः—उस; गिरिः—पर्वत ने; तत्र—वहाँ; बहून्—अनेक; अमर-दानवान्—देवताओं तथा दानवों को; चूर्णयाम् आस—चूर्ण कर डाला; महता—भारी; भारेण—बोझ से; कनक-अचलः—सोने का पर्वत जिसे मन्दर कहते हैं।

यह पर्वत जो मन्दर के नाम से विख्यात था, अत्यन्त भारी था तथा सोने का बना था, वहीं गिर पड़ा और इस ने अनेक देवताओं तथा असुरों को कुचल डाला।

तात्पर्य : स्वभाव से सोना पत्थर से भारी होता है। चूँकि मन्दर पर्वत सोने का बना था अतएव वह पत्थर से भारी था; फलतः देवता तथा असुर उसे क्षीरसागर तक ठीक से नहीं ले जा सके।

तांस्तथा भग्नमनसो भग्नबाहूरुकन्धरान् ।
विज्ञाय भगवांस्तत्र बभूव गरुडध्वजः ॥ ३६॥

शब्दार्थ

तान्—सारे देवता तथा असुर; तथा—तत्पश्चात्; भग्न-मनसः—हताश होकर; भग्न-बाहु—टूटी बाँहों वाले; ऊरु—जाँघें; कन्धरान्—तथा कंधे; विज्ञाय—जानते हुए; भगवान्—भगवान् विष्णु; तत्र—वहाँ; बभूव—प्रकट हुए; गरुड-ध्वजः—गरुड़ पर सवार।

देवता तथा असुर हताश तथा विक्षुब्ध थे और उनकी भुजाएँ, जाँघें तथा कंधे टूट गये थे। अतएव गरुड़ की पीठ पर सवार सर्वज्ञ भगवान् वहाँ पर प्रकट हुए।

गिरिपातविनिष्पिष्टान्विलोक्यामरदानवान् ।
ईक्षया जीवयामास निर्जरान्निर्व्रणान्यथा ॥ ३७॥

शब्दार्थ

गिरि-पात—मन्दर पर्वत के गिरने; विनिष्पिष्टान्—कुचले हुए; विलोक्य—देखकर; अमर—देवताओं; दानवान्—तथा दानवों को; ईक्षया—अपनी चितवन मात्र से; जीवयाम् आस—जीवित कर दिया; निर्जरान्—बिना किसी शोक के; निर्व्रणान्—बिना घाव के; यथा—मानो।

यह देखकर कि अधिकांश दानव तथा देवता पर्वत के गिरने से कुचले गये हैं, भगवान् ने उन सब पर अपनी दृष्टि दौड़ाई और उन्हें जीवित कर दिया। इस प्रकार वे शोक से रहित हो गये और उनके शरीरों के घाव भी जाते रहे।

गिरिं चारोप्य गरुडे हस्तेनैकेन लीलया ।
आरुह्य प्रययावब्धिं सुरासुरगणैर्वृतः ॥ ३॥

शब्दार्थ

गिरिम्—पर्वत को; च—भी; आरोप्य—रखकर; गरुडे—गरुड़ की पीठ पर; हस्तेन—हाथ से; एकेन—एक; लीलया—अपनी लीला के रूप में, आसानी से; आरुह्य—चढ़कर; प्रययौ—चले गये; अब्धिम्—क्षीरसागर; सुर-असुर-गणैः—देवताओं तथा असुरों द्वारा; वृतः—घिरे हुए।

फिर भगवान् ने पर्वत को अत्यन्त सरलतापूर्वक एक हाथ से उठाकर गरुड़ की पीठ पर रख दिया। तब वे स्वयं गरुड़ पर सवार हुए और देवताओं तथा असुरों से घिरे हुए क्षीरसागर चले गये।

तात्पर्य : यहाँ पर सर्वोपरि भगवान् के सर्वशक्तिमान होने का प्रमाण प्राप्त है। जीवों की दो श्रेणियाँ हैं—असुर तथा देवता—किन्तु भगवान् इन दोनों के ऊपर हैं। असुरगण सृष्टि के अवसर-वाद सिद्धान्त में विश्वास करते हैं, किन्तु देवता भगवान् के हाथों से बनी सृष्टि पर विश्वास करते हैं। यहाँ पर भगवान् की सर्वशक्तिमत्ता सिद्ध हो जाती है क्योंकि उन्होंने मन्दर पर्वत, असुरों तथा देवताओं को मात्र एक ही हाथ से उठाकर गरुड़ की पीठ पर रखा और सब को क्षीरसागर ले आये। देवता तथा भक्त इस घटना को यह जानते हुए कि भगवान् किसी भी वस्तु को चाहे वह कितनी भी भारी क्यों न हो उठा सकते हैं तुरन्त स्वीकार कर लेंगे, किन्तु दानव इस घटना को सुनकर यही कहेंगे कि यह पौराणिक है, यद्यपि वे भी देवताओं के साथ भगवान् द्वारा ले जाये गये थे। किन्तु क्या सर्वशक्तिमान भगवान् के लिए पर्वत उठाना कठिन है? चूँकि उन्होंने लाखों मन्दर-पर्वतों से युक्त असंख्य लोकों को तैरा रखा है, तो फिर वे उनमें से एक पर्वत को अपने हाथ से क्यों नहीं उठा सकते हैं? यह पौराणिक कथा नहीं है अपितु विश्वास करने वालों तथा अश्रद्धालुओं में यही अन्तर है कि देवता वैदिक साहित्य में वर्णित घटनाओं को सत्य के रूप में स्वीकार करते हैं, किन्तु दानव केवल विवाद करते हैं और कहते हैं कि ये ऐतिहासिक घटनाएँ मात्र पौराणिक कथाएँ हैं। असुरगण यही व्याख्या करना श्रेष्ठ समझते हैं कि इस जगत की सारी घटनाएँ "अकस्मात्" से होती हैं, किन्तु भक्तगण अथवा देवगण किसी भी घटना को

अवसरजनित नहीं मानते। प्रत्युत वे जानते हैं कि प्रत्येक घटना भगवान् की योजना के अनुसार घटती है। देवों तथा दानवों के बीच यही अन्तर है।

अवरोप्य गिरिं स्कन्धात्सुपर्णः पततां वरः ।
ययौ जलान्त उत्सृज्य हरिणा स विसर्जितः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

अवरोप्य—उतार कर; **गिरिम्**—पर्वत को; **स्कन्धात्**—अपने कंधे से; **सुपर्णः**—गरुड़; **पतताम्**—सारे पक्षियों में; **वरः**—सबसे महान् या शक्तिमान; **ययौ**—गया; **जल-अन्ते**—जहाँ जल है; **उत्सृज्य**—रखकर; **हरिणा**—भगवान् द्वारा; **सः**—वह (गरुड़); **विसर्जितः**—उस स्थान से चला गया।

तत्पश्चात् पक्षीराज गरुड़ ने अपने कन्धे से मन्दर पर्वत को उतारा और वे उसे जल के निकट ले गये। तब भगवान् ने उससे उस स्थान से चले जाने को कहा और वह चला गया।

तात्पर्य : भगवान् ने गरुड़ को उस स्थान से चले जाने का आदेश दिया क्योंकि सर्पराज वासुकि, जिसे मन्थन के लिए रस्सी बनाया जाना था, गरुड़ की उपस्थिति में वहाँ नहीं जा सकता था। भगवान् विष्णु का वाहन गरुड़ शाकाहारी नहीं है। वह बड़े-बड़े साँप खा जाता है। वासुकि सर्पराज होने के कारण पक्षियों के नायक गरुड़ का सहज भोज्य होगा। अतएव भगवान् विष्णु ने गरुड़ से चले जाने को कहा जिससे मथानी के रूप में मन्दर पर्वत से समुद्र का मन्थन करने के लिए वासुकि को लाया जा सके। ये सब भगवान् की अद्भुत व्यवस्थाएँ हैं। दैववशात् कुछ भी नहीं घटित होता। पक्षी की पीठ पर मन्दर पर्वत उठाना और उसे सही-सही रखना किसी के लिए भी कठिन होगा चाहे वे देव हो या असुर, किन्तु भगवान् के लिए कुछ भी करना सम्भव है जैसाकि इस लीला से स्पष्ट है। भगवान् को एक ही हाथ से पर्वत उठाने तथा उनके वाहन गरुड़ को सभी देवों और दानवों को ले जाने में भगवत् कृपा से कोई कठिनाई नहीं हुई। भगवान् योगेश्वर कहलाते हैं क्योंकि वे सर्वशक्तिमान हैं। यदि वे चाहें तो किसी भी वस्तु को रुई से भी हल्का तथा ब्रह्माण्ड से भी भारी बना सकते हैं। जो लोग भगवान् की लीलाओं में विश्वास नहीं करते वे यह नहीं बता सकते कि घटनाएँ किस तरह घटित होती हैं। ''दैव या संयोग'' जैसे शब्दों का प्रयोग करके वे अविश्वसनीय विचारों की शरण लेते हैं। कुछ भी आकस्मिक नहीं है। सब भगवान् द्वारा किया जाता है जैसाकि स्वयं भगवान् *भगवद्गीता* में(९.१०) पुष्टि करते हैं—*मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।* संसार में जितनी भी क्रियाए या प्रतिक्रियाए होती हैं, वे भगवान् की अध्यक्षता में होती हैं। लेकिन जब भगवान् अद्भुत कार्य करते हैं, तो असुरगण भगवान्

की शक्ति को नहीं समझते अतएव वे सोचते हैं कि वे आकस्मिक हैं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कन्ध के अन्तर्गत ''देवताओं तथा असुरों द्वारा सन्धि की घोषणा'' नामक छठे अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter सात

शिवजी द्वारा विषपान से ब्रह्माण्ड की रक्षा

सातवें अध्याय का सारांश इस प्रकार है। भगवान् ने कच्छप का अवतार लेकर समुद्र में गहरी डुबकी लगाई जिससे वे मन्दर पर्वत को अपनी पीठ पर धारण कर सकें। समुद्र मन्थन से सर्वप्रथम कालकूट विष प्राप्त हुआ। सभी इस विष से भयभीत हो उठे, किन्तु शिवजी ने इसे पीकर सबको संतुष्ट किया।

जब यह समझौता हो गया कि मन्थन से जो अमृत निकलेगा उसे देवता तथा दैत्य परस्पर समान रूप से बाँट लेंगे तो उन्होंने वासुकि को लाकर उसे मथानी की रस्सी के रूप में प्रयुक्त किया। भगवान् की दक्ष योजना के अनुसार असुरों ने सर्प का मुख-भाग पकड़ा और देवताओं ने पूँछ का भाग। तब उन्होंने बड़े ही यत्न से सर्प को दोनों दिशाओं में खींचना शुरू कर दिया। चूँकि मन्दर पर्वत के रूप में प्रयुक्त मथानी अत्यन्त भारी थी और जल के भीतर किसी आधार पर टिकी हुई नहीं थी अतएव वह जल में डूब गई और इस तरह देवताओं तथा असुरों का पराक्रम व्यर्थ हो गया। तब कच्छप रूप धारण करके भगवान् प्रकट हुए और उन्होंने मन्दर पर्वत को अपनी पीठ पर टिका लिया। फिर तो मन्थन बड़ी तेजी से चालू हो गया। मन्थन के परिणामस्वरूप प्रचुर मात्रा में विष उत्पन्न हुआ। जब प्रजापतियों ने देखा कि उन्हें बचाने वाला कोई नहीं है, तो उन्होंने शिवजी के पास जाकर उनकी सच्ची स्तुतियाँ कीं। शिवजी आशुतोष कहलाते हैं क्योंकि वे भक्त पर अत्यधिक प्रसन्न हो जाते हैं; अतएव उन्होंने मन्थन से उत्पन्न सारे विष को पी जाना तुरन्त स्वीकार कर लिया। जब शिवजी ने विष पीना स्वीकार कर लिया तो देवी दुर्गा अर्थात् शिवजी की पत्नी भवानी तनिक भी विचलित नहीं हुईं क्योंकि उन्हें शिवजी के शौर्य का पता था। निस्सन्देह, उन्होंने इस समझौते पर अपनी प्रसन्नता व्यक्त की। तब शिवजी ने सर्वत्र व्याप्त विनाशकारी विष को अपनी हथेली पर एकत्र किया और वे उसे पी गये। इस विष के पी जाने

से उनकी गर्दन नीली-नीली सी हो गई। विष का थोड़ा अंश उनकी हथेली से भूमि पर गिर पड़ा। इसी विष के कारण विषैले साँप, बिच्छू, विषैले पौधे तथा अन्य सारी विषैली वस्तुएँ संसार में पाई जाती हैं।

श्रीशुक उवाच
ते नागराजमामन्त्र्य फलभागेन वासुकिम् ।
परिवीय गिरौ तस्मिन्नेत्रमब्धिं मुदान्विता: ।
आरेभिरे सुरा यत्ता अमृतार्थे कुरूद्वह ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; ते—वे सब (देव तथा दैत्य); नाग-राजम्—नागों के राजा को; आमन्त्र्य—बुलाकर या प्रार्थना करके; फल-भागेन—अमृत का हिस्सा दिलाने का वचन देकर; वासुकिम्—वासुकि सर्प को; परिवीय—घेरकर; गिरौ—मन्दर पर्वत पर; तस्मिन्—उसको; नेत्रम्—मथने की रस्सी; अब्धिम्—क्षीरसागर को; मुदा अन्विता:—सभी अत्यन्त प्रसन्न थे; आरेभिरे—कर्म करने लगा; सुरा:—देवतागण; यत्ता:—अत्यन्त प्रयास से; अमृत-अर्थे—अमृत प्राप्त करने के लिए; कुरु-उद्वह—कुरुओं में श्रेष्ठ, हे राजा परीक्षित।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे कुरुश्रेष्ठ महाराज परीक्षित! देवों तथा असुरों ने सर्पराज वासुकि को बुलवाया और उसे वचन दिया कि वे उसे अमृत में भाग देंगे। उन्होंने वासुकि को मन्दर पर्वत के चारों ओर मथने की रस्सी की भाँति लपेट दिया और क्षीरसागर के मन्थन द्वारा अमृत उत्पन्न करने का बड़ी प्रसन्नतापूर्वक प्रयत्न किया।

हरि: पुरस्ताज्जगृहे पूर्वं देवास्ततोऽभवन् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

हरि:—भगवान् अजित ने; पुरस्तात्—सामने से; जगृहे—ले लिया; पूर्वम्—सर्वप्रथम; देवा:—देवतागण; तत:—तत्पश्चात्; अभवन्—वासुकि का अगला हिस्सा पकड़ लिया।

भगवान् अजित ने सर्प के अगले हिस्से को पकड़ लिया और तब सारे देवताओं ने उनके पीछे होकर उसे पकड़ लिया।

तन्नैच्छन्दैत्यपतयो महापुरुषचेष्टितम् ।
न गृह्णीमो वयं पुच्छमहेरङ्गममङ्गलम् ।
स्वाध्यायश्रुतसम्पन्ना: प्रख्याता जन्मकर्मभि: ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

तत्—वह व्यवस्था; न ऐच्छन्—न चाहते हुए; दैत्य-पतय:—दैत्यों के नेता; महा-पुरुष—भगवान् का; चेष्टितम्—प्रयास; न—नहीं; गृह्णीम:—ले लेंगे; वयम्—हम सभी (दैत्यगण); पुच्छम्—पूँछ; अहे:—सर्प की; अङ्गम्—शरीर का भाग; अमङ्गलम्—अशुभ, निकृष्ट; स्वाध्याय—वैदिक अध्ययन से; श्रुत—तथा वैदिक ज्ञान से; सम्पन्ना:—पूर्ण तथा सज्जित; प्रख्याता:—प्रमुख; जन्म-कर्मभि:—जन्म तथा कार्यकलापों से।

दैत्यों के नेताओं ने पूँछ पकड़ना मूर्खतापूर्ण समझा क्योंकि यह सर्प का अशुभ अंग है। इस

के स्थान पर वे अगला हिस्सा पकड़ना चाहते थे जिसे भगवान् तथा देवताओं ने पकड़ रखा था क्योंकि वह भाग शुभ तथा महिमा-युक्त था। इस प्रकार असुरों ने इस दलील के साथ कि वे सभी वैदिक ज्ञान में अत्यधिक बढ़े-चढ़े हैं और अपने जन्म तथा कार्यकलापों के लिए विख्यात हैं, आपत्ति उठाई कि वे सर्प के अगले हिस्से को पकड़ना चाहते हैं।

तात्पर्य : दैत्यों ने सोचा था कि सर्प का अगला भाग शुभ होता है और इस भाग को पकड़ना अधिक वीरतापूर्ण होगा। साथ ही दैत्य सदा ही देवताओं से विपरीत कार्य करते हैं। यही उनकी प्रकृति है। हमने कृष्णभावनामृत आन्दोलन में इसे वास्तव में देखा है। हम लोग गोरक्षा का प्रचार करते हैं और लोगों को अधिक दूध पीने तथा दूध की बनी सुस्वादु वस्तुएँ खाने के लिए प्रोत्साहित करते हैं लेकिन दैत्यगण ऐसे प्रस्तावों का विरोध करने मात्र के लिए यह दावा करते हैं कि वे विज्ञान में अग्रसर हैं, जैसाकि *स्वाध्याय श्रुत सम्पन्ना:* शब्दों से यहाँ वर्णन हुआ है। उनका कहना है कि उनकी वैज्ञानिक विधि से यह पता चला है कि दूध खतरनाक होता है और गौवों की हत्या करके प्राप्त किया हुआ गोमांस अधिक पौष्टिक होता है। यह मतभेद सदैव चलता रहेगा। निस्सन्देह, यह आदिकाल से चला आ रहा है। लाखों वर्ष पूर्व भी ऐसी ही होड़ थी। दैत्यों ने अपने तथा कथित वैदिक अध्ययन के फलस्वरूप, साँप के मुख भाग को पकड़ना श्रेयस्कर समझा। भगवान् ने साँप के खतरनाक भाग को पकड़ना और दैत्यों को पूँछ पकड़ने देना बुद्धिमानी समझा, क्योंकि वह खतरनाक नहीं थी लेकिन स्पर्धा की भावना के कारण दैत्यों ने साँप के मुख के निकट वाले भाग को पकड़ना बुद्धिमानी समझा। यदि देवता विषपान करते तो दैत्य यह संकल्प करते "हम भी विष में हिस्सा बँटा कर और इसे पीकर शान से क्यों न मरें?"

स्वाध्यायश्रुतसम्पन्ना: प्रख्याता जन्मकर्मभि: शब्दों से एक दूसरा प्रश्न उठ सकता है। यदि कोई सचमुच वैदिक ज्ञान को प्राप्त है और संस्तुत कार्यों को करने के लिए विख्यात है तथा उच्चकुल में जन्म लिए हुए है, तो फिर वह दैत्य क्यों कहलाये? इसका उत्तर यही है कि भले ही कोई कितनी उच्च शिक्षा प्राप्त क्यों न हो तथा उच्चकुल में क्यों न जन्मा हो, किन्तु यदि वह ईश्वरविहीन है, और ईश्वर के उपदेशों को नहीं सुनता तो वह दैत्य (असुर) है। इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं—यथा हिरण्यकशिपु, रावण तथा कंस जैसे सुशिक्षित व्यक्ति जो राज परिवार में जन्मे थे और युद्ध में अत्यन्त

शक्तिशाली तथा पराक्रमी थे, किन्तु भगवान् का उपहास करने के कारण राक्षस या दैत्य कहलाते थे। कोई कितना ही सुशिक्षित क्यों न हो, किन्तु यदि उसे कृष्णभावनामृत का बोध न हो, भगवान् के प्रति आज्ञाकारिता न हो तो वह असुर है। इसका वर्णन स्वयं भगवान् ने *भगवद्गीता* (७.१५) में किया है—

न मां दुष्कृतिनो मूढा: प्रपद्यन्ते नराधमा: ।

माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिता: ॥

"जो दुष्कृती निपट मूर्ख तथा मनुष्यों में अधम हैं और जिनका ज्ञान मोह द्वारा हर लिया गया है तथा जो नास्तिक प्रकृति के असुरों का साथ देते हैं, वे मेरी शरण में नहीं आते।" *आसुरं भावम्* ईश्वर के अस्तित्व को या उनके दिव्य उपदेशों को न स्वीकार करने का सूचक है। *भगवद्गीता* साक्षात् भगवान् द्वारा दिये गये दिव्य उपदेशों से युक्त है। किन्तु असुरगण इन उपदेशों को प्रत्यक्ष स्वीकार न करने की बजाये मनमाने ढंग से टीकाएँ करते हैं और लोगों को भ्रमित करते हैं। इससे स्वयं उन्हें भी कोई लाभ नहीं मिलता। अतएव मनुष्य को चाहिए कि आसुरी ईश्वरविहीन पुरुषों से सचेत रहे। भगवान् कृष्ण के वचनों के अनुसार यदि कोई ईश्वरविहीन असुर सुशिक्षित भी हो तो भी उसे *मूढ, नराधम* तथा *माययापहृतज्ञान* समझना चाहिए।

इति तूष्णीं स्थितान्दैत्यान्विलोक्य पुरुषोत्तमः ।
स्मयमानो विसृज्याग्रं पुच्छं जग्राह सामरः ॥ ४॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; तूष्णीम्—चुपचाप; स्थितान्—ठहरा; दैत्यान्—दैत्यों को; विलोक्य—देखकर; पुरुष-उत्तमः—भगवान् ने; स्मयमानः—मुस्काते हुए; विसृज्य—त्याग कर; अग्रम्—साँप के अगले भाग को; पुच्छम्—पिछला भाग; जग्राह—पकड़ लिया; स-अमरः—देवताओं के साथ-साथ।

इस प्रकार असुरगण देवताओं की इच्छा का विरोध करते हुए मौन रहे। भगवान् असुरों के मनोभावों को ताड़ गये अतएव वे मुस्काने लगे। उन्होंने विचार-विमर्श किये बिना तुरन्त ही साँप की पूँछ पकड़ कर उनका प्रस्ताव मान लिया और सारे देवता उनके साथ हो लिये।

कृतस्थानविभागास्त एवं कश्यपनन्दनाः ।
ममन्थुः परमं यत्ता अमृतार्थं पयोनिधिम् ॥ ५॥

शब्दार्थ

कृत—ठीक करने; स्थान-विभागाः—जहाँ-जहाँ उन्हें पकड़ना था उन स्थानों का विभाजन; ते—वे; एवम्—इस प्रकार; कश्यप-नन्दनाः—कश्यप के पुत्र (देवता तथा असुर दोनों ही); ममन्थुः—मथा; परमम्—अत्यधिक; यत्ताः—यत्न से; अमृत-अर्थम्—अमृत प्राप्ति के लिए; पयः-निधिम्—क्षीरसागर को।

साँप को किस स्थान पर पकड़ना है, यह तय करने के पश्चात् कश्यप के पुत्र देवता तथा असुर दोनों ने क्षीरसागर के मन्थन से अमृत पाने की लालसा से अपना-अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया।

मथ्यमानेऽर्णवे सोऽद्रिरनाधारो ह्यपोऽविशत् ।
ध्रियमाणोऽपि बलिभिर्गौरवात्पाण्डुनन्दन ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

मथ्यमाने—मन्थन के बीच में; अर्णवे—क्षीरसागर में; सः—वह; अद्रिः—पहाड़; अनाधारः—बिना किसी आधार के; हि—निस्सन्देह; अपः—जल में; अविशत्—डूब गया; ध्रियमाणः—पकड़ा हुआ; अपि—यद्यपि; बलिभिः—अत्यन्त बलशाली सुरों तथा असुरों द्वारा; गौरवात्—भारी होने के कारण; पाण्डु-नन्दन—हे पाण्डुपुत्र (महाराज परीक्षित)।

हे पाण्डुवंशी! जब क्षीरसागर में मन्दर पर्वत को इस तरह मथानी के रूप में प्रयुक्त किया जा रहा था, तो उसका कोई आधार न था अतएव असुरों तथा देवताओं के बलिष्ठ हाथों द्वारा पकड़ा रहने पर भी वह जल में डूब गया।

ते सुनिर्विण्णमनसः परिम्लानमुखश्रियः ।
आसन्स्वपौरुषे नष्टे दैवेनातिबलीयसा ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

ते—वे सब (देवता तथा असुर); सुनिर्विण्ण-मनसः—निराश मन से; परिम्लान—मुरझाई; मुख-श्रियः—मुखमण्डल की सुन्दरता; आसन्—हो गई; स्व-पौरुषे—अपने-अपने पौरुष के; नष्टे—नष्ट होने पर; दैवेन—दैवी विधान से; अति-बलीयसा—अत्यन्त बलवान्।

चूँकि पर्वत दैवी शक्ति से डूबा था अतएव देवता तथा असुरगण निराश थे और उनके चेहरे कुम्हला गये प्रतीत होते थे।

विलोक्य विघ्नेशविधिं तदेश्वरो
दुरन्तवीर्योऽवितथाभिसन्धिः ।
कृत्वा वपुः कच्छपमद्भुतं महत्
प्रविश्य तोयं गिरिमुज्जहार ॥ ॥

शब्दार्थ

विलोक्य—देखकर; विघ्न—व्यवधान (पर्वत का डूबना); ईश-विधिम्—दैवी व्यवस्था से; तदा—तब; ईश्वरः—भगवान्; दुरन्त-वीर्यः—अकल्पनीय शक्तिमान; अवितथ—अच्युत; अभिसन्धिः—जिसका संकल्प; कृत्वा—विस्तार करके; वपुः—

शरीर; कच्छपम्—कछुवा; अद्भुतम्—विचित्र; महत्—विशाल; प्रविश्य—घुसकर; तोयम्—जल में; गिरिम्—पर्वत (मन्दर) को; उज्जहार—उठा लिया।

भगवदिच्छा से जैसी स्थिति उत्पन्न हो गई थी उसे देखकर असीम शक्तिशाली एवं अच्युत संकल्प वाले भगवान् ने कछुए का अद्‌भुत रूप धारण किया और जल में प्रविष्ट होकर विशाल मन्दर पर्वत को उठा लिया।

तात्पर्य : यहाँ इसका प्रमाण है कि भगवान् हर वस्तु के परम नियन्ता हैं। जैसा हम पहले वर्णन कर चुके हैं, मनुष्यों की दो श्रेणियाँ होती हैं—असुर तथा देवता—किन्तु इनमें से कोई भी परम शक्तिशाली नहीं होता। हरएक व्यक्ति का यह अनुभव है कि हम पर परम शक्ति द्वारा व्यवधान डाले जाते हैं। असुरगण इन व्यवधानों को मात्र संयोग मानते हैं, किन्तु भक्तगण इन्हें परम नियन्ता के कार्य मानते हैं। अतएव जब उन्हें व्यवधानों का सामना करना पड़ता है, तो वे भगवान् से प्रार्थना करते हैं। *तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।* भक्तगण व्यवधानों को यह मानकर सह लेते हैं कि वे भगवान् द्वारा उत्पन्न हैं। वे उन्हें वरदान समझते हैं। किन्तु असुरगण परम नियन्ता को न समझ सकने के कारण ऐसे व्यवधानों को संयोग मानते हैं। यहाँ पर तो साक्षात् भगवान् उपस्थित थे। व्यवधान तो उनकी इच्छा के कारण उत्पन्न हुए थे और उनकी इच्छा से ही वे व्यवधान हट भी गये। भगवान् विशाल पर्वत को सहारा देने के लिए कच्छप रूप में प्रकट हुए। *क्षितिरिह विपुलतरे तव तिष्ठति पृष्ठे।* भगवान् ने उस विशाल पर्वत को अपनी पीठ पर रख लिया। *केशव धृतकूर्मशरीर जय जगदीश हरे।* संकटों की सृष्टि भगवान् द्वारा की जा सकती है और वे उन्हीं के द्वारा दूर भी किये जा सकते हैं। यह भक्तों को ज्ञात रहता है, किन्तु असुरगण इसे नहीं समझ सकते।

तमुत्थितं वीक्ष्य कुलाचलं पुनः
समुद्यता निर्मथितुं सुरासुराः ।
दधार पृष्ठेन स लक्षयोजन
प्रस्तारिणा द्वीप इवापरो महान् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस पर्वत को; उत्थितम्—उठा हुआ; वीक्ष्य—देखकर; कुलाचलम्—मन्दर नामक; पुनः—फिर; समुद्यताः—प्रोत्साहित हो गये; निर्मथितुम्—क्षीरसागर का मन्थन करने के लिए; सुर-असुराः—देवता तथा दानव; दधार—ले गये; पृष्ठेन—पीठ पर; सः—भगवान्; लक्ष-योजन—एक लाख योजन (आठ लाख मील); प्रस्तारिणा—फैला हुआ; द्वीपः—टापू, द्वीप; इव—सदृश; अपरः—अन्य; महान्—विशाल।

जब देवताओं तथा असुरों ने देखा कि मन्दर पर्वत उठाया गया है, तो वे प्रफुल्लित हो गए

और पुनः मन्थन करने के लिए प्रोत्साहित हुए। यह पर्वत विशाल कछुवे की पीठ पर टिका था, जो एक विशाल द्वीप की भाँति आठ लाख मील तक फैला हुआ था।

सुरासुरेन्द्रैर्भुजवीर्यवेपितं
परिभ्रमन्तं गिरिमङ्ग पृष्ठतः ।
बिभ्रत्तदावर्तनमादिकच्छपो
मेनेऽङ्गकण्डूयनमप्रमेयः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

सुर-असुर-इन्द्रैः—देवताओं तथा असुरों के नायकों द्वारा; भुज-वीर्य—अपनी भुजाओं के बल पर; वेपितम्—गति करते हुए; परिभ्रमन्तम्—घूमता हुआ; गिरिम्—पर्वत को; अङ्ग—हे महाराज परीक्षित; पृष्ठतः—अपनी पीठ पर; बिभ्रत्—स्थित; तत्—उस; आवर्तनम्—घूमते हुए; आदि-कच्छपः—आदि कछुवे की तरह; मेने—विचार किया; अङ्ग-कण्डूयनम्—शरीर को खुजलाने के समान सुहावना; अप्रमेयः—असीमित।

हे राजा! जब देवताओं तथा असुरों ने अपने बाहुबल से अद्भुत कछुवे की पीठ पर स्थित मन्दर पर्वत को घुमा दिया तो कछुवे ने पर्वत के इस घूमने को अपना शरीर खुजलाने का साधन मान लिया। इससे उसे अत्यन्त सुखप्रद अनुभूति हुई।

तात्पर्य : भगवान् सदैव असीम हैं। यद्यपि कच्छप रूप में भगवान् ने अपनी पीठ पर मन्दर पर्वत नामक विशालतम पर्वत धारण कर रखा था, किन्तु उन्हें कोई असुविधा अनुभव नहीं हो रही थी। उल्टे, उन्हें थोड़ी खुजलाहट लग रही थी जिससे पर्वत का घूमना उन्हें निश्चय ही अत्यन्त रुचिकर लग रहा था।

तथासुरानाविशदासुरेण
रूपेण तेषां बलवीर्यमीरयन् ।
उद्दीपयन्देवगणांश्च विष्णु-
र्दैवेन नागेन्द्रमबोधरूपः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

तथा—तत्पश्चात; असुरान्—असुरों को; आविशत्—प्रविष्ट हो गये; आसुरेण—रजोगुण के द्वारा; रूपेण—ऐसे रूप में; तेषाम्—उनका; बल-वीर्यम्—बल तथा शक्ति; ईरयन्—बढ़ती हुई; उद्दीपयन्—प्रोत्साहित करते; देव-गणान्—देवताओं को; च—भी; विष्णुः—भगवान् विष्णु; दैवेन—सत्व रूप के द्वारा; नाग-इन्द्रम्—सर्पों के राजा वासुकि को; अबोध-रूपः—तमोगुण के द्वारा।

तत्पश्चात् भगवान् विष्णु, उन सबको प्रोत्साहित करने एवं विभिन्न प्रकार से शक्ति देने के लिए, असुरों में रजोगुण के रूप में, देवताओं में सतोगुण के रूप में तथा वासुकि में तमोगुण के रूप में प्रविष्ट हो गये।

तात्पर्य : इस भौतिक जगत में हर कोई प्रकृति के विभिन्न गुणों के अधीन है। मन्दर पर्वत द्वारा मन्थन किये जाने में तीन अलग-अलग दल थे—देवता जो सतोगुणी थे, असुर जो रजोगुणी थे तथा नाग वासुकि जो तमोगुणी था। चूँकि सभी लोग थके जा रहे थे (वासुकि तो मरने ही वाला था) अतएव भगवान् विष्णु उन्हें समुद्र मन्थन चालू रखने के लिए प्रोत्साहित करने के हेतु उनमें उनके अपने अपने गुणों—सतो, रजो तथा तमों गुणों—के अनुसार प्रविष्ट हो गये।

उपर्यगेन्द्रं गिरिराडिवान्य
आक्रम्य हस्तेन सहस्रबाहुः ।
तस्थौ दिवि ब्रह्मभवेन्द्रमुख्यै-
रभिष्टुवद्भिः सुमनोऽभिवृष्टः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

उपरि—चोटी पर; अगेन्द्रम्—विशाल पर्वत; गिरि-राट्—पर्वतों का राजा; इव—सदृश; अन्यः—दूसरा; आक्रम्य—पकड़ कर; हस्तेन—एक हाथ से; सहस्र-बाहुः—एक हजार हाथों वाला; तस्थौ—स्थित; दिवि—आकाश में; ब्रह्म—ब्रह्माजी; भव—शिवजी; इन्द्र—स्वर्ग का राजा इन्द्र; मुख्यैः—प्रमुखों द्वारा; अभिष्टुवद्भिः—भगवान् की स्तुति की; सुमनः—फूल; अभिवृष्टः—बरसा कर।

तब मन्दर पर्वत की चोटी पर भगवान् ने अपने आपको हजारों भुजाओं सहित प्रकट किया जो अन्य विशाल पर्वत की तरह लग रहे थे और एक हाथ से मन्दर पर्वत को पकड़े रखा। तब ब्रह्मा, शिव, इन्द्र तथा अन्य देवताओं ने उच्च लोकों में भगवान् की स्तुति की और उन पर फूलों की वर्षा की।

तात्पर्य : जब मन्दर पर्वत दोनों ओर से खींचा जा रहा था, तो संतुलन बनाये रखने के लिए भगवान् इसकी चोटी पर एक दूसरे विशाल पर्वत के रूप में प्रकट हुए। तब ब्रह्मा, शिव तथा इन्द्र ने भी अपना-अपना विस्तार किया और भगवान् पर फूल बरसाये।

उपर्यधश्चात्मनि गोत्रनेत्रयोः
परेण ते प्राविशता समेधिताः ।
ममन्थुरब्धिं तरसा मदोत्कटा
महाद्रिणा क्षोभितनक्रचक्रम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

उपरि—ऊपर; अधः च—तथा नीचे; आत्मनि—देवों तथा असुरों में; गोत्र-नेत्रयोः—पर्वत तथा वासुकि को, जो रस्सी की तरह प्रयुक्त हो रहा था; परेण—भगवान् द्वारा; ते—वे; प्राविशता—उनके भीतर प्रवेश कर गये; समेधिताः—अत्यन्त विक्षुब्ध;

ममन्थुः—मथा; अब्धिम्—क्षीरसागर को; तरसा—अत्यन्त बलपूर्वक; मद-उत्कटाः—मदान्ध होकर; महा-अद्रिणा—मन्दर पर्वत से; क्षोभित—क्षुब्ध; नक्र-चक्रम्—जल के सारे मगर।

देवता तथा असुर अमृत के लिए मानो मतवाले होकर कार्य कर रहे थे क्योंकि भगवान् ने उन्हें प्रोत्साहित कर रखा था; वे पर्वत के ऊपर और नीचे सभी जगह थे और वे देवताओं, असुरों, वासुकि तथा पर्वत में भी प्रविष्ट हो गए थे। देवताओं तथा असुरों के बल से, क्षीरसागर इतनी शक्ति के साथ विलोड़ित हो रहा था कि जल के सारे मगरमच्छ अत्यधिक विचलित हो उठे। तो भी समुद्र का मन्थन इस तरह चलता रहा।

अहीन्द्रसाहस्रकठोरदृङ्मुख-
श्वासाग्निधूमाहतवर्चसोऽसुराः ।
पौलोमकालेयबलील्वलादयो
दवाग्निदग्धाः सरला इवाभवन् ॥ १४॥

शब्दार्थ

अहीन्द्र—सर्पों के राजा का; साहस्र—हजारों; कठोर—अत्यन्त कठोर; दृक्—दिशाएँ; मुख—मुख से; श्वास—साँस; अग्नि—बाहर निकलती हुई अग्नि; धूम—धुँआ; आहत—प्रभावित होकर; वर्चसः—किरणों से; असुराः—असुरगण; पौलोम—पौलोम; कालेय—कालेय; बलि—बलि; इल्वल—इल्वल; आदयः—आदि; दव-अग्नि—जंगल की अग्नि से; दग्धाः—जले हुए; सरलाः—सरल वृक्ष; इव—सदृश; अभवन्—हो गये।

वासुकि के हजारों नेत्र तथा मुख थे। उसके मुख से धुँआ तथा अग्नि की लपटें निकल रही थीं जिससे पौलोम, कालेय, बलि, इल्वल आदि असुरगण पीड़ित हो रहे थे। इस तरह सारे असुर जो जंगल की आग से जले हुए सरल वृक्ष की भाँति प्रतीत हो रहे थे धीरे-धीरे शक्तिहीन हो गए।

देवांश्च तच्छ्वासशिखाहतप्रभान्
धूम्राम्बरस्रग्वरकञ्चुकाननान् ।
समभ्यवर्षन्भगवद्वशा घना
ववुः समुद्रोर्म्युपगूढवायवः ॥ १५॥

शब्दार्थ

देवान्—सारे देवता; च—भी; तत्—वासुकि के; श्वास—साँस लेने से; शिखा—लपटों से; हत—प्रभावित होकर; प्रभान्—उनकी शारीरिक कान्ति; धूम्र—धुँआदार; अम्बर—वस्त्र; स्रक्-वर—श्रेष्ठ माला; कञ्चुक—आभूषण; आननान्—तथा चेहरे; समभ्यवर्षन्—अच्छी तरह वर्षा की गई; भगवत्-वशाः—भगवान् के अधीन; घनाः—बादल के; ववुः—उड़ने लगे; समुद्र—क्षीरसागर के; ऊर्मि—लहरों से; उपगूढ—जल के कणों से युक्त; वायवः—मन्द समीर।

चूँकि वासुकि की दहकती साँस से देवता भी प्रभावित हुए थे अतएव उनकी शारीरिक कान्ति घट गई और उनके वस्त्र, मालाए, आयुध तथा उनके मुखमण्डल धुएँ से काले पड़ गये। किन्तु भगवत्कृपा से समुद्र के ऊपर बादल प्रकट हो गए और वे मूसलाधार वर्षा करने लगे।

समुद्री लहरों से जल के कण लेकर मन्द समीर बहने लगे जिससे देवताओं को राहत मिल सके।

मथ्यमानात्तथा सिन्धोर्देवासुरवरूथपैः ।
यदा सुधा न जायेत निर्ममन्थाजितः स्वयम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

मथ्यमानात्—मथे जाने से; तथा—इस प्रकार से; सिन्धोः—क्षीरसागर से; देव—देवताओं का; असुर—तथा असुरों का; वरूथ-पैः—श्रेष्ठतम के द्वारा; यदा—जब; सुधा—अमृत; न जायेत—बाहर नहीं आया; निर्ममन्थ—मन्थन किया; अजितः—भगवान् ने; स्वयम्—स्वयं।

जब श्रेष्ठतम देवताओं तथा असुरों के द्वारा इतना उद्यम करने पर भी क्षीरसागर से अमृत नहीं निकला तो स्वयं भगवान् अजित ने समुद्र को मथना प्रारम्भ किया।

मेघश्यामः कनकपरिधिः कर्णविद्योतविद्युन्
मूर्ध्नि भ्राजद्विलुलितकचः स्रग्धरो रक्तनेत्रः ।
जैत्रैर्दोर्भिर्जगदभयदैर्दन्दशूकं गृहीत्वा
मथ्नन्मथ्ना प्रतिगिरिरिवाशोभताथो धृताद्रिः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

मेघ-श्यामः—बादल जैसे श्याम रंग वाले; कनक-परिधिः—पीले वस्त्र पहने; कर्ण—कानों में; विद्योत-विद्युत्—जिसके कुंडल बिजली की तरह चमक रहे थे; मूर्ध्नि—सिर पर; भ्राजत्—चमकते हुए; विलुलित—हिलते हुए; कचः—जिसके बाल; स्रक्-धरः—फूलों की माला पहने; रक्त-नेत्रः—लाल-लाल आँखों वाले; जैत्रैः—विजय प्राप्त; दोर्भिः—भुजाओं से; जगत्—विश्व को; अभय-दैः—अभयदान देने वाले के द्वारा; दन्दशूकम्—सर्प (वासुकि) को; गृहीत्वा—पकड़ कर; मथ्नन्—मथते हुए; मथ्ना—मथानी (मन्दर पर्वत) से; प्रतिगिरिः—दूसरा पर्वत; इव—सदृश; अशोभत—शोभा पा रहा था; अथो—तब; धृत-अद्रिः—पर्वत धारण किये।

भगवान् श्याम बादल की भाँति प्रकट हो रहे थे। वे पीले वस्त्र पहने थे, उनके कान के कुंडल बिजली की तरह चमक रहे थे और उनके बाल कन्धों पर बिखरे हुए थे। वे फूलों की माला पहने थे और उनकी आँखे गुलाबी थीं। विश्वभर में अभय देने वाली अपनी बलिष्ठ यशस्वी भुजाओं से उन्होंने वासुकि को पकड़ लिया और वे मन्दर पर्वत को मथानी बनाकर समुद्र का मन्थन करने लगे। जब वे इस प्रकार व्यस्त थे तो वे इन्द्रनील नामक सुन्दर पर्वत की भाँति प्रतीत हो रहे थे।

निर्मथ्यमानादुदधेरभूद्विषं
महोल्बणं हालहलाह्वमग्रतः ।
सम्भ्रान्तमीनोन्मकराहिकच्छपात्

तिमिद्विपग्राहतिमिङ्गिलाकुलात् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

निर्मथ्यमानात्—जब मथने का कार्य चल रहा था; उदधेः—समुद्र से; अभूत्—था; विषम्—विष; महा-उल्बणम्—अत्यन्त भयानक; हालहल-आह्वम्—हालहल नाम से; अग्रतः—सर्वप्रथम; सम्भ्रान्त—क्षुब्ध तथा इधर-उधर गतिशील; मीन—विभिन्न प्रकार की मछलियाँ; उन्मकर—हांगर; अहि—तरह-तरह के सर्प; कच्छपात्—तरह-तरह के कछुओं से; तिमि—व्हेल मछलियाँ; द्विप—समुद्री हाथी; ग्राह—घड़ियाल; तिमिङ्गिल—छोटी व्हेलों को निगल जाने वाली बड़ी व्हेल मछलियाँ; आकुलात्—अत्यधिक व्याकुल होकर।

मछलियाँ, हांगर, कछुवे तथा सर्प अत्यन्त विचलित एवं क्षुब्ध थे। सारा समुद्र उत्तेजित हो उठा और व्हेल, समुद्री हाथी, घड़ियाल तथा तिमिङ्गिल मछली जैसे बड़े-बड़े जलचर सतह पर आ गये। जब इस प्रकार से समुद्र-मन्थन हो रहा था, तो इससे सर्वप्रथम हालहल नामक घातक विष उत्पन्न हुआ।

तदुग्रवेगं दिशि दिश्युपर्यधो
विसर्पदुत्सर्पदसह्यमप्रति ।
भीताः प्रजा दुद्रुवुरङ्ग सेश्वरा
अरक्ष्यमाणाः शरणं सदाशिवम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

तत्—वह; उग्र-वेगम्—अत्यन्त भयानक तथा तेज विष; दिशि दिशि—सभी दिशाओं में; उपरि—ऊपर; अधः—नीचे; विसर्पत्—मुड़ता हुआ; उत्सर्पत्—ऊपर जाते हुए; असह्यम्—असह्य; अप्रति—वश में न होने वाला; भीताः—अत्यधिक डरे हुए; प्रजाः—सारे विश्वों के निवासी; दुद्रुवुः—इधर-उधर जा रहे थे; अङ्ग—हे महाराज परीक्षित; स-ईश्वराः—भगवान् सहित; अरक्ष्यमाणाः—असुरक्षित; शरणम्—शरण; सदाशिवम्—शिवजी के चरणकमलों में।

हे राजा! जब वह उग्र विष ऊपर नीचे तथा सभी दिशाओं में वेग के साथ फैलने लगा तो सारे देवता भगवान् समेत शिवजी (सदाशिव) के पास गये। अपने को असुरक्षित तथा अत्यन्त भयभीत पाकर वे सब उनकी शरण मांगने लगे।

तात्पर्य : कोई चाहे तो यह प्रश्न कर सकता है कि जब साक्षात् भगवान् वहाँ उपस्थित थे तो वे सारे देवताओं तथा प्रजा को साथ लेकर सदाशिव की शरण में क्यों गये? उन्होंने स्वयं हस्तक्षेप क्यों नहीं किया? इस प्रसंग में *श्रील मध्वाचार्य* सावधान करते हैं—

रुद्रस्य यशसोऽर्थाय स्वयं विष्णुर्विषं विभुः।

न सञ्जह्रे समर्थोऽपि वायुं चोचे प्रशान्तये॥

भगवान् विष्णु स्थिति को संभालने में सक्षम थे, किन्तु शिवजी को श्रेय प्रदान करने के लिए ही उन्होंने कोई कार्यवाही नहीं की। शिवजी ने बाद में सारा विष पी लिया और उसे अपने गले में रख

लिया।

विलोक्य तं देववरं त्रिलोक्या
भवाय देव्याभिमतं मुनीनाम् ।
आसीनमद्रावपवर्गहेतो-
स्तपो जुषाणं स्तुतिभिः प्रणेमुः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

विलोक्य—देखकर; तम्—उस; देव-वरम्—देवताओं में सर्वश्रेष्ठ को; त्रि-लोक्याः—तीनों लोकों के; भवाय—उन्नति के लिए; देव्या—अपनी पत्नी भवानी सहित; अभिमतम्—स्वीकृत; मुनीनाम्—मुनियों का; आसीनम्—एकसाथ बैठे; अद्रौ—कैलाश पर्वत की चोटी से; अपवर्ग-हेतोः—मुक्ति की कामना करते; तपः—तपस्या में; जुषाणम्—सेवित; स्तुतिभिः—स्तुतियों से; प्रणेमुः—सादर नमस्कार किया।

देवताओं ने शिवजी को अपनी पत्नी भवानी सहित कैलाश पर्वत की चोटी पर तीनों लोकों के मंगलमय अभ्युदय हेतु तपस्या करते हुए देखा। मुक्ति की कामना करने वाले मुनि-गण उनकी पूजा कर रहे थे। देवताओं ने उन्हें प्रणाम किया और आदरपूर्वक प्रार्थना की।

श्रीप्रजापतय ऊचुः
देवदेव महादेव भूतात्मन्भूतभावन ।
त्राहि नः शरणापन्नांस्त्रैलोक्यदहनाद्विषात् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

श्री-प्रजापतयः ऊचुः—प्रजापतियों ने कहा; देव-देव—हे देवताओं में श्रेष्ठ, महादेव; महा-देव—हे महान् देवता; भूत-आत्मन्—इस संसार में हरएक के प्राण तथा आत्मा स्वरूप; भूत-भावन—हे सबके सुख तथा समृद्धि के कारण; त्राहि—उद्धार करें; नः—हमारा; शरण-आपन्नान्—अपने शरणागतों को; त्रैलोक्य—तीनों लोकों का; दहनात्—दहन करने वाले; विषात्—इस विष से।

प्रजापतियों ने कहा : हे देवश्रेष्ठ महादेव, हे समस्त जीवों के परमात्मा तथा उनकी सुख-समृद्धि के कारण! हम आपके चरणकमलों की शरण में आये हैं। अब आप तीनों लोकों में फैलने वाले इस उग्र विष से हमारी रक्षा करें।

तात्पर्य : चूँकि शिवजी पर संहार करने का उत्तरदायित्व है, तो फिर सुरक्षा के लिए उनके पास क्यों जाया जाये जो भगवान् विष्णु का कार्य है? ब्रह्माजी सृजन करते हैं, शिवजी संहार करते हैं, किन्तु ब्रह्मा तथा शिव दोनों ही भगवान् विष्णु के अवतार हैं और *शक्त्यावेश* अवतार कहलाते हैं। उन्हें सर्वव्यापी विष्णु के ही समान विशेष शक्ति प्राप्त रहती है। अतएव जब भी रक्षा के लिए शिवजी से स्तुतियाँ की जाती हैं, तो वे वास्तव में भगवान् विष्णु के लिए होती हैं क्योंकि शिवजी तो विनाश के

निमित्त हैं। शिवजी ईश्वरों में से एक हैं, जो *शक्त्यावेश* अवतार कहलाते हैं। अतएव उन्हें विष्णु के समान गुणों वाला कहकर सम्बोधित किया जा सकता है।

त्वमेकः सर्वजगत ईश्वरो बन्धमोक्षयोः ।
तं त्वामर्चन्ति कुशलाः प्रपन्नार्तिहरं गुरुम् ॥ २२॥

शब्दार्थ

त्वम् एकः—निस्सन्देह तुम हो; सर्व-जगतः—तीनों लोकों के; ईश्वरः—नियन्ता; बन्ध-मोक्षयोः—बन्धन तथा मोक्ष दोनों के; तम्—उस नियन्ता को; त्वाम् अर्चन्ति—आपको पूजते हैं; कुशलाः—धनधान्य चाहने वाले व्यक्ति; प्रपन्न-आर्ति-हरम्—शरणागत भक्तों के समस्त कष्टों का हरण करने वाला; गुरुम्—जो समस्त पतितात्माओं के लिए सदुपदेशक का कार्य करे उसे।.

हे प्रभु! आप सारे विश्व के बन्धन तथा मोक्ष के कारण हैं क्योंकि आप इसके शासक हैं। जो लोग आध्यात्मिक चेतना में बढ़े-चढ़े हैं, वे आपकी शरण में जाते हैं, अतएव आप उनके कष्टों को दूर करने वाले हैं और उनकी मुक्ति के भी आप ही कारण हैं। अतएव हम आपकी पूजा करते हैं।

तात्पर्य : वास्तव में विष्णु ही सारे सौभाग्य के पालन-पोषणहारे हैं। यदि मनुष्य विष्णु की शरण ग्रहण करता है, तो देवताओं ने शिवजी की शरण क्यों ग्रहण की? उन्होंने ऐसा इसलिए किया क्योंकि वे भौतिक संसार की सृष्टि शिवजी के माध्यम से करते हैं और शिवजी विष्णु की ओर से कार्य करते हैं। जब भगवान् *भगवद्गीता* (१४.४) में यह कहते हैं कि वे सारे जीवों के पिता हैं (*अहं बीजप्रदः पिता*) तो यह शिवजी के माध्यम से विष्णु द्वारा सम्पन्न कार्यों का द्योतक है। भगवान् विष्णु सदैव भौतिक कार्यकलापों से विरक्त रहते हैं और जब उन्हें भौतिक कार्यकलाप सम्पन्न करने होते हैं, तो वे शिवजी के माध्यम से करते हैं। अतएव शिवजी की पूजा विष्णु के स्तर पर की जाती है। जब विष्णु बहिरंगा शक्ति से अछूते रहते हैं, तो वे भगवान् विष्णु होते हैं, किन्तु जब वे उसके सम्पर्क में रहते हैं, तो वे शिवजी के रूप में प्रकट होते हैं।

गुणमय्या स्वशक्त्यास्य सर्गस्थित्यप्ययान्विभो ।
धत्से यदा स्वदृग्भूमन्ब्रह्मविष्णुशिवाभिधाम् ॥ २३॥

शब्दार्थ

गुण-मय्या—तीनों गुणों में कार्य करते हुए; स्व-शक्त्या—अपनी बहिरंगा शक्ति द्वारा; अस्य—इस जगत का; सर्ग-स्थिति-अप्ययान्—सृष्टि, पालन तथा संहार; विभो—हे प्रभु; धत्से—आप सम्पन्न करते हैं; यदा—जब; स्व-दृक्—आप अपने को प्रकट करते हैं; भूमन्—हे महान्; ब्रह्म-विष्णु-शिव-अभिधाम्—ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव के रूप में।.

हे प्रभु! आप स्वयं-प्रकाशित तथा सर्वश्रेष्ठ हैं। आप अपनी निजी शक्ति से इस भौतिक जगत का सृजन करते हैं और जब आप सृष्टि, पालन तथा संहार का कार्य करते हैं, तो ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर के नाम धारण कर लेते हैं।

तात्पर्य : यह स्तुति वास्तव में पुरुष-रूप भगवान् विष्णु को अर्पित की गई है, जो अपने गुण अवतारों में ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर का नाम ग्रहण कर लेते हैं।

त्वं ब्रह्म परमं गुह्यं सदसद्भावभावनम् ।
नानाशक्तिभिराभातस्त्वमात्मा जगदीश्वरः ॥ २४॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; ब्रह्म—निराकार ब्रह्म; परमम्—परम; गुह्यम्—गुह्य, गोपनीय; सत्-असत्-भाव-भावनम्—सब की सृष्टि का कारण, इसका कारण तथा फल; नाना-शक्तिभिः—अनेक प्रकार की शक्तियों से; आभातः—व्यक्त; त्वम्—तुम हो; आत्मा—परमात्मा; जगत्-ईश्वरः—भगवान्।

आप समस्त कारणों के कारण, आत्म-प्रकाशित, अचिन्त्य, निराकार ब्रह्म हैं, जो मूलतः परब्रह्म हैं। आप इस दृश्य जगत में विविध शक्तियों को प्रकट करते हैं।

तात्पर्य : यह स्तुति निराकार ब्रह्म की है, जो परब्रह्म की तेजवान् किरणों से युक्त होता है। परब्रह्म श्रीभगवान् हैं (*परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्*)। जब शिवजी की पूजा परब्रह्म के रूप में की जाती है, तो वह भगवान् विष्णु के लिए होती है।

त्वं शब्दयोनिर्जगदादिरात्मा
प्राणेन्द्रियद्रव्यगुणः स्वभावः ।
कालः क्रतुः सत्यमृतं च धर्म-
स्त्वय्यक्षरं यत्त्रिवृदामनन्ति ॥ २५॥

शब्दार्थ

त्वम्—आप; शब्द-योनिः—वैदिक ज्ञान का स्रोत; जगत्-आदिः—सृष्टि का मूल कारण; आत्मा—आत्मा; प्राण—जीवनी शक्ति; इन्द्रिय—इन्द्रियाँ; द्रव्य—भौतिक तत्त्व; गुणः—तीन गुण; स्व-भावः—प्रकृति; कालः—नित्य समय; क्रतुः—यज्ञ; सत्यम्—सत्य; ऋतम्—सच्चाई; च—तथा; धर्मः—धर्म के दो प्रकार; त्वयि—आपमें; अक्षरम्—मूल अक्षर, ओङ्कार; यत्—जो; त्रि-वृत्—तीन अक्षरों वाला, अ, उ, म् से युक्त; आमनन्ति—कहते हैं।

हे स्वामी! आप वैदिक ज्ञान के मूल स्रोत हैं। आप भौतिक सृष्टि, प्राण, इन्द्रियों, पाँच तत्त्वों, तीन गुणों तथा महत् तत्त्व के मूल कारण हैं। आप नित्य काल, संकल्प तथा सत्य और ऋत कही जाने वाली दो धार्मिक प्रणालियाँ हैं। आप तीन अक्षरों—अ, उ तथा म् वाले ॐ शब्द

के आश्रय हैं।

अग्निर्मुखं तेऽखिलदेवतात्मा
क्षितिं विदुर्लोकभवाङ्घ्रिपङ्कजम् ।
कालं गतिं तेऽखिलदेवतात्मनो
दिशश्च कर्णौ रसनं जलेशम् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

अग्निः—अग्नि; मुखम्—मुँह; ते—आपका; अखिल-देवता-आत्मा—सारे देवताओं के उद्गम; क्षितिम्—महिमंडल; विदुः—वे जानते हैं; लोक-भव—हे समस्त लोकों के उद्गम; अङ्घ्रि-पङ्कजम्—आपके चरणकमल; कालम्—नित्य काल; गतिम्—प्रगति; ते—आपका; अखिल-देवता-आत्मनः—सभी देवताओं के सार समाहार; दिशः—सारी दिशाएँ; च—तथा; कर्णौ—आपके कान; रसनम्—स्वाद; जल-ईशम्—जल के अधिष्ठाता देवता।

हे समस्त लोकों के पिता! विद्वान लोग जानते हैं कि अग्नि आपका मुख है, पृथ्वी आपके चरणकमल हैं, आप निखिल देवरूप हैं, नित्य काल आपकी गति है, सारी दिशाएँ आपके कान हैं और जल का स्वामी वरुण आपकी जीभ है।

तात्पर्य : *श्रुतिमन्त्रों* में कहा गया है—*अग्निः सर्वदेवताः*—'अग्नि सारे देवताओं का पुंज है।' अग्नि भगवान् का मुख है। अग्नि के द्वारा ही भगवान् सारी यज्ञ-आहुतियाँ स्वीकार करते हैं।

नाभिर्नभस्ते श्वसनं नभस्वान्
सूर्यश्च चक्षूंषि जलं स्म रेतः ।
परावरात्माश्रयणं तवात्मा
सोमो मनो द्यौर्भगवन्शिरस्ते ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

नाभिः—नाभि; नभः—आकाश; ते—आपकी; श्वसनम्—साँस लेना; नभस्वान्—वायु; सूर्यः च—तथा सूर्य का गोला; चक्षूंषि—आपकी आँखें; जलम्—जल; स्म—निस्सन्देह; रेतः—वीर्य; पर-अवर-आत्म-आश्रयणम्—उच्च एवं निम्न सारे जीवों का आश्रय; तव—तुम्हारा; आत्मा—आत्मा; सोमः—चन्द्रमा; मनः—मन; द्यौः—उच्चतर लोक मण्डल; भगवन्—हे प्रभु; शिरः—सिर; ते—तुम्हारा।

हे प्रभु! आकाश आपकी नाभि है, वायु आपकी श्वसन क्रिया है, सूर्य आपकी आँखे हैं तथा जल आपका वीर्य है। आप समस्त प्रकार के उच्च तथा निम्न जीवों के आश्रय हैं। चन्द्रदेव आपका मन है। उच्चतर लोक मण्डल आपका सिर है।

कुक्षिः समुद्रा गिरयोऽस्थिसङ्घा
रोमाणि सर्वौषधिवीरुधस्ते ।

छन्दांसि साक्षात्तव सप्त धातव-
स्त्रयीमयात्मन्हृदयं सर्वधर्मः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

कुक्षिः—उदर, कोख; समुद्राः—समुद्र; गिरयः—पर्वत; अस्थि—हड्डियाँ; सङ्घाः—मेल, समूह; रोमाणि—शरीर के रोएँ; सर्व—सभी; औषधि—औषधियाँ; वीरुधः—पौधे तथा लताएँ; ते—आपका; छन्दांसि—वैदिक मंत्र; साक्षात्—प्रत्यक्ष; तव—आपका; सप्त—सात; धातवः—शरीर के स्तर (कोश); त्रयी-मय-आत्मन्—हे साक्षात् तीनों वेद; हृदयम्—हृदय; सर्व-धर्मः—सभी प्रकार के धर्म।

हे प्रभु! आप साक्षात् तीनों वेद हैं। सातों समुद्र आपके उदर हैं और पर्वत आपकी हड्डियाँ है। सारी औषधियाँ, लताएँ तथा वनस्पतियाँ आपके शरीर के रोएँ हैं। गायत्री जैसे वैदिक मंत्र आपके शरीर के सात कोश हैं और वैदिक धर्म पद्धति आपका हृदय है।

मुखानि पञ्चोपनिषदस्तवेश
यैस्त्रिंशदष्टोत्तरमन्त्रवर्गः ।
यत्तच्छिवाख्यं परमात्मतत्त्वं
देव स्वयंज्योतिरवस्थितिस्ते ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

मुखानि—मुखमण्डल; पञ्च—पाँच; उपनिषदः—वैदिक वाङ्मय; तव—तुम्हारा; ईश—हे स्वामी; यैः—जिससे; त्रिंशत्-अष्ट-उत्तर-मन्त्र-वर्गः—अड़तीस महत्त्वपूर्ण वैदिक मंत्रों की कोटि में; यत्—जो; तत्—जैसा है; शिव-आख्यम्—शिवनाम से विख्यात; परमात्म-तत्त्वम्—जो परमात्मा विषयक सत्य की पुष्टि करता है; देव—हे भगवान्; स्वयम्-ज्योतिः—आत्म प्रकाशित; अवस्थितिः—स्थिति; ते—आपकी।

हे प्रभो! पाँच महत्वपूर्ण वैदिक मंत्र आपके पाँच मुखों के द्योतक हैं जिनसे अड़तीस महत्वपूर्ण वैदिक मंत्र उत्पन्न हुए हैं। आप शिव नाम से विख्यात स्वयं प्रकाशित हैं। आप परमात्मा नाम से प्रत्यक्ष परम सत्य के रूप में स्थित हैं।

तात्पर्य : इस सम्बन्ध में जिन पाँच मंत्रों का उल्लेख हुआ है वे हैं—पुरुष, अघोर, सद्योजात, वामदेव तथा ईशान। ये पाँच मंत्र उन अड़तीस विशेष मंत्रों की कोटि में आते हैं, जो शिवजी द्वारा उच्चारित होते हैं; इसीलिए वे शिवजी या महादेव कहलाते हैं। उनके शिव अर्थात् कल्याणकारी कहलाने का एक अन्य कारण यह है कि वे परमात्मा कहलाने वाले ठीक भगवान् विष्णु की तरह आत्मप्रकाशित हैं। चूँकि शिवजी भगवान् विष्णु के प्रत्यक्ष अवतार हैं अतएव वे विष्णु के प्रत्यक्ष प्रतिनिधि हैं। इस तथ्य की पुष्टि एक वैदिक मंत्र—*पतिं विश्वस्यात्मेश्वरं शाश्वतं शिवम् अच्युतम्*—से होती है। परमात्मा अनेक नामों से जाने जाते हैं जिनमें से महेश्वर, शिव तथा अच्युत विशेषत: उल्लेखनीय हैं।

छाया त्वधर्मोर्मिषु यैर्विसर्गो
नेत्रत्रयं सत्त्वरजस्तमांसि ।
साङ्ख्यात्मनः शास्त्रकृतस्तवेक्षा
छन्दोमयो देव ऋषिः पुराणः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

छाया—छाया; तु—लेकिन; अधर्म-ऊर्मिषु—अधर्म की लहरों में, यथा काम, क्रोध, लोभ, मोह में; यैः—जिससे; विसर्गः—इतनी सारी सृष्टियाँ; नेत्र-त्रयम्—तीन आँखें; सत्त्व—सतोगुण; रजः—रजोगुण; तमांसि—तथा तमोगुण; साङ्ख्य-आत्मनः—सारे वैदिक साहित्य का उद्गम; शास्त्र—शास्त्र; कृतः—बनाया हुआ; तव—आपकी; ईक्षा—चितवन मात्र से; छन्दः-मयः—वैदिक छन्दों से युक्त; देव—हे प्रभु; ऋषिः—सारा वैदिक साहित्य; पुराणः—तथा पुराण।

हे भगवान्! आपकी छाया अधर्म में दिखती है, जिससे नाना प्रकार की अधार्मिक सृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं। प्रकृति के तीनों गुण—सत्त्व, रज तथा तमो—आपके तीन नेत्र हैं। छन्दों से युक्त सारे वैदिक ग्रंथ आपसे उद्‌भूत हैं क्योंकि उनके संग्रहकर्ताओं ने आपकी कृपादृष्टि प्राप्त करके ही उन शास्त्रों को लिखा।

न ते गिरित्राखिललोकपाल-
विरिञ्चवैकुण्ठसुरेन्द्रगम्यम् ।
ज्योतिः परं यत्र रजस्तमश्च
सत्त्वं न यद्ब्रह्म निरस्तभेदम् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; ते—आपका; गिरि-त्र—हे पर्वतों के राजा; अखिल-लोक-पाल—भौतिक कार्यकलापों के विभागों के सारे निदेशक; विरिञ्च—ब्रह्मा; वैकुण्ठ—भगवान् विष्णु; सुर-इन्द्र—स्वर्ग का राजा; गम्यम्—सरलता से समझा जाने वाला; ज्योतिः—तेज; परम्—दिव्य; यत्र—जहाँ; रजः—रजोगुण; तमः च—तथा तमोगुण; सत्त्वम्—सतोगुण; न—नहीं; यत् ब्रह्म—जो निराकार ब्रह्म है; निरस्त-भेदम्—देवताओं तथा मनुष्यों में किसी अन्तर के बिना।

हे गिरीश! चूँकि निराकार ब्रह्म तेज सतो, रजो तथा तमो गुणों से परे है अतएव इस भौतिक जगत के विभिन्न निदेशक (लोकपाल) न तो इसकी प्रशंसा कर सकते हैं न ही यह जान सकते हैं कि वह कहाँ है। वह ब्रह्मा, विष्णु या स्वर्ग के राजा महेन्द्र द्वारा भी ज्ञेय नहीं है।

तात्पर्य : *ब्रह्मज्योति* वास्तव में भगवान् का तेज है। जैसाकि *ब्रह्मसंहिता* (५.४०) में कहा गया है—

यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्डकोटि

कोटिष्वशेष वसुधादिविभूतिभिन्नम्।

तद्ब्रह्म निष्कलमनन्तमशेषभूतं

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

''मैं उन आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ जो महान्‌शक्ति से युक्त हैं। उनके दिव्य रूप का चमकीला तेज निराकार ब्रह्म है, जो परम, पूर्ण तथा असीम है और असंख्य लोकों की विविधताओं को उनके विभिन्न तेज सहित करोड़ों ब्रह्माण्डों के रूप में प्रदर्शित करता है।'' यद्यपि ब्रह्म का निराकार स्वरूप भगवान् की किरणों का विस्तार (अंश) होता है, किन्तु उन्हें उन निर्विशेषवादियों की देखभाल करने की कोई आवश्यकता नहीं रहती जो ब्रह्मज्योति में प्रवेश करते हैं। *भगवद्‌गीता* (९.४) में कृष्ण कहते हैं—*मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना*—मैं अपने निराकार स्वरूप में इस सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त रहता हूँ। इस प्रकार *अव्यक्तमूर्ति* अर्थात् निराकार स्वरूप निश्चय ही कृष्ण की शक्ति का विस्तार है। इसी ब्रह्मतेज में तल्लीन होने के इच्छुक मायावादी लोग शिवजी की पूजा करते हैं। श्लोक २९ में उल्लिखित मंत्र *मुखानि पञ्चोपनिषदस्तवेश* कहलाते हैं। मायावादी लोग शिवजी की पूजा करते समय इन सभी मंत्रों को गम्भीरतापूर्वक ग्रहण करते हैं। ये मंत्र इस प्रकार हैं—

१) तत् पुरुषाय विद्महे शान्त्यै २) महादेवाय धीमहि विद्यायै ३) तन्नो रुद्रः प्रतिष्ठायै ४) प्रचोदयात् धृत्यै ५) अघोरेभ्यस्तमा ६) अथ...अघोरेभ्यो मोहा... ७) अघोरेभ्यो रक्षा...) अघोरतरे भ्यो निद्रा... ९) सर्वेभ्यः सर्वव्याध्यै १०) सर्वसर्वेभ्यो मृत्यवे ११) नमस्तेऽस्तु क्षुधा... १२) रुद्ररूपेभ्यस्तृष्णा... १३) वामदेवाय रजा... १४) ज्येष्ठाय स्वाहा... १५) श्रेष्ठाय रत्यै १६) रुद्राय कल्याण्यै १७) कालाय कामा... १) कलविकरणाय सन्धिन्यै १९) बल –विक्रणाय क्रिया... २०) बलाय वृद्ध्यै २१) बलच्छाया... २२) प्रमथनाय धात्र्यै २३) सर्वभूत–दमनाय भ्रामण्यै २४) मनः शोषिण्यै २५) उन्मनाय ज्वरा... २६) सद्योजातं प्रपद्यामि सिद्ध्यै २७) सद्योजाताय वै नमः ऋद्ध्यै २) भवे दित्यै २९) अभवे लक्ष्म्यै ३०) नातिभवे मेधा... ३१) भजस्व मां कान्त्यै ३२) भव स्वधा... ३३) उद्‌भवाय प्रभा... ३४) ईशानः सर्व विद्यानां शशिन्यै ३५) ईश्वरः सर्वभूतानाम् अभयदा... ३६) ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोधिपतिर्ब्रह्मन् ब्रह्मेष्टदा... ३७) शिवो में अस्तु मरीच्यै ३) सदाशिवः ज्वालिन्यै।

निराकार ब्रह्म भौतिक सृष्टि के अन्य लोकपालों तक को अज्ञात हैं जिनमें ब्रह्मा, इन्द्र तथा विष्णुजी तक सम्मिलित हैं। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि विष्णु जी सर्वज्ञ नहीं हैं। भगवान् विष्णु सर्वज्ञ हैं, किन्तु उन्हें यह जानने की आवश्यकता नहीं रहती कि उनके सर्वव्यापी अंश में क्या हो रहा है। अतएव

भगवद्गीता में भगवान् कहते हैं कि यद्यपि प्रत्येक वस्तु उनका अंश है (*मयाततमिदं सर्वम्*), किन्तु उन्हें प्रत्येक वस्तु की निगरानी नहीं करनी होती (*न चाहं तेष्ववस्थित:*) क्योंकि ब्रह्मा, शिव तथा इन्द्र जैसे अनेक लोकपाल विद्यमान हैं।

कामाध्वरत्रिपुरकालगराद्यनेक-
भूतद्रुहः क्षपयतः स्तुतये न तत्ते ।
यस्त्वन्तकाल इदमात्मकृतं स्वनेत्र-
वह्निस्फुलिङ्गशिखया भसितं न वेद ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

काम-अध्वर—इन्द्रियतृप्ति के लिए यज्ञ (यथा दक्ष द्वारा सम्पन्न दक्ष-यज्ञ); त्रिपुर—त्रिपुरासुर; कालगर—कालगर; आदि—तथा अन्य; अनेक—कई; भूत-द्रुहः—जीवों को कष्ट देने वाले; क्षपयतः—उनके विनाश में लगे हुए; स्तुतये—आपकी स्तुति; न—नहीं; तत्—वह; ते—आपसे बोलते हुए; यः तु—क्योंकि; अन्त-काले—प्रलय के समय; इदम्—इस भौतिक जगत में; आत्म-कृतम्—अपने से किया गया; स्व-नेत्र—आपकी आँखों से; वह्नि-स्फुलिङ्ग-शिखया—आग की चिनगारियों से; भसितम्—भस्मसात्; न वेद—मैं नहीं जानता कि यह कैसे हो रहा है।

जब आपकी आँखों से उद्भूत लपटों तथा चिनगारियों से प्रलय होता है, तो सारी सृष्टि जलकर राख हो जाती है। तो भी आपको पता नहीं चलता कि यह कैसे होता है। अतएव आपके द्वारा दक्ष-यज्ञ, त्रिपुरासुर तथा कालकूट विष विनष्ट किये जाने के विषय में क्या कहा जा सकता है? ऐसे कार्यकलाप आपको अर्पित की जाने वाली स्तुतियों के विषय नहीं बन सकते।

तात्पर्य : चूँकि शिवजी जो भी बड़े काम करते हैं उन्हें वे महत्त्वहीन समझते हैं अतएव मन्थन से उत्पन्न उग्र विष को निरर्थक करने के विषय में क्या कहा जा सकता था? इस तरह देवताओं ने अप्रत्यक्ष रूप से शिवजी से प्रार्थना की कि वे उस कालकूट विष को प्रभावहीन बना दें जो सारे ब्रह्माण्डों में फैल रहा था।

ये त्वात्मरामगुरुभिर्हृदि चिन्तिताङ्घ्रि-
द्वन्द्वं चरन्तमुमया तपसाभितप्तम् ।
कत्थन्त उग्रपरुषं निरतं श्मशाने
ते नूनमूतिमविदंस्तव हातलज्जाः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

ये—जो व्यक्ति; तु—निस्सन्देह; आत्म-राम-गुरुभिः—जो आत्मतुष्ट हैं और संसार भर के गुरु माने जाते हैं; हृदि—हृदय में; चिन्तित-अङ्घ्रि-द्वन्द्वम्—आपके दोनों चरणकमलों का चिन्तन करते; चरन्तम्—विचरण करते; उमया—अपनी प्रेयसी उमा के साथ; तपसा अभितप्तम्—तपस्या द्वारा उच्चपद को प्राप्त; कत्थन्ते—आपके कार्यों की आलोचना करते हैं; उग्र-परुषम्—

अभद्र व्यक्ति; निरतम्—सदैव; श्मशाने—श्मशान में; ते—ऐसे व्यक्ति; नूनम्—निस्सन्देह; ऊतिम्—ऐसे कार्यकलाप; अविदन्—न जानते हुए; तव—आपके कार्यकलाप; हात-लज्जाः—निर्लज्ज।

सारे विश्व को उपदेश देने वाले महान् आत्मतुष्ट व्यक्ति अपने हृदयों में आपके चरणकमलों का निरन्तर चिन्तन करते हैं, किन्तु जब आपकी तपस्या को न जानने वाले व्यक्ति आपको उमा के साथ विचरते देखते हैं, तो वे आपको भ्रमवश कामी समझते हैं अथवा जब वे आपको श्मशान में घूमते हुए देखते हैं, तो भ्रमवश वे आपको अत्यन्त नृशंस तथा ईर्ष्यालु समझते हैं। निस्सन्देह, वे निर्लज्ज हैं। वे आपके कार्यकलापों को कभी नहीं समझ सकते।

तात्पर्य : शिवजी सर्वोच्च वैष्णव हैं (*वैष्णवानां यथा शम्भुः*)। इसलिये कहा गया है—*वैष्णवेर क्रियामुद्रा विज्ञे ना बुझय।* यहाँ तक कि बुद्धिमान् से बुद्धिमान् व्यक्ति भी यह नहीं समझ सकता कि शिवजी जैसा वैष्णव क्या करता है अथवा कैसे करता है। जो लोग काम तथा क्रोध के वशीभूत हैं, वे शिवजी की महिमा का अनुमान नहीं लगा सकते जिनका पद सदैव दिव्य है। कामेच्छाओं से सम्बद्ध सारे कार्यों में शिवजी आत्माराम के निमित्त मात्र हैं। अतएव सामान्य व्यक्तियों को शिवजी तथा उनके कार्यकलापों को समझने का यत्न नहीं करना चाहिए। जो शिवजी के कार्यकलापों की आलोचना करने का प्रयास करता है, वह निर्लज्ज है।

तत्तस्य ते सदसतोः परतः परस्य
नाञ्जः स्वरूपगमने प्रभवन्ति भूम्नः ।
ब्रह्मादयः किमुत संस्तवने वयं तु
तत्सर्गसर्गविषया अपि शक्तिमात्रम् ॥ ३४॥

शब्दार्थ

तत्—अतएव; तस्य—उसका; ते—आपका; सत्-असतोः—चर तथा अचर सारे जीवों का; परतः—दिव्य पद पर स्थित; परस्य—समझ पाना दुष्कर; न—न तो; अञ्जः—जैसा है; स्वरूप-गमने—आपकी वास्तविकता तक पहुँच पाना; प्रभवन्ति—सम्भव है; भूम्नः—हे महान्; ब्रह्म-आदयः—ब्रह्मा जैसे पुरुष; किम् उत—अन्यों के विषय में क्या कहा जाये; संस्तवने—प्रार्थना करने में; वयम् तु—जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है; तत्—आपका; सर्ग-सर्ग-विषयाः—सृष्टि की सृष्टियाँ; अपि—यद्यपि; शक्ति-मात्रम्—यथाशक्ति।

ब्रह्मा जी तथा अन्य देवतागण जैसे व्यक्ति तक आपकी स्थिति नहीं समझ सकते क्योंकि आप चर तथा अचर सृष्टि से भी परे हैं। चूँकि आपको सही रूप में कोई नहीं समझ सकता तो फिर भला कोई किस तरह आपकी स्तुति कर सकता है? यह असम्भव है। जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है, हम ब्रह्मा जी की सृष्टि के प्राणी हैं। अतएव ऐसी परिस्थितियों में हम आपकी ठीक से

स्तुति नहीं कर सकते, किन्तु हमने अपनी बुद्धि के अनुसार अपनी भावनाएँ व्यक्त की हैं।

एतत्परं प्रपश्यामो न परं ते महेश्वर ।
मृडनाय हि लोकस्य व्यक्तिस्तेऽव्यक्तकर्मणः ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

एतत्—ये सारी वस्तुएँ; परम्—दिव्य; प्रपश्यामः—हम देख सकते हैं; न—नहीं; परम्—वास्तविक दिव्य स्थिति; ते—आपकी; महा-ईश्वर—हे महान् शासक; मृडनाय—सुख के लिए; हि—निस्सन्देह; लोकस्य—सारे जगत के; व्यक्तिः—प्रकट; ते—आपके; अव्यक्त-कर्मणः—जिसके कार्यकलाप सबको अज्ञात हैं।

हे महान् शासक! हमारे लिए आपके असली स्वरूप को समझ पाना असम्भव है। जहाँ तक हम देख पाते हैं, आपकी उपस्थिति हरएक के लिए सुख-समृद्धि लाती है। इसके परे, कोई भी आपके कार्यकलापों को नहीं समझ सकता। हम इतना ही देख सकते हैं, इससे अधिक कुछ भी नहीं।

तात्पर्य : जब देवतागण शिवजी की इस तरह स्तुति कर रहे थे तो उनका आन्तरिक प्रयोजन उन्हें प्रसन्न करना था जिससे वे हलाहल विष से उत्पन्न उपद्रवकारी स्थिति को ठीक कर लें। जैसाकि *भगवद्गीता* (७.२०) में कहा गया है—*कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञाना: प्रपद्यन्तेऽन्यदेवता:*—जब कोई देवताओं की पूजा करता है, तो यह निश्चित है कि वह इन देवताओं की कृपा से अपनी आन्तरिक इच्छाओं की पूर्ति चाहता है। सामान्यतया लोग किसी न किसी उद्देश्य के लिए देवताओं की पूजा में लिप्त रहते हैं।

श्रीशुक उवाच
तद्वीक्ष्य व्यसनं तासां कृपया भृशपीडितः ।
सर्वभूतसुहृद्देव इदमाह सतीं प्रियाम् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; तत्—यह स्थिति; वीक्ष्य—देखकर; व्यसनम्—खतरनाक, भयानक; तासाम्—सारे देवताओं की; कृपया—कृपा के कारण; भृश-पीडितः—अत्यधिक दुखी; सर्व-भूत-सुहृत्—सारे जीवों के मित्र; देवः—महादेव ने; इदम्—यह; आह—कहा; सतीम्—सती देवी से; प्रियाम्—अपनी अत्यन्त प्रिय पत्नी को।

श्रील शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : शिवजी सारे जीवों के प्रति सदैव उपकारी हैं। जब उन्होंने देखा कि सारे जीव विष के सर्वत्र फैलने के कारण अत्यधिक उद्विग्न हैं, तो वे अत्यन्त दयार्द्र हो उठे। अतः उन्होंने अपनी नित्य संगिनी सती से इस प्रकार कहा।

श्रीशिव उवाच

अहो बत भवान्येतत्प्रजानां पश्य वैशसम् ।
क्षीरोदमथनोद्भूतात्कालकूटादुपस्थितम् ॥ ३७॥

शब्दार्थ

श्री-शिवः उवाच—श्री शिव ने कहा; अहो बत—कितनी दयनीय है; भवानि—हे प्राणप्यारी भवानी; एतत्—यह स्थिति; प्रजानाम्—सारे जीवों की; पश्य—देखो तो; वैशसम्—अत्यन्त भयानक; क्षीर-उद—क्षीरसागर के; मथन-उद्भूतात्—मन्थन से उत्पन्न; कालकूटात्—विष उत्पन्न होने से; उपस्थितम्—वर्तमान स्थिति।

शिवजी ने कहा : हे प्रिय भवानी! जरा देखो तो किस तरह ये सारे जीव क्षीरसागर के मन्थन से उत्पन्न विष के कारण संकट में पड़ गये हैं!

आसां प्राणपरीप्सूनां विधेयमभयं हि मे ।
एतावान्हि प्रभोरर्थो यद्दीनपरिपालनम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

आसाम्—ये सारे जीव; प्राण-परीप्सूनाम्—अपने जीवन की रक्षा के लिए अत्यन्त उत्सुक; विधेयम्—कुछ न कुछ करना चाहिए; अभयम्—सुरक्षा; हि—निस्सन्देह; मे—मेरे द्वारा; एतावान्—इतना; हि—निस्सन्देह; प्रभोः—प्रभु का; अर्थः—कर्तव्य; यत्—जो; दीन-परिपालनम्—पीड़ित मानवता को सुरक्षा प्रदान करना।

जीवन-संघर्ष में लगे समस्त जीवों को सुरक्षा प्रदान करना मेरा कर्तव्य है। निश्चय ही स्वामी का कर्तव्य है कि वह पीड़ित अधीनस्थों की रक्षा करे।

प्राणैः स्वैः प्राणिनः पान्ति साधवः क्षणभङ्गुरैः ।
बद्धवैरेषु भूतेषु मोहितेष्वात्ममायया ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

प्राणैः—प्राणों से; स्वैः—अपने; प्राणिनः—अन्य जीवों की; पान्ति—रक्षा करते हैं; साधवः—भक्तगण; क्षण-भङ्गुरैः—नाशवान्; बद्ध-वैरेषु—व्यर्थ ही शत्रुता में लगे; भूतेषु—जीवों में; मोहितेषु—मोहग्रस्त; आत्म-मायया—भगवान् की बहिरंगा शक्ति द्वारा।

भगवान् की माया से मोहग्रस्त सामान्य लोग सदैव एक दूसरे के प्रति शत्रुता में लगे रहते हैं। किन्तु भक्तगण अपने नश्वर शरीरों को भी संकट में डालकर उनकी रक्षा करने का प्रयास करते हैं।

तात्पर्य : यह वैष्णव का लक्षण है। *पर-दुःख-दुःखी*—बद्धात्माओं को दुखी देखकर वैष्णव सदा दुखी रहता है अन्यथा उन्हें सुखी बनने की शिक्षा देते रहने का उसका कोई अर्थ नहीं होता। भौतिकतावादी जीवन में लोग शत्रुता के कार्यों में अवश्य ही लगे रहते हैं। अतएव ऐसे जीवन की तुलना *संसार-दावानल* से—जंगल की अग्नि से—की गई है, जो स्वतः लग जाती है। शिवजी तथा परम्परा पद्धति में उनके अनुयायी लोगों को भौतिक जीवन की इस भयावह स्थिति से बचाने का प्रयास

करते हैं। शिवजी के सिद्धान्तों का पालन करने वाले भक्तों तथा रुद्र-सम्प्रदाय वालों का यही कर्तव्य है। वैष्णव सम्प्रदाय चार हैं जिनमें से रुद्र-सम्प्रदाय भी एक है क्योंकि शिवजी (रुद्र) सर्वश्रेष्ठ वैष्णव हैं (*वैष्णवानां यथा शम्भुः*)। निस्सन्देह, हम देखेंगे कि शिवजी ने मानवता के लाभ हेतु सारा विष पी लिया।

पुंसः कृपयतो भद्रे सर्वात्मा प्रीयते हरिः ।
प्रीते हरौ भगवति प्रीयेऽहं सचराचरः ।
तस्मादिदं गरं भुञ्जे प्रजानां स्वस्तिरस्तु मे ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

पुंसः—मनुष्य के साथ; कृपयतः—परोपकार में लगा; भद्रे—हे भद्र भवानी; सर्व-आत्मा—परमात्मा; प्रीयते—प्रसन्न होते हैं; हरिः—भगवान्; प्रीते—अपनी प्रसन्नता के कारण; हरौ—हरि; भगवति—भगवान् में; प्रीये—प्रसन्न होता हूँ; अहम्—मैं; स-चर-अचरः—समस्त चर तथा अचर प्राणियों से; तस्मात्—इसलिए; इदम्—यह; गरम्—विष; भुञ्जे—पीने दो; प्रजानाम्—जीवों का; स्वस्तिः—कल्याण; अस्तु—हो; मे—मेरे द्वारा।

हे मेरी भद्र पत्नी भवानी! जब कोई अन्यों के लिए उपकार के कार्य करता है, तो भगवान् हरि अत्यधिक प्रसन्न होते हैं और जब भगवान् प्रसन्न होते हैं, तो मैं भी अन्य सारे प्राणियों के साथ अत्यधिक प्रसन्न होता हूँ। अतएव मुझे यह विष पीने दो क्योंकि मेरे कारण सारे जीव इस प्रकार सुखी हो सकेंगे।

श्रीशुक उवाच
एवमामन्त्र्य भगवान्भवानीं विश्वभावनः ।
तद्विषं जग्धुमारेभे प्रभावज्ञान्वमोदत ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; आमन्त्र्य—सम्बोधित करके; भगवान्—शिवजी; भवानीम्—भवानी को; विश्व-भावनः—सारे विश्व के शुभचिन्तक; तत् विषम्—उस विष को; जग्धुम्—पीना; आरेभे—प्रारम्भ किया; प्रभाव-ज्ञा—शिवजी की सामर्थ्य को भलीभाँति जानने वाली माता भवानी ने; अन्वमोदत—अनुमति दी।

श्रील शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : इस प्रकार भवानी को सूचित करके शिवजी वह विष पीने लगे और भवानी ने उन्हें ऐसा करने की अनुमति दे दी क्योंकि वे शिवजी की क्षमताओं को भलीभाँति जानती थीं।

ततः करतलीकृत्य व्यापि हालाहलं विषम् ।
अभक्षयन्महादेवः कृपया भूतभावनः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; करतली-कृत्य—हाथ में लेकर; व्यापि—विस्तृत; हालाहलम्—हालाहल नामक; विषम्—विष को; अभक्षयत्—पी लिया; महा-देवः—शिवजी ने; कृपया—कृपा करके; भूत-भावनः—सारे जीवों के कल्याण हेतु।

तत्पश्चात् मानवता के लिए शुभ तथा उपकारी कार्य में समर्पित शिवजी ने कृपा करके सारा विष अपनी हथेली में रखा और वे उसे पी गये।

तात्पर्य : यद्यपि विष की मात्रा इतनी अधिक थी कि वह सारे विश्व में फैला था, किन्तु शिवजी में इतनी महान् शक्ति थी कि उन्होंने उसे थोड़ी मात्रा में घटाकर अपनी हथेली में ले लिया। मनुष्य को चाहिए कि शिवजी का अनुकरण न करे। वे जो चाहें सो कर सकते हैं, किन्तु जो लोग गाँजा तथा अन्य नशीली वस्तुओं का धूम्रपान करके शिवजी का अनुकरण करना चाहते हैं, वे ऐसे कार्यों से अवश्य ही मारे जायेंगे।

तस्यापि दर्शयामास स्ववीर्यं जलकल्मषः ।
यच्चकार गले नीलं तच्च साधोर्विभूषणम् ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

तस्य—शिवजी की; अपि—भी; दर्शयाम् आस—प्रदर्शित किया; स्व-वीर्यम्—अपनी शक्ति; जल-कल्मषः—जल से उत्पन्न वह विष; यत्—जो; चकार—बनाया; गले—गर्दन में; नीलम्—नीली रेखा; तत्—वह; च—भी; साधोः—साधुपुरुष का; विभूषणम्—आभूषण, गहना।

अपयश के कारण क्षीरसागर से उत्पन्न विष ने मानो अपनी शक्ति का परिचय शिवजी के गले में नीली रेखा बनाकर दिया हो। किन्तु अब वही रेखा भगवान् का आभूषण मानी जाती है।

तप्यन्ते लोकतापेन साधवः प्रायशो जनाः ।
परमाराधनं तद्धि पुरुषस्याखिलात्मनः ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

तप्यन्ते—स्वेच्छा से कष्ट उठाते हैं; लोक-तापेन—सामान्य लोगों के कष्ट के कारण; साधवः—साधुपुरुष; प्रायशः—प्रायः, सदैव; जनाः—ऐसे पुरुष; परम-आराधनम्—पूजा की सर्वोच्च विधि; तत्—वह कार्य; हि—निस्सन्देह; पुरुषस्य—परम पुरुष का; अखिल-आत्मनः—जो सबका परमात्मा है।

कहा जाता है कि सामान्य लोगों के कष्टों के कारण महापुरुष सदैव स्वेच्छा से कष्ट भोगना स्वीकार करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में स्थित भगवान् के पूजने की यह सर्वोच्च विधि मानी जाती है।

तात्पर्य : जो लोग अन्यों के कल्याण के लिए कार्य करने में व्यस्त रहते हैं, वे किस प्रकार भगवान् द्वारा तुरन्त मान्य होते हैं, इसकी व्याख्या यहाँ पर दी गई है। *भगवद्गीता* (१.६-६९) में

भगवान् कहते हैं—*य इदं परमं गुह्यं मदभक्तेष्वभिधास्यति... न च तस्मान् मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः*—"जो व्यक्ति मेरे भक्तों को *भगवद्गीता* के सन्देश का उपदेश देता है, वह मुझे अत्यधिक प्रिय है। पूजा द्वारा मुझे तुष्ट करने में उससे बढ़कर कोई नहीं हो सकता।" इस भौतिक जगत में अनेक प्रकार के कल्याणकार्य हैं, किन्तु परम कल्याणकार्य है कृष्णभावनामृत का प्रसार करना। अन्य कल्याणकार्य प्रभावशाली नहीं हो सकते क्योंकि प्रकृति के नियम तथा कर्मफल रोके नहीं जा सकते। भाग्य या कर्म के नियमों के कारण ही मनुष्य सुख या दुख पाता है। उदाहरणार्थ, यदि किसी को न्यायालय का आदेश मिलता है, तो उसे इसे स्वीकार करना चाहिए, चाहे इससे लाभ हो या हानि। इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति कर्म तथा उसके फल के अधीन है। कोई इसे बदल नहीं सकता। इसलिए शास्त्र का वचन है—

तस्यैव हेतोः प्रयतेत कोविदो
न लभ्यते यद् भ्रमतामुपर्यधः

(*भागवत* १.५.१)

मनुष्य को उसके लिए प्रयास करना चाहिए जो कर्मफल के कारण ब्रह्माण्ड में ऊपर नीचे चक्कर लगाने से कभी भी प्राप्त नहीं हो पाता। वह क्या है? मनुष्य को कृष्णभावनाभावित होने का प्रयास करना चाहिए। यदि वह कृष्णभावनामृत को सारे विश्व में प्रसारित करने का प्रयत्न करता है, तो उसे श्रेष्ठतम कल्याणकार्य करने वाला समझना चाहिए। भगवान् स्वतः उससे अत्यधिक प्रसन्न होते हैं। यदि भगवान् उससे प्रसन्न हो जाते हैं, तो फिर उसके लिए प्राप्त करने को बचता ही क्या है? यदि भगवान् ने किसी को मान्यता दे दी है, तो वह भगवान् से भले ही कुछ न माँगे, किन्तु प्रत्येक हृदय में वास करने वाले भगवान् उस की हर आवश्यकता पूरी करते हैं। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* में भी हुई है (*तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्*)। पुनः, जैसाकि यहाँ पर कहा गया है—*तप्यन्ते लोकतापेन साधवः प्रायशो जनाः।* सर्वश्रेष्ठ कल्याणकार्य यही होगा कि लोगों को कृष्णभावनामृत के स्तर तक उठाया जाये क्योंकि बद्धजीव कृष्णभावनामृत के अभाव के कारण ही कष्ट भोग रहे हैं। स्वयं भगवान् भी मानवता के कष्ट को मिटाने के लिए अवतरित होते हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

"हे भरतवंशी! जब-जब और जहाँ-जहाँ धर्म की हानि होती है और अधर्म का प्राधान्य होता है उस समय मैं अवतरित होता हूँ। पुण्यात्माओं का उद्धार करने तथा दुष्टों का विनाश करने के अतिरिक्त धर्म की पुनर्स्थापना करने के लिए मैं युग-युग में अवतरित होता हूँ।" *भगवद्गीता* (४.७-)। अतएव सारे शास्त्रों का यही अभिमत है कि कृष्णभावनामृत आन्दोलन का प्रसार ही विश्व का सर्वश्रेष्ठ कल्याणकार्य है। इसके फलस्वरूप सामान्य लोगों को जो परम लाभ मिलता है उसके कारण भगवान् भक्त द्वारा की गई सेवा को तुरन्त मान्यता प्रदान करते हैं।

निशम्य कर्म तच्छम्भोर्देवदेवस्य मीढुषः ।
प्रजा दाक्षायणी ब्रह्मा वैकुण्ठश्च शशंसिरे ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

निशम्य—सुनकर; कर्म—कार्य; तत्—वह; शम्भोः—शिवजी का; देव-देवस्य—देवताओं के भी आराध्य; मीढुषः—सामान्य लोगों को बड़े-बड़े वरदान देने वाले; प्रजाः—लोग; दाक्षायणी—दक्षपुत्री भवानी; ब्रह्मा—ब्रह्माजी ने; वैकुण्ठः च—तथा विष्णु ने भी; शशंसिरे—अत्यधिक प्रशंसा की।

इस कार्य को सुनकर भवानी (दक्षकन्या), ब्रह्मा, विष्णु समेत सामान्य लोगों ने देवताओं द्वारा पूजित और लोगों को वरदान देने वाले शिवजी के इस कार्य की अत्यधिक प्रशंसा की।

प्रस्कन्नं पिबतः पाणेर्यत्किञ्चिज्जगृहुः स्म तत् ।
वृश्चिकाहिविषौषध्यो दन्दशूकाश्च येऽपरे ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

प्रस्कन्नम्—इधर-उधर फैला हुआ; पिबतः—शिवजी द्वारा पीते समय; पाणेः—हथेली से; यत्—जो; किञ्चित्—थोड़ा सा; जगृहुः—पी लेने का अवसर पाया; स्म—निस्सन्देह; तत्—वह; वृश्चिक—बिच्छू; अहि—सर्प; विष-औषध्यः—विषैली दवाएँ; दन्दशूकाः च—तथा वे जानवर जिनका दंश विषैला होता है; ये—जो; अपरे—अन्य जीव।

जब शिवजी विषपान कर रहे थे उस समय उनके हाथ से जो थोड़ा सा विष गिरकर छितर गया उसे बिच्छू, सर्प, विषैली औषधियाँ तथा अन्य पशु जिनका दंश विषैला होता है पी गए।

तात्पर्य : मच्छर, सियार, कुत्ते तथा अन्य काटने वाले पशु या विभिन्न प्रकार के दन्दशूक जिनका दंश विषैला होता है, समुद्र मन्थन से प्राप्त विष को पी गए क्योंकि वह शिवजी की हथेली से नीचे गिर

गया था।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के आठवें स्कंध के अन्तर्गत ''शिवजी द्वारा विषपान और ब्रह्माण्ड की रक्षा'' नामक सातवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter आठ

क्षीरसागर का मन्थन

इस अध्याय में बताया गया है कि किस तरह समुद्र मन्थन के दौरान लक्ष्मीजी प्रकट हुईं और उन्होंने विष्णुजी को किस तरह अपना पति स्वीकार कर लिया। आगे चलकर इस अध्याय में बताया गया है कि जब अमृत-पात्र लेकर धन्वन्तरि प्रकट हुए तो असुरों ने तुरन्त ही वह पात्र उनसे छीन लिया, किन्तु भगवान् विष्णु मोहिनी के रूप में प्रकट हो गए। मोहिनी संसार की सर्वाधिक सुन्दर स्त्री थी और असुरों को मोहने तथा देवताओं हेतु अमृत बचाने के लिए प्रकट हुई थी।

जब शिवजी सारा विष पी गये तो देवता तथा असुर दोनों में उत्साह बढ़ा और उन्होंने मन्थन का कार्य फिर शुरू कर दिया। इस मन्थन से, पहले एक सुरभि गाय उत्पन्न हुई। महान् साधु पुरुषों ने इस गाय को स्वीकार किया जिससे उन्हें इसके दूध से घी मिल सके और जिससे वे महान् यज्ञों में इस घी की आहुतियाँ दे सकें। तत्पश्चात् उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा उत्पन्न हुआ। इस घोड़े को बलि महाराज ने ले लिया। तब ऐरावत तथा अन्य हाथी प्रकट हुए जो किसी भी दिशा में कहीं भी जा सकते थे। तत्पश्चात् हथिनियाँ भी प्रकट हुईं। कौस्तुभ नामक मणि भी उत्पन्न हुआ जिसे विष्णु ने लेकर अपने वक्षस्थल पर धारण कर लिया। फिर पारिजात पुष्प तथा ब्रह्माण्ड की सुन्दरतम स्त्रियाँ, अप्सराएँ, उत्पन्न हुईं। तब लक्ष्मीजी निकलीं जिनकी पूजा देवताओं, महान् ऋषियों, गन्धर्वों तथा अन्यों ने आदर सहित की। लक्ष्मीजी को ऐसा कोई व्यक्ति नहीं मिला जिसे वे पति रूप में स्वीकार करतीं। अन्ततोगत्वा उन्होंने भगवान् विष्णु को अपना स्वामी चुना। भगवान् विष्णु ने उन्हें सदा-सदा के लिए अपने वक्षस्थल पर रहने का स्थान दे दिया। लक्ष्मी तथा नारायण के इस मिलन से वहाँ पर उपस्थित देवता तथा अन्य सामान्य लोग अत्यधिक प्रसन्न हुए। किन्तु असुरगण लक्ष्मीजी द्वारा उपेक्षित होने के कारण अत्यधिक हताश थे। फिर वारुणी अर्थात् सुरापान की देवी उत्पन्न हुई और भगवान् विष्णु के आदेश से असुरों ने

उसे स्वीकार कर लिया। तब असुर तथा देवता नवीकृत उत्साह से पुनः मन्थन करने लगे। इस बार भगवान् विष्णु के अंशावतार धन्वन्तरि प्रकट हुए। वे अत्यन्त सुन्दर थे और अमृत से युक्त एक पात्र लिये हुए थे। असुरों ने उनके हाथ से तुरन्त ही वह पात्र छीन लिया और भागने लगे। देवतागण अत्यन्त खिन्न होने के कारण विष्णु की शरण में गये। धन्वन्तरि से अमृत-पात्र छीनने के बाद असुरगण परस्पर लड़ने लगे। भगवान् विष्णु ने देवताओं को सान्त्वना प्रदान की जिससे वे लड़े नहीं अपितु मौन रहे। जब असुरगण परस्पर लड़ रहे थे तो साक्षात् भगवान् मोहिनी अवतार के रूप में प्रकट हुए जो ब्रह्माण्ड में सर्वाधिक सुन्दरी थी।

श्रीशुक उवाच
पीते गरे वृषाङ्केण प्रीतास्तेऽमरदानवाः ।
ममन्थुस्तरसा सिन्धुं हविर्धानी ततोऽभवत् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; **पीते**—पी लिये जाने पर; **गरे**—विष; **वृष-अङ्केण**—बैल पर बैठने वाले शिवजी द्वारा; **प्रीताः**—प्रसन्न होकर; **ते**—वे सब; **अमर**—देवतागण; **दानवाः**—तथा असुरगण; **ममन्थुः**—पुनः मथने लगे; **तरसा**—बड़े वेग से; **सिन्धुम्**—क्षीरसागर को; **हविर्धानी**—सुरभि गाय जो घी देने वाली है; **ततः**—उस मन्थन से; **अभवत्**—उत्पन्न हुई।.

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : शिवजी द्वारा विषपान कर लिये जाने पर देवता तथा दानव दोनों ही अत्यधिक प्रसन्न हुए और नवीन उत्साह के साथ समुद्र का मन्थन करने लगे। इसके फलस्वरूप सुरभि नामक गाय उत्पन्न हुई।

तात्पर्य : *सुरभि* गाय को *हविर्धानी* कहा गया है क्योंकि वह मक्खन प्रदान करती है। मक्खन को पिघलाने से घी बनता है, जो बड़े-बड़े अनुष्ठानिक यज्ञों को सम्पन्न करने के लिए अनिवार्य होता है। जैसाकि *भगवद्गीता* (१.५) में कहा गया है— *यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्*—मानव समाज में शान्ति तथा समृद्धि बनाये रखने के लिए यज्ञ, दान तथा तपस्या अनिवार्य कर्म हैं। यज्ञ अनिवार्य है; यज्ञ करने के लिए घी नितान्त आवश्यक है और घी के लिए दूध आवश्यक है। दूध तभी उत्पन्न होता है जब पर्याप्त गौवें हों। अतएव *भगवद्गीता* (१.४४) में गोरक्षा की संस्तुति की गई है (*कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्*)।

तामग्निहोत्रीमृषयो जगृहुर्ब्रह्मवादिनः ।

यज्ञस्य देवयानस्य मेध्याय हविषे नृप ॥ २॥

शब्दार्थ

ताम्—उस गाय को; अग्नि-होत्रीम्—अग्नि में आहुति के लिए मट्ठा, दूध तथा घी प्राप्त करने के लिए आवश्यक; ऋषयः—यज्ञ करने वाले ऋषियों ने; जगृहुः—भार सँभाला; ब्रह्म-वादिनः—वैदिक अनुष्ठानों को जानने वाले; यज्ञस्य—यज्ञ का; देव-यानस्य—स्वर्ग तथा ब्रह्मलोक जाने की इच्छा को पूरी करने वाला; मेध्याय—आहुति डालने के योग्य; हविषे—घी के लिए; नृप—हे राजा।

हे राजा परीक्षित! वैदिक अनुष्ठानों से सुपरिचित ऋषियों ने उस सुरभि गाय को ले लिया जो अग्नि में आहुति डालने के लिए नितान्त आवश्यक मट्ठा, दूध तथा घी उत्पन्न करने वाली थी। उन्होंने शुद्ध घी के लिए ही ऐसा किया क्योंकि उन्हें उच्चलोकों में ब्रह्मलोक तक जाने के लिए यज्ञ सम्पन्न करने के लिए घी की आवश्यकता थी।

तात्पर्य : *सुरभि* गाएँ सामान्यतया वैकुण्ठ लोकों में पाई जाती हैं। जैसाकि *ब्रह्मसंहिता* में वर्णन आया है, भगवान् कृष्ण अपने लोक गोलोक वृन्दावन में सुरभि गाएँ पालने में व्यस्त रहते हैं (*सुरभीरभिपालयन्तम्*)। ये गाएँ भगवान् की पालतू गाएँ हैं। सुरभि गायों से चाहे कोई कितना ही दूध ले सकता है और जितनी बार चाहे उन्हें दुह सकता है। दूसरे शब्दों में, सुरभि गाय असीम मात्रा में दूध दे सकती है। यज्ञ सम्पन्न करने के लिए दूध आवश्यक है। मुनिगण जानते हैं कि मानव समाज के जीवन को पूर्ण बनाने के लिए दूध का प्रयोग किस तरह किया जाये। चूँकि शास्त्रों में सर्वत्र गोरक्षा की संस्तुति की गई है अतएव *ब्रह्मवादियों* ने *सुरभि* गाय का भार सँभाला क्योंकि असुरों की विशेष रुचि उसमें नहीं थी।

तत उच्चैःश्रवा नाम हयोऽभूच्चन्द्रपाण्डुरः ।
तस्मिन्बलिः स्पृहां चक्रे नेन्द्र ईश्वरशिक्षया ॥ ३॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; उच्चैःश्रवाः नाम—उच्चैश्रवा नाम का; हयः—घोड़ा; अभूत्—उत्पन्न हुआ; चन्द्र-पाण्डुरः—चन्द्रमा की भाँति श्वेत; तस्मिन्—उसको; बलिः—बलि महाराज ने; स्पृहाम् चक्रे—पाने की इच्छा प्रकट की; न—नहीं; इन्द्रः—देवताओं का राजा; ईश्वर-शिक्षया—भगवान् की पहले की सलाह के कारण।

तत्पश्चात् चन्द्रमा के समान श्वेत रंग का उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा उत्पन्न हुआ। बलि महाराज ने इसे लेना चाहा। स्वर्ग के राजा इन्द्र ने इसका विरोध नहीं किया क्योंकि भगवान् ने पहले से ही उन्हें ऐसी सलाह दे रखी थी।

तत ऐरावतो नाम वारणेन्द्रो विनिर्गतः ।
दन्तैश्चतुर्भिः श्वेताद्रेर्हरन्भगवतो महिम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; ऐरावतः नाम—ऐरावत नामक; वारण-इन्द्रः—हाथियों का राजा; विनिर्गतः—निकला; दन्तैः—अपने दाँतों सहित; चतुर्भिः—चार; श्वेत—सफेद; अद्रेः—पर्वत के; हरन्—मात करते हुए; भगवतः—शिवजी का; महिम्—यश, महिमा।

मन्थन के फलस्वरूप अगली बार हाथियों का राजा ऐरावत उत्पन्न हुआ। यह हाथी श्वेत रंग का था और अपने चारों दाँतों के कारण यह शिवजी के यशस्वी धाम कैलाश पर्वत की महिमा को भी मात दे रहा था।

ऐरावणादयस्त्वष्टौ दिग्गजा अभवंस्ततः ।
अभ्रमुप्रभृतयोऽष्टौ च करिण्यस्त्वभवन्नृप ॥ ५॥

शब्दार्थ

ऐरावण-आदयः—ऐरावण इत्यादि; तु—लेकिन; अष्टौ—आठ; दिक्-गजाः—ऐसे हाथी जो किसी भी दिशा में जा सकते थे; अभवन्—उत्पन्न हुए; ततः—तत्पश्चात्; अभ्रमु-प्रभृतयः—अभ्रमु नामक हथिनी तथा अन्य; अष्टौ—आठ; च—भी; करिण्यः—हथिनियाँ; तु—निस्सन्देह; अभवन्—उत्पन्न हुईं; नृप—हे राजा।

हे राजा! इसके बाद आठ बड़े-बड़े हाथी उत्पन्न हुए जो किसी भी दिशा में जा सकते थे। उनमें ऐरावण प्रमुख था। अभ्रमु आदि आठ हथिनियाँ भी उत्पन्न हुईं।

तात्पर्य : आठों हाथियों के नाम थे—ऐरावण, पुण्डरीक, वामन, कुमुद, अञ्जन, पुष्पदन्त, सार्वभौम तथा सुप्रतीक।

कौस्तुभाख्यमभूद्रत्नं पद्मरागो महोदधेः
तस्मिन्मणौ स्पृहां चक्रे वक्षोऽलङ्करणे हरिः ।
ततोऽभवत्पारिजातः सुरलोकविभूषणम्
पूरयत्यर्थिनो योऽर्थैः शश्वद्भुवि यथा भवान् ॥ ६॥

शब्दार्थ

कौस्तुभ-आख्यम्—कौस्तुभ के रूप में विख्यात; अभूत्—उत्पन्न हुआ; रत्नम्—बहुमूल्य मणि; पद्मरागः—पद्मराग नामक रत्न; महा-उदधेः—महान् क्षीरसागर से; तस्मिन्—उस; मणौ—मणि में; स्पृहाम् चक्रे—पाने की अभिलाषा की; वक्षः-अलङ्करणे—अपने वक्षस्थल को अलंकृत करने के लिए; हरिः—भगवान् ने; ततः—तत्पश्चात्; अभवत्—उत्पन्न हुआ; पारिजातः—पारिजात नामक स्वर्गिक पुष्प; सुर-लोक-विभूषणम्—स्वर्गलोक को विभूषित करने वाला; पूरयति—पूरा करता है; अर्थिनः—धन की इच्छा रखने वाले; यः—जो; अर्थैः—अर्थ (इच्छित) के द्वारा; शश्वत्—सदैव; भुवि—इस लोक पर; यथा—जिस तरह; भवान्—आप (महाराज परीक्षित)।

तत्पश्चात् महान् समुद्र से विख्यात रत्न कौस्तुभ मणि तथा पद्मराग मणि उत्पन्न हुए। भगवान् विष्णु ने अपने वक्षस्थल को अलंकृत करने के लिए इसे पाने की इच्छा व्यक्त की। तब पारिजात

पुष्प उत्पन्न हुआ जो स्वर्ग लोकों को विभूषित करता है। हे राजा! जिस प्रकार तुम इस लोक के प्रत्येक व्यक्ति की इच्छाएँ पूरी करते हो उसी तरह पारिजात हरएक की इच्छाओं को पूरा करता है।

ततश्चाप्सरसो जाता निष्ककण्ठ्यः सुवाससः ।
रमण्यः स्वर्गिणां वल्गुगतिलीलावलोकनैः ॥ ७॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; च—भी; अप्सरसः—अप्सरालोक के वासी; जाताः—उत्पन्न हुए; निष्क-कण्ठ्यः—सुनहरे हारों से अलंकृत; सु-वाससः—सुन्दर वस्त्र पहने; रमण्यः—अत्यन्त सुन्दर तथा आकर्षक; स्वर्गिणाम्—स्वर्गलोक के निवासियों का; वल्गु-गति-लीला-अवलोकनैः—मन्द गति से चलती हुई सबके हृदयों को आकृष्ट करतीं।.

अप्सराएँ (जो स्वर्ग में वेश्याओं की तरह रहती हैं) प्रकट हुईं। वे सोने के आभूषणों तथा गले की मालाओं से पूरी तरह सजी हुई थीं और महीन तथा आकर्षक वस्त्र धारण किये थीं। अप्सराएँ अत्यन्त मन्दगति से आकर्षक शैली में चलती हैं जिससे स्वर्गलोक के निवासी मोहित हो जाते हैं।

ततश्चाविरभूत्साक्षाच्छ्री रमा भगवत्परा ।
रञ्जयन्ती दिशः कान्त्या विद्युत्सौदामनी यथा ॥ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; च—तथा; आविरभूत्—प्रकट हुई; साक्षात्—प्रत्यक्ष; श्री—धन की देवी; रमा—रमा नामक; भगवत्-परा—भगवान् के प्रति पूर्णतया अनुरक्त; रञ्जयन्ती—प्रकाशित करती; दिशः—सभी दिशाओं को; कान्त्या—कान्ति से; विद्युत्—बिजली; सौदामनी—सौदामनी; यथा—जिस तरह।.

तब धन की देवी रमा प्रकट हुईं जो भगवान् द्वारा भोग्या हैं और उन्हीं को समर्पित रहती हैं। वे बिजली की भाँति प्रकट हुईं और उनकी कांति संगमरमर के पर्वत को प्रकाशित करने वाली बिजली को मात कर रही थीं।

तात्पर्य : *श्री* का अर्थ है ऐश्वर्य। कृष्ण समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी हैं।

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोक महेश्वरम्।

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

यह विश्व-शान्ति का गुर *भगवद्गीता* (५.२९) में दिया हुआ है। जब लोग जान जाएँगे कि भगवान् कृष्ण ही परम भोक्ता हैं, परम स्वामी तथा समस्त जीवों के परम सुहृद हैं, तो सारे विश्व में

शान्ति तथा समृद्धि निश्चित रूप से छा जाएगी। दुर्भाग्यवश, बद्धजीव भगवान् की बहिरंगा शक्ति द्वारा भ्रम में पड़े रहने के कारण एक दूसरे से लड़ना-झगड़ना चाहते हैं जिससे शान्ति भंग होती है। शान्ति के लिए पहली शर्त है कि श्री या धन की देवी द्वारा प्रदत्त सारी सम्पत्ति भगवान् को अर्पित की जाये। प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह संसारी सम्पत्ति के अपने झूठे स्वामित्व को त्याग दे और प्रत्येक वस्तु कृष्ण को अर्पित करे। कृष्णभावनामृत आन्दोलन की यही शिक्षा है।

तस्यां चक्रुः स्पृहां सर्वे ससुरासुरमानवाः ।
रूपौदार्यवयोवर्णमहिमाक्षिप्तचेतसः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तस्याम्—उसके लिए; **चक्रुः**—की; **स्पृहाम्**—इच्छा; **सर्वे**—हर कोई; **स-सुर-असुर-मानवाः**—देवता, असुर तथा मनुष्य समेत; **रूप-औदार्य**—अपूर्व सौन्दर्य तथा शारीरिक स्वरूप के द्वारा; **वयः**—तारुण्य; **वर्ण**—रंग; **महिमा**—यश; **आक्षिप्त**—क्षुब्ध; **चेतसः**—मन वाले।

उनके अपने अपूर्व सौन्दर्य, शारीरिक स्वरूप (गठन), तारुण्य, रंग तथा यश के कारण हर व्यक्ति, यहाँ तक कि देवता, असुर तथा मनुष्य उनको पाने की कामना करने लगे। वे इसीलिए आकृष्ट थे क्योंकि रमादेवी समस्त ऐश्वर्यों की उद्गम हैं।

तात्पर्य : इस संसार में ऐसा कौन होगा जो धन, सौन्दर्य तथा इन ऐश्वर्यों से मिलने वाले सामाजिक सम्मान का भूखा न हो? लोग सामान्यतया भौतिक भोग, भौतिक ऐश्वर्य तथा उच्चकुलीन परिवार के सदस्यों की संगति चाहते हैं (*भोगैश्वर्य प्रसक्तानाम्*)। भौतिक भोग का अर्थ है धन, सौन्दर्य तथा इनसे मिलने वाला यश जो धन की देवी की कृपा से ही प्राप्त किये जा सकते हैं। किन्तु धन की देवी कभी अकेली नहीं रहती। जैसाकि पिछले श्लोक में *भगवत्-परा* शब्द से सूचित होता है, वे भगवान् की सम्पत्ति हैं और उन्हीं के द्वारा भोग्या हैं। यदि कोई धन की देवी, माता लक्ष्मी की कृपा का इच्छुक है, तो उसे चाहिए कि वह उन्हें नारायण के साथ रखे क्योंकि वे स्वभाव से *भगवत्-परा* हैं। जो भक्त सदैव नारायण की सेवा में लगे रहते हैं (*नारायणपरायण*) उन्हें निश्चय ही धन की देवी की कृपा प्राप्त हो सकती है, किन्तु जो भौतिकतावादी उन्हें निजी भोग के लिए प्राप्त करना चाहते हैं, वे निराश होते हैं। उनकी यह नीति ठीक नहीं है। उदाहरणार्थ, सुप्रसिद्ध असुर रावण रामचन्द्र को लक्ष्मी अर्थात् सीताजी से विहीन करके विजयी बनना चाहता था, किन्तु परिणाम उल्टा निकला। भगवान् रामचन्द्र ने निस्सन्देह, सीता को बलपूर्वक ले लिया और रावण अपने समूचे भौतिक साम्राज्य सहित विनष्ट हो

गया। धन की देवी सबके लिए, जिसमें मनुष्य भी सम्मिलित हैं, अमीष्ट हैं, किन्तु मनुष्य को यह समझना चाहिए कि धन की देवी केवल भगवान् की ही सम्पत्ति है। कोई भी व्यक्ति धन की देवी का तब तक कृपापात्र नहीं बन पाता जब तक वह उनकी तथा परम भोक्ता भगवान् दोनों की स्तुति नहीं करता।

तस्या आसनमानिन्ये महेन्द्रो महदद्भुतम् ।
मूर्तिमत्यः सरिच्छ्रेष्ठा हेमकुम्भैर्जलं शुचि ॥ १० ॥

शब्दार्थ

तस्याः—उसके लिए; आसनम्—आसन; आनिन्ये—ले आया; महा-इन्द्रः—स्वर्ग का राजा इन्द्र; महत्—यशस्वी; अद्भुतम्—विचित्र; मूर्ति-मत्यः—रूपों को स्वीकार करते हुए; सरित्-श्रेष्ठाः—विविध पवित्र नदियों में श्रेष्ठ; हेम—सुनहरे; कुम्भैः—जलपात्रों द्वारा; जलम्—जल; शुचि—शुद्ध।

स्वर्ग का राजा इन्द्र लक्ष्मीजी के बैठने के लिए उपयुक्त आसन ले आया। पवित्र जल वाली सारी नदियाँ—यथा गंगा तथा यमुना-साकार हो उठीं और उनमें से हर एक माता लक्ष्मी के लिए सुनहरे जलपात्र में शुद्ध जल ले आईं।

आभिषेचनिका भूमिराहरत्सकलौषधीः ।
गावः पञ्च पवित्राणि वसन्तो मधुमाधवौ ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

आभिषेचनिकाः—अर्चाविग्रह की स्थापना के लिए आवश्यक साज-सामग्री; भूमिः—भूमि ने; आहरत्—एकत्र की; सकल—सभी तरह की; औषधीः—औषधियाँ तथा जड़ीबूटियाँ; गावः—गाएँ; पञ्च—गाय से प्राप्त होने वाले पाँच प्रकार के पदार्थ यथा दूध, मट्ठा, घी, गोबर तथा गोमूत्र; पवित्राणि—अकलुषित; वसन्तः—साक्षात् वसन्त ऋतु; मधु-माधवौ—वसन्त ऋतु अथवा चैत्र और वैशाख मास में उत्पन्न होने वाले फल तथा फूल।

भूमि ने साकार होकर अर्चाविग्रह की स्थापना के लिए जड़ीबूटियाँ एकत्र कीं। गायों ने पाँच प्रकार के उत्पाद दिए—दूध, मट्ठा, घी, गोमूत्र तथा गोबर और साक्षात् वसन्त ऋतु ने चैत्र-वैशाख (अप्रैल तथा मई) मास में उत्पन्न होने वाली हर वस्तु को एकत्र किया।

तात्पर्य : वैदिक निर्देशों के अनुसार सम्पन्न होने वाले समस्त अनुष्ठानों में *पञ्चगव्य* अर्थात् गाय से प्राप्त पाँच पदार्थों—दूध, मट्ठा, घी, गोबर तथा गोमूत्र—की आवश्यकता होती है। गोमूत्र तथा गोबर कल्मषहीन होते हैं और चूँकि ये दोनों भी महत्त्वपूर्ण हैं अतएव मानव सभ्यता के लिए इस पशु की उपयोगिता का अनुमान लगाया जा सकता है। इसीलिए भगवान् कृष्ण गोरक्ष्य अर्थात् गाय-संरक्षण के पक्षधर हैं। जो सभ्यलोग वर्णाश्रम पद्धति का अनुसरण करते हैं, विशेष रूप से कृषि तथा व्यापार में

लगा रहने वाला वैश्य वर्ग, उन्हें चाहिए कि गायों को संरक्षण प्रदान करें। दुर्भाग्यवश कलियुग में लोग *मन्दाः* तथा *सुमन्दमतयः* होते हैं अतएव वे हजारों गायों का वध करते हैं। अतएव वे आध्यात्मिक चेतना में हतभाग्य होते हैं और प्रकृति उन्हें नाना प्रकार से विशेषतया कैंसर जैसे असाध्य रोगों से तथा विभिन्न राष्ट्रों में बारम्बार होने वाले युद्धों से विचलित करती रहती है। जब तक मानव समाज कसाईघरों में गायों का लगातार वध होने देगा तब तक शान्ति तथा समृद्धि का प्रश्न ही नहीं उठ सकता।

ऋषयः कल्पयां चक्रुराभिषेकं यथाविधि ।
जगुर्भद्राणि गन्धर्वा नट्यश्च ननृतुर्जगुः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

ऋषयः—ऋषिगण ने; कल्पयाम् चक्रुः—सम्पन्न किया; आभिषेकम्—अभिषेक समारोह, जिसे अर्चाविग्रह की स्थापना के समय किया जाता है; यथा-विधि—जैसाकि प्रामाणिक शास्त्रों में निर्देश हुआ है; जगुः—वैदिक मंत्रों का उच्चारण किया; भद्राणि—सारा सौभाग्य; गन्धर्वाः—तथा गन्धर्व लोक के निवासी; नट्यः—व्यावसायिक नर्तकियाँ; च—भी; ननृतुः—उस अवसर पर बहुत सुन्दर नृत्य किया; जगुः—वेदों द्वारा बताये प्रामाणिक गीतों को गाया।

ऋषियों ने प्रामाणिक शास्त्रों में निर्दिष्ट विधि से सौभाग्य की देवी (लक्ष्मी) का अभिषेक उत्सव सम्पन्न किया; गन्धर्वों ने सर्वमंगलकारी वैदिक मंत्रों का उच्चारण किया और व्यावसायिक नर्तकियों ने सुन्दर नृत्य किया तथा वेदों द्वारा बताये गये प्रामाणिक गीतों को गाया।

मेघा मृदङ्गपणवमुरजानकगोमुखान् ।
व्यनादयन्शङ्खवेणुवीणास्तुमुलनिःस्वनान् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

मेघाः—साक्षात् बादलों ने; मृदङ्ग—ढोल; पणव—नगाड़े; मुरज—एक अन्य प्रकार का ढोल; आनक—एक अन्य प्रकार का ढोल; गोमुखान्—एक प्रकार की तुरही; व्यनादयन्—बजाया, झंकृत किया; शङ्ख—शंख; वेणु—बाँसुरी; वीणाः—वीणाएँ; तुमुल—कानों को फाड़ने वाली; निःस्वनान्—ध्वनि।

साक्षात् बादलों ने तरह-तरह के ढोल—यथा मृदंग, पणव, मुरज तथा आनक—बजाये। उन्होंने शंख तथा गोमुख नामक तुरहियाँ भी बजाईं और बाँसुरी तथा वीणा का वादन किया। इन सब वाद्ययंत्रों की सम्मिलित ध्वनि अत्यन्त तुमुलपूर्ण थी।

ततोऽभिषिषिचुर्देवीं श्रियं पद्मकरां सतीम् ।
दिगिभाः पूर्णकलशैः सूक्तवाक्यैर्द्विजेरितैः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; अभिषिषिचुः—शरीर पर पवित्र जल डाला; देवीम्—लक्ष्मी देवी को; श्रियम्—अत्यन्त सुन्दर; पद्म-कराम्—हाथ में कमल का फूल लिए; सतीम्—भगवान् के अतिरिक्त अन्य किसी को न जानने वाली परम साध्वी सती को; दिग्गिभाः—बड़े-बड़े हाथी दिग्गज; पूर्ण-कलशैः—जल से पूर्ण पात्रों द्वारा; सूक्त-वाक्यैः—वैदिक मंत्रों से; द्वि-ज—ब्राह्मणों से; ईरितैः—उच्चारित।

तत्पश्चात् सभी दिशाओं के दिग्गज गंगाजल से भरे कलश ले आये और भाग्य की देवी को विद्वान ब्राह्मणों द्वारा उच्चारित वैदिक मंत्रों के साथ स्नान कराया। स्नान कराये जाते समय लक्ष्मीजी अपनी मौलिक शैली को बनाए रख कर अपने हाथ में कमल धारण किये रहीं और अत्यन्त सुन्दर लग रही थीं। वे परम सती साध्वी हैं क्योंकि वे भगवान् के अतिरिक्त किसी को नहीं जानतीं।

तात्पर्य : इस श्लोक में लक्ष्मीजी को *श्रियम्* कहा गया है, जिसका अर्थ है कि वे षड्ऐश्वर्यों—धन, बल, प्रभाव, सौन्दर्य, ज्ञान तथा त्याग—से युक्त हैं। ये सारे ऐश्वर्य लक्ष्मीजी से प्राप्त किये जाते हैं। लक्ष्मी को यहाँ पर देवी कहा गया है क्योंकि वे वैकुण्ठ लोक में भगवान् तथा उनके भक्तों को सारे ऐश्वर्य प्रदान करती हैं जिससे वे लोग वहाँ का प्राकृतिक जीवन बिताते हैं। भगवान् अपनी प्रिया लक्ष्मी जी से प्रसन्न रहते हैं, जो हाथ में कमल धारण किये रहती हैं। इस श्लोक में माता लक्ष्मी को परम साध्वी सती कहा गया है क्योंकि वे भगवान् के अतिरिक्त अन्य किसी की ओर ध्यान नहीं देतीं।

समुद्रः पीतकौशेयवाससी समुपाहरत् ।
वरुणः स्रजं वैजयन्तीं मधुना मत्तषट्पदाम् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

समुद्रः—समुद्र ने; पीत-कौशेय—पीला रेशम; वाससी—पोशाक के ऊपर तथा नीचे के भाग; समुपाहरत्—भेंट किया; वरुणः—जल के अधिष्ठाता देवता ने; स्रजम्—माला; वैजयन्तीम्—अत्यन्त अलंकृत तथा बड़ी; मधुना—शहद से; मत्त—मतवाले; षट्-पदाम्—छः पैरों वाले भौंरों को।

समस्त बहुमूल्य रत्नों के स्रोत समुद्र ने उन्हें पीले रेशमी वस्त्र के ऊपर तथा नीचे के भाग प्रदान किये। जल के प्रधान देवता वरुण ने फूलों की मालाएँ प्रदान कीं जिनके चारों ओर मधु पीकर मस्त हुए भौंरे मँडरा रहे थे।

तात्पर्य : *अभिषेक* उत्सव में अर्चाविग्रह को दूध, शहद, दही, घी, गोबर तथा गोमूत्र आदिद्र से नहलाते समय पीले वस्त्र अर्पित किये जाने का रिवाज हैं। इस तरह लक्ष्मीजी का अभिषेक नियमपूर्वक वैदिक सिद्धान्तों के अनुसार सम्पन्न हुआ।

**भूषणानि विचित्राणि विश्वकर्मा प्रजापतिः ।
हारं सरस्वती पद्ममजो नागाश्च कुण्डले ॥ १६ ॥**

शब्दार्थ

भूषणानि—तरह-तरह के गहने; विचित्राणि—सुन्दर ढंग से सजाये हुए; विश्वकर्मा प्रजापतिः—ब्रह्माजी के पुत्रों प्रजापतियों में से एक जिसका नाम विश्वकर्मा था; हारम्—हार; सरस्वती—विद्या की देवी ने; पद्मम्—कमल का फूल; अजः—ब्रह्मा ने; नागाः च—तथा नागलोक के वासियों ने; कुण्डले—कान के दो कुण्डल।

प्रजापति विश्वकर्मा ने तरह-तरह के अलंकृत आभूषण दिये। विद्या की देवी सरस्वती ने गले का हार, ब्रह्माजी ने कमल का फूल तथा नागलोक के वासियों ने कान के कुण्डल प्रदान किये।

**ततः कृतस्वस्त्ययनोत्पलस्रजं
नदद्द्विरेफां परिगृह्य पाणिना ।
चचाल वक्त्रं सुकपोलकुण्डलं
सव्रीडहासं दधती सुशोभनम् ॥ १७ ॥**

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; कृत-स्वस्त्ययना—शुभ अनुष्ठानों द्वारा नियमित रूप से पूजी जाकर; उत्पल-स्रजम्—कमलों की माला; नदत्—गुंजार करते; द्विरेफाम्—भौंरों से घिरी; परिगृह्य—पकड़ कर; पाणिना—हाथ से; चचाल—आगे बढ़ी; वक्त्रम्—चेहरा; सु-कपोल-कुण्डलम्—कान के कुण्डलों से अलंकृत गाल; स-व्रीड-हासम्—लज्जा से मुस्काती; दधती—विस्तीर्ण करती; सु-शोभनम्—अपनी प्राकृतिक सुन्दरता को।

तत्पश्चात् शुभ अनुष्ठान द्वारा पूजित माता लक्ष्मी कमलपुष्पों की माला हाथ में लेकर इधर-उधर विचरण करने लगीं जिसके चारों ओर भौंरे मँडरा रहे थे। लज्जा से मुस्काती हुई, कुण्डलों से गाल अलंकृत होने के कारण वे अत्यन्त सुन्दर लग रही थीं।

तात्पर्य : लक्ष्मीजी ने क्षीरसागर को अपने पिता के रूप में स्वीकार किया, किन्तु वे नारायण के वक्षस्थल पर निरन्तर वास करती हैं। वे ब्रह्माजी तक को तथा इस भौतिक जगत के सारे प्राणियों को वरदान देती हैं फिर भी वे समस्त भौतिक गुणों से परे रहती हैं। यद्यपि वे क्षीरसागर से उत्पन्न हुई प्रतीत होती थी, किन्तु वे तुरन्त ही नारायण के वक्षस्थल पर अपने नित्य स्थान को लौट ठाईं।

**स्तनद्वयं चातिकृशोदरी समं
निरन्तरं चन्दनकुङ्कुमोक्षितम् ।
ततस्ततो नूपुरवल्गु शिञ्जितै-
र्विसर्पती हेमलतेव सा बभौ ॥ १ ॥**

शब्दार्थ

स्तन-द्वयम्—उनके दो स्तन; च—भी; अति-कृश-उदरी—शरीर का मध्य भाग अत्यन्त पतला है, जिसका; समम्—समान रूप से; निरन्तरम्—लगातार; चन्दन-कुङ्कुम—चन्दन तथा लाल रंग के कुंकुम चूर्ण से; उक्षितम्—लेप किया; ततः ततः—यत्र तत्र; नूपुर—पायल का; वल्गु—अत्यन्त सुन्दर; शिञ्जितैः—मन्द झंकार करती; विसर्पती—चलती हुई; हेम-लता—सुनहरी लता; इव—सदृश; सा—वह देवी; बभौ—प्रकट हुई।

उनके संतुलित तथा सुस्थित दोनों स्तन चन्दन तथा कुंकुम चूर्ण से लेपित थे और उनकी कमर अत्यन्त पतली थी। जब वे इधर-उधर चलतीं तो उनके पायल मन्द झंकार करते थे और वे कोई सोने की लता के समान लगती थी।

विलोकयन्ती निरवद्यमात्मनः
पदं ध्रुवं चाव्यभिचारिसद्गुणम् ।
गन्धर्वसिद्धासुरयक्षचारण-
त्रैपिष्टपेयादिषु नान्वविन्दत ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

विलोकयन्ती—निरीक्षण करती, देखती; निरवद्यम्—किसी दोष से रहित; आत्मनः—अपने आपको; पदम्—पद; ध्रुवम्—नित्य; च—भी; अव्यभिचारि-सत्-गुणम्—गुणों में बिना किसी परिवर्तन के; गन्धर्व—गन्धर्वलोक के वासियों; सिद्ध—सिद्धलोक के वासियों; असुर—दानवों; यक्ष—यक्षों; चारण—चारण लोक के वासियों; त्रैपिष्टपेय-आदिषु—तथा देवताओं में; न—नहीं; अन्वविन्दत—किसी को स्वीकार कर सकी।

गन्धर्वों, यक्षों, असुरों, सिद्धों, चारणों तथा स्वर्गलोक के वासियों के बीच विचरण करती हुई भाग्य की देवी लक्ष्मीदेवी उन सबका निरीक्षण कर रही थीं, किन्तु उनमें से कोई भी उन्हें समस्त स्वाभाविक उत्तम गुणों से युक्त नहीं मिला। उनमें से कोई भी दोषों से रहित न था अतएव वे किसी की भी शरण ग्रहण नहीं कर सकीं।

तात्पर्य : क्षीरसागर से उत्पन्न होने के कारण लक्ष्मीदेवी सागर की पुत्री थीं; अतएव उन्हें स्वयंवर समारोह में अपना वर स्वयं चुनने की छूट थी। उन्होंने हर प्रत्याशी का निरीक्षण किया, किन्तु किसी को इस योग्य नहीं पाया कि उसकी शरण ग्रहण की जा सके। दूसरे शब्दों में, इस भौतिक संसार में लक्ष्मी के सहज पति नारायण की समता कोई भी नहीं कर सकता।

नूनं तपो यस्य न मन्युनिर्जयो
ज्ञानं क्वचित्तच्च न सङ्गवर्जितम् ।
कश्चिन्महांस्तस्य न कामनिर्जयः
स ईश्वरः किं परतो व्यपाश्रयः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

नूनम्—निश्चय ही; तपः—तपस्या; यस्य—जिस किसी की; न—नहीं; मन्यु—क्रोध; निर्जयः—जीता हुआ; ज्ञानम्—ज्ञान; क्वचित्—किसी साधु पुरुष में; तत्—वह; च—भी; न—नहीं; सङ्ग-वर्जितम्—संगति के कलुष से रहित; कश्चित्—कोई; महान्—अत्यन्त प्रतिष्ठित व्यक्ति; तस्य—उसका; न—नहीं; काम—भौतिक इच्छाएँ; निर्जयः—विजित; सः—ऐसा व्यक्ति; ईश्वरः—नियन्ता; किम्—वह कैसे हो सकता है; परतः—अन्यों का; व्यपाश्रयः—अधीन।

सभा का निरीक्षण करते हुए लक्ष्मीजी ने इस प्रकार सोचा: जिसने महान् तपस्या की है उसने अभी तक क्रोध पर विजय नहीं पाई। किसी के पास ज्ञान है, तो वह भौतिक इच्छाएँ नहीं जीत पाया। कोई महान् पुरुष है, तो उसने कामेच्छाएँ नहीं जीतीं। यहाँ तक कि महापुरुष भी किसी अन्य बात पर आश्रित रहता है। फिर वह परम नियन्ता (ईश्वर) कैसे हो सकता है?

तात्पर्य : यहाँ पर परम नियन्ता अर्थात् ईश्वर के अनुसन्धान का प्रयास हुआ है। प्रत्येक व्यक्ति को ईश्वर या नियन्ता माना जा सकता है, किन्तु फिर भी ऐसे नियन्ता अन्यों द्वारा नियंत्रित होते हैं। उदाहरणार्थ, भले ही किसी ने कठोर तपस्या क्यों न की हो फिर भी वह क्रोध के वशीभूत रहता है। विश्लेषण करने पर हमें पता चलता है कि प्रत्येक व्यक्ति किसी अन्य वस्तु से नियंत्रित होता है। अतएव भगवान् कृष्ण के अतिरिक्त कोई भी अन्य व्यक्ति असली नियन्ता नहीं हो सकता। इसकी पुष्टि शास्त्रों द्वारा होती है। *ईश्वरः परमः कृष्णः*—कृष्ण परम नियन्ता हैं। वे कभी किसी के द्वारा नियंत्रित नहीं होते क्योंकि वे सबके नियन्ता हैं (*सर्वकारणकारणम्*)।

धर्मः क्वचित्तत्र न भूतसौहृदं
त्यागः क्वचित्तत्र न मुक्तिकारणम् ।
वीर्यं न पुंसोऽस्त्यजवेगनिष्कृतं
न हि द्वितीयो गुणसङ्गवर्जितः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

धर्मः—धर्म; क्वचित्—भले ही पूरा ज्ञान क्यों न हो; तत्र—वहाँ; न—नहीं; भूत-सौहृदम्—अन्य जीवों के साथ मित्रता; त्यागः—त्याग; क्वचित्—किसी के पास भले ही हो; तत्र—वहाँ; न—नहीं; मुक्ति-कारणम्—मुक्ति का कारण; वीर्यम्—बल; न—नहीं; पुंसः—किसी पुरुष का; अस्ति—हो सकता है; अज-वेग-निष्कृतम्—काल की शक्ति से छुटकारा नहीं है; न—न तो; हि—निस्सन्देह; द्वितीयः—दूसरा; गुण-सङ्ग-वर्जितः—प्रकृति के गुणों के कल्मष से पूरी तरह मुक्त।

भले ही किसी के पास धर्म का पूरा ज्ञान क्यों न हो फिर भी वह समस्त जीवों पर दयालु नहीं हो सकता। किसी में, चाहे वह देवता हो या मनुष्य, त्याग हो सकता है, किन्तु वह मुक्ति का कारण नहीं होता। भले ही किसी में महान् बल क्यों न हो फिर भी वह नित्य काल की शक्ति को रोकने में अक्षम रहता है। भले ही कोई भौतिक जगत की आसक्ति से विरक्त हो चुका हो फिर भी वह भगवान् की बराबरी नहीं कर सकता। अतएव कोई भी व्यक्ति प्रकृति के भौतिक गुणों

के प्रभाव से पूरी तरह मुक्त नहीं है।

तात्पर्य : इस श्लोक में *धर्मः क्वचित् तत्र न भूत सौहृदम्* कथन अत्यन्त सारगर्भित है। हम वास्तव में देखते हैं कि ऐसे कितने ही हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध तथा अन्य सम्प्रदाय वाले धार्मिक लोग हैं, जो अपने-अपने धर्मों का दृढ़ता से पालन करते हैं, किन्तु वे सभी जीवो पर समभाव नहीं रखते। निस्सन्देह, वे अपने को धार्मिक तो कहते हैं, किन्तु बेचारे पशुओं का वध करते रहते हैं। ऐसा धर्म निरर्थक होता है। *श्रीमद्भागवत* का (१.२.) कथन है—

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः।

नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम हि केवलम्॥

कोई अपने सम्प्रदाय के धार्मिक सिद्धान्तों को पालने में कितना ही पटु क्यों न हो, किन्तु यदि उसमें भगवान् से प्रेम करने की प्रवृत्ति नहीं पाई जाती तो उसके द्वारा धार्मिक सिद्धान्तों का पालन समय का अपव्यय मात्र है। मनुष्य को वासुदेव से प्रेम करने की भावना विकसित करनी चाहिए (*वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः*)। भक्त का लक्षण यही है कि वह हर एक का मित्र होता है (*सुहृदं सर्वभूतानाम्*)। भक्त धर्म के नाम पर बेचारे पशुओं का वध नहीं होने देगा। बनावटी धार्मिक पुरुष तथा भगवद्भक्त के बीच यही अन्तर होता है।

हम देखते हैं कि इतिहास में अनेक वीर पुरुष उत्पन्न हुए हैं, किन्तु वे भी क्रूर काल के हाथों से बच नहीं पाये। यहाँ तक कि सबसे बड़ा वीर पुरुष भी, जब कृष्ण काल-रूप में आते हैं, भगवान् की शासनशक्ति से बच नहीं सकता। इसका वर्णन स्वयं कृष्ण ने किया है—*मृत्युः सर्वहरश्चाहम्*—भगवान् मृत्यु रूप में प्रकट होकर वीर पुरुष की तथाकथित शक्ति को छीन लेते हैं। यहाँ तक कि हिरण्यकशिपु भी अपने को नहीं बचा पाया जब उसके समक्ष नृसिंहदेव कालरूप में प्रकट हुए। किसी की भौतिक शक्ति या पराक्रम भगवान् की शक्ति के सामने शून्य है।

क्वचिच्चिरायुर्न हि शीलमङ्गलं
क्वचित्तदप्यस्ति न वेद्यमायुषः ।
यत्रोभयं कुत्र च सोऽप्यमङ्गलः
सुमङ्गलः कश्च न काङ्क्षते हि माम् ॥ २२॥

शब्दार्थ

क्वचित्—कोई; चिर-आयु:—दीर्घआयु वाला; न—नहीं; हि—निस्सन्देह; शील-मङ्गलम्—अच्छा आचरण या कल्याण; क्वचित्—कोई; तत् अपि—अच्छा आचरण होते भी; अस्ति—है; न—नहीं; वेद्यम् आयुषः—उम्र की अवधि से परिचित; यत्र उभयम्—यदि दोनों हुए (आचरण तथा मंगल); कुत्र—कहाँ; च—भी; सः—वह व्यक्ति; अपि—यद्यपि; अमङ्गलः—किसी और बात में अशुभ; सु-मङ्गलः—प्रत्येक प्रकार से शुभ; कश्च—कोई; न—नहीं; काङ्क्षते—इच्छा करता है; हि—निस्सन्देह; माम्—मुझको।

हो सकता है कि कोई दीर्घायु हो, किन्तु वह अच्छे आचरण वाला या मंगलमय न हो। किसी में मंगलमय तथा अच्छा आचरण दोनों ही पाये जा सकते हैं, किन्तु उसकी आयु की अवधि निश्चित नहीं होती। यद्यपि शिवजी जैसे देवताओं का जीवन शाश्वत होता है, किन्तु उनकी आदतें अमंगल सूचक होती हैं—यथा श्मशान में वास। अन्य लोग सभी प्रकार से योग्य होते हुए भी भगवान् के भक्त नहीं होते।

एवं विमृश्याव्यभिचारिसद्गुणै-
वरं निजैकाश्रयतयागुणाश्रयम् ।
वव्रे वरं सर्वगुणैरपेक्षितं
रमा मुकुन्दं निरपेक्षमीप्सितम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह; विमृश्य—विचार-विमर्श के बाद; अव्यभिचारि-सत्-गुणैः—अद्वितीय दिव्य गुणों से; वरम्—श्रेष्ठ; निज-एक-आश्रयतया—अन्यों पर आश्रित न रहकर समस्त गुणों से युक्त होने के कारण; अगुण-आश्रयम्—समस्त दिव्य गुणों का आगार; वव्रे—स्वीकार किया; वरम्—दूल्हे के रूप में; सर्व-गुणैः—समस्त दिव्य गुणों के साथ; अपेक्षितम्—योग्य; रमा—भाग्य की देवी ने; मुकुन्दम्—मुकुन्द को; निरपेक्षम्—यद्यपि उन्होंने उसकी प्रतीक्षा नहीं की; ईप्सितम्—सर्वाधिक वांछनीय।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : इस प्रकार पूरी तरह विचार-विमर्श करने के बाद भाग्य की देवी (लक्ष्मी) ने मुकुन्द को पति रूप में वरण कर लिया क्योंकि यद्यपि वे स्वतंत्र हैं और उन्हें उनकी कमी भी नहीं खलती थी वे समस्त दिव्य गुणों और योग शक्तियों से युक्त हैं, अतएव सर्वाधिक वांछनीय हैं।

तात्पर्य : भगवान् मुकुन्द आत्मनिर्भर हैं। चूँकि वे पूर्णतया स्वतंत्र हैं अतएव उन्हें न ही उनके लक्ष्मीदेवी के आश्रय की आवश्यकता थी न ही उनके सान्निध्य की। फिर भी लक्ष्मीदेवी ने उन्हें पति रूप में स्वीकार किया।

तस्यांसदेश उशतीं नवकञ्जमालां
माद्यन्मधुव्रतवरूथगिरोपघुष्टाम् ।
तस्थौ निधाय निकटे तदुरः स्वधाम

सव्रीडहासविकसन्नयनेन याता ॥ २४॥

शब्दार्थ

तस्य—उसके (भगवान् के); अंस-देशे—कंधों पर; उशतीम्—अत्यन्त सुन्दर; नव—नई; कञ्ज-मालाम्—कमल के फूलों की माला को; माद्यत्—मदान्ध; मधुव्रत-वरूथ—भौंरों की; गिरा—ध्वनि से; उपघुष्टाम्—गुंजार से घिरा; तस्थौ—कर रहा; निधाय—माला रखकर; निकटे—पास ही; तत्-उरः—भगवान् का वक्षस्थल; स्व-धाम—अपना असली निवास; स-व्रीड-हास—लज्जा से हँसते हुए; विकसत्—चमकते; नयनेन—आँखों से; याता—इस प्रकार स्थित।.

भगवान् के पास जाकर लक्ष्मीजी ने नवीन कमल पुष्पों की माला उनके गले में पहना दी जिसके चारों ओर मधु की खोज में भौंरें गुंजार कर रहे थे। तब भगवान् के वक्षस्थल पर स्थान पाने की आशा से वे उनकी बगल में खड़ी रहीं और उनका मुख लज्जा से मुस्का रहा था।

तस्याः श्रियस्त्रिजगतो जनको जनन्या
वक्षो निवासमकरोत्परमं विभूतेः ।
श्रीः स्वाः प्रजाः सकरुणेन निरीक्षणेन
यत्र स्थितैधयत साधिपतींस्त्रिलोकान् ॥ २५॥

शब्दार्थ

तस्याः—उसका; श्रियः—लक्ष्मी; त्रि-जगतः—तीनों लोक के; जनकः—पिता; जनन्याः—माता का; वक्षः—वक्षस्थल; निवासम्—निवास; अकरोत्—बनाया; परमम्—परम; विभूतेः—ऐश्वर्यवान का; श्रीः—लक्ष्मी; स्वाः—अपने; प्रजाः—वंशज; स-करुणेन—करुणा से युक्त; निरीक्षणेन—दृष्टि फेरते हुए; यत्र—जहाँ; स्थिता—रहते हुए; ऐधयत—वृद्धि की; स-अधिपतीन्—महान् निदेशकों तथा नेताओं सहित; त्रि-लोकान्—तीनों लोकों को।.

भगवान् तीनों लोकों के पिता हैं और उनका वक्षस्थल समस्त ऐश्वर्यों की स्वामिनी भाग्य की देवी माता लक्ष्मी का निवास है। लक्ष्मीजी अपनी अनुकूल तथा कृपापूर्ण चितवन से तीनों लोकों तथा उनके निवासियों और अधिपतियों—देवताओं—के ऐश्वर्य को बढ़ा सकती हैं।

तात्पर्य : लक्ष्मीजी की इच्छानुसार भगवान् ने अपने वक्ष:स्थल को उनका वासस्थान बना दिया जिससे वे अपनी चितवन से हर एक को—देवताओं तथा सामान्य मनुष्यों को—भी उपकृत कर सकें। दूसरे शब्दों में, चूँकि लक्ष्मीजी नारायण के वक्षस्थल पर निवास करती हैं अतएव जो भी भक्त नारायण की पूजा करता है उसे वे देखती रहती हैं। जब वे यह जान लेती हैं कि कोई भक्त नारायण की भक्ति करने के पक्ष में है, तो वे उसे सारे ऐश्वर्य का सहज वरदान देने को उद्यत हो जाती हैं। *कर्मीजन* लक्ष्मी की कृपा तथा पक्षी पाने का प्रयास करते हैं, किन्तु नारायण के भक्त न होने से उनका ऐश्वर्य डगमगा जाता है। नारायण की सेवा में लिप्त रहने वाले भक्तों का ऐश्वर्य *कर्मियों* जैसा नहीं होता। भक्तों का ऐश्वर्य उतना ही स्थायी होता है जितना की स्वयं नारायण का है।

शङ्खतूर्यमृदङ्गानां वादित्राणां पृथुः स्वनः ।
देवानुगानां सस्त्रीणां नृत्यतां गायतामभूत् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

शङ्ख—शंख; तूर्य—तुरही; मृदङ्गानाम्—तथा विभिन्न प्रकार के ढोलों का; वादित्राणाम्—वाद्य-यंत्रों की; पृथुः—अत्यधिक; स्वनः—ध्वनि; देव-अनुगानाम्—उच्चलोकों (गंधर्व तथा चारण लोक) के निवासी जो देवताओं के अनुयायी होते हैं; स-स्त्रीणाम्—अपनी-अपनी पत्नियों के साथ; नृत्यताम्—नाचने में व्यस्त; गायताम्—गाते हुए; अभूत्—हो गये।

तब गन्धर्व तथा चारण लोकों के निवासियों ने अपने-अपने वाद्य यंत्र—यथा शंख, तुरही तथा ढोल—बजाये। वे अपनी-अपनी पत्नियों के साथ नाचने गाने लगे।

ब्रह्मरुद्राङ्गिरोमुख्याः सर्वे विश्वसृजो विभुम् ।
ईडिरेऽवितथैर्मन्त्रैस्तल्लिङ्गैः पुष्पवर्षिणः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्म—ब्रह्माजी; रुद्र—शिवजी; अङ्गिरः—अंगिरा मुनि; मुख्याः—आदि; सर्वे—सभी ने; विश्व-सृजः—विश्व की व्यवस्था के निदेशक; विभुम्—महान् पुरुष को; ईडिरे—पूजा की; अवितथैः—असली; मन्त्रैः—उच्चारण द्वारा; तत्-लिङ्गैः—उन भगवान् को पूजकर; पुष्प-वर्षिणः—पुष्पों की वर्षा करके।

ब्रह्मा जी, शिव जी, अंगिरा मुनि तथा विश्व व्यवस्था के ऐसे ही निदेशकों ने फूल बरसाये और भगवान् की दिव्य महिमा के सूचक मंत्रों का उच्चारण किया।

श्रियावलोकिता देवाः सप्रजापतयः प्रजाः ।
शीलादिगुणसम्पन्ना लेभिरे निर्वृतिं पराम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्रिया—लक्ष्मी द्वारा; अवलोकिताः—कृपापूर्वक देखे जाने पर; देवाः—सारे देवता; स-प्रजापतयः—प्रजापतियों सहित; प्रजाः—तथा उनकी सन्तानें; शील-आदि-गुण-सम्पन्नाः—सबके सब अच्छे आचरण तथा अच्छे लक्षणों से सम्पन्न; लेभिरे—प्राप्त किया; निर्वृतिम्—संतोष; पराम्—चरम।

सभी प्रजापतियों तथा उनकी प्रजा सहित सारे देवता लक्ष्मीजी की चितवन से धन्य होकर तुरन्त ही अच्छे आचरण तथा दिव्य गुणों से सम्पन्न हो गये। इस तरह वे अत्यधिक सन्तुष्ट हो गये।

निःसत्त्वा लोलुपा राजन्निरुद्योगा गतत्रपाः ।
यदा चोपेक्षिता लक्ष्म्या बभूवुर्दैत्यदानवाः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

निःसत्त्वाः—बलहीन; लोलुपाः—अत्यन्त लालची; राजन्—हे राजा; निरुद्योगाः—हताश; गत-त्रपाः—लज्जाहीन; यदा—जब; च—भी; उपेक्षिताः—उपेक्षित; लक्ष्म्या—लक्ष्मीजी द्वारा; बभूवुः—हो गये; दैत्य-दानवाः—असुर तथा राक्षसगण।

हे राजा! लक्ष्मी द्वारा उपेक्षित हो जाने पर असुर तथा राक्षस अत्यन्त निराश, मोहग्रस्त तथा

हतप्रभ हो गये और इस तरह वे निर्लज्ज बन गये।

अथासीद्वारुणी देवी कन्या कमललोचना ।
असुरा जगृहुस्तां वै हरेरनुमतेन ते ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात् (लक्ष्मीजी के प्रकट होने के बाद); आसीत्—था; वारुणी—वारुणी; देवी—देवपत्नी जो मद्यपों को वश में रखती है; कन्या—तरुणी; कमल-लोचना—कमल जैसे नेत्र वाली; असुराः—असुरों ने; जगृहुः—स्वीकार कर लिया; ताम्—उसको; वै—निस्सन्देह; हरेः—भगवान् के; अनुमतेन—आदेश से; ते—वे (राक्षस)।

तब कमलनयनी देवी वारुणी प्रकट हुई जो मद्यपों को वश में रखती है। भगवान् कृष्ण की अनुमति से बलि महाराज इत्यादि असुरों ने उस तरुणी को अपने अधिकार में ले लिया।

अथोदधेर्मथ्यमानात्काश्यपैरमृतार्थिभिः ।
उदतिष्ठन्महाराज पुरुषः परमाद्भुतः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; उदधेः—क्षीरसागर से; मथ्यमानात्—मथने से; काश्यपैः—कश्यप के पुत्रों अर्थात् देवताओं तथा असुरों द्वारा; अमृत-अर्थिभिः—मन्थन से अमृत पाने के लिए उत्सुक; उदतिष्ठत्—वहाँ प्रकट हुआ; महाराज—हे राजा; पुरुषः—एक पुरुष; परम—अत्यन्त; अद्भुतः—अद्भुत।

हे राजा! तत्पश्चात् जब कश्यप के पुत्र—असुर तथा देवता—दोनों ही क्षीरसागर के मन्थन में लगे हुए थे तो एक अत्यन्त अद्भुत पुरुष प्रकट हुआ।

दीर्घपीवरदोर्दण्डः कम्बुग्रीवोऽरुणेक्षणः ।
श्यामलस्तरुणः स्रग्वी सर्वाभरणभूषितः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

दीर्घ—लम्बा; पीवर—बलिष्ठ; दोः-दण्डः—भुजाएँ; कम्बु—शंख के समान; ग्रीवः—गर्दन; अरुण-ईक्षणः—लाल-लाल आँखें; श्यामलः—काले रंग का; तरुणः—नौजवान; स्रग्वी—फूलों की माला पहने; सर्व—समस्त; आभरण—गहनों से; भूषितः—अलंकृत।

उसका शरीर सुदृढ़ था; उसकी भुजाएँ लम्बी तथा बलिष्ठ थीं; उसकी शंख जैसी गर्दन में तीन रेखाएँ थीं; उसकी आँखें लाल-लाल थीं और उसका रंग साँवला था। वह अत्यन्त तरुण था, उसके गले में फूलों की माला थी तथा उसका सारा शरीर नाना प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित था।

पीतवासा महोरस्कः सुमृष्टमणिकुण्डलः ।

स्निग्धकुञ्चितकेशान्तसुभगः सिंहविक्रमः ।
अमृतापूर्णकलसं बिभ्रद्वलयभूषितः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

पीत-वासाः—पीले वस्त्र पहने; महा-उरस्कः—चौ वक्षस्थल वाला; सु-मृष्ट-मणि-कुण्डलः—मोतियों के बने पालिश किए हुए कुण्डल पहने; स्निग्ध—चिकना; कुञ्चित-केश—घुंघराले बाल; अन्त—सिरे पर; सु-भगः—पृथक् तथा सुन्दर; सिंह-विक्रमः—सिंह की भाँति बलवान्; अमृत—अमृत से; आपूर्ण—लबालब; कलसम्—कलश; बिभ्रत्—चलायमान; वलय—बाजूबंद; भूषितः—सुशोभित।

वह पीले वस्त्र पहने था और उसके कानों में मोतियों के बने पालिश किए हुए कुण्डल थे। उसके बालों के सिरे तेल से चुपड़े थे और उसका वक्षस्थल अत्यन्त चौड़ा था। उसका शरीर अत्यन्त सुगठित तथा सिंह के समान बलवान् था। उसने बाजूबंद पहन रखे थे। उसके हाथ में अमृत से पूर्ण कलश था।

स वै भगवतः साक्षाद्विष्णोरंशांशसम्भवः ।
धन्वन्तरिरिति ख्यात आयुर्वेदद‍ृगिज्यभाक् ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; वै—निस्सन्देह; भगवतः—भगवान् का; साक्षात्—प्रत्यक्ष; विष्णोः—भगवान् विष्णु का; अंश-अंश-सम्भवः—स्वांश के स्वांश का अवतार; धन्वन्तरिः—धन्वन्तरि; इति—इस प्रकार; ख्यातः—प्रसिद्ध; आयुः-वेद-द‍ृक्—औषधि विज्ञान में पटु; इज्य-भाक्—यज्ञ में भाग पाने का अधिकारी देवता।

यह व्यक्ति धन्वन्तरि था, जो भगवान् विष्णु के स्वांश का स्वांश था। वह औषधि विज्ञान (आयुर्वेद) में अत्यन्त पटु था और देवता के रूप में यज्ञों में भाग पाने का अधिकारी था।

तात्पर्य : *श्रील मध्वाचार्य* की टीका है—

तेषां सत्याच्चालनार्थं हरिर्धन्वन्तरिर्विभुः ।

समर्थोऽप्यसुराणां तु स्वहस्तादमुचत्सुधाम् ॥

हाथ में अमृत का घट लिए धन्वन्तरि भगवान् का स्वांश अवतार था। यद्यपि वह अत्यन्त बलशाली था, किन्तु असुरगण उसके हाथ से अमृत घट छीन लेने में सफल हुए।

तमालोक्यासुराः सर्वे कलसं चामृताभृतम् ।
लिप्सन्तः सर्ववस्तूनि कलसं तरसाहरन् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; आलोक्य—देखकर; असुराः—असुरों ने; सर्वे—सभी; कलसम्—अमृत पात्र को; च—भी; अमृत-आभृतम्—अमृत से पूर्ण; लिप्सन्तः—प्रबल इच्छा करते; सर्व-वस्तूनि—सारी वस्तुएँ; कलसम्—पात्र; तरसा—तुरन्त; अहरन्—छीन लिया।

धन्वन्तरि को अमृत पात्र लिये हुए देखकर असुरों ने पात्र तथा उसके भीतर जो कुछ था उसे चाहने के कारण तुरन्त ही उसे बलपूर्वक छीन लिया।

नीयमानेऽसुरैस्तस्मिन्कलसेऽमृतभाजने ।
विषण्णमनसो देवा हरिं शरणमाययुः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

नीयमाने—ले जाया जाकर; असुरैः—असुरों द्वारा; तस्मिन्—उस; कलसे—पात्र में; अमृत-भाजने—अमृत से भरे; विषण्ण-मनसः—खिन्न मन से; देवाः—सारे देवता; हरिम्—भगवान् की; शरणम्—शरण में; आययुः—गये।

जब अमृत का पात्र असुरों द्वारा छीन लिया गया तो देवतागण अत्यन्त खिन्न हो गए। उन्होंने जाकर भगवान् हरि के चरणकमलों की शरण ली।

इति तद्दैन्यमालोक्य भगवान्भृत्यकामकृत् ।
मा खिद्यत मिथोऽर्थं वः साधयिष्ये स्वमायया ॥ ३७॥

शब्दार्थ

इति—इस तरह; तत्—देवताओं की; दैन्यम्—खिन्नता, विषाद; आलोक्य—देखकर; भगवान्—भगवान्; भृत्य-काम-कृत्—जो अपने सेवकों की इच्छाओं की पूर्ति करने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं; मा खिद्यत—मत दुखी होओ; मिथः—झगड़े से; अर्थम्—अमृत प्राप्त करने के लिए; वः—तुम सबके लिए; साधयिष्ये—सम्पन्न करूँगा; स्व-मायया—अपनी शक्ति से।

अपने भक्तों की मनोकामनाओं को सदा पूरा करने की इच्छा रखने वाले भगवान् ने जब यह देखा कि देवतागण खिन्न हैं, तो उन्होंने उनसे कहा ''दुःखी मत होओ। मैं अपनी शक्ति से असुरों में झगड़ा करा कर उन्हें मोहग्रस्त कर लूँगा। इस प्रकार तुम लोगों की अमृत प्राप्त करने की इच्छा मैं पूरी कर दूँगा।''

मिथः कलिरभूत्तेषां तदर्थे तर्षचेतसाम् ।
अहं पूर्वमहं पूर्वं न त्वं न त्वमिति प्रभो ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

मिथः—परस्पर; कलिः—असहमति तथा कलह; अभूत्—हुआ; तेषाम्—उन सबका; तत्-अर्थे—अमृत के लिए; तर्ष-चेतसाम्—विष्णु की माया से मोहग्रस्त चित्त; अहम्—मैं; पूर्वम्—पहले; अहम्—मैं; पूर्वम्—पहले; न—नहीं; त्वम्—तुम; न—नहीं; त्वम्—तुम; इति—इस प्रकार; प्रभो—हे राजा।

हे राजा! तब असुरों के बीच झगड़ा छिड़ गया कि सबसे पहले कौन अमृत ले। उनमें से हर एक यही कहने लगा ''तुम पहले नहीं पी सकते। मुझे सबसे पहले पीना चाहिए। तुम नहीं, पहले मैं।''

तात्पर्य : यह असुरों का लक्षण है। अभक्त की पहली चिन्ता यही रहती है कि सर्वप्रथम अपनी निजी इन्द्रियतृप्ति कैसे की जाये जबकि भक्त की सर्वोपरि चिन्ता भगवान् को प्रसन्न करने के लिए होती है। अभक्त तथा भक्त में यही अन्तर है। चूँकि इस जगत में अधिकांश लोग अभक्त हैं अतएव वे निरन्तर स्पर्धा करते एवं लड़ते-झगड़ते रहते हैं क्योंकि हर एक व्यक्ति अपनी इन्द्रियों का भोग करके तुष्ट होना चाहता है। अतएव जब तक ऐसे असुर कृष्णभावनाभावित नहीं हो जाते और भगवान् की इन्द्रियों को तुष्ट करने का प्रशिक्षण प्राप्त नहीं कर लते तब तक मानव समाज या किसी भी समाज में, भले ही वह देवताओं का क्यों न हो, शान्ति नहीं हो सकती। किन्तु भक्त तथा देवता सदैव भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण करते हैं; अतएव भगवान् उनकी मनोकामनाओं को तुष्ट करने के लिए सदैव उत्सुक रहते हैं। असुरगण अपनी इन्द्रियों की तुष्टि के लिए लड़ते-झगड़ते हैं, किन्तु भक्तगण भक्ति में लगे रहकर भगवान् की इन्द्रियों की तुष्टि करने में लगे रहते हैं। कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सदस्यों को इस ओर सतर्क रहना होगा; तभी उनका इस आन्दोलन का प्रचार-कार्य सफल हो सकेगा।

देवाः स्वं भागमर्हन्ति ये तुल्यायासहेतवः ।
सत्रयाग इवैतस्मिन्नेष धर्मः सनातनः ॥ ३९ ॥
इति स्वान्प्रत्यषेधन्वै दैतेया जातमत्सराः ।
दुर्बलाः प्रबलान्राजन्गृहीतकलसान्मुहुः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

देवाः—देवता; स्वम् भागम्—अपना-अपना हिस्सा; अर्हन्ति—लेने के अधिकारी हैं; ये—जो-जो; तुल्य-आयास-हेतवः—जिन्होंने समान प्रयास किया है; सत्र-यागे—यज्ञ सम्पन्न करने में; इव—उसी प्रकार; एतस्मिन्—इस मामले में; एषः—यह; धर्मः—धर्म; सनातनः—शाश्वत; इति—इस प्रकार; स्वान्—अपनों में; प्रत्यषेधन्—एक दूसरे को मना किया; वै—निस्सन्देह; दैतेयाः—दिति के पुत्र; जात-मत्सराः—ईष्यालु; दुर्बलाः—निर्बल; प्रबलान्—बलपूर्वक; राजन्—हे राजा; गृहीत—ग्रहण किये; कलसान्—अमृत पात्र को; मुहुः—निरन्तर।

कुछ असुरों ने कहा ''सभी देवताओं ने क्षीरसागर के मन्थन में हाथ बँटाया है। चूँकि हर एक को समान अधिकार है कि वह किसी भी सार्वजनिक यज्ञ में भाग लें अतः सनातन धर्म के अनुसार यह उचित होगा कि अमृत में देवताओं को भी भाग मिले।'' हे राजा! इस प्रकार निर्बल असुरों ने प्रबल असुरों को अमृत लेने से मना किया।

तात्पर्य : अमृत पाने की इच्छा वाले निर्बल असुरों ने देवताओं के पक्ष में बातें कहीं। स्वाभाविक था कि निर्बल दैत्यों ने प्रबल दैत्यों को बिना बँटवारा किये अमृत पीने से रोकने के लिए देवताओं का

समर्थन किया। इस प्रकार जब एक दूसरे को अमृत पीने से रोका गया तो असहमति से झगड़ा उठ खड़ा हुआ।

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुः सर्वोपायविदीश्वरः ।
योषिद्रूपमनिर्देश्यं दधारपरमाद्भुतम् ॥ ४१ ॥
प्रेक्षणीयोत्पलश्यामं सर्वावयवसुन्दरम् ।
समानकर्णाभरणं सुकपोलोन्नसाननम् ॥ ४२ ॥
नवयौवननिर्वृत्तस्तनभारकृशोदरम् ।
मुखामोदानुरक्तालिझङ्कारोद्विग्नलोचनम् ॥ ४३ ॥
बिभ्रत्सुकेशभारेण मालामुत्फुल्लमल्लिकाम् ।
सुग्रीवकण्ठाभरणं सुभुजाङ्गदभूषितम् ॥ ४४ ॥
विरजाम्बरसंवीतनितम्बद्वीपशोभया ।
काञ्च्या प्रविलसद्वल्गुचलच्चरणनूपुरम् ॥ ४५ ॥
सव्रीडस्मितविक्षिप्तभ्रूविलासावलोकनैः ।
दैत्ययूथपचेतःसु काममुद्दीपयन्मुहुः ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

एतस्मिन् अन्तरे—इस घटना के बाद; विष्णुः—भगवान् विष्णु ने; सर्व-उपाय-वित्—विभिन्न परिस्थितियों से निपटने में पटु; ईश्वरः—परम नियन्ता; योषित्-रूपम्—सुन्दर स्त्री का रूप; अनिर्देश्यम्—कोई यह निश्चित नहीं कर सका कि वह कौन थी; दधार—धारण कर लिया; परम—परम; अद्भुतम्—अद्‍भुत; प्रेक्षणीय—देखने में सुहावना; उत्पल-श्यामम्—नवीन विकसित कमल के समान श्याम रंग का; सर्व—सारे; अवयव—शरीर के अंग; सुन्दरम्—अत्यन्त सुन्दर; समान—एकसमान; कर्ण-आभरणम्—कान के आभूषण; सु-कपोल—सुन्दर गाल; उन्नस-आननम्—मुखमण्डल में उभरी नाक; नव-यौवन—नवीन युवावस्था; निर्वृत्त-स्तन—स्थिर उरोज; भार—भार; कृश—अत्यन्त दुबली तथा पतली; उदरम्—कमर; मुख—मुखमण्डल; आमोद—आनन्द उत्पादक; अनुरक्त—आकृष्ट; अलि—भौंरे; झङ्कार—गुन-गुन की आवाज करते; उद्विग्न—चिन्ता से; लोचनम्—उसकी आँख; बिभ्रत्—चलायमान; सु-केश-भारेण—सुन्दर बालों के भार से; मालाम्—फूल की माला से; उत्फुल्ल-मल्लिकाम्—पूर्ण विकसित मल्लिका के फूलों से बनी; सु-ग्रीव—सुन्दर गर्दन; कण्ठ-आभरणम्—सुन्दर रत्नों से जटित; सु-भुज—सुन्दर भुजाएँ; अङ्गद-भूषितम्—बाजूबंदों से सज्जित; विरज-अम्बर—अत्यन्त स्वच्छ वस्त्र; संवीत—फैला; नितम्ब—नितम्ब; द्वीप—द्वीप की तरह लगने वाला; शोभया—ऐसी सुन्दरता से; काञ्च्या—करधनी; प्रविलसत्—फैली हुई; वल्गु—अत्यन्त सुन्दर; चलत्-चरण-नूपुरम्—हिलते-डुलते पायल; स-व्रीड-स्मित—सलज्ज हास; विक्षिप्त—दृष्टि फेरते; भ्रू-विलास—भौंहों का क्रियाकलाप; अवलोकनैः—देखने से; दैत्य-यूथ-प—असुरों के नायक; चेतःसु—हृदय में; कामम्—कामेच्छा; उद्दीपयत्—जगाते हुए; मुहुः—निरन्तर।

तब, किसी भी प्रतिकूल परिस्थिति का सामना करने में दक्ष भगवान् विष्णु ने एक अत्यन्त सुन्दर स्त्री का रूप धारण कर लिया। स्त्री के रूप में यह अवतार—मोहिनी मूर्ति—मन को भाने वाला था। उसका रंग नव-विकसित श्यामल कमल के रंग का था और उसके शरीर का हर अंग सुन्दर ढंग से बना था। उसके कानों में कुण्डल सजे थे, उसके गाल अतीव सुन्दर थे, उसकी नाक उठी हुई थी और उसका मुखमण्डल युवावस्था की कान्ति से युक्त था। उसके बड़े-बड़े

स्तनों के कारण उसकी कमर अत्यन्त पतली लगती थी। उसके मुख तथा शरीर की सुगंधि से आकर्षित भौरें उसके चारों ओर गुनगुना रहे थे और उसकी आँखें चंचल थीं। उसके बाल अत्यन्त सुन्दर थे और उन पर मल्लिका के फूलों की माला पड़ी थी। उसकी आकर्षक गर्दन हार तथा अन्य आभूषणों से सुशोभित थी; उसकी बाँहों में बाजूबंद शोभित हो रहे थे; उसका शरीर स्वच्छ साड़ी से ढका था और उसके स्तन सुन्दरता के सागर में द्वीपों की तरह प्रतीत हो रहे थे। उसके पाँवों में पायल शोभा दे रहे थे। जब वह लज्जा से हँसती और असुरों पर बाँकी चितवन फेरती तो उसकी भौंहों के हिलने से सारे असुर कामेच्छा से पूरित हो उठते और उनमें से हर एक उसे अपना बनाने की इच्छा करने लगा।

तात्पर्य : असुरों में काम–भावना जगाने के लिए भगवान् ने सुन्दर स्त्री का जो रूप धारण किया उसकी सुन्दरता का यहाँ पूरा वर्णन किया गया है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कंध के अन्तर्गत ''क्षीरसागर का मन्थन'' नामक आठवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter नौ

मोहिनी–मूर्ति के रूप में भगवान् का अवतार

इस अध्याय में बताया गया है कि किस प्रकार सारे असुर मोहिनी के सौन्दर्य से मोहित होकर उसे अमृत–पात्र देने के लिए राजी हो गये जिसने बड़ी ही चातुरी से देवताओं को वह पात्र दे दिया।

जब असुरों को अमृत–पात्र मिल गया तो उनके समक्ष एक अद्वितीय सुन्दरी प्रकट हुई। सारे असुर इस तरुणी के सौन्दर्य से मोहित हो गये और उस पर आसक्त हो गए। चूँकि असुर अमृत पाने के लिए आपस में लड़ रहे थे अतएव उन्होंने अपने झगड़े को निपटाने के लिए इस सुन्दरी को मध्यस्थ चुना। उनकी इस दुर्बलता का लाभ उठाते हुए भगवान् की अवतार मोहिनी ने असुरों से यह वचन ले लिया कि वह जो भी फैसला करेगी उससे असुरगण विचलित नहीं होंगे। जब असुरों ने यह वचन दे दिया तो सुन्दर स्त्री मोहिनी–मूर्ति ने असुरों तथा देवताओं को अलग–अलग पंक्तियों में बैठा दिया जिससे वह अमृत वितरण कर सके। वह जानती थी कि असुर अमृत पान करने के योग्य नहीं हैं; अतएव उन्हें

धोखा देकर उसने सारा अमृत देवताओं में बाँट दिया। जब असुरों ने मोहिनी-मूर्ति का यह छल देखा तो वे मौन बने रहे। किन्तु उनमें से राहु नामक एक असुर ने देवता का वेश धारण कर लिया और वह जाकर देवताओं की पंक्ति में बैठ गया। वह सूर्य तथा चन्द्रमा के निकट जा बैठा। जब भगवान् ने जान लिया कि राहु किस तरह धोखा दे रहा है, तो उन्होंने तुरन्त ही उसका सिर काट लिया। किन्तु राहु ने पहले ही अमृत चख लिया था; अतएव सिर काटे जाने के बावजूद भी वह जीवित रहा। जब देवतागण अमृत पी चुके तो भगवान् ने पुन: अपना पूर्व-रूप धारण कर लिया। शुकदेव गोस्वामी इस अध्याय की समाप्ति इस वर्णन के साथ करते हैं कि भगवान् के पवित्र नामों, उनकी लीलाओं तथा साज-सामान के जप में कितनी शक्ति होती है।

श्रीशुक उवाच
तेऽन्योन्यतोऽसुराः पात्रं हरन्तस्त्यक्तसौहृदाः ।
क्षिपन्तो दस्युधर्माण आयान्तीं ददृशुः स्त्रियम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; ते—वे असुर; अन्योन्यतः—परस्पर; असुराः—असुरगण; पात्रम्—अमृत का बर्तन; हरन्तः—एक दूसरे से छीनते हुए; त्यक्त-सौहृदाः—एक दूसरे के शत्रु बन गये; क्षिपन्तः—कभी-कभी फेंकते हुए; दस्यु-धर्माणः—कभी-कभी लुटेरों की तरह छीनते हुए; आयान्तीम्—आगे आते हुए; ददृशुः—देखा; स्त्रियम्—अत्यन्त सुन्दर तथा आकर्षक स्त्री को।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : तत्पश्चात् असुर एक दूसरे के शत्रु बन गये। उन्होंने अमृत पात्र को फेंकते और छीनते हुए अपना मैत्री-सम्बन्ध तोड़ लिया। इसी बीच उन्होंने देखा कि एक अत्यन्त सुन्दर तरुणी उनकी ओर आ रही है।

अहो रूपमहो धाम अहो अस्या नवं वयः ।
इति ते तामभिद्रुत्य पप्रच्छुर्जातहृच्छयाः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

अहो—कितना आश्चर्यजनक है; रूपम्—इसकी सुन्दरता; अहो—कितना अद्भुत है; धाम—इसकी शारीरिक कान्ति; अहो—कितना आर्श्चयजनक; अस्याः—इसका; नवम्—नयी; वयः—युवावस्था; इति—इस तरह; ते—वे असुर; ताम्—उस सुन्दर स्त्री को; अभिद्रुत्य—तेजी से उसके समक्ष जाकर; पप्रच्छुः—उससे पूछा; जात-हृत्-शयाः—उसका भोग करने की कामवासना से भरे हुए हृदय।

उस सुन्दरी को देखकर असुरों ने कहा : ओह! इसका सौन्दर्य कितना आश्चर्यजनक है, इसके शरीर की कान्ति कितनी अद्भुत है और इसकी तरुणावस्था का सौन्दर्य कितना उत्कृष्ट है! इस तरह कहते हुए वे उसका भोग करने की कामवासना से पूरित होकर तेजी से उसके पास

पहुँच गये और उससे तरह-तरह के प्रश्न पूछने लगे।

का त्वं कञ्जपलाशाक्षि कुतो वा किं चिकीर्षसि ।
कस्यासि वद वामोरु मथ्नतीव मनांसि नः ॥ ३॥

शब्दार्थ

का—कौन; त्वम्—तुम हो; कञ्ज-पलाश-अक्षि—कमल की पंखड़ियों जैसी आँखों वाली; कुतः—कहाँ से; वा—अथवा; किम् चिकीर्षसि—तुम किस प्रयोजन से यहाँ आई हो; कस्य—किसकी; असि—हो; वद—कृपया हमसे कहो; वाम-ऊरु—हे अद्वितीय सुन्दर जाँघों वाली; मथ्नती—विचलित करती हुई; इव—इस प्रकार; मनांसि—मनों को; नः—हमारे।

हे अद्भुत सुन्दरी बाला! तुम्हारी आँखें इतनी सुन्दर हैं कि वे कमल पुष्प की पंखड़ियों जैसी लगती हैं। तुम आखिर हो कौन? तुम कहाँ से आई हो? यहाँ आने का तुम्हारा प्रयोजन क्या है और तुम किसकी हो? हे अद्वितीय सुन्दर जाँघों वाली! हमारे मन तुम्हारे दर्शनमात्र से ही विचलित हो रहे हैं।

तात्पर्य : असुरों ने उस अद्वितीय सुन्दरी से पूछा, "तुम किसकी हो?" स्त्री अपने विवाह के पूर्व पिता की होती है, विवाह के बाद पति की होती है और बुढ़ापे में अपने बड़े पुत्रों की होती है। इस प्रश्न के सम्बन्ध में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि, "तुम किसकी हो?" प्रश्न का अर्थ है "तुम किसकी पुत्री हो?" चूँकि असुरगण यह समझ पाये थे कि वह सुन्दरी अब भी अविवाहित है अतएव उनमें से हर एक उससे विवाह करना चाहता था। इस तरह उन्होंने पूछा "तुम किसकी पुत्री हो?"

न वयं त्वामरैर्दैत्यैः सिद्धगन्धर्वचारणैः ।
नास्पृष्टपूर्वां जानीमो लोकेशैश्च कुतो नृभिः ॥ ४॥

शब्दार्थ

न—नहीं; वयम्—हम; त्वा—तुमको; अमरैः—देवताओं द्वारा; दैत्यैः—असुरों द्वारा; सिद्ध—सिद्धों द्वारा; गन्धर्व—गन्धर्वों द्वारा; चारणैः—तथा चारणों द्वारा; न—नहीं; अस्पृष्ट-पूर्वाम्—किसी के द्वारा कभी भी न तो भोगी गई न स्पर्श की गई; जानीमः—ठीक से जान लो; लोक-ईशैः—ब्रह्माण्ड के विभिन्न निर्देशकों द्वारा; च—भी; कुतः—क्या कहा जाये; नृभिः—मानव समाज द्वारा।

मनुष्यों की कौन कहे, देवता, असुर, सिद्ध, गन्धर्व, चारण तथा ब्रह्माण्ड के विभिन्न निर्देशक अर्थात् प्रजापति तक इसके पूर्व तुम्हारा स्पर्श नहीं कर पाये। ऐसा नहीं है कि हम तुम्हें ठीक से पहचान नहीं पा रहे हों।

तात्पर्य : असुरों तक ने यह शिष्टाचार निभाया कि उनमें से कोई भी विवाहिता स्त्री को

विषयवासना से युक्त होकर सम्बोधित न करे। महान् विश्लेषक चाणक्य पण्डित कहते हैं—*मातृवत् परदारेषु*—मनुष्य को चाहिए कि दूसरे की पत्नी को अपनी माता माने। असुरों ने यह मान लिया था कि वह तरुण सुन्दरी मोहिनी-मूर्ति जो उनके समक्ष आयी थी निश्चय ही, अविवाहिता थी। अतएव उन्होंने यह मान लिया कि इस संसार के किसी भी व्यक्ति ने जिसमें देवता, गन्धर्व, चारण, सिद्ध सम्मिलित हैं, उसका कभी स्पर्श नहीं किया होगा। असुर जानते थे कि वह तरुणी अविवाहिता थी अतएव उन्होंने उसे सम्बोधित करने का साहस जुटाया। उन्होंने यह मान लिया कि वह तरुणी मोहिनी-मूर्ति वहाँ पर उन सबके बीच (असुर, देवता, गन्धर्व इत्यादि) अपने लिए पति की खोज करने आयी है।

नूनं त्वं विधिना सुभ्रूः प्रेषितासि शरीरिणाम् ।
सर्वेन्द्रियमनःप्रीतिं विधातुं सघृणेन किम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

नूनम्—निस्सन्देह; त्वम्—तुम; विधिना—विधाता द्वारा; सु-भ्रूः—हे सुन्दर भौंहों वाली; प्रेषिता—भेजी गई; असि—तुम हो; शरीरिणाम्—समस्त देहधारी जीवों का; सर्व—सभी; इन्द्रिय—इन्द्रियों; मनः—तथा मन को; प्रीतिम्—अच्छी लगने वाली; विधातुम्—तृप्त करने के लिए; स-घृणेन—अपनी अहैतुकी कृपा से; किम्—क्या।

हे सुन्दर भौहों वाली सुन्दरी! निश्चय ही, विधाता ने अपनी अहैतुकी कृपा से तुम्हें हम लोगों की इन्द्रियों और मनों को प्रसन्न करने के लिए भेजा है। क्या यह तथ्य नहीं है?

सा त्वं नः स्पर्धमानानामेकवस्तुनि मानिनि ।
ज्ञातीनां बद्धवैराणां शं विधत्स्व सुमध्यमे ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

सा—जैसी तुम हो; त्वम्—तुम; नः—हम सभी असुरों के; स्पर्धमानानाम्—जो अधिकाधिक शत्रु बनते जा रहे हैं, उनके; एक-वस्तुनि—एक वस्तु में (अमृत-पात्र में); मानिनि—हे प्रतिष्ठित सुन्दरी; ज्ञातीनाम्—अपने परिवार वालों में; बद्ध-वैराणाम्—अधिकाधिक शत्रु बनकर; शम्—कल्याण; विधत्स्व—सम्पन्न करो; सु-मध्यमे—हे पतली कमर वाली सुन्दरी।

इस समय हम लोग एक ही बात को—अमृत घट को—लेकर परस्पर शत्रुता में मग्न हैं। यद्यपि हम एक ही कुल में उत्पन्न हुए हैं फिर भी हममें शत्रुता बढ़ती ही जा रही है। अतएव हे क्षीण कटि वाली सुप्रतिष्ठित सुन्दरी! हमारी आपसे प्रार्थना है कि आप हमारे इस झगड़े को निपटाने की कृपा करें।

तात्पर्य : असुर लोग समझ गये थे कि उस सुन्दरी ने उन सब का मन मोह लिया था। अतएव उन्होंने एक स्वर से उससे प्रार्थना की कि वह उनके झगड़े का निपटारा करने के लिए मध्यस्था की

भूमिका निभाए।

वयं कश्यपदायादा भ्रातरः कृतपौरुषाः ।
विभजस्व यथान्यायं नैव भेदो यथा भवेत् ॥ ७॥

शब्दार्थ

वयम्—हम सभी; कश्यप-दायादाः—कश्यप मुनि के वंशज; भ्रातरः—हम सभी भाई हैं; कृत-पौरुषाः—हम सभी समर्थ एवं दक्ष हैं; विभजस्व—जरा बाँट दें; यथा-न्यायम्—न्यायपूर्वक; न—नहीं; एव—निश्चय ही; भेदः—पक्षपात; यथा—जिस तरह; भवेत्—हो सके।

हम सभी देवता तथा असुर दोनों ही एक ही पिता कश्यप की सन्तानें हैं और इस तरह से भाई-भाई हैं। किन्तु मतभेद के कारण हम अपना-अपना पराक्रम दिखला रहे हैं। अतएव आपसे हमारी विनती है कि हमारे झगड़े का निपटारा कर दें और इस अमृत को हममें बराबर-बराबर बाँट दें।

इत्युपामन्त्रितो दैत्यैर्मायायोषिद्वपुर्हरिः ।
प्रहस्य रुचिरापाङ्गैर्निरीक्षन्निदमब्रवीत् ॥ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; उपामन्त्रितः—अनुरोध किये जाने पर; दैत्यैः—असुरों के द्वारा; माया-योषित्—मायावी स्त्री ने; वपुः हरिः—भगवान् की अवतार; प्रहस्य—हँसते हुए; रुचिर—सुन्दर; अपाङ्गैः—स्त्री-सुलभ हाव भाव दिखा कर; निरीक्षन्—उनको देखते हुए; इदम्—ये शब्द; अब्रवीत्—कहे।

असुरों द्वारा इस प्रकार प्रार्थना किये जाने पर सुन्दरी का रूप धारण किये हुए भगवान् हँसने लगे। फिर स्त्री-सुलभ मोहक हावभाव से उनकी ओर देखते हुए उस सुन्दरी ने इस प्रकार कहा।

श्रीभगवानुवाच
कथं कश्यपदायादः पुंश्चल्यां मयि सङ्गताः ।
विश्वासं पण्डितो जातु कामिनीषु न याति हि ॥ ९॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—मोहिनी-मूर्ति के रूप में भगवान् ने कहा; कथम्—ऐसा कैसे है; कश्यप-दायादाः—तुम सभी कश्यप मुनि के वंशज हो; पुंश्चल्याम्—मनुष्यों के मनों को विचलित करने वाली वेश्या को; मयि—मेरी; सङ्गताः—संगति में आये हो; विश्वासम्—विश्वास; पण्डितः—विद्वान; जातु—किसी भी समय; कामिनीषु—स्त्री में; न—नहीं; याति—होता है; हि—निस्सन्देह।

मोहिनी-रूप भगवान् ने असुरों से कहा : हे कश्यपमुनि के पुत्रो! मैं तो एक वेश्या हूँ। तुम लोग किस तरह मुझ पर इतना विश्वास कर रहे हो? विद्वान पुरुष कभी स्त्री पर विश्वास नहीं करते।

तात्पर्य : महान् राजनीतिज्ञ तथा नीतिवेत्ता चाणक्य पण्डित ने कहा है—*विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च*—स्त्री या राजनीतिज्ञ पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। इस प्रकार स्त्री का रूप धारण किये हुए भगवान् ने असुरों को सचेत किया कि वे उस पर अधिक विश्वास न करें क्योंकि वह उन्हें अन्ततः धोखा देने के लिए मोहिनी रूप में प्रकट हुई हैं। अप्रत्यक्ष रूप में उसने उनके समक्ष प्रकट होने का अपना प्रयोजन प्रकट करते हुए कश्यप के पुत्रों से कहा ''यह सब क्या है ? तुम सभी एक महान् ऋषि की सन्तानें हो; फिर भी तुम ऐसी स्त्री पर विश्वास कर रहे हो जो अपने पिता या पति द्वारा सुरक्षा के अभाव में वेश्या की तरह इधर-उधर घूम रही है? सामान्यतया स्त्रियों पर विश्वास नहीं करना चाहिए; तो ऐसी स्त्री का क्या कहना जो एक वेश्या की भ्रान्ति इधर उधर घूम रही हो,'' इस प्रसंग में *कामिनी* शब्द महत्त्वपूर्ण है। स्त्रियाँ, और वह भी सुन्दर तरुण स्त्रियाँ, मनुष्य की सुप्त कामवासना को जगाती हैं। अतएव *मनुसंहिता* के अनुसार प्रत्येक स्त्री की रक्षा या तो उसके पति या पिता द्वारा या उसके सयाने पुत्रों द्वारा की जानी चाहिए। ऐसे संरक्षण के अभाव में स्त्री का शोषण होगा। वास्तव में स्त्रियाँ पुरुषों द्वारा भोगी जाना पसन्द करती हैं। ज्योंही कोई स्त्री पुरुष द्वारा भोगी जाती है, वह सामान्य वेश्या बन जाती है। इसी की व्याख्या मोहिनी-मूर्ति रूप भगवान् द्वारा हुई है।

सालावृकाणां स्त्रीणां च स्वैरिणीनां सुरद्विषः ।
सख्यान्याहुरनित्यानि नूत्नं नूत्नं विचिन्वताम् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

सालावृकाणाम्—बन्दरों, सियारों तथा कुत्तों की; स्त्रीणाम् च—तथा स्त्रियों की; स्वैरिणीनाम्—विशेष रूप से स्वच्छन्द स्त्रियों की; सुर-द्विषः—हे असुरो; सख्यानि—मित्रता; आहुः—कही जाती है; अनित्यानि—क्षणिक; नूत्नम्—नये मित्र; नूत्नम्—नये मित्र; विचिन्वताम्—चिन्तन करने वालों की।

हे असुरो! जिस प्रकार बन्दर, सियार तथा कुत्ते अपने यौन सम्बन्धों में अस्थिर होते हैं और नित्य ही नया मित्र चाहते हैं उसी प्रकार जो स्त्रियाँ स्वच्छन्द होती हैं (स्वैरिणी) वे नित्य नया मित्र ढूँढती हैं। ऐसी स्त्री की मित्रता कभी स्थायी नहीं होती। यह विद्वानों का अभिमत है।

श्रीशुक उवाच
इति ते क्ष्वेलितैस्तस्या आश्वस्तमनसोऽसुराः ।
जहसुर्भावगम्भीरं ददुश्चामृतभाजनम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; ते—वे असुर; क्ष्वेलितैः—परिहास करने से; तस्याः—मोहिनी-मूर्ति के; आश्वस्त—कृतज्ञ, विश्वास युक्त; मनसः—मनों से; असुराः—सारे असुर; जहसुः—हँस पड़े; भाव-गम्भीरम्—यद्यपि मोहिनी-मूर्ति गम्भीर थी; ददुः—दे दिया; च—भी; अमृत-भाजनम्—अमृत का पात्र।

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : मोहिनी-मूर्ति के परिहासपूर्ण शब्द सुनकर सारे असुर अत्यधिक आश्वस्त हुए। वे गम्भीर रूप से हँस पड़े और अन्ततः उन्होंने वह अमृत घट उसके हाथों में थमा दिया।

तात्पर्य : मोहिनी का रूप धारण किये हुए भगवान् कोई हँसी-मजाक नहीं कर रहे थे वरन् गम्भीर बातें कर रहे थे। लेकिन असुर मोहिनी-मूर्ति के शारीरिक अंगों पर मोहित होने के कारण उनकी बातों को हँसी समझ रहे थे और उन्होंने आश्वस्त होकर उस अमृत-पात्र को मोहिनी के हाथों में सौंप दिया। इस तरह मोहिनी मूर्ति भगवान् बुद्ध के समान है, जो *सम्मोहाय सुरद्विषाम्* अर्थात् असुरों को धोखा देने के लिए प्रकट हुई। *सुरद्विषाम्* शब्द उनका सूचक है, जो देवताओं या भक्तों से ईष्या रखते हैं। कभी-कभी भगवान् का अवतार नास्तिकों को धोखा देता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि मोहिनी-मूर्ति असुरों से वास्तविक बातें कह रही थी, किन्तु वे उसके वचनों को ठिठोली समझ रहे थे। निस्सन्देह, वे मोहिनी-मूर्ति की निष्कपटता के प्रति इतने आश्वस्त थे कि उन्होंने तुरन्त ही अमृत-पात्र उसको सौंप दिया मानो वे उसे यह छूट दे रहे हों कि वह इस अमृत का चाहे जो करे—चाहे बाँट दे, चाहे फेंक दे या उनको दिये बिना स्वयं ही पी जाये।

ततो गृहीत्वामृतभाजनं हरि-
र्बभाष ईषत्स्मितशोभया गिरा ।
यद्यभ्युपेतं क्व च साध्वसाधु वा
कृतं मया वो विभजे सुधामिमाम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; गृहीत्वा—लेकर; अमृत-भाजनम्—अमृत-पात्र को; हरिः—मोहिनी के रूप में हरि ने; बभाष—कहा; ईषत्—कुछ-कुछ; स्मित-शोभया गिरा—हँसती अदा से तथा शब्दों से; यदि—यदि; अभ्युपेतम्—स्वीकार करने का वचन; क्व च—जो भी हो; साधु असाधु वा—अच्छा या बुरा; कृतम् मया—मेरे द्वारा किया गया; वः—तुम्हारे लिए; विभजे—तुम्हें समुचित भाग प्रदान करूँगी; सुधाम्—अमृत को; इमाम्—इस।

तत्पश्चात् अमृत घट को अपने हाथ में लेकर भगवान् थोड़ा मुस्काये और फिर आकर्षक शब्दों में बोले। उस मोहिनी-मूर्ति ने कहा : मेरे प्रिय असुरो! मैं जो कुछ भी करूँ, चाहे वह खरा हो या खोटा, यदि तुम उसे स्वीकार करो तब मैं इस अमृत को तुम लोगों में बाँटने का

उत्तरदायित्व ले सकती हूँ।

तात्पर्य : भगवान् किसी के आदेश से बन्धे नहीं हैं। वे जो कुछ करते है, वह परम है। निस्सन्देह, असुर भगवान् की माया से मोहग्रस्त हो गए थे; अत: मोहिनी–मूर्ति ने उनसे वचन ले लिया कि वह जो कुछ भी करेगी, उन्हें मान्य होगा।

इत्यभिव्याहृतं तस्या आकर्ण्यासुरपुङ्गवाः ।
अप्रमाणविदस्तस्यास्तत्तथेत्यन्वमंसत ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; अभिव्याहृतम्—कहे गये शब्द; तस्याः—उसके; आकर्ण्य—सुनकर; असुर-पुङ्गवाः—असुरों में प्रधान; अप्रमाण-विदः—चूँकि वे सभी मूर्ख थे; तस्याः—उसका; तत्—वे वचन; तथा—ऐसा ही हो; इति—इस प्रकार; अन्वमंसत—स्वीकार करने के लिए राजी हो गये।.

असुरों के प्रधान निर्णय लेने में अधिक पटु नहीं थे। अतएव मोहिनी मूर्ति के मधुर शब्दों को सुनकर उन्होंने तुरन्त हामी भर दी और कहा ''हाँ, आपने जो कहा है, वह बिल्कुल ठीक है।'' इस तरह असुर उसका निर्णय स्वीकार करने के लिए राजी हो गए।

अथोपोष्य कृतस्नाना हुत्वा च हविषानलम् ।
दत्त्वा गोविप्रभूतेभ्यः कृतस्वस्त्ययना द्विजैः ॥ १४॥
यथोपजोषं वासांसि परिधायाहतानि ते ।
कुशेषु प्राविशन्सर्वे प्रागग्रेष्वभिभूषिताः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; उपोष्य—उपवास रखकर; कृत-स्नानाः—स्नान करके; हुत्वा—आहुति डालकर; च—भी; हविषा—घी से; अनलम्—अग्नि में; दत्त्वा—दान देकर; गो-विप्र-भूतेभ्यः—गायों, ब्राह्मणों तथा समस्त जीवों को; कृत-स्वस्त्ययनाः—विधि-विधान सम्पन्न करके; द्विजैः—ब्राह्मणों के द्वारा निश्चित; यथा-उपजोषम्—अपनी रुचि के अनुसार; वासांसि—वस्त्र; परिधाय—पहन कर; आहतानि—उत्तम तथा नवीन; ते—वे सब; कुशेषु—कुश से बने आसनों पर; प्राविशन्—बैठकर; सर्वे—सभी; प्राक्-अग्रेषु—पूर्व की ओर मुख करके; अभिभूषिताः—ठीक से आभूषणों से अलंकृत होकर।.

तब असुरों तथा देवताओं ने उपवास किया। स्नान करने के बाद उन्होंने अग्नि में घी की आहुतियाँ डाली और गायों, ब्राह्मणों तथा समाज के अन्य वर्णों—क्षत्रियों, वैश्यों तथा शूद्रों—को उनकी पात्रता के अनुसार दान दिया। तत्पश्चात् असुरों तथा देवों ने ब्राह्मणों के निर्देशानुसार अनुष्ठान सम्पन्न किये। तब अपनी रुचि के अनुसार नये वस्त्र धारण किये, आभूषणों से अपने-अपने शरीरों को अलंकृत किया और वे पूर्व-दिशा की ओर मुख करके कुशासनों पर बैठ गये।

तात्पर्य : वेदों का आदेश है कि किसी भी अनुष्ठान के पूर्व गंगा, यमुना या समुद्र में स्नान करके

शुद्ध हुआ जाय। तब उसे अनुष्ठान करना चाहिए और अग्नि में घी की आहुति देनी चाहिए। इस श्लोक में *परिधाय आहतानि* शब्द विशेष महत्त्व के हैं। संन्यासी या अनुष्ठान करनेवाले व्यक्ति को सूई से सिले कपड़े पहनना वर्जित है।

प्राङ्मुखेषूपविष्टेषु सुरेषु दितिजेषु च ।
धूपामोदितशालायां जुष्टायां माल्यदीपकैः ॥ १६ ॥

तस्यां नरेन्द्र करभोरुरुशद्दुकूल-
श्रोणीतटालसगतिर्मदविह्वलाक्षी ।
सा कूजती कनकनूपुरशिञ्जितेन
कुम्भस्तनी कलसपाणिरथाविवेश ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

प्राक्-मुखेषु—पूर्व की ओर मुँह किये; उपविष्टेषु—अपने-अपने आसनों पर बैठे; सुरेषु—सारे देवताओं में; दिति-जेषु—असुरों में; च—भी; धूप-आमोदित-शालायाम्—रंगभूमि (सभा-मंडप) जो धूप के धुएँ से पूर्ण थी; जुष्टायाम्—पूर्णतया सजी हुई; माल्य-दीपकैः—फूलों की मालाओं तथा दीपकों से; तस्याम्—उस रंगभूमि (सभा-मंडप) में; नर-इन्द्र—हे राजा; करभ-ऊरुः—हाथी के सूँडों सदृश जाँघों वाली; उशत्-दुकूल—अत्यन्त सुन्दर साड़ी पहने; श्रोणी-तट—गुरु नितम्बों के कारण; अलस-गतिः—धीरे-धीरे पग रखती; मद-विह्वल-अक्षी—जिसकी आँखें युवावस्था के गर्व से बेचैन थीं; सा—वह; कूजती—झंकार करती; कनक-नूपुर—सोने के पायल; शिञ्जितेन—ध्वनि करती; कुम्भ-स्तनी—जल के घट सदृश स्तनों वाली; कलस-पाणिः—हाथ में जल का पात्र लिए; अथ—इस प्रकार; आविवेश—रंगभूमि में प्रविष्ट हुई।

हे राजा! ज्यों ही देवता तथा असुर पूर्व दिशा में मुख करके उस सभा-मण्डप में बैठ गये जो फूल मालाओं तथा बत्तियों से पूर्णतया सजाया गया था और धूप के धुएँ से सुगन्धित हो गया था, उसी समय अत्यन्त सुन्दर साड़ी पहने, पायलों की झनकार करती उस स्त्री ने अत्यन्त गुरु नितम्बों के कारण मन्द गति से चलते हुए उस सभा-मण्डप में प्रवेश किया। उसकी आँखें युवावस्था के मद से विह्वल थीं; उसके स्तन जल से पूर्ण घटों के समान थे; उसकी जाँघें हाथी की सूँड़ जैसी दिखती थीं और वह अपने हाथ में अमृत-पात्र लिए हुए थी।

तां श्रीसखीं कनककुण्डलचारुकर्ण-
नासाकपोलवदनां परदेवताख्याम् ।
संवीक्ष्य सम्मुमुहुरुत्स्मितवीक्षणेन
देवासुरा विगलितस्तनपट्टिकान्ताम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

ताम्—उस; श्री-सखीम्—लक्ष्मी की सखी के समान लगने वाली; कनक-कुण्डल—सुनहले कुण्डलों से युक्त; चारु—अत्यधिक सुन्दर; कर्ण—कान; नासा—नाक; कपोल—गाल; वदनाम्—मुख; पर-देवता-आख्याम्—उस रूप में प्रकट भगवान् को; संवीक्ष्य—उसकी ओर देखकर; सम्मुमुहुः—सारे मोहित हो गये; उत्स्मित—कुछ-कुछ मुस्काते; वीक्षणेन—दृष्टि

डालते हुए; देव-असुराः—सारे देवता तथा असुर; विगलित-स्तन-पट्टिक-अन्ताम्—साड़ी का किनारा स्तनों से खिसक रहा था।

उसकी आकर्षक नाक तथा गालों और सुनहले कुण्डलों से विभूषित कानों ने उसके मुखमण्डल को अतीव सुन्दर बना दिया था। जब वह चलती थी उसकी साड़ी का किनारा उसके स्तनों से खिसक रहा था। जब देवताओं तथा असुरों ने मोहिनी-मूर्ति के इन सुन्दर अंगों को देखा तो वे सब पूरी तरह मोहित हो गये क्योंकि वह उनको तिरछी नजर से देख-देख कर कुछ कुछ मुस्काती जा रही थी।

तात्पर्य : यहाँ पर श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की टिप्पणी है कि मोहिनी-मूर्ति भगवान् का स्त्री रूप है और लक्ष्मी उनकी संगिनी हैं। भगवान् द्वारा धारण किया गया यह रूप लक्ष्मी को चुनौती दे रहा था। लक्ष्मीजी सुन्दर हैं, किन्तु यदि भगवान् स्त्री का रूप धारण करते हैं, तो वे लक्ष्मी की सुन्दरता को भी मात कर देते हैं। ऐसा नहीं है कि नारी होने के कारण लक्ष्मीजी सर्वाधिक सुन्दर हैं। भगवान् इतने सुन्दर हैं कि वे नारी रूप धारण करने पर किसी भी लक्ष्मीदेवी के सौन्दर्य को मात कर सकते हैं।

असुराणां सुधादानं सर्पाणामिव दुर्नयम् ।
मत्वा जातिनृशंसानां न तां व्यभजदच्युतः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

असुराणाम्—असुरों का; सुधा-दानम्—अमृत देना; सर्पाणाम्—साँपों का; इव—सदृश; दुर्नयम्—गलत अनुमान; मत्वा—इस प्रकार सोचकर; जाति-नृशंसानाम्—प्रकृति से अत्यधिक ईर्ष्यालुओं का; न—नहीं; ताम्—अमृत को; व्यभजत्—भाग दे दिया; अच्युतः—अच्युत भगवान् ने।

असुर स्वभाव से सर्पों के समान कुटिल होते हैं। अतएव उन्हें अमृत में से हिस्सा देना तनिक भी सम्भव नहीं था क्योंकि यह सर्प को दूध पिलाने के समान घातक होता। यह सोचकर अच्युत भगवान् ने असुरों को अमृत में हिस्सा नहीं दिया।

तात्पर्य : कहा गया है—*सर्पः क्रूरः खलः क्रूरः सर्पात् क्रूरतरः खलः*—सर्प अत्यन्त कुटिल तथा ईर्ष्यालु होता है और इसी तरह असुर होता है। *मन्त्रौषधिवशः सर्पः खलः केन निवार्यते*—सर्प को तो मंत्र अर्थात् जड़ी बूटियों के बल से वश में किया जा सकता है लेकिन ईर्ष्यालु कुटिल मनुष्य को किसी भी तरह वश में नहीं किया जा सकता। इस तर्क के अनुसार भगवान् ने सोचा कि असुरों को अमृत देना मूर्खता होगी।

कल्पयित्वा पृथक्पङ्क्तीरुभयेषां जगत्पतिः ।
तांश्चोपवेशयामास स्वेषु स्वेषु च पङ्क्तिषु ॥ २० ॥

शब्दार्थ

कल्पयित्वा—व्यवस्था करके; पृथक् पङ्क्तीः—अलग-अलग पंक्तियाँ; उभयेषाम्—देवता तथा असुर दोनों की; जगत्-पतिः—ब्रह्माण्ड के स्वामी ने; तान्—उन सबों को; च—तथा; उपवेशयाम् आस—बैठा दिया; स्वेषु स्वेषु—अपने-अपने स्थानों पर; च—भी; पङ्क्तिषु—पंक्तियों में।

मोहिनी-मूर्ति रूपी ब्रह्माण्ड के स्वामी भगवान् ने देवताओं तथा असुरों को बैठने के लिए अलग-अलग पंक्तियों की व्यवस्था कर दी और उन्हें अपने-अपने पद के अनुसार बैठा दिया।

दैत्यान्गृहीतकलसो वञ्चयन्नुपसञ्चरैः ।
दूरस्थान्पाययामास जरामृत्युहरां सुधाम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

दैत्यान्—असुरों को; गृहीत-कलसः—अमृत का घट पकड़े भगवान् ने; वञ्चयन्—ठगते हुए; उपसञ्चरैः—मीठे वचनों से; दूर-स्थान्—देवता, जो दूर बैठे थे; पाययाम् आस—पिलाया; जरा-मृत्यु-हराम्—अशक्तता, बुढ़ापा तथा मृत्यु को हरने वाले; सुधाम्—ऐसे अमृत को।

अपने हाथों में अमृत का कलश लिये वह सर्वप्रथम असुरों के निकट आई और उसने अपनी मधुर वाणी से उन्हें सन्तुष्ट किया और इस तरह उनके अमृत के भाग से उन्हें वंचित कर दिया। तब उसने दूरी पर बैठे देवताओं को अमृत पिला दिया जिससे वे अशक्तता, बुढ़ापा तथा मृत्यु से मुक्त हो सकें।

तात्पर्य : मोहिनी-मूर्ति भगवान् ने देवताओं को दूर बैठाया। तब वह असुरों के पास पहुँची और उनसे अत्यधिक अदा से बोली जिससे वे अपने को उससे बात करने में भाग्यशाली समझें। चूँकि मोहिनी-मूर्ति ने देवताओं को दूरस्थ स्थान पर बिठाया था अतएव असुरों ने सोचा कि देवताओं को नाममात्र का अमृत प्राप्त होगा और मोहिनी-मूर्ति हम पर इतनी प्रसन्न है कि सारा अमृत हमें ही पिला देगी। *वञ्चयन्नुपसञ्चरैः* शब्द सूचित करते हैं कि भगवान् की सारी नीति असुरों को मधुर शब्द बोलकर ठगने की थी। भगवान् की इच्छा एकमात्र देवताओं को अमृत बाँटने की थी।

ते पालयन्तः समयमसुराः स्वकृतं नृप ।
तूष्णीमासन्कृतस्नेहाः स्त्रीविवादजुगुप्सया ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

ते—वे; पालयन्तः—बनाये हुए; समयम्—सन्तुलन; असुराः—असुरगण; स्व-कृतम्—स्वनिर्मित; नृप—हे राजा; तूष्णीम् आसन्—मौन रहे; कृत-स्नेहाः—मोहिनी-मूर्ति के प्रति आसक्ति उत्पन्न होने से; स्त्री-विवाद—स्त्री से मतभेद रखते हुए; जुगुप्सया—ऐसे कृत्य को गर्हित समझते हुए।

हे राजा! चूँकि असुरों ने वचन दिया था कि वह स्त्री जो कुछ भी करेगी, चाहे न्यायपूर्ण हो या अन्याय-पूर्ण, उसे वे स्वीकार करेंगे, अतएव अब अपना वचन रखने, अपना सन्तुलन दिखाने तथा स्त्री से झगड़ा करने से बचने के लिए वे मौन रहे।

तस्यां कृतातिप्रणयाः प्रणयापायकातराः ।
बहुमानेन चाबद्धा नोचुः किञ्चन विप्रियम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

तस्याम्—मोहिनी-मूर्ति की; कृत-अति-प्रणयाः—घनिष्ठ मैत्री होने से; प्रणय-अपाय-कातराः—इस भय से भयभीत कि उसके साथ उनकी मैत्री कहीं टूट न जाये; बहु-मानेन—अत्यधिक सम्मान तथा आदर के साथ; च—भी; आबद्धाः—उससे अत्यधिक आसक्त होकर; न—नहीं; ऊचुः—उन्होंने कहा; किञ्चन—कुछ भी नहीं; विप्रियम्—जिससे मोहिनी-मूर्ति उनसे अप्रसन्न हो जाये।

असुरों को मोहिनी-मूर्ति से प्रेम तथा एक प्रकार का विश्वास हो गया था और उन्हें भय था कि उनके सम्बन्ध कहीं डगमगा न जाएँ। अतएव उन्होंने उसके वचनों का आदर-सम्मान किया और ऐसा कुछ भी नहीं कहा जिससे उसके साथ उनकी मित्रता में बाधा पड़े।

तात्पर्य : असुरगण मोहिनी-मूर्ति की छलपूर्ण युक्तियों तथा मैत्रीपूर्ण शब्दों से इतने मुग्ध हो गए कि यद्यपि देवताओं को सर्वप्रथम अमृत बाँटा गया तो भी वे मीठे वचनों से ही शान्त हो गए। भगवान् ने असुरों से कहा, "देवतागण अत्यन्त कंजूस हैं, अतएव वे पहले ही अमृत पी लेने के उत्सुक हैं। अतएव उन्हें ही पहले पी लेने दो। किन्तु तुम उन जैसे नहीं हो, अतएव तुम थोड़े समय तक प्रतीक्षा कर सकते हो। तुम सभी वीर हो, और मुझसे इतने प्रसन्न हो। तुम्हारे लिए श्रेयस्कर होगा कि जब तक देवता अमृत पान न कर लें तब तक तुम लोग प्रतीक्षा करो।"

देवलिङ्गप्रतिच्छन्नः स्वर्भानुर्देवसंसदि ।
प्रविष्टः सोमममपिबच्चन्द्रार्काभ्यां च सूचितः ॥ २४॥

शब्दार्थ

देव-लिङ्ग-प्रतिच्छन्नः—देवता के वस्त्र से अपने को आच्छादित करके; स्वर्भानुः—राहु ने (जो सूर्य तथा चन्द्रमा पर आक्रमण करके उन्हें ग्रस लेता है); देव-संसदि—देवताओं के समूह में; प्रविष्टः—घुस करके; सोमम्—अमृत; अपिबत्—पी लिया; चन्द्र-अर्काभ्याम्—चन्द्रमा तथा सूर्य दोनों के द्वारा; च—तथा; सूचितः—बतलाये जाने पर।

सूर्य तथा चन्द्रमा को ग्रसने वाला असुर राहु अपने आपको देवता के वस्त्र से आच्छादित

करके देवताओं के समूह में प्रविष्ट हो गया और किसी के द्वारा, यहाँ तक कि भगवान् के द्वारा भी, जाने बिना अमृत पीने लगा। किन्तु चन्द्रमा तथा सूर्य, राहु से स्थायी शत्रुता के कारण, स्थिति को भांप गये। इस तरह राहु पहचान लिया गया।

तात्पर्य : मोहिनी-मूर्ति रूप भगवान् सारे असुरों को मोहित करने में सफल हो गये, किन्तु राहु इतना चतुर था कि वह मोहित नहीं हुआ। वह समझ गया कि मोहिनी-मूर्ति असुरों को ठग रही है अतएव उसने अपने वस्त्र बदल लिए; उसने देवता का वेश बना लिया और देवताओं के समूह में जा बैठा। यहाँ पर यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि आखिर राहु को भगवान् क्यों नहीं पहचान पाये? कारण यह था कि भगवान् अमृत पीने का मजा चखाना चाहते थे। यह अगले श्लोकों से स्पष्ट हो जायेगा। किन्तु चन्द्रमा तथा सूर्य राहु से सदैव सतर्क रहते थे। अतएव जब राहु देवताओं के समूह में प्रविष्ट हुआ तो उन्होंने तुरन्त उसे पहचान लिया और तब भगवान् भी उससे सतर्क हो गये।

चक्रेण क्षुरधारेण जहार पिबतः शिरः ।
हरिस्तस्य कबन्धस्तु सुधयाप्लावितोऽपतत् ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

चक्रेण—चक्र से; क्षुर-धारेण—छुरे जैसा तेज; जहार—काट दिया; पिबतः—अमृत पीते हुए; शिरः—सिर; हरिः—भगवान् ने; तस्य—राहु का; कबन्धः तु—किन्तु शिरविहीन शरीर; सुधया—अमृत के द्वारा; अप्लावितः—स्पर्श न होने से; अपतत्—मृत होकर गिर पड़ा।

भगवान् हरि ने छुरे के समान तेज धार वाले अपने चक्र को चला कर तुरन्त ही राहु का सिर छिन्न कर दिया। जब राहु का सिर उसके शरीर से कट गया तो वह शरीर अमृत का स्पर्श न करने के कारण जीवित नहीं रह पाया।

तात्पर्य : जब मोहिनी-मूर्ति रूप भगवान् ने राहु के सिर को उसके शरीर से छिन्न कर दिया तो सिर तो जीवित रहा, किन्तु शरीर मृत हो गया। राहु मुख से अमृत पी रहा था और इसके पूर्व कि अमृत शरीर में प्रवेश करे, उसका सिर काट दिया गया। इस तरह राहु का सिर तो जीवित रहा, किन्तु उसका शरीर मृत हो गया। भगवान् द्वारा सम्पन्न यह अद्भुत कार्य यह दिखाने के लिए था कि अमृत अद्भुत देव-आहार है।

शिरस्त्वमरतां नीतमजो ग्रहमचीक्लिपत् ।

यस्तु पर्वणि चन्द्रार्कावभिधावति वैरधीः ॥ २६॥

शब्दार्थ

शिरः—सिर; तु—निस्सन्देह; अमरताम्—अमरता; नीतम्—प्राप्त करके; अजः—ब्रह्माजी; ग्रहम्—एक ग्रह के रूप में; अचीक्लृपत्—पहचान लिया; यः—वही राहु; तु—निस्सन्देह; पर्वणि—पूर्णिमा तथा अमावस्या में; चन्द्र-अर्कौ—चन्द्रमा तथा सूर्य दोनों का; अभिधावति—पीछा करता है; वैर-धीः—शत्रुता के कारण।

किन्तु अमृत का स्पर्श करने के कारण राहु का सिर अमर हो गया। इस प्रकार ब्रह्माजी ने राहु के सिर को एक ग्रह (लोक) के रूप में मान लिया। चूँकि राहु सूर्य तथा चन्द्रमा का शाश्वत वैरी है, अतः वह पूर्णिमा तथा अमावस्या की रात्रियों में उन पर सदैव आक्रमण करने का प्रयत्न करता है।

तात्पर्य : चूँकि राहु अमर हो गया था इसलिए ब्रह्माजी ने उसे सूर्य या चन्द्रमा जैसे एक ग्रह अथवा लोक के रूप में स्वीकार कर लिया। किन्तु राहु सूर्य तथा चन्द्रमा का नित्य शत्रु होने के कारण पूर्णमासी तथा अमावस्या की रातों में उन पर बारम्बार आक्रमण करता है।

पीतप्रायेऽमृते देवैर्भगवान्लोकभावनः ।
पश्यतामसुरेन्द्राणां स्वं रूपं जगृहे हरिः ॥ २७॥

शब्दार्थ

पीत-प्राये—जब पीना लगभग समाप्त हो गया; अमृते—अमृत का; देवैः—देवताओं द्वारा; भगवान्—मोहिनी-मूर्ति के रूप में भगवान्; लोक-भावनः—तीनों लोकों के पालक तथा शुभचिन्तक; पश्यताम्—देखते-देखते; असुर-इन्द्राणाम्—अपने सेनापतियों सहित सारे असुरों के; स्वम्—अपने; रूपम्—रूप को; जगृहे—प्रकट किया; हरिः—भगवान् ने।

भगवान् तीनों लोकों के सर्वश्रेष्ठ मित्र तथा शुभचिन्तक हैं। इस तरह जब देवताओं ने अमृत पीना प्रायः समाप्त किया तब भगवान् ने समस्त असुरों के समक्ष अपना वास्तविक रूप प्रकट कर दिया।

एवं सुरासुरगणाः समदेशकाल-
हेत्वर्थकर्ममतयोऽपि फले विकल्पाः ।
तत्रामृतं सुरगणाः फलमञ्जसापु-
र्यत्पादपङ्कजरजःश्रयणान्न दैत्याः ॥ २॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; सुर—देवता; असुर-गणाः—तथा असुर; सम—समान; देश—स्थान; काल—समय; हेतु—कारण; अर्थ—उद्देश्य; कर्म—कर्म; मतयः—अभिलाषा; अपि—यद्यपि एक; फले—फल में; विकल्पाः—समान नहीं; तत्र—वहाँ पर; अमृतम्—अमृत; सुर-गणाः—देवता; फलम्—फल; अञ्जसा—आसानी से, पूरी तरह, प्रत्यक्षतः; आपुः—प्राप्त; यत्—जिससे; पाद-पङ्कज—भगवान् के चरणकमलों की; रजः—केसर की धूलि; श्रयणात्—आश्रय ग्रहण करने या वर प्राप्त करने से; न—नहीं; दैत्याः—असुरगण।

यद्यपि देवताओं तथा असुरों के देश, काल, कारण, उद्देश्य, कर्म तथा अभिलाषा एक-जैसे थे, किन्तु देवताओं को एक प्रकार का फल मिला और असुरों को दूसरे प्रकार का। चूँकि देवता सदैव भगवान् के चरणकमलों की धूलि की शरण में रहते हैं अतएव वे बड़ी आसानी से अमृत पी सके और उसका फल भी पा सके। किन्तु भगवान् के चरणकमलों का आश्रय न ग्रहण करने के कारण असुर मनवांछित फल प्राप्त करने में असमर्थ रहे।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (४.११) में कहा गया है—*ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्*—भगवान् परम न्यायकर्ता हैं, जो विभिन्न मनुष्यों को उनके चरणकमलों की शरण में जाने के अनुसार पुरस्कृत करते या दण्ड देते हैं। अतएव यह वस्तुतः देखा जा सकता है कि यद्यपि *कर्मी* तथा *भक्त* एक ही स्थान पर, एक ही काल में, एक ही जैसी शक्ति तथा एक सी अभिलाषा से कार्य करते हैं, किन्तु उन्हें पृथक्-पृथक् फल प्राप्त होते हैं। कर्मी जन्म-मृत्यु के चक्र में बँधकर विभिन्न शरीरों में देहान्तर करते हैं—कभी ऊपर जाते हैं, तो कभी नीचे और इस तरह *कर्मचक्र* में अपने कर्मों का फल भोगते हैं। किन्तु भक्त भगवान् के चरणों में पूर्णतया समर्पण करने के कारण कभी भी अपने प्रयासों में असफल नहीं होते। यद्यपि वे बाह्य रूप से कर्मियों की तरह ही कर्म करते हैं, किन्तु वे भगवद्धाम को वापस जाते हैं और प्रत्येक प्रयास में सफल होते हैं। असुरों या नास्तिकों को अपने प्रयासों पर विश्वास रहता है, फिर भी वे अहर्निश कठोर परिश्रम करके भी अपने भाग्य से अधिक प्राप्त नहीं कर पाते। किन्तु भक्त कर्मफलों को पार करके बिना प्रयास के ही अद्‌भुत फल प्राप्त कर सकते हैं। यह भी कहा गया है—*फलेन परिचीयते*—किसी कार्य की सफलता या असफलता उसके फल से जानी जाती है। ऐसे अनेक कर्मी होते हैं, जो भक्तों के वेश में रहते हैं, किन्तु भगवान् उनके प्रयोजन को जान सकते हैं। कर्मीजन भगवान् की सम्पत्ति का उपयोग अपनी स्वार्थपूर्ण इन्द्रियतृप्ति के लिए करना चाहते हैं, किन्तु भक्त उसे ईश्वर की सेवा में लगाना चाहते हैं। अतएव भक्त सदैव कर्मी से पृथक् रहता है भले ही कर्मीजन भक्तों का वेश बना लें। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (३.९) में यों हुई है—*यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।* जो भगवान् विष्णु के लिए कर्म करता है, वह इस भौतिक जगत से मुक्त होता है और इस शरीर को त्यागकर भगवद्धाम को जाता है। किन्तु कर्मी बाह्यरूप से भक्त-जैसा कर्म करने पर भी अपने अभक्तिमय कर्म में फँस जाता है और इस तरह संसार के क्लेशों को भोगता है। इस तरह

कर्मियों तथा भक्तों द्वारा प्राप्त फलों से भगवान् का अस्तित्व समझा जा सकता है, जो कर्मियों तथा ज्ञानियों के साथ भक्तों की तुलना में भिन्न रूप से व्यवहार करते हैं। अत: *श्रीचैतन्य-चरितामृत* का लेखक कहता है—

कृष्णभक्त—निष्काम, अतएव 'शान्त'

भुक्ति-मुक्ति-सिद्धि-कामी—सकलि 'अशान्त'

इन्द्रियतृप्ति चाहने वाले कर्मी, ब्रह्म में विलीन होने की मुक्ति की अभिलाषा करने वाले ज्ञानी तथा योगशक्ति में भौतिक सफलता की खोज करने वाले योगी—ये सभी अशान्त रहते हैं और अन्ततोगत्वा निराश हो जाते हैं। किन्तु भक्त, जो अपने किसी निजी लाभ की आशा नहीं करता और जिसकी एकमात्र अभिलाषा भगवान् की महिमा को प्रसारित करने की रहती है, बिना कठिन श्रम के भक्तियोग के समस्त शुभफल पाता है।

यद्युज्यतेऽसुवसुकर्ममनोवचोभि-
र्देहात्मजादिषु नृभिस्तदसत्पृथक्त्वात् ।
तैरेव सद्भवति यत्क्रियतेऽपृथक्त्वात्
सर्वस्य तद्भवति मूलनिषेचनं यत् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

यत्—जो भी; युज्यते—सम्पन्न किया जाता है; असु—जीवन की रक्षा के लिए; वसु—सम्पत्ति की रक्षा; कर्म—कर्म; मन:—मन के कार्यों से; वचोभि:—शाब्दिक कार्यों से; देह-आत्म-ज-आदिषु—अपने शरीर या परिवार के लिए; नृभि:—मनुष्यों के द्वारा; तत्—वह; असत्—क्षणभंगुर; पृथक्त्वात्—भगवान् से वियोग के कारण; तै:—उन्हीं कार्यों के द्वारा; एव—निस्सन्देह; सत् भवति—वास्तविक तथा स्थायी बनता है; यत्—जो; क्रियते—सम्पन्न किया जाता है; अपृथक्त्वात्—वियोग न होने से; सर्वस्य—हर एक के लिए; तत् भवति—लाभप्रद बन जाता है; मूल-निषेचनम्—वृक्ष की जड़ को सींचने की तरह; यत्—जो।

मानव समाज में मनुष्य की सम्पत्ति तथा उसके जीवन की सुरक्षा के लिए मनसावाचाकर्मणा विविध कार्य किये जाते हैं, किन्तु ये सब कार्य शरीर के लिए या इन्द्रियतृप्ति के लिए ही किये जाते हैं। ये सारे कार्यकलाप भक्ति से पृथक् होने के कारण निराशाजनक होते हैं। किन्तु जब ये ही कार्य भगवान् को प्रसन्न करने के लिए किये जाते हैं, तो उनके लाभकारी फल सब में बाँट दिए जाते हैं जिस तरह वृक्ष की जड़ में पानी डालने से वह समूचे वृक्ष में वितरित हो जाता है।

तात्पर्य : भौतिकतावादी कार्यकलापों एवं कृष्णभावनामृत के लिए सम्पन्न कार्यों में अन्तर यही

होता है। सारा जगत सक्रिय है और इसमें कर्मी, ज्ञानी, योगी तथा भक्त सभी सम्मिलित हैं। किन्तु भक्तों के कार्यों के अतिरिक्त सारे कार्यकलाप निराशा एवं समय तथा शक्ति के अपव्यय में समाप्त होते हैं। *मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः*—जो भक्त नहीं है उसकी आशाएँ, उसके कर्म, तथा उसका ज्ञान सभी निराशाजनक होते हैं। अभक्त अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए या अपने परिवार, समाज, जाति या राष्ट्र के लिए कर्म करता है, किन्तु ऐसे सारे कार्य भगवान् से पृथक् होने के कारण *असत्* माने जाते हैं। *असत्* का अर्थ है बुरा, या क्षणिक तथा *सत्* का अर्थ है अच्छा तथा स्थायी। कृष्ण की तुष्टि के लिए किये गये कार्य स्थायी तथा उत्तम होते हैं, किन्तु असत् कार्य भले ही परोपकार या राष्ट्रवाद माने जाए, यह 'वाद' या वह 'वाद' कभी स्थायी परिणाम नहीं देता, फलतः निकृष्ट हैं। कृष्णभावनामृत में किया गया थोड़ा सा कार्य भी स्थायी निधि है और सर्वशुभ है क्योंकि यह सर्वकल्याणकारी भगवान् कृष्ण के लिए किया जाता है, जो हर एक के सुहृद हैं (*सुहृदं सर्वभूतानाम्*)। भगवान् ही हर एक वस्तु के एकमात्र भोक्ता तथा स्वामी हैं (*भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्*) अतएव भगवान् के लिए किया गया कोई भी कार्य स्थायी होता है। ऐसे कर्मों के फलस्वरूप कर्ता तुरन्त पहचान लिया जाता है। *न च तस्मान् मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।* ऐसा भक्त, भगवान् का पूर्ण ज्ञान रखने के कारण तुरन्त दिव्य बन जाता है यद्यपि ऊपर से वह भौतिकतावादी कार्यों में व्यस्त दिखाई दे। भौतिकतावादी कर्म तथा आध्यात्मिक कर्म का अन्तर यही है कि भौतिक कर्म अपनी निजी इन्द्रियतृप्ति के लिए किया जाता है, जबकि आध्यात्मिक कर्म भगवान् की दिव्य इन्द्रियों को तुष्ट करने के लिए किये जाते हैं। आध्यात्मिक कर्म से हर एक को वास्तविक लाभ मिलता है, जबकि भौतिकतावादी कर्म से किसी को लाभ नहीं होता, प्रत्युत वह कर्म के नियमों में बँधता जाता है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कंध के अन्तर्गत "मोहिनी-मूर्ति के रूप में भगवान् का अवतार" नामक नवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter दस

देवताओं तथा असुरों के बीच युद्ध

दसवें अध्याय का सारांश इस प्रकार है—असुरों तथा देवताओं में ईर्ष्या होने के कारण युद्ध चलता

रहा। जब देवता असुरों की चाल से प्राय: हार गए और अत्यन्त खिन्न हो गए। तब भगवान् विष्णु उन सबके बीच प्रकट हुए।

देवता तथा असुर दोनों ही माया-सम्बन्धी कार्यकलापों में निपुण होते हैं लेकिन देवता भगवद्भक्त हैं जबकि असुर उनके सर्वथा विपरीत हैं। देवताओं तथा असुरों ने अमृत-प्राप्ति के लिए क्षीरसागर का मन्थन किया, किन्तु असुर भगवद्भक्त न होने के कारण इससे कोई लाभ प्राप्त न कर सके। देवताओं को अमृत पिलाकर भगवान् विष्णु गरुड़ पर चढ़कर अपने धाम वापस चले गये, किन्तु अत्यन्त दुखी होने के कारण असुरों ने पुन: देवताओं के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। विरोचन के पुत्र बलि महाराज असुरों के सेनापति बने। युद्ध के प्रारम्भ में देवताओं ने असुरों को हराने की तैयारी की। स्वर्ग के राजा इन्द्र ने बलि से और वायु, अग्नि, वरुण इत्यादि देवताओं ने अन्य असुर-नायकों से युद्ध किया। इस युद्ध में असुर पराजित हुए। मृत्यु से बचने के लिए उन्होंने तरह-तरह की भौतिक युक्तियों से देवताओं के पक्ष के सैनिकों को मारकर मायाजाल फैलाना शुरू किया। देवताओं ने अन्य कोई रास्ता न देखकर पुन: भगवान् विष्णु की शरण ली। तब उन्होंने प्रकट होकर असुरों के सारे मायाजाल को छिन्न-भिन्न कर डाला। असुरों के जिन वीरों ने भगवान् से युद्ध किया उनमें कालनेमि, माली, सुमाली तथा माल्यवान मुख्य थे। ये सभी भगवान् द्वारा मारे गये। इस तरह देवता सारे संकटों से मुक्त हो गये।

श्रीशुक उवाच
इति दानवदैतेया नाविन्दन्नमृतं नृप ।
युक्ताः कर्मणि यत्ताश्च वासुदेवपराङ्मुखाः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; दानव-दैतेया:—असुरों तथा दैत्यों ने; न—नहीं; अविन्दन्—वांछित फल प्राप्त किया; अमृतम्—अमृत; नृप—हे राजा; युक्ता:—सभी मिलकर; कर्मणि—मन्थन में; यत्ता:—पूर्ण मनोयोग से लगे हुए; च—तथा; वासुदेव—भगवान् कृष्ण के; पराङ्मुखा:—अभक्त होने के कारण।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा! यद्यपि असुर तथा दैत्य पूरे मनोयोग तथा श्रम के साथ समुद्र-मन्थन में लगे थे, किन्तु भगवान् वासुदेव के भक्त न होने के कारण वे अमृत नहीं पी सके।

साधयित्वामृतं राजन्पाययित्वा स्वकान्सुरान् ।
पश्यतां सर्वभूतानां ययौ गरुडवाहनः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

साधयित्वा—सम्पन्न करके; अमृतम्—अमृत की उत्पत्ति; राजन्—हे राजा; पाययित्वा—तथा पिलाकर; स्वकान्—अपने भक्तों; सुरान्—देवताओं को; पश्यताम्—उपस्थिति में; सर्व-भूतानाम्—सारे जीवों की; ययौ—चले गये; गरुड-वाहनः—गरुड़ द्वारा ले जाये जाने वाले भगवान्।

हे राजा! समुद्र-मन्थन का कार्य पूरा कर लेने तथा अपने प्रिय भक्त देवताओं को अमृत पिला लेने के बाद भगवान् ने उन सबके देखते-देखते वहाँ से विदा ली और गरुड़ पर चढ़कर अपने धाम चले गये।

सपत्नानां परामृद्धिं दृष्ट्वा ते दितिनन्दनाः ।
अमृष्यमाणा उत्पेतुर्देवान्प्रत्युद्यतायुधाः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

सपत्नानाम्—अपने प्रतिद्वन्द्वियों अर्थात् देवताओं का; पराम्—सर्वश्रेष्ठ; ऋद्धिम्—ऐश्वर्य; दृष्ट्वा—देखकर; ते—वे सब; दिति-नन्दनाः—दिति के पुत्र, दैत्यगण; अमृष्यमाणाः—न सह सकने के कारण; उत्पेतुः—दौड़े (उपद्रव मचाने के लिए); देवान्—देवताओं की ओर; प्रत्युद्यत-आयुधाः—अपने हथियार उठाकर।

देवताओं की विजय देखकर असुरगण उनके श्रेष्ठतर ऐश्वर्य को सहन न कर सके। अतः वे अपने-अपने हथियार उठाकर देवताओं की ओर दौड़ पड़े।

ततः सुरगणाः सर्वे सुधया पीतयैधिताः ।
प्रतिसंयुयुधुः शस्त्रैर्नारायणपदाश्रयाः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; सुर-गणाः—देवता; सर्वे—सभी; सुधया—अमृत से; पीतया—पिया हुआ; एधिताः—ऐसे पीने से उत्तेजित होकर; प्रतिसंयुयुधुः—उन्होंने असुरों पर जवाबी हमला किया; शस्त्रैः—शस्त्रों के द्वारा; नारायण-पद-आश्रयाः—उनका असली हथियार नारायण के चरणकमलों की शरण था।

तत्पश्चात् अमृत पीने से उत्तेजित देवताओं ने जो सदैव नारायण के चरणकमलों की शरण में रहते हैं असुरों पर प्रत्याक्रमण करने के लिए युद्ध की मनोवृत्ति से अपने विविध हथियारों का प्रयोग किया।

तत्र दैवासुरो नाम रणः परमदारुणः ।
रोधस्युदन्वतो राजंस्तुमुलो रोमहर्षणः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ (क्षीरसागर के तट पर); दैव—देवता; असुरः—असुर; नाम—नाम से; रणः—युद्ध; परम—अत्यन्त; दारुणः—भयानक; रोधसि—तट पर; उदन्वतः—क्षीरसागर के; राजन्—हे राजा; तुमुलः—कोलाहलपूर्ण; रोम-हर्षणः—शरीर के रोएँ खड़े हुए।

हे राजा! देवताओं तथा असुरों के मध्य क्षीरसागर के तट पर घमासान युद्ध शुरु हो गया। यह युद्ध इतना भयंकर था कि इसके विषय में सुनने से ही शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

तत्रान्योन्यं सपत्नास्ते संरब्धमनसो रणे ।
समासाद्यासिभिर्बाणैर्निजघ्नुर्विविधायुधैः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

तत्र—तत्पश्चात्; अन्योन्यम्—एक दूसरे से; सपत्नाः—सभी लड़ाकू बनकर; ते—वे; संरब्ध—अत्यन्त क्रुद्ध; मनसः—मन से; रणे—युद्ध में; समासाद्य—परस्पर लड़ने का अवसर पाकर; असिभिः—तलवार से; बाणैः—बाणों से; निजघ्नुः—एक दूसरे को मारने लगे; विविध-आयुधैः—विभिन्न प्रकार के हथियारों से।

उस युद्ध में दोनों ही दल मन ही मन अत्यन्त क्रुद्ध थे। वे शत्रुतावश एक दूसरे पर तलवारों, बाणों तथा अन्य विविध हथियारों से प्रहार करने लगे।

तात्पर्य : इस ब्रह्माण्ड में, न केवल इस लोक में अपितु उच्च लोकों में भी, सदा से दो प्रकार के मनुष्य रहे हैं। सूर्य तथा चन्द्र जैसे लोकों में आधिपत्य जमाने वाले सारे राजाओं के भी राहु जैसे शत्रु रहे हैं। सूर्य तथा चन्द्रमा पर यदा-कदा राहु द्वारा आक्रमण किये जाने के कारण ही ग्रहण लगते हैं। असुरों तथा देवताओं की लड़ाई शाश्वत है। इसे तब तक नहीं रोका जा सकता जब तक दोनों पक्षों के बुद्धिमान् पुरुष कृष्णभावनाभावित न हो जाँए।

शङ्खतूर्यमृदङ्गानां भेरीडमरिणां महान् ।
हस्त्यश्वरथपत्तीनां नदतां निस्वनोऽभवत् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

शङ्ख—शंखों का; तूर्य—बड़ी तुरहियों का; मृदङ्गानाम्—तथा ढोलों का; भेरीडमरिणाम्—भेरियों तथा डमरियों का; महान्—अत्यन्त कोलाहलपूर्ण; हस्ति—हाथियों का; अश्व—घोड़ों का; रथ-पत्तीनाम्—रथ पर या भूमि पर लड़ने वालो का; नदताम्—शब्द करते; निस्वनः—कोलाहल; अभवत्—हुआ।

शंखों, तुरहियों, ढोलों, भेरियों तथा डमरियों की आवाजों के साथ ही हाथियों, घोड़ों तथा रथ पर चढ़े और पैदल सिपाहियों से निकली ध्वनियों से कोलाहल मच गया।

रथिनो रथिभिस्तत्र पत्तिभिः सह पत्तयः ।
हया हयैरिभाश्चेभैः समसज्जन्त संयुगे ॥ ॥

शब्दार्थ

रथिनः—रथ पर आरूढ़; रथिभिः—शत्रुपक्ष के रथ पर आरूढ़ सैनिकों से; तत्र—युद्धस्थल में; पत्तिभिः—पैदल सेना के; सह—साथ; पत्तयः—शत्रुओं की पैदल सेना; हयाः—घोड़े; हयैः—घुड़सवार शत्रु सैनिकों से; इभाः—हाथी पर चढ़े सैनिक; च—तथा; इभैः—हाथी पर सवार शत्रु-सैनिकों से; समसज्जन्त—समान स्तर पर एक दूसरे से लड़ने लगे, भिड़ गये; संयुगे—युद्धस्थल में।

उस युद्धभूमि में रथी अपने विपक्षी रथियों से, पैदल सेना विपक्षी पैदल सेना से, अश्वारोही विपक्षी अश्वारोहियों से तथा हाथी पर सवार सैनिक विपक्षी हाथी पर सवार सैनिकों से भिड़ गये। इस प्रकार समान पक्षों में युद्ध होने लगा।

उष्ट्रैः केचिदिभैः केचिदपरे युयुधुः खरैः ।
केचिद्गौरमुखैरृक्षैर्द्वीपिभिर्हरिभिर्भटाः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

उष्ट्रैः—ऊँट की पीठ पर; केचित्—कुछ व्यक्ति; इभैः—हाथी की पीठ पर; केचित्—कुछ व्यक्ति; अपरे—अन्य; युयुधुः—युद्ध में लगे हुए; खरैः—गधों की पीठ पर; केचित्—कुछ व्यक्ति; गौर-मुखैः—सफेद मुँह वाले बन्दरों पर; ऋक्षैः—लाल मुँह वाले बन्दरों (रीछों) पर; द्वीपिभिः—बाघों की पीठ पर; हरिभिः—सिंहों की पीठ पर; भटाः—सारे सैनिक।

कुछ सैनिक ऊँटों पर, कुछ हाथियों पर, कुछ गधों पर, कुछ सफेद मुँह वाले और लाल मुँह वाले बन्दरों पर, कुछ बाघों पर और कुछ सिंहों पर सवार होकर लड़ने लगे। इस प्रकार वे सब युद्ध में लगे थे।

गृध्रैः कङ्कैर्बकैरन्ये श्येनभासैस्तिमिङ्गिलैः ।
शरभैर्महिषैः खड्गैर्गोवृषैर्गवयारुणैः ॥ १० ॥
शिवाभिराखुभिः केचित्कृकलासैः शशैर्नरैः ।
बस्तैरेके कृष्णसारैर्हंसैरन्ये च सूकरैः ॥ ११ ॥
अन्ये जलस्थलखगैः सत्त्वैर्विकृतविग्रहैः ।
सेनयोरुभयो राजन्विविशुस्तेऽग्रतोऽग्रतः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

गृध्रैः—गीधों की पीठ पर; कङ्कैः—चील्हों की पीठ पर; बकैः—बगुलों की पीठ पर; अन्ये—अन्य लोग; श्येन—बाजों की पीठ पर; भासैः—भास की पीठ पर; तिमिङ्गिलैः—तिमिङ्गिल नामक बड़ी मछली की पीठ पर; शरभैः—शरभों की पीठ पर; महिषैः—भैंसे की पीठ पर; खड्गैः—गैंडे की पीठ पर; गो—गायों की पीठ पर; वृषैः—बैलों की पीठ पर; गवय-अरुणैः—गवयों तथा अरुणों की पीठ पर; शिवाभिः—सियारों की पीठ पर; आखुभिः—बड़े चूहों की पीठ पर; केचित्—कुछ लोग; कृकलासैः—बड़ी छिपकलियों पर; शशैः—खरहों की पीठ पर; नरैः—मनुष्यों की पीठ पर; बस्तैः—बकरों की पीठ पर; एके—कुछ; कृष्ण-सारैः—काले हिरनों की पीठ पर; हंसैः—हंसों की पीठ पर; अन्ये—अन्य; च—भी; सूकरैः—सुअरों की पीठ पर; अन्ये—अन्य; जल-स्थल-खगैः—जल, स्थल तथा आकाश में चलने वाले पशुओं से; सत्त्वैः—वाहन के रूप में प्रयुक्त प्राणियों से; विकृत—विरूपित हैं; विग्रहैः—ऐसे पशुओं द्वारा जिनके शरीर; सेनयोः—दोनों पक्षो के सैनिकों के; उभयोः—दोनों के; राजन्—हे राजा; विविशुः—प्रवेश किया; ते—वे सभी; अग्रतः अग्रतः—आमने-सामने जाते हुए।

हे राजा! कुछ सैनिक गीधों, चील्हों, बगुलों, बाजों तथा भास पक्षियों की पीठ पर बैठकर

लड़े। कुछ ने विशाल मत्स्यों (तिमि) को भी निगलने वाली तिमिंगलों की पीठ पर, कुछ ने सरभों की पीठ पर तो कुछ ने भैंसों, गैंडों, गायों, बैलों, बनगायों तथा अरुणों की पीठ पर सवार होकर युद्ध किया। अन्य लोगों ने सियारों, चूहों, छिपकलियों, खरहों, मनुष्यों, बकरों, काले हिरनों, हंसों तथा सुअरों की पीठ कर बैठकर युद्ध किया। इस प्रकार जल, स्थल तथा आकाश के पशुओं की पीठ पर, जिनमें विकृत शरीर वाले पशु भी थे, बैठी दोनों सेनाएँ आमने-सामने होकर आगे बढ़ रही थीं।

चित्रध्वजपटै राजन्नातपत्रैः सितामलैः ।
महाधनैर्वज्रदण्डैर्व्यजनैर्बार्हचामरैः ॥ १३ ॥
वातोद्धूतोत्तरोष्णीषैरर्चिर्भिर्वर्मभूषणैः ।
स्फुरद्भिर्विशदैः शस्त्रैः सुतरां सूर्यरश्मिभिः ॥ १४ ॥
देवदानववीराणां ध्वजिन्यौ पाण्डुनन्दन ।
रेजतुर्वीरमालाभिर्यादसामिव सागरौ ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

चित्र-ध्वज-पटैः—सुन्दर सजे झंडों तथा तम्बुओं से; राजन्—हे राजा; आतपत्रैः—धूप से बचने के लिए छातों से; सित-अमलैः—अत्यन्त स्वच्छ तथा श्वेत; महा-धनैः—अत्यन्त मूल्यवान; वज्र-दण्डैः—रत्नों तथा मोतियों से बने दण्डों से; व्यजनैः—पंखों से; बार्ह-चामरैः—मोर पंखों से बने पंखों से; वात-उद्धूत—हवा से उड़ते; उत्तर-उष्णीषैः—ऊपरी तथा निचले वस्त्रों से; अर्चिर्भिः—तेज से; वर्म-भूषणैः—गहनों तथा ढालों से; स्फुरद्भिः—चमकते; विशदैः—तेज तथा स्वच्छ; शस्त्रैः—हथियारों से; सुतराम्—अत्यधिक; सूर्य-रश्मिभिः—सूर्य की चमचमाती किरणों से; देव-दानव-वीराणाम्—देवताओं और दानवों के दलों के सारे वीरों का; ध्वजिन्यौ—अपना-अपना झंडा लिए दोनों दलों के सैनिक; पाण्डु-नन्दन—हे महाराज पाण्डु के वंशज; रेजतुः—चमके; वीर-मालाभिः—वीरों द्वारा पहनी गई मालाओं से; यादसाम्—जलचरों के; इव—सदृश; सागरौ—दोनों समुद्र।

हे राजा! हे महाराज पाण्डु के वंशज! देवता तथा असुर दोनों ही के सैनिक चँदोवा, रंगबिरंगी झंडियों तथा बहुमूल्य रत्नों एवं मोतियों से बनी मूठ वाले छातों से अलंकृत थे। वे मोरपंख से बने तथा अन्य पंखों से सुशोभित थे। ऊपरी तथा अधोवस्त्रों के वायु में लहराने के कारण सैनिक अत्यन्त सुन्दर लग रहे थे और चमचमाती धूप में उनकी ढालें, उनके गहने तथा तीक्ष्ण स्वच्छ हथियार आँखों को चौंधिया रहे थे। इस तरह सैनिकों की टोलियाँ जलचरों के दलों से युक्त दो सागरों के समान प्रतीत हो रही थीं।

वैरोचनो बलिः सङ्ख्ये सोऽसुराणां चमूपतिः ।
यानं वैहायसं नाम कामगं मयनिर्मितम् ॥ १६ ॥

सर्वसाङ्ग्रामिकोपेतं सर्वाश्चर्यमयं प्रभो ।
अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं दृश्यमानमदर्शनम् ॥ १७॥
आस्थितस्तद्विमानाछ्यं सर्वानीकाधिपैर्वृतः ।
बालव्यजनछत्राछ्यै रेजे चन्द्र इवोदये ॥ १ ॥

शब्दार्थ

वैरोचनः—विरोचन का पुत्र; बलिः—महाराज बलि; सङ्ख्ये—युद्ध में; सः—वह, इतना विख्यात; असुराणाम्—असुरों का; चमू-पतिः—सेनापति; यानम्—वायुयान; वैहायसम्—वैहायस; नाम—नामक; काम-गम्—इच्छानुसार कहीं भी उड़ने में समर्थ; मय-निर्मितम्—मय दानव द्वारा बनाया हुआ; सर्व—सारा; साङ्ग्रामिक-उपेतम्—सभी तरह के शत्रुओं से लड़ने के लिए सभी प्रकार के आवश्यक हथियारों से युक्त; सर्व-आश्चर्य-मयम्—सभी तरह से आश्चर्यपूर्ण; प्रभो—हे राजा; अप्रतर्क्यम्—वर्णन न किए जाने योग्य; अनिर्देश्यम्—अवर्णनीय; दृश्यमानम्—कभी-कभी दृश्य; अदर्शनम्—कभी-कभी अदृश्य; आस्थितः—इस तरह से आसीन; तत्—वह; विमान-अछ्यम्—सर्वोत्कृष्ट वायुयान; सर्व—सारा; अनीक-अधिपैः—सैनिकों के नायकों द्वारा; वृतः—घिरा; बाल-व्यजन-छत्र-अछ्यैः—सुन्दर ढंग से सजाये छातों एवं श्रेष्ठ चामरों से सुरक्षित; रेजे—चमकते हुए स्थित; चन्द्रः—चन्द्रमा; इव—सदृश; उदये—शाम को उदय होते समय।

उस युद्ध के लिए विख्यात सेनापति विरोचन-पुत्र महाराज बलि वैहायस नामक अद्भुत वायुयान पर आसीन थे। हे राजा! यह सुन्दर ढंग से सजाया गया वायुयान मय दानव द्वारा निर्मित किया गया था और युद्ध के सभी प्रकार के हथियारों से युक्त था। यह अचिन्त्य तथा अवर्णनीय था। यह कभी दिखता तो कभी नहीं दिखता था। इस वायुयान में एक सुन्दर छाते के नीचे बैठे तथा सर्वोत्तम चमरों से पंखा झले जाते हुए एवं अपने सेनानायकों से घिरे महाराज बलि इस प्रकार लग रहे थे मानों शाम को चन्द्रमा उदय हो रहा हो और सभी दिशाओं को प्रकाशित कर रहा हो।

तस्यासन्सर्वतो यानैर्यूथानां पतयोऽसुराः ।
नमुचिः शम्बरो बाणो विप्रचित्तिरयोमुखः ॥ १९ ॥
द्विमूर्धा कालनाभोऽथ प्रहेतिर्हेतिरिल्वलः ।
शकुनिर्भूतसन्तापो वज्रदंष्ट्रो विरोचनः ॥ २० ॥
हयग्रीवः शङ्कुशिराः कपिलो मेघदुन्दुभिः ।
तारकश्चक्रदृक्शुम्भो निशुम्भो जम्भ उत्कलः ॥ २१ ॥
अरिष्टोऽरिष्टनेमिश्च मयश्च त्रिपुराधिपः ।
अन्ये पौलोमकालेया निवातकवचादयः ॥ २२ ॥
अलब्धभागाः सोमस्य केवलं क्लेशभागिनः ।
सर्व एते रणमुखे बहुशो निर्जितामराः ॥ २३ ॥
सिंहनादान्विमुञ्चन्तः शङ्खान्दध्मुर्महारवान् ।
दृष्ट्वा सपत्नानुत्सिक्तान्बलभित्कुपितो भृशम् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसके (बलि महाराज के); आसन्—स्थित; सर्वतः—चारों ओर; यानैः—विभिन्न यानों से; यूथानाम्—सैनिकों के; पतयः—सेनानायक; असुराः—असुरगण; नमुचिः—नमुचि; शम्बरः—शम्बर; बाणः—बाण; विप्रचित्तिः—विप्रचित्ति; अयोमुखः—अयोमुख; द्विमूर्धा—द्विमूर्धा; कालनाभः—कालनाभ; अथ—भी; प्रहेतिः—प्रहेति; हेतिः—हेतिः; इल्वलः—इल्वल; शकुनिः—शकुनि; भूतसन्तापः—भूतसन्ताप; वज्र-दंष्ट्रः—वज्रदंष्ट्र; विरोचनः—विरोचन; हयग्रीवः—हयग्रीव; शङ्कु शिराः—शंकुशिरा; कपिलः—कपिल; मेघ-दुन्दुभिः—मेघदुन्दुभि; तारकः—तारक; चक्रदृक्—चक्रदृक्; शुम्भः—शुम्भ; निशुम्भः—निशुम्भ; जम्भः—जम्भ; उत्कलः—उत्कल; अरिष्टः—अरिष्ट; अरिष्टनेमिः—अरिष्टनेमि; च—तथा; मयः च—तथा मय; त्रिपुराधिपः—त्रिपुराधिप; अन्ये—अन्य; पौलोम-कालेयाः—पुलोम तथा कालेय के पुत्र; निवातकवच-आदयः—निवातकवच तथा अन्य असुर; अलब्ध-भागाः—भाग लेने में सभी असमर्थ; सोमस्य—अमृत का; केवलम्—केवल; क्लेश-भागिनः—असुरों ने श्रम का हिस्सा ले लिया; सर्वे—सभी; एते—असुरगण; रण-मुखे—युद्ध के समक्ष; बहुशः—अत्यधिक बल से; निर्जित-अमराः—देवताओं को अत्यधिक कष्ट पहुँचाने वाले; सिंह-नादान्—सिंह जैसी दहाड़े; विमुञ्चन्तः—निकालते हुए; शङ्खान्—शंखों को; दध्मुः—बजाया; महा-रवान्—घोर ध्वनि करने वाले; दृष्ट्वा—देखकर; सपत्नान्—अपने प्रतियोगियों को; उत्सिक्तान्—भयानक; बलभित्—शक्ति से भयभीत (इन्द्र); कुपितः—क्रुद्ध होकर; भृशम्—अत्यधिक।

महाराज बलि को चारों ओर से असुरों के सेनानायक तथा कप्तान घेरे थे। वे अपने-अपने रथों पर सवार थे। उनमें निम्नलिखित असुर थे—नमुचि, शम्बर, बाण, विप्रचित्ति, अयोमुख, द्विमूर्धा, कालनाभ, प्रहेति, हेति, इल्वल, शकुनि, भूतसन्ताप, वज्रदंष्ट्र, विरोचन, हयग्रीव, शंकुशिरा, कपिल, मेघदुन्दुभि, तारक, चक्रदृक्, शुम्भ, निशुम्भ, जम्भ, उत्कल, अरिष्ट, अरिष्टनेमि, त्रिपुराधिप, मय, पुलोम के पुत्र कालेय तथा निवातकवच। ये सारे असुर अमृत के अपने-अपने भाग से वञ्चित रह गये थे; उन्होंने केवल समुद्र-मन्थन का श्रम उठाया था। अब वे सुरों के विरुद्ध लड़ रहे थे और अपनी सेनाओं को प्रोत्साहित करने के लिए उन्होंने सिंह-गर्जना के समान कोलाहल किया और जोर से अपने-अपने शंख बजाये। बलभित अर्थात् इन्द्रदेव अपने रक्तपिपासु प्रतिद्वन्द्वियों की यह स्थिति देखकर अत्यन्त कुपित हुए।

ऐरावतं दिक्करिणमारूढः शुशुभे स्वराट् ।
यथा स्रवत्प्रस्रवणमुदयाद्रिमहर्पतिः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

ऐरावतम्—ऐरावत पर; दिक्-करिणम्—सर्वत्र जा सकने वाले विशाल हाथी; आरूढः—सवार होकर; शुशुभे—देखने में अत्यन्त सुन्दर लगने लगा; स्व-राट्—इन्द्र; यथा—जिस तरह; स्रवत्—बहते हुए; प्रस्रवणम्—सुरा की लहरें; उदय-अद्रिम्—उदयगिरि पर; अहः-पतिः—सूर्य।

ऐरावत हाथी पर जो कहीं भी जा सकता है और जो छिड़कने के लिए जल तथा सुरा को संचित रखता है, चढ़कर इन्द्र ऐसे लग रहे थे मानो उदयगिरि से जहाँ जल के आगार हैं सूर्य निकल रहा हो।

तात्पर्य : उदयगिरि पर्वत की चोटी पर अनेक झीलें हैं जहाँ से झरनों के रूप में निरन्तर जल झरता रहता है। इसी प्रकार इन्द्र का वाहन ऐरावत जल तथा सुरा संचित रखता है और इन्हें इन्द्र की ओर

छिड़कता रहता है। इस प्रकार ऐरावत की पीठ पर बैठे इन्द्र उदयगिरि से ऊपर उठते तेजस्वी सूर्य की भाँति प्रतीत हो रहे थे।

तस्यासन्सर्वतो देवा नानावाहध्वजायुधाः ।
लोकपालाः सहगणैर्वाय्वग्निवरुणादयः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

तस्य—इन्द्र के; आसन्—स्थित; सर्वतः—चारों ओर; देवाः—सारे देवता; नाना-वाह—तरह-तरह के वाहनों से; ध्वज-आयुधाः—तथा झंडों एवं हथियारों सहित; लोक-पालाः—उच्च लोकों के सारे प्रमुख; सह—साथ; गणैः—अपने-अपने पार्षदों के साथ; वायु—वायु के अधिष्ठाता देवता; अग्नि—अग्नि के अधिष्ठाता देवता; वरुण—जल के अधिष्ठाता देवता; आदयः—इन्द्र को घेरे हुए सभी।

देवतागण स्वर्ग के राजा इन्द्र को घेरे हुए थे। वे नाना प्रकार के यानों पर सवार थे और झंडों तथा आयुधों से सज्जित थे। उपस्थित देवताओं में वायु, अग्नि, वरुण तथा विभिन्न लोकों के अन्य शासक तथा उनके पार्षद थे।

तेऽन्योन्यमभिसंसृत्य क्षिपन्तो मर्मभिर्मिथः ।
आह्वयन्तो विशन्तोऽग्रे युयुधुर्द्वन्द्वयोधिनः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

ते—वे (देवता तथा दानव); अन्योन्यम्—एक दूसरे को; अभिसंसृत्य—आमने-सामने आकर; क्षिपन्तः—एक दूसरे को प्रताड़ित करते; मर्मभिः मिथः—एक दूसरे के हृदयों को पीड़ा पहुँचाते; आह्वयन्तः—एक दूसरे को सम्बोधित करते; विशन्तः—युद्धभूमि में प्रवेश करके; अग्रे—सामने; युयुधुः—लड़ाई की; द्वन्द्व-योधिनः—दो-दो प्रतिद्वन्द्वी योद्धा।

देवता तथा दानव एक दूसरे के सम्मुख आ गये और मर्मभेदी वचनों से एक दूसरे को धिक्कारने लगे। तब वे निकट आकर जोड़ियों के रूप में आमने-सामने लड़ने लगे।

युयोध बलिरिन्द्रेण तारकेण गुहोऽस्यत ।
वरुणो हेतिनायुध्यन्मित्रो राजन्प्रहेतिना ॥ २ ॥

शब्दार्थ

युयोध—भिड़ गये; बलिः—महाराज बलि; इन्द्रेण—इन्द्र से; तारकेण—तारक से; गुहः—कार्तिकेय; अस्यत—युद्ध में व्यस्त; वरुणः—वरुण देव; हेतिना—हेति से; अयुध्यत्—एक दूसरे से लड़े; मित्रः—मित्र देवता; राजन्—हे राजा; प्रहेतिना—प्रहेति से।

हे राजा! महाराज बलि इन्द्र से, कार्तिकेय तारक से, वरुण हेति से तथा मित्र प्रहेति से भिड़ गये।

यमस्तु कालनाभेन विश्वकर्मा मयेन वै ।
शम्बरो युयुधे त्वष्ट्रा सवित्रा तु विरोचनः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

यमः—यमराज; तु—निस्सन्देह; कालनाभेन—कालनाभ से; विश्वकर्मा—विश्वकर्मा; मयेन—मय से; वै—निस्सन्देह; शम्बरः—शम्बर ने; युयुधे—युद्ध किया; त्वष्ट्रा—त्वष्टा से; सवित्रा—सूर्यदेव से; तु—निस्सन्देह; विरोचनः—विरोचन असुर ने।

यमराज कालनाभ से, विश्वकर्मा मय दानव से, त्वष्टा शम्बर से तथा सूर्यदेव विरोचन से लड़ने लगे।

अपराजितेन नमुचिरश्विनौ वृषपर्वणा ।
सूर्यो बलिसुतैर्देवो बाणज्येष्ठैः शतेन च ॥ ३० ॥
राहुणा च तथा सोमः पुलोम्ना युयुधेऽनिलः ।
निशुम्भशुम्भयोर्देवी भद्रकाली तरस्विनी ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

अपराजितेन—अपराजित देवता से; नमुचिः—नमुचि असुर ने; अश्विनौ—अश्विनी कुमारों ने; वृषपर्वणा—वृषपर्वा दैत्य के साथ; सूर्यः—सूर्य देव ने; बलि-सुतैः—बलि के पुत्रों के साथ; देवः—देवता; बाण-ज्येष्ठैः—जिनमें बाण प्रमुख है; शतेन—एक सौ; च—तथा; राहुणा—राहु से; च—भी; तथा—और; सोमः—चन्द्रदेव ने; पुलोम्ना—पुलोमा के साथ; युयुधे—युद्ध किया; अनिलः—वायु देव; निशुम्भ—निशुम्भ असुर; शुम्भयोः—शुम्भ के साथ; देवी—देवी दुर्गा ने; भद्रकाली—भद्रकाली; तरस्विनी—अत्यन्त शक्तिशाली।

अपराजित देवता ने नमुचि असुर के साथ तथा दोनों अश्विनी कुमारों ने वृषपर्वा के साथ युद्ध किया। सूर्यदेव महाराज बलि के सौ पुत्रों से भिड़ गये जिनमें बाण प्रमुख था। चन्द्रदेव ने राहु से लड़ाई की। वायुदेव ने पुलोमा से तथा शुम्भ और निशुम्भ ने अत्यन्त शक्तिशाली माया भद्रकाली नामक दुर्गादेवी से युद्ध किया।

वृषाकपिस्तु जम्भेन महिषेण विभावसुः ।
इल्वलः सह वातापिर्ब्रह्मपुत्रैररिन्दम ॥ ३२ ॥
कामदेवेन दुर्मर्ष उत्कलो मातृभिः सह ।
बृहस्पतिश्चोशनसा नरकेण शनैश्चरः ॥ ३३ ॥
मरुतो निवातकवचैः कालेयैर्वसवोऽमराः ।
विश्वेदेवास्तु पौलोमै रुद्राः क्रोधवशैः सह ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

वृषाकपिः—शिवजी; तु—निस्सन्देह; जम्भेन—जम्भ के साथ; महिषेण—महिषासुर से; विभावसुः—अग्निदेव; इल्वलः—इल्वल असुर; सह वातापिः—उसके भाई वातापि से; ब्रह्म-पुत्रैः—ब्रह्मा के पुत्रों के साथ, यथा वशिष्ठ से; अरिम्-दम—हे शत्रुओं के दमनकर्ता, महाराज परीक्षित; कामदेवेन—कामदेव से; दुर्मर्षः—दुर्मर्ष; उत्कलः—उत्कल ने; मातृभिः सह—मातृका नामक देवियों के साथ; बृहस्पतिः—बृहस्पति देवता ने; च—तथा; उशनसा—शुक्राचार्य से; नरकेण—नरकासुर से; शनैश्चरः—शनि देवता ने; मरुतः—वायु के देवता; निवातकवचैः—निवातकवच असुर से; कालेयैः—कालकेयों से; वसवः अमराः—वसुओं ने युद्ध किया; विश्वेदेवाः—विश्वेदेवों ने; तु—निस्सन्देह; पौलोमैः—पौलोमों के साथ; रुद्राः—ग्यारह रुद्रों ने; क्रोधवशैः सह—क्रोधवश दानवों के साथ।

हे अरिन्दम महाराज परीक्षित! शिवजी ने जम्भ से तथा विभावसु ने महिषासुर से युद्ध किया। इल्वल ने, अपने भाई वातापि सहित, ब्रह्मा के पुत्रों से युद्ध किया। दुर्मर्ष कामदेव से, उत्कल मातृका नामक देवियों से, बृहस्पति शुक्राचार्य से तथा शनैश्चर नरकासुर से युद्ध में भिड़ गए। मरुत्गण निवातकवच से, वसुओं ने दैत्य कालकेयों से, विश्वेदेवों ने पौलोमों असुरों से तथा रुद्रगणों ने क्रुद्ध क्रोधवश असुरों से युद्ध किया।

त एवमाजावसुराः सुरेन्द्रा
द्वन्द्वेन संहत्य च युध्यमानाः ।
अन्योन्यमासाद्य निजघ्नुरोजसा
जिगीषवस्तीक्ष्णशरासितोमरैः ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

ते—वे सभी; एवम्—इस प्रकार; आजौ—युद्धक्षेत्र में; असुराः—असुरगण; सुर-इन्द्राः—तथा देवता; द्वन्द्वेन—दो-दो करके; संहत्य—परस्पर मिलकर; च—तथा; युध्यमानाः—युद्ध करते हुए; अन्योन्यम्—एकदूसरे से; आसाद्य—पास आकर; निजघ्नुः—हथियारों से मार डाला; ओजसा—अत्यन्त बलपूर्वक; जिगीषवः—विजय की कामना करते हुए; तीक्ष्ण—तेज; शर—बाणों से; असि—तलवारों से; तोमरैः—भालों से।

ये सारे देवता तथा असुर लड़ने के उत्साह से युद्धभूमि में एकत्र हुए और अत्यन्त बलपूर्वक एक दूसरे पर प्रहार करने लगे। वे सब विजय की कामना करते हुए जोड़े बनाकर लड़ने लगे और तेज बाणों, तलवारों तथा भालों से बुरी तरह एक दूसरे को मारने लगे।

भुशुण्डिभिश्चक्रगदर्ष्टिपट्टिशैः
शक्त्युल्मुकैः प्रासपरश्वधैरपि ।
निस्त्रिंशभल्लैः परिघैः समुद्गरैः
सभिन्दिपालैश्च शिरांसि चिच्छिदुः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

भुशुण्डिभिः—भुशुण्डि नामक हथियारों से; चक्र—चक्र से; गदा—गदा से; ऋष्टि—ऋष्टि अस्त्रों से; पट्टिशैः—पट्टिश शस्त्र से; शक्ति—शक्ति शस्त्रों से; उल्मुकैः—उल्मुक नामक शस्त्रों से; प्रास—प्रास शस्त्र से; परश्वधैः—परश्वध शस्त्रों से; अपि—भी; निस्त्रिंश—निस्त्रिंश शस्त्रों से; भल्लैः—भालों से; परिघैः—परिघों शस्त्र से; स-मुद्गरैः—मुद्गरों से; स-भिन्दिपालैः—भिन्दिपाल शस्त्रों से; च—भी; शिरांसि—सिरों को; चिच्छिदुः—काट लिया।

उन्होंने भुशुण्डि, चक्र, गदा, ऋष्टि, पट्टिश, शक्ति, उल्मुक, प्रास, परश्वध, निस्त्रिंश, भाला, परिघ, मुद्गर तथा भिन्दिपाल नामक हथियारों से एक दूसरे के सिर काट डाले।

गजास्तुरङ्गाः सरथाः पदातयः

सारोहवाहा विविधा विखण्डिताः ।
निकृत्तबाहूरुशिरोधराङ्घ्रय-
श्छिन्नध्वजेष्वासतनुत्रभूषणाः ॥ ३७॥

शब्दार्थ

गजाः—हाथी; तुरङ्गाः—घोड़े; स-रथाः—रथों सहित; पदातयः—पैदल सैनिक; सारोह-वाहाः—सवारों सहित वाहन; विविधाः—विविध प्रकार के; विखण्डिताः—खण्ड-खण्ड हुए; निकृत्त-बाहु—कटी हुई भुजाएँ; ऊरु—जाँघें; शिरोधर—गर्दन; अङ्घ्रयः—टांगे; छिन्न—कटकर अलग; ध्वज—झंडा; इष्वास—धनुष; तनुत्र—कवच; भूषणाः—गहने, आभूषण।

हाथी, घोड़े, रथ, सारथी, पैदल सेना तथा सवारों सहित विविध प्रकार के वाहन ध्वस्त हो गये। सैनिकों की भुजाएँ, जांघें, गर्दन तथा टांगे कट गईं और उनके झंडे, धनुष, कवच तथा आभूषण छिन्न-भिन्न हो गये।

तेषां पदाघातरथाङ्गचूर्णिता-
दायोधनादुल्बण उत्थितस्तदा ।
रेणुर्दिशः खं द्युमणिं च छादयन्
न्यवर्ततासृक्स्रुतिभिः परिप्लुतात् ॥ ३॥

शब्दार्थ

तेषाम्—युद्धक्षेत्र में लगे सारे; पदाघात—असुरों तथा देवताओं के पैरों के प्रहार से; रथ-अङ्ग—तथा रथों के पहिए; चूर्णितात्—चूर्णित हुए; आयोधनात्—युद्धभूमि से; उल्बणः—अत्यन्त शक्तिशाली; उत्थितः—उठते हुए; तदा—उस समय; रेणुः—धूल के कण; दिशः—सभी दिशाएँ; खम्—बाह्य आकाश; द्युमणिम्—सूर्य तक; च—भी; छादयन्—ढकते हुए; न्यवर्तत—हवा में तैरना बन्द कर दिया; असृक्—रक्त के; स्रुतिभिः—कणों के द्वारा; परिप्लुतात्—दूर दूर तक छिड़के जाने से।

भूमि पर देवताओं तथा असुरों के पाँवों तथा रथों के पहियों के आघात से आकाश में तेजी से धूल के कण उड़ने लगे और धूल का बादल छा गया जिससे सूर्य तक का सारा बाह्य आकाश चारों ओर से ढक गया। किन्तु जब धूल कणों के पश्चात् रक्त की बूँदें सारे आकाश में फुहार की तरह उठने लगीं तो धूल के बादलों का आकाश में मँडराना बन्द हो गया।

तात्पर्य : धूल के बादल ने सारे क्षितिज को ढक लिया, किन्तु जब रक्त की बूँदों की फुहार सूर्य तक पहुँच गई तो आकाश में धूल के बादलों का मँडराना बन्द हो गया। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि यद्यपि रक्त सूर्य तक पहुँच गया बताया गया है, किन्तु यह नहीं कहा गया है कि रक्त चन्द्रमा तक पहुँचा। अतएव स्पष्ट है कि पृथ्वी से निकटतम ग्रह सूर्य है, चन्द्रमा नहीं, जैसा कि *श्रीमद्भागवत* में अन्यत्र बताया गया है। हम इसका उल्लेख कई स्थानों पर कर चुके हैं। पहले सूर्य, फिर चन्द्रमा, तब मंगल, बृहस्पति इत्यादि हैं। सूर्य पृथ्वी की सतह से ९,३०,००,००० मील ऊपर माना जाता है और

श्रीमद्भागवत से यह पता चलता है कि चन्द्रमा सूर्य से १६,००,००० मील ऊपर है। अतएव पृथ्वी तथा चन्द्रमा की दूरी लगभग ९,५०,००,००० मील है। इस तरह यदि कोई अन्तरिक्ष यान १००० मील प्रति घंटे की गति से यात्रा करे तो वह चार दिनों में चाँद तक कैसे पहुँचेगा? इस गति से चाँद तक पहुँचने में कम से कम सात मास लगेंगे। अतएव यह कहना कि अन्तरिक्ष यान चार दिनों में चाँद तक पहुँच गया है, असम्भव है।

शिरोभिरुद्धूतकिरीटकुण्डलैः
संरम्भदृग्भिः परिदष्टदच्छदैः ।
महाभुजैः साभरणैः सहायुधैः
सा प्रास्तृता भूः करभोरुभिर्बभौ ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

शिरोभिः—सिरों से; उद्धूत—पृथक्, फैली हुई; किरीट—मुकुट; कुण्डलैः—तथा कान के आभूषणों से; संरम्भ-दृग्भिः—क्रोध से घूरती आँखें (यद्यपि सिर शरीर से छिन्न थे); परिदष्ट—दाँतों से काटे गये; दच्छदैः—ओठ; महा-भुजैः—बड़ी-बड़ी बाँहों से; स-आभरणैः—आभूषणों से सजी; सह-आयुधैः—तथा हाथों में हथियार लिये, यद्यपि हाथ छिन्न हो चुके थे; सा—वह युद्धक्षेत्र; प्रास्तृता—बिखरे; भूः—युद्धक्षेत्र; करभ-ऊरुभिः—पांव तथा जाँघें हाथी की सूँड़ों जैसी; बभौ—हो गई।

युद्ध के दौरान युद्धभूमि वीरों के कटे सिरों से पट गई। उनकी आँखें अब भी घूर रही थीं और क्रोध से उनके दाँत उनके होठों से लगे हुए थे। इन छिन्न सिरों के मुकुट तथा कुण्डल बिखर गये थे। इसी प्रकार आभूषणों से सज्जित तथा विविध हथियार पकड़े हुईं अनेक भुजाएँ इधर-उधर बिखरी पड़ी थीं और हाथी की सूँडों जैसे अनेक टांगे तथा जाँघें भी इसी तरह बिखरी हुई थीं।

कबन्धास्तत्र चोत्पेतुः पतितस्वशिरोऽक्षिभिः ।
उद्यतायुधदोर्दण्डैराधावन्तो भटान्मृधे ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

कबन्धाः—धड़; तत्र—वहाँ (युद्धभूमि में); च—भी; उत्पेतुः—उत्पन्न; पतित—गिरा हुआ; स्व-शिरः-अक्षिभिः—सिर की आँखों से; उद्यत—उठाये; आयुध—हथियारों से युक्त; दोर्दण्डैः—जिसकी भुजाएँ; आधावन्तः—की ओर दौड़ती हुई; भटान्—सैनिक; मृधे—युद्धभूमि में।

उस युद्धभूमि में शीषरहित अनेक धड़ उत्पन्न हो गए थे। वे प्रेततुल्य धड़ अपने हाथों में हथियार लिए, पड़े हुए सिरों की आँखों से देखकर शत्रु सैनिकों पर आक्रमण कर रहे थे।

तात्पर्य : ऐसा प्रतीत होता है कि युद्धक्षेत्रों में मारे गये वीर तुरन्त ही प्रेत बन गये थे। यद्यपि उनके

सिर उनके शरीरों से कटकर अलग हो गये थे, किन्तु नये धड़ पैदा हो गये थे और ये नए धड़ कटे हुए सिरों की आँखों से देखकर शत्रु पर आक्रमण करने लगे। दूसरे शब्दों में, युद्ध में सम्मिलित होने के लिए अनेक प्रेत उत्पन्न हो गये जिससे युद्धक्षेत्र में अनेक नए धड़ प्रकट हो गए।

बलिर्महेन्द्रं दशभिस्त्रिभिरैरावतं शरैः ।
चतुर्भिश्चतुरो वाहानेकेनारोहमार्च्छयत् ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

बलिः—महाराज बलि; महा-इन्द्रम्—स्वर्ग का राजा; दशभिः—दस; त्रिभिः—तीन; ऐरावतम्—इन्द्र के वाहन ऐरावत को; शरैः—बाणों से; चतुर्भिः—चार बाणों से; चतुरः—चार; वाहान्—सवारों को; एकेन—एक से; आरोहम्—चालक को; आर्च्छयत्—वार किया।

महाराज बलि ने तब दस बाणों से इन्द्र पर तथा तीन बाणों से इन्द्र के वाहन ऐरावत पर वार किया। उन्होंने चार बाणों से ऐरावत के पाँवों की रक्षा करने वाले चार घुड़सवारों पर आक्रमण किया और एक बाण से उसके चालक पर।

तात्पर्य : *वाहान्* उन घुड़सवारों का सूचक है, जो हाथी के पैरों की रक्षा कर रहे थे। सैन्य व्यवस्था के अनुसार सेनापति को ले जाने वाले हाथी के पाँवों की भी रक्षा की जाती थी।

स तानापततः शक्रस्तावद्भिः शीघ्रविक्रमः ।
चिच्छेद निशितैर्भल्लैरसम्प्राप्तान्हसन्निव ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (इन्द्र); तान्—उन बाणों को; आपततः—उसकी ओर बढ़ते और गिरते हुए; शक्रः—इन्द्र; तावद्भिः—तुरन्त; शीघ्र-विक्रमः—तुरन्त सताये जाने के लिए अभ्यस्त; चिच्छेद—खण्ड-खण्ड कर डाला; निशितैः—अत्यन्त तेज; भल्लैः—अन्य प्रकार के बाण से; असम्प्राप्तान्—शत्रु के बाण पहुँचने से पहले; हसन् इव—मानो हँस रहा हो।

इसके पूर्व कि बलि महाराज के बाण स्वर्ग के राजा इन्द्र तक पहुँचे, बाणों के चलाने में पटु इन्द्र ने हँसते हुए एक अन्य प्रकार के अत्यन्त तीक्ष्ण भल्ल नामक बाण से उन्हें काट डाला।

तस्य कर्मोत्तमं वीक्ष्य दुर्मर्षः शक्तिमाददे ।
तां ज्वलन्तीं महोल्काभां हस्तस्थामच्छिनद्धरिः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

तस्य—इन्द्र के; कर्म-उत्तमम्—सैन्यकला में अत्यन्त दक्ष कार्य को; वीक्ष्य—देखकर; दुर्मर्षः—अत्यन्त क्रुद्ध होकर; शक्तिम्—शक्ति नामक हथियार; आददे—ले लिया; ताम्—उस हथियार को; ज्वलन्तीम्—जलती आग; महा-उल्का-आभाम्—महान् अग्नि पुंज की भाँति प्रकट होते हुए; हस्त-स्थाम्—जो अभी बलि के हाथ में ही था; अच्छिनत्—खण्ड-खण्ड कर डाला; हरिः—इन्द्र ने।

जब बलि महाराज ने इन्द्र के दक्ष सैन्य कार्यकलापों को देखा तो वे अपना क्रोध रोक न सके। उन्होंने शक्ति नामक एक दूसरा हथियार ग्रहण किया जो महान् अग्नि पुंज की भाँति ज्वलित हो रहा था। किन्तु इन्द्र ने इसे बलि के हाथ से छूटने के पूर्व ही खण्ड-खण्ड कर दिया।

ततः शूलं ततः प्रासं ततस्तोमरमृष्टयः ।
यद्यच्छस्त्रं समादद्यात्सर्वं तदच्छिनद्विभुः ॥ ४४॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; शूलम्—भाला; ततः—तत्पश्चात्; प्रासम्—प्रास; ततः—तत्पश्चात्; तोमरम्—तोमर; ऋष्टयः—ऋष्टि नामक हथियारों; यत् यत्—जो-जो; शस्त्रम्—हथियार; समादद्यात्—बलि ने प्रयोग करने चाहे; सर्वम्—उन सब को; तत्—वे ही हथियार; अच्छिनत्—खण्ड-खण्ड कर दिये; विभुः—महान् इन्द्र ने।

तत्पश्चात् बलि महाराज ने एक-एक करके भाला, प्रास, तोमर, ऋष्टि तथा अन्य हथियार चलाये, किन्तु वे जो भी हथियार लेते थे, उन्हें महान् इन्द्र तुरन्त ही खण्ड-खण्ड कर देते थे।

ससर्जाथासुरीं मायामन्तर्धानगतोऽसुरः ।
ततः प्रादुरभूच्छैलः सुरानीकोपरि प्रभो ॥ ४५॥

शब्दार्थ

ससर्ज—छोड़ा; अथ—अब; आसुरीम्—दानवी; मायाम्—माया को; अन्तर्धान—दृष्टि से ओझल; गतः—जाकर; असुरः—बलि महाराज; ततः—तत्पश्चात्; प्रादुरभूत्—प्रकट हुआ; शैलः—एक विशाल पर्वत; सुर-अनीक-उपरि—देवताओं की सेना के सिरोंके ऊपर; प्रभो—हे स्वामी।

हे राजा! तब बलि महाराज अदृश्य हो गये और उन्होंने आसुरी माया का सहारा लिया। तब देवताओं की सेना के सिरों के ऊपर माया से उत्पन्न एक विशाल पर्वत प्रकट हुआ।

ततो निपेतुस्तरवो दह्यमाना दवाग्निना ।
शिलाः सटङ्कशिखराश्चूर्णयन्त्यो द्विषद्बलम् ॥ ४६॥

शब्दार्थ

ततः—उस महान् पर्वत से; निपेतुः—गिरने लगे; तरवः—बड़े-बड़े वृक्ष; दह्यमानाः—अग्नि से जलकर; दव-अग्निना—जंगल की आग से; शिलाः—तथा पत्थर; स-टङ्क-शिखराः—पत्थर की कुल्हाड़ी जैसी तीक्ष्ण धार वाले; चूर्णयन्त्यः—चूर-चूर करते; द्विषत्-बलम्—शत्रुओं की शक्ति को।

उस पर्वत से दावाग्नि से जलते हुए वृक्ष गिरने लगे। उससे पत्थर की कुल्हाड़ी जैसी तीक्ष्ण धार वाले पत्थर-खण्ड भी गिरने लगे जिससे देवताओं के सैनिकों के सिर चकनाचूर हो गये।

महोरगाः समुत्पेतुर्दन्दशूकाः सवृश्चिकाः ।

सिंहव्याघ्रवराहाश्च मर्दयन्तो महागजाः ॥ ४७॥

शब्दार्थ

महा-उरगाः—बड़े-बड़े साँप; समुत्पेतुः—उन पर गिरने लगे; दन्दशूकाः—अन्य विषैले पशु तथा कीड़े; स-वृश्चिकाः—बिच्छुओं सहित; सिंह—शेर; व्याघ्र—बाघ; वराहाः च—तथा जंगली सूअर; मर्दयन्तः—मर्दन करते हुए; महा-गजाः—बड़े-बड़े हाथी।

देवताओं के सैनिकों पर बिच्छू, बड़े-बड़े सर्प तथा अन्य अनेक विषैले पशुओं के साथ-साथ सिंह, बाघ, सूअर तथा बड़े-बड़े हाथी गिरने लगे और हर वस्तु को चकनाचूर करने लगे।

यातुधान्यश्च शतशः शूलहस्ता विवाससः ।
छिन्धि भिन्धीति वादिन्यस्तथा रक्षोगणाः प्रभो ॥ ४॥

शब्दार्थ

यातुधान्यः—मानव भक्षी असुरनियाँ; च—तथा; शतशः—सैकड़ों; शूल-हस्ताः—सभी हाथों में त्रिशूल लिए; विवाससः—पूर्ण नग्न; छिन्धि—खण्ड-खण्ड कर डालो; भिन्धि—छेद डालो; इति—इस प्रकार; वादिन्यः—बातें करते; तथा—इस तरह; रक्षः-गणाः—राक्षसगण; प्रभो—हे राजा।

हे राजा! तब कई सौ नरभक्षी नर और मादा असुर, जो पूर्णतया नग्न थे और अपने हाथों में त्रिशूल लिए थे "काट डालो! छेद डालो!" के नारे लगाते हुए प्रकट हुए।

ततो महाघना व्योम्नि गम्भीरपरुषस्वनाः ।
अङ्गारान्मुमुचुर्वातैराहताः स्तनयित्नवः ॥ ४९॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; महा-घनाः—बड़े-बड़े बादल; व्योम्नि—आकाश में; गम्भीर-परुष-स्वनाः—अत्यन्त गहरी गड़गड़ाहट उत्पन्न करते; अङ्गारान्—अंगारों को; मुमुचुः—गिराया; वातैः—प्रबल वायु से; आहताः—प्रताड़ित; स्तनयित्नवः—मेघ गर्जना से।

तब आकाश में प्रबल वायु से प्रताड़ित घनघोर घटाएँ प्रकट हो आईं। वे गम्भीर गर्जना करती हुईं जलते कोयलों के अंगारे बरसाने लगीं।

सृष्टो दैत्येन सुमहान्वह्निः श्वसनसारथिः ।
सांवर्तक इवात्युग्रो विबुधध्वजिनीमधाक् ॥ ५०॥

शब्दार्थ

सृष्टः—उत्पन्न; दैत्येन—असुर (बलि महाराज) द्वारा; सु-महान्—अत्यन्त विशाल, विनाशकारी; वह्निः—अग्नि; श्वसन-सारथिः—तेज हवा के द्वारा ले जाई जाकर; सांवर्तकः—सांवर्तक नामक अग्नि जो प्रलय के समय प्रकट होती है; इव—सदृश; अति—अत्यन्त; उग्रः—प्रचण्ड; विबुध—देवताओं के; ध्वजिनीम्—सैनिकों को; अधाक्—जलाकर राख कर दिया।

महाराज बलि द्वारा उत्पन्न की गई अत्यन्त संहारक अग्नि देवताओं के सभी सैनिकों को जलाने लगी। यह अग्नि तेज बहती हवाओं के साथ उस सांवर्तक अग्नि जैसी प्रतीत हो रही थी जो प्रलय के समय प्रकट होती है।

ततः समुद्र उद्वेलः सर्वतः प्रत्यदृश्यत ।
प्रचण्डवातैरुद्धूततरङ्गावर्तभीषणः ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; समुद्रः—समुद्र; उद्वेलः—क्षुब्ध होकर; सर्वतः—चारों ओर; प्रत्यदृश्यत—हर एक की दृष्टि के सामने दिखने लगा; प्रचण्ड—भयानक; वातैः—हवा से; उद्धूत—क्षुब्ध; तरङ्ग—लहरों का; आवर्त—भँवर; भीषणः—भीषण।

तत्पश्चात् हवाओं के प्रचण्ड झकोरों से क्षुब्ध समुद्री लहरें तथा भँवर सब की आँखों के सामने एक भीषण बाढ़ के रूप में चारों ओर प्रकट हो आए।

एवं दैत्यैर्महामायैरलक्ष्यगतिभी रणे ।
सृज्यमानासु मायासु विषेदुः सुरसैनिकाः ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; दैत्यैः—असुरों के द्वारा; महा-मायैः—मायावी कार्यों में दक्ष; अलक्ष्य-गतिभिः—किन्तु अदृश्य; रणे—युद्ध में; सृज्यमानासु मायासु—ऐसे मायावी वातावरण की सृष्टि होने से; विषेदुः—खिन्न हो गये; सुर-सैनिकाः—देवताओं के सैनिक।

जब ऐसे मायावी कार्यों में दक्ष अदृश्य असुरों द्वारा युद्ध में इस तरह का जादुई वातावरण उत्पन्न किया जा रहा था, तो देवताओं के सैनिक खिन्न हो गये।

न तत्प्रतिविधिं यत्र विदुरिन्द्रादयो नृप ।
ध्यातः प्रादुरभूत्तत्र भगवान्विश्वभावनः ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; तत्-प्रतिविधिम्—ऐसे मायावी वातावरण की प्रतिक्रिया; यत्र—जहाँ; विदुः—समझ सके; इन्द्र-आदयः—इन्द्र इत्यादि देवता; नृप—हे राजा; ध्यातः—ध्यान किये जाने पर; प्रादुरभूत्—प्रकट हुए; तत्र—उस स्थान पर; भगवान्—भगवान्; विश्व-भावनः—ब्रह्माण्ड के स्रष्टा।

हे राजा! जब देवताओं को असुरों के कार्यों का निराकरण कर पाने का कोई उपाय न सूझा तो उन्होंने ब्रह्माण्ड के स्रष्टा भगवान् का पूर्ण मनोयोग से ध्यान किया और वे तुरन्त ही प्रकट हो गये।

ततः सुपर्णांसकृताङ्घ्रिपल्लवः
पिशङ्गवासा नवकञ्जलोचनः ।
अदृश्यताष्टायुधबाहुरुल्लस-
च्छ्रीकौस्तुभानर्घ्यकिरीटकुण्डलः ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; सुपर्ण-अंस-कृत-अङ्घ्रि-पल्लवः—भगवान्, जिनके चरणकमल गरुड़ के दोनों कंधों पर फैले रहते हैं; पिशङ्ग-वासाः—जिनके वस्त्र पीले हैं; नव-कञ्ज-लोचनः—तथा जिनके नेत्र नवीन खिले कमल की पंखुड़ियों के तुल्य हैं; अदृश्यत—दृष्टिगोचर हो गए (देवताओं के समक्ष); अष्ट-आयुध—आठ प्रकार के आयुधों से युक्त; बाहुः—बाहें; उल्लसत्—झलमलाते; श्री—लक्ष्मी; कौस्तुभ—कौस्तुभ मणि; अनर्घ्य—अगणनीय मूल्य का; किरीट—मुकुट; कुण्डलः—कुण्डल पहने।

नवविकसित कमल की पंखुड़ियों सदृश आँखों वाले भगवान् गरुड़ की पीठ पर बैठे थे और गरुड़ के कंधों पर अपने चरणकमल फैलाये थे। वे पीत वस्त्र धारण किये, कौस्तुभ मणि तथा लक्ष्मीजी से सुसज्जित एवं अमूल्य मुकुट तथा कुण्डल पहने अपनी आठों भुजाओं में विविध आयुध धारण किये देवताओं को दृष्टिगोचर हुए।

तस्मिन्प्रविष्टेऽसुरकूटकर्मजा
माया विनेशुर्महिना महीयसः ।
स्वप्नो यथा हि प्रतिबोध आगते
हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम् ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ

तस्मिन् प्रविष्टे—भगवान् के प्रवेश करने पर; असुर—असुरों का; कूट-कर्म-जा—जादू भरे कार्यों से; माया—छद्म अभिव्यक्ति; विनेशुः—तुरन्त नष्ट हो गये; महिना—श्रेष्ठ शक्ति द्वारा; महीयसः—भगवान् का जो महानतम से भी महान् हैं; स्वप्नः—सपने; यथा—जिस तरह; हि—निस्सन्देह; प्रतिबोधे—जगने पर; आगते—आ गया है; हरि-स्मृतिः—भगवान् की स्मृति; सर्व-विपत्—सभी प्रकार की विपदाओं से; विमोक्षणम्—तुरन्त मुक्त कर देती है।

जिस प्रकार स्वप्न देखने वाले के जगते ही स्वप्न के भय दूर हो जाते हैं उसी तरह युद्धभूमि में भगवान् के प्रवेश करते ही उनकी दिव्य शक्ति से असुरों की जादूगरी से उत्पन्न माया विलीन हो गई। निस्सन्देह, भगवान् के स्मरण मात्र से मनुष्य सारे संकटों से मुक्त हो जाता है।

दृष्ट्वा मृधे गरुडवाहमिभारिवाह
आविध्य शूलमहिनोदथ कालनेमिः ।
तल्लीलया गरुडमूर्ध्नि पतद्गृहीत्वा
तेनाहनन्नृप सवाहमरिं त्र्यधीशः ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देखकर; मृधे—युद्धस्थल में; गरुड-वाहम्—गरुड़ द्वारा ले जाए गए भगवान्; इभारि-वाहः—महान् सिंह द्वारा ले गया असुर; आविध्य—घुमा कर; शूलम्—त्रिशूल को; अहिनोत्—उस पर छोड़ा; अथ—इस प्रकार; कालनेमिः—कालनेमि असुर ने; तत्—भगवान् पर असुर द्वारा ऐसा प्रहार; लीलया—आसानी से; गरुड-मूर्ध्नि—गरुड़ के सिर पर; पतत्—गिरते हुए; गृहीत्वा—तुरन्त सहज रूप से पकड़ कर; तेन—उसी हथियार से; अहनत्—मार डाला; नृप—हे राजा; स-वाहम्—अपने वाहन समेत; अरिम्—शत्रु को; त्रि-अधीशः—तीनों लोकों के स्वामी भगवान् ने।

हे राजा! जब सिंह पर आरूढ़ कालनेमि दैत्य ने देखा कि गरुड़वाहन भगवान् युद्धक्षेत्र में हैं, तो उसने तुरन्त अपना त्रिशूल निकाल लिया और उसे गरुड़ के सिर पर चलाया। किन्तु तीनों

लोकों के स्वामी भगवान् हरि ने तुरन्त ही उस त्रिशूल को पकड़ लिया और उसी हथियार से अपने शत्रु कालनेमि को उसके वाहन सिंह समेत मार डाला।

तात्पर्य : इस प्रसंग में *श्रील मध्वाचार्य* कहते हैं—

कालनेम्यादय: सर्वे करिणा निहता अपि।

शुक्रेणोज्जीविता: सन्त: पुनस्तेनैव पातिता: ॥

''कालनेमि तथा अन्य सारे असुर भगवान् हरि द्वारा मार डाले गये और जब असुरों को उनके गुरु शुक्राचार्य ने पुन: जीवित कर दिया तो भगवान् ने उन्हें पुन: मार डाला।''

माली सुमाल्यतिबलौ युधि पेततुर्य-
च्चक्रेण कृत्तशिरसावथ माल्यवांस्तम् ।
आहत्य तिग्मगदयाहनदण्डजेन्द्रं
तावच्छिरोऽच्छिनदरेर्नदतोऽरिणाद्य: ॥ ५७॥

शब्दार्थ

माली सुमाली—माली तथा सुमाली नामक दो असुर; अति-बलौ—अत्यन्त शक्तिशाली; युधि—युद्धस्थल में; पेततु:—गिर गये; यत्-चक्रेण—जिसके चक्र से; कृत्त-शिरसौ—छिन्न सिरों वाले; अथ—तत्पश्चात्; माल्यवान्—माल्यवान्; तम्—भगवान् को; आहत्य—आक्रमण करके; तिग्म-गदया—अत्यन्त नुकीली गदा से; अहनत्—मार डालना चाहा; अण्ड-ज-इन्द्रम्—अण्डों से उत्पन्न पक्षियों के राजा, गरुड़ ने; तावत्—उस समय; शिर:—सिर; अच्छिनत्—काट लिया; अरे:—शत्रु का; नदत:—शेर जैसे दहाड़ता; अरिणा—चक्र से; आद्य:—आदि भगवान् ने।

तत्पश्चात् भगवान् ने माली तथा सुमाली नामक दो शक्तिमान असुरों को मारा। उन्होंने अपने चक्र से उनके सिर काट दिये। तब एक अन्य असुर माल्यवान ने भगवान् पर आक्रमण किया। उसने अपनी नुकीली गदा से, सिंह की भाँति गर्जना करते हुए, अण्डो से उत्पन्न पक्षिराज गरुड़ पर आक्रमण किया। किन्तु आदि पुरुष भगवान् ने अपने चक्र का प्रयोग करते हुए उस शत्रु के सिर को भी काट दिया।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कंध के अन्तर्गत ''देवताओं तथा असुरों के बीच युद्ध'' नामक दसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter ग्यारह

इन्द्र द्वारा असुरों का संहार

इस अध्याय में बताया गया है कि महान् मुनि नारद को उन असुरों पर अत्यधिक दया आई जो

देवताओं द्वारा मारे गये थे। अत: उन्होंने देवताओं को इस रक्तपात को बन्द करने के लिए कहा। तब शुक्राचार्य ने अपनी योगशक्ति से सभी असुरों को जीवनदान दिया।

भगवान् का समर्थन होने से देवतागण इन असुरों से नये जोश से पुन: लड़ने लगे। राजा इन्द्र ने बलि पर अपना वज्र चलाया और जब बलि गिर गये तो उनके मित्र जम्भासुर ने इन्द्र पर आक्रमण कर दिया, किन्तु इन्द्र ने अपने वज्र से उसका सिर काट दिया। जब नारद मुनि ने सुना कि जम्भासुर मारा गया है, तो उन्होंने नमुचि, बल तथा पाक को सूचित किया जो उसके सम्बन्धी थे। तब ये तीनों युद्धक्षेत्र में गये और इन्होंने देवताओं पर आक्रमण कर दिया। इन्द्र ने बल तथा पाक के सिर काट दिये और नमुचि के कंधे पर कुलिश नाम का वज्र-रूपी हथियार छोड़ा। किन्तु यह कुलिश वज्र असफल होकर वापस आ गया जिससे इन्द्र खिन्न हो गया। उस समय आकाश से एक अदृश्य वाणी सुनाई पड़ी वाणी ने घोषणा की, "नमुचि को शुष्क या नम हथियार नहीं मार सकता।" यह वाणी सुनकर इन्द्र सोचने लगा कि नमुचि का संहार कैसे हो? तब उसके मन में झाग का विचार आया जो न तो शुष्क होता है, न नम। इस झाग के हथियार का उपयोग करके वह नमुचि को मारने में सफल रहे। इस प्रकार इन्द्र तथा अन्य देवताओं ने अनेक असुर मार गिराये। तब ब्रह्मा के आग्रह पर नारद मुनि देवताओं के पास गये और उन्हें मना किया कि अब वे असुरों का वध करना बन्द कर दें। तब सारे देवता अपने-अपने धामों को चले गये। किन्तु युद्ध-स्थल पर जितने असुर जीवित बचे थे वे सब नारद के आदेशानुसार बलि महाराज को अस्ताचल पर्वत पर ले गये। वहाँ पर शुक्राचार्य के कर-स्पर्श से बलि महाराज को फिर से चेतना आ गई और जिन असुरों के सिर तथा शरीर पूरी तरह नष्ट नहीं हुए थे उन सब को शुक्राचार्य ने अपनी योग-शक्ति से पुन: जीवित कर दिया।

श्रीशुक उवाच
अथो सुरा: प्रत्युपलब्धचेतस:
परस्य पुंस: परयानुकम्पया ।
जघ्नुर्भृशं शक्रसमीरणादयस्
तांस्तान्रणे यैरभिसंहता: पुरा ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; **अथो**—तत्पश्चात्; **सुरा:**—सारे देवता; **प्रत्युपलब्ध-चेतस:**—चेतना आ जाने से पुन: जीवित होकर; **परस्य**—परम; **पुंस:**—भगवान् की; **परया**—परम; **अनुकम्पया**—कृपा से; **जघ्नु:**—पीटने लगे; **भृशम्**—

पुनः पुनः; शक्र—इन्द्र; समीरण—वायु; आदयः—इत्यादि; तान् तान्—उन-उन राक्षसों को; रणे—युद्ध में; यैः—जिनके द्वारा; अभिसंहताः—हराये गये थे; पुरा—पहले।

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा : तत्पश्चात् भगवान् श्रीहरि की परम कृपा से इन्द्र, वायु इत्यादि सारे देवता जीवित हो गये। इस प्रकार जीवित होकर सारे देवता उन्ही असुरों को बुरी तरह पीटने लगे जिन्होंने पहले उन्हें परास्त किया था।

वैरोचनाय संरब्धो भगवान्पाकशासनः ।
उदयच्छद्यदा वज्रं प्रजा हा हेति चुक्रुशुः ॥ २॥

शब्दार्थ

वैरोचनाय—बलि महाराज को (मारने के लिए); संरब्धः—अत्यन्त क्रुद्ध होकर; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; पाक-शासनः—इन्द्र ने; उदयच्छत्—हाथ में लिया; यदा—जिस समय; वज्रम्—वज्र; प्रजाः—सारे असुर; हा हा—हाय हाय; इति—इस प्रकार; चुक्रुशुः—चिल्लाने लगे।

जब परमशक्तिशाली इन्द्र क्रुद्ध हो गए और उन्होंने महाराज बलि को मारने के लिए अपने हाथ में वज्र ले लिया तो सारे असुर "हाय हाय" चिल्ला कर शोक करने लगे।

वज्रपाणिस्तमाहेदं तिरस्कृत्य पुरःस्थितम् ।
मनस्विनं सुसम्पन्नं विचरन्तं महामृधे ॥ ३॥

शब्दार्थ

वज्र-पाणिः—हाथ में सदा वज्र रहता है, जिसके, इन्द्र; तम्—बलि महाराज को; आह—सम्बोधित किया; इदम्—इस तरह; तिरस्कृत्य—प्रताड़ित करके; पुरः-स्थितम्—उसके सामने खड़े होकर; मनस्विनम्—अत्यन्त गम्भीर तथा सहिष्णु; सु-सम्पन्नम्—युद्ध के साज-सामान से युक्त; विचरन्तम्—घूमते हुए; महा-मृधे—विशाल युद्धस्थल में।

गम्भीर, सहिष्णु तथा लड़ने के साज-सामान से भलीभान्ति युक्त बलि महाराज उस विशाल युद्धस्थल में इन्द्र के सामने घूम रहे थे। सदा हाथ में वज्र लिये रहने वाले इन्द्र ने बलि महाराज को इस प्रकार तिरस्कारपूर्वक ललकारा।

नटवन्मूढ मायाभिर्मायेशान्नो जिगीषसि ।
जित्वा बालान्निबद्धाक्षान्नटो हरति तद्धनम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

नट-वत्—धूर्त या ठग की तरह; मूढ—रे धूर्त; मायाभिः—माया करके; माया-ईशान्—माया को वश में करने वाले देवताओं को; नः—हम सब को; जिगीषसि—विजयी बनना चाहते हो; जित्वा—जीतकर; बालान्—बच्चों को; निबद्ध-अक्षान्—आँखें बाँध कर; नटः—ठग; हरति—ले जाता है; तत्-धनम्—बच्चे का धन।

इन्द्र ने कहा : रे धूर्त! जिस प्रकार ठग बच्चे की आँखों को बाँध कर कभी-कभी उसका धन ले जाता है उसी प्रकार तुम यह जानते हुए कि हम सब ऐसी माया-शक्तियों के स्वामी हैं,

अपनी कोई मायाशक्ति दिखलाकर हमें परास्त करना चाहते हो।

आरुरुक्षन्ति मायाभिरुत्सिसृप्सन्ति ये दिवम् ।
तान्दस्यून्विधुनोम्यज्ञान्पूर्वस्माच्च पदादधः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

आरुरुक्षन्ति—व्यक्ति जो उच्च लोकों को जाना चाहते हैं; मायाभिः—तथाकथित योगशक्ति या विज्ञान के भौतिक विकास द्वारा; उत्सिसृप्सन्ति—या ऐसे झूठे प्रयासों से मुक्त होना चाहते हैं; ये—जो व्यक्ति; दिवम्—स्वर्गलोक को; तान्—ऐसे धूर्तों तथा लंठों को; दस्यून्—ऐसे चोरों को; विधुनोमि—मैं नीचे गिराता हूँ; अज्ञान्—मूर्ख; पूर्वस्मात्—पिछला; च—भी; पदात्—पद से; अधः—नीचे।

उन मूर्खों तथा धूर्तों को जो माया से या यांत्रिक साधनों से उच्चलोकों तक पहुँचना चाहते हैं या जो उच्चलोकों को भी पार करके वैकुण्ठलोक या मुक्ति प्राप्त करना चाहते हैं, मैं उन्हें ब्रह्माण्ड के सबसे निम्न भाग में भिजवाता हूँ।

तात्पर्य : विभिन्न लोगों के लिए निस्सन्देह, भिन्न-भिन्न लोक हैं। जैसाकि *भगवद्गीता* (१४.१) में कहा गया है—*ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्थाः*—सतोगुणी पुरुष उच्चतर लोकों को जा सकते हैं। किन्तु जो रजोगुणी तथा तमोगुणी हैं उन्हें उच्चलोकों में प्रवेश नहीं करने दिया जाता। *दिवम्* शब्द उच्चलोकों का द्योतक है, जो स्वर्गलोक कहलाता है। स्वर्गलोक के राजा इन्द्र को अधिकार है कि यदि कोई बद्धजीव समुचित योग्यता के बिना निम्न लोकों से उच्चलोकों को जाने का प्रयास करे तो वह उसे नीचे धकेल दे। चन्द्रमा तक जाने का आधुनिक प्रयास निम्न लोगों द्वारा कृत्रिम यांत्रिक साधनों से स्वर्गलोक जाने का ही प्रयास है। यह प्रयास सफल नहीं हो सकता। इन्द्र के इस कथन से लगता है कि जो यांत्रिक साधनों द्वारा, जिसे यहाँ पर माया कहा गया है, उच्चलोकों को जाने का प्रयास करता है उसे ब्रह्माण्ड के निम्न भागों में नरकलोक में भेज दिया जाता है। उच्चलोकों में जाने के लिए पर्याप्त सद्गुण चाहिए। तमोगुणी पापी पुरुष तथा मदिरा पान, मांस भक्षण तथा अवैध यौनाचार में लगा व्यक्ति कभी भी यांत्रिक साधनों से उच्चलोकों में प्रवेश नहीं करेगा।

सोऽहं दुर्मायिनस्तेऽद्य वज्रेण शतपर्वणा ।
शिरो हरिष्ये मन्दात्मन्यटस्व ज्ञातिभिः सह ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

सः—वही शक्तिशाली पुरुष; अहम्—मैं (इन्द्र); दुर्मायिनः—माया से इतनी जादूगरी करने वाले तुम; ते—तुम्हारा; अद्य—आज; वज्रेण—वज्र से; शत-पर्वणा—सैकड़ों तीक्ष्ण धारों वाला; शिरः—सिर; हरिष्ये—पृथक् कर दूँगा; मन्द-आत्मन्—हे अज्ञानी; घटस्व—इस युद्धस्थल में रहते रहो; ज्ञातिभिः सह—अपने सम्बन्धियों तथा सहायकों सहित।

आज, मैं, वही शक्तिशाली व्यक्ति, हजारों तेज धारों वाले अपने वज्र से तुम्हारे सिर को शरीर से काटकर अलग कर दूँगा। यद्यपि तुम माया द्वारा पर्याप्त चमत्कार दिखा सकते हो, किन्तु तुम्हारा ज्ञान अत्यल्प है। अब तुम अपने परिजनों तथा मित्रों सहित युद्धभूमि में ठहरने की ही चेष्टा दिखा करो।

श्रीबलिरुवाच
सङ्ग्रामे वर्तमानानां कालचोदितकर्मणाम् ।
कीर्तिर्जयोऽजयो मृत्युः सर्वेषां स्युरनुक्रमात् ॥ ७॥

शब्दार्थ

श्री-बलिः उवाच—बलि महाराज ने कहा; सङ्ग्रामे—युद्धभूमि में; वर्तमानानाम्—यहाँ जो लोग उपस्थित हैं उनका; काल-चोदित—काल के प्रभाव से; कर्मणाम्—लड़ने या अन्य कार्यों में लगे मनुष्यों के लिए; कीर्तिः—यश; जयः—विजय; अजयः—हार; मृत्युः—मृत्यु; सर्वेषाम्—सब की; स्युः—होनी चाहिए; अनुक्रमात्—क्रमशः।

बलि महाराज ने उत्तर में कहा : सभी लोग जो इस युद्धभूमि में उपस्थित हैं निश्चय ही नित्य काल के वश में हैं और वे अपने-अपने नियत कर्मों के अनुसार क्रमशः यश, विजय, हार तथा मृत्यु प्राप्त करेंगे।

तात्पर्य : यदि कोई युद्धभूमि में विजयी होता है, तो वह प्रसिद्ध हो जाता है, किन्तु यदि वह विजयी न होकर हार जाता है, तो वह मर सकता है। जीत या हार तो इस तरह के युद्ध में या जीवन-संघर्ष के युद्धक्षेत्र में सम्भव है ही। सब कुछ प्रकृति के नियमों के अनुसार घटित होता है(*प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणै कर्माणि सर्वशः*)। चूँकि, बिना किसी अपवाद के, हर जीव प्रकृति के गुणों के अधीन है अतएव विजयी या पराजित होना उसके वश में नहीं है अपितु वह प्रकृति के वश में होता है। इसलिए बलि महाराज अत्यन्त विचारवान् थे। वे जानते थे कि युद्ध शाश्वत काल द्वारा नियोजित है और काल के वशीभूत होकर मनुष्य को अपने कर्मों का फल स्वीकार करना होता है। अतएव इन्द्र द्वारा यह धमकी दिये जाने पर भी कि वह बलि महाराज को वज्र से मार डालेगा, बलि महाराज रंचमात्र भी भयभीत नहीं हुए। यही क्षत्रिय धर्म है—*युद्धे चाप्यपलायनम्* (*भगवद्गीता* १.४३)। क्षत्रिय को सभी परिस्थितियों में, विशेषकर युद्धभूमि में, अत्यन्त सहनशील होना चाहिए। अतः बलि महाराज ने बता दिया कि यद्यपि स्वर्ग का राजा जैसा व्यक्ति उन्हें धमका रहा है, किन्तु वे मृत्यु से तनिक भी भयभीत

नहीं हैं।

तदिदं कालरशनं जगत्पश्यन्ति सूरयः ।
न हृष्यन्ति न शोचन्ति तत्र यूयमपण्डिताः ॥ ॥

शब्दार्थ

तत्—अतएव; इदम्—यह सम्पूर्ण भौतिक जगत; काल-रशनम्—काल के कारण गतिमान्; जगत्—आगे बढ़ता (यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड); पश्यन्ति—देखते हैं; सूरयः—सत्य से अवगत होने के कारण जो बुद्धिमान् हैं; न—नहीं; हृष्यन्ति—हर्षित होते हैं; न—न तो; शोचन्ति—पछताते हैं; तत्र—ऐसे में; यूयम्—तुम सारे देवता; अपण्डिताः—पण्डित नहीं हो (यह भूलकर कि तुम काल के अधीन कार्य कर रहे हो)।

काल की गतियों को देखकर, जो लोग वास्तविक सत्य से अवगत हैं, वे विभिन्न परिस्थितियों के लिए न तो हर्षित होते हैं, न सोचते हैं। चूँकि तुम लोग अपनी विजय पर हर्षित हो अतः तुम्हें अत्यन्त विद्वान नहीं कहा जा सकता।

तात्पर्य : बलि महाराज जानते थे कि स्वर्ग का राजा इन्द्र अत्यन्त शक्तिशाली है और उनसे तो निश्चित रूप से अधिक शक्तिशाली है। फिर भी बलि महाराज ने यह कहकर ललकारा कि इन्द्र बहुत विद्वान पुरुष नहीं है। *भगवद्गीता* (२.११) में कृष्ण ने अर्जुन को यह कहकर फटकारा कि—

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।

गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥

''तुम बुद्धिमानी की बातें कहते हुए उसके लिए शोक करते हो जो शोक करने योग्य नहीं है। जो लोग बुद्धिमान् हैं, वे न तो जीवित के लिए शोक करते हैं न मरे हुए के लिए।'' इस प्रकार जैसे कृष्ण ने अर्जुन को यह कहते हुए फटकारा कि वह पण्डित नहीं है, बलि महाराज ने भी इन्द्र तथा उसके पार्षदों को फटकारा। इस भौतिक जगत में काल के अधीन ही सब घटित होता है। फलस्वरूप ऐसे विद्वान व्यक्ति के लिए जो यह देखता है कि किस तरह घटनाएँ घटती हैं, प्रकृति की लहरों के कारण दुखी या सुखी होने का प्रश्न ही नहीं उठता। आखिर, जब हम इन लहरों द्वारा बहाकर ले जाये जा रहे हैं, तो हर्षित होने या खिन्न होने से क्या लाभ? जो प्रकृति के नियमों से भलीभाँति अवगत है, वह प्रकृति के कार्यकलापों के कारण, कभी भी न तो हर्षित होता है न खिन्न। *भगवद्गीता* (२.१४) में कृष्ण उपदेश देते हैं कि मनुष्य सहिष्णु बने—*तांस्तितिक्षस्व भारत।* कृष्ण के इस उपदेश का पालन करते हुए मनुष्य को परिस्थितियों के परिवर्तन के कारण न तो खिन्न होना चाहिए न प्रसन्न। यह भक्त

का लक्षण है। भक्त कृष्णभावनामृत में अपना कर्तव्य पालन करता है और विषम परिस्थिति में अप्रसन्न नहीं रहता। उसे पूर्ण विश्वास रहता है कि ऐसी परिस्थितियों में कृष्ण अपने भक्त की रक्षा करते हैं। अतएव भक्त भक्ति के अपने नियत कर्तव्य से कभी विचलित नहीं होता। हर्ष तथा विषाद् जैसे भौतिक गुण देवताओं तक में रहते हैं, जो उच्चलोक में अच्छा स्थान ग्रहण किए हुए हैं। अतएव जब कोई व्यक्ति इस भौतिक जगत की तथाकथित अनुकूल तथा प्रतिकूल दशाओं में अविचलित रहे तो उसे *ब्रह्मभूत* या स्वरूपसिद्ध समझना चाहिए। जैसाकि *भगवद्गीता* (१.५४) में कहा गया है— *ब्रह्मभूत: प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति*—जो दिव्य पद पर स्थित है, वह तुरन्त ही परब्रह्म का साक्षात्कार करता है और पूरी तरह प्रसन्न हो जाता है। जब मनुष्य भौतिक दशाओं से विचलित नहीं होता तो उसे दिव्य स्तर पर स्थित समझना चाहिए, जो प्रकृति के तीन गुणों के प्रभावों से ऊपर है।

न वयं मन्यमानानामात्मानं तत्र साधनम् ।
गिरो वः साधुशोच्यानां गृह्णीमो मर्मताडनाः ॥ ९॥

शब्दार्थ

न—नहीं; वयम्—हम; मन्यमानानाम्—मानने वालों का; आत्मानम्—स्वयं; तत्र—विजय या हार में; साधनम्—कारण; गिरः—शब्द; वः—तुम्हारा; साधु-शोच्यानाम्—जिन पर साधु पुरुषों को तरस आता है; गृह्णीमः—स्वीकार करते हैं; मर्म-ताडनाः—हृदय को पीड़ा पहुँचाने वाले।

तुम देवता लोग अपने आपको अपनी ख्याति तथा विजय प्राप्त करने का कारण मानते हो। तुम लोगों की अज्ञानता के कारण साधु पुरुष तुम्हारे लिए शोक करते हैं। अतएव तुम्हारे वचन मर्मस्पर्शी होते हुए भी हमें स्वीकार्य नहीं हैं।

श्रीशुक उवाच
इत्याक्षिप्य विभुं वीरो नाराचैर्वीरमर्दनः ।
आकर्णपूर्णैरहनदाक्षेपैराह तं पुनः ॥ १०॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; आक्षिप्य—प्रताड़ित करके; विभुम्—इन्द्र को; वीरः—बहादुर बलि महाराज; नाराचैः—नाराच नामक बाणों से; वीर-मर्दनः—बड़े-बड़े वीरों को भी दमित करने वाले बलि महाराज; आकर्ण-पूर्णैः—कानों तक खींचकर; अहनत्—आक्रमण किया; आक्षेपैः—प्रताड़ना के शब्दों से; आह—कहा; तम्—उससे; पुनः—फिर।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : स्वर्ग के राजा इन्द्र को इस प्रकार कटु वचनों से फटकारने के बाद वीरों को मर्दन करने वाले बलि महाराज ने नाराच बाणों को अपने कान तक खींचा और

उनसे इन्द्र पर आक्रमण कर दिया। उन्होंने पुनः इन्द्र को कठोर शब्दों से प्रताड़ित किया।

एवं निराकृतो देवो वैरिणा तथ्यवादिना ।
नामृष्यत्तदधिक्षेपं तोत्राहत इव द्विपः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; निराकृतः—हारकर; देवः—राजा इन्द्र; वैरिणा—अपने शत्रु से; तथ्य-वादिना—सत्य कहने में पटु; न—नहीं; अमृष्यत्—पछताया; तत्—उसकी (बलि की); अधिक्षेपम्—प्रताड़ना; तोत्र—अंकुश या दण्ड से; आहतः—मारा जाकर; इव—सदृश; द्विपः—हाथी।

चूँकि महाराज बलि की फटकारें सत्य थीं अतएव इन्द्र तनिक भी खिन्न नहीं हुआ जिस तरह एक हाथी पीलवान द्वारा अंकुश से पीटा जाने पर भी कभी विचलित नहीं होता।

प्राहरत्कुलिशं तस्मा अमोघं परमर्दनः ।
सयानो न्यपतद्भूमौ छिन्नपक्ष इवाचलः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

प्राहरत्—मारा जाकर; कुलिशम्—वज्र दण्ड; तस्मै—उसको (बलि महाराज को); अमोघम्—अच्युत; पर-मर्दनः—शत्रु को हराने में पटु, इन्द्र; स-यानः—अपने वायुयान सहित; न्यपतत्—गिर पड़ा; भूमौ—पृथ्वी पर; छिन्न-पक्षः—जिसके पंख काट लिये गये हों; इव—सदृश; अचलः—पर्वत।

जब शत्रुओं को हराने वाले इन्द्र ने अपना अमोघ वज्र बलि महाराज पर उन्हें मारने की इच्छा से चलाया तो सचमुच बलि महाराज अपने वायुयान समेत भूमि पर गिर पड़े मानो कोई पर्वत पंख काटे जाने से गिरा हो।

तात्पर्य : वैदिक वाङ्मय के अनेक वर्णनों में पाया जाता है कि पर्वत भी अपने पंखों से आकाश में उड़ते हैं। जब ऐसे पर्वत मृत हो जाते हैं, तो वे जमीन पर गिर जाते हैं जहाँ वे विशाल मृत शरीरों के रूप में रहते हैं।

सखायं पतितं दृष्ट्वा जम्भो बलिसखः सुहृत् ।
अभ्ययात्सौहृदं सख्युर्हतस्यापि समाचरन् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

सखायम्—अपने घनिष्ठ मित्र को; पतितम्—गिरा हुआ; दृष्ट्वा—देखकर; जम्भः—जम्भ नामक राक्षस; बलि-सखः—बलि महाराज का घनिष्ठ मित्र; सुहृत्—तथा निरन्तर शुभ चाहने वाला; अभ्ययात्—वहाँ पर प्रकट हुआ; सौहृदम्—अत्यन्त दयालु मित्रता; सख्युः—अपने मित्र का; हतस्य—जो चोट खाकर गिर गया था; अपि—यद्यपि; समाचरन्—मैत्रीपूर्ण कार्य निबाहने के लिए।

जब जम्भासुर ने देखा कि उसका मित्र बलि गिर गया है, तो वह उसके शत्रु इन्द्र के समक्ष

प्रकट हुआ मानो मैत्रीपूर्ण आचरण से बलि महाराज की सेवा करने के लिए आया हो।

स सिंहवाह आसाद्य गदामुद्यम्य रंहसा ।
जत्रावताडयच्छक्रं गजं च सुमहाबलः ॥ १४॥

शब्दार्थ

सः—जम्भासुर ने; सिंह-वाहः—सिंह द्वारा ले जाया गया; आसाद्य—इन्द्र के समक्ष आकर; गदाम्—अपनी गदा को; उद्यम्य—निकालकर; रंहसा—बलपूर्वक; जत्रौ—गर्दन के निचले भाग पर; अताडयत्—मारा; शक्रम्—इन्द्र को; गजम् च—तथा उसके हाथी को; सु-महा-बलः—उस शक्तिशाली जम्भासुर ने।

अत्यन्त शक्तिशाली जम्भासुर सिंह पर सवार होकर इन्द्र के पास आया और उसने अपनी गदा से उसके कंधे पर बलपूर्वक प्रहार किया। उस ने इन्द्र के हाथी पर भी प्रहार किया।

गदाप्रहारव्यथितो भृशं विह्वलितो गजः ।
जानुभ्यां धरणीं स्पृष्ट्वा कश्मलं परमं ययौ ॥ १५॥

शब्दार्थ

गदा-प्रहार-व्यथितः—जम्भासुर की गदा की चोट से पीड़ित; भृशम्—अत्यधिक; विह्वलितः—उद्विग्न; गजः—हाथी; जानुभ्याम्—अपने दोनों घुटनों से; धरणीम्—पृथ्वी को; स्पृष्ट्वा—छूकर; कश्मलम्—अचेत; परमम्—अत्यधिक; ययौ—हो गया।

जम्भासुर की गदा से चोट खाकर इन्द्र का हाथी विचलित और पीड़ित हो गया। उसने भूमि पर घुटने टेक दिये और वह अचेत होकर गिर गया।

ततो रथो मातलिना हरिभिर्दशशतैर्वृतः ।
आनीतो द्विपमुत्सृज्य रथमारुरुहे विभुः ॥ १६॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; रथः—रथ; मातलिना—मातलि नामक सारथी द्वारा; हरिभिः—घोड़ों से; दश-शतैः—सौ का दस गुना, एक हजार; वृतः—जुते हुए; आनीतः—लाया जाकर; द्विपम्—हाथी को; उत्सृज्य—छोड़कर; रथम्—रथ में; आरुरुहे—चढ़ गया; विभुः—महान् इन्द्र।

तत्पश्चात् इन्द्र का सारथी मातलि इन्द्र का रथ ले आया जिसे एक हजार घोड़े खींच रहे थे। तब इन्द्र ने अपने हाथी को छोड़ दिया और वह रथ पर चढ़ गया।

तस्य तत्पूजयन्कर्म यन्तुर्दानवसत्तमः ।
शूलेन ज्वलता तं तु स्मयमानोऽहनन्मृधे ॥ १७॥

शब्दार्थ

तस्य—मातलि की; तत्—वह सेवा (इन्द्र के समक्ष रथ को लाना); पूजयन्—प्रशंसा करते हुए; कर्म—स्वामी की ऐसी सेवा; यन्तु:—सारथी का; दानव-सत्-तम:—असुर श्रेष्ठ, जम्भासुर; शूलेन—त्रिशूल से; ज्वलता—अग्नि की लपटें निकालता; तम्—मातलि को; तु—निस्सन्देह; स्मयमान:—मुस्काते हुए; अहनत्—मारा; मृधे—युद्धस्थल में।

मातलि के सेवाभाव की प्रशंसा करते हुए असुरश्रेष्ठ जम्भासुर मुस्कराने लगा। फिर भी उसने युद्धभूमि में अग्नि के समान जलते हुए अपने त्रिशूल से मातलि पर प्रहार कर दिया।

सेहे रुजं सुदुर्मर्षां सत्त्वमालम्ब्य मातलि: ।
इन्द्रो जम्भस्य सङ्क्रुद्धो वज्रेणापाहरच्छिर: ॥ १ ॥

शब्दार्थ

सेहे—सहन कर लिया; रुजम्—पीड़ा को; सु-दुर्मर्षाम्—असह्य; सत्त्वम्—धैर्य; आलम्ब्य—धारण करके; मातलि:—सारथी मातलि ने; इन्द्र:—इन्द्र; जम्भस्य—जम्भासुर का; सङ्क्रुद्ध:—उस पर क्रुद्ध होकर; वज्रेण—अपने वज्र से; अपाहरत्—अलग कर दिया; शिर:—सिर को।

यद्यपि मातलि की वेदना असह्य थी, किन्तु उसने बड़े धैर्य से उसे सह लिया। किन्तु इन्द्र जम्भासुर पर अत्यधिक क्रुद्ध हो उठा। उसने अपने वज्र से उस पर प्रहार किया और उसके सिर को धड़ से अलग कर दिया।

जम्भं श्रुत्वा हतं तस्य ज्ञातयो नारदादृषे: ।
नमुचिश्च बल: पाकस्तत्रापेतुस्त्वरान्विता: ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

जम्भम्—जम्भासुर को; श्रुत्वा—सुनकर; हतम्—मारा गया; तस्य—उसके; ज्ञातय:—मित्र तथा सम्बन्धी; नारदात्—नारद से; ऋषे:—ऋषि से; नमुचि:—नमुचि; च—भी; बल:—बल नामक असुर; पाक:—तथा पाक राक्षस; तत्र—वहाँ; आपेतु:—तुरन्त आ गये; त्वरा-अन्विता:—फुर्ती से।

जब नारद ऋषि ने जम्भासुर के मित्रों तथा सम्बन्धियों को यह जानकारी दी कि जम्भासुर मारा गया है, तो नमुचि, बल तथा पाक नामक तीन असुर बड़ी तेजी से युद्धभूमि में आ गए।

वचोभि: परुषैरिन्द्रमर्दयन्तोऽस्य मर्मसु ।
शरैरवाकिरन्मेघा धाराभिरिव पर्वतम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

वचोभि:—कटु वचनों से; परुषै:—अत्यन्त भद्दे तथा कठोर; इन्द्रम्—राजा इन्द्र को; अर्दयन्त:—प्रताड़ित करते; अस्य—इन्द्र के; मर्मसु—हृदय में.; शरै:—बाणों से; अवाकिरन्—चारों ओर से ढक दिया; मेघा:—बादल; धाराभि:—वर्षा की झड़ी से; इव—जिस तरह; पर्वतम्—पर्वत को।

इन्द्र को कठोर, मर्मभेदी शब्दों से भला-बुरा कहते हुए इन असुरों ने उस पर बाणों से उसी प्रकार वर्षा की जिस तरह वर्षा की झड़ी किसी महान् पर्वत को धो देती है।

हरीन्दशशतान्याजौ हर्यश्वस्य बलः शरैः ।
तावद्भिरर्दयामास युगपल्लघुहस्तवान् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

हरीन्—घोड़ों को; दश-शतानि—एक हजार; आजौ—युद्धभूमि में; हर्यश्वस्य—इन्द्र के; बलः—बल नामक असुर ने; शरैः—बाणों से; तावद्भिः—इतनों से; अर्दयाम् आस—कठिनाई में डाल दिया; युगपत्—एक साथ; लघु-हस्तवान्—हाथ की सफाई से।

बल नामक असुर ने युद्धभूमि में परिस्थिति को तुरन्त सँभालते हुए इन्द्र के सभी एक हजार घोड़ों को उतने ही बाणों से एकसाथ घायल करके संकट में डाल दिया।

शताभ्यां मातलिं पाको रथं सावयवं पृथक् ।
सकृत्सन्धानमोक्षेण तदद्भुतमभूद्रणे ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

शताभ्याम्—दो सौ बाणों से; मातलिम्—मातलि नामक सारथी को; पाकः—पाक नामक राक्षस ने; रथम्—रथ को; स-अवयवम्—सारे साज-सामान सहित; पृथक्—अलग-अलग; सकृत्—एक ही बार में; सन्धान—धनुष पर बाण चढ़ाकर; मोक्षेण—तथा छोड़कर; तत्—ऐसे कार्य को; अद्भुतम्—अद्‌भुत; अभूत्—हो गया; रणे—युद्धभूमि में।

एक दूसरे असुर पाक ने अपने धनुष पर दो सौ बाण चढ़ाकर और उन्हें एक ही साथ छोड़कर सारे साज-सामान से भरे रथ पर तथा सारथी मातलि पर आक्रमण किया। युद्धभूमि में यह निस्सन्देह एक अद्‌भुत कार्य था।

नमुचिः पञ्चदशभिः स्वर्णपुङ्खैर्महेषुभिः ।
आहत्य व्यनदत्सङ्ख्ये सतोय इव तोयदः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

नमुचिः—नमुचि नामक राक्षस ने; पञ्च-दशभिः—पन्द्रह; स्वर्ण-पुङ्खैः—सुनहले पंखों वाले; महा-इषुभिः—अत्यन्त शक्तिशाली बाणों से; आहत्य—भेदकर; व्यनदत्—गर्जना की; सङ्ख्ये—युद्धभूमि में; स-तोयः—जल से भरे हुए; इव—सदृश; तोय-दः—वर्षा करने वाला बादल।

तब एक दूसरे असुर नमुचि ने इन्द्र पर आक्रमण किया और उसे पन्द्रह सुनहरे पंखों वाले अत्यन्त शक्तिशाली बाणों से घायल कर दिया जो जल से भरे बादल के समान गरज रहे थे।

सर्वतः शरकूटेन शक्रं सरथसारथिम् ।
छादयामासुरसुराः प्रावृट्सूर्यमिवाम्बुदाः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

सर्वतः—चारों ओर; शर-कूटेन—बाणों की घनी वर्षा से; शक्रम्—इन्द्र को; स-रथ—रथ सहित; सारथिम्—सारथी को; छादयाम् आसुः—ढक दिया; असुराः—सारे असुरों ने; प्रावृट्—वर्षा ऋतु में; सूर्यम्—सूर्य को; इव—सदृश; अम्बु-दाः—बादल।

अन्य असुरों ने अपने बाणों की निरन्तर वर्षा से इन्द्र को उसके रथ तथा सारथी सहित ढक दिया जिस तरह वर्षा ऋतु में बादल सूर्य को ढक लेते हैं।

अलक्षयन्तस्तमतीव विह्वला
विचुक्रुशुर्देवगणाः सहानुगाः ।
अनायकाः शत्रुबलेन निर्जिता
वणिक्पथा भिन्ननवो यथार्णवे ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

अलक्षयन्तः—देख सकने में असमर्थ; तम्—इन्द्र को; अतीव—अत्यधिक बुरी तरह से; विह्वलाः—मोहग्रस्त; विचुक्रुशुः—पश्चाताप करने लगे; देव-गणाः—सारे देवता; सह-अनुगाः—अपने अनुयायियों सहित; अनायकाः—बिना नेता के; शत्रु-बलेन—अपने शत्रुओं की श्रेष्ठ शक्ति द्वारा; निर्जिताः—अत्यधिक सताये गये; वणिक्-पथाः—व्यापारी; भिन्न-नवः—जिसका जहाज टूट गया हो; यथा अर्णवे—जिस तरह समुद्र के बीच में।

देवतागण अपने शत्रुओं द्वारा बुरी तरह से सताये जाने तथा युद्धभूमि में इन्द्र को न देख पाने के कारण अत्यन्त चिन्तित थे। वे बिना नायक या कप्तान के उसी तरह विलाप करने लगे जिस तरह समुद्र के बीच में जहाज ध्वंस होने पर व्यापारी विलाप करते हैं।

तात्पर्य : इस कथन से प्रतीत होता है कि उच्चलोकों में जहाजरानी होती है और व्यापारी व्यवसाय के रूप में नौका चालन करते हैं। कभी-कभी इस लोक की तरह इन व्यापारियों का भी जहाज समुद्र के बीच में ध्वंस हो जाता है। ऐसा लगता है कि उच्चलोकों में भी ऐसी विपदाएँ कभी कभी आती रहती हैं। भगवान् की सृष्टि में होने से उच्चलोक भी शून्य या जीवों से रहित नहीं है। *श्रीमद्भागवत* से हमें ज्ञात होता है कि हमारी पृथ्वी की भाँति प्रत्येक लोक जीवों से पूर्ण है। यह मानने का कोई कारण नहीं कि अन्य लोकों में कोई जीव नहीं हैं।

ततस्तुराषाडिषुबद्धपञ्जराद्
विनिर्गतः साश्वरथध्वजाग्रणीः ।
बभौ दिशः खं पृथिवीं च रोचयन्
स्वतेजसा सूर्य इव क्षपात्यये ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; तुराषाट्—इन्द्र का दूसरा नाम; इषु-बद्ध-पञ्जरात्—शर पंजर से; विनिर्गतः—छूटकर; स—सहित; अश्व—घोड़े; रथ—रथ; ध्वज—झंडा; अग्रणीः—तथा सारथी; बभौ—हो गये; दिशः—सारी दिशाएँ; खम्—आकाश को;

पृथिवीम्—पृथ्वी को; च—तथा; रोचयन्—सुहावना बनाते; स्व-तेजसा—अपने तेज से; सूर्यः—सूर्य; इव—सदृश; क्षपा-अत्यये—रात्रि बीत जाने पर।

तत्पश्चात् इन्द्र ने बाणों के पिंजर से अपने को छुड़ाया। वह अपने रथ, झंडे, घोड़े तथा सारथी के साथ प्रकट हुआ और आकाश, पृथ्वी तथा सभी दिशाओं में प्रसन्नता फैलाते हुए वह तेजी से ऐसे चमकने लगा मानो रात बीद जाने पर सूर्य तेजी से चमक रहा हो। इन्द्र सब की दृष्टि में तेजवान् तथा सुन्दर लग रहा था।

निरीक्ष्य पृतनां देवः परैरभ्यर्दितां रणे ।
उदयच्छद्रिपुं हन्तुं वज्रं वज्रधरो रुषा ॥ २७॥

शब्दार्थ

निरीक्ष्य—देखकर; पृतनाम्—अपने सैनिकों को; देवः—इन्द्र ने; परैः—शत्रुओं द्वारा; अभ्यर्दिताम्—अत्यधिक सताया गया; रणे—युद्धभूमि में; उदयच्छत्—ले लिया; रिपुम्—शत्रुओं को; हन्तुम्—मारने के लिए; वज्रम्—वज्र; वज्र-धरः—वज्रधारण करने वाला; रुषा—अत्यधिक गुस्से से।

जब वज्रधर नाम से विख्यात इन्द्र ने देखा कि उसके सैनिक युद्धभूमि में शत्रुओं द्वारा इस तरह सताये जा रहे हैं, तो वह अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। तब उसने शत्रुओं को मारने के लिए अपना वज्र उठा लिया।

स तेनैवाष्टधारेण शिरसी बलपाकयोः ।
ज्ञातीनां पश्यतां राजञ्जहार जनयन्भयम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (इन्द्र); तेन—उसके द्वारा; एव—निस्सन्देह; अष्ट-धारेण—वज्र द्वारा; शिरसी—दो सिरों को; बल-पाकयोः—बल तथा पाक असुरों के; ज्ञातीनाम् पश्यताम्—उनके सम्बन्धियों तथा सैनिकों के देखते-देखते; राजन्—हे राजा; जहार—(इन्द्र ने) काट दिया; जनयन्—उत्पन्न करते हुए; भयम्—(उनके बीच) भय।

हे राजा परीक्षित! राजा इन्द्र ने बल तथा पाक दोनों असुरों के सिरों को उनके सम्बन्धियों तथा अनुयायियों की उपस्थिति में अपने वज्र द्वारा काट दिया। इस तरह उसने युद्धभूमि में अत्यन्त भयावह वातावरण उत्पन्न कर दिया।

नमुचिस्तद्वधं दृष्ट्वा शोकामर्षरुषान्वितः ।
जिघांसुरिन्द्रं नृपते चकार परमोद्यमम् ॥ २९॥

शब्दार्थ

नमुचिः—नमुचि ने; तत्—उन दो असुरों की; वधम्—हत्या; दृष्ट्वा—देखकर; शोक-अमर्ष—शोक तथा दुख; रुषा-अन्वितः—इससे अत्यन्त क्रुद्ध; जिघांसुः—मारना चाहा; इन्द्रम्—इन्द्र को; नृ-पते—हे महाराज परीक्षित; चकार—किया; परम—महान्; उद्यमम्—प्रयास।

हे राजा! जब असुर नमुचि ने बल तथा पाक दोनों असुरों को मारे जाते देखा तो वह दुख तथा शोक से भर गया। अतएव उसने क्रुद्ध होकर इन्द्र को मारने का महान् प्रयास किया।

अश्मसारमयं शूलं घण्टावद्धेमभूषणम् ।
प्रगृह्याभ्यद्रवत्क्रुद्धो हतोऽसीति वितर्जयन् ।
प्राहिणोद्देवराजाय निनदन्मृगराडिव ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

अश्मसार-मयम्—इस्पात का; शूलम्—भाला; घण्टा-वत्—घण्टियों से बँधा; हेम-भूषणम्—सोने के आभूषणों से विभूषित; प्रगृह्य—हाथ में लेकर; अभ्यद्रवत्—बलपूर्वक गया; क्रुद्धः—क्रुद्ध मुद्रा में; हतः असि इति—अब तुम मारे गए; वितर्जयन्—गर्जना करते हुए; प्राहिणोत्—प्रहार किया; देव-राजाय—राजा इन्द्र को; निनदन्—गर्जना करते; मृग-राट्—सिंह; इव—समान।

सिंह गर्जना करते हुए नमुचि ने क्रोध में आकर इस्पात का एक भाला उठाया जिसमें घण्टियाँ बँधी थीं और जो सोने के आभूषणों से सज्जित था। वह उच्चस्वर से चिल्लाया "अब तुम मारे गये।" इस प्रकार इन्द्र को मारने के लिए उसके समक्ष जाकर नमुचि ने अपना हथियार चलाया।

तदापतद्गगनतले महाजवं
विचिच्छिदे हरिरिषुभिः सहस्रधा ।
तमाहनन्नृप कुलिशेन कन्धरे
रुषान्वितस्त्रिदशपतिः शिरो हरन् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

तदा—उस समय; अपतत्—उल्का की तरह गिर पड़ा; गगन-तले—आकाश के नीचे अर्थात् भूमि पर; महा-जवम्—अत्यन्त शक्तिशाली; विचिच्छिदे—खंड-खंड कर डाला; हरिः—इन्द्र ने; इषुभिः—अपने बाणों से; सहस्रधा—हजारों खण्डों में; तम्—उस नमुचि को; आहनत्—प्रहार किया; नृप—हे राजा; कुलिशेन—अपने वज्र से; कन्धरे—कन्धे पर; रुषा-अन्वितः—अत्यन्त क्रुद्ध होकर; त्रिदश-पतिः—देवताओं का राजा इन्द्र; शिरः—सिर; हरन्—काटने के लिए।

हे राजा! जब स्वर्ग के राजा इन्द्र ने इस अत्यन्त शक्तिशाली भाले को ज्वलित उल्का की भाँति भूमि की ओर गिरते देखा तो उसने तुरन्त ही उसे अपने बाणों से खण्ड-खण्ड कर दिया। फिर अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसने नमुचि के कन्धे पर अपने वज्र से प्रहार किया जिससे उसका सिर कट सके।

न तस्य हि त्वचमपि वज्र ऊर्जितो
बिभेद यः सुरपतिनौजसेरितः ।
तदद्भुतं परमतिवीर्यवृत्रभित्
तिरस्कृतो नमुचिशिरोधरत्वचा ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; तस्य—उसका (नमुचि का); हि—निस्सन्देह; त्वचम् अपि—चमड़ी भी; वज्रः—वज्र; ऊर्जितः—अत्यन्त शक्तिशाली; बिभेद—घुस सका; यः—जो हथियार; सुर-पतिना—देवताओं के राजा द्वारा; ओजसा—अत्यन्त वेग के साथ; ईरितः—छोड़ा गया था; तत्—अतएव; अद्भुतम् परम्—अत्यधिक अद्भुत; अतिवीर्य-वृत्र-भित्—इतना शक्तिशाली था कि अत्यन्त बलवान् वृत्रासुर के भी शरीर को भेद सकता था; तिरस्कृतः—जिसे अब पीछे धकेल दिया गया था; नमुचि-शिरोधर-त्वचा—नमुचि की गर्दन की खाल से।

यद्यपि इन्द्र ने नमुचि पर अपना वज्र बड़े ही वेग से चलाया था, किन्तु वह उसकी खाल को भेद तक नहीं पाया। यह बड़ी विचित्र बात है कि जिस सुप्रसिद्ध वज्र ने वृत्रासुर के शरीर को भेद डाला था वह नमुचि की गर्दन की खाल को रंचमात्र भी क्षति नहीं पहुँचा पाया।

तस्मादिन्द्रोऽबिभेच्छत्रोर्वज्रः प्रतिहतो यतः ।
किमिदं दैवयोगेन भूतं लोकविमोहनम् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—अतएव; इन्द्रः—स्वर्ग के राजा; अबिभेत्—बहुत डर गया; शत्रोः—शत्रु (नमुचि) से; वज्रः—वज्र; प्रतिहतः—मारकर लौटने में असमर्थ था; यतः—क्योंकि; किम् इदम्—यह क्या है; दैव-योगेन—दैवी शक्तिसे; भूतम्—हो गया है; लोक-विमोहनम्—सामान्य लोगों के लिए इतना आश्चर्यजनक।

जब इन्द्र ने वज्र को शत्रु से वापस आते देखा तो वह अत्यन्त भयभीत हो गया। वह आश्चर्य करने लगा कि कहीं किसी ऊँची दैवी शक्ति से तो यह सब कुछ नहीं हुआ।

तात्पर्य : इन्द्र का वज्र अमोघ है; अतएव जब उसने देखा कि वह नमुचि को हानि पहुँचाये बिना लौट आया है, तो वह निश्चित रूप से अत्यधिक भयभीत हो उठा।

येन मे पूर्वमद्रीणां पक्षच्छेदः प्रजात्यये ।
कृतो निविशतां भारैः पतत्त्रैः पततां भुवि ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

येन—इसी वज्र से; मे—मेरे द्वारा; पूर्वम्—पहले; अद्रीणाम्—पर्वतों का; पक्ष-च्छेदः—पंखों का काटा जाना; प्रजा-अत्यये—जब जनता का वध होता था; कृतः—किया गया था; निविशताम्—प्रवेश किये गये पर्वतों को; भारैः—अत्यधिक बोझ से; पतत्त्रैः—पंखों से; पतताम्—गिरते हुए; भुवि—जमीन पर।

इन्द्र ने सोचा: पूर्वकाल में जब अनेक पर्वत अपने पंखों के द्वारा आकाश में उड़ते हुए भूमि पर गिरते थे और लोगों को मार डालते थे तो मैं अपने इसी वज्र से उनके पंख काट लेता था।

तप:सारमयं त्वाष्ट्रं वृत्रो येन विपाटितः ।
अन्ये चापि बलोपेताः सर्वास्त्रैरक्षतत्वचः ॥ ३५॥

शब्दार्थ

तपः—तपस्या; सार-मयम्—अत्यन्त शक्तिशाली; त्वाष्ट्रम्—त्वष्टा द्वारा सम्पन्न; वृत्रः—वृत्रासुर; येन—जिससे; विपाटितः—मारा गया; अन्ये—अन्य; च—भी; अपि—निस्सन्देह; बल-उपेताः—अत्यन्त शक्तिशाली व्यक्ति; सर्व—सभी प्रकार के; अस्त्रैः—हथियारों से; अक्षत—बिना किसी चोट लगे; त्वचः—उनकी खाल।

यद्यपि वृत्रासुर त्वष्टा द्वारा की गई तपस्या का सार-समाहार था, तो भी (इन्द्र के) वज्र ने उसका काम तमाम कर दिया था। निस्सन्देह, वही नहीं, अपितु ऐसे अनेक अग्रणी वीर भी जिनकी खाल को अन्य हथियार तनिक भी क्षति नहीं पहुँचा सके थे इसी वज्र द्वारा मारे गए।

सोऽयं प्रतिहतो वज्रो मया मुक्तोऽसुरेऽल्पके ।
नाहं तदाददे दण्डं ब्रह्मतेजोऽप्यकारणम् ॥ ३६॥

शब्दार्थ

सः अयम्—अतएव, यह वज्र; प्रतिहतः—लौट आया; वज्रः—वज्र; मया—मेरे द्वारा; मुक्तः—छोड़ा गया; असुरे—असुर को; अल्पके—तुच्छ; न—नहीं; अहम्—मैं; तत्—उसे; आददे—पकड़े हुए हूँ; दण्डम्—डंडे की तरह; ब्रह्म-तेजः—ब्रह्मास्त्र के समान शक्तिशाली; अपि—यद्यपि; अकारणम्—अब यह व्यर्थ हो चुका है।

किन्तु, अब वही वज्र एक तुच्छ असुर पर छोड़े जाने पर भी प्रभावहीन हो गया है। अतएव ब्रह्मास्त्र जैसा होने पर भी यह मेरे लिए अब एक सामान्य डंडे की तरह व्यर्थ हो गया है। इसलिए अब मैं इसे धारण नहीं करूँगा।

इति शक्रं विषीदन्तमाह वागशरीरिणी ।
नायं शुष्कैरथो नार्द्रैर्वधमर्हति दानवः ॥ ३७॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; शक्रम्—इन्द्र को; विषीदन्तम्—शोक करते; आह—कहा; वाक्—वाणी; अशरीरिणी—देहरहित या आकाश से; न—नहीं; अयम्—यह; शुष्कैः—किसी सूखी वस्तु से; अथो—भी; न—न तो; आर्द्रैः—किसी गीली वस्तु से; वधम्—संहार; अर्हति—के योग्य है; दानवः—यह दानव (नमुचि)।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : जब दु:खी इन्द्र इस तरह विषाद कर रहा था, तो एक अशुभ देहरहित वाणी ने आकाश से कहा : यह असुर नमुचि किसी शुष्क या गीली वस्तु से विनष्ट नहीं किया जा सकता।

मयास्मै यद्वरो दत्तो मृत्युर्नैवार्द्रशुष्कयोः ।

अतोऽन्यश्चिन्तनीयस्ते उपायो मघवन्रिपोः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

मया—मेरे द्वारा; अस्मै—उसको; यत्—क्योंकि; वरः—वरदान; दत्तः—दिया गया है; मृत्युः—मृत्यु; न—नहीं; एव—निस्सन्देह; आर्द्र—या तो गीले; शुष्कयोः—या किसी सूखे माध्यम से; अतः—अतएव; अन्यः—अन्य कुछ, दूसरा; चिन्तनीयः—सोचना होगा; ते—तुम्हारे द्वारा; उपायः—उपाय; मघवन्—हे इन्द्र; रिपोः—अपने शत्रु का।

आकाशवाणी ने यह भी कहा "हे इन्द्र! चूँकि मैंने इस असुर को वर दे रखा है कि वह कभी किसी सूखे या गीले हथियार से नहीं मारा जायेगा, अतएव उसे मारने के लिए कोई अन्य उपाय सोचो।"

तां दैवीं गिरमाकर्ण्य मघवान्सुसमाहितः ।
ध्यायन्फेनमथापश्यदुपायमुभयात्मकम् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

ताम्—उस; दैवीम्—दैवी; गिरम्—वाणी को; आकर्ण्य—सुनकर; मघवान्—इन्द्र ने; सु-समाहितः—मनोयोग से; ध्यायन्—ध्यान करके; फेनम्—झाग को; अथ—तत्पश्चात्; अपश्यत्—देखा; उपायम्—साधन; उभय-आत्मकम्—एकसाथ शुष्क तथा गीला।

इस अशुभ वाणी को सुनकर इन्द्र बड़े मनोयोग से ध्यान करने लगा कि इस असुर को किस तरह मारा जाये। तब उसे यह सूझा कि झाग ही ऐसा साधन है, जो न तो गीली होती है, न शुष्क।

न शुष्केण न चार्द्रेण जहार नमुचेः शिरः ।
तं तुष्टुवुर्मुनिगणा माल्यैश्चावाकिरन्विभुम् ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

न—न तो; शुष्केण—शुष्क साधन से; न—न तो; च—भी; आर्द्रेण—गीले हथियार से; जहार—उसने काट लिया; नमुचेः—नमुचि का; शिरः—सिर; तम्—उसको (इन्द्र को); तुष्टुवुः—सन्तुष्ट किया; मुनि-गणाः—सारे मुनियों ने; माल्यैः—फूलों की मालाओं से; च—भी; अवाकिरन्—ढक दिया; विभुम्—उस महापुरुष को।

इस तरह स्वर्ग के राजा इन्द्र ने अपनी झाग के हथियार से नमुचि का सिर काट दिया। यह झाग न तो शुष्क थी, न आर्द्र। तब सारे मुनियों ने उस महापुरुष इन्द्र पर फूलों की वर्षा की तथा माल्यार्पण द्वारा उसे लगभग ढक दिया और सन्तुष्ट कर लिया।

तात्पर्य : इस प्रसंग में *श्रुति-मन्त्रों* का कहना है—*अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोऽदारयत्*—इन्द्र ने नमुचि को जल की झाग से मार डाला जो न तो सूखी होती है न गीली।

गन्धर्वमुख्यौ जगतुर्विश्वावसुपरावसू ।
देवदुन्दुभयो नेदुर्नर्तक्यो ननृतुर्मुदा ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

गन्धर्व-मुख्यौ—गन्धर्वों के दो प्रधान; जगतु:—सुन्दर गीत गाने लगे; विश्वावसु—विश्वावसु; परावसू—परावसु नामक; देव-दुन्दुभय:—देवताओं द्वारा बजाई गई दुन्दुभियाँ; नेदु:—बजाया; नर्तक्य:—नर्तकियाँ, जिन्हें अप्सरा कहा जाता है; ननृतु:—नाचने लगीं; मुदा—अत्यन्त प्रसन्नता से।.

विश्वावसु तथा परावसु नामक दो गन्धर्व प्रमुखों ने अतीव प्रसन्नता में गीत गाये। देवताओं ने दुन्दुभियाँ बजाईं और अप्सराओं ने हर्षित होकर नृत्य किया।

अन्येऽप्येवं प्रतिद्वन्द्वान्वाय्वग्निवरुणादय: ।
सूदयामासुरसुरान्मृगान्केसरिणो यथा ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

अन्ये—अन्यों ने; अपि—भी; एवम्—इस प्रकार; प्रतिद्वन्द्वान्—विपक्षियों को; वायु—वायुदेव; अग्नि—अग्निदेव; वरुण-आदय:—वरुण देव तथा अन्य; सूदयाम् आसु:—तेजी से मारने लगे; असुरान्—सारे असुरों को; मृगान्—हिरनों को; केसरिण:—सिंह; यथा—जिस तरह।.

वायु, अग्नि, वरुण इत्यादि देवता अपने विरोधी असुरों को उसी तरह मारने लगे जिस तरह जंगल में हिरनों को सिंह मारते हैं।

ब्रह्मणा प्रेषितो देवान्देवर्षिर्नारदो नृप ।
वारयामास विबुधान्दृष्ट्वा दानवसङ्क्षयम् ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्मणा—ब्रह्माजी द्वारा; प्रेषित:—भेजा गया; देवान्—देवताओं के; देव-ऋषि:—स्वर्ग के महान् ऋषि; नारद:—नारद मुनि ने; नृप—हे राजा; वारयाम् आस—मना किया; विबुधान्—सारे देवताओं को; दृष्ट्वा—देखकर; दानव-सङ्क्षयम्—असुरों का पूर्ण विनाश।.

हे राजा! जब ब्रह्मा ने देखा कि दानवों का पूर्ण संहार तुरन्त होने वाला है, तो उन्होंने नारद द्वारा सन्देश भेजा जो युद्ध रुकवाने के लिए देवताओं के समक्ष गये।

श्रीनारद उवाच

भवद्भिरमृतं प्राप्तं नारायणभुजाश्रयै: ।
श्रिया समेधिता: सर्व उपारमत विग्रहात् ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

श्री-नारद: उवाच—नारद मुनि ने देवताओं से प्रार्थना की; भवद्भि:—आप लोगों के द्वारा; अमृतम्—अमृत; प्राप्तम्—प्राप्त किया जा चुका है; नारायण—नारायण की; भुज-आश्रयै:—भुजाओं के द्वारा सुरक्षित; श्रिया—लक्ष्मी द्वारा; समेधिता:—उन्नति की है; सर्वे—आप सब; उपारमत—अब रुक जाओ; विग्रहात्—इस लड़ाई से।.

महामुनि नारद ने कहा : तुम सारे देवता भगवान् नारायण की भुजाओं द्वारा सुरक्षित हो और उनकी कृपा से तुम सबको अमृत प्राप्त हुआ है। लक्ष्मीजी की कृपा से तुम हर तरह से गौरान्वित

हुए हो; अतएव अब यह लड़ाई बन्द कर दो।

श्रीशुक उवाच
संयम्य मन्युसंरम्भं मानयन्तो मुनेर्वचः ।
उपगीयमानानुचरैर्ययुः सर्वे त्रिविष्टपम् ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; संयम्य—रोककर; मन्यु—क्रोध का; संरम्भम्—वृद्धि, उभाड़; मानयन्तः—स्वीकार करते हुए; मुनेः वचः—नारद मुनि के शब्द; उपगीयमान—प्रशंसित होकर; अनुचरैः—अनुयायियों द्वारा; ययुः—लौट गये; सर्वे—सारे देवता; त्रिविष्टपम्—स्वर्ग लोक को।.

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा : नारद मुनि के वचनों को मानकर देवताओं ने अपना क्रोध त्याग दिया और लड़ाई बन्द कर दी। वे अपने अनुयायियों द्वारा प्रशंसित होकर स्वर्गलोक को लौट गये।

येऽवशिष्टा रणे तस्मिन्नारदानुमतेन ते ।
बलिं विपन्नमादाय अस्तं गिरिमुपागमन् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

ये—जो थोड़े से असुर; अवशिष्टाः—बचे थे; रणे—युद्ध में; तस्मिन्—उस; नारद-अनुमतेन—नारद की आज्ञा से; ते—वे सभी; बलिम्—महाराज बलि को; विपन्नम्—संकटग्रस्त; आदाय—लेकर; अस्तम्—अस्त नामक; गिरिम्—पर्वत पर; उपागमन्—चले गये।.

युद्धक्षेत्र में जितने भी असुर बचे थे, वे सब नारद मुनि के आदेशानुसार बलि महाराज को जिनकी अवस्था अत्यन्त गम्भीर थी, अस्तगिरि ले गये ।

तत्राविनष्टावयवान्विद्यमानशिरोधरान् ।
उशना जीवयामास संजीवन्या स्वविद्यया ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

तत्र—उस पर्वत पर; अविनष्ट-अवयवान्—बचे हुए अंगों वाले मारे गए असुरों को; विद्यमान-शिरोधरान्—जिनके सिर उनके शरीरों में अभी तक लगे थे; उशनाः—शुक्राचार्य; जीवयाम् आस—जीवित कर दिया; संजीवन्या—सञ्जीवनी मंत्र द्वारा; स्व-विद्यया—अपनी विद्या से।.

उस पर्वत पर शुक्राचार्य ने उन सारे मृत असुर सैनिकों को जिनके सिर, धड़ तथा हाथ- पाँव कटे नहीं थे जीवित कर दिया। उन्होंने अपने सञ्जीवनी मंत्र के द्वारा यह सब किया।

बलिश्चोशनसा स्पृष्टः प्रत्यापन्नेन्द्रियस्मृतिः ।
पराजितोऽपि नाखिद्यल्लोकतत्त्वविचक्षणः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

बलिः—महाराज बलि ने; च—भी; उशनसा—शुक्राचार्य द्वारा; स्पृष्टः—स्पर्श से; प्रत्यापन्न—पुनः जीवित किया गया; इन्द्रिय-स्मृतिः—इन्द्रियों के कार्यों तथा स्मृति की अनुभूति; पराजितः—हरा दिया गया; अपि—यद्यपि; न अखिद्यत्—शोक नहीं किया; लोक-तत्त्व-विचक्षणः—सांसारिक कार्यों में अत्यन्त अनुभवी होने के कारण।

बलि महाराज सांसारिक कार्यों में अत्यन्त अनुभवी थे। जब शुक्राचार्य की कृपा से उन्हें होश आया और उनकी स्मृति लौट आई तो जो कुछ हो चुका था उसे वे समझ गये। इसलिए पराजित होने पर भी उन्हें शोक नहीं हुआ।

तात्पर्य : यह महत्त्वपूर्ण बात है कि बलि महाराज को यहाँ पर अत्यन्त अनुभवी कहा गया है। यद्यपि वे हार गये थे, तथापि उन्हें कोई खेद न था क्योंकि वे जानते थे कि भगवान् की अनुमति के बिना कुछ भी नहीं घटित हो सकता। भक्त होने के कारण उन्होंने बिना संताप के अपनी पराजय स्वीकार की। जैसाकि *भगवद्गीता* (२.४७) में भगवान् ने कहा है—*कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्*—कृष्णभावनाभावित हर व्यक्ति को हार-जीत की परवाह न करके अपना कर्तव्य निभाना चाहिए। मनुष्य को कृष्ण या उनके प्रतिनिधि गुरु द्वारा आदेशित अपना कर्तव्य करना चाहिए। *आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा*—उत्तम भक्ति में मनुष्य सदा कृष्ण की इच्छा तथा आदेशों का पालन करता है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत में अष्टम स्कन्ध के अन्तर्गत "इन्द्र द्वारा असुरों का संहार" नामक ग्यारहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter बारह

मोहिनी-मूर्ति अवतार पर शिवजी का मोहित होना

इस अध्याय में वर्णन हुआ है कि किस तरह भगवान् के सुन्दर मोहिनी-मूर्ति अवतार को देखकर शिवजी मोहित हो गये और बाद में किस तरह उन्हें होश आया। जब शिवजी ने आकर्षक स्त्री (मोहिनी) रूपी भगवान् हरि की लीलाओं के विषय में सुना तो वे अपने बैल पर सवार होकर भगवान् को देखने चल पड़े। वे अपनी पत्नी उमा तथा अपने सेवक भूतगणों के साथ भगवान् के चरणकमलों के पास जा पहुँचे। उन्होंने सर्वव्यापी, विराट रूप, सृष्टि के परम नियन्ता, परमात्मा, सबों के आश्रय तथा पूर्ण स्वतंत्र *सर्वकारण-कारणम्* भगवान् को नमस्कार किया। इस प्रकार उन्होंने भगवान् का सही-सही

वर्णन करते हुए उनकी स्तुति की। तत्पश्चात् उन्होंने अपनी इच्छा अभिव्यक्त की। भगवान् अपने भक्तों पर बड़े दयालु होते हैं। अतएव अपने भक्त शिवजी की इच्छा-पूर्ति के लिए उन्होंने अपनी शक्ति का विस्तार किया और अपने आपको एक अत्यन्त सुन्दर एवं मोहक स्त्री के रूप में प्रकट किया। इस रूप को देखकर शिवजी भी मोहित हो गये। बाद में भगवत्कृपा से वे अपने आपको नियंत्रित कर सके। इससे यह प्रदर्शित होता है कि जगत में भगवान् की माया शक्ति से इस भौतिक जगत में हर व्यक्ति स्त्री के रूप पर मोहित होता है। किन्तु पुन: भगवत्-कृपा से वह माया के प्रभाव को जीत सकता है। यह भगवान् के सर्वोच्च भक्त शिवजी से प्रकट हो गया। पहले तो वे मोहित हो गये, किन्तु बाद में भगवत्कृपा से उन्होंने अपने को रोका। इस सम्बन्ध में यह घोषित किया जाता है कि केवल शुद्ध भक्त ही अपने आप को माया के आकर्षक स्वरूप से दूर रख सकता है। अन्यथा एक बार जीव माया के बाह्य स्वरूप के द्वारा बन्दी हुआ नहीं कि वह उससे कभी छूट नहीं पाता। जब भगवान् ने शिवजी पर कृपा की तो उन्होंने अपनी पत्नी भवानी तथा अपने साथी प्रेतों सहित भगवान् की प्रदक्षिणा की और फिर अपने धाम को चले गये। शुकदेव गोस्वामी इस अध्याय की समाप्ति उत्तमश्लोक भगवान् के दिव्य गुणों के वर्णन एवं इस घोषणा के साथ करते हैं कि मनुष्य नवधा भक्ति द्वारा भगवान् की महिमा का गायन कर सकता है, जिसका शुभारम्भ *श्रवणं कीर्तनम्* से होता है।

श्रीबादरायणिरुवाच
वृषध्वजो निशम्येदं योषिद्रूपेण दानवान् ।
मोहयित्वा सुरगणान्हरिः सोममपाययत् ॥ १ ॥
वृषमारुह्य गिरिशः सर्वभूतगणैर्वृतः ।
सह देव्या ययौ द्रष्टुं यत्रास्ते मधुसूदनः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-बादरायणिः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; वृष-ध्वजः—बैल पर सवारी करने वाले शिवजी ने; निशम्य—सुनकर; इदम्—यह (खबर); योषित्-रूपेण—स्त्री का रूप धारण करके; दानवान्—दानवों को; मोहयित्वा—मुग्ध करके; सुर-गणान्—देवताओं को; हरिः—भगवान् ने; सोमम्—अमृत; अपाययत्—पिलाया; वृषम्—बैल पर; आरुह्य—चढ़कर; गिरिशः—शिवजी; सर्व—सारे; भूत-गणैः—भूत-प्रेतों के द्वारा; वृतः—घिरे हुए; सह देव्या—उमा के साथ; ययौ—गये; द्रष्टुम्—देखने के लिए; यत्र—जहाँ; आस्ते—रुकते हैं; मधुसूदनः—भगवान् विष्णु।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : स्त्री के रूप में भगवान् हरि ने दानवों को मोह लिया और देवताओं को अमृत पिलाया। इन लीलाओं को सुनकर बैल पर सवारी करने वाले शिवजी उस स्थान पर गये जहाँ भगवान् मधुसूदन रहते हैं। शिवजी अपनी पत्नी उमा को साथ लेकर तथा

अपने साथी प्रेतों से घिरकर वहाँ भगवान् के स्त्री-रूप को देखने गये।

सभाजितो भगवता सादरं सोमया भवः ।
सूपविष्ट उवाचेदं प्रतिपूज्य स्मयन्हरिम् ॥ ३॥

शब्दार्थ

सभाजितः—सुसम्मानित; भगवता—भगवान् विष्णु द्वारा; स-आदरम्—अत्यन्त सम्मानपूर्वक (जो शिवजी के अनुकूल था); स-उमया—उमा सहित; भवः—शम्भु (शिवजी); सु-उपविष्टः—ठीक प्रकार से स्थित; उवाच—कहा; इदम्—यह; प्रतिपूज्य—सम्मान प्रदर्शित करके; स्मयन्—मुस्काते; हरिम्—भगवान् के प्रति।

भगवान् ने शिवजी तथा उमा का अत्यन्त सम्मान के साथ स्वागत किया और ठीक प्रकार से बैठ जाने पर शिवजी ने भगवान् की विधिवत् पूजा की तथा मुस्काते हुए वे इस प्रकार बोले।

श्रीमहादेव उवाच
देवदेव जगद्व्यापिञ्जगदीश जगन्मय ।
सर्वेषामपि भावानां त्वमात्मा हेतुरीश्वरः ॥ ४॥

शब्दार्थ

श्री-महादेवः उवाच—शिवजी (महादेव) ने कहा; देव-देव—हे देवताओं में सर्वश्रेष्ठ देवता; जगत्-व्यापिन्—हे सर्वव्यापी भगवान्; जगत्-ईश—हे ब्रह्माण्ड के स्वामी; जगत्-मय—हे भगवान्, जो तुरन्त ही अपनी शक्ति से इस सृष्टि में बदल गए हैं; सर्वेषाम् अपि—समस्त प्रकार के; भावानाम्—स्थितियाँ; त्वम्—तुम; आत्मा—गतिमान् शक्ति; हेतुः—इसका कारण; ईश्वरः—भगवान्, परमेश्वर।

महादेवजी ने कहा : हे देवताओं में प्रमुख देव! हे सर्वव्यापी, ब्रह्माण्ड के स्वामी! आपने अपनी शक्ति से अपने को सृष्टि में रूपान्तरित कर दिया है। आप हर वस्तु के मूल एवं सक्षम कारण हैं। आप भौतिक नहीं हैं। निस्सन्देह, आप हर एक की परम सञ्जीवनी शक्ति या परमात्मा हैं। अतएव आप परमेश्वर हैं अर्थात् सभी नियंत्रकों के परम नियंत्रक हैं।

तात्पर्य : भगवान् विष्णु इस भौतिक जगत के भीतर *सत्त्वगुण-अवतार* के रूप में निवास करते हैं। शिवजी *तमोगुण-अवतार* हैं और ब्रह्माजी *रजोगुण-अवतार* हैं। किन्तु यद्यपि विष्णुजी इन्हीं में से एक हैं, वे उसी कोटि के नहीं है। भगवान् विष्णु *देवदेव* हैं अर्थात् वे समस्त देवताओं के प्रमुख हैं। चूँकि शिवजी इसी भौतिक जगत में हैं अतएव भगवान् विष्णु की शक्ति में शिवजी सम्मिलित हैं। इसीलिए विष्णु *जगद्व्यापी* या सर्वव्यापी कहलाते हैं। शिवजी कभी-कभी महेश्वर कहलाते हैं; अतएव लोग सोचते हैं कि शिवजी ही सब कुछ हैं। किन्तु यहाँ पर शिवजी विष्णु को जगदीश कहकर सम्बोधित करते हैं जिसका अर्थ है ''ब्रह्माण्ड के स्वामी।'' कभी-कभी शिवजी विश्वेश्वर कहलाते हैं, किन्तु यहाँ

पर वे विष्णु को *जगन्मय* कहकर सम्बोधित करते हैं जिससे सूचित होता है कि विश्वेश्वर भी भगवान् विष्णु के अधीन हैं। भगवान् विष्णु वैकुण्ठ लोक के स्वामी हैं, फिर भी वे भौतिक जगत को भी नियंत्रित करते हैं जैसाकि *भगवद्‌गीता* में कहा गया है (*मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्*)। ब्रह्माजी तथा शिवजी भी कभी-कभी ईश्वर कहलाते हैं, किन्तु परम ईश्वर तो भगवान् विष्णु या कृष्ण हैं। जैसाकि *ब्रह्मसंहिता* में कहा गया है—*ईश्वरः परमः कृष्णः*—भगवान् तो कृष्ण या विष्णु हैं। जितनी भी वस्तुओं का अस्तित्व है वे भगवान् विष्णु के ही कारण उचित क्रम में कार्यशील हैं। *अण्डान्तरस्थ परमाणुचयान्तरस्थम्।* यहाँ तक कि परमाणु भी अपने भीतर भगवान् विष्णु की उपस्थिति के कारण कार्यशील हैं।

आद्यन्तावस्य यन्मध्यमिदमन्यदहं बहिः ।
यतोऽव्ययस्य नैतानि तत्सत्यं ब्रह्म चिद्भवान् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

आदि—प्रारम्भ; अन्तौ—तथा अन्त; अस्य—इस व्यक्त जगत का या किसी भी भौतिक या दृश्य वस्तु का; यत्—जो; मध्यम्—आरम्भ एवं अन्त के मध्य, पालन; इदम्—यह दृश्य जगत; अन्यत्—आपके अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु; अहम्—गलत धारणा; बहिः—आपसे बाहर; यतः—के कारण; अव्ययस्य—अक्षय; न—नहीं; एतानि—इतने सारे अन्तर; तत्—वह; सत्यम्—परम सत्य; ब्रह्म—ब्रह्म; चित्—आध्यात्मिक; भवान्—आप।

हे भगवान्! व्यक्त, अव्यक्त, मिथ्या अहंकार तथा इस दृश्य जगत का आदि (उत्पत्ति), पालन तथा संहार सभी कुछ आपसे है। किन्तु आप परम सत्य, परमात्मा, परम ब्रह्म हैं अतएव जन्म, मृत्यु तथा पालन जैसे परिवर्तन आप में नहीं पाये जाते।

तात्पर्य : *यतो वा इमानि भूतानि जयन्ते*—वैदिक मंत्रों के अनुसार प्रत्येक वस्तु भगवान् से उद्‌भूत है। *भगवद्‌गीता* (७.४) में स्वयं भगवान् कहते हैं—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥

"पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा मिथ्या अहंकार—ये आठ मिलकर मेरी भिन्न। भौतिक शक्तियाँ बनाते हैं।" दूसरे शब्दों में, दृश्य जगत के अवयव भी भगवान् की शक्ति से बने हैं। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं होता कि चूँकि सारे अवयव उनसे प्राप्त होते हैं अतएव भगवान् अब पूर्ण नहीं रहे हैं। *पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते*—चूँकि वे पूर्ण इकाई हैं, अतएव भले ही उनसे

अनेक पूर्ण इकाइयाँ क्यों न उद्भूत हों, वे पूर्ण बने रहते हैं। इस तरह भगवान् अवयव अर्थात् अक्षम कहलाते हैं। जब तक हम परम सत्य को *अचिन्त्यभेदाभेद* नहीं मान लेते तब तक हमें परम सत्य की स्पष्ट धारणा नहीं हो सकती। भगवान् हर वस्तु के मूल हैं। *अहमादिर्हि देवानाम्*—वे समस्त देवताओं के मूल कारण हैं। *अहं सर्वस्य प्रभव:*—उन्हीं से हर वस्तु उद्भूत होती है।

सभी दशाओं में, हम इस समग्र दृश्य जगत में चाहे जो भी धारणा करें वह वास्तव में भगवान् है। उनके लिए ''यह मेरा है तथा यह किसी अन्य का है'' में कोई अन्तर नहीं होता क्योंकि वे सब कुछ हैं। इसीलिए वे अव्यव कहलाते हैं जिसका अर्थ है परिवर्तनरहित तथा न समाप्त होने वाला। चूँकि भगवान् अव्यय हैं अतएव वे परम सत्य हैं।

तवैव चरणाम्भोजं श्रेयस्कामा निराशिष: ।
विसृज्योभयत: सङ्गं मुनय: समुपासते ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

तव—तुम्हारे; एव—निस्सन्देह; चरण-अम्भोजम्—चरणकमल; श्रेय:-कामा:—चरम कल्याण रूपी जीवन के चरम लक्ष्य के इच्छुक व्यक्ति; निराशिष:—बिना किसी भौतिक इच्छा के; विसृज्य—त्यागकर; उभयत:—इस जीवन में तथा अगले जीवन में; सङ्गम्—आसक्ति; मुनय:—मुनिगण; समुपासते—पूजा करते हैं।.

जो शुद्ध भक्त या महान् सन्त पुरुष (मुनिगण) जीवन का चरम लक्ष्य प्राप्त करने के इच्छुक हैं तथा इन्द्रियतृप्ति की समस्त भौतिक इच्छाओं से रहित हैं, वे आपके चरणकमलों की निरन्तर भक्ति में लगे रहते हैं।

तात्पर्य : जब मनुष्य सोचता है कि, ''मैं यह शरीर हूँ और इससे सम्बन्धित हर वस्तु मेरी है'' तो वह भौतिक जगत में होता है। *अतो गृहक्षेत्रसुताप्त वित्तैर्जनस्य मोहोऽयमहं ममेति।* यह भौतिक जीवन का लक्षण है। भौतिकतावादी जीवन की धारणा होने पर मनुष्य सोचता है कि, ''यह मेरा घर है, यह मेरी जमीन है, यह मेरा परिवार है, यह मेरा प्रान्त है।'' किन्तु जो लोग *मुनय:* हैं अर्थात् जो नारद मुनि के पदचिह्नों का अनुगमन करने वाले सन्त पुरुष हैं, वे बिना किसी इन्द्रियतृप्ति की इच्छा के भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में लगे रहते हैं। *अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञान कर्माद्यनावृतम्।* चाहे यह जीवन हो, या अगला जीवन, ऐसे सन्त भक्तों की एकमात्र चिन्ता भगवान् की सेवा करने के लिए रहती है। अत: वे इतने भी परम होते हैं क्योंकि उन्हें अन्य कोई इच्छा नहीं सताती। भौतिक इच्छा के द्वन्द्वों से मुक्त होने के वे कारण *श्रेयस् कामा:* कहलाते हैं। दूसरे शब्दों में, उन्हें धर्म, अर्थ या काम से कोई प्रयोजन नहीं

रहता। ऐसे लोगों की एकमात्र चिन्ता *मोक्ष* भी है। यह *मोक्ष* ब्रह्म से तदाकार होना नहीं है जैसाकि मायावादी चिन्तक मानते हैं। चैतन्य महाप्रभु ने बतलाया कि वास्तविक मोक्ष का अर्थ है भगवान् के चरणकमलों की शरण में जाना। उन्होंने सार्वभौम भट्टाचार्य को उपदेश देते हुए इस तथ्य को स्पष्ट तौर पर बतलाया था। सार्वभौम भट्टाचार्य *श्रीमद्भागवत* के *मुक्ति-पदे* शब्द को शुद्ध करना चाहते थे, किन्तु चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें बताया कि *श्रीमद्भागवत* के किसी भी शब्द को सुधारने की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने समझाया कि *मुक्तिपदे* भगवान् विष्णु के चरणकमलों का सूचक है, जो मुक्ति के दाता हैं और इसलिए मुकुन्द कहलाते हैं। शुद्ध भक्त को भौतिक वस्तुओं से कोई सरोकार नहीं रहता। वह धर्म, अर्थ या काम के लिए भी चिन्तित नहीं रहता। वह एकमात्र भगवान् के चरणकमलों की सेवा करने में रुचि रखता है।

त्वं ब्रह्म पूर्णममृतं विगुणं विशोक-
मानन्दमात्रमविकारमनन्यदन्यत् ।
विश्वस्य हेतुरुदयस्थितिसंयमाना-
मात्मेश्वरश्च तदपेक्षतयानपेक्षः ॥ ७॥

शब्दार्थ

त्वम्—आप; ब्रह्म—सर्वव्यापी परम सत्य; पूर्णम्—परम पूर्ण; अमृतम्—कभी नष्ट न होने वाले; विगुणम्—प्रकृति के गुणों से मुक्त, आध्यात्मिक रूप से स्थित; विशोकम्—शोक रहित; आनन्द-मात्रम्—सदैव दिव्य आनन्द से युक्त; अविकारम्—परिवर्तनरहित; अनन्यत्—हर वस्तु से पृथक्; अन्यत्—फिर भी सब कुछ हो; विश्वस्य—दृश्य जगत के; हेतुः—कारण; उदय—प्रारम्भ के; स्थिति—पालन; संयमानाम्—तथा विश्व के विभिन्न विभागों को नियंत्रण में रखने वाले समस्त निदेशकों में से; आत्म-ईश्वरः—हर एक को निर्देश देने वाले परमात्मा; च—भी; तत्-अपेक्षतया—हर व्यक्ति आप पर आश्रित है; अनपेक्षः—सदैव पूर्णतः स्वतंत्र।

हे प्रभु! आप परब्रह्म तथा सभी प्रकार से पूर्ण हैं। पूर्णतः आध्यात्मिक होने के कारण आप नित्य, प्रकृति के भौतिक गुणों से मुक्त तथा दिव्य आनन्द से पूरित हैं। निस्सन्देह, आपके लिए शोक करने का प्रश्न ही नहीं उठता। चूँकि आप समस्त कारणों के परम कारण हैं अतएव आपके बिना कोई भी अस्तित्व में नहीं रह सकता। फिर भी जहाँ तक कारण तथा कार्य का सम्बन्ध है हम आपसे भिन्न हैं क्योंकि एक दृष्टि से कार्य तथा कारण पृथक्-पृथक् हैं। आप सृष्टि, पालन तथा संहार के मूल कारण हैं और आप समस्त जीवों को वर देते हैं। हर व्यक्ति अपने कार्यों के फलों के लिए आप पर निर्भर है, किन्तु आप सदा स्वतंत्र हैं।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (९.४) में भगवान् कहते हैं—

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।

मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः॥

"यह सारा ब्रह्माण्ड मेरे अव्यक्त रूप से व्याप्त है। सारे जीव मुझमें हैं, किन्तु मैं उनमें नहीं हूँ।" इससे *अचिन्त्य-भेदाभेद* अर्थात् एकसाथ एकत्व तथा भिन्नता दर्शन की व्याख्या हो जाती है। प्रत्येक वस्तु परम ब्रह्म है; फिर भी परम पुरुष हर वस्तु से पृथक् स्थित है। निस्सन्देह, हर भौतिक वस्तु से पृथक् स्थित होने के कारण वे परम ब्रह्म, परम कारण तथा परम नियन्ता हैं। *ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द-विग्रहः।* भगवान् परम कारण हैं और उनके स्वरूप को प्रकृति के भौतिक गुणों से कोई सरोकार नहीं रहता। भक्त प्रार्थना करता है "जिस तरह आपका भक्त समस्त इच्छाओं से पूर्णतः रहित है उसी प्रकार आप भी इच्छाओं से पूर्णतया मुक्त हैं। आप पूर्णतः स्वतंत्र हैं। यद्यपि सारे जीव आपकी सेवा में लगे रहते हैं, किन्तु आप किसी की सेवा पर आश्रित नहीं हैं। यद्यपि यह संसार पूरी तरह से आपके द्वारा सृजित है, किन्तु सब कुछ आपकी स्वीकृति पर निर्भर करता है। जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है—*मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च*—स्मृति, ज्ञान तथा विस्मृति आप ही से उत्पन्न हैं। स्वतंत्र रूप से कुछ भी नहीं किया जा सकता, किन्तु आप अपने सेवकों द्वारा की गई सेवा पर आश्रित न रहते हुए स्वतंत्र होकर कर्म करते हैं। सारे जीव अपनी मुक्ति के लिए आपकी कृपा पर आश्रित रहते हैं, किन्तु जब आप उन्हें मुक्ति देना चाहते हैं, तो आप किसी अन्य पर आश्रित नहीं रहते। निस्सन्देह, अपनी अहैतुकी कृपा से आप किसी को भी मुक्ति दे सकते हैं। जिन्हें आपकी कृपा प्राप्त होती है वे *कृपासिद्ध* कहलाते हैं। सिद्धि-पद को प्राप्त करने में अनेकानेक जन्म लग जाते हैं। (*बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते*)। फिर भी कठोर तपस्या किये बिना ही आपकी कृपा से सिद्धि प्राप्त की जा सकती है। भक्ति को अहैतुकी होना चाहिए और अवरोधों से मुक्त (*अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति*)। यही *निराशिषः* पद है अर्थात् सभी प्रकार के फलों की आशा से मुक्ति। शुद्ध भक्त निरन्तर आपकी दिव्य प्रेमाभक्ति करता है, किन्तु आप उसकी सेवा पर आश्रित न रहकर किसी पर भी कृपा कर सकते हैं।"

एकस्त्वमेव सदसद्द्वयमद्वयं च
स्वर्णं कृताकृतमिवेह न वस्तुभेदः ।
अज्ञानतस्त्वयि जनैर्विहितो विकल्पो

यस्माद्गुणव्यतिकरो निरुपाधिकस्य ॥ ॥

शब्दार्थ

एकः—केवल एक; त्वम्—आप; एव—निस्सन्देह; सत्—जिसका अस्तित्व है, यथा फल; असत्—जिसका अस्तित्व नहीं है, यथा कारण; द्वयम्—दो; अद्वयम्—द्वैतरहित; च—तथा; स्वर्णम्—सोना; कृत—विभिन्न रूपों में निर्मित; आकृतम्—स्वर्ण का मूल स्रोत (सोने की खान); इव—सदृश; इह—इस संसार में; न—नहीं; वस्तु-भेदः—वस्तु में भेद; अज्ञानतः—अज्ञान के कारण; त्वयि—तुममें; जनैः—जनसमूह द्वारा; विहितः—ऐसा होना चाहिए; विकल्पः—विभेद; यस्मात्—जिसके कारण; गुण-व्यतिकरः—प्रकृति के भौतिक गुणों द्वारा उत्पन्न अन्तरों से रहित; निरुपाधिकस्य—किसी भौतिक उपाधि के बिना।

हे प्रभु! आप अकेले ही कार्य तथा कारण हैं, अतएव आप दो प्रतीत होते हुए भी परम एक हैं। जिस तरह आभूषण के सोने तथा खान के सोने में कोई अन्तर नहीं होता, उसी तरह कारण तथा कार्य में अन्तर नहीं होता, दोनों ही एक हैं। अज्ञानवश ही लोग अन्तर तथा द्वैत गढ़ते हैं। आप भौतिक कल्मष से मुक्त हैं और चूँकि समस्त ब्रह्माण्ड आपके द्वारा उत्पन्न है और आपके बिना नहीं रह सकता अतएव यह आपके दिव्य गुणों का प्रभाव है। इस प्रकार इस धारणा को कोई बल नहीं मिलता कि ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि सारे जीव भगवान् की तटस्था शक्ति के स्वरूप हैं और जीवों के विविध शरीर भौतिक शक्ति के परिणाम हैं। इस प्रकार शरीर भौतिक और आत्मा आध्यात्मिक माना जाता है। किन्तु इन दोनों का उद्‌गम एक ही भगवान् है। जैसाकि भगवान् *भगवद्‌गीता* (७.४-५) में बताते हैं—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥

"पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा मिथ्या अहंकार—ये आठों मिलकर मेरी भिन्ना भौतिक शक्तियाँ बनाते हैं। किन्तु हे महाबली अर्जुन! इस कनिष्ठ प्रकृति के अतिरिक्त मेरी एक श्रेष्ठ शक्ति है, जो भौतिक प्रकृति से संघर्ष करने वाले सभी तथा ब्रह्माण्ड को धारण करने वाले सभी जीवों से बनती हैं।" इस प्रकार पदार्थ तथा जीव दोनों भगवान् की शक्ति की अभिव्यक्तियाँ हैं। चूँकि शक्ति तथा शक्तिमान पृथक्-पृथक् नहीं हैं और चूँकि भौतिक तथा तटस्था दोनों शक्तियाँ परम शक्तिमान भगवान् की शक्तियाँ हैं अतएव अन्ततः भगवान् ही सर्वेसर्वा हैं। इस प्रसंग में सोने का

उदाहरण दिया जा सकता है—एक जो साँचें में नहीं ढाला गया और दूसरा जो साँचें में ढाला जाकर विविध आभूषणों में परिणत कर दिया गया है। सोने का कुंडल तथा खान से निकला सोना केवल कार्य-कारण रूप में भिन्न हैं; अन्यथा वे एक हैं। *वेदान्तसूत्र* में वर्णन हुआ है कि ब्रह्म हर एक वस्तु का कारण है। *जन्माद्यस्य यत:।* प्रत्येक वस्तु परब्रह्म से उत्पन्न होती है—प्रत्येक वस्तु भिन्न-भिन्न शक्तियों के रूप में उससे उद्‌भूत होती है। इसलिए इनमें से किसी भी शक्ति को मिथ्या नहीं मानना चाहिए। मायावादियों द्वारा ब्रह्म तथा माया में अन्तर मात्र उनके अज्ञान के कारण है।

भागवत-चन्द्र-चन्द्रिका में श्रीमद् वीरराघव आचार्य ने वैष्णव दर्शन का वर्णन इस प्रकार दिया है। दृश्य जगत को *सत्* तथा *असत् और चित्* तथा *अचित्* बतलाया गया है। पदार्थ अचित् है और जीव चित् है लेकिन उनका उद्‌गम भगवान् है जिनमें पदार्थ तथा आत्मा में कोई अन्तर नहीं होता। इस दृष्टि से पदार्थ तथा आत्मा से युक्त यह दृश्य जगत भगवान् से भिन्न नहीं है। *इदं हि विश्वं भगवान् इवेतर:*—यह दृश्य जगत भी भगवान् है यद्यपि यह उनसे भिन्न प्रतीत होता है। *भगवद्‌गीता* (९.४) में भगवान् कहते हैं—

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।

मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थित:।

"यह विश्व मेरे अव्यक्त रूप से व्याप्त है। सारे जीव मुझमें हैं, किन्तु मैं उनमें नहीं हूँ।" अत: यद्यपि कोई यह कहे कि भगवान् इस दृश्य जगत से भिन्न हैं, किन्तु वास्तव में वे भिन्न नहीं हैं। भगवान् कहते हैं—*मया ततमिदं सर्वम्*—मैं अपने निराकार रूप में विश्वभर में फैला हुआ हूँ। अतएव यह विश्व उनसे भिन्न नहीं। अन्तर केवल नामों का है। उदाहरणार्थ, चाहे हम सोने के कुंडल की, कंगन की या हार की बात करें, अन्ततोगत्वा वे सभी सोना हैं। उसी प्रकार पदार्थ तथा आत्मा के सभी विविध स्वरूप भगवान् में अन्तत: एक ही हैं। *एकम् एवाद्वितीयं ब्रह्म।* यह वैदिक उक्ति है (*छान्दोग्य उपनिषद्* ६.२.१)। एकत्व का कारण यह है कि सभी वस्तुएँ परब्रह्म से उद्‌भूत हैं। पहले दिय गये उदाहरण के अनुसार सोने के कुंडल तथा सोने की खान में कोई अन्तर नहीं है। लेकिन वैशेषिक चिन्तक अपनी मायावादी विचारधारा के कारण अन्तर उत्पन्न करते हैं। वे कहते हैं—*ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या*—परम सत्य वास्तविक है और यह दृश्य जगत मिथ्या है। किन्तु जगत को मिथ्या क्यों माना जाये? जगत तो ब्रह्म

का तेज है अतएव जगत भी सत्य है।

अतएव वैष्णवजन जगत को मिथ्या नहीं मानते; वे परमेश्वर सम्बन्धित हर वस्तु को सत्य मानते हैं—

अनासक्तस्य विषयान् यथार्हम् उपयुञ्जतः।

निर्बन्धः कृष्णसम्बन्धे युक्तं वैराग्यमुच्यते॥

प्रापञ्चिकतया बुद्ध्या हरिसम्बन्धिवस्तुनः।

मुमुक्षुभिः परित्यागो वैराग्यं फल्गु कथ्यते॥

''भगवान् की सेवा के लिए वस्तुएँ स्वीकार की जानी चाहिए न कि निजी इन्द्रियतृप्ति के लिए। यदि कोई अनासक्त भाव से तथा कृष्ण से सम्बन्धित होने के कारण कोई वस्तु स्वीकार करता है, तो उसका त्याग *युक्तं वैराग्यम्* कहलाता है। भगवान् की सेवा करने में जो भी अनुकूल हो उसे स्वीकार करना चाहिए; उसे भौतिक वस्तु समझकर ठुकराना नहीं चाहिए'' (*भक्तिरसामृत सिन्धु* १.२.२५५-२५६)। जगत को मिथ्या समझकर त्यागना नहीं चाहिए। यह जगत सत्य है और सत्य की अनुभूति तब होती है जब प्रत्येक वस्तु को भगवान् की सेवा में लगा दिया जाता है। यदि हम अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए किसी फूल को स्वीकार करते हैं, तो वह भौतिक होता है, किन्तु जब भक्त उसी फूल को भगवान् पर चढ़ाता है, तो वह आध्यात्मिक होता है। अपने लिए लिया गया और पकाया गया भोजन भौतिक है, किन्तु भगवान् के लिए पकाया गया भोजन आध्यात्मिक प्रसाद है। यह अनुभूति का प्रश्न है। वास्तव में, हर वस्तु के देने वाले भगवान् हैं; अतएव हर वस्तु आध्यात्मिक है, किन्तु जो लोग वास्तविक ज्ञान में बढ़े-चढ़े नहीं हैं, वे प्रकृति के तीन गुणों की पारस्परिक क्रिया के कारण वस्तु-वस्तु में भेद मानते हैं। इस प्रसंग में श्रील जीव गोस्वामी कहते हैं कि यद्यपि सूर्य ही एकमात्र प्रकाश है किन्तु सात रंगों में दिखने वाला प्रकाश और अंधकार जो सूर्य का अभाव है, वे दोनों सूर्य से भिन्न नहीं हैं क्योंकि सूर्य के अस्तित्व के बिना ऐसा अन्तर रह नहीं सकता। भले ही विभिन्न दशाओं के कारण उनके विविध नाम हों, किन्तु वे सब सूर्य हैं अतएव *पुराणों* का कथन है—

एकदेश स्थितस्याग्नेर्ज्योत्स्ना विस्तारिणी यथा।

परस्य ब्रह्मणः शक्तिस्तथेदमखिलं जगत्॥

"जिस प्रकार अग्नि का प्रकाश अग्नि के एक स्थान पर रहते हुए चारों ओर फैलता है उसी प्रकार परब्रह्म की शक्तियाँ इस सारे ब्रह्माण्ड में फैली हुई हैं" (*विष्णु पुराण* १.२२.५३)। भौतिक दृष्टि से हम सूर्यप्रकाश को विभिन्न नामों तथा कार्यों के अनुसार फैलते अनुभव कर सकते हैं, किन्तु अन्ततः सूर्य एक है। इसी प्रकार *सर्वं खल्विदं ब्रह्म*—प्रत्येक वस्तु परब्रह्म का विस्तार (अंश) है। अतएव परब्रह्म सर्वस्व हैं और वे भेदरहित हैं। भगवान् से पृथक् किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं है।

त्वां ब्रह्म केचिदवयन्त्युत धर्ममेके
एके परं सदसतोः पुरुषं परेशम् ।
अन्येऽवयन्ति नवशक्तियुतं परं त्वां
केचिन्महापुरुषमव्ययमात्मतन्त्रम् ॥ ९॥

शब्दार्थ

त्वाम्—तुमको; ब्रह्म—परम सत्य, ब्रह्म; केचित्—कुछ लोग, यथा मायावादी जो वेदान्ती कहलाते हैं; अवयन्ति—मानते हैं; उत—निश्चय ही; धर्मम्—धर्म को; एके—कुछ लोग; एके—कुछ अन्य लोग; परम्—दिव्य; सत्-असतोः—कार्य तथा कारण दोनों; पुरुषम्—परम पुरुष को; परेशम्—परम नियन्ता; अन्ये—दूसरे लोग; अवयन्ति—वर्णन करते हैं; नव-शक्ति-युतम्—नौ शक्तियों से युक्त; परम्—दिव्य; त्वाम्—तुमको; केचित्—कुछ; महा-पुरुषम्—भगवान् को; अव्ययम्—शक्तिक्षय के बिना; आत्म-तन्त्रम्—परम स्वतंत्र।

जो निर्विशेष मायावादी कहलाते हैं, वे आपको निर्विशेष ब्रह्म के रूप में मानते हैं। मीमांसक विचारक आपको धर्म के रूप में मानते हैं। सांख्य दार्शनिक आपको ऐसा परम पुरुष मानते हैं, जो प्रकृति तथा पुरुष के परे है और देवताओं का भी नियंत्रक है। जो लोग पञ्चरात्र नामक भक्ति के नियमों के अनुयायी हैं, वे आपको नौ शक्तियों से युक्त मानते हैं। तथा पतञ्जलि मुनि के अनुयायी, जो पतञ्जल दार्शनिक कहलाते हैं, आपको उस परम स्वतंत्र भगवान् के रूप में मानते हैं जिसके न तो कोई तुल्य है और जिस से कोई श्रेष्ठ है।

नाहं परायुरृषयो न मरीचिमुख्या
जानन्ति यद्विरचितं खलु सत्त्वसर्गाः ।
यन्मायया मुषितचेतस ईश दैत्य-
मर्त्यादयः किमुत शश्वदभद्रवृत्ताः ॥ १०॥

शब्दार्थ

न—न तो; अहम्—मैं; पर-आयुः—ऐसा व्यक्ति जो लाखों करोड़ों वर्ष जीवित रहता है (ब्रह्माजी); ऋषयः—सात लोकों के सात ऋषि; न—न तो; मरीचि-मुख्याः—मरीचि ऋषि इत्यादि; जानन्ति—जानते हैं; यत्—जिससे (भगवान् से); विरचितम्—यह ब्रह्माण्ड रचा गया; खलु—निस्सन्देह; सत्त्व-सर्गाः—यद्यपि भौतिक सतोगुण में उत्पन्न; यत्-मायया—जिसकी माया के

प्रभाव से; मुषित-चेतसः—मोहित चित्त; ईश—हे स्वामी; दैत्य—असुर; मर्त्य-आदयः—मनुष्य इत्यादि; किम् उत—क्या कहा जाये; शश्वत्—सदैव; अभद्र-वृत्ताः—प्रकृति के निम्न गुणों से प्रभावित।

हे प्रभु! सभी देवताओं में श्रेष्ठ माना जाने वाला मैं, ब्रह्माजी तथा मरीचि इत्यादि महर्षि सतोगुण से उत्पन्न हैं। तब भी हम सभी आपकी माया से मोहग्रस्त हैं और यह नहीं समझ पाते कि यह सृष्टि क्या है। आप हमारी बात छोड़ भी दें तो उन असुरों तथा मनुष्यों के बारे में क्या कहा जाये जो प्रकृति के निम्न गुणों (रजो तथा तमो गुणों) से युक्त हैं? वे आपको कैसे जान सकते हैं?

तात्पर्य : वस्तुतः सतोगुणी लोग भी भगवान् की स्थिति को नहीं समझ सकते। तो फिर उनके विषय में क्या कहा जाये जो प्रकृति के निम्न गुणों—रजो तथा तमो गुणों में स्थित हैं? हम भगवान् के विषय में कल्पना भी कैसे कर सकते हैं? अनेक ऐसे विचारक हैं, जो परम सत्य को समझने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु वे निम्न गुणों से युक्त होने के कारण और मद्यपान, मांसाहार, अवैध मैथुन तथा द्यूतक्रीड़ा जैसी बुरी आदतों में अनुरक्त होने के कारण भगवान् के विषय में किस तरह सोच सकते हैं? उनके लिए यह असम्भव है। वर्तमान युग के लिए नारद मुनि द्वारा बताई गई *पाञ्चरात्रिकी विधि ही* एकमात्र आशा है। अतएव श्रील रूप गोस्वामी ने *ब्रह्मयामल* से निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया है—

श्रुतिस्मृतिपुराणादिपञ्चरात्रविधिं विना।

ऐकान्तिकी हरेर्भक्तिरुत्पातायैव कल्पते॥

"भगवान् की वह भक्ति जो *उपनिषदों, पुराणों* तथा *नारद पञ्चरात्र* जैसे वैदिक वाङ्मय की अवमानना करे वह समाज में अनावश्यक उत्पात मात्र है।" (*भक्तिरसामृत सिन्धु* १.२.१०१)। जो लोग ज्ञानी हैं और सतोगुणी हैं, वे *श्रुति, स्मृति* तथा *पाञ्चरात्रिकी-विधि* जैसे अन्य धर्मशास्त्रों के वैदिक उपदेशों का पालन करते हैं। भगवान् को इस तरह से समझे बिना मनुष्य केवल उत्पात मचाता है। इस कलियुग में अनेक गुरु उत्पन्न हो गये हैं और चूँकि वे *श्रुतिस्मृति-पुराणादि-पञ्चरात्रिक-विधि* का उल्लेख नहीं करते अतएव वे परम सत्य को समझने की दिशा में विश्व भर में महान् उत्पात मचा रहे हैं। फिर भी, जो कोई उपयुक्त गुरु के निर्देशन में *पाञ्चरात्रिकी-विधि* का पालन करता है, वह परम सत्य को समझ सकता है। कहा गया है—*पञ्चरात्रस्य कृत्स्नस्य वक्ता तु भगवान् स्वयम्*—पञ्चरात्र पद्धति भगवान् द्वारा उसी प्रकार कही गई है, जिस तरह *भगवद्गीता* कही गई थी। *वासुदेवशरणा*

विदुरञ्जसैव—सत्य को वही समझ सकता है, जिसने वासुदेव के चरणकमलों की शरण ग्रहण कर ली हो।

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।

वासुदेव: सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभ: ॥

"जो वास्तव में ज्ञानी है, वह अनेक जन्म-जन्मातरों के बाद मुझको समस्त वस्तुओं तथा कारणों का कारण जानते हुए मेरी शरण में आता है। ऐसे महात्मा अत्यन्त दुर्लभ हैं।" (*भगवद्गीता* ७.१९)। जिन्होंने वासुदेव के चरणकमलों की शरण ग्रहण कर रखी है केवल वे ही परम सत्य को समझ सकते हैं।

वासुदेवे भगवति भक्तियोग: प्रयोजित: ।

जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं च यद् अहैतुकम् ॥

"भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति करने से मनुष्य तुरन्त ही अहैतुक ज्ञान तथा संसार से वैराग्य प्राप्त कर लेता है। (*भागवत* १.२.७)।" अतएव वासुदेव भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं *भगवद्गीता* (१.६६) में शिक्षा देते हैं—

सर्व-धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज

"सारे धर्मों को त्यागकर केवल मेरी शरण में आओ।"

भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वत:

"केवल भक्ति द्वारा ही परम पुरुष को यथारूप में समझा जा सकता है। (*भगवद्गीता* १.५५)। जब ब्रह्माजी या शिवजी तक भगवान् को ठीक से नहीं समझ पाते तो अन्यों के विषय में क्या कहा जा सकता है? उन्हें तो केवल *भक्तियोग* के द्वारा समझा जा सकता है—

मय्यासक्तमना: पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रय: ।

असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥

(*भगवद्गीता* ७.१)

यदि कोई वासुदेव कृष्ण को स्वयं के बारे में बोलते हुए मात्र श्रवण करके उनकी शरण में जाकर भक्तियोग का अभ्यास करता है, तो वह उनके विषय में सब कुछ जान सकता है। निस्सन्देह, वह उन्हें

सम्यक् रूप से समझ सकता है।

स त्वं समीहितमदः स्थितिजन्मनाशं
भूतेहितं च जगतो भवबन्धमोक्षौ ।
वायुर्यथा विशति खं च चराचराख्यं
सर्वं तदात्मकतयावगमोऽवरुन्त्से ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; त्वम्—आप भगवान्; समीहितम्—(आपके द्वारा) उत्पन्न किया हुआ; अदः—इस भौतिक जगत का; स्थिति-जन्म-नाशम्—सृजन, पालन तथा संहार; भूत—जीवों का; ईहितम् च—तथा विभिन्न कार्य या उद्योग; जगतः—सारे जगत का; भव-बन्ध-मोक्षौ—सांसारिक बन्धन में पड़ने और छूटने में; वायुः—हवा; यथा—जिस तरह; विशति—प्रवेश करती है; खम्—विस्तृत आकाश में; च—तथा; चर-अचर-आख्यम्—तथा चर और अचर; सर्वम्—हर वस्तु; तत्—वह; आत्मकतया—आपकी उपस्थिति से; अवगमः—आपके अवगत रहने से; अवरुन्त्से—सर्वव्यापी होने के कारण आप सब कुछ जानते हैं।

हे प्रभु! आप साक्षात् परम ज्ञान हैं। आप इस सृष्टि तथा इसके सृजन, पालन तथा संहार के विषय में सब कुछ जानते हैं। आप जीवों द्वारा किये जाने वाले उन सारे प्रयासों से अवगत हैं जिनके द्वारा वे इस भौतिक जगत से बँधते या मुक्त होते हैं। जिस प्रकार वायु विस्तीर्ण आकाश के साथ-साथ समस्त चराचर प्राणियों में प्रविष्ट करती है उसी प्रकार आप सर्वत्र विद्यमान हैं, अतएव सर्वज्ञ हैं।

तात्पर्य : *ब्रह्मसंहिता* (५.३५) में कहा गया है—

एकोऽप्यसौ रचयितुं जगदण्डकोटिं

यच्छक्तिरस्ति जगदण्डचया यदन्तः।

अण्डान्तरस्थपरमाणुचयान्तरस्थं

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

"मैं उन भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ जो अपने एक स्वांश के द्वारा प्रत्येक ब्रह्माण्ड तथा प्रत्येक परमाणु में प्रवेश करते हैं और इस प्रकार सारी सृष्टि में अपनी असीम शक्ति को प्रकट करते हैं।"

आनन्दचिन्मयरसप्रतिभाविताभि

स्ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभिः।

गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतो

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

''मैं उन आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ जो अपने निजी धाम गोलोक में उन राधा के साथ निवास करते हैं, जो उनके आध्यात्मिक स्वरूप के अनुरूप हैं और ह्लादिनी शक्ति से समन्वित हैं। उनकी सखियां उनकी विश्वस्त संगनियाँ हैं, जो उनके शारीरिक स्वरूप के अंश रूप हैं और नित्य आनन्दमय आध्यात्मिक रस से ओतप्रोत हैं।'' (*ब्रह्मसंहिता* ५.३७)।

यद्यपि गोविन्द सदा अपने धाम में निवास करते हैं (*गोलोक एव निवसति*) किन्तु वे एकसाथ सर्वत्र विद्यमान हैं। उनसे कुछ भी छिपा नहीं है और न ही छिपाया जा सकता है। यहाँ पर दिए उदहरण में भगवान् की तुलना वायु से की गई है, जो विस्तीर्ण आकाश में तथा प्रत्येक शरीर के भीतर रहती है, किन्तु फिर भी उन सबसे भिन्न रहती है।

अवतारा मया दृष्टा रममाणस्य ते गुणैः ।
सोऽहं तद्द्रष्टुमिच्छामि यत्ते योषिद्वपुर्धृतम् ॥ १२॥

शब्दार्थ

अवताराः—अवतार; मया—मेरे द्वारा; दृष्टाः—देखे जा चुके हैं; रममाणस्य—लीला करते समय; ते—तुम्हारे; गुणैः—दिव्य गुणों से प्रकट; सः—शिवजी; अहम्—मैं; तत्—वह अवतार; द्रष्टुम् इच्छामि—देखना चाहता हूँ; यत्—जो; ते—तुम्हारा; योषित्-वपुः—स्त्री का शरीर; धृतम्—धारण किया हुआ।

हे प्रभु! मैंने आपके उन सभी अवतारों का दर्शन किया है जिन्हें आप अपने दिव्य गुणों के द्वारा प्रकट कर चुके हैं। अब जबकि आप एक सुन्दर तरुणी के रूप में प्रकट हुए हैं, मैं आपके उसी स्वरूप का दर्शन करना चाहता हूँ।

तात्पर्य : जब शिवजी भगवान् विष्णु के पास गये तो उन्होंने वहाँ उनसे आने का कारण पूछा। अब शिवजी अपनी मनोकामना प्रकट कर रहे हैं। वे भगवान् विष्णु के अधुनातम मोहिनी-मूर्ति अवतार को देखना चाह रहे थे जिसे उन्होंने क्षीरसागर के मन्थन से उत्पन्न अमृत को वितरित करने के लिए धारण किया था।

येन सम्मोहिता दैत्याः पायिताश्चामृतं सुराः ।
तद्दिदृक्षव आयाताः परं कौतूहलं हि नः ॥ १३॥

शब्दार्थ

येन—ऐसे अवतार से; सम्मोहिताः—मोहित हो गये थे; दैत्याः—असुरगण; पायिताः—पिलाया गया था; च—भी; अमृतम्—अमृत; सुराः—देवतागण; तत्—वह रूप; दिदृक्षवः—देखने की इच्छा से; आयाताः—हम आये हैं; परम्—अत्यधिक; कौतूहलम्—अत्यन्त उत्सुकता; हि—निस्सन्देह; नः—हमारी।

हे भगवान्! हम लोग यहाँ पर आपके उस रूप का दर्शन करने आये हैं जिसे आपने असुरों को पूर्णतया मोहित करने के लिए दिखलाया था और इस प्रकार देवताओं को अमृत पान करने दिया था। मैं उस रूप को देखने के लिए अत्यन्त उत्सुक हूँ।

श्रीशुक उवाच
एवमभ्यर्थितो विष्णुर्भगवाञ्शूलपाणिना ।
प्रहस्य भावगम्भीरं गिरिशं प्रत्यभाषत ॥ १४॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; अभ्यर्थितः—प्रार्थना किये जाने पर; विष्णुः भगवान्—भगवान् विष्णु ने; शूल-पाणिना—त्रिशूलधारी शिवजी द्वारा; प्रहस्य—हँसते हुए; भाव-गम्भीरम्—अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक; गिरिशम्—शिवजी को; प्रत्यभाषत—उत्तर दिया।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जब त्रिशूलधारी शिवजी ने भगवान् विष्णु से इस तरह प्रार्थना की तो वे गम्भीर होकर हँस पड़े और उन्होंने उनको इस प्रकार से उत्तर दिया।

तात्पर्य : भगवान् विष्णु *योगेश्वर* कहलाते हैं। *यत्र योगेश्वरः कृष्णः।* योगीजन योगाभ्यास द्वारा कुछ शक्ति प्राप्त करना चाहते हैं, किन्तु भगवान् कृष्ण तो योग शक्ति के ईश्वर कहलाते हैं। शिवजी उस मोहिनी-मूर्ति को देखना चाहते थे जिससे सारा जगत मोहित था और भगवान् विष्णु इस विचार में मग्न थे कि शिवजी को भी किस तरह मोहा जाये। इसलिए *भावगम्भीरम्* शब्द का प्रयोग हुआ है। माया को दुर्गादेवी द्वारा प्रदर्शित किया जाता है, जो गिरिश या शिवजी की पत्नी हैं। शिव दुर्गाजी द्वारा मोहित नहीं हो पाये थे, किन्तु अब जब वे भगवान् विष्णु के स्त्री-रूप को देखना चाह रहे थे तो भगवान् विष्णु अपनी योग-शक्ति से ऐसा रूप धारण करेंगे जो उनको भी मोह सके। इसीलिए भगवान् विष्णु गम्भीर थे और साथ ही हँसते जा रहे थे।

श्रीभगवानुवाच
कौतूहलाय दैत्यानां योषिद्वेषो मया धृतः ।
पश्यता सुरकार्याणि गते पीयूषभाजने ॥ १५॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; कौतूहलाय—मोहग्रस्त करने के लिए; दैत्यानाम्—असुरों को; योषित्-वेषः—सुन्दर स्त्री का रूप; मया—मेरे द्वारा; धृतः—धारण किया गया; पश्यता—देखते हुए कि यह मेरे लिए आवश्यक है; सुर-कार्याणि—देवताओं के हितों की रक्षा करने के लिए; गते—छीन लिए जाने पर; पीयूष-भाजने—अमृत घट के।

भगवान् ने कहा : जब असुरों ने अमृत घट छीन लिया तो मैंने उन्हें प्रत्यक्ष छलावा देकर मोहित करने के उद्देश्य से और इस तरह देवताओं के हित में कार्य करने के लिए, एक सुन्दर स्त्री का रूप धारण कर लिया।

तात्पर्य : जब भगवान् ने मोहिनी-मूर्ति का रूप धारण किया, तो असुर तो सम्मोहित हुए लेकिन वहाँ पर उपस्थित देवतागण प्रसन्न नहीं हुए। दूसरे शब्दों में, जो लोग आसुरी प्रवृत्ति के होते हैं, वे स्त्री के सौन्दर्य से सम्मोहित हो जाते हैं, किन्तु जो कृष्णभावनामृत में आगे बढ़े हुए हैं या जो सतोगुणी पद पर हैं, वे मोहित नहीं होते। भगवान् जानते थे कि क्योंकि शिवजी कोई सामान्य व्यक्ति नहीं हैं, वे सुन्दर से सुन्दर स्त्री द्वारा भी मोहित नहीं किये जा सकते। साक्षात् कामदेव ने पार्वती की उपस्थिति में शिवजी की कामेच्छाएँ जगाने का प्रयत्न किया था, किन्तु शिवजी तनिक भी विचलित नहीं हुए। उल्टे, शिवजी के नेत्रों की ज्वाला से कामदेव भस्म हो गया। अतएव भगवान् विष्णु को ठीक से सोच-विचार करके ऐसा सुन्दर रूप धारण करना था जिससे शिवजी भी सम्मोहित हो जाँय। फलस्वरूप वे गम्भीर रूप से हँस रहे थे, जैसाकि पिछले श्लोक में कहा गया है (*प्रहस्य भावगम्भीरम्*)। सामान्यतया कोई सुन्दर स्त्री शिवजी में कामवासना नहीं जगा सकती, किन्तु भगवान् विष्णु सोच रहे थे कि क्या स्त्री का कोई ऐसा रूप हो सकता है, जो उन्हें सम्मोहित कर सके ?

तत्तेऽहं दर्शयिष्यामि दिदृक्षोः सुरसत्तम ।
कामिनां बहु मन्तव्यं सङ्कल्पप्रभवोदयम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

तत्—वह; ते—तुमको; अहम्—मैं; दर्शयिष्यामि—दिखलाऊँगा; दिदृक्षोः—देखने के इच्छुक; सुर-सत्तम—हे देवताओं में श्रेष्ठ; कामिनाम्—कामी पुरुषों के; बहु—अनेक; मन्तव्यम्—आराधना का लक्ष्य; सङ्कल्प—कामेच्छाएँ; प्रभव-उदयम्—प्रबल रूप से जगाते हुए।

हे देवश्रेष्ठ! अब मैं तुम्हें अपना वह रूप दिखाऊँगा जो कामी पुरुषों द्वारा अत्यधिक सराहा जाता है। चूँकि तुम मेरा वैसा रूप देखना चाहते हो अतएव मैं तुम्हारे समक्ष उसे प्रकट करूँगा।

तात्पर्य : शिवजी द्वारा भगवान् विष्णु से स्त्री का सबसे अधिक आकर्षक रूप प्रकट करने कहना निश्चय ही उपहास का विषय था। शिवजी जानते थे कि वे किसी तथाकथित सुन्दर स्त्री द्वारा विचलित

नहीं किये जा सकते थे। उन्होंने सोचा ''भले ही दैत्यगण सम्मोहित हुए हों किन्तु देवता तो सम्मोहित नहीं हुए; तो मेरा क्या कहना जब देवताओं में मैं सर्वश्रेष्ठ हूँ।'' फिर भी शिवजी ने भगवान् को स्त्री रूप में देखना चाहा, अतएव भगवान् विष्णु ने स्त्री की भूमिका अदा करने का निश्चय किया और उन्हें ऐसा रूप दिखाना चाहा, जो उन्हें तुरन्त ही कामवासना के समुद्र में डाल दे। अतएव भगवान् विष्णु ने शिवजी से कहा ''मैं तुम्हें अपना स्त्री-रूप दिखलाऊँगा, किन्तु यदि तुम कामवासना से विचलित हो गए तो मुझे दोष मत देना।'' कामी लोग स्त्री के आकर्षक अंगों की प्रशंसा करते हैं, किन्तु जो लोग ऐसी कामवासना से परे हैं और जो कृष्णभावनामृत पद को प्राप्त हैं उन्हें मोहित कर पाना अत्यन्त कठिन है। फिर भी, भगवान् की परम इच्छा से सब कुछ हो सकता है। यही शिवजी की परीक्षा करने का उपाय था कि वे अविचलित रह सकते हैं या नहीं।

श्रीशुक उवाच

इति ब्रुवाणो भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ।
सर्वतश्चारयंश्चक्षुर्भव आस्ते सहोमया ॥ १७॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; ब्रुवाणः—बोलते हुए; भगवान्—भगवान् विष्णु; तत्र—वहाँ; एव—तुरन्त; अन्तरधीयत—शिवजी तथा उनके पार्षदों की दृष्टि से ओझल हो गये; सर्वतः—सर्वत्र; चारयन्—घुमाते हुए; चक्षुः—आँखें; भवः—शिव; आस्ते—रह गए; सह-उमया—अपनी पत्नी उमा के साथ।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : ऐसा कहकर भगवान् विष्णु तुरन्त ही अन्तर्धान हो गये और शिवजी उमा सहित वहीं पर चारों ओर आँखें घुमाते उन्हें ढूँढ़ते रह गये।

ततो ददर्शोपवने वरस्त्रियं
विचित्रपुष्पारुणपल्लवद्रुमे ।
विक्रीडतीं कन्दुकलीलया लसद्-
दुकूलपर्यस्तनितम्बमेखलाम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; ददर्श—शिवजी ने देखा; उपवने—सुन्दर वन में; वर-स्त्रियम्—एक अत्यन्त सुन्दर स्त्री को; विचित्र—नाना प्रकार के; पुष्प—फूल; अरुण—गुलाबी; पल्लव—पत्तियाँ; द्रुमे—वृक्षों के बीच में; विक्रीडतीम्—खेलने में व्यस्त; कन्दुक—गेंद से; लीलया—खेल-खेल में; लसत्—चमकता; दुकूल—साड़ी से; पर्यस्त—ढका; नितम्ब—कूल्हों पर; मेखलाम्—करधनी पहने।

तत्पश्चात् शिवजी ने गुलाबी पत्तियों तथा विचित्र फूलों से भरे निकट के एक सुन्दर जंगल में एक सुन्दर स्त्री को गेंद से खेलते देखा। उसके कूल्हे एक चमचमाती साड़ी से ढके थे तथा एक

करधनी से सुशोभित थे।

आवर्तनोद्वर्तनकम्पितस्तन-
प्रकृष्टहारोरुभरैः पदे पदे ।
प्रभज्यमानामिव मध्यतश्चलत्-
पदप्रवालं नयतीं ततस्ततः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

आवर्तन—नीचे गिरने से; उद्वर्तन—तथा ऊपर उछलने से; कम्पित—हिलते; स्तन—दोनों स्तनों का; प्रकृष्ट—सुन्दर; हार—तथा माला के; उरु-भरैः—गुरु भार के कारण; पदे पदे—प्रत्येक पग पर; प्रभज्यमानाम् इव—मानो टूट जायेगी; मध्यतः—शरीर के मध्य भाग में; चलत्—इस तरह हिलती डुलती; पद-प्रवालम्—मूँगे के समान लाल-लाल पाँव; नयतीम्—चंचल; ततः ततः—जहाँ-तहाँ।

चूँकि गेंद ऊपर तथा नीचे उछल रही थी अतएव जब वह उससे खेलती तो उसके स्तन हिलते थे और जब वह अपने मूँगों जैसे लाल मुलायम पाँवों से इधर-उधर चलती तो उन स्तनों के गुरु भार से तथा फूलों की भारी माला से उसकी कमर प्रत्येक पग पर टूटती हुई प्रतीत हो रही थी।

दिक्षु भ्रमत्कन्दुकचापलैर्भृशं
प्रोद्विग्नतारायतलोललोचनाम् ।
स्वकर्णविभ्राजितकुण्डलोल्लसत्-
कपोलनीलालकमण्डिताननाम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

दिक्षु—सारी दिशाओं में; भ्रमत्—उछलते; कन्दुक—गेंद; चापलैः—चपलता; भृशम्—अब और तब; प्रोद्विग्न—चिन्ता से युक्त; तार—आँखें; आयत—चौड़ी खुली; लोल—चंचल; लोचनाम्—आँखों वाली; स्व-कर्ण—अपने दोनों कानों में; विभ्राजित—प्रकाशमान्; कुण्डल—कान की बालियाँ; उल्लसत्—चमकती; कपोल—गाल; नील—साँवले; अलक—बालों से युक्त; मण्डित—सुशोभित था; आननाम्—मुख।

उस स्त्री का मुखमण्डल विस्तृत तथा सुन्दर था और चंचल आँखों से सुशोभित था और वह अपने हाथों द्वारा उछाली गई गेंद के साथ घूम रही थीं। उसके कानों के दो जगमगाते कुण्डल उसके चमकते गालों पर साँवली छाया की तरह सुशोभित हो रहे थे और उसके मुख पर बिखरे बाल उसे देखने में और भी सुन्दर बना रहे थे।

श्लथद्दुकूलं कबरीं च विच्युतां
सन्नह्यतीं वामकरेण वल्गुना ।
विनिघ्नतीमन्यकरेण कन्दुकं
विमोहयन्तीं जगदात्ममायया ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

श्लथत्—नीचे गिरती या ढीली ढाली; दुकूलम्—साड़ी; कबरीम् च—तथा सिर के बाल; विच्युताम्—खुलकर बिखरते हुए; सन्नह्यतीम्—बाँधने का प्रयत्न करती; वाम-करेण—बाएँ हाथ से; वल्गुना—अत्यन्त आकर्षक; विनिघ्नतीम्—प्रहार करती; अन्य-करेण—दाएँ हाथ से; कन्दुकम्—गेंद को; विमोहयन्तीम्—इस प्रकार हर एक को सम्मोहित करती; जगत्—सारा संसार; आत्म-मायया—अपनी अन्तरंगा शक्ति से।

जब वह गेंद खेलती तो उसके शरीर को ढकने वाली साड़ी ढीली पड़ जाती और उसके बाल बिखर जाते। वह अपने सुन्दर बाएँ हाथ से अपने बालों को बाँधने का प्रयास करती और साथ ही दाएँ हाथ से गेंद को मारकर खेलती जा रही थी। यह इतना आकर्षक दृश्य था कि भगवान् ने अपनी अन्तरंगा शक्ति से इस तरह हर एक को मोह लिया।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (७.१४) में कहा गया है—*दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया*—भगवान् की बहिरंगा शक्ति अत्यन्त प्रबल है। निस्सन्देह, उसके कार्यों से प्रत्येक व्यक्ति पूरी तरह मोहित हो जाता है। यद्यपि शम्भु (शिव) को इस बहिरंगा शक्ति से सम्मोहित नहीं होना चाहिए था, किन्तु भगवान् विष्णु उन्हें भी मोहित करना चाह रहे थे, अतएव उन्होंने अपनी अन्तरंगा शक्ति को उसी तरह से कार्य करने दिया जिस तरह से उनकी बहिरंगा शक्ति सामान्य व्यक्तियों को मोहित करने के लिए करती है। भगवान् विष्णु किसी भी व्यक्ति को, यहाँ तक कि शम्भु जैसे प्रबल पुरुष को भी, मोह सकते हैं।

तां वीक्ष्य देव इति कन्दुकलीलयेषद्-
व्रीडास्फुटस्मितविसृष्टकटाक्षमुष्टः ।
स्त्रीप्रेक्षणप्रतिसमीक्षणविह्वलात्मा
नात्मानमन्तिक उमां स्वगणांश्च वेद ॥ २२॥

शब्दार्थ

ताम्—उसको; वीक्ष्य—देखकर; देवः—शम्भु की; इति—इस प्रकार; कन्दुक-लीलया—गेंद खेलते हुए; ईषत्—कुछ कुछ; व्रीडा—लज्जा से; अस्फुट—अस्पष्ट; स्मित—हँसी से युक्त; विसृष्ट—भेजा हुआ; कटाक्ष-मुष्टः—तिरछी चितवन से पराजित; स्त्री-प्रेक्षण—उस सुन्दर स्त्री को देखते हुए; प्रतिसमीक्षण—तथा निरन्तर उसके द्वारा देखा जाकर; विह्वल-आत्मा—जिसका मन विचलित हो; न—नहीं; आत्मानम्—स्वयं का; अन्तिके—पास ही(स्थित); उमाम्—अपनी पत्नी उमा को; स्व-गणान् च—तथा अपने पार्षदों को; वेद—शिवजी जान सके।

जब शिवजी इस सुन्दर स्त्री को गेंद खेलते हुए देख रहे थे, तब वह कभी इन पर दृष्टि डालती और लज्जा से थोड़ा हँस देती। ज्योंही शिवजी ने उस सुन्दर स्त्री को देखा और उसने इन्हें ताका त्योंही वे स्वयं को तथा अपनी सर्वसुन्दर पत्नी उमा और अपने निकटस्थ पार्षदों को भूल गये।

तात्पर्य : इस जगत का भवबन्धन यही है कि सुन्दर स्त्री सुन्दर पुरुष को और सुन्दर पुरुष सुन्दर स्त्री को मोह सकते हैं। जब शिवजी ने सुन्दर बाला को गेंद खेलते देखा तो ऐसा ही होने लगा। ऐसे मामलों में कामदेव का प्रभाव अत्यन्त प्रधान रहता है। जब दोनों पक्ष अपनी भौंहें हिलाते हैं और एक दूसरे पर दृष्टिपात करते हैं, तो उनकी कामवासना उग्र होती जाती है। इस प्रकार की कामवासना का आदान-प्रदान शिवजी तथा उस सुन्दर स्त्री के बीच हुआ यद्यपि उमा तथा शिवजी के गण उनके पास ही थे। ऐसा है भौतिक संसार में पुरुष तथा स्त्री के बीच आकर्षण। शिवजी को ऐसे आकर्षण से ऊपर माना जाता है, किन्तु वे भी भगवान् विष्णु की मोहिनी शक्ति के शिकार बन गए। ऋषभदेव ने वासनापूर्ण आकर्षणमय प्रकृति का वर्णन इस प्रकार किया है—

पुंसः स्त्रिया मिथुनीभावमेतं

तयोर्मिथो हृदयग्रन्थिमाहुः।

अतो गृहक्षेत्रसुताप्तवित्तै-

र्जनस्य मोहोऽयमहं ममेति॥

"पुरुष तथा स्त्री का आकर्षण जगत का मूल सिद्धान्त है। इसी भ्रान्त धारणा के आधार पर जो स्त्री-पुरुष के हृदयों को बाँधती है, मनुष्य अपने शरीर, घर, सम्पत्ति, सन्तान, सम्बन्धी तथा धन से आकृष्ट होता है। इस तरह जीवन का मोह बढ़ता जाता है और मनुष्य 'मैं तथा मेरा' के रूप में सोचने लगता है (*भागवत्* ५.५.)। जब स्त्री तथा पुरुष कामभावनाओं का आदान-प्रदान करते हैं, तो दोनों ही पीड़ित हो उठते हैं और इस तरह वे इस संसार से विविध प्रकार से बद्ध जाते हैं।

तस्याः कराग्रात्स तु कन्दुको यदा
गतो विदूरं तमनुव्रजत्स्त्रियाः ।
वासः ससूत्रं लघु मारुतोऽहरद्
भवस्य देवस्य किलानुपश्यतः ॥ २३॥

शब्दार्थ

तस्याः—उस सुन्दरी के; कर-अग्रात्—हाथ से; सः—वह; तु—लेकिन; कन्दुकः—गेंद; यदा—जब; गतः—गया हुआ; विदूरम्—दूर; तम्—उस गेंद को; अनुव्रजत्—पीछे-पीछे चलने लगी; स्त्रियाः—उस स्त्री के; वासः—वस्त्र; स-सूत्रम्—करधनी सहित; लघु—अत्यन्त सुन्दर होने से; मारुतः—मन्द वायु; अहरत्—उड़ा ले गई; भवस्य—शिव का; देवस्य—प्रमुख देवता; किल—निस्सन्देह; अनुपश्यतः—निरन्तर देख रहा था।

जब गेंद उसके हाथ से उछलकर दूर जा गिरी तो वह स्त्री उसका पीछा करने लगी, किन्तु

जब शिवजी इन लीलाओं को देख रहे थे तो अचानक वायु उसके सुन्दर वस्त्र तथा उसकी करधनी को जो उसे ढके हुए थे, उड़ा ले गई।

एवं तां रुचिरापाङ्गीं दर्शनीयां मनोरमाम् ।
दृष्ट्वा तस्यां मनश्चक्रे विषज्जन्त्यां भवः किल ॥ २४॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह; ताम्—उस; रुचिर-अपाङ्गीम्—आकर्षक अंगों वाली को; दर्शनीयाम्—देखने में सुहावनी; मनोरमाम्—सुगठित; दृष्ट्वा—देखकर; तस्याम्—उस पर; मनः चक्रे—सोचा; विषज्जन्त्याम्—उसके द्वारा आकृष्ट होने के लिए; भवः—शिवजी; किल—निस्सन्देह।.

इस प्रकार शिवजी ने उस स्त्री को देखा जिसके शरीर का अंग प्रत्यंग सुगठित था और उस सुन्दर स्त्री ने भी उनकी ओर देखा। अतएव यह सोचकर कि वह स्त्री उनके प्रति आकृष्ट है, शिवजी उसके प्रति अत्यधिक आकृष्ट हो गये।

तात्पर्य : शिवजी उस स्त्री के शरीर का अंग-प्रत्यंग देख रहे थे और वह भी उन्हें निर्निमेष देख रही थी। अत: शिवजी ने सोचा कि वह भी उनकी ओर आकृष्ट है अतएव उन्होंने उसका स्पर्श करना चाहा।

तयापहृतविज्ञानस्तत्कृतस्मरविह्वलः ।
भवान्या अपि पश्यन्त्या गतह्रीस्तत्पदं ययौ ॥ २५॥

शब्दार्थ

तया—उसके द्वारा; अपहृत—चुराया गया; विज्ञानः—विवेक; तत्-कृत—उसके द्वारा किया गया; स्मर—मुस्कान से; विह्वलः—उसके लिए पागल होकर; भवान्याः—शिवजी की पत्नी भवानी द्वारा; अपि—यद्यपि; पश्यन्त्याः—ये घटनाएँ देखी जा रही थीं; गत-ह्रीः—सारी लज्जा से रहित; तत्-पदम्—उस स्थान पर, जहाँ पर वह थी; ययौ—गये।.

उस स्त्री के साथ रमण करने की कामेच्छा के कारण अपना विवेक खोकर शिवजी उसके लिए इतने पागल हो उठे कि भवानी की उपस्थिति में भी वे उसके पास जाने में तनिक भी नहीं हिचकिचाये।

सा तमायान्तमालोक्य विवस्त्रा व्रीडिता भृशम् ।
निलीयमाना वृक्षेषु हसन्ती नान्वतिष्ठत ॥ २६॥

शब्दार्थ

सा—वह स्त्री; तम्—शिव को; आयान्तम्—निकट आते हुए; आलोक्य—देखकर; विवस्त्रा—नंगी; व्रीडिता—अत्यन्त लज्जित; भृशम्—इतनी अधिक; निलीयमाना—छिपा रही थी; वृक्षेषु—पेड़ों के बीच में; हसन्ती—हँसती हुई; न—नहीं; अन्वतिष्ठत—एक स्थान पर खड़ी रही।

वह सुन्दरी पहले ही नंगी हो चुकी थी और जब उसने देखा कि शिवजी उसकी ओर चले आ रहे हैं, तो वह अत्यन्त लज्जित हुई। इस तरह वह हँसती रही, किन्तु उसने अपने आपको वृक्षों के बीच छिपा लिया। वह किसी एक स्थान पर खड़ी नहीं रही।

तामन्वगच्छद्भगवान्भवः प्रमुषितेन्द्रियः ।
कामस्य च वशं नीतः करेणुमिव यूथपः ॥ २७॥

शब्दार्थ

ताम्—उसका; अन्वगच्छत्—पीछा किया; भगवान्—शिवजी ने; भवः—भव नाम से विख्यात; प्रमुषित-इन्द्रियः—जिनकी इन्द्रियाँ विचलित थीं; कामस्य—कामवासनाओं के; च—तथा; वशम्—वशीभूत; नीतः—होकर; करेणुम्—हथिनी; इव—सदृश; यूथपः—हाथी।

शिवजी की इन्द्रियाँ विचलित थीं और वे कामवासनाओं के वशीभूत होकर उसका पीछा करने लगे जिस तरह कोई कामी हाथी हथिनी का पीछा करता है।

सोऽनुव्रज्यातिवेगेन गृहीत्वानिच्छतीं स्त्रियम् ।
केशबन्ध उपानीय बाहुभ्यां परिषस्वजे ॥ २॥

शब्दार्थ

सः—शिवजी ने; अनुव्रज्य—उसका पीछा करके; अति-वेगेन—तेजी से; गृहीत्वा—पकड़ कर; अनिच्छतीम्—उसके न चाहने पर भी; स्त्रियम्—स्त्री को; केश-बन्धे—चोटी से; उपानीय—अपने पास खींचकर; बाहुभ्याम्—अपनी भुजाओं से; परिषस्वजे—उसका आलिंगन किया।

तेजी से उसका पीछा करते हुए शिवजी ने उसके बालों का जूड़ा पकड़ लिया और उसे अपने पास खींच लिया। फिर उसके न चाहने पर भी उन्होंने अपनी भुजाओं में भरकर उसका आलिङ्गन कर लिया।

सोपगूढा भगवता करिणा करिणी यथा ।
इतस्ततः प्रसर्पन्ती विप्रकीर्णशिरोरुहा ॥ २९॥
आत्मानं मोचयित्वाङ्ग सुरर्षभभुजान्तरात् ।
प्राद्रवत्सा पृथुश्रोणी माया देवविनिर्मिता ॥ ३०॥

शब्दार्थ

सा—वह स्त्री; उपगूढा—पकड़ी तथा आलिंगन की जाकर; भगवता—शिवजी द्वारा; करिणा—हाथी द्वारा; करिणी—हथिनी; यथा—जिस तरह; इतः ततः—इधर-उधर; प्रसर्पन्ती—साँप की तरह सरकती; विप्रकीर्ण—बिखरे; शिरोरुहा—उसके सिर के

सारे बाल; आत्मानम्—स्वयं को; मोचयित्वा—मुक्त करके; अङ्ग—हे राजा; सुर-ऋषभ—देवताओं में श्रेष्ठ (शिव); भुज-अन्तरात्—अपनी भुजाओं में बाँधकर; प्राद्रवत्—तेजी से भागने लगे; सा—वह; पृथु-श्रोणी—बड़े कूल्हों वाली; माया—अन्तरंगा शक्ति; देव-विनिर्मिता—भगवान् द्वारा प्रकट की गई।

जिस तरह हाथी हथिनी का आलिंगन करता है उसी तरह वह स्त्री, जिसके बाल बिखरे थे, शिवजी द्वारा आलिंगित होकर साँप की तरह सरकने लगी। हे राजा, यह बड़े और ऊँचे नितम्बों वाली स्त्री भगवान् द्वारा प्रस्तुत की गई योगमाया थी। उसने अपने को जिस-तिस भाँति शिवजी के आलिंगन से छुड़ाया और वह भाग गई।

तस्यासौ पदवीं रुद्रो विष्णोरद्भुतकर्मण: ।
प्रत्यपद्यत कामेन वैरिणेव विनिर्जित: ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उनका (शिवजी); असौ—शिवजी; पदवीम्—स्थान; रुद्र:—शिवजी; विष्णो:—भगवान् विष्णु की; अद्भुत-कर्मण:—वह जो अद्भुत कार्य करता है; प्रत्यपद्यत—पीछा करने लगा; कामेन—कामवासना के कारण; वैरिणा इव—शत्रु की तरह; विनिर्जित:—सताया गया।

शिवजी भगवान् विष्णु का जो आश्चर्यजनक कार्य करने वाले हैं और जिन्होंने मोहिनी रूप धारण कर रखा था, ऐसे पीछा करने लगे जैसे वे काम-वासना रूपी शत्रु द्वारा सताये गए हों।

तात्पर्य : शिवजी माया का शिकार नहीं हो सकते। अत: यह समझ लेना चाहिए कि वे भगवान् विष्णु की अन्तरंगा शक्ति से पीड़ित किए जा रहे थे। भगवान् विष्णु अपनी विभिन्न शक्तियों के द्वारा अनेक आश्चर्यजनक कार्य सम्पन्न कर सकते हैं।

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते।

स्वाभाविकी ज्ञान-बल-क्रिया च॥

(*श्वेताश्वतर उपनिषद्* ६.)

भगवान् की शक्तियाँ विभिन्न हैं जिनसे वे अत्यन्त कुशलता से कार्य कर सकते हैं। किसी कार्य को दक्षता से करने हेतु उन्हें सोचना नहीं पड़ता। यद्यपि शिवजी उस नारी से सताये जा रहे थे, किन्तु यह बात समझ लेनी चाहिए कि ऐसा एक नारी नहीं कर रही थी प्रत्युत भगवान् विष्णु स्वयं कर रहे थे।

तस्यानुधावतो रेतश्चस्कन्दामोघरेतस: ।
शुष्मिणो यूथपस्येव वासितामनुधावत: ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उनका (शिवजी का); अनुधावतः—जो पीछा कर रहा था; रेतः—वीर्य; चस्कन्द—गिरा; अमोघ-रेतसः—उस पुरुष का, जिसका वीर्य-स्खलन कभी निष्फल नहीं जाता; शुष्मिणः—मदान्ध; यूथपस्य—नर हाथी; इव—की भाँति; वासिताम्—गर्भधारण करने में सक्षम हथिनी; अनुधावतः—पीछा करने वाला.

जिस प्रकार गर्भधारण करने में सक्षम हथिनी का पीछा मदान्ध हाथी करता है, उसी तरह शिवजी उस सुन्दर स्त्री का पीछा कर रहे थे। यद्यपि उनका वीर्य व्यर्थ में स्खलित नहीं होता, किन्तु इस अवसर पर उनका वीर्य स्खलित हो गया।

यत्र यत्रापतन्मह्यां रेतस्तस्य महात्मनः ।
तानि रूप्यस्य हेम्नश्च क्षेत्राण्यासन्महीपते ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

यत्र—जहाँ; यत्र—जहाँ; अपतत्—गिरा; मह्याम्—भूमि पर; रेतः—वीर्य; तस्य—उसका; महा-आत्मनः—महापुरुष (शिव) का; तानि—उन स्थानों का; रूप्यस्य—चाँदी की; हेम्नः—सोने की; च—तथा; क्षेत्राणि—खानें; आसन्—बन गईं; मही-पते—हे राजा।.

हे राजा! पृथ्वी पर जहाँ-जहाँ महापुरुष शिवजी का वीर्य गिरा वहीं-वहीं बाद में सोने तथा चाँदी की खानें प्रकट हो गईं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की टीका है कि जो लोग चाँदी-सोना चाहते हैं, वे भौतिक ऐश्वर्य के लिए शिवजी की पूजा कर सकते हैं। शिवजी बेल वृक्ष के नीचे रहते हैं और अपने रहने के लिए घर तक नहीं बनाते। यद्यपि स्वयं वे निर्धन हैं, किन्तु कभी-कभी अपने भक्तों को प्रचुर मात्रा में सोना-चाँदी प्रदान करते हैं। बाद में जब परीक्षित महाराज इसके विषय में जिज्ञासा करते हैं, तो श्री शुकदेव गोस्वामी उसका उत्तर देते हैं।

सरित्सरःसु शैलेषु वनेषूपवनेषु च ।
यत्र क्व चासन्नृषयस्तत्र सन्निहितो हरः ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

सरित्—नदी के किनारों के निकट; सरःसु—तथा झीलों के निकट; शैलेषु—पर्वतों के पास; वनेषु—जंगलों में; उपवनेषु—उद्यानों या छोटे जंगलों में; च—भी; यत्र—जहाँ; क्व—कहीं; च—भी; आसन्—विद्यमान थे; ऋषयः—ऋषिगण; तत्र—वहाँ; सन्निहितः—उपस्थित थे; हरः—शिवजी।.

शिवजी मोहिनी का पीछा करते हुए नदियों तथा झीलों के किनारे, पर्वतों, जंगलों, उद्यानों के पास तथा जहाँ कहीं ऋषिमुनि रह रहे थे, गये।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की टिप्पणी है कि मोहिनी-मूर्ति शिवजी को बहुत से स्थानों तक घसीट लाई, विशेष कर जहाँ महान् ऋषि रहते थे जिससे उन्हें शिक्षा दी जा सके कि उनके

शिवजी एक सुन्दरी के पीछे पागल हो गए हैं। इस प्रकार यद्यपि वे सभी ऋषि तथा साधु पुरुष थे, उन्हें अपने आपको मुक्त नहीं समझना चाहिए अपितु सुन्दर स्त्रियों से अत्यधिक सतर्क रहना चाहिए। सुन्दरी की उपस्थिति में किसी को अपने आपको मुक्त नहीं समझना चाहिए। शास्त्रों का आदेश है—

मात्रा श्वस्त्र दुहित्रा वा नाविविक्तासनो भवेत्।

बलवान् इन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति॥

''मनुष्य को स्त्री के साथ एकान्त स्थान में नहीं रहना चाहिए भले ही वह उसकी माता, बहन या पुत्री क्यों न हो क्योंकि इन्द्रियाँ इतनी बलवान् हैं कि स्त्री की उपस्थिति में वह विचलित हो सकता है चाहे कोई कितना ही विद्वान तथा उन्नत क्यों न हो।'' (*भागवत* ९.१९.१७)

स्कन्ने रेतसि सोऽपश्यदात्मानं देवमायया ।
जडीकृतं नृपश्रेष्ठ सन्न्यवर्तत कश्मलात् ॥ ३५॥

शब्दार्थ

स्कन्ने—पूर्णतया स्खलित होने पर; रेतसि—वीर्य; सः—शिवजी ने; अपश्यत्—देखा; आत्मानम्—अपने को; देव-मायया—भगवान् की माया से; जडीकृतम्—मूर्ख की भाँति वशीभूत हुआ; नृप-श्रेष्ठ—हे राजाओं में श्रेष्ठ (महाराजपरीक्षित); सन्न्यवर्तत—अपने को आगे बढ़ने से रोका; कश्मलात्—मोह से।

हे राजश्रेष्ठ महाराज परीक्षित! जब शिवजी का वीर्य पूर्णतया स्खलित हो गया तो उन्होंने देखा कि वे किस प्रकार भगवान् द्वारा उत्पन्न माया के द्वारा वशीभूत हो गए। इस तरह उन्होंने अपने आपको माया द्वारा और अधिक वशीभूत होने से रोका।

तात्पर्य : जब कोई व्यक्ति किसी स्त्री को देखकर कामवासनाओं से विचलित होता है, तो ये वासनाएँ बढ़ती ही जाती हैं, किन्तु जब मैथुन द्वारा वीर्य स्खलित हो जाता है, तो ये कामवासनाएँ शमित हो जाती हैं। यही सिद्धान्त शिवजी पर भी लागू हुआ। वे मोहिनी-मूर्ति नामक सुन्दर स्त्री द्वारा आकृष्ट हुए थे, किन्तु जब उनका वीर्य पूरी तरह स्खलित हो गया तो उन्हें चेतना आई और यह अनुभव हुआ कि जंगल में उस स्त्री को देखते ही वे किस तरह उसके वशीभूत हो गये थे। यदि किसी को ब्रह्मचर्य-पालन द्वारा वीर्य-रक्षा करने का प्रशिक्षण दिया जाये तो वह स्वभावत: स्त्री की सुन्दरता द्वारा आकृष्ट नहीं होता। यदि कोई ब्रह्मचारी रह सके तो वह संसार के कष्टों से अपने को बचा सकता है। संसार का अर्थ है मैथुन-सुख का आनन्द उठाना (*यन् मैथुनादि गृहमेधिसुखम्*)। यदि मनुष्य को मैथुन-जीवन के बारे शिक्षा दी जाय और उसे वीर्य रक्षा करने के लिए प्रशिक्षित किया जाये तो वह

संसार के संकट से बच जाता है।

अथावगतमाहात्म्य आत्मनो जगदात्मनः ।
अपरिज्ञेयवीर्यस्य न मेने तदु हाद्भुतम् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

अथ—इस प्रकार; अवगत—आश्वस्त होकर; माहात्म्यः—महानता; आत्मनः—अपनी; जगत्-आत्मनः—तथा भगवान् की; अपरिज्ञेय-वीर्यस्य—असीम शक्तिमान; न—नहीं; मेने—विचार किया; तत्—मोहित करने में भगवान् के अद्भुत कार्यकलापों को; उ ह—निश्चय ही; अद्भुतम्—मानो अद्भुत।

इस प्रकार शिवजी को अपनी तथा असीम शक्तिमान भगवान् की स्थिति का बोध हो गया। इस ज्ञान के प्राप्त होने पर उन्हें तनिक भी आश्चर्य नहीं हुआ कि भगवान् विष्णु ने किस अद्भुत विधि से उन पर माया का जाल फैलाया था।

तात्पर्य : भगवान् सर्वशक्तिमान कहलाते हैं क्योंकि कोई भी उन्हें किसी भी कार्य में पिछाड़ नहीं सकता। *भगवद्गीता* (७.७) में भगवान् कहते हैं—*मत्तः परतरं नान्यत किञ्चिदस्ति धनञ्जय*—हे धन के विजेता! मुझसे बढ़कर कोई सत्य नहीं है। कोई न तो भगवान् की बराबरी कर सकता है, न ही उनसे बढ़कर है क्योंकि वे सबके स्वामी हैं। जैसाकि *चैतन्य-चरितामृत* (*आदि* ५.१४२) में कहा गया है—*एकले ईश्वर कृष्ण, आर सब भृत्य*—भगवान् कृष्ण सबके, यहाँ तक कि शिवजी के भी, एकमात्र स्वामी हैं, तो फिर अन्यों के लिए क्या कहा जाये? शिवजी पहले से भगवान् विष्णु की परम शक्ति से अवगत थे, किन्तु जब वे सचमुच मोह में पड़ गये तो उन्हें अपने महान् स्वामी पर गर्व हुआ।

तमविक्लवमव्रीडमालक्ष्य मधुसूदनः ।
उवाच परमप्रीतो बिभ्रत्स्वां पौरुषीं तनुम् ॥ ३७॥

शब्दार्थ

तम्—उसको (शिवजी को); अविक्लवम्—इस घटना से विचलित हुए बिना; अव्रीडम्—बिना लज्जा के; आलक्ष्य—देखकर; मधु-सूदनः—मधु राक्षस का वध करने वाले भगवान् ने; उवाच—कहा; परम-प्रीतः—अत्यधिक प्रसन्न होकर; बिभ्रत्—धारण करके; स्वाम्—अपना; पौरुषीम्—मूल; तनुम्—रूप।

शिवजी को अविचलित एवं लज्जारहित देखकर भगवान् विष्णु (मधुसूदन) अत्यन्त प्रसन्न हुए। तब उन्होंने अपना मूल रूप धारण कर लिया और वे इस प्रकार बोले।

तात्पर्य : यद्यपि शिवजी भगवान् विष्णु की शक्ति से चकित थे, किन्तु उन्होंने लज्जा का अनुभव नहीं किया। बल्कि वे भगवान् विष्णु द्वारा पराजित होने से गर्वित थे। भगवान् से कुछ भी छिपा नहीं है

क्योंकि वे जन-जन के हृदय में वास करने वाले हैं। निस्सन्देह, *भगवद्गीता* (१५.१५) में भगवान् कहते हैं—*सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च*—मैं हर एक के हृदय में आसीन हूँ और मुझ से ही स्मृति, ज्ञान तथा विस्मृति उत्पन्न होती है। जो कुछ भी घटित हुआ था वह सब भगवान् के निर्देशानुसार हुआ था अतएव खिन्न होने या लज्जित होने का कोई कारण नहीं था। यद्यपि शिवजी किसी से पराजित नहीं होते, किन्तु जब वे भगवान् विष्णु द्वारा पराजित हो गये तो उन्हें गर्व का अनुभव हुआ कि उनके स्वामी इतने महान् तथा शक्तिमान हैं।

श्रीभगवानुवाच
दिष्ट्या त्वं विबुधश्रेष्ठ स्वां निष्ठामात्मना स्थितः ।
यन्मे स्त्रीरूपया स्वैरं मोहितोऽप्यङ्ग मायया ॥ ३॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; दिष्ट्या—कल्याण हो; त्वम्—तुम्हारा; विबुध-श्रेष्ठ—हे समस्त देवताओं में श्रेष्ठ; स्वाम्—अपनी; निष्ठाम्—स्थिर दशा में; आत्मना—अपने आप; स्थितः—स्थित हो; यत्—क्योंकि; मे—मेरे; स्त्री-रूपया—स्त्री जैसे स्वरूप से; स्वैरम्—पर्याप्त; मोहितः—सम्मोहित; अपि—होते हुए भी; अङ्ग—हे शिवजी; मायया—मेरी शक्ति के द्वारा।

भगवान् ने कहा : हे देवताओं में श्रेष्ठ! यद्यपि तुम मेरे द्वारा स्त्रीरूप धारण करने की मेरी शक्ति द्वारा अत्यधिक पीड़ित हुए हो, किन्तु तुम अपने पद पर स्थिर हो। अतएव तुम्हारा कल्याण हो।

तात्पर्य : चूँकि शिवजी समस्त देवताओं में श्रेष्ठ हैं अतएव वे समस्त भक्तों में भी श्रेष्ठ हैं (*वैष्णवानाम् यथा शम्भुः*)। अतएव उनके आदर्श चरित्र की भगवान् ने प्रशंसा की और उन्हें यह कहकर वरदान दिया 'तुम्हारा कल्याण हो।' जब कोई भक्त कुछ-कुछ गर्वित हो उठता है, तो कभी-कभी भगवान् भक्त के भ्रम को दूर करने के लिए अपनी परम शक्ति का प्रदर्शन करते हैं। भगवान् विष्णु की शक्ति द्वारा पर्याप्त सताये जाने के बाद शिवजी ने अपना सामान्य अविचल रूप धारण कर लिया। भक्त की यह स्थिति है। भक्त को किसी परिस्थिति में भी विचलित नहीं होना चाहिए। जैसी कि *भगवद्गीता* (६.२२) में पुष्टि की गई है—*यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते*—भगवान् में पूर्ण श्रद्धा होने से भक्त बड़ी से बड़ी परीक्षा में भी कभी विचलित नहीं होता। ऐसी निरभिमानिता उच्चकोटि के भक्तों में ही सम्भव है जिनमें भगवान् शम्भु एक हैं।

**को नु मेऽतितरेन्मायां विषक्तस्त्वदृते पुमान् ।
तांस्तान्विसृजतीं भावान्दुस्तरामकृतात्मभिः ॥ ३९ ॥**

शब्दार्थ

कः—क्या; नु—निस्सन्देह; मे—मेरा; अतितरेत्—पार पा सकता है; मायाम्—माया को; विषक्तः—भौतिक इन्द्रिय-भोग में आसक्त; त्वत्-ऋते—आपके अतिरिक्त; पुमान्—व्यक्ति; तान्—ऐसी दशाओं; तान्—आसक्त पुरुषों को; विसृजतीम्—पार कर सकने में; भावान्—भौतिक कार्यकलापों के फलों को; दुस्तराम्—पार कर पाना दुष्कर; अकृत-आत्मभिः—अपनी इन्द्रियों को वश में करने में असमर्थ व्यक्तियों द्वारा।

हे प्रिय शम्भु! इस भौतिक जगत में तुम्हारे अतिरिक्त ऐसा कौन है, जो मेरी माया से पार पा सके? सामान्यतया लोग इन्द्रियभोग में आसक्त रहते हैं और इसके प्रभाव में फँस जाते हैं। निस्सन्देह, उनके लिए माया के प्रभाव को लाँघ पाना अत्यन्त कठिन है।

तात्पर्य : तीन प्रमुख देवताओं—ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर में से विष्णु को छोड़कर सभी माया के वश में हैं। *चैतन्य-चरितामृत* में उन्हें मायी कहा गया है, जिसका अर्थ है "माया के प्रभाव में।" किन्तु यद्यपि शिवजी माया के संग रहते हैं, वे उससे प्रभावित नहीं होते। सारे जीव माया द्वारा प्रभावित होते हैं, किन्तु शिवजी माया के साथ रहते हुए भी प्रभावित नहीं होते। दूसरे शब्दों में, इस संसार में शिवजी के अतिरिक्त सारे जीव माया द्वारा विचलित हो जाते हैं। अतएव शिवजी न तो *विष्णु-तत्त्व* हैं न *जीवतत्त्व*। वे इन दोनों के बीच में हैं।

**सेयं गुणमयी माया न त्वामभिभविष्यति ।
मया समेता कालेन कालरूपेण भागशः ॥ ४० ॥**

शब्दार्थ

सा—वह दुर्लंघ्य; इयम्—यह; गुण-मयी—प्रकृति के तीनों गुणों से युक्त; माया—माया; न—नहीं; त्वाम्—तुमको; अभिभविष्यति—भविष्य में मोहित करने में समर्थ होगी; मया—मेरे साथ; समेता—संयुक्त; कालेन—नित्य समय द्वारा; काल-रूपेण—काल के रूप में; भागशः—अपने विभिन्न अंशों सहित।

यह भौतिक बहिरंगा शक्ति (माया), जो सृष्टि में मुझे सहयोग देती है और प्रकृति के तीनों गुणों में प्रकट होती है अब तुम्हें मोहित नहीं कर सकेगी।

तात्पर्य : शिवजी के साथ उनकी पत्नी दुर्गा भी वहाँ उपस्थित थीं। दुर्गाजी इस दृश्य जगत की सृष्टि करते समय भगवान् को सहयोग देती हैं। भगवान् *भगवद्गीता* (९.१०) में कहते हैं—*मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्*—हे कुन्तीपुत्र! यह प्रकृति मेरे निर्देशन में कार्य करती है और सारे चर तथा अचर प्राणियों को जन्म देती हैं। यह प्रकृति दुर्गा है।

सृष्टिस्थितिप्रलयसाधनशक्तिरेका

छायेव यस्य भुवनानि बिभर्ति दुर्गा

सारे ब्रह्माण्ड की रचना दुर्गाजी द्वारा काल-रूप विष्णु के सहयोग से की जाती है। *स ईक्षत लोकान्नु सृजा। स इमाँल्लोकान् असृजत।* यह वेदों का (*ऐतरेय उपनिषद्* १.१, १-२) कथन है। माया को शिवजी की पत्नी होने का सौभाग्य प्राप्त है। इस तरह शिवजी का सान्निध्य माया से है, किन्तु यहाँ पर भगवान् विष्णु शिवजी को यह विश्वास दिलाते हैं कि अब यह माया उन्हें मोहित नहीं कर सकेगी।

श्रीशुक उवाच
एवं भगवता राजन्श्रीवत्साङ्केन सत्कृतः ।
आमन्त्र्य तं परिक्रम्य सगणः स्वालयं ययौ ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—**श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा**; एवम्—**इस प्रकार**; भगवता—**भगवान् द्वारा**; राजन्—**हे राजा**; श्रीवत्स-अङ्केन—**अपने वक्षस्थल पर श्रीवत्स-चिह्न धारण करने वाले**; सत्-कृतः—**अत्यन्त प्रशंसित होकर**; आमन्त्र्य—**अनुमति लेकर**; तम्—**उसको**; परिक्रम्य—**परिक्रमा करके**; स-गणः—**अपने गणों समेत**; स्व-आलयम्—**अपने धाम को**; ययौ—**वापस चले गये**।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा! वक्षस्थल पर श्रीवत्स-चिन्ह धारण करने वाले भगवान् द्वारा इस प्रकार प्रशंसित होकर शिवजी ने उनकी परिक्रमा की। फिर उनकी अनुमति लेकर शिवजी अपने गणों सहित अपने धाम कैलास लौट गये।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि जब शिवजी भगवान् विष्णु को नमस्कार कर रहे थे तो भगवान् विष्णु ने उठकर उन्हें गले लगा लिया। इसीलिए यहाँ पर *श्रीवत्साङ्केन शब्द* प्रयुक्त हुआ है। श्रीवत्स-चिह्न भगवान् विष्णु के वक्षस्थल को सुशोभित करता है; अतएव जब शिवजी ने भगवान् विष्णु की परिक्रमा की और भगवान् विष्णुने उनका आलिंगन किया, तो श्रीवत्स-चिह्न शिवजी की छाती को छू गया।

आत्मांशभूतां तां मायां भवानीं भगवान्भवः ।
सम्मतामृषिमुख्यानां प्रीत्याचष्टाथ भारत ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

आत्म-अंश-भूताम्—**परमात्मा की शक्ति**; ताम्—**उस**; मायाम्—**माया को**; भवानीम्—**शिवजी की पत्नी को**; भगवान्—**शक्तिमान**; भवः—**शिवजी**; सम्मताम्—**स्वीकार किया हुआ**; ऋषि-मुख्यानाम्—**महान् ऋषियों द्वारा**; प्रीत्या—**हर्ष सहित**; आचष्ट—**सम्बोधित किया**; अथ—**तब**; भारत—**हे भरतवंशी महाराज परीक्षित**।

हे भरतवंशी महाराज! तब शिवजी ने परम प्रसन्न होकर अपनी पत्नी भवानी को सम्बोधित

किया जो सभी अधिकारियों द्वारा भगवान् विष्णु की शक्ति के रूप में स्वीकार की जाती हैं।

अयि व्यपश्यस्त्वमजस्य मायां
परस्य पुंसः परदेवतायाः ।
अहं कलानामृषभोऽपि मुह्ये
ययावशोऽन्ये किमुतास्वतन्त्राः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

अयि—ओह; व्यपश्यः—देखा है; त्वम्—तुमने; अजस्य—अजन्मा का; मायाम्—माया को; परस्य पुंसः—परम पुरुष का; पर-देवतायाः—परम सत्य; अहम्—मैं; कलानाम्—स्वांशों का; ऋषभः—प्रमुख; अपि—यद्यपि; मुह्ये—मोहित हो गया; यया—जिसके द्वारा; अवशः—अवश; अन्ये—अन्य; किम् उत—क्या कहा जाये; अस्वतन्त्राः—माया पर पूरी तरह आश्रित।

शिवजी ने कहा : हे देवी! अब तुमने भगवान् की माया देख ली है, जो सबके अजन्मा स्वामी हैं। यद्यपि मैं उनके प्रमुख विस्तारों में से एक हूँ तो भी मैं उनकी शक्ति से भ्रमित हो गया था। तो फिर, उन लोगों के विषय में क्या कहा जाये जो माया पर पूर्णतः आश्रित हैं?

यं मामपृच्छस्त्वमुपेत्य योगात्
समासहस्रान्त उपारतं वै ।
स एष साक्षात्पुरुषः पुराणो
न यत्र कालो विशते न वेदः ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

यम्—जिसके विषय में; माम्—मुझसे; अपृच्छः—पूछा; त्वम्—तुमने; उपेत्य—पास आकर; योगात्—योग साधन से; समा—वर्ष; सहस्र-अन्ते—एक हजार के अन्त में; उपारतम्—समाप्त होकर; वै—निस्सन्देह; सः—वह; एषः—यहाँ है; साक्षात्—प्रत्यक्ष; पुरुषः—परम पुरुष; पुराणः—आदि; न—नहीं; यत्र—जहाँ; कालः—काल; विशते—प्रवेश कर सकता है; न—नहीं; वेदः—वेद।

जब मैंने एक हजार वर्षों की योग-साधना पूरी कर ली तो तुमने मुझसे पूछा था कि मैं किसका ध्यान कर रहा था। अब ये वही परम पुरुष हैं जिन तक काल नहीं पहुँच पाता और जिन्हें वेद नहीं समझ पाते।

तात्पर्य : काल सर्वत्र प्रवेश कर जाता है, किन्तु वह भगवद्धाम में प्रविष्ट नहीं हो सकता। वेद भी भगवान् को नहीं समझ पाते। यह भगवान् के सर्व-शक्तिमान, सर्वव्यापी तथा सर्वज्ञ होने का संकेत है।

श्रीशुक उवाच

इति तेऽभिहितस्तात विक्रमः शार्ङ्गधन्वनः ।
सिन्धोर्निर्मथने येन धृतः पृष्ठे महाचलः ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; ते—तुमको; अभिहितः—बताया गया; तात—हे राजा; विक्रमः—पराक्रम; शार्ङ्ग-धन्वनः—शार्ङ्ग धनुष धारण करने वाले भगवान् का; सिन्धोः—क्षीरसागर के; निर्मथने—मन्थन में; येन—जिससे; धृतः—धारण किया गया था; पृष्ठे—पीठ पर; महा-अचलः—विशाल पर्वत।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा! जिस पुरुष ने क्षीरसागर के मन्थन के लिए अपनी पीठ पर महान् पर्वत धारण किया था वही शार्ङ्गधन्वा नामक भगवान् हैं। मैंने तुमसे अभी उन्हीं के पराक्रम का वर्णन किया है।

एतन्मुहुः कीर्तयतोऽनुशृण्वतो
न रिष्यते जातु समुद्यमः क्वचित् ।
यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनं
समस्तसंसारपरिश्रमापहम् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

एतत्—यह कथा; मुहुः—निरन्तर; कीर्तयतः—कीर्तन करने वाले का; अनुशृण्वतः—तथा सुनने वाले का है; न—नहीं; रिष्यते—विनाश किया जाता है; जातु—किसी समय; समुद्यमः—प्रयास; क्वचित्—किसी समय; यत्—क्योंकि; उत्तमश्लोक—भगवान् का; गुण-अनुवर्णनम्—दिव्य गुणों का वर्णन करते हुए; समस्त—सभी; संसार—संसार का; परिश्रम—कष्ट; अपहम्—समाप्त करने वाला।

जो कोई क्षीरसागर के मन्थन की इस कथा को निरन्तर सुनता या सुनाता है, उसका प्रयास कभी भी निष्फल नहीं होगा। निस्सन्देह, भगवान् के यश का कीर्तन इस भौतिक संसार में समस्त कष्टों को ध्वस्त करने का एकमात्र साधन है।

असदविषयमङ्घ्रिं भावगम्यं प्रपन्ना-
नमृतममरवर्यानाशयत्सिन्धुमथ्यम् ।
कपटयुवतिवेषो मोहयन्यः सुरारीं-
स्तमहमुपसृतानां कामपूरं नतोऽस्मि ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

असत्-अविषयम्—नास्तिकों की समझ में न आने वाला; अङ्घ्रिम्—भगवान् के चरणकमलों को; भाव-गम्यम्—भक्तों की समझ में आने वाला; प्रपन्नान्—पूर्णतया शरणागत; अमृतम्—अमृत; अमर-वर्यान्—केवल देवताओं को; आशयत्—पीने के लिए; सिन्धु-मथ्यम्—क्षीरसागर से उत्पन्न; कपट-युवति-वेषः—मिथ्या तरुणी के रूप में प्रकट होकर; मोहयन्—मोहते हुए; यः—जो; सुर-अरीन्—देवताओं के शत्रुओं को; तम्—उसको; अहम्—मैं; उपसृतानाम्—भक्तों का; काम-पूरम्—समस्त इच्छाओं को पूरा करने वाला; नतः अस्मि—मैं नमस्कार करता हूँ।

एक तरुण स्त्री का रूप धारण करके तथा इस प्रकार असुरों को मोहित करके भगवान् ने अपने भक्तों अर्थात् देवताओं को क्षीरसागर के मन्थन से उत्पन्न अमृत बाँट दिया। मैं उन भगवान् को जो अपने भक्तों की इच्छाओं को सदा पूरा करते हैं अपना सादर नमस्कार अर्पित करता हूँ।

तात्पर्य : क्षीरसागर के मन्थन सम्बन्धी इस कथा का उपदेश भगवान् द्वारा स्पष्टत: वर्णन किया गया है। यद्यपि वे सब पर समभाव रखते हैं, किन्तु स्वाभाविक स्नेह के कारण वे अपने भक्तों का पक्ष लेते हैं। भगवान् *भगवद्गीता* (९.२९) में कहते हैं—

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रिय: ।

ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥

''मैं न तो किसी से ईर्ष्या करता हूँ, न किसी का पक्षपात करता हूँ। मैं तो सबके लिए समान हूँ। किन्तु जो भक्तिपूर्वक मेरी सेवा करता है, वह मेरा मित्र है, वह मुझमें है और मैं भी उसका मित्र हूँ।'' भगवान् का यह पक्षपात स्वाभाविक है। कोई भी व्यक्ति अपने बच्चों की परवाह पक्षपात के कारण नहीं करता अपितु प्रेम के आदान-प्रदान के कारण करता है। बच्चे पिता के स्नेह पर आश्रित रहते हैं और पिता स्नेह से बच्चों का पालन करता है। इसी प्रकार चूँकि भक्त भगवान् के चरणकमलों के अतिरिक्त और कुछ मी नहीं जानते अतएव भगवान् अपने भक्तों की रक्षा करने तथा उनकी इच्छाओं को पूरा करने के लिए सदैव तैयार रहते हैं। अतएव वे कहते हैं—*कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्त: प्रणश्यति*—हे कुन्तीपुत्र! निर्भीक होकर घोषणा कर दो कि मेरा भक्त कभी विनष्ट नहीं होता है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कन्ध के अन्तर्गत ''मोहिनी-मूर्ति अवतार पर शिवजी का मोहित होना'' नामक बारहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter तेरह

भावी मनुओं का वर्णन

चौदह मनुओं में से छह मनुओं का वर्णन पहले हो चुका है। अब इस अध्याय में सातवें से चौदहवें मनुओं का एक-एक करके वर्णन किया जायेगा।

सातवाँ मनु विवस्वान का पुत्र है और श्राद्धदेव कहलाता है। उसके दस पुत्र हैं—इक्ष्वाकु, नभग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, दिष्ट, तरूष, पृषध्र तथा वसुमान। इस मन्वन्तर के देवता हैं—आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, विश्वेदेवा, मरुत्गण, अश्विनीकुमार तथा ऋभुगण इत्यादि। स्वर्ग का राजा इन्द्र पुरन्दर के नाम से जाना जाता है और सप्तर्षि कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि

तथा भरद्वाज के नामों से विख्यात हैं। इस मन्वन्तर में भगवान् विष्णु कश्यप के पुत्र के रूप में अदिति के गर्भ से उत्पन्न होते हैं।

आठवें मन्वन्तर के मनु सावर्णि हैं। उनके पुत्र निर्मोक आदि हैं और देवताओं में सुतपा आदि हैं। विरोचन–पुत्र बलि इन्द्र हैं और गालव तथा परशुराम सप्तर्षियों में से हैं। इस मन्वन्तर में भगवान् देवगुह्य तथा सरस्वती के पुत्र सार्वभौम के रूप में जन्म लेते हैं।

नवें मन्वन्तर में दक्ष सावर्णि मनु हैं। उनके पुत्रों में भूतकेतु प्रमुख है और देवताओं में मारीचिगर्भ इत्यादि। इन्द्र का नाम अद्‌भुत है और सप्तर्षियों में हैं द्युतिमान। इस मन्वन्तर में आयुष्मान् तथा अम्बुधारा से जन्मा ऋषभ अवतार होता है।

दसवें मन्वन्तर के मनु ब्रह्मसावर्णि हैं। उनके पुत्रों में भूरिषेण प्रमुख है और सप्तर्षियों में हविष्मान तथा अन्य हैं। देवताओं में सुवासन–गण प्रधान हैं और शम्भु इन्द्र है। इस मन्वन्तर का अवतार विष्वक्सेन है, जो शम्भु का मित्र है और विश्वस्रष्टा नामक ब्राह्मण के घर में विशूची के गर्भ से उत्पन्न हुआ॥

ग्याहरवें मन्वन्तर में धर्मसावर्णि मनु हैं जिनके दस पुत्रों में सत्यधर्म प्रमुख है। देवताओं में विहंगम–गण तथा सप्तर्षियों में अरुण इत्यादि हैं। वैधृत इन्द्र था। इस मन्वन्तर में धर्मसेतु अवतार हुआ जो वैधृत तथा आर्यक से उत्पन्न हैं।

बारहवें मन्वन्तर में रुद्रसावर्णि मनु है जिनके पुत्रों में देववान प्रमुख है। देवताओं में हरितगण इत्यादि है, ऋतधामा इन्द्र है और सप्तर्षियों में तपोमूर्ति तथा अन्य हैं। इस मन्वन्तर का अवतार सुधामा या स्वधामा है, जो सुनृता के गर्भ से जन्म लेता है। उसके पिता का नाम सत्यसहा है।

तेरहवें मन्वन्तर के मनु देवसावर्णि हैं। उनके पुत्रों में चित्रसेन तथा देवताओं में सुकर्मा प्रमुख हैं। दिवस्पति इन्द्र है और निर्मोक सप्तर्षियों में से है। इस मन्वन्तर का अवतार योगेश्वर है, जिसके माता पिता बृहती तथा देवहोत्र हैं।

चौदहवें मन्वन्तर के मनु इन्द्रसावर्णि हैं। उनके पुत्रों के नाम उरु तथा गम्भीर हैं। पवित्रगण इत्यादि देवता, शुचि इन्द्र और अग्नि तथा बाहु इत्यादि सप्तर्षि हैं। इस मन्वन्तर का अवतार वृहद्‌भानु है, जो विताना के गर्भ से उत्पन्न है और सत्रायन का पुत्र है।

इन मनुओं का शासनकाल कुल मिलाकर एक हजार चतुर्युगों के तुल्य है अर्थात् ४३,००,००० गुना १,००० वर्ष का है।

श्रीशुक उवाच
मनुर्विवस्वतः पुत्रः श्राद्धदेव इति श्रुतः ।
सप्तमो वर्तमानो यस्तदपत्यानि मे शृणु ॥ १॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; मनुः—मनु; विवस्वतः—सूर्यदेव का; पुत्रः—पुत्र; श्राद्धदेवः—श्राद्धदेव; इति—इस प्रकार; श्रुतः—ज्ञात, विख्यात; सप्तमः—सातवाँ; वर्तमानः—इस समय; यः—जो; तत्—उसकी; अपत्यानि—सन्तानें; मे—मुझसे; शृणु—सुनो।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : वर्तमान मनु का नाम श्राद्धदेव है और वे सूर्यलोक के प्रधान देवता विवस्वान के पुत्र हैं। श्राद्धदेव सातवें मनु हैं। अब मैं उनके पुत्रों का वर्णन करता हूँ कृपा करके मुझसे सुने।

इक्ष्वाकुर्नभगश्चैव धृष्टः शर्यातिरेव च ।
नरिष्यन्तोऽथ नाभागः सप्तमो दिष्ट उच्यते ॥ २॥
तरूषश्च पृषध्रश्च दशमो वसुमान्स्मृतः ।
मनोर्वैवस्वतस्यैते दशपुत्राः परन्तप ॥ ३॥

शब्दार्थ

इक्ष्वाकुः—इक्ष्वाकु; नभगः—नभग; च—भी; एव—निस्सन्देह; धृष्टः—धृष्ट; शर्यातिः—शर्याति; एव—निश्चय ही; च—भी; नरिष्यन्तः—नरिष्यन्त; अथ—भी; नाभागः—नाभाग; सप्तमः—सातवाँ; दिष्टः—दिष्ट; उच्यते—विख्यात है; तरूषः च—तथा तरुष; पृषध्रः च—तथा पृषध्र; दशमः—दसवाँ; वसुमान्—वसुमान; स्मृतः—ज्ञात; मनोः—मनु के; वैवस्वतस्य—वैवस्वत; एते—ये सब; दश-पुत्राः—दस पुत्र; परन्तप—हे राजा।

हे राजा परीक्षित! मनु के दस पुत्रों में (प्रथम छः) इक्ष्वाकु, नभग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त तथा नाभाग हैं। सातवाँ पुत्र दिष्ट नाम से जाना जाता है। फिर तरूष तथा पृषध्र के नाम आते हैं और दसवाँ पुत्र वसुमान कहलाता है।

आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः ।
अश्विनावृभवो राजन्निन्द्रस्तेषां पुरन्दरः ॥ ४॥

शब्दार्थ

आदित्याः—आदित्यगण; वसवः—वसुगण; रुद्राः—रुद्रगण; विश्वेदेवाः—विश्वेदेवा; मरुत्-गणाः—तथा मरुतगण; अश्विनौ—दोनों अश्विनीकुमार; ऋभवः—ऋभुगण; राजन्—हे राजा; इन्द्रः—स्वर्ग का राजा; तेषाम्—उनमें से; पुरन्दरः—पुरन्दर।

हे राजा! इस मन्वन्तर में आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेवा, मरुतगण, दोनों भाई अश्विनीकुमार

तथा ऋभु देवता हैं। इनका प्रधान राजा (इन्द्र) पुरन्दर है।

कश्यपोऽत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वामित्रोऽथ गौतमः ।
जमदग्निर्भरद्वाज इति सप्तर्षयः स्मृताः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

कश्यपः—कश्यप; अत्रिः—अत्रि; वसिष्ठः—वसिष्ठ; च—तथा; विश्वामित्रः—विश्वामित्र; अथ—तथा; गौतमः—गौतम; जमदग्निः—जमदग्नि; भरद्वाजः—भरद्वाज; इति—इस प्रकार; सप्त-ऋषयः—सप्तर्षि; स्मृताः—विख्यात।

कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि तथा भरद्वाज सप्तर्षि कहलाते हैं।

अत्रापि भगवज्जन्म कश्यपाददितेरभूत् ।
आदित्यानामवरजो विष्णुर्वामनरूपधृक् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

अत्र—इस मनु के शासन में; अपि—निश्चय ही; भगवत्-जन्म—भगवान् का प्राकट्य; कश्यपात्—कश्यप मुनि से; अदितेः—माता अदिति के; अभूत्—सम्भव हुआ; आदित्यानाम्—आदित्यों में से; अवर-जः—सबसे छोटा; विष्णुः—साक्षात् विष्णु; वामन-रूप-धृक्—भगवान् वामन का रूप धारण करते हुए।

इस मन्वन्तर में भगवान् आदित्यों में सबसे छोटे, वामन के नाम से अवतरित हुए। उनके पिता कश्यप तथा माता अदिति थीं।

सङ्क्षेपतो मयोक्तानि सप्तमन्वन्तराणि ते ।
भविष्याण्यथ वक्ष्यामि विष्णोः शक्त्यान्वितानि च ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

सङ्क्षेपतः—संक्षेप में; मया—मेरे द्वारा; उक्तानि—बताये गये; सप्त—सात; मनु-अन्तराणि—मनुओं के परिवर्तन; ते—तुमको; भविष्याणि—भावी मनु; अथ—भी; वक्ष्यामि—कहूँगा; विष्णोः—विष्णु के; शक्त्या अन्वितानि—शक्ति सम्पन्न; च—भी।

मैंने तुमसे संक्षेप में सात मनुओं की स्थिति बतला दी है। अब मैं भगवान् विष्णु के अवतारों सहित भावी मनुओं का वर्णन करूँगा।

विवस्वतश्च द्वे जाये विश्वकर्मसुते उभे ।
संज्ञा छाया च राजेन्द्र ये प्रागभिहिते तव ॥ ॥

शब्दार्थ

विवस्वतः—विवस्वान की; च—भी; द्वे—दो; जाये—पत्नियाँ; विश्वकर्म-सुते—विश्वकर्मा की दो पुत्रियाँ; उभे—दोनों; संज्ञा—संज्ञा; छाया—छाया; च—तथा; राज-इन्द्र—हे राजा; ये—जो; प्राक्—पहले; अभिहिते—वर्णन किये गये; तव—तुमसे।

हे राजा! मैं तुमसे पहले ही (छठे स्कंध में) विश्वकर्मा की दो पुत्रियों का वर्णन कर चुका हूँ जिनके नाम संज्ञा तथा छाया थे, जो विवस्वान की प्रथम दो पत्नियाँ थीं।

तृतीयां वडवामेके तासां संज्ञासुतास्त्रयः ।
यमो यमी श्राद्धदेवश्छायायाश्च सुताञ्छृणु ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तृतीयाम्—तीसरी पत्नी; वडवाम्—वडवा को; एके—कुछ लोग; तासाम्—तीनों पत्नियों में से; संज्ञा-सुताः त्रयः—संज्ञा की तीन संतानें; यमः—एक पुत्र यम; यमी—पुत्री यमी; श्राद्धदेवः—दूसरा पुत्र श्राद्धदेव; छायायाः—छाया का; च—तथा; सुतान्—पुत्रों को; शृणु—सुनो।

ऐसा कहा जाता है कि सूर्यदेव के एक तीसरी पत्नी भी थी जिसका नाम वडवा था। इन तीनों पत्नियों में से संज्ञा के तीन संतानें हुईं—यम, यमी तथा श्राद्धदेव। अब मैं छाया की सन्तानों का वर्णन करूँगा।

सावर्णिस्तपती कन्या भार्या संवरणस्य या ।
शनैश्चरस्तृतीयोऽभूदश्विनौ वडवात्मजौ ॥ १० ॥

शब्दार्थ

सावर्णिः—सावर्णि; तपती—तपती; कन्या—पुत्री; भार्या—पत्नी; संवरणस्य—राजा संवरण की; या—जो; शनैश्चरः—शनैश्चर; तृतीयः—तीसरी सन्तान; अभूत्—जन्म लिया; अश्विनौ—दोनों अश्विनी कुमार; वडवा-आत्म-जौ—वडवा नामक पत्नी के पुत्र।

छाया के एक पुत्र सावर्णि तथा एक पुत्री तपती थी जो बाद में राजा संवरण की पत्नी बनी। छाया की तीसरी सन्तान शनैश्चर (शनि) कहलाई। वडवा ने दो पुत्रों को जन्म दिया जिनके नाम अश्विनी-बन्धु हैं।

अष्टमेऽन्तर आयाते सावर्णिर्भविता मनुः ।
निर्मोकविरजस्काद्याः सावर्णितनया नृप ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

अष्टमे—आठवें; अन्तरे—मन्वन्तर में; आयाते—आने पर; सावर्णिः—सावर्णि; भविता—हो जायेगा; मनुः—आठवाँ मनु; निर्मोक—निर्मोक; विरजस्क-आद्याः—विरजस्क इत्यादि; सावर्णि—सावर्णि के; तनयाः—पुत्र; नृप—हे राजा।

हे राजा! आठवें मनु का काल आने पर सावर्णि मनु बनेगा। निर्मोक, विरजस्क इत्यादि उसके पुत्र होंगे।

तात्पर्य : इस समय वैवस्वत मनु का शासन है। ज्योतिषगणना के अनुसार हम वैवस्वत मनु के अट्ठाइसवें युग में हैं। प्रत्येक मनु इकहत्तर युगों तक रहता है और ब्रह्माजी के एक दिन में ऐसे चौदह मनु शासन चलाते हैं। इस समय हम सातवें मनु वैवस्वत के युग में हैं और आठवाँ मनु लाखों वर्ष बाद

आयेगा। लेकिन शुकदेव मुनि ने अधिकारियों से सुन रखा था जिसके आधार पर वे भविष्यवाणी करते हैं कि आठवाँ मनु सावर्णि होगा और उसके पुत्रों में निर्मोक तथा विरजस्क होंगे। शास्त्र यह बता सकते हैं कि लाखों वर्ष बाद क्या होगा।

तत्र देवाः सुतपसो विरजा अमृतप्रभाः ।
तेषां विरोचनसुतो बलिरिन्द्रो भविष्यति ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

तत्र—उस मन्वन्तर में; देवाः—देवतागण; सुतपसः—सुतपा; विरजाः—विरजगण; अमृतप्रभाः—अमृत प्रभगण; तेषाम्—उनमें से; विरोचन-सुतः—विरोचन का पुत्र; बलिः—महाराज बलि; इन्द्रः—स्वर्ग का राजा; भविष्यति—होगा।

आठवें मन्वन्तर में सुतपा, विरज तथा अमृतप्रभगण देवता होंगे और विरोचन पुत्र बलि महाराज देवताओं के राजा इन्द्र होंगे।

दत्त्वेमां याचमानाय विष्णवे यः पदत्रयम् ।
राद्धमिन्द्रपदं हित्वा ततः सिद्धिमवाप्स्यति ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

दत्त्वा—दान में देकर; इमाम्—इस समग्र ब्रह्माण्ड को; याचमानाय—उससे याचना करने वाले; विष्णवे—भगवान् विष्णु को; यः—बलि महाराज; पद-त्रयम्—तीन पग भूमि; राद्धम्—प्राप्त किया; इन्द्र-पदम्—इन्द्र का स्थान; हित्वा—त्यागकर; ततः—तत्पश्चात्; सिद्धिम्—सिद्धि; अवाप्स्यति—प्राप्त करेगा।

बलि महाराज ने भगवान् विष्णु को तीन पग भूमि दान में दी जिसके कारण उन्हें तीनों लोक खोने पड़े। किन्तु बाद में बलि द्वारा सर्वस्व दान दे दिये जाने पर जब भगवान् विष्णु प्रसन्न हुए तो बलि महाराज को जीवन की सिद्धि प्राप्त हो जाएगी।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (७.३) में कहा गया है—*मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चित् यतति सिद्धये*—लाखों लोगों में से कोई एक जीवन सिद्धि के लिए प्रयास करता है। यहाँ पर इस सिद्धि का वर्णन है। *राद्धमिन्द्रपदं हित्वा ततः सिद्धिमवाप्स्यति। सिद्धि* तो भगवान् विष्णु की कृपा प्राप्त करने में है, *योगसिद्धियों* में नहीं। *योगसिद्धियाँ—अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व* तथा *कामावसायिता*—क्षणिक हैं। चरमसिद्धि तो भगवान् विष्णु की कृपा प्राप्त करना है।

योऽसौ भगवता बद्धः प्रीतेन सुतले पुनः ।
निवेशितोऽधिके स्वर्गादधुनास्ते स्वराडिव ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

यः—बलि महाराज; असौ—वही; भगवता—भगवान् द्वारा; बद्धः—बाँधा जाकर; प्रीतेन—प्रेम के कारण; सुतले—सुतललोक में; पुनः—फिर; निवेशितः—स्थित; अधिके—अधिक ऐश्वर्यवान्; स्वर्गात्—स्वर्ग की अपेक्षा; अधुना—इस समय; आस्ते—स्थित हैं; स्व-राट् इव—इन्द्र के पद के समान।

भगवान् ने प्रेमपूर्वक बलि को बाँध लिया और फिर उन्हें सुतल राज्य में अधिष्ठित किया जो स्वर्गलोक की अपेक्षा अधिक ऐश्वर्यशाली है। इस समय बलि महाराज उसी लोक में रहते हैं और इन्द्र की अपेक्षा अधिक सुखी हैं।

गालवो दीप्तिमान्रामो द्रोणपुत्रः कृपस्तथा ।
ऋष्यशृङ्गः पितास्माकं भगवान्बादरायणः ॥ १५॥
इमे सप्तर्षयस्तत्र भविष्यन्ति स्वयोगतः ।
इदानीमासते राजन्स्वे स्व आश्रममण्डले ॥ १६॥

शब्दार्थ

गालवः—गालव; दीप्तिमान्—दीप्तिमान; रामः—परशुराम; द्रोण-पुत्रः—द्रोणाचार्य का पुत्र अश्वत्थामा; कृपः—कृपाचार्य; तथा—और; ऋष्यशृङ्गः—ऋष्यशृंग; पिता अस्माकम्—हमारे पिता; भगवान्—भगवान् के अवतार; बादरायणः—व्यासदेव; इमे—ये सब; सप्त-ऋषयः—सप्तर्षि; तत्र—उस मन्वन्तर में; भविष्यन्ति—होंगे; स्व-योगतः—भगवान् के प्रति सेवा के परिणामस्वरुप; इदानीम्—इस समय; आसते—वे सब विद्यमान हैं; राजन्—हे राजा; स्वे स्वे—अपने-अपने; आश्रम-मण्डले—विभिन्न आश्रमों में।

हे राजा! आठवें मन्वन्तर में गालव, दीप्तिमान, परशुराम, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, ऋष्यशृंग तथा हमारे पिता व्यासदेव, जो नारायण के अवतार हैं, सप्तर्षि होंगे। इस समय वे सब अपने-अपने आश्रमों में निवास कर रहे हैं।

देवगुह्यात्सरस्वत्यां सार्वभौम इति प्रभुः ।
स्थानं पुरन्दराद्धृत्वा बलये दास्यतीश्वरः ॥ १७॥

शब्दार्थ

देवगुह्यात्—अपने पिता देवगुह्य से; सरस्वत्याम्—सरस्वती के गर्भ में; सार्वभौमः—सार्वभौम; इति—इस प्रकार; प्रभुः—स्वामी; स्थानम्—स्थान; पुरन्दरात्—इन्द्र से; हृत्वा—बलपूर्वक छीने जाने पर; बलये—बलि महाराज को; दास्यति—देगा; ईश्वरः—स्वामी।

आठवें मन्वन्तर में अत्यन्त शक्तिशाली भगवान् सार्वभौम जन्म ग्रहण करेंगे। उनके पिता होंगे देवगुह्य और माता होंगी सरस्वती। वे पुरन्दर (इन्द्र) से राज्य छीन कर उसे बलि महाराज को देंगे।

नवमो दक्षसावर्णिर्मनुर्वरुणसम्भवः ।

भूतकेतुर्दीप्तकेतुरित्याद्यास्तत्सुता नृप ॥ १ ॥

शब्दार्थ

नवमः—नौवाँ; दक्ष-सावर्णिः—दक्षसावर्णि; मनुः—मनु; वरुण-सम्भवः—वरुण के पुत्र रूप में; भूतकेतुः—भूतकेतु; दीप्तकेतुः—दीप्तकेतु; इति—इस प्रकार; आद्याः—इत्यादि; तत्—उसके; सुताः—पुत्र; नृप—हे राजा।

हे राजा! नौवाँ मनु दक्षसावर्णि होगा जो वरुण का पुत्र होगा। भूतकेतु, दीप्तकेतु इत्यादि उसके पुत्र होंगे।

पारामरीचिगर्भाद्या देवा इन्द्रोऽद्भुतः स्मृतः ।
द्युतिमत्प्रमुखास्तत्र भविष्यन्त्यृषयस्ततः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

पारा—पारगण; मरीचिगर्भ—मरीचिगर्भगण; आद्याः—आदि; देवाः—देवतागण; इन्द्रः—स्वर्ग का राजा; अद्भुतः—अद्भुत; स्मृतः—ज्ञात; द्युतिमत्—द्युतिमान; प्रमुखाः—आदि; तत्र—उस नवें मन्वन्तर में; भविष्यन्ति—होंगे; ऋषयः—सप्तर्षि; ततः—तब।

नवें मन्वन्तर में पार तथा मरीचिगर्भ इत्यादि देवता रहेंगे। स्वर्ग के राजा इन्द्र का नाम होगा अद्भुत और द्युतिमान सप्तर्षियों में से एक होगा।

आयुष्मतोऽम्बुधारायामृषभो भगवत्कला ।
भविता येन संराद्धां त्रिलोकीं भोक्ष्यतेऽद्भुतः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

आयुष्मतः—पिता आयुष्मान का; अम्बुधारायाम्—माता अम्बुधारा के गर्भ में; ऋषभः—ऋषभ; भगवत्-कला—भगवान् का अंशावतार; भविता—होगा; येन—जिससे; संराद्धाम्—सर्वशक्तिमान; त्रि-लोकीम्—तीनों लोकों को; भोक्ष्यते—भोग करेगा; अद्भुतः—अद्भुत नामक इन्द्र।

भगवान् के अंशावतार ऋषभदेव अपने पिता आयुष्मान तथा माता अम्बुधारा से जन्म लेंगे। वे अद्भुत नामक इन्द्र को तीनों लोकों का ऐश्वर्य भोगने के योग्य बनायेंगे।

दशमो ब्रह्मसावर्णिरुपश्लोकसुतो मनुः ।
तत्सुता भूरिषेणाद्या हविष्मत्प्रमुखा द्विजाः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

दशमः—दसवें मनु; ब्रह्म-सावर्णिः—ब्रह्मसावर्णि; उपश्लोक-सुतः—उपश्लोक का पुत्र; मनुः—मनु होगा; तत्-सुताः—उसके पुत्र; भूरिषेण-आद्याः—भूरिषेण इत्यादि; हविष्मत्—हविष्मान; प्रमुखाः—प्रमुख; द्विजाः—सात ऋषि।

उपश्लोक का पुत्र ब्रह्मसावर्णि दसवाँ मनु होगा। भूरिषेण उसके पुत्रों में एक होगा और हविष्मान इत्यादि ब्राह्मण सप्तर्षि होंगे।

हविष्मान्सुकृतः सत्यो जयो मूर्तिस्तदा द्विजाः ।
सुवासनविरुद्धाद्या देवाः शम्भुः सुरेश्वरः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

हविष्मान्—हविष्मान; सुकृतः—सुकृत; सत्यः—सत्य; जयः—जय; मूर्तिः—मूर्ति; तदा—उस समय; द्विजाः—सप्तर्षि; सुवासन—सुवासन-गण; विरुद्ध—विरुद्ध-गण; आद्याः—इत्यादि; देवाः—देवता; शम्भुः—शम्भु; सुर-ईश्वरः—देवताओं का राजा इन्द्र।

हविष्मान, सुकृत, सत्य, जय, मूर्ति इत्यादि सप्तर्षि होंगे; सुवासन-गण तथा विरुद्धगण देवता होंगे और शम्भु उन सबका राजा इन्द्र होगा।

विष्वक्सेनो विषूच्यां तु शम्भोः सख्यं करिष्यति ।
जातः स्वांशेन भगवान्गृहे विश्वसृजो विभुः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

विष्वक्सेनः—विष्वक्सेन; विषूच्याम्—विषूची के गर्भ में; तु—तब; शम्भोः—शम्भु को; सख्यम्—मित्रता; करिष्यति—करेगा; जातः—उत्पन्न होकर; स्व-अंशेन—अपने अंश से; भगवान्—भगवान्; गृहे—घर में; विश्वसृजः—विश्वसृष्टा का; विभुः—अत्यन्त शक्तिशाली भगवान्।

विश्वसृष्टा के घर में विषूची के गर्भ से भगवान् के स्वांश विष्वक्सेन के रूप में भगवान् अवतरित होंगे। वे शम्भु से मैत्री स्थापित करेंगे।

मनुर्वै धर्मसावर्णिरेकादशम आत्मवान् ।
अनागतास्तत्सुताश्च सत्यधर्मादयो दश ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

मनुः—मनु; वै—निस्सन्देह; धर्म-सावर्णिः—धर्मसावर्णि; एकादशमः—ग्यारहवाँ; आत्मवान्—इन्द्रियों को वश में करने वाला; अनागताः—भविष्य में होंगे; तत्—उसके; सुताः—पुत्र; च—तथा; सत्यधर्म-आदयः—सत्यधर्म तथा अन्य; दश—दस।

ग्याहरवें मन्वन्तर में धर्मसावर्णि मनु होंगे जो अध्यात्म ज्ञान के अत्यन्त विद्वान होंगे। उनके दस पुत्र होंगे जिनमें सत्यधर्म प्रमुख होगा।

विहङ्गमाः कामगमा निर्वाणरुचयः सुराः ।
इन्द्रश्च वैधृतस्तेषामृषयश्चारुणादयः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

विहङ्गमाः—विहङ्गमगण; कामगमाः—कामगम-गण; निर्वाणरुचयः—निर्वाणरुचिगण; सुराः—देवता; इन्द्रः—इन्द्र; च—भी; वैधृतः—वैधृत; तेषाम्—उनमें से; ऋषयः—सप्तर्षि; च—भी; अरुण-आदयः—अरुण इत्यादि।

विहंगम, कामगम, निर्वाणरुचि इत्यादि देवता होंगे। वैधृत देवताओं का राजा इन्द्र होगा और अरुण इत्यादि सप्तर्षि होंगे।

आर्यकस्य सुतस्तत्र धर्मसेतुरिति स्मृतः ।
वैधृतायां हरेरंशस्त्रिलोकीं धारयिष्यति ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

आर्यकस्य—आर्यक का; सुतः—पुत्र; तत्र—उस ग्याहरवें मन्वन्तर में; धर्मसेतुः—धर्मसेतु; इति—इस प्रकार; स्मृतः—विख्यात; वैधृतायाम्—माता वैधृता से; हरेः—भगवान् के; अंशः—अंशावतार; त्रि-लोकीम्—तीनों लोकों पर; धारयिष्यति—शासन चलायेगा।

आर्यक का पुत्र धर्मसेतु आर्यक की पत्नी वैधृता की कोख से भगवान् के अंशावतार के रूप में जन्म लेगा और तीनों लोकों में शासन करेगा।

भविता रुद्रसावर्णी राजन्द्वादशमो मनुः ।
देववानुपदेवश्च देवश्रेष्ठादयः सुताः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

भविता—होगा; रुद्र-सावर्णिः—रुद्र सावर्णि; राजन्—हे राजा; द्वादशमः—बारहवाँ; मनुः—मनु; देववान्—देववान; उपदेवः—उपदेव; च—तथा; देवश्रेष्ठ—देवश्रेष्ठ; आदयः—इत्यादि; सुताः—मनु के पुत्र।

हे राजा! बारहवाँ मनु रुद्रसावर्णि कहलायेगा। देववान, उपदेव तथा देवश्रेष्ठ उसके पुत्र होंगे।

ऋतधामा च तत्रेन्द्रो देवाश्च हरितादयः ।
ऋषयश्च तपोमूर्तिस्तपस्व्याग्नीध्रकादयः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

ऋतधामा—ऋतधामा; च—भी; तत्र—उस काल में; इन्द्रः—स्वर्ग का राजा; देवाः—देवता; च—तथा; हरित-आदयः—हरित इत्यादि; ऋषयः च—तथा सप्तर्षि; तपोमूर्तिः—तपोमूर्ति; तपस्वी—तपस्वी; आग्नीध्रक—आग्नीध्रक; आदयः—इत्यादि।

इस मन्वन्तर में ऋतधामा इन्द्र होगा और हरित इत्यादि देवता होंगे। तपोमूर्ति, तपस्वी तथा आग्नीध्रक सप्तर्षि होंगे।

स्वधामाख्यो हरेरंशः साधयिष्यति तन्मनोः ।
अन्तरं सत्यसहसः सुनृतायाः सुतो विभुः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

स्वधामा-आख्यः—स्वधामा नामक; हरेः अंशः—भगवान् का अंश अवतार; साधयिष्यति—शासन करेगा; तत्-मनोः—उस मनु के; अन्तरम्—मन्वन्तर; सत्यसहसः—सत्यसहा का; सुनृतायाः—सुनृता का; सुतः—पुत्र; विभुः—अत्यन्त शक्तिशाली।

माता सुनृता तथा पिता सत्यसहा से भगवान् का अंशावतार स्वधामा उत्पन्न होगा। वह उस मन्वन्तर में शासन करेगा।

मनुस्त्रयोदशो भाव्यो देवसावर्णिरात्मवान् ।
चित्रसेनविचित्राद्या देवसावर्णिदेहजाः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

मनुः—मनु; त्रयोदशः—तेरहवाँ; भाव्यः—होगा; देव-सावर्णिः—देवसावर्णि; आत्मवान्—आध्यात्मिक ज्ञान में उन्नत; चित्रसेन—चित्रसेन; विचित्र-आद्याः—तथा विचित्र इत्यादि; देव-सावर्णि—देवसावर्णि के; देह-जाः—पुत्र।

तेरहवें मनु का नाम देवसावर्णि होगा और वह आध्यात्मिक ज्ञान में काफी बढ़ा-चढ़ा होगा। चित्रसेन तथा विचित्र उसके पुत्रों में से होंगे।

देवाः सुकर्मसुत्रामसंज्ञा इन्द्रो दिवस्पतिः ।
निर्मोकतत्त्वदर्शाद्या भविष्यन्त्यृषयस्तदा ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

देवाः—देवतागण; सुकर्म—सुकर्मा-गण; सुत्राम-संज्ञाः—तथा सुत्राम नामक; इन्द्रः—इन्द्र; दिवस्पतिः—दिवस्पति; निर्मोक—निर्मोक; तत्त्वदर्श-आद्याः—तत्त्वदर्श इत्यादि; भविष्यन्ति—होंगे; ऋषयः—सप्तर्षि; तदा—उस समय।

तेरहवें मन्वन्तर में सुकर्मा तथा सुत्रामा इत्यादि देवता होंगे, दिवस्पति स्वर्ग का राजा इन्द्र होगा और निर्मोक तथा तत्त्वदर्श सप्तर्षि होंगे।

देवहोत्रस्य तनय उपहर्ता दिवस्पतेः ।
योगेश्वरो हरेरंशो बृहत्यां सम्भविष्यति ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

देवहोत्रस्य—देवहोत्र का; तनयः—पुत्र; उपहर्ता—उपकार करने वाला; दिवस्पतेः—दिवस्पति अर्थात् उस काल के इन्द्र का; योग-ईश्वरः—योगशक्ति का स्वामी, योगेश्वर; हरेः अंशः—भगवान् का अंशावतार; बृहत्याम्—अपनी माता बृहती के गर्भ में; सम्भविष्यति—प्रकट होगा।

देवहोत्र का पुत्र योगेश्वर भगवान् के अंशावतार रूप में प्रकट होगा। उसकी माता का नाम बृहती होगा। वह दिवस्पति के कल्याणार्थ कार्य करेगा।

मनुर्वा इन्द्रसावर्णिश्चतुर्दशम एष्यति ।
उरुगम्भीरबुधाद्या इन्द्रसावर्णिवीर्यजाः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

मनुः—मनु; वा—या; इन्द्र-सावर्णिः—इन्द्रसावर्णि; चतुर्दशमः—चौदहवाँ; एष्यति—बनेगा; उरु—उरु; गम्भीर—गम्भीर; बुध-आद्याः—बुध इत्यादि; इन्द्र-सावर्णि—इन्द्रसावर्णि के; वीर्य-जाः—वीर्य से उत्पन्न।

चौदहवें मनु का नाम इन्द्रसावर्णि होगा। उसके पुत्रों के नाम उरु, गम्भीर तथा बुध होंगे।

पवित्राश्चाक्षुषा देवाः शुचिरिन्द्रो भविष्यति ।

अग्निर्बाहुः शुचिः शुद्धो मागधाद्यास्तपस्विनः ॥ ३४॥

शब्दार्थ

पवित्राः—पवित्रगण; चाक्षुषाः—चाक्षुषगण; देवाः—देवता; शुचिः—शुचि; इन्द्रः—स्वर्ग का राजा; भविष्यति—होगा; अग्निः—अग्नि; बाहुः—बाहु; शुचिः—शुचि; शुद्धः—शुद्ध; मागध—मागध; आद्याः—इत्यादि; तपस्विनः—तपस्वी मुनि।

पवित्रगण तथा चाक्षुषगण इत्यादि देवता होंगे और शुचि इन्द्र होगा। अग्नि, बाहु, शुचि, शुद्ध, मागध तथा अन्य तपस्वी सप्तर्षि होंगे।

सत्रायणस्य तनयो बृहद्भानुस्तदा हरिः ।
वितानायां महाराज क्रियातन्तून्वितायिता ॥ ३५॥

शब्दार्थ

सत्रायणस्य—सत्रायण का; तनयः—पुत्र; बृहद्भानुः—बृहद्भानु; तदा—उस काल में; हरिः—भगवान्; वितानायाम्—विताना के गर्भ से; महा-राज—हे राजा; क्रिया-तन्तून्—सारे आध्यात्मिक कार्यकलाप; वितायिता—सम्पन्न करेंगे।

हे राजा परीक्षित! चौदहवें मन्वन्तर में भगवान् विताना के गर्भ से प्रकट होंगे और उनके पिता का नाम सत्रायण होगा। यह अवतार बृहद्भानु के नाम से विख्यात होगा और वह आध्यात्मिक कार्यकलाप करेगा।

राजंश्चतुर्दशैतानि त्रिकालानुगतानि ते ।
प्रोक्तान्येभिर्मितः कल्पो युगसाहस्रपर्ययः ॥ ३६॥

शब्दार्थ

राजन्—हे राजा; चतुर्दश—चौदह; एतानि—ये सब; त्रि-काल—तीनों काल (भूत, वर्तमान, भविष्य); अनुगतानि—फैले हुए; ते—तुमसे; प्रोक्तानि—वर्णन किए गए; एभिः—इनके द्वारा; मितः—अनुमानित; कल्पः—ब्रह्मा का एक दिन; युग-साहस्र—चारों युगों के एक हजार चक्र; पर्ययः—से युक्त।

हे राजा! मैंने अभी तुमसे भूत, वर्तमान तथा भविष्य में हुए अथवा होने वाले चौदहों मनुओं का वर्णन किया। ये मनु कुल मिलाकर जितने समय तक शासन करते हैं वह एक हजार युग चक्र है। यह कल्प या ब्रह्माजी का एक दिन कहलाता है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कंध के "भावी मनुओं का वर्णन" नामक तेरहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter चौदह

विश्व व्यवस्था की पद्धति

इस अध्याय में मनु के लिए भगवान् द्वारा नियत कर्तव्यों का वर्णन हुआ है। सारे मनु तथा उन

सबके पुत्र, ऋषि, देवता और इन्द्र भी भगवान् के विभिन्न अवतारों के आदेशों के अनुसार कार्य करते हैं। प्रत्येक चतुर्युग में सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग तथा कलियुग आते हैं और प्रत्येक चतुर्युग के अन्त में भगवान् के आदेशानुसार कर्म करने वाले ऋषिगण वैदिक ज्ञान का वितरण करके शाश्वत धार्मिक नियमों की पुन:स्थापना करते हैं। मनु का कर्तव्य धर्म की पद्धति को पुन:स्थापित करना है। मनु के पुत्र उसके आदेशों का पालन करते हैं और इस प्रकार सारा विश्व मनु तथा उसकी सन्तानों द्वारा पालित होता है। इन्द्रगण स्वर्गलोकों के विभिन्न शासक हैं। वे देवताओं की सहायता से तीनों लोकों पर शासन चलाते हैं। भगवान् भी विभिन्न युगों में अवतार के रूप में प्रकट होते हैं। वे सनक, सनातन, याज्ञवल्क्य, दत्तात्रेय तथा अन्यों के रूप में प्रकट होते हैं और आध्यात्मिक ज्ञान, कर्तव्य, योग वे सिद्धान्तों इत्यादि के विषय में उपदेश देते हैं। वे मरीचि इत्यादि के रूप में सन्तानें उत्पन्न करते हैं; राजा के रूप में वे दुष्टों को दण्ड देते हैं और काल के रूप में वे सृष्टि का संहार करते हैं। कोई तर्क कर सकता है कि, ''यदि सर्वशक्तिमान भगवान् मात्र अपनी इच्छा से ही सब कुछ कर सकते हैं, तो फिर उन्होंने इतने महापुरुषों को व्यवस्था का भार क्यों दे रखा है?'' जो लोग माया के वश में हैं, वे यह नहीं समझ सकते हैं कि भगवान् किस तरह और क्यों ऐसा करते हैं।

श्रीराजोवाच
मन्वन्तरेषु भगवन्यथा मन्वादयस्त्विमे ।
यस्मिन्कर्मणि ये येन नियुक्तास्तद्वदस्व मे ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा परीक्षित ने कहा; मन्वन्तरेषु—प्रत्येक मन्वन्तर में; भगवन्—हे महर्षि; यथा—जिस तरह; मनु-आदय:—मनु इत्यादि; तु—लेकिन; इमे—ये; यस्मिन्—जिसमें; कर्मणि—कार्यकलाप; ये—जो लोग; येन—जिसके द्वारा; नियुक्ता:—नियुक्त किये गये; तत्—वह; वदस्व—कृपया वर्णन करें; मे—मुझसे।

महाराज परीक्षित ने जिज्ञासा की : हे परम ऐश्वर्यशाली शुकदेव गोस्वामी! कृपा करके मुझे बतायें कि प्रत्येक मन्वन्तर में मनु तथा अन्य लोग किस तरह अपने-अपने कर्तव्यों में लगे रहते हैं और वे किसके आदेश से ऐसा करते हैं।

श्रीऋषिरुवाच
मनवो मनुपुत्राश्च मुनयश्च महीपते ।
इन्द्रा: सुरगणाश्चैव सर्वे पुरुषशासना: ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-ऋषिः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; मनवः—सारे मनु; मनु-पुत्राः—मनु के पुत्र; च—तथा; मुनयः—सारे ऋषि; च—तथा; मही-पते—हे राजा; इन्द्राः—सारे इन्द्र; सुर-गणाः—सारे देवता; च—तथा; एव—निश्चय ही; सर्वे—वे सभी; पुरुष-शासनाः—परम पुरुष के शासन के अन्तर्गत।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा! सारे मनु, मनु के पुत्र, ऋषि, इन्द्र तथा देवता भगवान् के यज्ञ जैसे विविध अवतारों में नियुक्त किये जाते हैं।

यज्ञादयो याः कथिताः पौरुष्यस्तनवो नृप ।
मन्वादयो जगद्यात्रां नयन्त्याभिः प्रचोदिताः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

यज्ञ-आदयः—भगवान् का अवतार, जो यज्ञ आदि कहलाता है; याः—जो; कथिताः—पहले कहे जा चुके हैं; पौरुष्यः—परम पुरुष के; तनवः—अवतार; नृप—हे राजा; मनु-आदयः—मनु तथा अन्य; जगत्-यात्राम्—विश्व के कार्य; नयन्ति—संचालित करते हैं; आभिः—अवतारों द्वारा; प्रचोदिताः—प्रेरित होकर।

हे राजा! मैं आपसे पहले ही भगवान् के विभिन्न अवतारों का वर्णन कर चुका हूँ—यथा यज्ञ अवतार का। यही अवतार मनुओं तथा अन्यों का चुनाव करते हैं और उन्हीं के आदेश पर वे विश्व-व्यवस्था का संचालन करते हैं।

तात्पर्य : सारे मनु भगवान् के विविध अवतारों के आदेशों का पालन करते हैं।

चतुर्युगान्ते कालेन ग्रस्ताञ्छ्रुतिगणान्यथा ।
तपसा ऋषयोऽपश्यन्यतो धर्मः सनातनः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

चतुः-युग-अन्ते—प्रत्येक चार युगों (सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग) के अन्त में; कालेन—समय बीतने पर; ग्रस्तान्—विनष्ट; श्रुति-गणान्—वैदिक उपदेश; यथा—जिस तरह; तपसा—तपस्या से; ऋषयः—ऋषिगण; अपश्यन्—दुरुपयोग देखकर; यतः—जहाँ से; धर्मः—वृत्तिपरक कार्य; सनातनः—शाश्वत।

प्रत्येक चार युगों के अन्त में महान् सन्तपुरुष जब यह देखते हैं कि मानव के शाश्वत वृत्तिपरक कर्तव्यों का दुरुपयोग हुआ है, तो वे धर्म के सिद्धान्तों की पुनःस्थापना करते हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक में *धर्म* तथा *सनातन* ये दो शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। *सनातन* का अर्थ है "शाश्वत" और *धर्म* का अर्थ है "वृत्तिपरक कर्तव्य।" सतयुग से कलियुग आते-आते धर्म तथा वृत्तिपरक कर्तव्य में क्रमशः ह्रास आता जाता है। सतयुग में धर्म का पूरी तरह पालन होता है। किन्तु त्रेता में धर्म की कुछ-कुछ उपेक्षा होती है और केवल तीन-चौथाई धार्मिक कर्तव्य चालू रह पाते हैं। द्वापर में केवल आधा धर्म रह जाता है और कलियुग में केवल एक चौथाई धर्म रहता है, जो क्रमशः

लुप्त हो जाता है। कलियुग के अन्त में धर्म या मानव के वृत्तिपरक कर्तव्य प्राय: विनष्ट हो जाते हैं। निस्सन्देह, हम इस कलियुग में केवल पाँच हजार वर्ष भीतर प्रविष्ट हुए हैं फिर भी सनातन धर्म का ह्रास अत्यन्त मुखर है। अतएव ऋषियों का कर्तव्य है कि वे *सनातन धर्म* के हित के बारे में गम्भीरता से सोचें और इसे समस्त मानव समाज के लाभ के लिए पुन:स्थापित करने का प्रयास करें। कृष्णभावनामृत आन्दोलन इसी सिद्धान्त के अनुसार प्रारम्भ किया गया है। जैसा कि *श्रीमद्भागवत* (१२.३.५१) में कहा गया है—

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुण: ।

कीर्तनाद् एव कृष्णस्य मुक्तसङ्ग: परं व्रजेत् ॥

समग्र कलियुग दोषों से पूर्ण है। यह दोषों के असीम समुद्र की भाँति है, किन्तु कृष्णभावनामृत आन्दोलन अत्यन्त प्रामाणिक है। अतएव श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणचिह्नों का अनुगमन करते हुए उनके आदेशों के अनुसार हम इस कृष्ण-कीर्तन के आन्दोलन को विश्वभर में जारी रखने का प्रयास कर रहे हैं जिसका उद्घाटन आज से पाँच सौ वर्ष पूर्व श्री चैतन्य ने संकीर्तन आन्दोलन, *कृष्णकीर्तन,* का उन्होंने किया था। अब यदि इस आन्दोलन के उद्घाटक विधि-विधानों का दृढ़ता से पालन करें और सारे मानव समाज के लाभ के लिए इस आन्दोलन का प्रसार करें तो वे सनातन धर्म की पुन:स्थापना करते हुए नवीन जीवनशैली का सूत्रपात करेंगे। मनुष्य का सनातन धर्म है कृष्ण की सेवा करना। *जीवेर 'स्वरूप' हय—कृष्णेर नित्य दास। सनातन धर्म* का यही सारांश है। *सनातन* का अर्थ है नित्य या शाश्वत और *कृष्ण-दास* का अर्थ है "कृष्ण का दास।" मनुष्य का शाश्वत वृत्तिपरक कर्तव्य कृष्ण की सेवा करना है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन का यही सार है।

ततो धर्मं चतुष्पादं मनवो हरिणोदिता: ।
युक्ता: सञ्चारयन्त्यद्धा स्वे स्वे काले महीं नृप ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

तत:—तत्पश्चात् (कलियुग के अन्त में); धर्मम्—धर्म; चतु:-पादम्—चार भागों में; मनव:—सारे मनु; हरिणा—भगवान् द्वारा; उदिता:—उपदिष्ट; युक्ता:—लगे हुए; सञ्चारयन्ति—पुनर्स्थापना करते हैं; अद्धा—प्रत्यक्ष; स्वे स्वे—अपने-अपने; काले—समय में; महीम्—इस जगत में; नृप—हे राजा।.

हे राजा! तत्पश्चात् भगवान् के आदेशानुसार व्यस्त होकर सारे मनु चारों अंशों में धर्म की साक्षात् पुनर्स्थापना करते हैं।

तात्पर्य : धर्म की पूरी स्थापना चारों अंशों (चरणों) में जिस तरह की जा सकती है उसकी व्याख्या *भगवद्गीता* में दी गई है। *भगवद्गीता* (४.१) में भगवान् कहते हैं—

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।

विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्॥

"मैंने इस सनातन अविनाशकारी योगविद्या का उपदेश सूर्यदेव विवस्वान को दिया और उसने इसे मानव जाति के पिता मनु को दिया। मनु ने आगे इसे इक्ष्वाकु को दिया।" परम्परा विधि यही है। इसी विधि का पालन करते हुए कृष्णभावनामृत आन्दोलन सारे विश्व में *भगवद्गीता* यथारूप के सिद्धान्तों की शिक्षा, बिना किसी फेर बदल के देता, है। यदि आज के भाग्यशाली लोग भगवान् कृष्ण के उपदेशों को स्वीकार कर लें तो वे निश्चय ही श्री चैतन्य महाप्रभु का संदेश प्रसारित करने में प्रसन्नता का अनुभव करेंगे। श्री चैतन्य महाप्रभु चाहते थे कि कम से कम भारत के सभी लोग इस उद्देश्य के उपदेशक बन जायें। दूसरे शब्दों में, मनुष्य को चाहिए कि वह गुरु बनकर मानवता की शान्ति तथा समृद्धि के लिए भगवान् के उपदेशों का प्रचार सारे विश्व में करे।

पालयन्ति प्रजापाला यावदन्तं विभागशः ।
यज्ञभागभुजो देवा ये च तत्रान्विताश्च तैः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

पालयन्ति—आदेश पूरा करते हैं; प्रजा-पालाः—विश्व के शासक, अर्थात् मनु के पुत्र तथा पौत्र; यावत् अन्तम्—मनु के शासन के अन्त तक; विभागशः—विभागों में; यज्ञ-भाग-भुजः—यज्ञों के फल के भोक्ता; देवाः—देवतागण; ये—अन्य; च—भी; तत्र अन्विताः—उस काम में लगे हुए; च—भी; तैः—उनके द्वारा।

यज्ञों के फलों का भोग करने के लिए विश्व के शासक, अर्थात् मनु के पुत्र तथा पौत्र, मनु के शासन काल के अन्त तक भगवान् के आदेशों का पालन करते हैं। देवता भी इन यज्ञों के फलों में भाग प्राप्त करते हैं।

तात्पर्य : जैसाकि *भगवद्गीता* (४.२) में कहा गया है—

एवं परम्पराप्राप्तम् इमं राजर्षयो विदुः

"यह परम विज्ञान परम्परा शृंखला से होकर प्राप्त किया गया और राजर्षियों ने इसे उसी प्रकार से समझा।" यह परम्परा प्रणाली मनु से इक्ष्वाकु और इक्ष्वाकु से उसके पुत्र-पौत्रों तक चलती है। विश्व के शासक परम्परा-पद्धति में भगवान् के आदेशों का पालन करते हैं। जो कोई शान्तिपूर्ण जीवन बिताना

चाहता है उसे इस परम्परा प्रणाली में भाग लेकर यज्ञ करने चाहिए। हमें श्री चैतन्य महाप्रभु की गौडीय वैष्णव परम्परा की भाँति सारे विश्व में संकीर्तन यज्ञ करने चाहिए (*यज्ञैः सङ्कीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः*)। श्री चैतन्य महाप्रभु इस कलिकाल में भगवान् के अवतार हैं। यदि सारे विश्व में तेजी के साथ सङ्कीर्तन आन्दोलन फैलाया जाए है, तो वे आसानी से तुष्ट किये जा सकेंगे। इससे लोग सुखी भी बनेंगे; इसमें कोई सन्देह नहीं है।

इन्द्रो भगवता दत्तां त्रैलोक्यश्रियमूर्जिताम् ।
भुञ्जानः पाति लोकांस्त्रीन्कामं लोके प्रवर्षति ॥ ७॥

शब्दार्थ

इन्द्रः—स्वर्ग का राजा; भगवता—भगवान् के द्वारा; दत्ताम्—दिया गया; त्रैलोक्य—तीनों लोकों का; श्रियम् ऊर्जिताम्—बड़े ऐश्वर्य; भुञ्जानः—भोगते हुए; पाति—पालन करता है; लोकान्—सारे लोकों को; त्रीन्—तीनों लोकों के भीतर; कामम्—जितना आवश्यक हो; लोके—संसार में; प्रवर्षति—बरसाता है।

भगवान् से आशीष प्राप्त करके तथा इस तरह अत्यधिक विकसित ऐश्वर्य का भोग करते हुए स्वर्ग का राजा इन्द्र सभी लोकों पर पर्याप्त वर्षा करके तीनों लोकों के सारे जीवों का पालन करता है।

ज्ञानं चानुयुगं ब्रूते हरिः सिद्धस्वरूपधृक् ।
ऋषिरूपधरः कर्म योगं योगेशरूपधृक् ॥ ॥

शब्दार्थ

ज्ञानम्—दिव्य ज्ञान; च—तथा; अनुयुगम्—युग के अनुसार; ब्रूते—बताता है; हरिः—भगवान्; सिद्ध-स्वरूप-धृक्—सनक तथा सनातन जैसे मुक्त पुरुषों का रूप धारण करके; ऋषि-रूप-धरः—याज्ञवल्क्य जैसे महान् ऋषियों का रूप धारण करके; कर्म—कर्म; योगम्—योग पद्धति; योग-ईश-रूप-धृक्—दत्तात्रेय जैसे महान् योगी का रूप धारण करके।

प्रत्येक युग में भगवान् हरि दिव्य ज्ञान का उपदेश देने के लिए सनक जैसे सिद्धों का रूप धारण करते हैं, याज्ञवल्क्य जैसे महान् ऋषियों का रूप धारण करके वे कर्मयोग की शिक्षा देने के लिए तथा योग की विधि सिखाने के लिए दत्तात्रेय जैसे महान् योगियों का रूप धारण करते हैं।

तात्पर्य : मानव समाज के कल्याण हेतु भगवान् विश्व पर ठीक प्रकार से शासन करने के लिए न केवल मनु के रूप में अवतरित होते हैं, अपितु वे एक शिक्षक, योगी, ज्ञानी इत्यादि का रूप भी प्रदर्शित करते हैं। अतएव मानव समाज का धर्म है कि भगवान् द्वारा बताये गये कर्म के मार्ग को

स्वीकार करे। वर्तमान युग में सारे वैदिक ज्ञान का सार *भगवद्गीता* में पाया जाता है, जिसकी शिक्षा स्वयं भगवान् ने दी। वही भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु का रूप धारण करके सारे विश्व में *भगवद्गीता* की शिक्षाओं का प्रसार करते हैं। दूसरे शब्दों में, भगवान् हरि मानव समाज पर इतने दयालु तथा कृपालु हैं कि वे पतितात्माओं को अपने धाम वापस ले जाने के लिए सदैव उत्सुक रहते हैं।

सर्गं प्रजेशरूपेण दस्यून्हन्यात्स्वराड्वपुः ।
कालरूपेण सर्वेषामभावाय पृथग्गुणः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

सर्गम्—सन्तान की उत्पत्ति; प्रजा-ईश-रूपेण—प्रजापति मरीचि इत्यादि के रूप में; दस्यून्—चोरों तथा उचक्कों को; हन्यात्—मारते हैं; स्व-राट्-वपुः—राजा के रूप में; काल-रूपेण—काल के रूप में; सर्वेषाम्—प्रत्येक वस्तु के; अभावाय—संहार के लिए; पृथक्—भिन्न; गुणः—गुणों से युक्त।

भगवान् प्रजापति मरीचि के रूप में सन्तान उत्पन्न करते हैं; राजा का रूप धारण करके वे चोर-उचक्कों का वध करते हैं और काल के रूप में वे सबका संहार करते हैं। भौतिक संसार के जितने गुण हैं उन्हें भगवान् के ही गुण समझना चाहिए।

स्तूयमानो जनैरेभिर्मायया नामरूपया ।
विमोहितात्मभिर्नानादर्शनैर्न च दृश्यते ॥ १० ॥

शब्दार्थ

स्तूयमानः—ढूँढे जाने पर; जनैः—सामान्य लोगों द्वारा; एभिः—उन सबके द्वारा; मायया—माया के वशीभूत; नाम-रूपया—विभिन्न नामों तथा रूपों से युक्त; विमोहित—मोहग्रस्त हुआ; आत्मभिः—भ्रम द्वारा; नाना—विविध; दर्शनैः—दार्शनिक विचारों से; न—नहीं; च—तथा; दृश्यते—भगवान् को पाया जा सकता है।

सामान्य लोग माया के द्वारा विमोहित हो जाते हैं, अतएव वे परम सत्य भगवान् को विविध प्रकार के शोधों तथा दार्शनिक चिन्तन के द्वारा पाने का प्रयास करते हैं। किन्तु इतने पर भी वे भगवान् का दर्शन पाने में असमर्थ रहते हैं।

तात्पर्य : इस भौतिक जगत में सृष्टि, पालन तथा संहार के लिए जितने भी कार्य-प्रतिकार्य घटित होते हैं, वे वास्तव में एक परम पुरुष द्वारा कराए जाते हैं। ऐसे नाना प्रकार के दार्शनिक हैं, जो परम कारण का अन्वेषण विभिन्न नामों तथा रूपों के अन्तर्गत करने का प्रयास करते हैं, किन्तु वे उन भगवान् कृष्ण को ढूँढ पाने में असमर्थ रहते हैं, जो *भगवद्गीता* में यह बताते हैं कि वे प्रत्येक वस्तु के उद्गम हैं और समस्त कारणों के कारण हैं (*अहं सर्वस्य प्रभवः*)। यह असमर्थता भगवान् की माया के कारण

है। अतएव भक्तगण भगवान् को यथारूप में स्वीकार करते हैं और भगवान् की महिमाओं का कीर्तन करने मात्र से सुखी रहते हैं।

एतत्कल्पविकल्पस्य प्रमाणं परिकीर्तितम् ।
यत्र मन्वन्तराण्याहुश्चतुर्दश पुराविदः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

एतत्—ये सब; कल्प—ब्रह्मा के एक दिन में; विकल्पस्य—एक कल्प में हुए परिवर्तनों का, यथा मनुओं में परिवर्तन; प्रमाणम्—साक्ष्य; परिकीर्तितम्—(मेरे द्वारा) वर्णन किया गया; यत्र—जहाँ; मन्वन्तराणि—मन्वन्तर; आहुः—कहा जाता है; चतुर्दश—चौदह; पुरा-विदः—विद्वान।

एक कल्प में, अर्थात् ब्रह्मा के एक दिन में कई परिवर्तन होते हैं, जो विकल्प कहलाते हैं। हे राजा! मैं इन सबका वर्णन पहले ही कर चुका हूँ। विद्वान व्यक्तियों ने जो भूत, वर्तमान तथा भविष्य को जानते हैं विश्वास पूर्वक जान लिया है कि ब्रह्मा के एक दिन में चौदह मनु होते हैं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कंध के अन्तर्गत ''विश्व व्यवस्था की पद्धति'' नामक चौदहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter पन्द्रह

बलि महाराज द्वारा स्वर्गलोक पर विजय

इस अध्याय में बताया गया है कि बलि ने विश्वजित यज्ञ सम्पन्न करने के बाद किस तरह वरदान के रूप में एक रथ तथा युद्ध की विविध सामग्री प्राप्त की और उसकी सहायता से उसने स्वर्ग के राजा इन्द्र पर किस तरह चढ़ाई की। सारे देवता उसके भय से स्वर्गलोक छोड़-छोड़कर अपने गुरु के आदेशानुसार दूर-दूर चले गये।

महाराज परीक्षित यह जानना चाहते थे कि भगवान् वामनदेव ने किस प्रकार बलि महाराज से तीन पग भूमि लेने के बहाने उससे सब कुछ ले लिया और उसे बन्दी बना लिया। शुकदेव गोस्वामी ने इस जिज्ञासा का उत्तर इस प्रकार दिया : जैसाकि इस स्कंध के ग्यारहवें अध्याय में वर्णन किया जा चुका है, असुरों तथा देवताओं की लड़ाई में बलि महाराज पराजित हुए और युद्ध में मारे गये, किन्तु शुक्राचार्य की कृपा से वे पुनः जीवित हो गए। इस तरह वे अपने गुरु शुक्राचार्य की सेवा करने लगे। भृगुवंशी उन पर प्रसन्न हो गए और उन्होंने उन्हें *विश्वजित-यज्ञ* में लगा दिया। जब यह यज्ञ सम्पन्न हुआ

तो उस यज्ञ-अग्नि से एक रथ, घोड़े, एक पताका, एक धनुष, कवच तथा बाणों के दो तरकस प्रकट हुए। बलि महाराज के पितामह महाराज प्रह्लाद ने उन्हें फूलों की एक शाश्वत माला दी और शुक्राचार्य ने एक शंख दिया। तब प्रह्लाद, ब्राह्मणों एवं अपने गुरु शुक्राचार्य को नमस्कार करके उन्होंने इन्द्र से युद्ध करने के लिए तैयारी की और वे अपने सैनिकों सहित इन्द्रपुरी गये। अपना शंख बजाकर उन्होंने इन्द्र के राज्य की सीमाओं पर आक्रमण कर दिया। बलि महाराज के शौर्य को देखकर इन्द्र अपने गुरु बृहस्पति के पास गया और उनसे बलि के पराक्रम की चर्चा की तथा पूछा कि वह क्या करे। बृहस्पति ने देवताओं को बताया कि चूँकि बलि को ब्राह्मणों से अद्वितीय शक्ति प्राप्त हुई थी अतएव देवता उससे युद्ध नहीं कर सकते। उनकी एकमात्र आशा भगवान् की कृपा प्राप्त करने में है। निस्सन्देह, कहीं कोई विकल्प था भी नहीं। ऐसी दशा में बृहस्पति ने देवताओं को सलाह दी कि वे स्वर्गलोक छोड़कर कहीं अदृश्य हो जाँए। देवताओं ने उनकी बात मान ली और बलि महाराज तथा उनके संगियों ने सारे इन्द्रलोक को हथिया लिया। भृगुमुनि के वंशजों ने भृगु के शिष्य बलि महाराज के प्रति अत्यन्त वत्सल होने के कारण उन्हें एक सौ अश्वमेघ यज्ञ सम्पन्न करने में लगा दिया। इस प्रकार बलि महाराज ने स्वर्गलोक के ऐश्वर्य का भोग किया।

श्रीराजोवाच

बलेः पदत्रयं भूमेः कस्माद्धरिरयाचत ।
भूतेश्वरः कृपणवल्लब्धार्थोऽपि बबन्ध तम् ॥ १ ॥
एतद्वेदितुमिच्छामो महत्कौतूहलं हि नः ।
याच्ञेश्वरस्य पूर्णस्य बन्धनं चाप्यनागसः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा ने कहा; बलेः—बलि महाराज के; पद-त्रयम्—तीन पग; भूमेः—भूमि के; कस्मात्—क्यों; हरिः—भगवान् (वामन के रूप में) ने; अयाचत—माँगा; भूत-ईश्वरः—सारे ब्रह्माण्ड के स्वामी; कृपण-वत्—गरीब मनुष्य की तरह; लब्ध-अर्थः—दान पाकर; अपि—यद्यपि; बबन्ध—बन्दी बना लिया; तम्—उसको (बलि को); एतत्—यह सब; वेदितुम्—समझने के लिए; इच्छामः—हम इच्छा करते हैं; महत्—महान्; कौतूहलम्—उत्सुकता; हि—निस्सन्देह; नः—हमारा; याच्ञा—भीख; ईश्वरस्य—भगवान् की; पूर्णस्य—परम पूर्ण; बन्धनम्—बाँधते हुए; च—भी; अपि—यद्यपि; अनागसः—निर्दोष को।

महाराज परीक्षित ने पूछा : भगवान् सबके स्वामी हैं। तो फिर उन्होंने निर्धन व्यक्ति की भाँति बलि महाराज से तीन पग भूमि क्यों माँगी और जब उन्हें मुँहमाँगा दान मिल गया तो फिर उन्होंने बलि महराज को बन्दी क्यों बनाया? मैं इन विरोधाभासों के रहस्य को जानने के लिए अत्यन्त उत्सुक हूँ।

श्रीशुक उवाच
पराजितश्रीरसुभिश्च हापितो
हीन्द्रेण राजन्भृगुभिः स जीवितः ।
सर्वात्मना तानभजद्भृगून्बलिः
शिष्यो महात्मार्थनिवेदनेन ॥ ३॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; पराजित—हराया जाकर; श्रीः—ऐश्वर्य; असुभिः च—तथा प्राण का; हापितः—विहीन होकर; हि—निस्सन्देह; इन्द्रेण—राजा इन्द्र द्वारा; राजन्—हे राजा; भृगुभिः—भृगुमुनि के वंशजों द्वारा; सः—वह (बलि महाराज); जीवितः—पुनः जीवनदान दिये जाने पर; सर्व-आत्मना—पूर्णतया अधीन होकर; तान्—उनको; अभजत्—पूजा की; भृगून्—भृगुमुनि के वंशजों को; बलिः—बलि महाराज; शिष्यः—शिष्य; महात्मा—महात्मा; अर्थ-निवेदनेन—उन्हें सब कुछ देकर।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा! जब बलि का सारा ऐश्वर्य छिन गया और वे युद्ध में मारे गये तो भृगुमुनि के एक वंशज शुक्राचार्य ने उन्हें फिर से जीवित कर दिया। इससे महात्मा बलि शुक्राचार्य के शिष्य बन गये और अपना सर्वस्व अर्पित करके अत्यन्त श्रद्धापूर्वक उनकी सेवा करने लगे।

तं ब्राह्मणा भृगवः प्रीयमाणा
अयाजयन्विश्वजिता त्रिणाकम् ।
जिगीषमाणं विधिनाभिषिच्य
महाभिषेकेण महानुभावाः ॥ ४॥

शब्दार्थ

तम्—उसको (बलि महाराज को); ब्राह्मणाः—सारे ब्राह्मणों ने; भृगवः—भृगुमुनि के वंशज; प्रीयमाणाः—प्रसन्न होकर; अयाजयन्—यज्ञ सम्पन्न करने में लगा दिया; विश्वजिता—विश्वजित नामक; त्रि-नाकम्—स्वर्गलोक; जिगीषमाणम्—जीतने की इच्छा से; विधिना—विधिपूर्वक; अभिषिच्य—शुद्ध करने के बाद; महा-अभिषेकेण—महान् अभिषेक अनुष्ठान में स्नान कराकर; महा-अनुभावाः—उच्च ब्राह्मण।

भृगुमुनि के ब्राह्मण वंशज बलि महाराज पर अत्यन्त प्रसन्न हो गए जो इन्द्र का साम्राज्य जीतना चाह रहे थे। अतएव उन्होंने उन्हें अनुष्ठानपूर्वक शुद्ध करके तथा स्नान कराकर विश्वजित नामक यज्ञ करने में लगा दिया।

ततो रथः काञ्चनपट्टनद्धो
हयाश्च हर्यश्वतुरङ्गवर्णाः ।
ध्वजश्च सिंहेन विराजमानो
हुताशनादास हविर्भिरिष्टात् ॥ ५॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; रथः—रथ; काञ्चन—सोने से युक्त; पट्ट—रेशमी वस्त्र; नद्धः—लिपटा हुआ; हयाः च—घोड़े भी; हर्यश्व-तुरङ्ग-वर्णाः—इन्द्र के घोड़ों जैसे रंग का (पीला); ध्वजः च—ध्वजा भी; सिंहेन—सिंहचिह्न से युक्त; विराजमानः—उपस्थित; हुत-अशनात्—प्रज्वलित अग्नि से; आस—था; हविर्भिः—घी की आहुति द्वारा; इष्टात्—पूजा किया।

जब यज्ञ-अग्नि में घी की आहुति दी गई तो अग्नि से स्वर्ण तथा रेशम से आच्छादित एक दैवी रथ प्रकट हुआ। साथ ही इन्द्र के घोड़ों जैसे पीले घोड़े तथा सिंह चिन्ह से अंकित एक ध्वजा प्रकट हुए।

धनुश्च दिव्यं पुरटोपनद्धं
तूणावरिक्तौ कवचं च दिव्यम् ।
पितामहस्तस्य ददौ च माला-
मम्लानपुष्पां जलजं च शुक्रः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

धनुः—धनुष; च—भी; दिव्यम्—असाधारण; पुरट-उपनद्धम्—सोने से मढ़ा; तूणौ—दो तरकस; अरिक्तौ—अच्युत; कवचम् च—तथा कवच; दिव्यम्—दिव्य; पितामहः तस्य—उसके पितामह, प्रह्लाद महाराज ने; ददौ—दिया; च—तथा; मालाम्—माला; अम्लान-पुष्याम्—न मुरझाने वाले फूलों की; जल जम्—शंख (जल में उत्पन्न); च—भी; शुक्रः—शुक्राचार्य ने।

उस यज्ञ अग्नि से एक सुनहरा धनुष, अच्युत बाणों से युक्त दो तरकस तथा एक दिव्य कवच भी प्रकट हुए। बलि महाराज के पितामह प्रह्लाद महाराज ने उन्हें कभी न मुरझाने वाले फूलों की माला दी और शुक्राचार्य ने एक शंख प्रदान किया।

एवं स विप्रार्जितयोधनार्थ-
स्तैः कल्पितस्वस्त्ययनोऽथ विप्रान् ।
प्रदक्षिणीकृत्य कृतप्रणामः
प्रह्लादमामन्त्र्य नमश्चकार ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; सः—वह (बलि महाराज); विप्र-अर्जित—ब्राह्मणों की कृपा से प्राप्त; योधन-अर्थः—युद्ध के लिए सामग्री से लैस; तैः—उन (ब्राह्मणों) के द्वारा; कल्पित—सलाह; स्वस्त्ययनः—अनुष्ठान; अथ—जिस तरह; विप्रान्—सारे ब्राह्मणों (शुक्राचार्य तथा अन्यों) को; प्रदक्षिणी-कृत्य—परिक्रमा करके; कृत-प्रणामः—नमस्कार करके; प्रह्लादम्—प्रह्लाद महाराज को; आमन्त्र्य—सम्बोधित करके; नमः-चकार—नमस्कार किया।

ब्राह्मणों की सलाह के अनुसार विशेष अनुष्ठान सम्पन्न कर चुकने तथा उनकी कृपा से युद्ध-सामग्री प्राप्त कर चुकने के बाद, महाराज बलि ने ब्राह्मणों की प्रदक्षिणा की और उन्हें नमस्कार किया। उन्होंने प्रह्लाद महाराज को भी नमस्कार किया।

अथारुह्य रथं दिव्यं भृगुदत्तं महारथः ।
सुस्रग्धरोऽथ सन्नह्य धन्वी खड्गी धृतेषुधिः ॥ ॥
हेमाङ्गदलसद्बाहुः स्फुरन्मकरकुण्डलः ।
रराज रथमारूढो धिष्ण्यस्थ इव हव्यवाट् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; आरुह्य—चढ़कर; रथम्—रथ पर; दिव्यम्—दैवी; भृगु-दत्तम्—शुक्राचार्य द्वारा दिया गया; महा-रथः—महान् सारथी बलि महाराज; सु-स्रक्-धरः—सुन्दर माला से सुशोभित; अथ—इस तरह; सन्नह्य—कवच से शरीर ढककर; धन्वी—धनुष से लैस होकर; खड्गी—तलवार धारण किये; धृत-इषुधिः—तरकस धारण किये; हेम-अङ्गद-लसत्-बाहुः—अपनी भुजाओं में सुनहरे कड़ों से सुशोभित; स्फुरत्-मकर-कुण्डलः—मरकत के समान चमकीले कुण्डलों से सज्जित; रराज—प्रकाशित कर रहा था; रथम् आरूढः—रथ पर चढ़कर; धिष्ण्य-स्थः—यज्ञवेदी पर स्थित होकर; इव—सदृश; हव्य-वाट्—पूज्य अग्नि।.

तब शुक्राचार्य द्वारा दिये गये रथ पर सवार होकर सुन्दर माला से विभूषित बलि महाराज ने अपने शरीर में सुरक्षा-कवच धारण किया, अपने को बाणों से लैस किया, एक तलवार तथा तूणीर (तरकस) लिया। जब वे रथ में आसन ग्रहण कर चुके तो सुनहरे कड़ों से विभूषित बाहों तथा मरकत मणि के कुण्डलों से विभूषित कानों सहित वे पूजनीय अग्नि की तरह चमक रहे थे।

तुल्यैश्वर्यबलश्रीभिः स्वयूथैर्दैत्ययूथपैः ।
पिबद्भिरिव खं दृग्भिर्दहद्भिः परिधीनिव ॥ १० ॥
वृतो विकर्षन्महतीमासुरीं ध्वजिनीं विभुः ।
ययाविन्द्रपुरीं स्वृद्धां कम्पयन्निव रोदसी ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

तुल्य-ऐश्वर्य—ऐश्वर्य में समान; बल—शक्ति में; श्रीभिः—तथा सौन्दर्य में; स्व-यूथैः—अपने आदमियों से; दैत्य-यूथ-पैः—तथा असुरों के प्रमुखों से; पिबद्भिः—पीते हुए; इव—मानो; खम्—आकाश को; दृग्भिः—दृष्टि से; दहद्भिः—जलती हुई; परिधीन्—सारी दिशाएँ; इव—मानो; वृतः—घिरा हुआ; विकर्षन्—आकृष्ट करती; महतीम्—महान्; आसुरीम्—आसुरी; ध्वजिनीम्—सैनिकों को; विभुः—अत्यन्त शक्तिशाली; ययौ—गया; इन्द्र-पुरीम्—राजा इन्द्र की राजधानी में; सु-ऋद्धाम्—अत्यन्त ऐश्वर्यशाली; कम्पयन्—हिलाते हुए; इव—मानो; रोदसी—सारे संसार की धरती को।.

जब वे अपने सैनिकों तथा असुर-नायकों समेत एकत्र हुए जो बल, ऐश्वर्य एवं सुन्दरता में उन्हीं के समान थे तो ऐसा लग रहा था मानो वे आकाश को निगल जायेंगे और अपनी दृष्टि से सारी दिशाओं को जला देंगे। इस तरह असुर-सैनिकों को एकत्र करके बलि महाराज ने इन्द्र की ऐश्वर्यमयी राजधानी के लिए प्रस्थान किया। निस्सन्देह, ऐसा लग रहा था मानो वे सारे जगत को कंपायमान कर देंगे।

रम्यामुपवनोद्यानैः श्रीमद्भिर्नन्दनादिभिः ।
कूजद्विहङ्गमिथुनैर्गायन्मत्तमधुव्रतैः ।
प्रवालफलपुष्पोरुभारशाखामरद्रुमैः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

रम्याम्—सुहावने; उपवन—फलों के बागों; उद्यानैः—तथा बगीचों से युक्त; श्रीमद्भिः—देखने में अत्यन्त सुन्दर; नन्दन-आदिभिः—यथा नन्दन; कूजत्—चहचहाते; विहङ्ग—पक्षी; मिथुनैः—जोड़ों समेत; गायत्—गाते हुए; मत्त—मतवाले; मधु-व्रतैः—मधुमक्खियों से; प्रवाल—पत्तियों का; फल-पुष्प—फूल तथा फल; उरु—भारी; भार—भार सहन करते हुए; शाखा—जिसकी शाखाएँ; अमर-द्रुमैः—अमर वृक्षों सहित।

राजा इन्द्र की पुरी सुहावने बाग बगीचों से, यथा नन्दन बाग से परिपूर्ण थी। फूलों, पत्तियों तथा फलों के भार से उनके शाश्वत वृक्षों की शाखाएँ नीचे झुकी हुई थीं। इन उद्यानों में चहकते पक्षियों के जोड़े तथा गाती मधुमक्खियाँ आती जाती थीं। वहाँ का सारा वायुमण्डल अत्यन्त दिव्य था।

हंससारसचक्राह्वकारण्डवकुलाकुलाः ।
नलिन्यो यत्र क्रीडन्ति प्रमदाः सुरसेविताः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

हंस—हंस; सारस—सारस; चक्राह्व—चकई, चकवा; कारण्डव—तथा जल मुर्गाबी; कुल—समूहों में; आकुलाः—संकुलित; नलिन्यः—कमल के फूल; यत्र—जहाँ; क्रीडन्ति—खेलते हैं; प्रमदाः—सुन्दर स्त्रियाँ; सुर-सेविताः—देवताओं द्वारा रक्षित।

उद्यानों में देवताओं द्वारा रक्षित सुन्दर स्त्रियाँ खेलती थीं जिनके कमल-ताल हंसों, सारसों, चक्रवाकों तथा बत्तखों से भरे हुए थे।

आकाशगङ्गया देव्या वृतां परिखभूतया ।
प्राकारेणाग्निवर्णेन साट्टालेनोन्नतेन च ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

आकाश-गङ्गया—आकाश गंगा नामक गंगाजल से; देव्या—सदैव पूजित देवी; वृताम्—घिरी हुई; परिख-भूतया—खाई के रूप में; प्राकारेण—चहारदीवारी से; अग्नि-वर्णेन—अग्नि की तरह; स-अट्टालेन—लड़ने के स्थानों सहित; उन्नतेन—अत्यन्त ऊँचे; च—तथा।

वह पुरी आकाशगंगा नामक गंगाजल से पूर्ण खाइयों द्वारा तथा अग्नि जैसे रंग वाली एक अत्यन्त ऊँची दीवाल से घिरी हुई थी। इस दीवाल पर लड़ने के लिए मुंडेर बने थे।

रुक्मपट्टकपाटैश्च द्वारैः स्फटिकगोपुरैः ।
जुष्टां विभक्तप्रपथां विश्वकर्मविनिर्मिताम् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

रुक्म-पट्ट—सोने की पत्तरों वाले; कपाटैः—किवाड़ों से; च—तथा; द्वारैः—दरवाजों से; स्फटिक-गोपुरैः—उत्कृष्ट संगमरमर के बने फाटकों से युक्त; जुष्टाम्—जुड़े; विभक्त-प्रपथाम्—अनेक सार्वजनिक सड़कों से; विश्वकर्म-विनिर्मिताम्—स्वर्ग के शिल्पी विश्वकर्मा द्वारा निर्मित।

उसके दरवाजे ठोस सोने के पत्तरों से बने थे और फाटक उत्कृष्ट संगमरमर के थे। ये सभी विभिन्न जन-मार्गों से जुड़े थे। पूरी नगरी का निर्माण विश्वकर्मा ने किया था।

सभाचत्वररथ्याढ्यां विमानैर्न्यर्बुदैर्युताम् ।
शृङ्गाटकैर्मणिमयैर्वज्रविद्रुमवेदिभिः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

सभा—सभाभवन; चत्वर—आंगन; रथ्य—तथा सार्वजनिक मार्गों से युक्त; आढ्याम्—ऐश्वर्यशाली; विमानैः—वायुयानों से; न्यर्बुदैः—दस करोड़ से कम नहीं; युताम्—से युक्त; शृङ्ग-आटकैः—चौराहों से युक्त; मणि-मयैः—मणियों से बना; वज्र—हीरों के बने; विद्रुम—तथा मूंगे के बने; वेदिभिः—बैठने के स्थानों सहित।

यह नगरी आँगनों, चौ मार्गों, सभाभवनों तथा कम से कम दस करोड़ विमानों से पूर्ण थी। चौराहे मोती से बने थे और भी हीरे तथा मूँगे से बने थे।

यत्र नित्यवयोरूपाः श्यामा विरजवाससः ।
भ्राजन्ते रूपवन्नार्यो ह्यर्चिर्भिरिव वह्नयः ॥ १७॥

शब्दार्थ

यत्र—उस नगरी में; नित्य-वयः-रूपाः—सदैव सुन्दर तथा तरुण बनी रहने वाली; श्यामाः—श्यामा के गुणों वाली; विरज-वाससः—सदैव स्वच्छ वस्त्र पहने; भ्राजन्ते—चमचमाती रहती हैं; रूप-वत्—अच्छी तरह सजी हुई; नार्यः—स्त्रियाँ; हि—निश्चय ही; अर्चिर्भिः—अनेक ज्वालाओं से युक्त; इव—सदृश; वह्नयः—अग्नियाँ।

उस पुरी में नित्य सुन्दर तथा तरुण स्त्रियाँ स्वच्छ वस्त्र पहने ज्वालाओं से युक्त अग्नियों की भाँति चमक रही थीं। उन सब में श्यामा के गुण विद्यमान थे॥

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने श्यामा स्त्री के गुणों का संकेत किया है—

शीतकाले भवेदुष्णा उष्मकाले सुशीतलाः ।

स्तनौ सुकठिनौ यासां ताः श्यामाः परिकीर्तिताः ॥

जिस स्त्री का शरीर शीतऋतु में अत्यन्त गरम रहे और ग्रीष्म में ठंडा रहे और जिसके स्तन साधारणतः अत्यन्त सुगठित हों वह श्यामा कहलाती है।

सुरस्त्रीकेशविभ्रष्टनवसौगन्धिकस्त्रजाम् ।
यत्रामोदमुपादाय मार्ग आवाति मारुतः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

सुर-स्त्री—देवताओं की स्त्रियों के; केश—बालों से; विभ्रष्ट—गिरा हुआ; नव-सौगन्धिक—ताजे महकते फूलों से बने; स्त्रजाम्—फूलों की मालाओं की; यत्र—जिसमें; आमोदम्—सुगन्धि; उपादाय—ले जाकर; मार्गे—सड़कों पर; आवाति—बहता है; मारुतः—मन्द पवन।

उस पुरी की सड़कों में से होकर बहने वाला मन्द समीर देवताओं की स्त्रियों के बालों से गिरे फूलों की सुंगधि से युक्त था।

हेमजालाक्षनिर्गच्छद्धूमेनागुरुगन्धिना ।
पाण्डुरेण प्रतिच्छन्नमार्गे यान्ति सुरप्रियाः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

हेम-जाल-अक्ष—सुनहरी जाली से बनी छोटी सुन्दर खिड़कियों से; निर्गच्छत्—निकलकर, उठकर; धूमेन—धुएँ से; अगुरु-गन्धिना—अगुरु जलने से सुगन्धित; पाण्डुरेण—अत्यन्त श्वेत; प्रतिच्छन्न—ढका हुआ; मार्गे—सड़क पर; यान्ति—गुजरती हैं; सुर-प्रियाः—सुन्दर अप्सराएँ, दैवी बालाएँ।

अप्सराएँ जिन सड़कों से होकर गुजरती थीं वे अगुरु के श्वेत सुगन्धित धुएँ से ढकी हुई थीं जो सुनहरी तारकशी वाली खिड़कियों से निकल रहा था।

मुक्तावितानैर्मणिहेमकेतुभि-
र्नानापताकावलभीभिरावृताम् ।
शिखण्डिपारावतभृङ्गनादितां
वैमानिकस्त्रीकलगीतमङ्गलाम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

मुक्ता-वितानैः—मोतियों से सजे मण्डपों से; मणि-हेम-केतुभिः—मोती तथा सोने से बनी झंडियों से; नाना-पताका—तरह-तरह के ध्वजों वाला; वलभीभिः—महलों की गुम्बदों सहित; आवृताम्—ढका हुआ; शिखण्डि—मोर जैसे पक्षियों; पारावत—कबूतर; भृङ्ग—भौंरे; नादिताम्—अपनी-अपनी गुंजार करते; वैमानिक—विमानों में चढ़कर; स्त्री—स्त्रियों का; कल-गीत—सामूहिक गान से; मङ्गलाम्—कल्याण से पूरित।

नगरी में मोतियों से सजे चँदोवे की छाया पड़ रही थी और महलों की गुम्बदों में मोती तथा सोने की पताकाएँ थीं। वह नगरी सदा मोरों, कबूतरों तथा भौरों की ध्वनि से गूँजती रहती थी। उसके ऊपर विमान उड़ते रहते थे, जो कानों को अच्छे लगने वाले मधुर गीतों का निरन्तर गायन करने वाली सुन्दर स्त्रियों से भरे रहते थे।

मृदङ्गशङ्खानकदुन्दुभिस्वनैः
सतालवीणामुरजेष्टवेणुभिः ।
नृत्यैः सवाद्यैरुपदेवगीतकै-

र्मनोरमां स्वप्रभया जितप्रभाम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

मृदङ्ग—ढोल; शङ्ख—शंख; आनक-दुन्दुभि—तथा दमामों के; स्वनैः—शब्दों से; स-ताल—पूर्ण ताल में; वीणा—वीणा; मुरज—एक प्रकार का ढोल; इष्ट-वेणुभिः—वंशी की सुन्दर ध्वनि के साथ-साथ; नृत्यैः—नृत्य सहित; स-वाद्यैः—बाजों सहित; उपदेव-गीतकैः—गौण देवताओं यथा गन्धर्वों के गीतों सहित; मनोरमाम्—सुन्दर तथा सुहावना; स्व-प्रभया—अपने तेज से; जित-प्रभाम्—साक्षात् सुन्दरता जीत ली गई।

वह नगरी मृदंग, शंख, दमामे, वंशी तथा तार वाले सुरीले वाद्ययंत्रों के समूहवादन के स्वरों से पूरित थी। वहाँ निरन्तर नृत्य चलता रहता था और गन्धर्वगण गाते रहते थे। इन्द्रपुरी की संयुक्त सुन्दरता साक्षात् सुन्दरता (छटा) को जीत रही थी।

यां न व्रजन्त्यधर्मिष्ठाः खला भूतद्रुहः शठाः ।
मानिनः कामिनो लुब्धा एभिर्हीना व्रजन्ति यत् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

याम्—नगरी की सड़कों में; न—नहीं; व्रजन्ति—जाते हैं; अधर्मिष्ठाः—अधर्मी लोग; खलाः—दुष्ट, ईर्ष्यालु; भूत-द्रुहः—अन्य जीवों पर उग्र भाव रखने वाले; शठाः—वंचक, धोखेबाज; मानिनः—झूठी प्रतिष्ठा वाले; कामिनः—कामी; लुब्धाः—लालची; एभिः—ये; हीनाः—से पूर्णतः रहित; व्रजन्ति—घूमते हैं; यत्—मार्ग पर।

जो पापी, ईर्ष्यालु, अन्य जीवों के प्रति उग्र, चालाक, मिथ्या अभिमानी, कामी या लालची थे वे उस नगरी में प्रवेश नहीं कर सकते थे। वहाँ रहने वाले सभी निवासी इन दोषों से रहित थे।

तां देवधानीं स वरूथिनीपतिर्
बहिः समन्ताद्रुरुधे पृतन्यया ।
आचार्यदत्तं जलजं महास्वनं
दध्मौ प्रयुञ्जन्भयमिन्द्रयोषिताम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

ताम्—उस; देव-धानीम्—इन्द्र के निवास स्थान को; सः—वह (बलि महाराज); वरूथिनी-पतिः—सैनिकों का नायक; बहिः—बाहर; समन्तात्—सभी दिशाओं से; रुरुधे—आक्रमण किया; पृतन्यया—सैनिकों द्वारा; आचार्य-दत्तम्—शुक्राचार्य द्वारा प्रदत्त; जल-जम्—शंख को; महा-स्वनम्—उच्च स्वर; दध्मौ—बजाया; प्रयुञ्जन्—उत्पन्न करते हुए; भयम्—भय; इन्द्र-योषिताम्—इन्द्र द्वारा रक्षित सारी स्त्रियों का।

असंख्य सैनिकों के सेनानायक बलि महाराज ने इन्द्र के इस निवास स्थान के बाहर अपने सैनिकों को एकत्र किया और चारों दिशाओं से उस पर आक्रमण कर दिया। उन्होंने अपने गुरु शुक्राचार्य द्वारा प्रदत्त शंख बजाया जिससे इन्द्र द्वारा रक्षित स्त्रियों के लिए भयावह स्थिति उत्पन्न हो गई।

मघवांस्तमभिप्रेत्य बले: परममुद्यमम् ।
सर्वदेवगणोपेतो गुरुमेतदुवाच ह ॥ २४॥

शब्दार्थ

मघवान्—इन्द्र; तम्—स्थिति को; अभिप्रेत्य—समझकर; बले:—बलि महाराज के; परमम् उद्यमम्—महान् उत्साह; सर्व-देव-गण—सभी देवताओं द्वारा; उपेत:—साथ-साथ; गुरुम्—गुरु को; एतत्—निम्नलिखित शब्द; उवाच—कहा; ह—निस्सन्देह।

बलि महाराज के अथक प्रयास को देखकर तथा उसके मन्तव्य को समझकर राजा इन्द्र अन्य देवताओं के साथ अपने गुरु बृहस्पति के पास गये और इस प्रकार बोले।

भगवन्नुद्यमो भूयान्बलेर्न: पूर्ववैरिण: ।
अविषह्यमिमं मन्ये केनासीत्तेजसोर्जित: ॥ २५॥

शब्दार्थ

भगवन्—हे भगवान्; उद्यम:—उत्साह; भूयान्—महान्; बले:—बलि महाराज का; न:—हमारा; पूर्व-वैरिण:—पुराना शत्रु; अविषह्यम्—असह्य; इमम्—यह; मन्ये—मैं सोचता हूँ; केन—किसके द्वारा; आसीत्—पाया; तेजसा—तेज; ऊर्जित:—प्राप्त किया गया।

हे प्रभु! हमारे पुराने शत्रु बलि महाराज में अब नया उत्साह पैदा हो गया है और उसने ऐसी आश्चर्यजनक शक्ति प्राप्त कर ली है कि हमारा विचार है कि हम उसके तेज का शायद प्रतिरोध नहीं कर सकते।

नैनं कश्चित्कुतो वापि प्रतिव्योढुमधीश्वर: ।
पिबन्निव मुखेनेदं लिहन्निव दिशो दश ।
दहन्निव दिशो दृग्भि: संवर्ताग्निरिवोत्थित: ॥ २६॥

शब्दार्थ

न—नहीं; एनम्—इस व्यवस्था को; कश्चित्—कोई भी; कुत:—कहीं से भी; वा अपि—या तो; प्रतिव्योढुम्—सामना करने के लिए; अधीश्वर:—समर्थ; पिबन् इव—मानो पी रहे हों; मुखेन—मुख से; इदम्—यह (जगत); लिहन् इव—मानो चाट रहा हो; दिश: दश—दसों दिशाएँ; दहन् इव—मानो जल रही हों; दिश:—सारी दिशाएँ; दृग्भि:—अपनी दृष्टि से; संवर्त-अग्नि:—संवर्त अग्नि; इव—सदृश; उत्थित:—उठी है।

कोई कहीं भी बलि की इस सैन्य व्यवस्था का सामना नहीं कर सकता। अब ऐसा प्रतीत होता है जैसे बलि सारे विश्व को अपने मुँह से पी जाना चाह रहा हो, अपनी जीभ से दसों दिशाओं को चाट जाना चाह रहा हो और अपने नेत्रों से प्रत्येक दिशा में अग्निकाण्ड करने का प्रयास कर रहा हो। निस्सन्देह, वह संवर्तक नामक प्रलयंकारी अग्नि के समान उठ पड़ा है।

ब्रूहि कारणमेतस्य दुर्धर्षत्वस्य मद्रिपो: ।

ओजः सहो बलं तेजो यत एतत्समुद्यमः ॥ २७॥

शब्दार्थ

ब्रूहि—कृपा करके हमें बतायें; कारणम्—कारण; एतस्य—इसका; दुर्धर्षत्वस्य—दुर्धर्षता का; मत्-रिपोः—मेरे शत्रु का; ओजः—पराक्रम; सहः—शक्ति; बलम्—बल; तेजः—प्रभाव; यतः—जहाँ से; एतत्—यह सब; समुद्यमः—प्रयास।

कृपया मुझे बतायें कि बलि महाराज की शक्ति, उद्यम, प्रभाव तथा विजय का क्या कारण है? वह इतना उत्साही कैसे हो गया है?

श्रीगुरुरुवाच

जानामि मघवञ्छत्रोरुन्नतेरस्य कारणम् ।
शिष्यायोपभृतं तेजो भृगुभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ २॥

शब्दार्थ

श्री-गुरुः उवाच—बृहस्पति ने कहा; जानामि—जानता हूँ; मघवन्—हे इन्द्र; शत्रोः—शत्रु की; उन्नतेः—उन्नति का; अस्य—उसका; कारणम्—कारण; शिष्याय—शिष्य को; उपभृतम्—प्रदत्त; तेजः—शक्ति; भृगुभिः—भृगुवंशियों द्वारा; ब्रह्म-वादिभिः—सर्वशक्तिमान ब्राह्मणों द्वारा।

देवताओं के गुरु बृहस्पति ने कहा : हे इन्द्र! मैं वह कारण जानता हूँ जिससे तुम्हारा शत्रु इतना शक्तिशाली बन गया है। भृगुमुनि के ब्राह्मण वंशजों ने उनके शिष्य बलि महाराज से प्रसन्न होकर उन्हें ऐसी अद्वितीय शक्ति प्रदान की है।

तात्पर्य : देवताओं के गुरु बृहस्पति ने इन्द्र को बताया ''सामान्यतया बलि तथा उसकी सेना को ऐसी शक्ति नहीं मिल सकती थी, किन्तु ऐसा लगता है कि भृगुमुनि के ब्राह्मण वंशजों ने बलि महाराज से प्रसन्न होकर उन्हें यह आध्यात्मिक शक्ति प्रदान की है।'' दूसरे शब्दों में, बृहस्पति ने इन्द्र को यह बताया कि बलि महाराज का तेज उसका अपना नहीं, अपितु उसके पूज्य गुरु शुक्राचार्य का है। हम नित्य ही स्तुति करते हैं—*यस्य प्रसादाद् भगवत् प्रसादो यस्याप्रसादान् न गतिः कुतोऽपि।* गुरु के प्रसन्न होने पर मनुष्य को अद्वितीय शक्ति, विशेषतया आध्यात्मिक उन्नति के लिए, प्राप्त होती है। गुरु के आशीष ऐसी उन्नति के लिए किये जाने वाले निजी प्रयास से अधिक शक्तिशाली होते हैं। अतएव नरोत्तम दास ठाकुर कहते हैं—

गुरु-मुख-पद्म-वाक्य चित्तेते करिया ऐक्य

आर ना करिह मने आशा

विशेषतया आध्यात्मिक उन्नति के लिए मनुष्य को चाहिए कि गुरु के प्रामाणिक आदेशों का पालन करे। इस प्रकार परम्परा पद्धति से मनुष्य को ईश्वर से प्राप्त होने वाली मूल आध्यात्मिक शक्ति मिल

सकती है (*एवं परम्पराप्राप्तम् इमं राजर्षयो विदु:*) ।

ओजस्विनं बलिं जेतुं न समर्थोऽस्ति कश्चन
भवद्विधो भवान्वापि वर्जयित्वेश्वरं हरिम् ।
विजेष्यति न कोऽप्येनं ब्रह्मतेज:समेधितम्
नास्य शक्त: पुर: स्थातुं कृतान्तस्य यथा जना: ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

ओजस्विनम्—इतना शक्तिशाली; बलिम्—बलि महाराज को; जेतुम्—जीतने के लिए; न—नहीं; समर्थ:—सक्षम; अस्ति—है; कश्चन—कोई; भवत्-विध:—तुम्हारी तरह; भवान्—तुम स्वयं; वा अपि—या तो; वर्जयित्वा—को छोड़कर; ईश्वरम्—परम नियन्ता; हरिम्—भगवान् को; विजेष्यति—जीतेगा; न—नहीं; क: अपि—कोई भी; एनम्—उसको (बलि महाराज को); ब्रह्म-तेज:-समेधितम्—ब्रह्मतेज से समन्वित; न—नहीं; अस्य—उसके; शक्त:—समर्थ; पुर:—सामने; स्थातुम्—ठहरने के लिए; कृत-अन्तस्य—यमराज के; यथा—जिस तरह; जना:—लोग।

न तो तुम, न ही तुम्हारे सैनिक परमशक्तिशाली बलि को जीत सकते हैं। निस्सन्देह, भगवान् के अतिरिक्त कोई भी उसे जीत नहीं सकता क्योंकि वह अब ब्रह्मतेज से युक्त है। जिस तरह यमराज के समक्ष कोई टिक नहीं पाता उसी तरह बलि महाराज के सामने भी कोई नहीं टिक सकता।

तस्मान्निलयमुत्सृज्य यूयं सर्वे त्रिविष्टपम् ।
यात कालं प्रतीक्षन्तो यत: शत्रोर्विपर्यय: ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—इसलिए; निलयम्—अदृश्य; उत्सृज्य—त्यागकर; यूयम्—तुम; सर्वे—सभी; त्रि-विष्टपम्—स्वर्ग का राज्य; यात—अन्यत्र चले जाओ; कालम्—काल की; प्रतीक्षन्त:—प्रतीक्षा करते हुए; यत:—जिससे; शत्रो:—तुम्हारे शत्रु की; विपर्यय:—विपरीत दशा आ जाये।

अतएव तुम सबको चाहिए कि अपने शत्रुओं की स्थिति के पलटने के समय तक प्रतीक्षा करते हुए इस र्स्वगलोक को छोड़ दो और कहीं ऐसे स्थान में चले जाओ जहाँ तुम दिखाई न दो।

एष विप्रबलोदर्क: सम्प्रत्यूर्जितविक्रम: ।
तेषामेवापमानेन सानुबन्धो विनङ्क्ष्यति ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

एष:—यह (बलि महाराज); विप्र-बल-उदर्क:—अपने में निहित ब्राह्मण शक्ति के कारण उन्नति करने वाला; सम्प्रति—इस समय; ऊर्जित-विक्रम:—अत्यन्त शक्तिशाली; तेषाम्—उन्हीं ब्राह्मणों के; एव—निस्सन्देह; अपमानेन—अपमान से; स-अनुबन्ध:—अपने मित्रों तथा सहायकों सहित; विनङ्क्ष्यति—विनष्ट हो जायेगा।

इस समय बलि ब्राह्मणों द्वारा प्रदत्त आशीषों के कारण अत्यन्त शक्तिशाली बन गया है,

किन्तु बाद में जब वह इन्हीं ब्राह्मणों का अपमान करेगा तो वह अपने मित्रों तथा सहायकों सहित विनष्ट हो जायेगा।

तात्पर्य : बलि महाराज तथा इन्द्र परस्पर शत्रु थे। अतएव जब देवताओं के गुरु बृहस्पति ने भविष्यवाणी की कि जिन ब्राह्मणों की कृपा से बलि महाराज इतने प्रबल हुए थे उनका अपमान करने पर वे विनष्ट हो जायेंगे तो बलि महाराज के शत्रु सचमुच यह जानने के लिए उत्सुक हो गए कि यह उपयुक्त क्षण कब आयेगा। इन्द्र को शान्त करने के लिए बृहस्पति ने उसे विश्वास दिलाया कि वह समय अवश्य आयेगा क्योंकि बृहस्पति यह देख सकते थे कि भविष्य में बलि महाराज होते वामनदेव के रूप में भगवान् विष्णु को शान्त करने के लिए शुक्राचार्य के आदेशों का उल्लंघन करेंगे। निस्सन्देह, कृष्णभावनामृत में अग्रसर होने के लिए भक्त सारे संकटों को मोल ले सकता है। वामनदेव को प्रसन्न करने के लिए बलि महाराज ने अपने गुरु शुक्राचार्य के आदेशों का उल्लंघन करने का संकट उठाया। इसके कारण उन्हें अपनी सारी सम्पत्ति खोनी पड़ी, किन्तु भगवान् की भक्ति के कारण उन्हें आशा से अधिक लाभ हुआ और भविष्य में आठवें मन्वन्तर में वे इन्द्र के सिंहासन पर पुन: आसीन हुए।

एवं सुमन्त्रितार्थास्ते गुरुणार्थानुदर्शिना ।
हित्वा त्रिविष्टपं जग्मुर्गीर्वाणा: कामरूपिण: ॥ ३२॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; सु-मन्त्रित—भलीभाँति उपदेश पाकर; अर्था:—कर्तव्यों के विषय में; ते—वे (देवता); गुरुणा—अपने गुरु द्वारा; अर्थ-अनुदर्शिना—उपयुक्त आदेश; हित्वा—त्यागकर; त्रि-विष्टपम्—स्वर्ग का साम्राज्य; जग्मु:—गये; गीर्वाणा:—देवतागण; काम-रूपिण:—जो इच्छानुसार कोई भी रूप धारण कर सकते थे।.

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : इस प्रकार बृहस्पति द्वारा अपने हित का उपदेश दिये जाने पर देवताओं ने तुरन्त उनकी बातें मान ली। उन्होंने इच्छानुसार रूप धारण किया और वे स्वर्गलोक को छोड़कर असुरों की दृष्टि से ओझल होकर तितर-बितर हो गये।

तात्पर्य : *कामरूपिण:* शब्द बताता है कि स्वर्गलोक के निवासी देवतागण अपनी इच्छानुसार कोई भी रूप धारण कर सकते हैं। अतएव उनके लिए असुरों की आँखों के सामने अज्ञात रूप में रहते जाना तनिक भी कठिन न था।

देवेष्वथ निलीनेषु बलिर्वैरोचन: पुरीम् ।

देवधानीमधिष्ठाय वशं निन्ये जगत्त्रयम् ॥ ३३॥

शब्दार्थ

देवेषु—सारे देवता; अथ—इस तरह से; निलीनेषु—अदृश्य हो जाने पर; बलिः—बलि महाराज; वैरोचनः—विरोचन का पुत्र; पुरीम्—स्वर्ग के राज्य को; देव-धानीम्—देवताओं के निवास स्थान को; अधिष्ठाय—अधिकार में करके; वशम्—नियंत्रण में; निन्ये—ले लिया; जगत्-त्रयम्—तीनों लोकों को।

जब देवतागण ओझल हो गये तो विरोचन के पुत्र बलि महाराज स्वर्ग में प्रविष्ट हुए और वहाँ से उन्होंने तीनों लोकों को अपने अधिकार में कर लिया।

तं विश्वजयिनं शिष्यं भृगवः शिष्यवत्सलाः ।
शतेन हयमेधानामनुव्रतमयाजयन् ॥ ३४॥

शब्दार्थ

तम्—उस (बलि महाराज को); विश्व-जयिनम्—समग्र विश्व के विजेता को; शिष्यम्—शिष्य होने के कारण; भृगवः—भृगु वंशज, यथा शुक्राचार्य के; शिष्य-वत्सलाः—शिष्य से अत्यन्त प्रसन्न होकर; शतेन—एक सौ के द्वारा; हय-मेधानाम्—अश्वमेध यज्ञों के; अनुव्रतम्—ब्राह्मणों के आदेशों का पालन करते हुए; अयाजयन्—सम्पन्न कराया।

भृगु के ब्राह्मण वंशजों ने अपने विश्वविजयी शिष्य से अत्यधिक प्रसन्न होकर उसे एक सौ अश्वमेघ यज्ञ सम्पन्न करने में लगा दिया।

तात्पर्य : महाराज पृथु एवम् इन्द्र के बीच के झगड़े में हम देख चुके हैं कि जब महाराज पृथु ने एक सौ अश्वमेध यज्ञ करने चाहे तो इन्द्र उसे रोकना चाहते थे क्योंकि ऐसे महान् यज्ञों के कारण ही इन्द्र स्वर्ग का राजा बना था। यहाँ पर भृगु के ब्राह्मण वंशजों ने निश्चय किया कि यद्यपि महाराज बलि इन्द्रासन पर विराजमान हैं, तथापि वे तब तक उस पर स्थिर नहीं रह सकेंगे जब तक वे यज्ञ न कर लें। अतएव उन्होंने सलाह दी कि वे कम से कम इन्द्र जितने अश्वमेध यज्ञ करें। *अयाजयन्* शब्द सूचित करता है कि सभी ब्राह्मणों ने बलि महाराज को ऐसे यज्ञ सम्पन्न करने के लिए प्रेरित किया।

ततस्तदनुभावेन भुवनत्रयविश्रुताम् ।
कीर्तिं दिक्षुवितन्वानः स रेज उडुराडिव ॥ ३५॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; तत्-अनुभावेन—ऐसे महान् यज्ञ सम्पन्न करने से; भुवन-त्रय—तीनों लोकों में; विश्रुताम्—विख्यात; कीर्तिम्—कीर्ति; दिक्षु—सभी दिशाओं में; वितन्वानः—फैली हुई; सः—वह (बलि महाराज); रेजे—तेजवान् हो गया; उडुराट्—चन्द्रमा; इव—समान।

जब बलि महाराज ने इन यज्ञों को सम्पन्न कर लिया तो उनकी कीर्ति तीनों लोकों में सभी दिशाओं में फैल गई। इस प्रकार वे अपने पद पर उसी प्रकार चमक उठे जिस तरह आकाश में

चमकीला चाँद।

बुभुजे च श्रियं स्वृद्धां द्विजदेवोपलम्भिताम् ।
कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यमानो महामना: ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

बुभुजे—भोग किया; च—भी; श्रियम्—ऐश्वर्य; सु-ऋद्धाम्—सम्पन्नता; द्विज—ब्राह्मणों के; देव—देवताओं के तुल्य; उपलम्भिताम्—पक्षपात के कारण अर्जित; कृत-कृत्यम्—उसके कार्यों से अत्यन्त सन्तुष्ट; इव—सदृश; आत्मानम्—स्वयं को; मन्यमान:—सोचते हुए; महा-मना:—महान्-मस्तिष्क वाला, उदारमना।

ब्राह्मणों के पश्चात् के कारण महात्मा बलि महाराज अपने आपको परम सन्तुष्ट मानते हुए परम ऐश्वर्यवान् तथा सम्पन्न बन गये और राज्य का भोग करने लगे।

तात्पर्य : ब्राह्मण द्विजदेव कहलाते हैं और क्षत्रिय सामान्यत: नरदेव। वास्तव में देव शब्द भगवान् का द्योतक है। ब्राह्मण भगवान् विष्णु को संतुष्ट करके प्रसन्न होने के लिए मानव समाज का मार्गदर्शन करते हैं और नरदेव कहलाने वाले क्षत्रिय उनकी सलाह से शान्ति तथा व्यवस्था बनाये रखते हैं जिससे अन्य लोग, अर्थात् वैश्य तथा शूद्र, विधि-विधानों का ढंग से पालन कर सकें। इस प्रकार लोग क्रमश: कृष्णभावनामृत तक उन्नत होते हैं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कंध के अन्तर्गत "बलि महाराज द्वारा स्वर्गलोक पर विजय" नामक पन्द्रहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter सोलह

पयोव्रत पूजा विधि का पालन करना

जैसाकि इस अध्याय में वर्णन किया गया है, देवताओं की माता अदिति के अत्यन्त खिन्न होने पर उनके पति कश्यपमुनि ने बताया कि वे अपने पुत्रों के लाभ के लिए तपस्या करके किस तरह व्रत रखें।

चूँकि स्वर्ग में देवता दिखलाई नहीं पड़ रहे थे अतएव उनकी माता अदिति उनके वियोग के कारण अत्यधिक दुखी थीं। एक दिन अनेकानेक वर्षों के बाद कश्यपमुनि ध्यान की समाधि से उठे और अपने आश्रम वापस आये। उन्होंने देखा कि उनका आश्रम सुन्दर नहीं लग रहा था और उनकी पत्नी अत्यन्त खिन्न थीं। उन्हें आश्रम भर में हर जगह शोक के चिह्न दिखे। अतएव मुनि ने अपनी पत्नी से आश्रम की कुशलता के विषय में पूछा और जानना चाहा कि वह इतनी खिन्न क्यों दिख रही है। अदिति ने

कश्यपमुनि को आश्रम की कुशलता के बारे में बताने के बाद कहा कि अपने पुत्रों की अनुपस्थिति के कारण वह खिन्न है। तब अदिति ने उनसे प्रार्थना की कि वे यह बतलाएँ कि उनके पुत्र किस प्रकार लौटकर अपने पदों को पुनः प्राप्त कर सकते हैं। वे अपने पुत्रों का कल्याण चाहती थीं। अदिति की प्रार्थना से द्रवित होकर कश्यपमुनि ने उन्हें आत्म-साक्षात्कार के दर्शन, पदार्थ तथा आत्मा के अन्तर तथा भौतिक क्षति से अप्रभावित रहने की विधि का उपदेश दिया। किन्तु जब उन्होंने उसे देखा कि उनके इन उपदेशों के बावजूद अदिति संतुष्ट नहीं है, तो उन्होंने उसे वासुदेव जनार्दन की पूजा करने की सलाह दी। उन्होंने उसे विश्वास दिलाया कि केवल भगवान् वासुदेव ही उन्हें सन्तुष्ट करके उनकी सारी इच्छाओं को पूरा कर सकते हैं। फिर जब अदिति ने भगवान् वासुदेव की पूजा करने की इच्छा व्यक्त की तो प्रजापति कश्यप ने पयोव्रत नामक पूजा की विधि बतलाई जो बारह दिनों में सम्पन्न होता है। उन्हें ब्रह्माजी ने बताया था कि इस विधि से भगवान् कृष्ण को कैसे प्रसन्न किया जा सकता है। इस प्रकार कश्यपमुनि ने अपनी पत्नी को इस व्रत का तथा इसके विधि-विधानों का पालन करने की सलाह दी।

श्रीशुक उवाच

एवं पुत्रेषु नष्टेषु देवमातादितिस्तदा ।
हृते त्रिविष्टपे दैत्यैः पर्यतप्यदनाथवत् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; पुत्रेषु—अपने पुत्रों को; नष्टेषु—अपने पदों से अदृश्य हुए; देव-माता—देवताओं की माता; अदितिः—अदिति ने; तदा—उस समय; हृते—खो जाने के कारण; त्रि-विष्टपे—स्वर्गलोक से; दैत्यैः—असुरों के प्रभाव के कारण; पर्यतप्यत्—पश्चाताप करने लगी; अनाथ-वत्—अनाथ की तरह।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा! जब अदिति के पुत्र देवतागण स्वर्गलोक से इस तरह से अदृश्य हो गये और असुरों ने उनका स्थान ग्रहण कर लिया तो अदिति इस प्रकार विलाप करने लगी मानो उसका कोई रक्षक न हो।

एकदा कश्यपस्तस्या आश्रमं भगवानगात् ।
निरुत्सवं निरानन्दं समाधेर्विरतश्चिरात् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

एकदा—एक दिन; कश्यपः—कश्यपमुनि; तस्याः—अदिति के; आश्रमम्—आश्रम में; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; अगात्—गये; निरुत्सवम्—बिना उत्साह के; निरानन्दम्—बिना हर्ष के; समाधेः—समाधि से; विरतः—जगकर; चिरात्—दीर्घकाल के बाद।

परम शक्तिशाली कश्यपमुनि कई दिनों बाद जब ध्यान की समाधि से उठे और घर लौटे तो देखा कि अदिति के आश्रम में न तो हर्ष है, न उल्लास।

स पत्नीं दीनवदनां कृतासनपरिग्रहः ।
सभाजितो यथान्यायमिदमाह कुरूद्वह ॥ ३॥

शब्दार्थ

सः—कश्यपमुनि; पत्नीम्—अपनी पत्नी को; दीन-वदनाम्—सूखा मुखमंडल किये; कृत-आसन-परिग्रहः—आसन ग्रहण करके; सभाजितः—अदिति द्वारा आदर किये जाकर; यथा-न्यायम्—काल तथा देश के अनुसार; इदम् आह—इस प्रकार कहा; कुरु-उद्वह—हे कुरुश्रेष्ठ महाराज परीक्षित।

हे कुरुश्रेष्ठ! भलीभाँति सम्मान तथा स्वागत किये जाने के बाद कश्यपमुनि ने आसन ग्रहण किया और अत्यन्त खिन्न दिख रही अपनी पत्नी अदिति से इस प्रकार कहा।

अप्यभद्रं न विप्राणां भद्रे लोकेऽधुनागतम् ।
न धर्मस्य न लोकस्य मृत्योश्छन्दानुवर्तिनः ॥ ४॥

शब्दार्थ

अपि—क्या; अभद्रम्—दुर्भाग्य; न—नहीं; विप्राणाम्—ब्राह्मणों का; भद्रे—हे अदिति; लोके—इस संसार में; अधुना—इस समय; आगतम्—आ गया है; न—नहीं; धर्मस्य—धर्म का; न—नहीं; लोकस्य—सामान्य लोगों का; मृत्योः—मृत्यु; छन्द-अनुवर्तिनः—जो लोग मृत्यु के गालों में जाने वाले हैं।

हे भद्रे! मुझे आश्चर्य है कि कहीं धर्म पर, ब्राह्मण वर्ग या काल की सोच में पड़ी जनता को कुछ हो तो नहीं गया?

तात्पर्य : इस जगत के सभी निवासियों के लिए और विशेष रूप से ब्राह्मणों के लिए नियत कर्म तो हैं ही, किन्तु जो लोग काल के गाल में जाने वाले हैं ये उन लागों के लिए भी हैं। कश्यपमुनि को आश्चर्य हो रहा था कि क्या सारे अनुष्ठानों का जो सर्वसाधारण के हितके लिए हैं उल्लंघन हुआ है। इसलिए वे सात श्लोकों तक प्रश्न पूछते जाते हैं।

अपि वाकुशलं किञ्चिद्गृहेषु गृहमेधिनि ।
धर्मस्यार्थस्य कामस्य यत्र योगो ह्ययोगिनाम् ॥ ५॥

शब्दार्थ

अपि—मुझे आश्चर्य हो रहा है; वा—या तो; अकुशलम्—अशुभ; किञ्चित्—कुछ; गृहेषु—घर में; गृह-मेधिनि—गृहस्थ जीवन में अनुरक्त हे मेरी पत्नी; धर्मस्य—धर्म का; अर्थस्य—आर्थिक दशा का; कामस्य—इच्छापूर्ति का; यत्र—घर पर; योगः—ध्यान का फल; हि—निश्चय ही; अयोगिनाम्—जो अध्यात्मवादी नहीं हैं उनका।

हे गृहस्थ जीवन में अनुरक्त मेरी पत्नी! यदि कोई गृहस्थ जीवन में धर्म, अर्थ तथा काम का समुचित पालन करता है, तो उसके कार्यकलाप एक अध्यात्मवादी (योगी) के ही समान श्रेष्ठ होते हैं। मुझे आश्चर्य है कि क्या इन नियमों के पालन में कोई त्रुटि आ गई है?

तात्पर्य : इस श्लोक में कश्यपमुनि ने अपनी पत्नी अदिति को *गृहमेधिनि* कहकर सम्बोधित किया है, जिसका अर्थ होता है ''इन्द्रियतृप्ति के लिए जो गृहस्थ जीवन से संतुष्ट है।'' सामान्यतया जो लोग गृहस्थ आश्रम में रह रहे हैं, वे भौतिक लाभ के लिए किये गये कर्मक्षेत्र में इन्द्रियतृप्ति का अनुगमन करते हैं। ऐसे गृहमेधियों का एक ही जीवनलक्ष्य होता है—इन्द्रियतृप्ति। इसीलिए कहा गया है—*यन्मैथुनादिगृहमेधि-सुखं हि तुच्छम्*—गृहस्थ जीवन इन्द्रियतृप्ति पर आधारित है; अतएव इससे प्राप्य प्रसन्नता अत्यल्प होती है। फिर भी वैदिक विधि इतनी सारगर्भित है कि गृहस्थ जीवन में भी मनुष्य *धर्म, अर्थ, काम* तथा *मोक्ष* के अनुसार अपने जीवन को व्यवस्थित कर सकता है। मनुष्य का लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना होना चाहिए, किन्तु चूँकि इन्द्रियतृप्ति को एकाएक नहीं छोड़ा जा सकता अतएव शास्त्रों में आदेश दिए हुए हैं कि किस प्रकार धर्म, अर्थ तथा काम के नियमों का पालन किया जाये। जैसा कि *श्रीमद्भागवत* में ही (१.२.९) कहा गया है—*धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते*—सारे वृत्ति-परक कार्य अन्ततोगत्वा मोक्ष के लिए हैं। उन्हें कभी भी भौतिकलाभ के लिए नहीं किया जाना चाहिए—जो लोग गृहस्थ हैं उन्हें यह नहीं सोचना चाहिए कि धर्म गृहस्थ की इन्द्रियतृप्ति की प्रक्रिया को सुधारने के निमित्त है। गृहस्थ जीवन आध्यात्मिक ज्ञान की उन्नति के लिए भी है, जिससे मनुष्य अन्ततोगत्वा भवबन्धन से मोक्ष प्राप्त कर सकता है। मनुष्य को जीवन के चरमलक्ष्य (तत्त्व जिज्ञासा) को समझने के उद्देश्य से गृहस्थ जीवन में टिके रहना चाहिए। तब गृहस्थ जीवन योगी-जीवन के समान ही श्रेष्ठ है। अतएव कश्यपमुनि ने अपनी पत्नी से पूछा कि क्या धर्म, अर्थ तथा काम के नियमों का शास्त्रीय आदेशों के अनुसार सही ढंग से पालन हो रहा है? ज्योंही मनुष्य शास्त्र के आदेशों से च्युत होता है त्योंही गृहस्थ जीवन का उद्देश्य तुरन्त ही समाप्त हो जाता है।

अपि वातिथयोऽभ्येत्य कुटुम्बासक्तया त्वया ।

गृहादपूजिता याताः प्रत्युत्थानेन वा क्वचित् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

अपि—क्या; वा—या तो; अतिथयः—मेहमान; अभ्येत्य—घर आकर; कुटुम्ब-आसक्तया—जो परिवार वालों के प्रति अत्यधिक आसक्त रहते हैं; त्वया—तुम्हारे द्वारा; गृहात्—घर से; अपूजिताः—ठीक से सत्कार न किये जाकर; याताः—चले गये; प्रत्युत्थानेन—खड़े होकर; वा—अथवा; क्वचित्—कभी-कभी।

मुझे आश्चर्य है कि कहीं तुम अपने परिवार के सदस्यों में अत्यधिक आसक्त रहने के कारण अचानक आए अतिथियों का ठीक से स्वागत नहीं कर पाईं और वे बिना सत्कार के ही वापस चले गये?

तात्पर्य : गृहस्थ का कर्तव्य है कि वह अतिथियों का सत्कार करे, भले ही वे शत्रु ही क्यों न हों। जब कोई अतिथि घर पर आये तो खड़े होकर उसका सत्कार किया जाये और बैठने के लिए उसे आसन प्रदान किया जाये। यह आदेश है—*गृहे शत्रुमपि प्राप्तं विश्वस्तम् अकुतोभयम्*—यदि किसी के घर उसका शत्रु भी आये तो उसका इस तरह सत्कार किया जाये कि वह यह भूल जाये कि आतिथेय उसका शत्रु है। अपनी स्थिति के अनुसार मनुष्य को चाहिए कि घर आये हुए अतिथि का उचित सत्कार करे। कम से कम उसे बैठने के लिए आसन तथा पीने के लिए एक गिलास पानी अवश्य दिया जाये जिससे अतिथि अप्रसन्न न हो। कश्यपमुनि ने अदिति से पूछा कि कहीं ऐसे अतिथियों का निरादर तो नहीं हुआ? अतिथि शब्द उस व्यक्ति का सूचक है, जो बिना बुलाये आये।

गृहेषु येष्वतिथयो नार्चिताः सलिलैरपि ।
यदि निर्यान्ति ते नूनं फेरुराजगृहोपमाः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

गृहेषु—घर पर; येषु—जिस; अतिथयः—अनामंत्रित मेहमान; न—नहीं; अर्चिताः—स्वागत किये गये; सलिलैः अपि—कम से कम एक गिलास जल देकर के; यदि—यदि; निर्यान्ति—वापस चले जाते हैं; ते—ऐसा गृहस्थ जीवन; नूनम्—निस्सन्देह; फेरु-राज—सियारों का; गृह—घर; उपमाः—सदृश।

जिन घरों से मेहमान एक गिलास जल भेंट किए गए बिना वापस चले जाते हैं, वे घर खेतों के उन बिलों के समान हैं जिनमें सियार रहते हैं।

तात्पर्य : खेतों में साँपों तथा चूहों द्वारा बनाए गए बिल होते है, किन्तु यदि बिल बहुत बड़े हों तो माना जा सकता है कि वह सियार रहते होंगे। निस्सन्देह, ऐसे घरों में कोई आश्रय लेने नहीं जाता। इस तरह मनुष्यों के घर जिनमें अतिथियों का ठीक से स्वागत नहीं किया जाता वे सियारों के घरों के समान हैं।

अप्यग्नयस्तु वेलायां न हुता हविषा सति ।
त्वयोद्विग्नधिया भद्रे प्रोषिते मयि कर्हिचित् ॥ ॥

शब्दार्थ

अपि—क्या; अग्नयः—अग्नि; तु—निस्सन्देह; वेलायाम्—अग्नियज्ञ में; न—नहीं; हुताः—डाला गया; हविषा—घी द्वारा; सति—हे सती; त्वया—तुम्हारे द्वारा; उद्विग्न-धिया—किसी चिन्ता के कारण; भद्रे—हे कल्याणी; प्रोषिते—घर से दूर था; मयि—जब मैं; कर्हिचित्—कभी-कभी।

हे सती तथा शुभे! जब मैं घर से अन्य स्थानों को चला गया तो क्या तुम इतनी चिन्तित थीं कि अग्नि में घी की आहुति भी नहीं दे सकीं?

यत्पूजया कामदुघान्याति लोकान्गृहान्वितः ।
ब्राह्मणोऽग्निश्च वै विष्णोः सर्वदेवात्मनो मुखम् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

यत्-पूजया—अग्नि तथा ब्राह्मणों की पूजा द्वारा; काम-दुघान्—इच्छाओं को पूरा करने वाला; याति—जो जाता है; लोकान्—उच्च लोकों को; गृह-अन्वितः—गृहस्थ जीवन के प्रति आसक्त; ब्राह्मणः—ब्राह्मणों; अग्निः च—तथा अग्नि; वै—निस्सन्देह; विष्णोः—भगवान् विष्णु का; सर्व-देव-आत्मनः—सारे देवताओं का आत्मा; मुखम्—मुख।

एक गृहस्थ अग्नि तथा ब्राह्मणों की पूजा करके उच्च लोकों में निवास करने के वांछित लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है क्योंकि यज्ञ की अग्नि तथा ब्राह्मणों को समस्त देवताओं के परमात्मा स्वरूप भगवान् विष्णु का मुख माना जाना चाहिए।

तात्पर्य : वैदिक प्रथा के अनुसार अग्नियज्ञ घी, अन्न, फल, फूल इत्यादि की आहुति देने के लिए किया जाता है, जिससे भगवान् विष्णु इन्हें खाकर सन्तुष्ट हों। *भगवद्गीता* (९.२६) में भगवान् कहते हैं—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।

तदहं भक्त्युपहृतम् अश्नामि प्रयतात्मनः ॥

''यदि कोई मुझे प्रेम तथा भक्ति के साथ एक पत्ती, एक फूल, फल या जल अर्पित करता है, तो मैं उसे ग्रहण करता हूँ।'' अतएव यज्ञ-अग्नि में ये सभी वस्तुएँ अर्पित की जाने से भगवान् विष्णु प्रसन्न हो जाएँगें। इसी प्रकार ब्राह्मण-भोजन की भी संस्तुति की जाती है क्योंकि जब ब्राह्मण लोग यज्ञ के पश्चात् बचे हुए भव्य भोजन को खाते हैं, तो इससे एक प्रकार से साक्षात् भगवान् विष्णु भोजन करते होते हैं। अतएव वैदिक सिद्धान्त संस्तुति करते हैं कि प्रत्येक उत्सव या पर्व पर अग्नि में आहुतियाँ

डाली जाये और ब्राह्मणों को खाने के लिए अच्छा भोजन दिया जाय। ऐसे कार्यों से गृहस्थ स्वर्गलोक तथा ऐसे ही अन्य उच्चलोकों को जाता है।

अपि सर्वे कुशलिनस्तव पुत्रा मनस्विनि ।
लक्षयेऽस्वस्थमात्मानं भवत्या लक्षणैरहम् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

अपि—चाहे तो; सर्वे—सभी; कुशलिनः—पूर्ण कुशलता के साथ; तव—तुम्हारे; पुत्राः—सारे पुत्र; मनस्विनि—हे विशाल हृदय वाली नारी; लक्षये—देखता हूँ; अस्वस्थम्—अशान्त; आत्मानम्—मन को; भवत्याः—तुम्हारे; लक्षणैः—लक्षणों से; अहम्—मैं।

हे मनस्विनि! तुम्हारे सारे पुत्र कुशलपूर्वक तो हैं? तुम्हारे म्लान मुख को देखकर मुझे लगता है कि तुम्हारा मन शान्त नहीं है। ऐसा क्यों है?

श्रीअदितिरुवाच
भद्रं द्विजगवां ब्रह्मन्धर्मस्यास्य जनस्य च ।
त्रिवर्गस्य परं क्षेत्रं गृहमेधिन्गृहा इमे ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

श्री-अदितिः उवाच—श्रीमती अदिति ने कहा; भद्रम्—कल्याण हो; द्विज-गवाम्—ब्राह्मणों तथा गायों का; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; धर्मस्य अस्य—शास्त्र वर्णित धर्म का; जनस्य—लोगों का; च—तथा; त्रि-वर्गस्य—उन्नति की तीन विधियों (धर्म, अर्थ तथा काम) का; परम्—परम; क्षेत्रम्—क्षेत्र; गृहमेधिन्—हे गृहस्थ जीवन में आसक्त मेरे पति; गृहाः—तुम्हारा घर; इमे—ये सारी वस्तुएँ।

अदिति ने कहा : हे मेरे पूज्य ब्राह्मण पति! सारे ब्राह्मण, गाएँ, धर्म तथा अन्य लोग कुशलपूर्वक हैं। हे मेरे घर के स्वामी! धर्म, अर्थ तथा काम—ये तीनों गृहस्थ जीवन में ही फलते फूलते हैं जिसके फलस्वरूप यह जीवन सौभाग्य से पूर्ण होता है।

तात्पर्य : गृहस्थ जीवन में मनुष्य धर्म, अर्थ एवं काम के तीन सिद्धान्तों को शास्त्रों के नियमों के अनुसार विकसित कर सकता है किन्तु मोक्ष-प्राप्ति के लिए मनुष्य को गृहस्थ जीवन का त्याग करके आध्यात्मिक संन्यास ग्रहण करना चाहिए। कश्यपमुनि संन्यासी नहीं थे; अतएव उन्हें यहाँ एक बार ब्राह्मण तथा दूसरी बार *गृहमेधिन* सम्बोधित किया गया है। उनकी पत्नी अदिति ने उन्हें विश्वास दिलाया कि जहाँ तक गृहस्थ-जीवन का सम्बन्ध था, हर बात सु-चारु ढंग से हो रही थी और ब्राह्मणों तथा गायों को सम्मान तथा संरक्षण प्रदान किया जा रहा था। दूसरे शब्दों में, किसी प्रकार की परेशानी नहीं थी; गृहस्थ-जीवन ठीक तरह से उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रहा था।

अग्नयोऽतिथयो भृत्या भिक्षवो ये च लिप्सवः ।
सर्वं भगवतो ब्रह्मन्ननुध्यानान्न रिष्यति ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

अग्नयः—अग्नि की पूजा; अतिथयः—अतिथियों का स्वागत; भृत्याः—सेवकों को तुष्ट करना; भिक्षवः—भिखारियों को प्रसन्न रखना; ये—जो; च—तथा; लिप्सवः—वे जैसा चाहते हैं (वैसा ही उनका ध्यान रखा जाता है); सर्वम्—सारे के सारे; भगवतः—मेरे स्वामी आपका; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; अनुध्यानात्—निरन्तर ध्यान करने से; न रिष्यति—कुछ नहीं रह जाता (सब कुछ ठीक से हो जाता है)।

हे प्रिय पति! मैं अग्नि, अतिथि, सेवक तथा भिखारी इन सब की समुचित देखभाल करती रही हूँ। चूँकि मैं सदैव आपका चिन्तन करती रही हूँ अतएव धर्म में किसी प्रकार की उपेक्षा की सम्भावना नहीं रही।

को नु मे भगवन्कामो न सम्पद्येत मानसः ।
यस्या भवान्प्रजाध्यक्ष एवं धर्मान्प्रभाषते ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

कः—क्या; नु—निस्सन्देह; मे—मेरा; भगवन्—हे स्वामी; कामः—इच्छा; न—नहीं; सम्पद्येत—पूरा किया जा सकता है; मानसः—मन के भीतर; यस्याः—मेरे; भवान्—साक्षात् आप; प्रजा-अध्यक्षः—प्रजापति; एवम्—इस प्रकार; धर्मान्—धार्मिक सिद्धान्तों की; प्रभाषते—बातें करते हैं।

हे स्वामी! जब आप प्रजापति हैं और धर्म के सिद्धान्तों के पालन में साक्षात् मेरे उपदेशक हैं, तो फिर मेरी इच्छाओं के पूरा न होने में क्या सम्भावना हो सकती है?

तवैव मारीच मनःशरीरजाः
प्रजा इमाः सत्त्वरजस्तमोजुषः ।
समो भवांस्तास्वसुरादिषु प्रभो
तथापि भक्तं भजते महेश्वरः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

तव—तुम्हारा; एव—निस्सन्देह; मारीच—हे मरीचि के पुत्र; मनः-शरीर-जाः—आपके शरीर या मन से उत्पन्न (सारे असुर तथा देवता); प्रजाः—आपसे उत्पन्न; इमाः—ये सब; सत्त्व-रजः-तमः-जुषः—सतो, रजो तथा तमो गुणों से दूषित; समः—समान; भवान्—आप; तासु—उनमें से हर एक को; असुर-आदिषु—असुरों इत्यादि में; प्रभो—हे स्वामी; तथा अपि—फिर भी; भक्तम्—भक्तों को; भजते—परवाह करता है; महा-ईश्वरः—भगवान्, परम नियन्ता।

हे मरीचि पुत्र! आप महापुरुष होने के कारण असुरों तथा देवताओं के प्रति समभाव रखते हैं क्योंकि वे या तो आपके शरीर से उत्पन्न हैं या आपके मन से। वे सतो, रजो तथा तमो गुणों में से किसी न किसी गुण से युक्त हैं। लेकिन परम नियन्ता भगवान् समस्त जीवों पर समदर्शी होते हुए

भी भक्तों पर विशेष रूप से अनकूल रहते हैं।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (९.२९) में भगवान् कहते हैं—

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रिय: ।

ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥

यद्यपि भगवान् हर एक के प्रति समभाव रखने वाले हैं, किन्तु वे अपनी भक्ति करने वालों के प्रति विशेष उन्मुख रहते हैं। भगवान् कहते हैं—*कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्त: प्रणश्यति*—हे कुन्तीपुत्र! तुम घोषित कर दो कि मेरा भक्त कभी विनष्ट नहीं होता। अन्यत्र भगवान् कृष्ण कहते हैं—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।

मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्या: पार्थ सर्वश: ॥

(*भगवद्गीता* ४.११)

वस्तुत: प्रत्येक व्यक्ति भगवान् को विभिन्न विधियों से प्रसन्न करना चाहता है, किन्तु प्रसन्न करने की उनकी विधि के अनुसार ही भगवान् उन्हें विभिन्न वर देते हैं। इस प्रकार अदिति ने अपने पति से विनय की कि चूँकि परम नियन्ता भी अपने भक्तों का पक्ष लेते हैं और कश्यप का अपना ही भक्तपुत्र इन्द्र संकट में है अतएव उन्हें चाहिए कि वे इन्द्र की को कृपा प्रदान करें।

तस्मादीश भजन्त्या मे श्रेयश्चिन्तय सुव्रत ।
हृतश्रियो हृतस्थानान्सपत्नै: पाहि न: प्रभो ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—अतएव; ईश—हे परमशक्तिशाली नियन्ता; भजन्त्या:—अपने सेवक का; मे—मेरा; श्रेय:—कल्याण; चिन्तय—जरा विचार करें; सु-व्रत—हे भद्र; हृत-श्रिय:—ऐश्वर्यविहीन; हृत-स्थानान्—घर-बार से रहित; सपत्नै:—प्रतिद्वन्द्वियों द्वारा; पाहि—रक्षा कीजिये; न:—हम सबकी; प्रभो—हे स्वामी।.

अतएव हे भद्र स्वामी! अपनी दासी पर कृपा कीजिये। हमारे प्रतिद्वन्द्वी असुरों ने अब हमें ऐश्वर्य तथा घर-बार से विहीन कर दिया है। कृपा करके हमें संरक्षण प्रदान कीजिये।

तात्पर्य : देवताओं की माता अदिति ने कश्यपमुनि से अनुरोध किया कि वे देवताओं को संरक्षण प्रदान करें। जब हम देवताओं का नाम लेते हैं, तो उसमें उनकी माता भी सम्मिलित रहती हैं।

पैर्रिवासिता साहं मग्ना व्यसनसागरे ।

ऐश्वर्यं श्रीर्यशः स्थानं हृतानि प्रबलैर्मम ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

परैः—अपने शत्रुओं द्वारा; विवासिता—अपने अपने घरों से निकाली जाकर; सा—वही; अहम्—मैं; मग्ना—डूबी हुई; व्यसन-सागरे—कष्ट के समुद्र में; ऐश्वर्यम्—ऐश्वर्य; श्रीः—सौन्दर्य; यशः—कीर्ति; स्थानम्—स्थान; हृतानि—छीने गये; प्रबलैः—अत्यन्त शक्तिशाली; मम—मेरा।

हमारे अत्यन्त शक्तिशाली शत्रु असुरों ने हमारा ऐश्वर्य, हमारा सौन्दर्य, हमारा यश यहाँ तक कि हमारा घर भी हमसे छीन लिया है। निस्सन्देह, हमें अब वनवास दे दिया गया है और हम विपत्ति के सागर में डूब रहे हैं।

यथा तानि पुनः साधो प्रपद्येरन्ममात्मजाः ।
तथा विधेहि कल्याणं धिया कल्याणकृत्तम ॥ १७॥

शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; तानि—हमारी सारी खोई वस्तुओं को; पुनः—फिर से; साधो—हे साधु पुरुष; प्रपद्येरन्—पुनः प्राप्त कर सकें; मम—मेरा; आत्मजाः—सन्तानें, पुत्र; तथा—उसी प्रकार; विधेहि—कृपा करके करें; कल्याणम्—कल्याण; धिया—विचारार्थ; कल्याण-कृत्-तम—हमारा कल्याण करने वाले सर्वोत्तम व्यक्ति आप।

हे श्रेष्ठ साधु, हे कल्याण करने वाले परम श्रेष्ठ! हमारी स्थिति पर विचार करें और मेरे पुत्रों को ऐसा वर दें जिससे वे अपनी खोई हुई वस्तुएँ फिर से प्राप्त कर सकें।

श्रीशुक उवाच
एवमभ्यर्थितोऽदित्या कस्तामाह स्मयन्निव ।
अहो मायाबलं विष्णोः स्नेहबद्धमिदं जगत् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार से; अभ्यर्थितः—प्रार्थना किये जाने पर; अदित्या—अदिति द्वारा; कः—कश्यपमुनि ने; ताम्—उससे; आह—कहा; स्मयन्—मुस्काते हुए; इव—के सदृश; अहो—ओह; माया-बलम्—माया का प्रभाव; विष्णोः—विष्णु की; स्नेह-बद्धम्—इस स्नेह से प्रभावित; इदम्—यह; जगत्—सारा संसार।

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : जब अदिति ने कश्यपमुनि से इस प्रकार प्रार्थना की तो वे कुछ मुस्काये और उन्होंने कहा "ओह! भगवान् विष्णु की माया कितनी प्रबल है, जिससे सारा संसार बच्चों के स्नेह से बँधा है।"

तात्पर्य : कश्यपमुनि अपनी पत्नी के कष्ट के प्रति निश्चित रूप से सहानुभूति रखते थे; फिर भी वे चकित थे कि सारा संसार स्नेह से किस प्रकार प्रभावित है।

क्व देहो भौतिकोऽनात्मा क्व चात्मा प्रकृतेः परः ।

कस्य के पतिपुत्राद्या मोह एव हि कारणम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

क्व—कहाँ है; देहः—यह भौतिक शरीर; भौतिकः—पाँच तत्त्व से बना; अनात्मा—जो आत्मा नहीं है; क्व—कहाँ है; च—भी; आत्मा—आत्मा; प्रकृतेः—भौतिक जगत के प्रति; परः—दिव्य; कस्य—किसका; के—कौन है; पति—पति; पुत्र-आद्याः—अथवा पुत्र इत्यादि; मोहः—मोह; एव—निस्सन्देह; हि—निश्चय ही; कारणम्—कारण।

कश्यपमुनि ने आगे कहा : यह पाँच तत्त्वों से बना भौतिक शरीर है क्या? यह आत्मा से भिन्न है। निस्सन्देह, आत्मा उन भौतिक तत्त्वों से सर्वथा भिन्न है जिनसे यह शरीर बना हुआ है। किन्तु शारीरिक आसक्ति के कारण ही किसी को पति या पुत्र माना जाता है। ये मोहमय सम्बन्ध अज्ञान के कारण उत्पन्न होते हैं।

तात्पर्य : आत्मा या जीव निश्चय ही शरीर से भिन्न है, जो पाँच भौतिक तत्त्वों का मेल है। यह सीधा-सादा तथ्य है, किन्तु यह तब तक समझ में नहीं आता जब तक किसी को आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त न हो। कश्यपमुनि अपनी पत्नी से स्वर्गलोक में मिले थे, किन्तु सारे ब्रह्माण्ड में तथा इस पृथ्वी पर भी यही एक भ्रान्त धारणा फैली हुई है। जीवों की विभिन्न कोटियाँ होती हैं, किन्तु उनमें से लगभग सभी देहात्मबुद्धि के वशीभूत होते हैं। दूसरे शब्दों में, इस भौतिक संसार के सारे जीव आध्यात्मिक शिक्षा से न्यूनाधिक विहीन होते हैं। किन्तु वैदिक सभ्यता तो आध्यात्मिक शिक्षा पर टिकी है और यही आध्यात्मिक शिक्षा वह विशेष मूलाधार है, जिस पर अर्जुन से *भगवद्गीता* का प्रवचन किया गया था। *भगवद्गीता* के प्रारम्भ में कृष्ण अर्जुन को यह समझने का उपदेश देते हैं कि आत्मा शरीर से भिन्न है—

देहिनोऽस्मिन यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।

तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥

"जिस तरह देहधारी आत्मा इस शरीर में बचपन से युवावस्था तथा फिर वृद्धावस्था में जाता है उसी तरह मृत्यु के समय आत्मा किसी दूसरे शरीर में चला जाता है। आत्मसिद्ध जीव ऐसे परिवर्तन से मोह-ग्रस्त नहीं होता।" (*भगवद्गीता* २.१३)। दुर्भाग्यवश आधुनिक मानव सभ्यता में इस आध्यात्मिक शिक्षा का नितान्त अभाव है। कोई भी अपने असली हित को नहीं समझता जो भौतिक देह में नहीं अपितु आत्मा में निहित रहता है। शिक्षा का अर्थ है आध्यात्मिक शिक्षा। आध्यात्मिक शिक्षा के बिना देहात्मबुद्धि में रहकर कठिन श्रम करना पशु के समान जीवन बिताना है। *नायं देहो देहभाजां नृलोके कष्टान् कामानर्हते विड्भुजां ये* (*भागवत* ५.५.१)। लोग आत्मा के बारे में शिक्षा की परवाह न

करते हुए केवल शारीरिक सुविधाओं के लिए कठिन श्रम करते हैं। इस प्रकार वे अत्यन्त संकटाकीर्ण सभ्यता में रह रहे हैं क्योंकि यह तथ्य है कि आत्मा को एक शरीर से दूसरे में देहान्तर करना होता है (*तथा देहान्तरप्राप्तिः*)। आध्यात्मिक शिक्षा के बिना लोग अंधकार में रहते हैं और वे यह नहीं जानते कि इस देह के विनष्ट होने पर उनका क्या होगा। वे अन्धे बनकर काम करते हैं और अन्धे नेता ही उनका मार्गदर्शन करते हैं। *अन्धा यथान्धैरुपनीयमानास्तेऽपीशतन्त्र्याम् उरुदाम्नि बद्धाः* (*भागवत* ७.५.३१)। मूर्ख व्यक्ति यह नहीं जानता कि वह पूरी तरह भौतिक प्रकृति के बन्धन में है और मृत्यु के बाद प्रकृति उस पर एक विशेष प्रकार की देह थोपेगी जिसे उसे स्वीकार करना होगा। वह यह नहीं जानता कि भले ही इस वर्तमान शरीर में वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व्यक्ति क्यों न हो, किन्तु हो सकता है कि अगले जन्म में उसे प्रकृति के गुणों अन्तर्गत अपने कार्यों से अज्ञान के कारण पशु या वृक्ष का शरीर धारण करना पड़े। अतएव कृष्णभावनामृत आन्दोलन सारे जीवों को आध्यात्मिक शरीर का असली ज्ञान प्रदान करने का प्रयास कर रहा है। इस आन्दोलन को समझ पाना कठिन नहीं है और लोगों को चाहिए कि इसका लाभ उठायें क्योंकि यह उन्हें अनुत्तरदायित्वपूर्ण संकटमय जीवन से बचा लेगा।

उपतिष्ठस्व पुरुषं भगवन्तं जनार्दनम् ।
सर्वभूतगुहावासं वासुदेवं जगद्गुरुम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

उपतिष्ठस्व—पूजने का प्रयास करो; पुरुषम्—परम पुरुष को; भगवन्तम्—भगवान् को; जनार्दनम्—समस्त शत्रुओं का वध कर सकने वाले को; सर्व-भूत-गुहा-वासम्—हर एक के हृदय में वास करने वाले; वासुदेवम्—वसुदेव के पुत्र, सर्वव्यापी वासुदेव कृष्ण को; जगत्-गुरुम्—सारे संसार के गुरु तथा शिक्षक को।

हे अदिति! तुम उन भगवान् की भक्ति में लगो जो हर एक के स्वामी हैं, जो हर एक के शत्रुओं का दमन करने वाले हैं तथा जो हर एक के हृदय के भीतर आसीन रहते हैं। वे ही परम पुरुष, श्रीकृष्ण या वासुदेव, सब को शुभ वरदान दे सकते हैं क्योंकि वे विश्व के स्वामी हैं।

तात्पर्य : कश्यपमुनि ने इन शब्दों के द्वारा अपनी पत्नी को शान्त करना चाहा। अदिति ने अपने भौतिकतावादी पति से याचना की थी। निस्सन्देह, यह अति उत्तम है लेकिन वास्तव में किसी का भौतिकतावादी सम्बन्धी उसकी कोई भलाई नहीं कर सकता। यदि कोई भलाई की जा सकती है, तो वह भगवान् वासुदेव द्वारा ही की जाती है। इसलिए कश्यपमुनि ने अपनी पत्नी अदिति को उपदेश दिया कि वह भगवान् वासुदेव की पूजा करनी शुरू कर दे जो हर एक के हृदय के भीतर आसीन हैं। वे

सबके मित्र हैं और जनार्दन कहे जाते हैं क्योंकि वे समस्त शत्रुओं का विनाश कर सकते हैं। भौतिक प्रकृति के तीन गुण हैं—सतो, रजो तथा तमो और प्रकृति के भी ऊपर दूसरा जगत है, जो *शुद्ध-सत्त्व* कहलाता है। भौतिक जगत में सतोगुण सर्वश्रेष्ठ माना जाता है, किन्तु भौतिक कल्मष के कारण कभी-कभी सतोगुण भी रजो तथा तमो गुणों से पराजित हो जाता है। किन्तु जब कोई व्यक्ति इन गुणों की स्पर्धा को पार करके अपने को भक्ति में लगाता है, तो वह प्रकृति के तीनों गुणों से ऊपर उठ जाता है। उस दिव्य अवस्था में वह शुद्ध चेतना को प्राप्त होता है। *सत्त्वं विशुद्धं वसुदेव शब्दितम्* (*भागवत* ४.३.२३)। भौतिक प्रकृति के ऊपर वह पद है, जो वसुदेव कहलाता है अर्थात् भौतिक कल्मष से मुक्ति। केवल इसी पद पर मनुष्य को भगवान् वासुदेव की अनुभूति हो सकती है। इस प्रकार वसुदेव पद आध्यात्मिक आवश्यकता की पूर्ति करता है। *वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।* जब मनुष्य को वासुदेव अर्थात् भगवान् की अनुभूति हो जाती है, तो वह अत्यन्त महान् बन जाता है।

जैसी कि *भगवद्गीता* (१०.१०) में पुष्टि हुई है, परमात्मा (वासुदेव) हर एक के हृदय में स्थित हैं। भगवान् कहते हैं—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

"जो लोग निरन्तर भक्ति में लगे रहते हैं और प्रेमपूर्वक मेरी पूजा करते हैं उन्हें मैं वह बुद्धि देता हूँ जिससे वे मेरे पास आ सकें।"

ईश्वर सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति

"हे अर्जुन! भगवान् हर एक के हृदय में स्थित हैं" (*भगवद्गीता* १.६१)

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

"ऋषिगण मुझे समस्त यज्ञों तथा तपस्याओं का चरम प्रयोजन, समस्त लोकों तथा देवताओं का परमेश्वर तथा समस्त जीवों का उपकारी तथा शुभचिन्तक जानकर भौतिक क्लेशों के चंगुल से शान्ति प्राप्त करते हैं" (*भगवद्गीता* ५.२९)

जब कभी कोई परेशान हो तो उसे वासुदेव कृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण करनी चाहिए।

वे भक्त को इन सारी कठिनाइयों को पार करने तथा भगवद्धाम जाने की बुद्धि प्रदान करेंगे। कश्यपमुनि ने अपनी पत्नी को वासुदेव कृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण करने की सलाह दी जिससे उसकी सारी समस्याएँ सरलता से हल हो जाँय। इस प्रकार कश्यपमुनि एक आदर्श गुरु थे। वे इतने मूर्ख नहीं थे कि वे अपने आप को ईश्वर के समकक्ष एक महापुरुष के रूप में प्रस्तुत करते। वस्तुत: वे प्रामाणिक गुरु थे क्योंकि उन्होंने अपनी पत्नी को वासुदेव के चरणकमलों की शरण ग्रहण करने की सलाह दी। जो व्यक्ति अपने अधीनस्थ या शिष्य को वासुदेव की पूजा करने का उपदेश देता है, वह सचमुच प्रामाणिक गुरु है। इस प्रसंग में *जगद्‌गुरुम्* शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। कश्यपमुनि ने झूठे ही अपने को जगद्‌गुरु घोषित नहीं किया यद्यपि वे वास्तव में जगद्‌गुरु थे क्योंकि उन्होंने वासुदेव के पक्ष का समर्थन किया। वस्तुत: वासुदेव ही जगद्‌गुरु हैं जैसाकि यहाँ स्पष्ट कहा गया है (*वासुदेवं जगद्‌गुरुम्*)। जो वासुदेव के उपदेशों की अर्थात् *भगवद्‌गीता* की शिक्षा देता है, वह *वासुदेवं जगद्‌गुरुम्* जैसा ही होता है। किन्तु जब कोई इस उपदेश की यथारूप शिक्षा नहीं देता किन्तु अपने आपको जगद्‌गुरु घोषित करता है, तो वह जनता को मात्र ठगता है। कृष्ण ही जगद्‌गुरु हैं और जो कृष्ण की ओर से यथारूप में कृष्ण के उपदेश की शिक्षा देता है उसे जगद्‌गुरु माना जा सकता है। जो अपने सिद्धान्त स्वयं गढ़ता है उसे जगद्‌गुरु नहीं माना जा सकता; वह झूठे ही जगद्‌गुरु बन बैठता है।

स विधास्यति ते कामान्हरिर्दीनानुकम्पनः ।
अमोघा भगवद्भक्तिर्नेतरेति मतिर्मम ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (वासुदेव); विधास्यति—निश्चय ही पूरा करेगा; ते—तुम्हारी; कामान्—इच्छाएँ; हरिः—भगवान्; दीन—दुखिया पर; अनुकम्पनः—अत्यन्त कृपालु; अमोघा—अच्युत; भगवत्-भक्तिः—भगवान् की भक्ति; न—नहीं; इतरा—भगवद्भक्ति के अतिरिक्त कुछ भी; इति—इस प्रकार; मतिः—अभिमत; मम—मेरा।

दीनों पर अत्यन्त दयालु भगवान् तुम्हारी सारी इच्छाओं को पूरा करेंगे क्योंकि उनकी भक्ति अच्युत है। भक्ति के अतिरिक्त अन्य सारी विधियाँ व्यर्थ हैं। ऐसा मेरा मत है।

तात्पर्य : मनुष्य तीन प्रकार के होते हैं—*अकाम, मोक्षकाम* तथा *सर्वकाम।* जो इस जगत से मोक्ष पाना चाहता है, वह *मोक्षकाम* है; जो इस जगत का पूरा-पूरा भोग करना चाहता हे वह *सर्वकाम* कहलाता है, किन्तु जिसने सारी इच्छाएँ पहले ही पूरी कर ली हैं और अब जिसे कोई भौतिक इच्छा नहीं सताती वह अकाम कहलाता है। भक्त को कोई इच्छा नहीं होती। *सर्वोपाधि विनिर्मुक्तं तत्परत्वेन*

निर्मलम्। वह शुद्ध है और भौतिक इच्छाओं से मुक्त होता है। मोक्षकामी परब्रह्म में विलीन होकर मोक्ष प्राप्त करना चाहता है अतएव ब्रह्म में विलीन होने की इस इच्छा के कारण वह अभी शुद्ध नहीं हुआ होता और जहाँ *मोक्षकामी* ही अशुद्ध हों वहाँ कर्मियों के विषय में क्या कहा जाये जिन्हें अनेक इच्छाओं की पूर्ति करनी होती है? फिर भी शास्त्रों का कथन है—

अकाम: सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधी:।

तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्॥

''चाहे कोई सब कुछ चाहता हो या कुछ भी न चाहता हो या वह भगवान् में विलीन होने की इच्छा करता हो, वह बुद्धिमान् तभी है यदि वह दिव्य प्रेमाभक्ति द्वारा भगवान् कृष्ण की पूजा करता है'' (*भागवत* २.३.१०)।

कश्यपमुनि ने देखा कि उनकी पत्नी अदिति में अपने पुत्रों के भौतिक कल्याण के लिए कुछ इच्छाएँ हैं फिर भी उन्होंने उन्हें भगवान् की भक्ति करने की सलाह दी। दूसरे शब्दों में, चाहे कोई कर्मी हो या ज्ञानी अथवा योगी हो या भक्त, उसे सदा वासुदेव के चरणकमलों की शरण ग्रहण करनी चाहिए और उनकी दिव्य प्रेमाभक्ति करनी चाहिए जिससे उसकी सारी इच्छाएँ पूरी हो सकें। कृष्ण *दीन-अनुकम्पन* हैं—वे सब पर परम दयालु रहते हैं। अतएव यदि कोई अपनी भौतिक इच्छाएँ पूरी करना चाहता है, तो कृष्ण उसकी सहायता करते हैं। निस्सन्देह, यदि भक्त अत्यन्त निष्ठावान् होता है, तो भगवान् कभी कभी उस पर विशेष कृपा करके उसकी भौतिक इच्छाएँ पूरी करने से इनकार कर देते हैं और सीधे उसे अनन्य शुद्ध भक्ति का आशीर्वाद देते हैं। *चैतन्यचरितामृत* में (आदि २२.३-३९) कहा गया है—

कृष्ण कहे—'आमा भजे, मागे विषय-सुख

अमृत छाडि' विष मागे—एइ बड़ मूर्ख

आमि—विज्ञ, एइ मूर्खे 'विषय' केने दिब?

स्वचरणामृत दिया 'विषय' भुलाइब

कृष्ण कहते हैं ''यदि कोई मेरी दिव्य प्रेमा-भक्ति में लगा रहकर साथ ही भौतिक भोग का ऐश्वर्य चाहता है, तो वह बहुत बड़ा मूर्ख है। वह निस्सन्देह ऐसे पुरुष के तुल्य है, जो विषपान करने के लिए

अमृत छोड़ देता है। चूँकि मैं अत्यन्त बुद्धिमान् हूँ अतएव मैं इस मूर्ख को भौतिक सम्पन्नता क्यों दूँ? मैं तो उसे अपने चरणकमलों की शरण का अमृत ग्रहण करने तथा मोहमय भौतिक भोग को भूलने के लिए प्रेरित करूँगा।'' यदि भक्त किसी भौतिक इच्छा के साथ-साथ कृष्ण के चरणकमलों में निष्ठापूर्वक अपने मन को लगाना चाहता है, तो कृष्ण उसे सीधे शुद्ध भक्ति प्रदान कर सकते हैं और उसकी सारी भौतिक इच्छाओं तथा सम्पत्ति को हर सकते हैं। यह भक्तों के प्रति भगवान् का विशेष अनुग्रह होता है। अन्यथा यदि कोई कृष्ण की भक्ति करता है, किन्तु फिर भी भौतिक इच्छाएँ पूरी करना चाहता है, तो वह ध्रुव महाराज के ही समान सारी भौतिक इच्छाओं से मुक्त हो सकता है, किन्तु इसमें कुछ समय लग सकता है किन्तु यदि कोई निष्ठावान् भक्त मात्र कृष्ण के चरणकमलों को चाहता है, तो कृष्ण उसे शुद्धभक्ति प्रदान करते हैं।

श्रीअदितिरुवाच
केनाहं विधिना ब्रह्मन्नुपस्थास्ये जगत्पतिम् ।
यथा मे सत्यसङ्कल्पो विदध्यात्स मनोरथम् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

श्री-अदितिः उवाच—श्रीमती अदिति प्रार्थना करने लगीं; केन—किसके द्वारा; अहम्—मैं; विधिना—विधानों द्वारा; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; उपस्थास्ये—प्रसन्न कर सकती हूँ; जगत्-पतिम्—ब्रह्माण्ड के स्वामी, जगन्नाथ को; यथा—जिससे; मे—मेरा; सत्य-सङ्कल्पः—इच्छापूर्ति; विदध्यात्—पूरा करे; सः—वह (भगवान्); मनोरथम्—इच्छाएँ, कामनाएँ।

श्रीमती अदिति ने कहा : हे ब्राह्मण! मुझे वह विधि-विधान बतलायें जिससे मैं जगन्नाथ की पूजा कर सकूँ और भगवान् मुझसे प्रसन्न होकर मेरी समस्त इच्छाओं को पूरा कर दें।

तात्पर्य : कहा गया है ''आपन चेती होत नहिं प्रभु चेती तत्काल।'' इस तरह कोई मनुष्य अनेक वस्तुएँ चाह सकता है, किन्तु जब तक भगवान् इन इच्छाओं को पूरा नहीं करते तब तक वे पूरी नहीं हो पातीं। इच्छा की पूर्ति सत्यसङ्कल्प कहलाती है। यह शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अदितिने अपने आप को आप को अपने पति की दया पर छोड़ दिया जिससे वे उसे ऐसे आदेश दे सकें जिनसे वह भगवान् की पूजा करके अपनी सारी इच्छाओं की पूर्ति कर सके। शिष्य को पहले तय करना चाहिए कि मैं परमेश्वर की पूजा करूँगा; तभी गुरु अपने शिष्य को सही निर्देश देगा। कोई अपने गुरु के ऊपर शासन नहीं चला सकता जिस प्रकार रोगी वैद्य से किसी दवा-विशेष की मांग नहीं कर सकता। यही भगवान् की पूजा का शुभारम्भ है। जैसाकि *भगवद्गीता* (७.१६) में पुष्टि की गई है—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।

आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

'हे भरतश्रेष्ठ! चार प्रकार के शुद्ध लोग मेरी भक्ति करते हैं—आर्त, धन के इच्छुक, जिज्ञासु तथा ब्रह्मज्ञान की खोज करने वाले। अदिति *आर्त* अर्थात् विपदाग्रस्त थीं। वे अत्यन्त दुखी थीं क्योंकि उनके पुत्र देवतागण हर वस्तु से वंचित हो चुके थे। अतः वे अपने पति कश्यपमुनि के निर्देशन में भगवान् की शरण लेना चाह रही थी।

आदिश त्वं द्विजश्रेष्ठ विधिं तदुपधावनम् ।
आशु तुष्यति मे देवः सीदन्त्याः सह पुत्रकैः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

आदिश—मुझे उपदेश दें; त्वम्—हे मेरे पति; द्विज-श्रेष्ठ—हे ब्राह्मणश्रेष्ठ; विधिम्—विधि-विधानों को; तत्—भगवान्; उपधावनम्—पूजा की विधि; आशु—शीघ्र; तुष्यति—प्रसन्न हो जाता है; मे—मुझ पर; देवः—भगवान्; सीदन्त्याः—अब शोक करते; सह—साथ; पुत्रकैः—अपने सारे पुत्र देवताओं के।

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! कृपा करके मुझे भगवान् की भक्तिपूर्वक पूजा की पूर्ण विधि का उपदेश दें जिससे भगवान् मुझ पर तुरन्त ही प्रसन्न हो जायें और मुझे मेरे पुत्रों सहित इस अत्यन्त संकटपूर्ण परिस्थिति से उबार लें।

तात्पर्य : कभी-कभी अल्पज्ञ व्यक्ति यह पूछते हैं कि क्या आध्यात्मिक उन्नति हेतु भक्ति करने के लिए उन्हें गुरु के पास जाकर शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। इसका उत्तर यहाँ दिया गया है—यहीं क्यों, *भगवद्गीता* में भी जहाँ अर्जुन ने कृष्ण को अपना गुरु मान लिया हैं (*शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्*)। वेदों का भी यह उपदेश है—*तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्*—यदि कोई सचमुच आध्यात्मिक जीवन में उन्नति का इच्छुक है, तो उसे समुचित मार्गदर्शन के लिए गुरु बनाना चाहिए। भगवान् कहते हैं कि मनुष्य को आचार्य की पूजा करनी चाहिए क्योंकि वह भगवान् का प्रतिनिधि होता है (*आचार्यं मां विजानीयात्*)। मनुष्य को यह अवश्य समझ लेना चाहिए। *चैतन्यचरितामृत* में कहा गया है कि गुरु भगवान् की अभिव्यक्ति होता है। अतएव शास्त्रों में प्राप्य सभी प्रमाणों तथा भक्तों के व्यावहारिक आचरण के आधार पर मनुष्य को कोई बनाना चाहिए। अदिति ने अपने पति को अपना गुरु मान लिया जिससे वे उसका मार्गदर्शन कर सकें कि किस तरह भगवान् की पूजा करके आध्यात्मिक चेतना या भक्ति में प्रगति करनी चाहिए।

श्रीकश्यप उवाच

एतन्मे भगवान्पृष्टः प्रजाकामस्य पद्मजः ।
यदाह ते प्रवक्ष्यामि व्रतं केशवतोषणम् ॥ २४॥

शब्दार्थ

श्री-कश्यपः उवाच—कश्यपमुनि ने कहा; एतत्—यह; मे—मेरे द्वारा; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; पृष्टः—पूछे जाने पर; प्रजा-कामस्य—सन्तान की इच्छा से; पद्म-जः—कमल पुष्प से उत्पन्न ब्रह्माजी ने; यत्—जो भी; आह—कहा; ते—तुमको; प्रवक्ष्यामि—बताऊँगा; व्रतम्—पूजा के रूप में; केशव-तोषणम्—जिसमें भगवान् केशव तुष्ट होते हैं।

श्री कश्यपमुनि ने कहा : जब मुझे सन्तान की इच्छा हुई तो मैंने कमलपुष्प से उत्पन्न होने वाले ब्रह्माजी से जिज्ञासा की। अब मैं तुम्हें वही विधि बताऊँगा जिसका उपदेश ब्रह्माजी ने मुझे दिया था और जिससे भगवान् केशव तुष्ट होते हैं।

तात्पर्य : यहाँ पर भक्तियोग की विधि की और अधिक व्याख्या की गई है। कश्यपमुनि अदिति को उसी विधि का उपदेश करना चाहते थे जिसकी संस्तुति ब्रह्माजी द्वारा भगवान् को तुष्ट करने के लिए की गई थी। यह महत्त्वपूर्ण है। गुरु अपने शिष्य को उपदेश देने के लिए किसी नई विधि का निर्माण नहीं करता। शिष्य अपने गुरु से ऐसी प्रामाणिक विधि प्राप्त करता है, जो उन्हें उनके गुरु द्वारा प्राप्त हुई होती है। यह शिष्य-परम्परा कहलाती है (*एवं परम्परा-प्राप्तं इमं राजर्षयो विदुः*)। भक्तियोग प्राप्त करने की यह प्रामाणिक वैदिक विधि है, जिससे भगवान् प्रसन्न किये जाते हैं। अतएव प्रामाणिक गुरु के पास जाना अनिवार्य है। प्रामाणिक गुरु वह है, जिसे अपने गुरु की कृपा प्राप्त हुई होती है। इसी तरह वह गुरु भी प्रामाणिक होता है क्योंकि उसे अपने गुरु की कृपा प्राप्त हुई होती है। यह *परम्परा* पद्धति कहलाती है। इस परम्परा पद्धति का पालन किये बिना गुरु से प्राप्त किए हुए मंत्र का उच्चारण निरर्थक होता है। आजकल न जाने कितने धूर्त गुरु हैं, जो आध्यात्मिक उन्नति के लिए नहीं, अपितु भौतिक उन्नति के लिए अपने मंत्र गढ़ लेते हैं। किन्तु यदि मंत्र गढ़ा हुआ रहता है, तो वह कभी सफल नहीं हो सकता। मंत्रों में तथा भक्तियोग में विशेष शक्ति होती है बशर्ते कि उन्हें प्रामाणिक व्यक्ति से प्राप्त किया जाये।

फाल्गुनस्यामले पक्षे द्वादशाहं पयोव्रतम् ।
अर्चयेदरविन्दाक्षं भक्त्या परमयान्वितः ॥ २५॥

शब्दार्थ

फाल्गुनस्य—फाल्गुन मास (फरवरी-मार्च) को; अमले—शुक्लपक्ष; पक्षे—पखवारे में; द्वादश-अहम्—बारह दिनों तक, जिसका अन्त द्वादशी के दिन होता है; पयः-व्रतम्—केवल दूध ग्रहण करने का व्रत; अर्चयेत्—पूजा करे; अरविन्द-अक्षम्—कमलनयन भगवान् की; भक्त्या—भक्ति के साथ; परमया—शुद्ध; अन्वितः—से युक्त।

फाल्गुन मास (फरवरी-मार्च) के शुक्लपक्ष में द्वादशी तक के बारह दिनों तक मनुष्य को केवल दूध पर आश्रित रहकर व्रत रखना चाहिए और भक्तिपूर्वक कमलनयन भगवान् की पूजा करनी चाहिए।

तात्पर्य : भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णु की पूजा करने का अर्थ है अर्चना मार्ग का अनुसरण करना।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।

अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

मनुष्य को भगवान् विष्णु या कृष्ण के अर्चाविग्रह की स्थापना करके, उन्हें वस्त्राभूषित करके, फूलों की मालाओं से अलंकृत करके, पूजन करना चाहिए और फल, फूल तथा घी-शक्कर और अन्न से तैयार किए गए सभी प्रकार के भोजन अर्पित करने चाहिए। और घंटी बजाते हुए उसकी आरती करनी चाहिए और दीप जलाकर अगुरु इत्यादि समर्पित करना चाहिए। यह भगवान् की पूजा (अर्चना) कहलाती है। यहाँ पर संस्तुति की गई है कि केवल दूध पीकर व्रत रखा जाये। यह पयोव्रत कहलाता है। जिस प्रकार हम लोग सामान्यतया एकादशी को अन्न न खाकर भक्ति करते हैं उसी तरह यह संस्तुति की जाती है कि द्वादशी के दिन दूध के अतिरिक्त और कुछ न खाया पिया जाये। *पयोव्रत* तथा भगवान् की अर्चन भक्ति शुद्ध भक्ति-भाव (*भक्त्या*) से की जानी चाहिए। भक्ति के बिना भगवान् की पूजा नहीं की जा सकती। *भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।* यदि कोई भगवान् को जानना चाहता है और भगवान् से सीधे जुड़ना चाहता है, तो वह यह जान कर कि वे क्या खाते हैं और किस तरह प्रसन्न होते हैं भक्तियोग का पालन करे। जैसी यहाँ पर भी संस्तुति की गई है—*भक्त्या परमयान्वितः*—मनुष्य को शुद्ध भक्ति से परिपूरित होना चाहिए।

सिनीवाल्यां मृदालिप्य स्नायात्क्रोडविदीर्णया ।
यदि लभ्येत वै स्रोतस्येतं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

सिनीवाल्याम्—अमावस्या के दिन; मृदा—मिट्टी से; आलिप्य—शरीर में लेप करके; स्नायात्—नहाए; क्रोड-विदीर्णया—सूअर की दाढ़ से खोदी हुई; यदि—यदि; लभ्येत—उपलब्ध हो; वै—निस्सन्देह; स्रोतसि—प्रवाहमान नदी में; एतम् मन्त्रम्—इस मंत्र को; उदीरयेत्—उच्चारण करे।

यदि सूअर द्वारा खोदी गई मिट्टी उपलब्ध हो तो अमावस्या के दिन अपने शरीर पर इस मिट्टी का लेप करे और बहती नदी में स्नान करे। स्नान करते समय निम्नलिखित मंत्र का उच्चारण करे।

त्वं देव्यादिवराहेण रसायाः स्थानमिच्छता ।
उद्धृतासि नमस्तुभ्यं पाप्मानं मे प्रणाशय ॥ २७॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; देवि—हे माता पृथ्वी; आदि-वराहेण—वराह के रूप में भगवान् द्वारा; रसायाः—ब्रह्माण्ड के निचले भाग से; स्थानम्—स्थान; इच्छता—चाहते हुए; उद्धृता असि—ऊपर उठाई गई; नमः तुभ्यम्—तुम्हें मेरा नमस्कार है; पाप्मानम्—सारे पापकर्म तथा उनके फल; मे—मेरे; प्रणाशय—विनष्ट कर दो।

हे माता पृथ्वी! तुम्हारे द्वारा ठहरने के लिए स्थान पाने की इच्छा करने पर भगवान् ने वराह रूप में तुम्हें ऊपर निकाला था। मैं प्रार्थना करता हूँ कि कृपा करके मेरे पापी जीवन के सारे फलों को आप विनष्ट कर दें। मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

निर्वर्तितात्मनियमो देवमर्चेत्समाहितः ।
अर्चायां स्थण्डिले सूर्ये जले वह्नौ गुरावपि ॥ २॥

शब्दार्थ

निर्वर्तित—समाप्त; आत्म-नियमः—प्रक्षालन, मंत्रोच्चारण इत्यादि नैत्यिक कर्म; देवम्—भगवान् को; अर्चेत्—पूजे; समाहितः—पूर्ण मनोयोग से; अर्चायाम्—अर्चाविग्रहों को; स्थण्डिले—वेदी को; सूर्ये—सूर्य को; जले—जल को; वह्नौ—अग्नि को; गुरौ—गुरु को; अपि—निस्सन्देह।

तत्पश्चात् वह अपने नित्य तथा नैमित्तिक आध्यात्मिक कार्य करे और तब बड़े ही मनोयोग से भगवान् के अर्चाविग्रह की पूजा करे। साथ ही वेदी, सूर्य, जल, अग्नि तथा गुरु को भी पूजे।

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महीयसे ।
सर्वभूतनिवासाय वासुदेवाय साक्षिणे ॥ २९॥

शब्दार्थ

नमः तुभ्यम्—मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ; भगवते—भगवान् को; पुरुषाय—परम पुरुष; महीयसे—सभी पुरुषों में श्रेष्ठ; सर्व-भूत-निवासाय—उस व्यक्ति को जो हर एक के हृदय में वास करता है; वासुदेवाय—भगवान् को जो सर्वत्र निवास करता है; साक्षिणे—सबके साक्षी।

हे भगवान्, हे महानतम, हे सब के हृदय में वास करने वाले तथा जिनमें सभी जीव वास करते हैं, हे प्रत्येक वस्तु के साक्षी, हे सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वव्यापी पुरुष वासुदेव! मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

नमोऽव्यक्ताय सूक्ष्माय प्रधानपुरुषाय च ।
चतुर्विंशद्गुणज्ञाय गुणसङ्ख्यानहेतवे ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

नमः—मैं आपको नमस्कार करता हूँ; अव्यक्ताय—जो भौतिक आँखों से नहीं देखे जाते; सूक्ष्माय—दिव्य; प्रधान-पुरुषाय—परम पुरुष को; च—भी; चतुः-विंशत्—चौबीस; गुण-ज्ञाय— तत्त्वों के ज्ञाता को; गुण-सङ्ख्यान—सांख्ययोग पद्धति का; हेतवे—मूल कारण।

हे परम पुरुष! मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ। अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण आप भौतिक आँखों से कभी नहीं दिखते। आप चौबीस तत्त्वों के ज्ञाता हैं और आप सांख्य योगपद्धति के सूत्रपात-कर्ता हैं।

तात्पर्य : *चतुर्विंशद् गुण* अर्थात् चौबीस तत्त्व इस प्रकार हैं—पाँच स्थूल तत्त्व (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश), तीन सूक्ष्म तत्त्व (मन, बुद्धि तथा अहंकार), दस इन्द्रियाँ (पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ), पाँच इन्द्रिय-विषय, तथा दूषित चेतना। ये *सांख्ययोग* के विषय हैं जिसका सूत्रपात भगवान् कपिलदेव द्वारा हुआ। इसी *सांख्ययोग* की स्थापना पुनः एक अन्य कपिल द्वारा हुई, किन्तु वे नास्तिक थे और उनकी पद्धति प्रामाणिक नहीं मानी जाती।

नमो द्विशीर्ष्णे त्रिपदे चतुःशृङ्गाय तन्तवे ।
सप्तहस्ताय यज्ञाय त्रयीविद्यात्मने नमः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

नमः—मैं आपको नमस्कार करता हूँ; द्वि-शीर्ष्णे—दो सिरों वाले; त्रि-पदे—तीन पाँव वाले; चतुः-शृङ्गाय—चार सींगों वाले; तन्तवे—विस्तार करने वाले; सप्त-हस्ताय—सात हाथों वाले; यज्ञाय—यज्ञ पुरुष को; त्रयी—वैदिक अनुष्ठानों के तीन गुण; विद्या-आत्मने—समस्त ज्ञान के स्वरूप भगवान् को; नमः—नमस्कार करता हूँ।

हे भगवान्! मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ जिनके दो सिर (प्रायणीय तथा उदानीय), तीन पाँव (सवन-त्रय), चार सींग (चार वेद) तथा सात हाथ (सप्त छन्द यथा गायत्री) हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ जिनका हृदय तथा आत्मा तीनों वैदिक काण्डों (कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड तथा उपासना काण्ड) हैं तथा जो इन काण्डों को यज्ञ के रूप में विस्तार देते हैं।

नमः शिवाय रुद्राय नमः शक्तिधराय च ।
सर्वविद्याधिपतये भूतानां पतये नमः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

नमः—मैं सादर नमस्कार करता हूँ; शिवाय—शिवजी नामक अवतार को; रुद्राय—रुद्र नामक अंश को; नमः—नमस्कार; शक्ति-धराय—समस्त शक्तियों के आगार; च—तथा; सर्व-विद्या-अधिपतये—समस्त ज्ञान के भंडार; भूतानाम्—सारे जीवों के; पतये—परम स्वामी को; नमः—नमस्कार करता हूँ।

हे शिव, हे रुद्र! मैं समस्त शक्तियों के आगार, समस्त ज्ञान के भंडार तथा प्रत्येक जीव के स्वामी आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : भगवान् के अंश या अवतार को मनुष्य द्वारा नमस्कार करने की प्रथा है। शिवजी तमोगुण के अवतार हैं, जो प्रकृति के भौतिक गुणों में से एक है।

नमो हिरण्यगर्भाय प्राणाय जगदात्मने ।
योगैश्वर्यशरीराय नमस्ते योगहेतवे ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

नमः—मैं आपको नमस्कार करता हूँ; हिरण्यगर्भाय—चार सिरों वाले हिरण्यगर्भ अर्थात् ब्रह्मा के रूप में स्थित; प्राणाय—हर एक के जीवन-स्रोत; जगत्-आत्मने—सम्पूर्ण विश्व के परमात्मा; योग-ऐश्वर्य-शरीराय—ऐश्वर्य तथा योग शक्ति से पूर्ण शरीर वाले; नमः ते—आपको नमस्कार करता हूँ; योग-हेतवे—समस्त योगशक्ति के आदि स्वामी को।

हिरण्यगर्भ रूप में स्थित, जीवन के स्रोत, प्रत्येक जीव के परमात्मा स्वरूप आपको मैं सादर नमस्कार करता हूँ। आपका शरीर समस्त योग के ऐश्वर्य का स्रोत है। मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

नमस्त आदिदेवाय साक्षिभूताय ते नमः ।
नारायणाय ऋषये नराय हरये नमः ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

नमः ते—आपको सादर नमस्कार करता हूँ; आदि-देवाय—आदि भगवान् को; साक्षि-भूताय—प्रत्येक के हृदय के भीतर हर बात के साक्षी स्वरूप; ते—तुम्हें; नमः—नमस्कार करता हूँ; नारायणाय—नारायण का अवतार धारण करने वाले; ऋषये—ऋषि को; नराय—मनुष्य के अवतार; हरये—भगवान् को; नमः—मैं सादर नमस्कार करता हूँ।

मैं आदि भगवान्, प्रत्येक के हृदय में स्थित साक्षी तथा मनुष्य रूप में नर-नारायण ऋषि के अवतार आपको सादर नमस्कार करता हूँ। हे भगवान्! मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

नमो मरकतश्यामवपुषेऽधिगतश्रिये ।
केशवाय नमस्तुभ्यं नमस्ते पीतवाससे ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

नमः—मैं नमस्कार करता हूँ; मरकत-श्याम-वपुषे—जिनके शरीर का रंग मरकत मणि के समान श्यामल है; अधिगत-श्रिये—माता लक्ष्मी जिनके अधीन हैं; केशवाय—केशी असुर का वध करने वाले भगवान् केशव को; नमः तुभ्यम्—मैं आपको नमस्कार करता हूँ; नमः ते—पुनः-पुनः नमस्कार करता हूँ; पीत-वाससे—पीताम्बर वाले।

हे पीताम्बरधारी भगवान्! मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ। आपके शरीर का रंग मरकत मणि जैसा है और आप लक्ष्मीजी को पूर्णतः वश में रखने वाले हैं। हे भगवान् केशव! मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

त्वं सर्ववरदः पुंसां वरेण्य वरदर्षभ ।
अतस्ते श्रेयसे धीराः पादरेणुमुपासते ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; सर्व-वर-दः—सभी प्रकार का वरदान देने वाले; पुंसाम्—सारे जीवों को; वरेण्य—हे परम पूज्य; वर-द-ऋषभ—समस्त वरदान देने वालों में सर्वशक्तिमान; अतः—इस कारण से; ते—तुम्हारा; श्रेयसे—समस्त कल्याण के स्रोत; धीराः—अत्यन्त गम्भीर; पाद-रेणुम् उपासते—चरणकमलों की धूल को पूजते हैं।.

हे परम पूज्य भगवान्, हे वरदायकों में श्रेष्ठ! आप हर एक की इच्छाओं को पूरा कर सकते हैं अतएव जो धीर हैं, वे अपने कल्याण के लिए आपके चरणकमलों की धूल को पूजते हैं।

अन्ववर्तन्त यं देवाः श्रीश्च तत्पादपद्मयोः ।
स्पृहयन्त इवामोदं भगवान्मे प्रसीदताम् ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

अन्ववर्तन्त—भक्ति में रत; यम्—जिसको; देवाः—सारे देवता; श्रीः च—तथा लक्ष्मीजी; तत्-पाद-पद्मयोः—उन भगवान् के चरणकमलों का; स्पृहयन्तः—चाहते हुए; इव—सदृश; आमोदम्—दैवी आनन्द; भगवान्—भगवान्; मे—मुझ पर; प्रसीदताम्—प्रसन्न हों।.

सारे देवता तथा लक्ष्मीजी भी उनके चरणकमलों की सेवा में लगी रहती हैं। निस्सन्देह, वे उन चरणकमलों की सुगन्ध का आदर करते हैं। ऐसे भगवान् मुझ पर प्रसन्न हों।

एतैर्मन्त्रैर्हृषीकेशमावाहनपुरस्कृतम् ।
अर्चयेच्छ्रद्धया युक्तः पाद्योपस्पर्शनादिभिः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

एतैः मन्त्रैः—इन मंत्रों के उच्चारण करने से; हृषीकेशम्—समस्त इन्द्रियों के स्वामी भगवान् को; आवाहन—बुलाना; पुरस्कृतम्—सभी प्रकार से सम्मान करते हुए; अर्चयेत्—पूजा करे; श्रद्धया—श्रद्धा तथा भक्ति के साथ; युक्तः—लगा हुआ; पाद्य-उपस्पर्शन-आदिभिः—पूजा की साज-सामग्री (पाद्य, अर्घ्य, आदि) द्वारा।.).

कश्यप मुनि ने आगे कहा : इन सभी मंत्रों के उच्चारण द्वारा भगवान् का श्रद्धा तथा भक्ति के साथ स्वागत करके एवं उन्हें पूजा की वस्तुएँ (पाद्य तथा अर्घ्य) अर्पित करके मनुष्य को केशव अर्थात् हृषीकेश भगवान् कृष्ण की पूजा करनी चाहिए।

**अर्चित्वा गन्धमाल्याद्यैः पयसा स्नपयेद्विभुम् ।
वस्त्रोपवीताभरणपाद्योपस्पर्शनैस्ततः ।
गन्धधूपादिभिश्चार्चेद्द्वादशाक्षरविद्यया ॥ ३९ ॥**

शब्दार्थ

अर्चित्वा—इस प्रकार पूजा करके; गन्ध-माल्य-आद्यैः—अगुरु, फूल की माला आदि के द्वारा.; पयसा—दूध से; स्नपयेत्—नहलाए; विभुम्—भगवान् को; वस्त्र—वस्त्र; उपवीत—जनेऊ; आभरण—गहने; पाद्य—चरणकमलों को धोने के लिए प्रयुक्त जल; उपस्पर्शनैः—स्पर्श द्वारा; ततः—तत्पश्चात्; गन्ध—सुगंध; धूप—धूपबत्ती; आदिभिः—इत्यादि से; च—तथा; अर्चेत्—पूजा करे; द्वादश-अक्षर-विद्यया—बारह अक्षरों वाले मंत्र से।.

सर्वप्रथम भक्त को द्वादश अक्षर मंत्र का उच्चारण करना चाहिए और फूल की माला, अगुरु इत्यादि अर्पित करने चाहिए। इस प्रकार से भगवान् की पूजा करने के बाद भगवान् को दूध से नहलाना चाहिए और उन्हें समुचित वस्त्र तथा यज्ञोपवीत (जनेऊ) पहनाकर गहनों से सजाना चाहिए। तत्पश्चात् भगवान् के चरणों का प्रक्षालन करने के लिए जल अर्पित करके सुगंधित पुष्प, अगुरु तथा अन्य सामग्री से भगवान् की पुनः पूजा करनी चाहिए।

तात्पर्य : *द्वादशाक्षर मन्त्र* है— *ॐ नमोभगवते वासुदेवाय।* अर्चाविग्रह की पूजा करते हुए भक्त को चाहिए कि वह बाएँ हाथ से घंटी बजाए और पाद्य, अर्घ्य, वस्त्र, गन्ध, माला, आभरण, भूषण इत्यादि अर्पित करे। इस तरह भगवान् को दूध से नहलाकर वस्त्र पहनाना चाहिए और समस्त सामग्री से उनकी पुनः पूजा करनी चाहिए।

**शृतं पयसि नैवेद्यं शाल्यन्नं विभवे सति ।
ससर्पिः सगुडं दत्त्वा जुहुयान्मूलविद्यया ॥ ४० ॥**

शब्दार्थ

शृतम्—पकाया गया; पयसि—दूध में; नैवेद्यम्—अर्चाविग्रह को भेंट; शालि-अन्नम्—चावल; विभवे—यदि उपलब्ध हो; सति—इस प्रकार से; स-सर्पिः—घी के साथ; स-गुडम्—गुड़ के साथ; दत्त्वा—उन्हें प्रदान करके; जुहुयात्—अग्नि में आहुतियाँ डाले; मूल-विद्यया—उसी द्वादशाक्षर मंत्र के उच्चारण के साथ-साथ।

यदि सामर्थ्य हो तो भक्त अर्चाविग्रह पर दूध में घी तथा गुड़ के साथ पकाये चावल चढ़ाए। उसी मूल मंत्र का उच्चारण करते हुए यह सामग्री अग्नि में डाली जाये।

**निवेदितं तद्भक्ताय दद्याद्भुञ्जीत वा स्वयम् ।
दत्त्वाचमनमर्चित्वा ताम्बूलं च निवेदयेत् ॥ ४१ ॥**

शब्दार्थ

निवेदितम्—चढ़ाया हुआ प्रसाद; तत्-भक्ताय—उनके भक्त को; दद्यात्—दिया जाये; भुञ्जीत—खाये; वा—अथवा; स्वयम्—खुद; दत्त्वा आचमनम्—हाथ तथा मुखमार्जन के लिए जल देकर; अर्चित्वा—पूजा करके; ताम्बूलम्—पान; च—भी; निवेदयेत्—प्रदान करे।

उसे चाहिए कि वह सारा प्रसाद या उसका कुछ अंश किसी वैष्णव को दे और तब कुछ प्रसाद स्वयं ग्रहण करे। तत्पश्चात् अर्चाविग्रह को आचमन कराए और तब पान सुपारी चढ़ाकर फिर से भगवान् की पूजा करे।

जपेदष्टोत्तरशतं स्तुवीत स्तुतिभिः प्रभुम् ।
कृत्वा प्रदक्षिणं भूमौ प्रणमेद्दण्डवन्मुदा ॥ ४२॥

शब्दार्थ

जपेत्—मन ही मन उच्चारण करे; अष्टोत्तर-शतम्—एक सौ आठ बार; स्तुवीत—स्तुति करे; स्तुतिभिः—महिमा-स्तुतियों द्वारा; प्रभुम्—भगवान् को; कृत्वा—करके; प्रदक्षिणम्—प्रदक्षिणा; भूमौ—भूमि पर; प्रणमेत्—प्रणाम करे; दण्डवत्—साष्टांग भूमि पर लोटकर; मुदा—प्रसन्नतापूर्वक।

तत्पश्चात् उसे चाहिए कि वह मुँह में १० बार मं त्र का जप करे और भगवान् की महिमा की स्तुतियाँ करे। तब वह भगवान् की प्रदक्षिणा करे और अन्त में परम सन्तोष तथा प्रसन्नतापूर्वक भूमि पर लोटकर (दण्डवत्) प्रणाम करे।

कृत्वा शिरसि तच्छेषां देवमुद्वासयेत्ततः ।
द्व्यवरान्भोजयेद्विप्रान्पायसेन यथोचितम् ॥ ४३॥

शब्दार्थ

कृत्वा—चढ़ा करके; शिरसि—माथे पर; तत्-शेषाम्—सारा अवशिष्ट (अर्चाविग्रह को चढ़ाया जल तथा फूल); देवम्—अर्चाविग्रह को; उद्वासयेत्—पवित्र स्थान में ले जाकर फेंक देना चाहिए; ततः—तत्पश्चात्; द्वि-अवरान्—कम से कम दो; भोजयेत्—खिलाए; विप्रान्—ब्राह्मणों को; पायसेन—खीर से; यथा-उचितम्—जैसा उचित हो।

अर्चाविग्रह पर चढ़ाये गये जल तथा सभी फूलों को अपने सिर से छूने के बाद उन्हें किसी पवित्र स्थान पर फेंक दे। तब कम से कम दो ब्राह्मणों को खीर का भोजन कराए।

भुञ्जीत तैरनुज्ञातः सेष्टः शेषं सभाजितैः ।
ब्रह्मचार्यथ तद्रात्र्यां श्वो भूते प्रथमेऽहनि ॥ ४४॥
स्नातः शुचिर्यथोक्तेन विधिना सुसमाहितः ।
पयसा स्नापयित्वार्चेद्यावद्व्रतसमापनम् ॥ ४५॥

शब्दार्थ

भुञ्जीत—प्रसाद ग्रहण करे; तैः—उन ब्राह्मणों से; अनुज्ञातः—अनुमति लेकर; स-इष्टः—मित्रों तथा परिवार वालों के सहित; शेषम्—शेष बचा हुआ; सभाजितैः—उचित रूप से सम्मानित; ब्रह्मचारी—ब्रह्मचर्य व्रत का पालन; अथ—निस्सन्देह; तत्-

रात्र्याम्—उस रात में; श्वः भूते—सबेरा होने पर; प्रथमे अहनि—पहले दिन; स्नातः—स्नान किया हुआ; शुचिः—पवित्र होकर; यथा-उक्तेन—जैसाकि पहले कहा जा चुका है; विधिना—विधिपूर्वक; सु-समाहितः—एकाग्र होकर; पयसा—दूध से; स्नापयित्वा—अर्चाविग्रह को स्नान कराकर; अर्चेत्—पूजा करे; यावत्—जब तक; व्रत-समापनम्—पूजा की अवधि समाप्त न हो जाये।

जिन सम्मान्य ब्राह्मणों को भोजन कराया हो उनका भलीभाँति सत्कार करे और तब उनकी अनुमति से अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों सहित स्वयं प्रसाद ग्रहण करे। उस रात में पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करे और दूसरे दिन प्रातः स्नान करने के बाद अत्यन्त शुद्धता तथा ध्यान के साथ अर्चाविग्रह को दूध से स्नान कराए और विस्तारपूर्वक पूर्वोक्त विधियों के अनुसार उनकी पूजा करे।

पयोभक्षो व्रतमिदं चरेद्विष्णवर्चनादृतः ।
पूर्ववज्जुहुयादग्निं ब्राह्मणांश्चापि भोजयेत् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

पयः-भक्षः—केवल दूध का पान करने वाला; व्रतम् इदम्—यह व्रत; चरेत्—सम्पन्न करे; विष्णु-अर्चन-आदृतः—अत्यन्त श्रद्धा तथा भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णु की पूजा करते हुए; पूर्व-वत्—पहले की तरह; जुहुयात्—आहुतियाँ डाले; अग्निम्—अग्नि में; ब्राह्मणान्—ब्राह्मणों को; च अपि—भी; भोजयेत्—भोजन कराए।

केवल दूधपान करते हुए और श्रद्धा तथा भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णु की पूजा करते हुए भक्त इस व्रत का पालन करे। उसे चाहिए कि वह अग्नि में हवन करे और पूर्वोक्त विधि से ब्राह्मणों को भोजन कराए।

एवं त्वहरहः कुर्याद्द्वादशाहं पयोव्रतम् ।
हरेराराधनं होममर्हणं द्विजतर्पणम् ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; तु—निस्सन्देह; अहः अहः—दिन प्रतिदिन; कुर्यात्—करना चाहिए; द्वादश-अहम्—बारह दिनों तक; पयः-व्रतम्—पयव्रत; हरेः आराधनम्—भगवान् की पूजा; होमम्—हवन करके; अर्हणम्—अर्चाविग्रह की पूजा; द्विज-तर्पणम्—भोजन कराकर ब्राह्मणों को प्रसन्न करना।

इस तरह बारह दिनों तक प्रतिदिन भगवान् का पूजन, नैत्यिक कर्म, हवन तथा ब्राह्मण-भोजन सम्पन्न कराकर यह पयोव्रत रखा जाये।

प्रतिपद्दिनमारभ्य यावच्छुक्लत्रयोदशीम् ।
ब्रह्मचर्यमधःस्वप्नं स्नानं त्रिषवणं चरेत् ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

प्रतिपत्-दिनम्—प्रतिपत् के दिन; आरभ्य—प्रारम्भ करके; यावत्—जब तक; शुक्ल—शुक्लपक्ष की; त्रयोदशीम्—तेरस (एकादशी के दो दिन बाद); ब्रह्मचर्यम्—पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन; अधः-स्वप्नम्—फर्श पर शयन; स्नानम्—स्नान; त्रि-सवनम्—तीन बार (प्रातः, सायं तथा दोपहर में); चरेत्—सम्पन्न करे।

प्रतिपदा से लेकर अगले शुक्लपक्ष की तेरस (शुक्ल त्रयोदशी) तक पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करे, फर्श पर सोये, प्रतिदिन तीन बार स्नान करे और इस व्रत को सम्पन्न करे।

वर्जयेदसदालापं भोगानुच्चावचांस्तथा ।
अहिंस्रः सर्वभूतानां वासुदेवपरायणः ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

वर्जयेत्—न करे; असत्-आलापम्—सांसारिक विषयों पर वृथा बातचीत; भोगान्—इन्द्रियतृप्ति; उच्च-अवचान्—श्रेष्ठ या निकृष्ट; तथा—और; अहिंस्रः—ईर्ष्यारहित होकर; सर्व-भूतानाम्—सारे जीवों का; वासुदेव-परायणः—भगवान् वासुदेव का मात्र भक्त बनकर।

इस अवधि में सांसारिक प्रपंचों या इन्द्रियतृप्ति के विषय पर अनावश्यक चर्चा न चलाये, वह सारे जीवों की ईर्ष्या से पूर्णतया मुक्त रहे और भगवान् वासुदेव का शुद्ध एवं सरल भक्त बने।

त्रयोदश्यामथो विष्णोः स्नपनं पञ्चकैर्विभोः ।
कारयेच्छास्त्रदृष्टेन विधिना विधिकोविदैः ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

त्रयोदश्याम्—तेरस को; अथो—तत्पश्चात्; विष्णोः—भगवान् विष्णु का; स्नपनम्—स्नान कराना; पञ्चकैः—पञ्चामृत द्वारा; विभोः—भगवान्; कारयेत्—करे; शास्त्र-दृष्टेन—शास्त्रों द्वारा आदिष्ट; विधिना—विधि से; विधि-कोविदैः—विधि-विधानों को जानने वाले पुरोहितों की सहायता से।

तत्पश्चात् शास्त्रविद् ब्राह्मणों की सहायता से शास्त्रों के आदेशानुसार शुक्लपक्ष की तेरस को भगवान् विष्णु को पञ्चामृत (दूध, मट्ठा, घी, चीनी तथा शहद) से स्नान कराये।

पूजां च महतीं कुर्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः ।
चरुं निरूप्य पयसि शिपिविष्टाय विष्णवे ॥ ५१ ॥
सूक्तेन तेन पुरुषं यजेत सुसमाहितः ।
नैवेद्यं चातिगुणवद्दद्यात्पुरुषतुष्टिदम् ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

पूजाम्—पूजा; च—भी; महतीम्—अत्यन्त तड़क-भड़क वाला; कुर्यात्—करे; वित्त-शाठ्य—कंजूसी की मनोवृत्ति; विवर्जितः—त्यागकर; चरुम्—यज्ञ में डाला गया अन्न; निरूप्य—ठीक से देखकर; पयसि—दूध के साथ; शिपिविष्टाय—प्रत्येक जीव के हृदय में स्थित परमात्मा को; विष्णवे—विष्णु को; सूक्तेन—पुरुष-सूक्त नामक वैदिक मंत्रोच्चार से; तेन—उसके द्वारा; पुरुषम्—भगवान् की; यजेत—पूजा करे; सु-समाहितः—मनोयोग से; नैवेद्यम्—अर्चाविग्रह को चढ़ाया गया भोजन;

च—तथा; अति-गुण-वत्—समस्त सुस्वादु व्यंजन; दद्यात्—प्रदान करे; पुरुष-तुष्टि-दम्—भगवान् को अत्यन्त प्रसन्न करने वाली प्रत्येक वस्तु।

धन न खर्च करने की कंजूसी की आदत छोड़कर अन्तर्यामी भगवान् विष्णु की भव्य पूजा का आयोजन करे। मनुष्य को चाहिए कि वह अत्यन्त मनोयोग से घी में पकाये अन्न तथा दूध से आहुति (हव्य) तैयार करे और पुरुष-सूक्त मंत्रोच्चार करे और विविध स्वादों वाले भोजन भेंट करे। इस प्रकार मनुष्य को भगवान् का पूजन करना चाहिए।

आचार्यं ज्ञानसम्पन्नं वस्त्राभरणधेनुभिः ।
तोषयेदृत्विजश्चैव तद्विद्ध्याराधनं हरेः ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

आचार्यम्—गुरु को; ज्ञान-सम्पन्नम्—आध्यात्मिक ज्ञान में बढ़ा-चढ़ा; वस्त्र-आभरण-धेनुभिः—वस्त्र, गहने तथा अनेक गायों सहित; तोषयेत्—तुष्ट करके; ऋत्विजः—गुरु द्वारा बताये गये पुरोहित; च एव—तथा; तत् विद्धि—उसे समझने का प्रयास करे; आराधनम्—पूजा; हरेः—भगवान् की।

मनुष्य को चाहिए कि वह वैदिक साहित्य में पारंगत गुरु (आचार्य) को तुष्ट करे और उनके सहायक पुरोहितों को (जो होता, उद्गाता, अध्वर्यु तथा ब्रह्म कहलाते हैं) तुष्ट करे। उन्हें वस्त्र, आभूषण तथा गाएँ देकर प्रसन्न करे। यही विष्णु-आराधन अनुष्ठान है।

भोजयेत्तान्गुणवता सदन्नेन शुचिस्मिते ।
अन्यांश्च ब्राह्मणाञ्छक्त्या ये च तत्र समागताः ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ

भोजयेत्—प्रसाद बाँटे; तान्—उन सब को; गुण-वता—अच्छे भोजन से; सत्-अन्नेन—घी तथा दूध से बने भोजन से, जो अत्यन्त शुद्ध माना जाता है; शुचि-स्मिते—हे परम पवित्र स्त्री; अन्यान् च—अन्यों को भी; ब्राह्मणान्—ब्राह्मणों को; शक्त्या—यथाशक्ति; ये—जो; च—भी; तत्र—वहाँ (अनुष्ठानों में); समागताः—एकत्र।

हे परम पवित्र स्त्री! मनुष्य को चाहिए कि वह ये सारे अनुष्ठान विद्वान आचार्यों के निर्देशानुसार सम्पन्न करे और उन्हें तथा उनके पुरोहितों को तुष्ट करे। उसे चाहिए कि प्रसाद वितरण करके ब्राह्मणों को तथा वहाँ पर एकत्र हुए लोगों को भी तुष्ट करे।

दक्षिणां गुरवे दद्यादृत्विग्भ्यश्च यथार्हतः ।
अन्नाद्येनाश्वपाकांश्च प्रीणयेत्समुपागतान् ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ

दक्षिणाम्—धन या सोने का दान; गुरवे—गुरु को; दद्यात्—दे; ऋत्विग्भ्यः च—तथा गुरु द्वारा नियुक्त पुरोहितों को; यथा-अर्हतः—यथाशक्ति; अन्न-अद्येन—प्रसाद वितरण द्वारा; आश्व-पाकान्—चंडाल तक को जो कुत्ते का माँस खाने के आदी हैं; च—भी; प्रीणयेत्—प्रसन्न करे; समुपागतान्—अनुष्ठान में एकत्र होने के कारण।

मनुष्य को चाहिए कि गुरु तथा सहायक पुरोहितों को वस्त्र, आभूषण, गाएँ तथा कुछ धन का दान देकर प्रसन्न करे। तथा प्रसाद वितरण द्वारा वहाँ पर आये सभी लोगों को यहाँ तक कि सबसे अधम व्यक्ति चण्डाल (कुत्ते का माँस खाने वाले) को भी तुष्ट करे।

तात्पर्य : वैदिक प्रणाली के अनुसार यहाँ पर संस्तुत विधि के अनुसार बिना भेदभाव के प्रसाद-वितरण किया जाता है। चाहे कोई ब्राह्मण हो या क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र, यहाँ तक कि अधमतम व्यक्ति चंडाल का भी प्रसाद लेने के लिए स्वागत करना चाहिए। किन्तु यदि चंडाल प्रसाद ग्रहण करे तो इसका अर्थ यह नहीं है कि वह नारायण या विष्णु बन गया है। नारायण जन-जन के हृदय में स्थित हैं, किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं होता कि नारायण चंडाल या दरिद्र व्यक्ति हैं। दरिद्र व्यक्ति को नारायण के रूप में स्वीकार करने की मायावादी विचारधारा अत्यन्त ईर्ष्यापूर्ण तथा वैदिक सभ्यता में नास्तिकतावादी आन्दोलन है। इस प्रवृत्ति का सर्वथा परित्याग होना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को प्रसाद ग्रहण करने का अवसर मिलना चाहिए, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हर व्यक्ति को नारायण बन जाने का अधिकार है।

भुक्तवत्सु च सर्वेषु दीनान्धकृपणादिषु ।
विष्णोस्तत्प्रीणनं विद्वान्भुञ्जीत सह बन्धुभिः ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ

भुक्तवत्सु—भोजन कराने के बाद; च—भी; सर्वेषु—वहाँ पर उपस्थित सब को; दीन—अत्यन्त निर्धन; अन्ध—अन्धा; कृपण—जो ब्राह्मण नहीं है; आदिषु—इत्यादि; विष्णोः—अन्तर्यामी भगवान् विष्णु का; तत्—वह (प्रसाद); प्रीणनम्—प्रसन्न करते हुए; विद्वान्—इस दर्शन को जानने वाला; भुञ्जीत—स्वयं प्रसाद ग्रहण करे; सह—साथ; बन्धुभिः—मित्रों तथा सम्बन्धियों के।

मनुष्य को चाहिए कि वह दरिद्र, अन्धे, अभक्त तथा अब्राह्मण हर व्यक्ति को विष्णु-प्रसाद बाँटे। यह जानते हुए कि जब हर एक व्यक्ति पेट भरकर विष्णु-प्रसाद पा लेता है, तो भगवान् विष्णु परम प्रसन्न होते हैं, यज्ञकर्ता को अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों सहित प्रसाद ग्रहण करना चाहिए।

नृत्यवादित्रगीतैश्च स्तुतिभिः स्वस्तिवाचकैः ।

कारयेत्तत्कथाभिश्च पूजां भगवतोऽन्वहम् ॥ ५७॥

शब्दार्थ

नृत्य—नाच कर; वादित्र—बाजा (ढोल) बजाकर; गीतैः—तथा गाकर; च—भी; स्तुतिभिः—शुभ मंत्रोच्चार द्वारा; स्वस्ति-वाचकैः—स्तुति करके; कारयेत्—सम्पन्न करे; तत्-कथाभिः—भागवत, भगवद्गीता तथा इसी प्रकार का साहित्य सुनाकर; च—भी; पूजाम्—पूजा; भगवतः—भगवान् विष्णु की; अन्वहम्—प्रतिदिन (प्रतिपदा से त्रयोदशी तक)।

प्रतिपदा से त्रयोदशी तक इस अनुष्ठान को मनुष्य प्रतिदिन नाच, गाना, बाजा, स्तुति तथा शुभ मंत्रोच्चार एवं *श्रीमद्भागवत* के पाठ के साथ-साथ जारी रखे। इस प्रकार मनुष्य भगवान् की पूजा करे।

एतत्पयोव्रतं नाम पुरुषाराधनं परम् ।
पितामहेनाभिहितं मया ते समुदाहृतम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

एतत्—यह; पयः-व्रतम्—पयोव्रत नामक अनुष्ठान; नाम—नामक; पुरुष-आराधनम्—भगवान् की पूजा विधि; परम्—श्रेष्ठ; पितामहेन—मेरे पितामह द्वारा; अभिहितम्—कही गई; मया—मेरे द्वारा; ते—तुमको; समुदाहृतम्—विस्तार के साथ वर्णित।

यह धार्मिक अनुष्ठान पयोव्रत कहलाता है, जिसके द्वारा भगवान् की पूजा की जा सकती है। यह ज्ञान मुझे अपने पितामह ब्रह्माजी से मिला और अब मैंने विस्तार के साथ इसका वर्णन तुमसे किया है।

त्वं चानेन महाभागे सम्यक्चीर्णेन केशवम् ।
आत्मना शुद्धभावेन नियतात्मा भजाव्ययम् ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ

त्वम् च—तुम भी; अनेन—इस विधि से; महा-भागे—हे भाग्यशालिनी; सम्यक् चीर्णेन—भलीभाँति सम्पन्न करने पर; केशवम्—केशव को; आत्मना—अपने; शुद्ध-भावेन—शुद्ध मन से; नियत-आत्मा—अपने को वश में करते हुए; भज—पूजा करते रहो; अव्ययम्—भगवान् की, जो अक्षय हैं।

हे परम भाग्यशालिनी! तुम अपने मन को शुद्ध भाव में स्थिर करके इस पयोव्रत विधि को सम्पन्न करो और इस तरह अच्युत भगवान् केशव की पूजा करो।

अयं वै सर्वयज्ञाख्यः सर्वव्रतमिति स्मृतम् ।
तपःसारमिदं भद्रे दानं चेश्वरतर्पणम् ॥ ६० ॥

शब्दार्थ

अयम्—यह; वै—निस्सन्देह; सर्व-यज्ञ—सभी प्रकार का धार्मिक अनुष्ठान तथा यज्ञ; आख्यः—कहलाता है; सर्व-व्रतम्—सारे धार्मिक अनुष्ठान; इति—इस प्रकार; स्मृतम्—समझा जाकर; तपः-सारम्—सारी तपस्याओं का सार; इदम्—यह; भद्रे—हे उत्तम स्त्री; दानम्—दान के कार्य; च—तथा; ईश्वर—भगवान्; तर्पणम्—प्रसन्न करने की विधि।

यह पयोव्रत सर्वयज्ञ भी कहलाता है। दूसरे शब्दों में, इस यज्ञ को सम्पन्न कर लेने पर अन्य सारे यज्ञ स्वतः सम्पन्न हो जाते हैं। इसे समस्त अनुष्ठानों में सर्वश्रेष्ठ भी माना गया है। हे भद्रे! यह समस्त तपस्याओं का सार है और दान देने तथा परम नियन्ता को प्रसन्न करने की विधि है।

तात्पर्य : *आराधनानां सर्वेषां विष्णोराराधनं परम्*—यह शिवजी का कथन पार्वती के प्रति है। भगवान् विष्णु की पूजा करना पूजा की परम विधि है और भगवान् विष्णु की इस पयोव्रत विधि से पूजा किस तरह की जानी चाहिए उसका वर्णन पूरी तरह किया गया है। जीवन का चरम लक्ष्य वर्णाश्रम धर्म द्वारा भगवान् विष्णु को प्रसन्न करना है। चार वर्णों तथा चार आश्रमों के वैदिक सिद्धान्त भगवान् विष्णु की पूजा के निमित्त हैं (*विष्णुराराध्यते पुंसां नान्यत् तत्तोष कारणम्*)। युग के अनुसार कृष्णभावनामृत आन्दोलन भी *विष्णु आराधनम्* है। *विष्णु आराधनम्* की *पयोव्रत* विधि बहुत काल पूर्व कश्यपमुनि ने अपनी पत्नी अदिति से स्वर्गलोक में कही थी और यही विधि आज भी धरालोक पर प्रामाणिक है। विशेषतया इस कलियुग में कृष्णभावनामृत आन्दोलन द्वारा स्वीकृत विधि सैकड़ों तथा हजारों विष्णु-मन्दिर (राधाकृष्ण, जगन्नाथ, बलराम, सीताराम, गौर-निताई आदि के मन्दिर) खोलने की है। ऐसे विष्णु-मन्दिरों में नियत पूजा सम्पन्न करना तथा इस तरह भगवान् की पूजा करना यहाँ पर संस्तुत पयोव्रत अनुष्ठान सम्पन्न करने के समान है। यह *पयोव्रत* अनुष्ठान शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से त्रयोदशी तक मनाया जाता है, किन्तु हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन में विष्णु की पूजा प्रत्येक मन्दिर में चौबीस घण्टों की समयसारिणी के अनुसार की जाती है, जिसमें कीर्तन करने, हरे कृष्ण महामंत्र का जप करने, भगवान् विष्णु को स्वादिष्ट भोजन अर्पित करने तथा इस भोजन को वैष्णवों तथा अन्यों में वितरित करने का कार्य किया जाता है। ये प्रामाणिक गतिविधियाँ हैं और यदि कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सदस्य इन नियमों का दृढ़तापूर्वक पालन करें तो उन्हें पयोव्रत का पालन करने जैसा लाभ प्राप्त होगा। इस तरह कृष्णभावनामृत आन्दोलन में सारे शुभ कार्यों यथा यज्ञ करना, दान देना, व्रत रखना, तपस्या करना इत्यादि का सार निहित है। इस आन्दोलन के सदस्यों को चाहिए कि पूर्वोक्त विधि का पालन निष्ठापूर्वक तत्काल करें। निस्सन्देह, सारे यज्ञ भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने के लिए हैं। *यज्ञै सङ्कीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः*—कलियुग में बुद्धिमान् लोग सङ्कीर्तन यज्ञ करते हैं। मनुष्यों को चाहिए कि इस विधि का दृढ़ता से पालन करें।

त एव नियमाः साक्षात्त एव च यमोत्तमाः ।
तपो दानं व्रतं यज्ञो येन तुष्यत्यधोक्षजः ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ

ते—वे; एव—निस्सन्देह; नियमाः—सारे विधि-विधान; साक्षात्—प्रत्यक्ष; ते—वे; एव—निस्सन्देह; च—भी; यम-उत्तमाः—इन्द्रियों को वश में करने की सर्वश्रेष्ठ विधि; तपः—तपस्या; दानम्—दान; व्रतम्—व्रत; यज्ञः—यज्ञ; येन—जिस विधि से; तुष्यति—प्रसन्न होता है; अधोक्षजः—भौतिक इन्द्रियों से अनुभव न हो सकने वाले भगवान्।

अधोक्षज नामक दिव्य भगवान् को प्रसन्न करने की यह सर्वोत्तम विधि है। यह समस्त विधि-विधानों में श्रेष्ठ है, यह सर्वश्रेष्ठ तपस्या है, दान देने की और यज्ञ की सर्वश्रेष्ठ विधि है।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (१.६६) में भगवान् कहते हैं—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

"सारे धर्मों को त्याग दो और मात्र मेरी शरण में आ जाओ। मैं सारे पापमय फलों से तुम्हारा उद्धार कर दूँगा। तुम डरो मत।" जब तक भगवान् की इच्छानुसार उन्हें प्रसन्न नहीं कर लिया जाता तब तक मनुष्य को अपने कर्मों से कुछ भी शुभ फल प्राप्त नहीं होगा।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः।

नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्॥

"अपने पद के अनुसार किये गये मनुष्य के सारे वृत्तिपरक कार्य व्यर्थ के श्रम हैं यदि वे भगवान् के सन्देश के प्रति आकर्षण न उत्पन्न कर सकें।" (*भागवत* १.२.)। यदि किसी को भगवान् विष्णु अथवा वासुदेव को तुष्ट करने में रुचि नहीं है, तो उसके सारे तथाकथित पुण्यकर्म व्यर्थ हैं। *मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः*—मोहग्रस्त होने के कारण वह अपनी आशाओं, अपने कार्यों तथा अपने ज्ञान में संभ्रान्त रहता है। इस सम्बन्ध में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती की टिप्पणी है—*नपुंसकम् अनपुंसकेनेत्यादिनैकत्वम्।* पुंसत्वमय तथा नपुंसक की बराबरी नहीं की जा सकती। आधुनिक मायावादियों में यह कहने का फैशन बन चुका है कि मनुष्य जो कुछ करता है या जिस किसी मार्ग का अनुसरण करता है, वह सब सही है। किन्तु ये मूर्खतापूर्ण कथन हैं। यहाँ पर इस वाद की बलपूर्वक पुष्टि की गई है कि जीवन में सफलता की यही एकमात्र विधि है। *ईश्वर-तर्पणम् विना सर्वमेव विफलम्।* जब तक भगवान् विष्णु प्रसन्न नहीं होते तब तक मनुष्य के सारे पुण्यकर्म, अनुष्ठान तथा यज्ञ

मात्र दिखावा हैं और उनका कोई मूल्य नहीं होता। दुर्भाग्यवश मूर्ख लोग सफलता के रहस्य को नहीं जानते। *न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुम्।* वे यह नहीं जानते कि असली स्वार्थ की परिणति भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने में है।

तस्मादेतद्व्रतं भद्रे प्रयता श्रद्धयाचर ।
भगवान्परितुष्टस्ते वरानाशु विधास्यति ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—अतएव; एतत्—यह; व्रतम्—व्रत का पालन; भद्रे—प्रिय भद्र स्त्री; प्रयता—विधि-विधानों का पालन करके; श्रद्धया—श्रद्धा सहित; आचर—सम्पन्न करो; भगवान्—भगवान्; परितुष्टः—अत्यन्त प्रसन्न होकर; ते—तुमको; वरान्—वर, आशीर्वाद; आशु—शीघ्र; विधास्यति—प्रदान करेंगे।

अतएव हे भद्रे! तुम विधि-विधानों का दृढ़ता से पालन करते हुए इस अनुष्ठानिक व्रत को सम्पन्न करो। इस विधि से परम पुरुष तुम पर शीघ्र ही प्रसन्न होंगे और तुम्हारी सारी इच्छाओं को पूरा करेंगे।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कंध के अन्तर्गत ''पयोव्रत पूजा विधि का पालन करना'' नामक सोलहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter सत्रह

भगवान् को अदिति का पुत्र बनना स्वीकार

जैसाकि इस अध्याय में बताया गया है अदिति द्वारा सम्पन्न पयोव्रत अनुष्ठान से अत्यधिक प्रसन्न होकर भगवान् अपने पूर्ण ऐश्वर्य सहित उनके समक्ष प्रकट हुये। उनकी प्रार्थना पर भगवान् ने उनका पुत्र बनना स्वीकार कर लिया।

जब अदिति लगातार बारह दिनों तक *पयोव्रत* अनुष्ठान सम्पन्न कर चुकीं तो भगवान् उन पर अत्यधिक प्रसन्न हुए और उनके समक्ष चतुर्भुजी रूप में पीताम्बर धारण किए प्रकट हुए। ज्योंही अदिति ने भगवान् को अपने समक्ष देखा वे तुरन्त उठ खड़ी हुईं और भगवान् के प्रेम में विभोर होकर उन्हें सादर नमस्कार करने के लिए भूमि पर लोट गईं। आनन्दानुभूति से उनका गला भर आया और भक्ति के कारण उनका सारा शरीर काँपने लगा। यद्यपि वे भगवान् की समुचित स्तुति करना चाह रही थीं, किन्तु वे कुछ भी नहीं कर पाईं और इस तरह कुछ समय तक मौन रहीं। तब ढाढ़स बाँधकर भगवान् के

सौन्दर्य का अवलोकन करती हुई वे प्रार्थना करने लगीं। समस्त जीवों के परमात्मा भगवान् उन पर अत्यधिक प्रसन्न हुए और उन्होंने स्वांश रूप में अवतार लेकर उनका पुत्र बनना स्वीकार किया। वे कश्यपमुनि की तपस्या से पहले ही प्रसन्न हो चुके थे, अतएव उन्होंने उनका पुत्र बनना और देवताओं का पालन करना स्वीकार कर लिया। भगवान् इस प्रकार वचन देकर अन्तर्धान हो गये। भगवान् का आदेश पाकर अदिति कश्यपमुनि की सेवा में तत्पर हो गईं। कश्यपमुनि समाधि द्वारा यह देख सके कि भगवान् उनके भीतर हैं और इस तरह उन्होंने अपना वीर्य अदिति के गर्भ में स्थापित किया। हिरण्यगर्भ कहलाने वाले ब्रह्माजी जान गये कि भगवान् अदिति के गर्भ में प्रवेश कर चुके हैं। इसलिए उन्होंने भगवान् की स्तुति की।

श्रीशुक उवाच
इत्युक्ता सादिती राजन्स्वभर्त्रा कश्यपेन वै ।
अन्वतिष्ठद्व्रतमिदं द्वादशाहमतन्द्रिता ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; **इति**—इस प्रकार; **उक्ता**—कहे जाने पर; **सा**—उस; **अदितिः**—अदिति ने; **राजन्**—हे राजा; **स्व-भर्त्रा**—अपने पति; **कश्यपेन**—कश्यपमुनि से; **वै**—निस्सन्देह; **अनु**—इसी प्रकार से; **अतिष्ठत्**—सम्पन्न किया; **व्रतम् इदम्**—इस पयोव्रत को; **द्वादश-अहम्**—बारह दिनों तक; **अतन्द्रिता**—बिना आलस्य के।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा! इस प्रकार अपने पति कश्यपमुनि से दिए जाने पर अदिति ने बिना आलस्य के उनके आदेशों का दृढ़ता से पालन किया और पयोव्रत अनुष्ठान सम्पन्न किया।

तात्पर्य : किसी भी प्रकार की उन्नति के लिए, विशेषतया आध्यात्मिक जीवन में, गुरु के प्रामाणिक आदेशों का दृढ़तापूर्वक पालन करना होता है। अदिति ने ऐसा किया। उन्होंने अपने पति तथा गुरु के आदेशों का दृढ़ता से पालन किया। जैसी कि वैदिक आदेशों में पुष्टि हुई है—*यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ*—मनुष्य को गुरु पर पूर्ण श्रद्धा रखनी चाहिए जो शिष्य के आध्यात्मिक जीवन की प्रगति में सहायक होता है। जब शिष्य स्वतंत्र रूप से सोचने लगता है और गुरु के आदेशों की परवाह नहीं करता तो वह असफल हो जाता है (*यस्याप्रसादान् न गतिः कुतोऽपि*)। अदिति ने अपने पति तथा गुरु के आदेशों का दृढ़ता से पालन किया और इस तरह वे सफल हुईं।

चिन्तयन्त्येकया बुद्ध्या महापुरुषमीश्वरम् ।
प्रगृह्येन्द्रियदुष्टाश्वान्मनसा बुद्धिसारथिः ॥ २॥
मनश्चैकाग्रया बुद्ध्या भगवत्यखिलात्मनि ।
वासुदेवे समाधाय चचार ह पयोव्रतम् ॥ ३॥

शब्दार्थ

चिन्तयन्ति—निरन्तर चिन्तन करते हुए; एकया—एकचित्त होकर; बुद्ध्या—तथा बुद्धि से; महा-पुरुषम्—भगवान् को; ईश्वरम्—परमनियन्ता भगवान् विष्णु को; प्रगृह्य—पूर्णतया वश में करके; इन्द्रिय—इन्द्रियाँ; दुष्ट—शक्तिशाली; अश्वान्—घोड़ों को; मनसा—मन द्वारा; बुद्धि-सारथिः—रथ को हाँकने वाली बुद्धि की सहायता से; मनः—मन; च—भी; एक-अग्रया—एकाग्र होकर; बुद्ध्या—बुद्धि से; भगवति—भगवान् को; अखिल-आत्मनि—सभी जीवों के परमात्मा को; वासुदेवे—भगवान् वासुदेव को; समाधाय—पूर्ण मनोयोग से; चचार—सम्पन्न किया; ह—इस प्रकार; पयः-व्रतम्—पयोव्रत नामक अनुष्ठान को।

अदिति ने पूर्ण अचल ध्यान से भगवान् का चिन्तन किया और इस तरह उन्होंने शक्तिशाली घोड़ों जैसे अपने मन तथा इन्द्रियों को पूरी तरह अपने वश में कर लिया। उन्होंने अपने मन को भगवान् वासुदेव पर केन्द्रित कर दिया और इस तरह पयोव्रत नामक अनुष्ठान पूरा किया।

तात्पर्य : यह भक्तियोग की विधि है—

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।

आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।

"मनुष्य को चाहिए कि वह भगवान् कृष्ण की दिव्य प्रेमाभक्ति सकाम कर्म या ज्ञान द्वारा किसी भौतिक लाभ की इच्छा से रहित होकर अनुकूल रीति से करे। यही शुद्ध भक्ति कहलाती है।" मनुष्य को केवल वासुदेव कृष्ण के चरणकमलों पर मन को एकाग्र करना होता है (*स वै मनः कृष्णपदारविन्दयोः*)। इससे मन तथा इन्द्रियाँ वश में हो जायेंगी और मनुष्य अपने आपको भगवान् की भक्ति में पूर्णतः लगा सकता है। भक्त को मन तथा इन्द्रियों को वश में करने के लिए हठयोग विधि का अभ्यास करना आवश्यक नहीं है। उसका मन तथा इन्द्रियाँ भगवान् की अनन्य भक्ति के कारण स्वतः वश में हो जाती हैं।

तस्याः प्रादुरभूत्तात भगवानादिपुरुषः ।
पीतवासाश्चतुर्बाहुः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ ४॥

शब्दार्थ

तस्याः—उसके सामने; प्रादुरभूत्—प्रकट हुए; तात—हे राजा; भगवान्—भगवान्; आदि-पुरुषः—आदि पुरुष; पीत-वासाः—पीताम्बर धारण किये; चतुः-बाहुः—चार भुजाओं वाले; शङ्ख-चक्र-गदा-धरः—शंख, चक्र, गदा तथा कमल धारण किये।

हे राजा! तब अदिति के समक्ष आदि भगवान् पीताम्बर वस्त्र पहने तथा अपने चारों हाथों में

शंख, चक्र, गदा तथा कमल धारण किए हुए प्रकट हुए।

तं नेत्रगोचरं वीक्ष्य सहसोत्थाय सादरम् ।
ननाम भुवि कायेन दण्डवत्प्रीतिविह्वला ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको (भगवान् को); नेत्र-गोचरम्—उसकी आँखों द्वारा दिखने वाले; वीक्ष्य—देखकर; सहसा—एकाएक; उत्थाय—उठकर; स-आदरम्—अत्यन्त आदर पूर्वक; ननाम—सादर नमस्कार किया; भुवि—भूमि पर; कायेन—पूरे शरीर से; दण्ड-वत्—डंडे के समान गिरते हुए; प्रीति-विह्वला—दिव्य आनन्द के कारण अत्यन्त विह्वल।

जब अदिति की आँखों से भगवान् दिखने लगे तो दिव्य आनन्द के कारण वे इतनी विभोर हो उठीं कि वह तुरन्त ही उठकर भगवान् को सादर नमस्कार करने के लिए भूमि पर दण्ड के समान गिर गईं।

सोत्थाय बद्धाञ्जलिरीडितुं स्थिता
नोत्सेह आनन्दजलाकुलेक्षणा ।
बभूव तूष्णीं पुलकाकुलाकृति-
स्तद्दर्शनात्युत्सवगात्रवेपथुः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

सा—वह; उत्थाय—उठकर; बद्ध-अञ्जलिः—हाथ जोड़े; ईडितुम्—भगवान् की पूजा करने के लिए; स्थिता—स्थित; न उत्सेहे—प्रयत्न नहीं कर सकी; आनन्द—दिव्य आनन्द से; जल—जल से; आकुल-ईक्षणा—पूरित आँखों से; बभूव—हो गई; तूष्णीम्—मौन; पुलक—रोमांच; आकुल—विह्वल; आकृतिः—उसका रूप; तत्-दर्शन—भगवान् के दर्शन करने से; अति-उत्सव—अत्यन्त हर्ष से; गात्र—उसका शरीर; वेपथुः—काँपने लगा।

भगवान् की स्तुति करने में असमर्थ होने के कारण अदिति हाथ जोड़े मौन खड़ी रहीं। दिव्य आनन्द के कारण उनकी आँखों में आँसू भर आये और उनके शरीर के रोंगटे खड़े हो गये। चूँकि वे भगवान् को अपने समक्ष देख रही थीं अतएव वे आह्लादित हो उठीं और उनका शरीर काँपने लगा।

प्रीत्या शनैर्गद्गदया गिरा हरिं
तुष्टाव सा देव्यदितिः कुरूद्वह ।
उद्वीक्षती सा पिबतीव चक्षुषा
रमापतिं यज्ञपतिं जगत्पतिम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

प्रीत्या—प्रेम के कारण; शनैः—पुनः-पुनः; गद्गदया—थरथराती हुई; गिरा—वाणी से; हरिम्—भगवान् को; तुष्टाव—तुष्ट; सा—वह; देवी—देवी; अदितिः—अदिति; कुरु-उद्वह—हे महाराज परीक्षित; उद्वीक्षती—टकटकी लगाये हुए; सा—वह;

पिबती इव—मानो पी रही हो; चक्षुषा—आँखों से; रमा-पतिम्—लक्ष्मी के पति, भगवान् को; यज्ञ-पतिम्—समस्त यज्ञों के भोक्ता भगवान् को; जगत्-पतिम्—सारे विश्व के प्रभु तथा स्वामी को।

हे महाराज परीक्षित! तब देवी अदिति ने थरथराती हुई वाणी से अत्यन्त प्रेमपूर्वक भगवान् की स्तुति प्रारम्भ की। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वे लक्ष्मीपति, समस्त यज्ञों के भोक्ता तथा समग्र विश्व के प्रभु तथा स्वामी भगवान् को अपनी आँखों से पिये जा रही हों।

तात्पर्य : *पयोव्रत* रखने के बाद अदिति को विश्वास हो गया कि उसके समक्ष भगवान् लक्ष्मीपति (रमापति) के रूप में उसके पुत्रों को समस्त ऐश्वर्य प्रदान करने के लिए प्रकट हुए हैं। उसने अपने पति कश्यप के निर्देशन में *पयोव्रत* यज्ञ सम्पन्न किया था; अतएव उसने भगवान् को यज्ञपति के रूप में देखा। वह अपने समक्ष अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए समस्त विश्व के प्रभु एवं स्वामी को देखकर पूर्णतः सन्तुष्ट थी।

श्रीअदितिरुवाच

यज्ञेश यज्ञपुरुषाच्युत तीर्थपाद
तीर्थश्रवः श्रवणमङ्गलनामधेय ।
आपन्नलोकवृजिनोपशमोदयाद्य
शं नः कृधीश भगवन्नसि दीननाथः ॥ ॥

शब्दार्थ

श्री-अदितिः उवाच—देवी अदिति ने कहा; यज्ञ-ईश—हे समस्त यज्ञों के नियन्ता; यज्ञ-पुरुष—सारे यज्ञों के लाभों का भोग करने वाला पुरुष; अच्युत—कभी न चूकने वाला; तीर्थ-पाद—जिनके चरणकमलों पर सारे पवित्र तीर्थस्थान स्थित हैं; तीर्थ-श्रवः—समस्त सन्त पुरुषों के परम आश्रय के रूप में प्रसिद्ध; श्रवण—जिनके विषय में सुनना; मङ्गल—शुभ है; नामधेय—उनके नाम का उच्चारण करना भी शुभ है; आपन्न—शरणागत; लोक—लोगों का; वृजिन—घातक भौतिक स्थिति; उपशम—कम करते हुए; उदय—प्रकट हुआ है; आद्य—आदि भगवान्; शम्—कल्याण; नः—हमारा; कृधि—कृपया हमें प्रदान करें; ईश—हे परमनियन्ता; भगवन्—हे भगवान्; असि—तुम हो; दीन-नाथः—दीनों के एकमात्र आश्रय।

देवी अदिति ने कहा : हे समस्त यज्ञों के भोक्ता तथा स्वामी, हे अच्युत तथा परम प्रसिद्ध पुरुष, जिनका नाम लेते ही मंगल का प्रसार होता है, हे आदि भगवान्, परमनियन्ता, समस्त पवित्र तीर्थस्थानों के आश्रय! आप समस्त दीन-दुखियों के आश्रय हैं और उनका कष्ट कम करने के लिए प्रकट हुए हैं। आप हम पर कृपालु हों और हमारे कल्याण का विस्तार करें।

तात्पर्य : जो लोग व्रत तथा तपस्या करते हैं भगवान् उनके स्वामी हैं और वे ही उन सब को वर देते हैं। वे भक्त के लिए आजीवन पूज्य होते हैं क्योंकि वे कभी भी अपना वचन नहीं तोड़ते। जैसाकि स्वयं उन्होंने *भगवद्गीता* (९.३१) में कहा है—*कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति*—हे

कुन्तीपुत्र! तुम इसे घोषित कर दो कि मेरा भक्त कभी भी नहीं नष्ट होता। भगवान् को यहाँ पर अच्युत कहा गया है क्योंकि वे अपने भक्तों की रक्षा करते हैं। जो भी भक्तों से शत्रुता रखता है, उसका विनाश भक्तों पर भगवान् की कृपा के कारण अवश्य होता है। चूँकि भगवान् गंगाजल के उद्गम हैं इसलिए उन्हें यहाँ तीर्थपाद कहा गया है, जिसका अर्थ है कि सारे तीर्थस्थान उनके चरणकमलों पर स्थित हैं अथवा वे अपने पाँवों से जिसे भी छूते हैं वह पवित्र बन जाता है। उदाहरणार्थ *भगवद्गीता* का शुभारम्भ *धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे* शब्दों से होता है। चूँकि भगवान् कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में उपस्थित थे अतएव वह *धर्मक्षेत्र* अर्थात् तीर्थस्थान बन गया। अतएव परम धार्मिक पाण्डवों की विजय सुनिश्चित हो गई। कोई भी स्थान जहाँ भगवान् अपनी लीलाएँ करते हैं—यथा वृन्दावन या द्वारका—वह पवित्र बन जाता है। भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन—हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे। हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे—कानों को सुखद लगता है और जो भी इस कीर्तन को सुनता है उसके सौभाग्य का विस्तार होता है। भगवान् की उपस्थिति के कारण अदिति को पूरा-पूरा विश्वास था कि उसके लिए असुरों द्वारा उत्पन्न संकटमय स्थिति का अब अन्त होने वाला है।

विश्वाय विश्वभवनस्थितिसंयमाय
स्वैरं गृहीतपुरुशक्तिगुणाय भूम्ने ।
स्वस्थाय शश्वदुपबृंहितपूर्णबोध-
व्यापादितात्मतमसे हरये नमस्ते ॥ ९॥

शब्दार्थ

विश्वाय—समस्त विश्वरूप भगवान् को; विश्व—विश्व के; भवन—सृजन; स्थिति—पालन; संयमाय—तथा संहार के लिए; स्वैरम्—पूर्णतः स्वतंत्र; गृहीत—हाथ में लेकर; पुरु—पूर्णतः; शक्ति-गुणाय—प्रकृति के तीनों गुणों को वश में रखने वाले; भूम्ने—महानतम; स्व-स्थाय—सदा आदि रूप में स्थित रहने वाले; शश्वत्—सनातन रूप से; उपबृंहित—प्राप्त किया; पूर्ण—सम्पूर्ण; बोध—ज्ञान; व्यापादित—पूर्णतया विनष्ट; आत्म-तमसे—आपकी माया; हरये—परमेश्वर; नमः ते—आपको सादर नमस्कार करता हूँ।.

हे प्रभु! आप सर्वव्यापी विश्वरूप इस विश्व के परम स्वतंत्र स्त्रष्टा, पालक तथा संहारक हैं। यद्यपि आप अपनी शक्ति को पदार्थ में लगाते हैं, तो भी आप सदैव अपने आदि रूप में स्थित रहते हैं और कभी उस पद से च्युत नहीं होते क्योंकि आपका ज्ञान अच्युत है और किसी भी स्थिति के लिए सदैव उपयुक्त है। आप कभी मोहग्रस्त नहीं होते। हे स्वामी! मैं आपको सादर नमस्कार करती हूँ।

तात्पर्य : *चैतन्यचरितामृत* (आदि २.११७) में कहा गया है—

सिद्धान्त बलिया चित्ते ना कर अलस

इहा हइते कृष्णे लागे सुदृढ मानस

पूर्णतया कृष्णभावनाभावित बनने के लिए प्रयत्नशील मनुष्य को चाहिए कि वह भगवान् की महिमाओं को यथासम्भव समझे। यहाँ पर अदिति इन महिमाओं की ओर संकेत कर रही हैं। यह विश्व भगवान् की बहिरंगा शक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (९.४) में हुई है—*मया ततमिदं सर्वम्।* हम इस विश्व में जो भी देख रहे हैं वह सब भगवान् की शक्ति का प्रसार है, जिस प्रकार जगत के ऊपर फैली धूप तथा ताप सूर्य के विस्तार होते हैं। जब कोई भगवान् की शरण में जाता है, तो वह माया के प्रभाव को पार कर जाता है क्योंकि परमेश्वर सबके हृदयों में, विशेषतया भक्त के हृदय में, स्थित रहने के कारण तथा पूर्णतया बुद्धिमान् होने के कारण मनुष्य को वह बुद्धि प्रदान करते हैं जिससे वह फिर कभी मोह के गर्त में नहीं गिरता।

आयुः परं वपुरभीष्टमतुल्यलक्ष्मी-
द्योभूरसाः सकलयोगगुणास्त्रिवर्गः ।
ज्ञानं च केवलमनन्त भवन्ति तुष्टात्
त्वत्तो नृणां किमु सपत्नजयादिराशीः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

आयुः—आयु; परम्—ब्रह्मा के समान दीर्घ; वपुः—विशेष प्रकार का शरीर; अभीष्टम्—जीवन लक्ष्य; अतुल्य-लक्ष्मीः—जगत में अद्वितीय ऐश्वर्य; द्यो—स्वर्गलोक; भू—भूलोक; रसाः—अधोलोक; सकल—सभी प्रकार के; योग-गुणाः—आठ यौगिक सिद्धियाँ; त्रि-वर्गः—धर्म, अर्थ तथा काम; ज्ञानम्—ज्ञान; च—तथा; केवलम्—पूर्ण; अनन्त—हे अनन्त; भवन्ति—सम्भव बन जाते हैं; तुष्टात्—आपकी तुष्टि से; त्वत्तः—आपसे; नृणाम्—सभी जीवों को; किम् उ—क्या कहा जाये; सपत्न—शत्रु; जय—जीत; आदिः—इत्यादि; आशीः—ऐसे आशीष या वर।

हे अनन्त! यदि आप प्रसन्न हैं, तो मनुष्य को ब्रह्मा जैसी दीर्घायु, उच्च, मध्य या निम्नलोक में शरीर, असीम भौतिक ऐश्वर्य, धर्म, अर्थ तथा इन्द्रियतोष, पूर्ण दिव्यज्ञान तथा आठों योगसिद्धियाँ बड़ी आसानी से प्राप्त हो सकती हैं। अपने प्रतिद्वंद्वियों पर विजय प्राप्त करने की बात करना तो अत्यन्त नगण्य उपलब्धि है।

श्रीशुक उवाच
अदित्यैवं स्तुतो राजन्भगवान्पुष्करेक्षणः ।

क्षेत्रज्ञः सर्वभूतानामिति होवाच भारत ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; अदित्या—अदिति द्वारा; एवम्—इस प्रकार; स्तुतः—स्तुति किये जाने पर; राजन्—हे राजा (महाराज परीक्षित); भगवान्—भगवान् ने; पुष्कर-ईक्षणः—कमल जैसे नेत्रों वाले; क्षेत्र-ज्ञः—परमात्मा; सर्व-भूतानाम्—सभी जीवों के; इति—इस प्रकार; ह—निस्सन्देह; उवाच—उत्तर दिया; भारत—हे भरतवंश में श्रेष्ठ।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे भरतवंश में श्रेष्ठ, राजा परीक्षित! जब अदिति ने सभी जीवों के परमात्मा कमलनयन की इस तरह पूजा की तो भगवान् ने इस प्रकार उत्तर दिया।

श्रीभगवानुवाच
देवमातर्भवत्या मे विज्ञातं चिरकाङ्क्षितम् ।
यत्सपत्नैर्हृतश्रीणां च्यावितानां स्वधामतः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; देव-मातः—हे देवताओं की माता; भवत्याः—तुम्हारा; मे—मेरे द्वारा; विज्ञातम्—समझा गया; चिर-काङ्क्षितम्—दीर्घकाल से तुम्हें जिसकी अभिलाषा थी; यत्—क्योंकि; सपत्नैः—प्रतिद्वन्द्वियों द्वारा; हृत-श्रीणाम्—समस्त ऐश्वर्य से विहीन तुम्हारे पुत्रों का; च्यावितानाम्—विमुख; स्व-धामतः—अपने-अपने आवासों से।

भगवान् ने कहा : हे देवताओं की माता! मैं तुम्हारी उस दीर्घकालीन अभिलाषा को पहले ही समझ गया हूँ जो तुम्हारे उन पुत्रों के कल्याण के विषय में है, जो शत्रुओं द्वारा अपने समस्त ऐश्वर्य से च्युत कर दिये गये हैं और अपने-अपने घरों से खदेड़ दिये गये हैं।

तात्पर्य : भगवान् जन-जन के हृदय में और विशेष रूप से अपने भक्तों के हृदयों में स्थित होने के कारण संकट में भक्तों की सहायता के लिए सदा उद्यत रहते हैं। चूँकि वे सर्वज्ञ हैं अतएव वे जानते हैं कि किस तरह सामञ्जस्य लाया जाये और वे अपने भक्त का कष्ट दूर करने के लिए आवश्यक कार्यवाही करते हैं।

तान्विनिर्जित्य समरे दुर्मदानसुरर्षभान् ।
प्रतिलब्धजयश्रीभिः पुत्रैरिच्छस्युपासितुम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

तान्—उनको; विनिर्जित्य—हराकर; समरे—युद्ध में; दुर्मदान्—बल के कारण गर्वित; असुर-ऋषभान्—असुरों के नेताओं को; प्रतिलब्ध—पुनः प्राप्त करके; जय—विजय; श्रीभिः—ऐश्वर्य सहित; पुत्रैः—अपने पुत्रों सहित; इच्छसि—तुम चाहती हो; उपासितुम्—उनके साथ मिल कर मेरी पूजा करना।

हे देवी! मैं समझ रहा हूँ कि तुम अपने पुत्रों को पुनः प्राप्त करके, शत्रुओं को युद्धभूमि में पराजित करके तथा अपना धाम तथा ऐश्वर्य पुनः प्राप्त करके उन सब के साथ मिलकर मेरी पूजा करना चाहती हो।

इन्द्रज्येष्ठैः स्वतनयैर्हतानां युधि विद्विषाम् ।
स्त्रियो रुदन्तीरासाद्य द्रष्टुमिच्छसि दु:खिता: ॥ १४॥

शब्दार्थ

इन्द्र-ज्येष्ठै:—जिन व्यक्तियों में इन्द्र सबसे बड़ा है; स्व-तनयै:—अपने पुत्रों द्वारा; हतानाम्—जो मारे जा चुके हैं; युधि—युद्ध में; विद्विषाम्—शत्रुओं की; स्त्रिय:—पत्नियाँ; रुदन्ती:—विलाप करती; आसाद्य—अपने-अपने पतियों के शवों के निकट आकर; द्रष्टुम् इच्छसि—देखना चाहती हो; दु:खिता:—अत्यन्त दुखित।

तुम अपने पुत्रों के शत्रु उन असुरों की पत्नियों को अपने-अपने पतियों की मृत्यु पर विलाप करते हुए देखना चाहती हो जब वे इन्द्रादि देवताओं द्वारा युद्ध में मारे जाएँ।

आत्मजान्सुसमृद्धांस्त्वं प्रत्याहृतयश:श्रिय: ।
नाकपृष्ठमधिष्ठाय क्रीडतो द्रष्टुमिच्छसि ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

आत्म-जान्—अपने पुत्रों को; सु-समृद्धान्—अत्यन्त ऐश्वर्यवान्; त्वम्—तुम; प्रत्याहृत—वापस पाकर; यश:—यश; श्रिय:—ऐश्वर्य; नाक-पृष्ठम्—स्वर्गलोक में; अधिष्ठाय—स्थित; क्रीडत:—विलास करते; द्रष्टुम्—देखने के लिए; इच्छसि—इच्छा करती हो।

तुम चाहती हो कि तुम्हारे पुत्र खोया हुआ यश तथा ऐश्वर्य प्राप्त करें और पुन: पूर्ववत् अपने स्वर्गलोक में निवास करें।

प्रायोऽधुना तेऽसुरयूथनाथा
अपारणीया इति देवि मे मति: ।
यत्तेऽनुकूलेश्वरविप्रगुप्ता
न विक्रमस्तत्र सुखं ददाति ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

प्राय:—लगभग; अधुना—इस समय; ते—वे सभी; असुर-यूथ-नाथा:—असुरों के प्रधान; अपारणीया:—अजेय; इति—इस प्रकार; देवि—हे माता अदिति; मे—मेरी; मति:—सम्मति; यत्—क्योंकि; ते—सारे असुर; अनुकूल-ईश्वर-विप्र-गुप्ता:—ब्राह्मणों द्वारा सुरक्षित, जिनकी कृपा से ईश्वर सदैव उपस्थित रहते हैं; न—नहीं; विक्रम:—शक्ति का उपयोग; तत्र—वहाँ; सुखम्—सुख; ददाति—दे सकता है।

हे देवताओं की माता! मेरे विचार से असुरों के सारे प्रधान अब अजेय हैं क्योंकि वे उन ब्राह्मणों द्वारा सुरक्षित हैं जिन पर भगवान् की सदैव कृपा रहती है। अतएव उनके विरुद्ध बल-प्रयोग अब सुख का स्रोत नहीं बन सकता।

तात्पर्य : जब किसी व्यक्ति पर ब्राह्मणों तथा वैष्णवों की कृपा होती है, तो उसे कोई भी नहीं हरा सकता। यहाँ तक कि यदि कोई किसी ब्राह्मण द्वारा रक्षित है, तो भगवान् भी किसी प्रकार का हस्तक्षेप

नहीं करते। कहा गया है—*गोब्राह्मणहिताय च।* भगवान् सर्वप्रथम गायों तथा ब्राह्मणों को सारे वरदान देने के लिए उन्मुख होते हैं। अतएव यदि किसी पर ब्राह्मण अनुकूल होते हैं, तो न तो भगवान् किसी तरह का हस्तक्षेप करते हैं न ही कोई अन्य व्यक्ति ऐसे पुरुष के सुख में बाधक बन सकता है।

अथाप्युपायो मम देवि चिन्त्यः
सन्तोषितस्य व्रतचर्यया ते ।
ममार्चनं नार्हति गन्तुमन्यथा
श्रद्धानुरूपं फलहेतुकत्वात् ॥ १७॥

शब्दार्थ

अथ—अतएव; अपि—ऐसी स्थिति के बावजूद; उपायः—कोई साधन; मम—मेरा; देवि—हे देवी; चिन्त्यः—सोचा जाना चाहिए; सन्तोषितस्य—अत्यन्त प्रसन्न; व्रत-चर्यया—व्रत रखकर; ते—तुम्हारे द्वारा; मम अर्चनम्—मेरी पूजा करना; न—कभी नहीं; अर्हति—योग्य है; गन्तुम् अन्यथा—और व्यर्थ होने के लिए; श्रद्धा-अनुरूपम्—अपनी श्रद्धा तथा भक्ति के अनुसार; फल—फल; हेतुकत्वात्—कारण होने से।

हे देवी अदिति! फिर भी चूँकि मैं तुम्हारे व्रत-कार्य से प्रसन्न हुआ हूँ अतएव मुझे तुम पर कृपा करने के लिए कोई न कोई साधन खोजना होगा क्योंकि मेरी पूजा कभी भी व्यर्थ नहीं जाती, प्रत्युत पात्रता के अनुरूप वाँछित फल देने वाली होती है।

त्वयार्चितश्चाहमपत्यगुप्तये
पयोव्रतेनानुगुणं समीडितः ।
स्वांशेन पुत्रत्वमुपेत्य ते सुतान्
गोप्तास्मि मारीचतपस्यधिष्ठितः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

त्वया—तुम्हारे द्वारा; अर्चितः—पूजित होकर; च—भी; अहम्—मैं; अपत्य-गुप्तये—तुम्हारे पुत्रों की सुरक्षा करते हुए; पयः-व्रतेन—पयोव्रत द्वारा; अनुगुणम्—जहाँ तक सम्भव है; समीडितः—ठीक से पूजित; स्व-अंशेन—अपने पूर्ण अंश द्वारा; पुत्रत्वम्—तुम्हारा पुत्र बनकर; उपेत्य—इस अवसर का लाभ उठाकर; ते सुतान्—तुम्हारे अन्य पुत्रों को; गोप्ता अस्मि—सुरक्षा प्रदान करूँगा; मारीच—कश्यपमुनि की; तपसि—तपस्या में; अधिष्ठितः—स्थित।

तुमने अपने पुत्रों की रक्षा के लिए मेरी स्तुति की है और महान् पयोव्रत रखकर मेरी समुचित पूजा की है। मैं कश्यपमुनि की तपस्या के कारण तुम्हारा पुत्र बनना स्वीकार करूँगा और इस प्रकार तुम्हारे अन्य पुत्रों की रक्षा करूँगा।

उपधाव पतिं भद्रे प्रजापतिमकल्मषम् ।
मां च भावयती पत्यावेवं रूपमवस्थितम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

उपधाव—जाकर पूजा करो; पतिम्—अपने पति की; भद्रे—हे भद्र स्त्री; प्रजापतिम्—जो प्रजापति है; अकल्मषम्—जो अपनी तपस्या के कारण अत्यधिक शुद्ध बन गया है; माम्—मुझको; च—भी; भावयती—मनन करती हुई; पत्यौ—अपने पति में; एवम्—इस प्रकार; रूपम्—रूप; अवस्थितम्—वहाँ पर स्थित।

तुम अपने पति कश्यप के शरीर के भीतर सदैव मुझे स्थित मानकर उनकी पूजा करो क्योंकि वे अपनी तपस्या से शुद्ध हो चुके हैं।

नैतत्परस्मा आख्येयं पृष्टयापि कथञ्चन ।
सर्वं सम्पद्यते देवि देवगुह्यं सुसंवृतम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; एतत्—यह; परस्मै—बाहरी लोगों को; आख्येयम्—प्रकट किया जाये; पृष्टया अपि—पूछे जाने पर भी; कथञ्चन—किसी के द्वारा; सर्वम्—सब कुछ; सम्पद्यते—सफल होता है; देवि—हे नारी; देव-गुह्यम्—देवताओं के लिए भी गोपनीय; सु-संवृतम्—भलीभाँति गुप्त रखा गया।

हे नारी! यदि कोई पूछे तो भी तुम्हें यह बात किसी को प्रकट नहीं करनी चाहिए। यदि परम गोपनीय बात को गुप्त रखा जाता है, तो वह सफल होती है।

श्रीशुक उवाच
एतावदुक्त्वा भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ।
अदितिर्दुर्लभं लब्ध्वा हरेर्जन्मात्मनि प्रभोः ।
उपाधावत्पतिं भक्त्या परया कृतकृत्यवत् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; एतावत्—इस तरह; उक्त्वा—उससे कहकर; भगवान्—भगवान्; तत्र एव—उसी स्थान में; अन्तः-अधीयत—अन्तर्धान हो गये; अदितिः—अदिति; दुर्लभम्—अत्यन्त दुर्लभ सफलता; लब्ध्वा—पाकर; हरेः—भगवान् का; जन्म—जन्म; आत्मनि—अपने में; प्रभोः—भगवान् का; उपाधावत्—तुरन्त गई; पतिम्—अपने पति के पास; भक्त्या—भक्तिपूर्वक; परया—महान्; कृत-कृत्य-वत्—अपने को अत्यन्त सफल मानती हुई।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : ऐसा कहकर भगवान् उस स्थान से अदृश्य हो गये। भगवान् से यह परम मूल्यवान आशीर्वाद पाकर कि वे उसके पुत्र रूप में प्रकट होंगे, अदिति ने अपने को अत्यन्त सफल माना और वह अत्यन्त भक्तिपूर्वक अपने पति के पास गई।

स वै समाधियोगेन कश्यपस्तदबुध्यत ।
प्रविष्टमात्मनि हरेरंशं ह्यवितथेक्षणः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; वै—निस्सन्देह; समाधि-योगेन—ध्यान द्वारा; कश्यपः—कश्यपमुनि ने; तत्—तब; अबुध्यत—समझ सके; प्रविष्टम्—प्रवेश कर गया है; आत्मनि—अपने भीतर; हरेः—भगवान् का; अंशम्—अंश; हि—निस्सन्देह; अवितथ-ईक्षणः—जिसकी दृष्टि कभी धोखा नहीं खाती।

ध्यान समाधि में स्थित होने के कारण अचूक दृष्टि वाले कश्यपमुनि यह देख सके कि उनके भीतर भगवान् का स्वांश प्रविष्ट कर गया है।

सोऽदित्यां वीर्यमाधत्त तपसा चिरसम्भृतम् ।
समाहितमना राजन्दारुण्यग्निं यथानिलः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

सः—कश्यप ने; अदित्याम्—अदिति के भीतर; वीर्यम्—वीर्य; आधत्त—रख दिया; तपसा—तपस्या द्वारा; चिर-सम्भृतम्—दीर्घकाल तक कई वर्षों से रुका हुआ; समाहित-मनाः—भगवान् पर पूर्णतया समाधि लगाये; राजन्—हे राजा; दारुणि—काठ में; अग्निम्—अग्नि; यथा—जिस तरह; अनिलः—वायु।

हे राजा! जिस तरह वायु काठ के दो टुकड़ों के बीच घर्षण को तेज करती है और अग्नि उत्पन्न कर देती है उसी तरह भगवान् में पूर्णतया ध्यानमग्न कश्यपमुनि ने अपने वीर्य को अदिति की कुक्षि में स्थानान्तरित कर दिया।

तात्पर्य : जब वायु से क्षुब्ध होकर लकड़ी के दो खण्ड एक दूसरे से रगड़ खाते हैं, तो जंगल में आग लग जाती है। किन्तु वास्तव में यह अग्नि न तो लकड़ी में होती है, न वायु में; यह सदा ही दोनों से भिन्न होती है। इसी प्रकार यहाँ पर यह समझना चाहिए कि कश्यपमुनि तथा अदिति का संयोग सामान्य मानवों जैसा संभोग न था। संभोग के मानवीय स्खलन से भगवान् को कुछ भी लेना-देना नहीं रहता। वे ऐसे संसारी संयोगों से सर्वथा पृथक् रहते हैं।

भगवद्गीता (९.२९) में भगवान् कहते हैं—*समोऽहं सर्वभूतेषु*—मैं समस्त जीवों के प्रति समभाव रखता हूँ। तो भी भक्तों की रक्षा करने तथा उत्पात मचाने वाले असुरों का वध करने के लिए भगवान् ने अदिति की कुक्षि में प्रवेश किया। अतएव यह भगवान् की दिव्य लीला है। इसका गलत अर्थ नहीं लगाना चाहिए। किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि भगवान् उसी प्रकार से अदिति के पुत्र बने जिस तरह स्त्री तथा पुरुष के संभोग से एक सामान्य बालक उत्पन्न होता है।

आजकल के मत-मतान्तर के युग में यहाँ पर जीवन की उत्पत्ति के विषय में बताना उपयुक्त होगा। जीव की जीवनी शक्ति—आत्मा—मानव के वीर्य तथा रज से भिन्न है। यद्यपि बद्ध आत्मा को पुरुष तथा स्त्री की प्रजनन कोशिकाओं से कुछ भी लेना-देना नहीं रहता, वह अपने कर्म के अनुसार उचित स्थिति में रख दिया जाता है (*कर्मणा दैवनेत्रेण*)। इस तरह जीवन मात्र रज-वीर्य का प्रतिफल नहीं अपितु सारे भौतिक तत्त्वों से स्वतंत्र होता है। जैसाकि *भगवद्गीता* में भलीभाँति बताया गया है, जीव

किसी भौतिक फल पर आश्रित नहीं होता। जीव को न तो अग्नि द्वारा जलाया जा सकता है, न किसी तेज हथियार से काटा जा सकता है, न जल से भिगोया जा सकता है, न ही हवा से सुखाया जा सकता है। वह भौतिक तत्त्वों से पूर्णतया स्वतंत्र होता है, किन्तु किसी श्रेष्ठ व्यवस्था द्वारा वह इन भौतिक तत्त्वों में धर दिया जाता है। वह सदा ही भौतिक सम्पर्क से पृथक् रहता है (*असङ्गो ह्यं पुरुष:*), किन्तु भौतिक दशा प्राप्त होने के कारण उसे प्रकृति के गुणों का बन्धन भोगना पड़ता है।

पुरुष: प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान्।

कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु॥

"इस तरह जीव प्रकृति के तीनों गुणों का भोग करता हुआ जीवनयापन करता है। यह भौतिक प्रकृति की संगति के कारण होता है। इस तरह विभिन्न योनियों में उसे अच्छे-बुरे से पाला पड़ता है।" (*भगवद्गीता* १३.२२) यद्यपि जीव भौतिक तत्त्वों से पृथक् है, किन्तु वह भौतिक अवस्था को प्राप्त होता है और इस तरह उसे भौतिक क्रियाकलापों के फल भोगने होते हैं।

अदितेर्धिष्ठितं गर्भं भगवन्तं सनातनम् ।
हिरण्यगर्भो विज्ञाय समीडे गुह्यनामभि: ॥ २४॥

शब्दार्थ

अदिते:—अदिति के गर्भ में; धिष्ठितम्—स्थापित होकर; गर्भम्—गर्भ; भगवन्तम्—भगवान् को; सनातनम्—सनातन; हिरण्यगर्भ:—ब्रह्माजी ने; विज्ञाय—यह जानकर; समीडे—स्तुति की; गुह्य-नामभि:—दिव्य नामों के साथ।

जब ब्रह्माजी को यह ज्ञात हो गया कि भगवान् अदिति के गर्भ में हैं, तो वे दिव्य नामों का पाठ करके भगवान् की स्तुति करने लगे।

तात्पर्य : भगवान् सर्वत्र विद्यमान रहते हैं (*अण्डान्तरस्थपरमाणुचयान्तरस्थम्*)। अतएव जब कोई उनके दिव्य नामों का—हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे। हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे का—उच्चारण करता है, तो भगवान् ऐसे सङ्कीर्तन से स्वयमेव प्रसन्न होते हैं। ऐसा नहीं है कि भगवान् अनुपस्थित होते हैं। वे वहाँ पर उपस्थित रहते हैं और जब भक्त दिव्य नाम का उच्चारण करता है, तो यह भौतिक ध्वनि नहीं होती। अतएव भगवान् सहज ही प्रसन्न होते हैं। भक्त जानता है कि भगवान् सर्वत्र उपस्थित हैं और वह उनके पवित्र नाम का उच्चारण करने मात्र से ही उन्हें प्रसन्न कर सकता है।

श्रीब्रह्मोवाच
जयोरुगाय भगवन्नुरुक्रम नमोऽस्तु ते ।
नमो ब्रह्मण्यदेवाय त्रिगुणाय नमो नमः ॥ २५॥

शब्दार्थ

श्री-ब्रह्मा उवाच—ब्रह्माजी ने स्तुति की; जय—जय हो; उरुगाय—जिनकी महिमा का निरन्तर गान होता है ऐसे भगवान् की; भगवन्—हे भगवान्; उरुक्रम—जिनके कार्यकलाप अत्यन्त यशस्वी हैं; नमः अस्तु ते—मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ; नमः—मेरा सादर नमस्कार; ब्रह्मण्य-देवाय—योगियों के भगवान् को; त्रि-गुणाय—प्रकृति के तीनों गुणों के नियन्ता; नमः नमः—पुनः-पुनः नमस्कार करता हूँ।

ब्रह्माजी ने कहा : हे भगवान्! आपकी जय हो। आप सब के द्वारा महिमान्वित हैं और आपके कार्यकलाप असामान्य होते हैं। हे योगियों के प्रभु, हे प्रकृति के तीनों गुणों के नियन्ता! मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ। मैं आपको पुनः-पुनः नमस्कार करता हूँ।

नमस्ते पृश्निगर्भाय वेदगर्भाय वेधसे ।
त्रिनाभाय त्रिपृष्ठाय शिपिविष्टाय विष्णवे ॥ २६॥

शब्दार्थ

नमः ते—मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ; पृश्नि-गर्भाय—पृश्नि (पूर्व जन्म में अदिति) के गर्भ में वास करने वाले को; वेद-गर्भाय—सदैव वैदिक ज्ञान में निवास करने वाले को; वेधसे—ज्ञान से पूर्ण हैं, जो; त्रि-नाभाय—उन्हें जिनकी नाभि से निकले कमलदण्ड के भीतर तीनों लोक निवास करते हैं; त्रि-पृष्ठाय—जो तीनों लोकों से परे हैं; शिपि-विष्टाय—समस्त जीवों के हृदयों में वास करने वाले को; विष्णवे—सर्वव्यापी भगवान् को।

हे सर्वव्यापी भगवान् विष्णु! मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ क्योंकि आप समस्त जीवों के हृदयों के भीतर स्थित हैं। तीनों लोक आपकी नाभि के भीतर निवास करते हैं, फिर भी आप इन तीनों लोकों से परे हैं। पहले आप पृश्नि के पुत्र रूप में प्रकट हुए थे। मैं उन परम स्रष्टा को सादर नमस्कार करता हूँ जिन्हें केवल वैदिक ज्ञान के द्वारा ही जाना जा सकता है।

त्वमादिरन्तो भुवनस्य मध्यम्
अनन्तशक्तिं पुरुषं यमाहुः ।
कालो भवानाक्षिपतीश विश्वं
स्रोतो यथान्तः पतितं गभीरम् ॥ २७॥

शब्दार्थ

त्वम्—आप; आदिः—मूल कारण; अन्तः—प्रलय के कारण; भुवनस्य—ब्रह्माण्ड के; मध्यम्—इस जगत का पालन; अनन्त-शक्तिम्—असीम शक्ति के आगार; पुरुषम्—परम पुरुष को; यम्—जिसको; आहुः—कहते हैं; कालः—शाश्वत काल; भवान्—आप; आक्षिपति—आकर्षित करते हुए; ईश—परमेश्वर; विश्वम्—सारे ब्रह्माण्ड को; स्रोतः—लहरें; यथा—जिस तरह; अन्तः पतितम्—जल के भीतर गिरी हुई; गभीरम्—अत्यन्त गहरे।

हे प्रभु! आप तीनों लोकों के आदि, मध्य तथा अन्त हैं और वेदों में आप असीम शक्तियों के

आगार परम पुरुष के रूप में विख्यात हैं। हे स्वामी! जिस प्रकार लहरें गहरे जल में गिरी हुई टहनियों तथा पत्तियों को खींच लेती हैं उसी प्रकार परम शाश्वत काल रूप आप इस ब्रह्माण्ड की प्रत्येक वस्तु को खींचते हैं।

तात्पर्य : कभी-कभी काल को *कालस्रोत* या काल की लहरों के रूप में वर्णित किया जाता है। इस भौतिक जगत की सारी वस्तुएँ काल के अधीन हैं और वे भगवान् रूपी लहरों द्वारा बहाई जाती रहती हैं।

त्वं वै प्रजानां स्थिरजङ्गमानां
प्रजापतीनामसि सम्भविष्णुः ।
दिवौकसां देव दिवश्च्युतानां
परायणं नौरिव मज्जतोऽप्सु ॥ २॥

शब्दार्थ

त्वम्—आप; वै—निस्सन्देह; प्रजानाम्—सारे जीवों के; स्थिर-जङ्गमानाम्—अचल अथवा चल; प्रजापतीनाम्—सारे प्रजापतियों के; असि—हो; सम्भविष्णुः—हर एक के जनक; दिव-ओकसाम्—उच्चलोक के निवासियों के; देव—हे परमेश्वर; दिवः च्युतानाम्—अपने आवासों से नीचे गिरे हुए देवताओं के; परायणम्—परम आश्रय; नौः—नाव; इव—सदृश; मज्जतः—डूबने वाले के; अप्सु—जल में।.

हे प्रभु! आप समस्त चर या अचर जीवों के आदि जनक हैं और आप प्रजापतियों के भी जनक हैं। हे स्वामी! जिस प्रकार जल में डूबते हुए व्यक्ति के लिए नाव ही एकमात्र सहारा होती है उसी तरह आप इस समय अपने स्वर्ग-पद से च्युत देवताओं के एकमात्र आश्रय हैं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कंध के अन्तर्गत "भगवान् को अदिति का पुत्र बनना स्वीकार" नामक सत्रहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter अठारह

भगवान् वामनदेव : वामन अवतार

इस अध्याय में यह वर्णन हुआ है कि वामनदेव किस तरह प्रकट हुए और वे महाराज बलि की यज्ञशाला में कैसे गये जहाँ उनका स्वागत हुआ और उन्होंने वर देकर कैसे उनकी इच्छा पूरी की।

भगवान् वामनदेव इस जगत में अदिति के गर्भ से शंख, चक्र, गदा तथा कमल धारण किये उत्पन्न हुए। उनका शारीरिक वर्ण साँवला था और वे पीताम्बर पहने थे। भगवान् विष्णु श्रावण द्वादशी के शुभ

अवसर पर जब अभिजित नक्षत्र उदित हो चुका था, प्रकट हुए। उस समय भगवान् के प्राकट्य से तीनों लोकों में अर्थात् उच्च लोकबाह्य लोक तथा पृथ्वीलोक में सभी देवता, गाएँ, ब्राह्मण यहाँ तक कि सारी ऋतुएँ भी प्रसन्न थीं। अतएव यह शुभ दिवस विजया कहलाता है। जब *सच्चिदानन्द* विग्रह भगवान् कश्यप तथा अदिति के पुत्र रूप में प्रकट हुए तो उनके माता पिता दोनों अत्यन्त विस्मित हुए। प्रकट होने के बाद भगवान् ने वामन रूप धारण कर लिया। सारे ऋषियों ने हर्ष प्रकट किया और कश्यपमुनि की उपस्थिति में भगवान् वामन का जन्मोत्सव सम्पन्न किया। उनके यज्ञोपवीत संस्कार के समय सूर्यदेव, बृहस्पति, पृथ्वी की प्रधान देवी, स्वर्गलोकों के देवता, उनकी माता, ब्रह्माजी, कुवेर, सप्तर्षि इत्यादि ने उनका सम्मान किया। तब भगवान् वामनदेव नर्मदा नदी के उत्तरी तट पर स्थित उस यज्ञस्थल पर गये जो भृगुकच्छ कहलाता है जहाँ भृगुवंशी ब्राह्मण यज्ञ कर रहे थे। भगवान् वामनदेव मूंज की मेखला, मृगछाला तथा जनेऊ पहने और हाथ में दण्ड, छत्र तथा कमण्डलु लिए महाराज बलि की यज्ञशाला में प्रकट हुए। उनके दिव्य तेज से सारे पुरोहितों का तेज घट गया और उन्होंने अपने-अपने आसनों से खड़े होकर भगवान् वामनदेव की स्तुति की। शिवजी भी भगवान् वामनदेव के अँगूठे से निकले गंगाजल को अपने सिर पर धारण करते हैं अतएव बलि महाराज ने भगवान् वामनदेव के चरण धोकर अपने सिर पर चढ़ाया और यह अनुभव किया कि वे और उनके पूर्वज इससे महिमामण्डित हुए थे। तब बलि महाराज ने वामनदेव की कुशलता पूछी और उनसे प्रार्थना की कि वे धन, रत्न या जो भी इच्छा हो, माँगें।

श्रीशुक उवाच
इत्थं विरिञ्चस्तुतकर्मवीर्यः
प्रादुर्बभूवामृतभूरदित्याम् ।
चतुर्भुजः शङ्खगदाब्जचक्रः
पिशङ्गवासा नलिनायतेक्षणः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इत्थम्—इस तरह से; विरिञ्च-स्तुत-कर्म-वीर्यः—भगवान्, जिनके कार्यों एवं पराक्रम की प्रशंसा ब्रह्माजी भी करते हैं; प्रादुर्बभूव—प्रकट हुए; अमृत-भूः—जिनका प्राकट्य सदैव मृत्युरहित होता है; अदित्याम्—अदिति के गर्भ से; चतुः-भुजः—चार भुजाओं वाले; शङ्ख-गदा-अब्ज-चक्रः—शंख, गदा, कमल तथा चक्र से सुशोभित; पिशङ्ग-वासाः—पीताम्बर धारण किये; नलिन-आयत-ईक्षणः—कमल की पंखड़ियों के समान खिली हुई आँखों वाले।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जब ब्रह्माजी इस प्रकार भगवान् के कार्यों एवं पराक्रम का

यशोगान कर चुके तो भगवान् जिनकी एक सामान्य जीव की भान्ति कभी मृत्यु नहीं होती, अदिति के गर्भ से प्रकट हुए। उनके चार हाथ शंख, चक्र, गदा तथा पद्म से सुशोभित थे। वे पीताम्बर धारण किये हुए थे और उनकी आँखें खिले हुए कमल की पंखड़ियों जैसी प्रतीत हो रही थीं।

तात्पर्य : इस श्लोक में *अमृत-भूः* शब्द महत्त्वपूर्ण है। कभी-कभी भगवान् सामान्य बालक की भाँति जन्म लेकर प्रकट होते हैं, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं होता कि वे जन्म, मृत्यु या बुढ़ापे से प्रभावित होते हैं। भगवान् के अवतारों के प्राकट्य तथा उनके कार्यकलापों के विषय में समझने के लिए बहुत बुद्धिमानी चाहिए। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (४.९) में हुई है—*जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।* मनुष्य को यह समझने का प्रयत्न करना चाहिए कि भगवान् का प्राकट्य तथा तिरोभाव एवं उनके कार्यकलाप *दिव्य* होते हैं। भगवान् को भौतिक कार्यकलापों से कोई सरोकार नहीं होता। जो कोई भगवान् के प्राकट्य, तिरोधान तथा कार्यकलापों को समझता है, वह तुरन्त मुक्त हो जाता है। इस शरीर को छोड़ने पर उसे फिर से भौतिक शरीर कभी नहीं धारण करना पड़ता अपितु वह सीधे स्वर्ग को चला जाता है (*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन*)।

श्यामावदातो झषराजकुण्डल-
त्विषोल्लसच्छ्रीवदनाम्बुजः पुमान् ।
श्रीवत्सवक्षा बलयाङ्गदोल्लस-
त्किरीटकाञ्चीगुणचारुनूपुरः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्याम-अवदातः—जिनका शरीर साँवला है और उन्माद से मुक्त है; झष-राज-कुण्डल—मगर के आकार के कुण्डल; त्विषा—कान्ति से; उल्लसत्—चमचमाते; श्री-वदन-अम्बुजः—सुन्दर कमल जैसे मुखमण्डल वाले; पुमान्—परम पुरुष; श्रीवत्स-वक्षाः—जिनके वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिह्न है; बलय—कड़े; अङ्गद—बाजूबंद; उल्लसत्—चमचमाते; किरीट—मुकुट; काञ्ची—करधनी; गुण—जनेऊ; चारु—सुन्दर; नूपुरः—पायल।

भगवान् का शरीर साँवले रंग का था और समस्त उन्मादों से मुक्त था। उनका कमलमुख मकराकृति जैसे कान के कुण्डलों से सुशोभित होकर अत्यन्त सुन्दर लग रहा था और उनके वक्षस्थल पर श्रीवत्स का चिह्न था। वे कलाइयों में कंगन पहने थे, अपनी भुजाओं में बाजूबंद पहने थे, सिर पर मुकुट लगाये थे, उनकी कमर में करधनी थी, छाती पर जनेऊ पड़ा था और उनके चरणकमलों को पायल सुशोभित कर रही थीं।

मधुव्रतव्रातविघुष्टया स्वया
विराजितः श्रीवनमालया हरिः ।
प्रजापतेर्वेश्मतमः स्वरोचिषा
विनाशयन्कण्ठनिविष्टकौस्तुभः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

मधु-व्रत—शहद के लिए दीवानी मधुमक्खियों का; व्रात—समूह; विघुष्टया—गुंजार करते; स्वया—असामान्य; विराजितः—स्थित; श्री—सुन्दर; वन-मालया—फूलों की माला से; हरिः—भगवान्; प्रजापतेः—प्रजापति कश्यपमुनि का; वेश्म-तमः—घर का अंधकार; स्व-रोचिषा—अपने तेज से; विनाशयन्—नष्ट करते हुए; कण्ठ—गले में; निविष्ट—पहना हुआ; कौस्तुभः—कौस्तुभ मणि।

उनके वक्षस्थल पर सुन्दर फूलों असाधारण की माला सुशोभित थी और फूलों के अत्यधिक सुगन्धित होने से मधुमक्खियों का बड़ा सा समूह गुंजार करता हुआ शहद के लिए उन पर टूट पड़ा था। जब भगवान् अपने गले में कौस्तुभ मणि पहन कर प्रकट हुए तो उनके तेज से प्रजापति कश्यप के घर का अंधकार दूर हो गया।

दिशः प्रसेदुः सलिलाशयास्तदा
प्रजाः प्रहृष्टा ऋतवो गुणान्विताः ।
द्यौरन्तरीक्षं क्षितिरग्निजिह्वा
गावो द्विजाः सञ्जहृषुर्नगाश्च ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

दिशः—सारी दिशाएँ; प्रसेदुः—प्रसन्न हो उठीं; सलिल—जल के; आशयाः—आगार; तदा—उस समय; प्रजाः—सारे जीव; प्रहृष्टाः—अत्यन्त प्रसन्न; ऋतवः—सारी ऋतुएँ; गुण-अन्विताः—अपने-अपने गुणों से पूर्ण; द्यौः—ऊपरी लोक; अन्तरीक्षम्—बाह्य आकाश; क्षितिः—पृथ्वी; अग्नि-जिह्वाः—देवतागण; गावः—गौवें; द्विजाः—ब्राह्मणगण; सञ्जहृषुः—सभी प्रसन्न हो गये; नगाः च—तथा पर्वत।

उस समय सभी दिशाओं में, नदी तथा सागर जैसे जलागारों में तथा सब के हृदयों में प्रसन्नता व्याप्त हो गई। विभिन्न ऋतुएँ अपने-अपने गुण दिखलाने लगीं तथा उच्चलोक, बाह्य आकाश एवं पृथ्वी पर के सारे जीव हर्षित हो उठे। देवता, गाएँ, ब्राह्मण तथा सारे पर्वत हर्ष से पूरित हो गए।

श्रोणायां श्रवणद्वादश्यां मुहूर्तेऽभिजिति प्रभुः ।
सर्वे नक्षत्रताराद्याश्चक्रुस्तज्जन्म दक्षिणम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

श्रोणायाम्—जब चन्द्रमा श्रवण नक्षत्र पर था; श्रवण-द्वादश्याम्—भाद्र मास के शुक्लपक्ष की द्वादशी को, जो श्रवण-द्वादशी कहलाती हैं; मुहूर्ते—शुभ क्षण में; अभिजिति—अभिजित नक्षत्र में, जो श्रवण राशि का पूर्वार्द्ध है तथा अभिजित मुहूर्त में (मध्यान्ह के समय); प्रभुः—भगवान्; सर्वे—सभी; नक्षत्र—तारे; तारा—लोक; आद्याः—सूर्य आदि लोक; चक्रुः—बनाया; तत्-जन्म—भगवान् का जन्म दिन; दक्षिणम्—अत्यन्त भव्य।

श्रवण-द्वादशी के दिन जब चन्द्रमा श्रवण राशि पर था और शुभ अभिजित मुहूर्त था, भगवान् इस ब्रह्माण्ड में प्रकट हुए। भगवान् के प्राकट्य को अत्यन्त शुभ मानकर सूर्य से लेकर शनि इत्यादि समस्त तारे तथा ग्रह अत्यन्त दानी बन गये।

तात्पर्य : निपुण ज्योतिषी श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने *नक्षत्र-ताराद्याः* शब्द की व्याख्या की है। *नक्षत्र* का अर्थ है 'तारे' और इस प्रसंग में *तारा* का अर्थ 'लोक' या 'ग्रह' है एवं *आद्याः* का अर्थ है, वह जिसका वर्णन सर्वप्रथम हुआ है। तारों (ग्रहों) में पहला ग्रह सूर्य है चन्द्रमा नहीं। अतएव वैदिक कथन के अनुसार आधुनिक ज्योतिर्विद की यह मान्यता कि चन्द्रमा पृथ्वी के सबसे निकट है स्वीकार नहीं की जानी चाहिए। जिस क्रम में विश्वभर के लोग सप्ताह के दिनों के नाम लेते हैं—रविवार, सोमवार, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र तथा शनिवार—वस्तुतः वह वेदों के अनुसार लोकों का क्रम ही है और इस कथन से वेदों की पुष्टि होती है। इसके अलावा जब भगवान् का प्रादुर्भाव हुआ तो ज्योतिष गणना के अनुसार तारे तथा ग्रह भगवान् के जन्म को मनाने के लिए अत्यन्त शुभ स्थान पर आ गये।

द्वादश्यां सवितातिष्ठन्मध्यन्दिनगतो नृप ।
विजयानाम सा प्रोक्ता यस्यां जन्म विदुर्हरेः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

द्वादश्याम्—द्वादशी के दिन; सविता—सूर्य; अतिष्ठत्—स्थित था; मध्यम्-दिन-गतः—आकाश के मध्य भाग में; नृप—हे राजा; विजया-नाम—विजया नामक; सा—वह दिन; प्रोक्ता—कहा जाता है; यस्याम्—जिसमें; जन्म—प्रादुर्भाव; विदुः—वे जानते हैं; हरेः—भगवान् हरि का।

हे राजा! द्वादशी के दिन जब भगवान् प्रकट हुए तो सूर्य मध्य आकाश में था, जैसा कि प्रत्येक विद्वान को पता है। यह द्वादशी विजया कहलाती है।

शङ्खदुन्दुभयो नेदुर्मृदङ्गपणवानकाः ।
चित्रवादित्रतूर्याणां निर्घोषस्तुमुलोऽभवत् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

शङ्ख—शंख; दुन्दुभयः—दुन्दुभी नामक वाद्य; नेदुः—बजने लगे; मृदङ्ग—ढोल; पणव-आनकाः—पणव तथा आनक नाम के ढोल; चित्र—विविध; वादित्र—संगीत ध्वनि; तूर्याणाम्—तथा अन्य वाद्ययंत्रों (तुरहियों) का; निर्घोषः—उच्चस्वर; तुमुलः—अत्यन्त कोलाहलपूर्ण; अभवत्—हो गया।

शंख, ढोल, मृदंग, पणव तथा आनक बजने लगे। इन तथा अन्य विविध वाद्ययंत्रों की ध्वनि अत्यन्त कोलाहलपूर्ण थी।

प्रीताश्चाप्सरसोऽनृत्यन्गन्धर्वप्रवरा जगुः ।
तुष्टुवुर्मुनयो देवा मनवः पितरोऽग्नयः ॥ ॥

शब्दार्थ

प्रीताः—अत्यन्त प्रसन्न होकर; च—भी; अप्सरसः—अप्सराएँ; अनृत्यन्—नाचने लगीं; गन्धर्व-प्रवराः—श्रेष्ठ गन्धर्व गण; जगुः—गाने लगे; तुष्टुवुः—स्तुतियों द्वारा भगवान् को हर्षित किया; मुनयः—मुनियों ने; देवाः—देवताओं ने; मनवः—मनुओं ने; पितरः—पितृलोक के वासियों ने; अग्नयः—अग्नि देवताओं ने।

अत्यधिक हर्षित होकर अप्सराएँ प्रसन्नता के मारे नाचने लगीं, श्रेष्ठ गन्धर्व गाने लगे और महा-मुनि, देवता, मनु, पितरगण तथा अग्निदेवों ने भगवान् को प्रसन्न करने के लिए स्तुतियाँ कीं।

सिद्धविद्याधरगणाः सकिम्पुरुषकिन्नराः ।
चारणा यक्षरक्षांसि सुपर्णा भुजगोत्तमाः ॥ ९ ॥
गायन्तोऽतिप्रशंसन्तो नृत्यन्तो विबुधानुगाः ।
अदित्या आश्रमपदं कुसुमैः समवाकिरन् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

सिद्ध—सिद्धलोक के वासी; विद्याधर-गणाः—विद्याधर लोक के वासी; स—सहित; किम्पुरुष—किम्पुरुष लोक के वासी; किन्नराः—किन्नर लोक के निवासी; चारणाः—चारणलोक के वासी; यक्ष—यक्षगण; रक्षांसि—राक्षसगण; सुपर्णाः—सुपर्ण; भुजग-उत्तमाः—सर्पलोक के निवासियों में श्रेष्ठ; गायन्तः—भगवान् का यशोगान करते; अति-प्रशंसन्तः—भगवान् की प्रशंसा करते; नृत्यन्तः—नाचते हुए; विबुधानुगाः—देवताओं के अनुयायी; अदित्याः—अदिति के; आश्रम-पदम्—निवास स्थान; कुसुमैः—फूलों से; समवाकिरन्—ढका हुआ।

सिद्ध, विद्याधर, किम्पुरुष, किन्नर, चारण, यक्ष, राक्षस, सुपर्ण, सर्पलोक के सर्वश्रेष्ठ निवासी तथा देवताओं के अनुयायी—इन सबों ने भगवान् का यशोगान तथा प्रशंसा करते हुए एवं नृत्य करते हुए अदिति के निवास स्थान पर इतने फूल बरसाये कि उनका पूरा घर ढक गया।

दृष्ट्वादितिस्तं निजगर्भसम्भवं
परं पुमांसं मुदमाप विस्मिता ।
गृहीतदेहं निजयोगमायया

प्रजापतिश्चाह जयेति विस्मितः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देखकर; अदितिः—माता अदिति ने; तम्—उसको (भगवान् को); निज-गर्भ-सम्भवम्—अपने गर्भ से उत्पन्न; परम्—परम; पुमांसम्—पुरुष को; मुदम्—परम सुख; आप—उत्पन्न किया; विस्मिता—अत्यन्त चकित; गृहीत—स्वीकार किया; देहम्—शरीर या दिव्य रूप; निज-योग-मायया—अपनी आध्यात्मिक शक्ति से; प्रजापतिः—कश्यपमुनि ने; च—भी; आह—कहा; जय—जय हो; इति—इस प्रकार; विस्मितः—आश्चर्यचकित होकर।

जब अदिति ने देखा कि भगवान् ने जो उनके अपने गर्भ से उत्पन्न हुए थे अपनी आध्यात्मिक शक्ति से दिव्य शरीर धारण कर लिया है, तो वे आश्चर्यचकित हो उठीं और अत्यन्त प्रसन्न हुईं। उस बालक को देखकर प्रजापति कश्यप परम सुख एवं आश्चर्य के वशीभूत होकर जय! जय! की ध्वनि करने लगे।

यत्तद्वपुर्भाति विभूषणायुधै-
रव्यक्तचिद्व्यक्तमधारयद्धरिः ।
बभूव तेनैव स वामनो वटुः
सम्पश्यतोर्दिव्यगतिर्यथा नटः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

यत्—जो; तत्—वही; वपुः—दिव्य शरीर; भाति—दिखलाता है; विभूषण—आभूषणों; आयुधैः—तथा हथियारों समेत; अव्यक्त—अप्रकट; चित्-व्यक्तम्—आध्यात्मिक रूप से प्रकट; अधारयत्—धारण कर लिया; हरिः—भगवान् ने; बभूव—तुरन्त बन गया; तेन—उससे; एव—निश्चय ही; सः—भगवान्; वामनः—बौना; वटुः—ब्राह्मण ब्रह्मचारी; सम्पश्यतोः—अपने माता-पिता के देखते-देखते; दिव्य-गतिः—अलौकिक गतियों वाला; यथा—जिस तरह; नटः—नट, अभिनेता।

भगवान् अपने आदि रूप में आभूषण पहने तथा हाथ में आयुध धारण किये प्रकट हुए। यद्यपि उनका यह सदैव विद्यमान रहने वाला रूप भौतिक जगत में दृश्य नहीं है, तो भी वे इसी रूप में प्रकट हुए। तत्पश्चात् अपने माता-पिता की उपस्थिति में ही उन्होंने उसी तरह ब्राह्मण वामन अर्थात् ब्रह्मचारी का रूप धारण कर लिया जिस तरह कोई अभिनेता कर लेता है।

तात्पर्य : यहाँ पर *नटः* शब्द महत्त्वपूर्ण है। एक अभिनेता, एक ही व्यक्ति होते हुए भी विभिन्न अभिनय करने के लिए वेश बदलता रहता है। इसी प्रकार भगवान् भी लाखों रूप बदलते रहते हैं जैसाकि *ब्रह्मसंहिता* (५.३३,३९) में कहा गया है (*अद्वैतम् अच्युतम् अनादिम् अनन्तरूपमाद्यं पुराणपुरुषम्*)। वे अपने असंख्य अवतारों समेत सदैव विद्यमान रहते हैं (*रामादि मूर्तिषु कलानियमेन तिष्ठन् नानावतारमकरोद् भुवनेषु किन्तु*)। यद्यपि वे नाना अवतारों में प्रकट होते हैं, किन्तु वे एक दूसरे से भिन्न नहीं होते। वे वही व्यक्ति रहते हैं—उसी शक्ति, उसी नित्यता एवं उसी दिव्य अस्तित्व के

साथ—किन्तु वे एक ही साथ विभिन्न रूप धारण कर सकते हैं। जब वामनदेव अपनी माता के गर्भ से उत्पन्न हुए तो वे नारायण के रूप में थे जिनके चारों हाथों में आवश्यक प्रतीकात्मक आयुध थे, किन्तु तुरन्त ही उन्होंने अपने को ब्रह्मचारी (वटु) के रूप में बदल लिया। इसका अर्थ यह हुआ कि उनका शरीर भौतिक नहीं है। जो यह सोचता है कि परमेश्वर भौतिक शरीर धारण करते हैं वह बुद्धिमान् नहीं है। उसे भगवान् के रूप के विषय में अधिक जानने की आवश्यकता है। जैसी कि *भगवद्गीता* (४.९) में पुष्टि हुई है—*जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वत:।* भगवान् द्वारा आदि दिव्य शरीर में (सच्चिदानन्द विग्रह) दिव्य अवतार लेने के विषय में समझने की आवश्यकता है।

तं वटुं वामनं दृष्ट्वा मोदमाना महर्षय: ।
कर्माणि कारयामासु: पुरस्कृत्य प्रजापतिम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस; वटुम्—ब्रह्मचारी को; वामनम्—बौने; दृष्ट्वा—देखकर; मोदमाना:—प्रसन्न मुद्रा में; महा-ऋषय:—महर्षियों ने; कर्माणि—अनुष्ठानों को; कारयाम् आसु:—सम्पन्न किया; पुरस्कृत्य—आगे करके; प्रजापतिम्—प्रजापति कश्यपमुनि को।

जब ऋषियों ने भगवान् को ब्रह्मचारी वामन के रूप में देखा तो वे निश्चय ही परम प्रसन्न हुए। अतएव प्रजापति कश्यपमुनि को आगे करके उन्होंने सारे अनुष्ठान—यथा जन्म संस्कार—सम्पन्न किये।

तात्पर्य : वैदिक सभ्यता के अनुसार जब किसी ब्राह्मण परिवार में कोई सन्तान उत्पन्न होती है, तो सर्वप्रथम *जातकर्म* अर्थात् जन्म-संस्कार सम्पन्न किया जाता है और उसके बाद अन्य अनुष्ठान भी क्रमश: संपन्न कर लिए जाते हैं। किन्तु जब *ब्रह्मचारी* के रूप में यह *वामन रूप* प्रकट हुआ तो उसका उपवीत संस्कार भी तुरन्त ही सम्पन्न कर दिया गया।

तस्योपनीयमानस्य सावित्रीं सविताब्रवीत् ।
बृहस्पतिर्ब्रह्मसूत्रं मेखलां कश्यपोऽददात् ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

तस्य—भगवान् वामनदेव का; उपनीयमानस्य—उपवीत संस्कार के समय; सावित्रीम्—गायत्री मंत्र का; सविता—सूर्यदेव ने; अब्रवीत्—उच्चारण किया; बृहस्पति:—देवताओं के गुरु बृहस्पति; ब्रह्म-सूत्रम्—उपवीत, यज्ञोपवीत; मेखलाम्—मूँज की पेटी; कश्यप:—कश्यप मुनि ने; अददात्—प्रदान की।

वामनदेव के यज्ञोपवीत संस्कार के समय सूर्यदेव ने स्वयं गायत्री मंत्र का जप किया, बृहस्पति ने जनेऊ प्रदान किया और कश्यप मुनि ने मूँज की मेखला भेंट की।

ददौ कृष्णाजिनं भूमिर्दण्डं सोमो वनस्पतिः ।
कौपीनाच्छादनं माता द्यौश्छत्रं जगतः पतेः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

ददौ—दिया, भेंट किया; कृष्ण-अजिनम्—मृगछाला; भूमिः—माता पृथ्वी ने; दण्डम्—ब्रह्मचारी का डंडा; सोमः—चन्द्रदेव ने; वनः-पतिः—जंगल का राजा; कौपीन—लंगोट; आच्छादनम्—शरीर को ढकने वाला; माता—उनकी माता अदिति ने; द्यौः—स्वर्गलोक; छत्रम्—छाता; जगतः—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के; पतेः—स्वामी का।

माता पृथ्वी ने उन्हें मृगचर्म प्रदान किया तथा वनस्पतियों के राजा चन्द्रदेव ने उन्हें ब्रह्मदण्ड (ब्रह्मचारी का डंडा) प्रदान किया। उनकी माता अदिति ने उन्हें कौपीन के लिए वस्त्र तथा स्वर्गलोक के अधिनायक देवता ने उन्हें छत्र प्रदान किया।

कमण्डलुं वेदगर्भः कुशान्सप्तर्षयो ददुः ।
अक्षमालां महाराज सरस्वत्यव्ययात्मनः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

कमण्डलुम्—कमण्डल, जलपात्र; वेद-गर्भः—ब्रह्माजी ने; कुशान्—कुशा; सप्त-ऋषयः—सप्तर्षियों ने; ददुः—भेंट किया; अक्ष-मालाम्—रुद्राक्ष की माला; महाराज—हे राजा; सरस्वती—देवी सरस्वती ने; अव्यय-आत्मनः—भगवान् को।

हे राजा! ब्रह्माजी ने अव्यय भगवान् को कमण्डल प्रदान किया, सप्तर्षियों ने कुशा और माता सरस्वती ने उन्हें रुद्राक्ष की माला भेंट की।

तस्मा इत्युपनीताय यक्षराट्पात्रिकामदात् ।
भिक्षां भगवती साक्षादुमादादम्बिका सती ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

तस्मै—उनको (वामनदेव को); इति—इस प्रकार; उपनीताय—जिनका उपवीत संस्कार हो चुका है; यक्ष-राट्—स्वर्ग के कोषाध्यक्ष तथा यक्षों के राजा कुवेर ने; पात्रिकाम्—भिक्षापात्र; अदात्—दिया; भिक्षाम्—भिक्षा के लिए; भगवती—शिव पत्नी, माता भवानी ने; साक्षात्—प्रत्यक्ष; उमा—उमा; अदात्—दिया; अम्बिका—ब्रह्माण्ड की जननी; सती—सती साध्वी।

जब इस प्रकार से वामन देव का यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न हो चुका तो यक्षराज कुवेर ने उन्हें भिक्षा माँगने के लिए भिक्षापात्र एवं शिव पत्नी, ब्रह्माण्ड की परम साध्वी, माता भगवती ने उन्हें पहली भिक्षा दी।

स ब्रह्मवर्चसेनैवं सभां सम्भावितो वटुः ।
ब्रह्मर्षिगणसञ्जुष्टामत्यरोचत मारिषः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (वामनदेव); ब्रह्म-वर्चसेन—अपने ब्रह्म-तेज से; एवम्—इस प्रकार; सभाम्—सभा में; सम्भावितः—हर एक के द्वारा समादरित; वटुः—ब्रह्मचारी; ब्रह्म-ऋषि-गण-सञ्जुष्टाम्—ब्राह्मण ऋषियों से पूरित; अति-अरोचत—सबको मात कर रहा था, सुन्दर लगता था; मारिषः—ब्रह्मचारियों में सर्वश्रेष्ठ।

इस प्रकार सब के द्वारा स्वागत किये जाने पर ब्रह्मचारियों में श्रेष्ठ वामनदेव ने अपना ब्रह्मतेज प्रकट किया। इस तरह महान् सन्त ब्राह्मणों की उस पूरी सभा में वे अपनी सुन्दरता में अद्वितीय लगते थे।

समिद्धमाहितं वह्निं कृत्वा परिसमूहनम् ।
परिस्तीर्य समभ्यर्च्य समिद्भिरजुहोद्द्विजः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

समिद्धम्—प्रज्वलित; आहितम्—स्थित; वह्निम्—अग्नि; कृत्वा—करके; परिसमूहनम्—समुचित रीति से; परिस्तीर्य—सब से बढ़कर; समभ्यर्च्य—पूजा करके; समिद्भिः—आहुतियों के द्वारा; अजुहोत्—यज्ञ सम्पन्न किया; द्विजः—ब्राह्मण श्रेष्ठ।

तत्पश्चात् श्री वामनदेव ने यज्ञ-अग्नि प्रज्वलित की, पूजा सम्पन्न की और यज्ञशाला में यज्ञ किया।

श्रुत्वाश्वमेधैर्यजमानमूर्जितं
बलिं भृगूणामुपकल्पितैस्ततः ।
जगाम तत्राखिलसारसम्भृतो
भारेण गां सन्नमयन्पदे पदे ॥ २० ॥

शब्दार्थ

श्रुत्वा—सुनकर; अश्वमेधैः—अश्वमेध यज्ञ द्वारा; यजमानम्—यज्ञकर्ता; ऊर्जितम्—अत्यन्त तेजस्वी; बलिम्—बलि महाराज को; भृगूणाम्—भृगुवंशी ब्राह्मणों के निर्देशन में; उपकल्पितैः—सम्पन्न किया गया; ततः—उस स्थान से; जगाम—चला गया; तत्र—वहाँ; अखिल-सार-सम्भृतः—समस्त सृष्टि के सार भगवान्; भारेण—भार से; गाम्—पृथ्वी को; सन्नमयन्—दबाते हुए; पदे पदे—प्रत्येक पग में।

जब भगवान् ने सुना कि बलि महाराज भृगुवंशी ब्राह्मणों के संरक्षण में अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न कर रहे हैं, तो वे परमपूर्ण भगवान् बलि महाराज पर अपनी कृपा दिखाने के लिए वहाँ के लिए चल पड़े। प्रत्येक डग भरने पर उनके भार से पृथ्वी नीचे धँसने लगी।

तात्पर्य : भगवान् *अखिल-सार-सम्भृत* हैं अर्थात् इस जगत में जो भी आवश्यक वस्तु है वे उसके स्वामी हैं। इस तरह यद्यपि वे बलि महाराज के पास भिक्षा माँगने जा रहे थे, किन्तु वे सदैव पूर्ण हैं और उन्हें किसी से कुछ भी नहीं माँगना होता है। निस्सन्देह, वे इतने शक्तिमान हैं कि अपने तेज के कारण वे प्रत्येक डग से पृथ्वी की सतह को दबा रहे थे।

तं नर्मदायास्तट उत्तरे बले-
र्य ऋत्विजस्ते भृगुकच्छसंज्ञके ।
प्रवर्तयन्तो भृगवः क्रतूत्तमं
व्यचक्षतारादुदितं यथा रविम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको (वामनदेव को); नर्मदायाः—नर्मदा नदी के; तटे—किनारे पर; उत्तरे—उत्तरी; बलेः—महाराज बलि का; ये—जो; ऋत्विजः—अनुष्ठान में लगे पुरोहितगण; ते—वे सभी; भृगुकच्छ-संज्ञके—भृगुकक्ष नामक क्षेत्र में; प्रवर्तयन्तः—सम्पन्न करते हुए; भृगवः—सारे भृगुवंशी; क्रतु-उत्तमम्—अश्वमेध नामक महत्त्वपूर्ण यज्ञ; व्यचक्षत—देखा; आरात्—पास ही; उदितम्—उदय हुए; यथा—जिस तरह; रविम्—सूर्य को।

नर्मदा नदी के उत्तरी तट पर भृगुकक्ष नामक क्षेत्र में यज्ञ सम्पन्न करते हुए भृगुवंशी ब्राह्मण पुरोहितों ने वामनदेव को ऐसे देखा मानो पास ही सूर्य उदय हो रहा हो।

ते ऋत्विजो यजमानः सदस्या
हतत्विषो वामनतेजसा नृप ।
सूर्यः किलायात्युत वा विभावसुः
सनत्कुमारोऽथ दिदृक्षया क्रतोः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

ते—वे सभी; ऋत्विजः—पुरोहितगण; यजमानः—यज्ञ सम्पन्न कराने में व्यस्त बलि महाराज भी; सदस्याः—सभा के सारे सदस्य; हत-त्विषः—तेजरहित; वामन-तेजसा—वामन के चमकीले तेज से; नृप—हे राजा; सूर्यः—सूर्य; किल—कहीं तो; आयाति—आ रहा है; उत वा—अथवा; विभावसुः—अग्निदेव; सनत्-कुमारः—सनत्कुमार; अथ—अथवा; दिदृक्षया—देखने की इच्छा से; क्रतोः—यज्ञ।

हे राजा! वामनदेव के चमकीले तेज से बलि महाराज एवं सभा के सारे सदस्यों सहित सारे पुरोहित तेजहीन हो गये। वे परस्पर पूछने लगे कि कहीं साक्षात् सूर्यदेव अथवा सनत्कुमार या अग्निदेव तो यज्ञोत्सव को देखने नहीं आ गये?

इत्थं सशिष्येषु भृगुष्वनेकधा
वितर्क्यमाणो भगवान्स वामनः ।
छत्रं सदण्डं सजलं कमण्डलुं
विवेश बिभ्रद्धयमेधवाटम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

इत्थम्—इस प्रकार; स-शिष्येषु—अपने शिष्यों सहित; भृगुषु—भृगुओं के बीच; अनेकधा—अनेक प्रकार से; वितर्क्यमाणः—तर्क-वितर्क करते; भगवान्—भगवान्; सः—वह; वामनः—वामन; छत्रम्—छाता; सदण्डम्—लाठी (दंड) सहित; स-जलम्—जल से पूरित; कमण्डलुम्—कमण्डल; विवेश—प्रवेश किया; बिभ्रत्—हाथ में लिए; हयमेध—अश्वमेध यज्ञ की; वाटम्—शाला में।

जब भृगुवंशी पुरोहित तथा उनके शिष्य अनेक प्रकार के तर्क-वितर्कों में संलग्न थे उसी समय भगवान् वामनदेव हाथों में दण्ड, छाता तथा जल से भरा कमण्डल लिए अश्वमेध यज्ञशाला में प्रविष्ट हुए।

मौञ्ज्या मेखलया वीतमुपवीताजिनोत्तरम् ।
जटिलं वामनं विप्रं मायामाणवकं हरिम् ॥ २४॥
प्रविष्टं वीक्ष्य भृगवः सशिष्यास्ते सहाग्निभिः ।
प्रत्यगृह्णन्समुत्थाय सङ्क्षिप्तास्तस्य तेजसा ॥ २५॥

शब्दार्थ

मौञ्ज्या—मूँज की बनी; मेखलया—पेटी से; वीतम्—घिरा हुआ; उपवीत—जनेऊ; अजिन-उत्तरम्—मृगचर्म का उत्तरीय वस्त्र पहने हुए; जटिलम्—जटा धारण किये; वामनम्—वामन को; विप्रम्—ब्राह्मण; माया-माणवकम्—मनुष्य का मायावीपुत्र; हरिम्—भगवान् को; प्रविष्टम्—प्रवेश किया हुआ; वीक्ष्य—देखकर; भृगवः—सारे भृगुवंशी पुरोहित; स-शिष्याः—अपने शिष्यों समेत; ते—वे सभी; सह-अग्निभिः—यज्ञ अग्नि सहित; प्रत्यगृह्णन्—ठीक से स्वागत किया गया; समुत्थाय—खड़े होकर; सङ्क्षिप्ताः—घटा हुआ; तस्य—उसके; तेजसा—तेज से।

भगवान् वामनदेव मूँज की मेखला, जनेऊ, मृगचर्म का उत्तरीय वस्त्र तथा जटाजूट धारण किये हुए ब्राह्मण बालक के रूप में उस यज्ञशाला में प्रविष्ट हुए। उनके तेज से सारे पुरोहितों एवं उनके शिष्यों का तेज घट गया; वे अपने-अपने आसनों से उठ खड़े हुए और प्रणाम करते हुए सबों ने समुचित रीति से उनका स्वागत किया।

यजमानः प्रमुदितो दर्शनीयं मनोरमम् ।
रूपानुरूपावयवं तस्मा आसनमाहरत् ॥ २६॥

शब्दार्थ

यजमानः—बलि महाराज, जिन्होंने सारे पुरोहितों को यज्ञ सम्पन्न करने के लिए लगा रखा था; प्रमुदितः—अत्यन्त प्रसन्न होकर; दर्शनीयम्—देखने में सुहावना; मनोरमम्—इतना सुन्दर; रूप—सौन्दर्य से युक्त; अनुरूप—उनके शारीरिक सौन्दर्य के तुल्य; अवयवम्—शरीर के विभिन्न अंग; तस्मै—उनको; आसनम्—बैठने का स्थान; आहरत्—प्रदान किया।

भगवान् वामनदेव को देखकर परम प्रफुल्लित बलि महाराज ने परम प्रसन्नतापूर्वक उन्हें बैठने के लिए आसन प्रदान किया। भगवान् के शरीर के सुन्दर अंग उनके शरीर की सुन्दरता को योगदान दे ले रहे थे।

स्वागतेनाभिनन्द्याथ पादौ भगवतो बलिः ।
अवनिज्यार्चयामास मुक्तसङ्गमनोरमम् ॥ २७॥

शब्दार्थ

सु-आगतेन—स्वागत के शब्दों से; अभिनन्द्य—स्वागत करके; अथ—इस प्रकार; पादौ—दोनों चरणकमल; भगवतः—भगवान् के; बलिः—बलि महाराज ने; अवनिज्य—धोकर; अर्चयाम् आस—पूजा की; मुक्त-सङ्ग-मनोरमम्—मुक्तात्माओं को सुन्दर लगने वाले भगवान् को।.

इस प्रकार मुक्तात्माओं को सदैव सुन्दर लगने वाले भगवान् का समुचित स्वागत करते हुए बलि महाराज ने उनके चरणकमलों को धोकर उनकी पूजा की।

तत्पादशौचं जनकल्मषापहं
स धर्मविन्मूर्ध्न्यदधात्सुमङ्गलम् ।
यद्देवदेवो गिरिशश्चन्द्रमौलिर्
दधार मूर्ध्ना परया च भक्त्या ॥ २ ॥

शब्दार्थ

तत्-पाद-शौचम्—भगवान् के चरणकमलों को धोने से प्राप्त जल; जन-कल्मष-अपहम्—जनता के समस्त पापों के फलों को धो डालने वाला; सः—उसने (बलि महाराज ने); धर्म-वित्—धर्म से पूर्णतया ज्ञात; मूर्ध्नि—सिर पर; अदधात्—धारण किया; सु-मङ्गलम्—सर्वकल्याणकारी; यत्—जो; देव-देवः—देवताओं में श्रेष्ठ; गिरिशः—शिवजी; चन्द्र-मौलिः—ललाट पर चन्द्रमा का चिह्न धारण करने वाला; दधार—धारण किया; मूर्ध्ना—सिर पर; परया—परम; च—भी; भक्त्या—भक्तिपूर्वक।.

देवताओं में सर्वश्रेष्ठ, ललाट पर चन्द्रमा का चिन्ह धारण करने वाले शिवजी विष्णु के अँगूठे से निकलने वाले गंगाजल को अपने सिर पर भक्तिपूर्वक धारण करते हैं। धार्मिक सिद्धान्तों को जानने वाले होने के कारण बलि महाराज को यह ज्ञात था; फलस्वरूप शिवजी का अनुसरण करते हुए उन्होंने भी भगवान् के चरणकमलों के प्रक्षालन से प्राप्त जल को अपने सिर पर रख लिया।

तात्पर्य : शिवजी गंगाधर कहलाते हैं अर्थात् वे जो अपने सिर पर गंगा जल धारण करते हैं। शिवजी के ललाट पर अर्धचन्द्र का चिह्न लगा रहता है। फिर भी भगवान् को परम आदर प्रदान करने के लिए शिवजी ने इस चिह्न के ऊपर गंगाजल को धारण कर लिया। इस उदाहरण का पालन हर एक को, अथवा कम से कम हर भक्त को करना चाहिए क्योंकि शिवजी महाजनों में से एक हैं। इसी प्रकार बलि महाराज भी बाद में महाजन बन गये। एक महाजन दूसरे महाजन का अनुसरण करता है और महाजन परम्परा का अनुगमन करने से मनुष्य आध्यात्मिक चेतना में प्रगति कर सकता है। गंगाजल पवित्र होता है क्योंकि यह भगवान् विष्णु के चरण के अँगूठे से निकलता है। बलि महाराज ने वामनदेव के चरणकमलों को प्रक्षालित किया और जिस जल से उन्होंने प्रक्षालन किया वह गंगाजल के तुल्य बन गया। अतएव समस्त धर्मों के ज्ञाता बलि महाराज ने शिवजी का अनुसरण करते हुए इस जल

को अपने सिर पर लगा लिया।

श्रीबलिरुवाच
स्वागतं ते नमस्तुभ्यं ब्रह्मन्किं करवाम ते ।
ब्रह्मर्षीणां तपः साक्षान्मन्ये त्वार्य वपुर्धरम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

श्री-बलिः उवाच—बलि महाराज ने कहा; सु-आगतम्—स्वागत है; ते—आपका; नमः तुभ्यम्—मैं आपको नमस्कार करता हूँ; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; किम्—क्या; करवाम—हम कर सकते हैं; ते—आपके लिए; ब्रह्म-ऋषीणाम्—ब्रह्मर्षियों की; तपः—तपस्या; साक्षात्—प्रत्यक्ष; मन्ये—मानता हूँ; त्वा—तुमको; आर्य—हे श्रेष्ठ; वपुः-धरम्—साकार।

तब बलि महाराज ने वामनदेव से कहा : हे ब्राह्मण! मैं आपका हार्दिक स्वागत करता हूँ और आपको सादर नमस्कार करता हूँ। कृपया बतायें कि हम आपके लिए क्या करें? हम आपको ब्रह्मर्षियों की तपस्या का साकार रूप मानते हैं।

अद्य नः पितरस्तृप्ता अद्य नः पावितं कुलम् ।
अद्य स्विष्टः क्रतुरयं यद्भवानागतो गृहान् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

अद्य—आज; नः—हमारे; पितरः—पितरगण; तृप्ताः—तृप्त; अद्य—आज; नः—हमारे; पावितम्—पवित्र हुए; कुलम्—पूरा परिवार; अद्य—आज; सु-इष्टः—भलीभाँति सम्पन्न; क्रतुः—यज्ञ; अयम्—यह; यत्—क्योंकि; भवान्—आप; आगतः—पधारे हैं; गृहान्—हमारे घर में।

हे प्रभु! आप कृपा करके हमारे घर पधारे हैं अतः मेरे सारे पूर्वज संतुष्ट हो गये, हमारा परिवार तथा समस्त वंश पवित्र हो गया और हम जिस यज्ञ को कर रहे थे वह आपकी उपस्थिति से अब पूरा हो गया।

अद्याग्नयो मे सुहुता यथाविधि
द्विजात्मज त्वच्चरणावनेजनैः ।
हतांहसो वार्भिरियं च भूरहो
तथा पुनीता तनुभिः पदैस्तव ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

अद्य—आज; अग्नयः—अग्नि; मे—मेरे द्वारा सम्पन्न; सु-हुताः—भलीभाँति आहुति डाली गई; यथा-विधि—शास्त्रीय आदेशानुसार; द्विज-आत्मज—हे ब्राह्मण पुत्र; त्वत्-चरण-अवनेजनैः—जिसने आपके चरणकमल धोये हैं; हत-अंहसः—सारे पापों के फलों से पवित्र हो गये हैं, जो; वार्भिः—जल के द्वारा; इयम्—यह; च—भी; भूः—पृथ्वी पर; अहो—ओह; तथा—और; पुनीता—पवित्र; तनुभिः—छोटे; पदैः—चरणकमलों के स्पर्श से; तव—आपके।

हे ब्राह्मणपुत्र! आज यह यज्ञ-अग्नि शास्त्रादेशानुसार प्रज्ज्वलित हुई है और आपके

पादप्रक्षालित जल से मैं अपने पापकर्मों के सभी फलों से मुक्त हो गया हूँ। हे स्वामी! आपके लघु चरणारविन्द के स्पर्श से समग्र जगती-तल पवित्र हो गया है।

यद्यद्वटो वाञ्छसि तत्प्रतीच्छ मे
त्वामर्थिनं विप्रसुतानुतर्कये ।
गां काञ्चनं गुणवद्धाम मृष्टं
तथान्नपेयमुत वा विप्रकन्याम् ।
ग्रामान्समृद्धांस्तुरगान्गजान्वा
रथांस्तथार्हत्तम सम्प्रतीच्छ ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

यत् यत्—जो जो; वटो—हे ब्रह्मचारी; वाञ्छसि—चाहते हो; तत्—वह; प्रतीच्छ—ले सकते हो; मे—मुझसे; त्वाम्—तुम; अर्थिनम्—इच्छा रखने वाले; विप्र-सुत—हे ब्राह्मण पुत्र; अनुतर्कये—मैं मानता हूे; गाम्—गाएँ; काञ्चनम्—सोना; गुणवत् धाम—सज्जित घर; मृष्टम्—सुस्वादु; तथा—और; अन्न—अनाज; पेयम्—पेय पदार्थ; उत—निस्सन्देह; वा—अथवा; विप्र-कन्याम्—ब्राह्मण की पुत्री; ग्रामान्—ग्रामों; समृद्धान्—समृद्ध; तुरगान्—घोड़ों; गजान्—हाथियों; वा—अथवा; रथान्—रथों को; तथा—और; अर्हत्-तम—परम पूज्य; सम्प्रतीच्छ—ले सकते हो।.

हे ब्राह्मणपुत्र! ऐसा प्रतीत होता है कि आप यहाँ मुझसे कुछ माँगने आये हैं। अतएव आप जो भी चाहें मुझसे ले सकते हैं। हे परम पूज्य! आप गाय, सोना, सज्जित घर, स्वादिष्ट भोजन तथा पेय, पत्नी के रूप में ब्राह्मण कन्या, समृद्ध गाँव, घोड़े, हाथी, रथ या जो भी इच्छा हो मुझसे ले सकते हैं।

इस प्रकार श्रीमद्‌भागवत के अष्टम स्कन्ध के अन्तर्गत ''भगवान् वामनदेव: वामन अवतार'' नामक अठाहरवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter उन्नीस

बलि महाराज से वामनदेव द्वारा दान की याचना

इस उन्नीसवें अध्याय में यह बताया गया है कि भगवान् वामन ने किस प्रकार दान में तीन पग भूमि माँगी, किस प्रकार बलि महाराज ने उनका प्रस्ताव मान लिया और किस प्रकार शुक्राचार्य ने उन्हें भगवान् वामनदेव की माँग पूरी करने से मना किया।

जब बलि महाराज ने वामनदेव को ब्राह्मणपुत्र समझकर कुछ भी इच्छानुसार माँगने के लिए कहा तो भगवान् वामनदेव ने पहले हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष के वीरतापूर्ण कार्यकलापों की प्रशंसा की

और फिर जिस कुल में बलि महाराज उत्पन्न हुए थे उसकी प्रशंसा करके उन्होंने राजा से तीन पग भूमि माँगी। बलि महाराज ने इस भूमिदान को अत्यन्त तुच्छ समझकर दान देना स्वीकार कर लिया, किन्तु शुक्राचार्य समझ गये कि वामनदेव देवताओं के मित्र विष्णु हैं अतएव उन्होंने बलि महाराज को यह भूमि न देने को कहा। उन्होंने बलि महाराज को सलाह दी कि वे अपना वचन वापस ले लें। उन्होंने बताया कि अन्यों को वश में करने, हँसी-विनोद करने, संकट के कारण, अन्यों की कुशलता के लिए कार्य करने आदि में मनुष्य अपने वचनों को पूरा करने से मुकर सकता है और इसमें कोई दोष नहीं होता। इस तर्क से शुक्राचार्य ने बलि महाराज को भगवान् वामनदेव को भूमि-दान देने से रोकने का प्रयास किया।

श्रीशुक उवाच
इति वैरोचनेर्वाक्यं धर्मयुक्तं स सूनृतम् ।
निशम्य भगवान्प्रीतः प्रतिनन्द्येदमब्रवीत् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; वैरोचनेः—विरोचन के पुत्र के; वाक्यम्—शब्दों को; धर्म-युक्तम्—धर्म से युक्त; सः—वह; सू-नृतम्—अत्यन्त सुहावने; निशम्य—सुनकर; भगवान्—भगवान्; प्रीतः—पूर्णतया प्रसन्न होकर; प्रतिनन्द्य—उसको बधाई देकर; इदम्—निम्नलिखित शब्द; अब्रवीत्—कहे।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : जब भगवान् वामनदेव ने बलि महाराज को इस प्रकार सुहावने ढंग से बोलते हुए सुना तो वे परम प्रसन्न हुए क्योंकि बलि महाराज धार्मिक सिद्धान्तों के अनुरूप बोले थे। इस तरह वे बलि की प्रशंसा करने लगे।

श्रीभगवानुवाच
वचस्तवैतज्जनदेव सूनृतं
कुलोचितं धर्मयुतं यशस्करम् ।
यस्य प्रमाणं भृगवः साम्पराये
पितामहः कुलवृद्धः प्रशान्तः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; वचः—शब्द; तव—तुम्हारे; एतत्—इस प्रकार के; जन-देव—हे जनता के राजा; सू-नृतम्—अत्यन्त सच; कुल-उचितम्—तम्हारे वंश के अनुरूप; धर्म-युतम्—धार्मिक सिद्धान्तों के अनुसार; यशः-करम्—तुम्हारा यश फैलाने के लिए उपयुक्त; यस्य—जिसका; प्रमाणम्—साक्ष्य, प्रमाण; भृगवः—भृगुवंशी ब्राह्मण; साम्पराये—अगले जगत में; पितामहः—तुम्हारे बाबा; कुल-वृद्धः—कुल में सबसे बूढ़े, वयोवृद्ध; प्रशान्तः—अत्यन्त शान्त (प्रह्लाद महाराज)।

भगवान् ने कहा : हे राजा! तुम सचमुच महान् हो क्योंकि तुम्हें वर्तमान सलाह देने वाले

ब्राह्मण भृगुवंशी हैं, और तुम्हारे भावी जीवन के शिक्षक तुम्हारे बाबा (पितामह) प्रह्लाद महाराज हैं, जो शान्त एवं सम्माननीय (वयोवृद्ध) हैं। तुम्हारे कथन अत्यन्त सत्य हैं और वे धार्मिक शिष्टाचार से पूरी तरह मेल खाते हैं। वे तुम्हारे वंश के आचरण के अनुरूप हैं और तुम्हारे यश को बढ़ाने वाले हैं।

तात्पर्य : प्रह्लाद महाराज शुद्ध भक्त के ज्वलन्त उदाहरण हैं। कोई यह तर्क कर सकता है कि वृद्ध होते हुए भी चूँकि प्रह्लाद महाराज अपने परिवार के प्रति, विशेष रूप से अपने पौत्र बलि महाराज के प्रति, आसक्त थे तो फिर वे आदर्श कैसे बन सकते हैं? इसलिए इस श्लोक में *प्रशान्तः* शब्द आया है। भक्त सदैव प्रशान्त होता है। वह किसी भी परिस्थिति में विचलित नहीं होता। भले ही वह गृहस्थ जीवन क्यों न बिता रहा हो और भौतिक वस्तुओं को त्याग न कर पा रहा हो तो भी उसे प्रशान्त समझना चाहिए क्योंकि वह भगवान् की शुद्ध भक्ति करता है। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा है—

किबा विप्र, किबा न्यासी, शूद्र केने नय
येइ कृष्णतत्त्ववेत्ता, सेइ 'गुरु' हय

"कोई चाहे ब्राह्मण हो, या संन्यासी अथवा शूद्र—चाहे जो भी हो—यदि वह कृष्णतत्त्व को जानता है, तो वह गुरु बन सकता है" (*चैतन्यचरितामृत* मध्य .१२)। कृष्ण का पूर्ण तत्त्ववेत्ता चाहे जीवन में किसी भी पद पर हो गुरु होता है। इस प्रकार प्रह्लाद महाराज सभी परिस्थितियों में गुरु हैं।

यहाँ पर भगवान् वामनदेव संन्यासियों तथा ब्रह्मचारियों को यह भी शिक्षा देते हैं कि मनुष्य को आवश्यकता से अधिक नहीं माँगना चाहिए। उन्होंने केवल तीन पग भूमि माँगी जबकि बलि महाराज उन्हें मुँहमाँगा दान देना चाह रहे थे।

न ह्येतस्मिन्कुले कश्चिन्निःसत्त्वः कृपणः पुमान् ।
प्रत्याख्याता प्रतिश्रुत्य यो वादाता द्विजातये ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; हि—निस्सन्देह; एतस्मिन्—इसमें; कुले—कुल या परिवार में; कश्चित्—कोई; निःसत्त्वः—संकुचित मन वाला; कृपणः—कंजूस; पुमान्—कोई व्यक्ति; प्रत्याख्याता—मना करता है; प्रतिश्रुत्य—वचन देकर; यः वा—अथवा; अदाता—न देने वाला; द्विजातये—ब्राह्मणों को।

मुझे ज्ञात है कि आज तक तुम्हारे परिवार में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं जन्मा है, जो संकीर्ण मन

वाला या कंजूस हो। न तो किसी ने ब्राह्मणों को दान देने से मना किया है, न ही दान देने का वचन देकर कोई उसे पूरा करने से विमुख हुआ है।

न सन्ति तीर्थे युधि चार्थिनार्थिताः
पराङ्मुखा ये त्वमनस्विनो नृप ।
युष्मत्कुले यद्यशसामलेन
प्रह्राद उद्भाति यथोडुपः खे ॥ ४॥

शब्दार्थ

न—नहीं; सन्ति—हैं; तीर्थे—तीर्थस्थानों में; युधि—युद्धभूमि में; च—भी; अर्थिना—ब्राह्मण या क्षत्रिय द्वारा; अर्थिताः—जिनसे माँगा गया हो; पराङ्मुखाः—जिसने प्रार्थना को ठुकरा दिया हो; ये—ऐसे व्यक्ति; तु—निस्सन्देह; अमनस्विनः—ऐसे क्षुद्र हृदय वाले, निम्न कोटि के राजा; नृप—हे राजा (बलि महाराज); युष्मत्-कुले—तुम्हारे कुल में; यत्—जिसमें; यशसा अमलेन—निष्कलंक कीर्ति से; प्रह्रादः—प्रह्राद महाराज; उद्भाति—उदय होता है; यथा—जिस प्रकार; उडुपः—चन्द्रमा; खे—आकाश में।

हे राजा बलि! तुम्हारे कुल में कभी भी ऐसा क्षुद्र हृदय वाला राजा उत्पन्न नहीं हुआ जिसने तीर्थस्थानों में ब्राह्मणों द्वारा माँगे जावे पर दान न दिया हो या युद्धभूमि में क्षत्रियों से लड़ने से मना किया हो। तुम्हारा वंश तो प्रह्राद महाराज के कारण और भी यशस्वी है क्योंकि वे आकाश में सुन्दर चन्द्रमा के समान हैं।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* में क्षत्रिय के लक्षण दिये गये हैं। उनमें से एक लक्षण है दान देने की प्रवृत्ति। क्षत्रिय न तो कभी ब्राह्मण द्वारा माँगे जाने पर दान देने से मना करता है न अन्य क्षत्रिय से युद्ध करने से इनकार करता है। जो राजा मना करता है, वह *क्षुद्र-हृदय* कहलाता है। बलि महाराज के वंश में ऐसे क्षुद्र-हृदय राजा कभी नहीं हुए।

यतो जातो हिरण्याक्षश्चरन्नेक इमां महीम् ।
प्रतिवीरं दिग्विजये नाविन्दत गदायुधः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

यतः—जिस वंश में; जातः—उत्पन्न हुआ था; हिरण्याक्षः—हिरण्याक्ष नामक राजा; चरन्—घूमते हुए; एकः—अकेले; इमाम्—इस; महीम्—पृथ्वी को; प्रतिवीरम्—प्रतिद्वन्द्वी; दिक्-विजये—सारी दिशाओं को जीतने के लिए; न अविन्दत—नहीं पा सका; गदा-आयुधः—अपनी गदा लिए।

तुम्हारे ही वंश में हिरण्याक्ष ने जन्म लिया था। वह केवल अपनी गदा लेकर सारी दिशाओं को जीतने के लिए बिना किसी सहायता के सारी पृथ्वी में अकेले घूम आया, किन्तु उसे कोई ऐसा वीर न मिला जो उस का सामना कर सके।

यं विनिर्जित्य कृच्छ्रेण विष्णुः क्ष्मोद्धार आगतम् ।
आत्मानं जयिनं मेने तद्वीर्यं भूर्यनुस्मरन् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

यम्—जिसको; विनिर्जित्य—जीतकर; कृच्छ्रेण—कठिनाई से; विष्णुः—वराह अवतार में भगवान् विष्णु ने; क्ष्मा-उद्धारे—पृथ्वी के उद्धार के समय; आगतम्—उनके समक्ष प्रकट हुआ; आत्मानम्—स्वयं; जयिनम्—विजयी; मेने—विचार किया; तत्-वीर्यम्—हिरण्याक्ष का पराक्रम; भूरि—निरन्तर, या अधिकाधिक; अनुस्मरन्—चिन्तन करते हुए।

गर्भोदक सागर से पृथ्वी का उद्धार करते समय भगवान् विष्णु ने वराह अवतार में हिरण्याक्ष का वध किया जो उनके समक्ष प्रकट हो गया था। तब घमासान युद्ध हुआ और भगवान् ने उसे बड़ी कठिनाई से मारा। बाद में जब भगवान् ने हिरण्याक्ष के असाधारण पराक्रम के विषय में विचार किया, तो उन्होंने अपने को सचमुच विजयी अनुभव किया।

निशम्य तद्वधं भ्राता हिरण्यकशिपुः पुरा ।
हन्तुं भ्रातृहणं क्रुद्धो जगाम निलयं हरेः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

निशम्य—सुनकर; तत्-वधम्—हिरण्याक्ष के वध को; भ्राता—भाई; हिरण्यकशिपुः—हिरण्यकशिपु; पुरा—बहुत पहले; हन्तुम्—मारने के लिए; भ्रातृ-हणम्—अपने भाई के हत्यारे को; क्रुद्धः—अत्यन्त क्रोधित; जगाम—गया; निलयम्—धाम में; हरेः—भगवान् के।

जब हिरण्यकशिपु ने सुना कि उसके भाई का वध कर दिया गया है, तो वह अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने भाई के हत्यारे विष्णु को मारने उनके धाम गया।

तमायान्तं समालोक्य शूलपाणिं कृतान्तवत् ।
चिन्तयामास कालज्ञो विष्णुर्मायाविनां वरः ॥ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको (हिरण्यकशिपु को); आयान्तम्—आगे आते हुए; समालोक्य—बारीकी से देखकर; शूल-पाणिम्—अपने हाथ में त्रिशूल लेकर; कृतान्त-वत्—साक्षात् काल के समान; चिन्तयाम् आस—सोचा; काल-ज्ञः—काल की गति को जानने वाले; विष्णुः—विष्णु ने; मायाविनाम्—सभी प्रकार के मायावियों के; वरः—प्रमुख, मुखिया।

हिरण्यकशिपु को हाथ में त्रिशूल लिए साक्षात् काल की भाँति आगे बढ़ते देखकर समस्त मायावियों में श्रेष्ठ तथा काल की गति को जानने वाले भगवान् विष्णु ने इस प्रकार सोचा।

यतो यतोऽहं तत्रासौ मृत्युः प्राणभृतामिव ।
अतोऽहमस्य हृदयं प्रवेक्ष्यामि पराग्दृशः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

यतः यतः—जहाँ-जहाँ, जहाँ कहीं भी; अहम्—मैं; तत्र—वहीं; असौ—यह हिरण्यकशिपु; मृत्युः—मृत्यु; प्राण-भृताम्—समस्त जीवों के; इव—सदृश; अतः—इसलिए; अहम्—मैं; अस्य—उसके; हृदयम्—अन्तःस्थल में; प्रवेक्ष्यामि—प्रवेश करूँगा; पराक्-दृशः—ऐसे व्यक्ति का जिसको केवल बाह्य दृष्टि प्राप्त है।

जहाँ कहीं भी मैं जाऊँगा, हिरण्यकशिपु मेरा पीछा करेगा जिस तरह मृत्यु सभी जीवों का पीछा करती है। अतएव मेरे लिए यही श्रेयस्कर होगा कि इसके अन्तःस्थल में प्रवेश कर जाऊँ। तब यह अपनी केवल बहिर्मुखी दृष्टि की शक्ति के कारण मुझे नहीं देख सकेगा।

एवं स निश्चित्य रिपोः शरीर-
माधावतो निर्विविशेऽसुरेन्द्र ।
श्वासानिलान्तर्हितसूक्ष्मदेह-
स्तत्प्राणरन्ध्रेण विविग्नचेताः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह से; सः—वह (भगवान् विष्णु); निश्चित्य—निर्णय करके; रिपोः—शत्रु के; शरीरम्—शरीर में; आधावतः—जो तेजी से भगवान् के पीछे-पीछे दौड़ रहा था; निर्विविशे—घुस गया; असुर-इन्द्र—हे असुर राजा (महाराज बलि); श्वास-अनिल—साँस के साथ; अन्तर्हित—अदृश्य; सूक्ष्म-देहः—अपने सूक्ष्म शरीर में; तत्-प्राण-रन्ध्रेण—उसके नथुने के छिद्र से होकर; विविग्न-चेताः—अत्यन्त उत्सुक होकर।

भगवान् वामनदेव ने आगे कहा : हे असुर राजा! इस निर्णय के बाद भगवान् अपने पीछे तेजी से दौते अपने शत्रु हिरण्यकशिपु के शरीर में प्रवेश कर गये। सूक्ष्म शरीर जिसकी हिरण्यकशिपु कल्पना भी न कर सकता था, धारण करके चिन्तामग्न भगवान् विष्णु उसकी श्वास के साथ उसके नथुने में प्रविष्ट हो गए।

तात्पर्य : भगवान् पहले से ही हर एक के हृदय के भीतर विद्यमान हैं। *ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति* (*भगवद्गीता* १.६१)। अतएव तर्क के अनुसार हिर ण्यकशिपु के शरीर के भीतर प्रवेश करना विष्णु के लिए जरा भी कठिन नहीं था। *विविग्न चेताः* शब्द महत्त्वपूर्ण है। इसका अर्थ है ''अत्यन्त चिन्तित।'' ऐसा नहीं है कि भगवान् विष्णु हिरण्यकशिपु से भयभीत थे, प्रत्युत करुणावश भगवान् चिन्तित थे कि उसके कल्याण के लिए क्या किया जाये।

स तन्निकेतं परिमृश्य शून्य-
मपश्यमानः कुपितो ननाद ।
क्ष्मां द्यां दिशः खं विवरान्समुद्रान्
विष्णुं विचिन्वन्न ददर्श वीरः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

सः—उस हिरण्यकशिपु ने; तत्-निकेतम्—भगवान् विष्णु के निवास को; परिमृश्य—ढूँढकर; शून्यम्—रिक्त; अपश्यमानः—विष्णु को न देखकर; कुपितः—अत्यन्त क्रुद्ध होकर; ननाद—जोर से गर्जना की; क्ष्माम्—पृथ्वी पर; द्याम्—बाह्य आकाश में; दिशः—सभी दिशाओं में; खम्—आकाश में; विवरान्—सारी गुफाओं में; समुद्रान्—सारे समुद्रों में; विष्णुम्—विष्णु को; विचिन्वन्—ढूँढते हुए; न—नहीं; ददर्श—देखा; वीरः—यद्यपि वह अत्यन्त शक्तिशाली था।

भगवान् विष्णु के निवासस्थान को रिक्त देखकर हिरण्यकशिपु ने सर्वत्र उन की खोज करनी शुरू की। उन्हें न पाने के कारण क्रुद्ध होकर हिरण्यकशिपु ने जोर से गर्जना की और फिर सारे ब्रह्माण्ड, पृथ्वी, स्वर्गलोक, सारी दिशाओं तथा सारी गुफाओं एवं समुद्रों में उन्हें खोजना शुरू किया। किन्तु महान् वीर विष्णु को कहीं नहीं देख पाया।

अपश्यन्निति होवाच मयान्विष्टमिदं जगत् ।
भ्रातृहा मे गतो नूनं यतो नावर्तते पुमान् ॥ १२॥

शब्दार्थ

अपश्यन्—उन्हें न देखकर; इति—इस प्रकार; ह उवाच—बोला; मया—मेरे द्वारा; अन्विष्टम्—खोजा गया; इदम्—यह सम्पूर्ण; जगत्—ब्रह्माण्ड; भ्रातृ-हा—भाई का वध करने वाला विष्णु; मे—मेरे; गतः—चला गया होगा; नूनम्—निश्चय ही; यतः—जहाँ से; न—नहीं; आवर्तते—वापस आ सकता है; पुमान्—कोई मनुष्य।

उन्हें न देखकर हिरण्यकशिपु ने कहा : मैंने सारा ब्रह्माण्ड छान मारा, किन्तु अपने भाई के हत्यारे विष्णु को मैं कहीं नहीं पा सका। अतएव वह अवश्य ही ऐसी जगह चला गया होगा जहाँ से कोई भी लौट नहीं सकता (अर्थात् वह अब मर गया होगा)।

तात्पर्य : सामान्यतया नास्तिक लोग बौद्ध दर्शन के इस निर्णय के अनुयायी होते हैं कि मृत्यु के साथ सब कुछ समाप्त हो जाता है। नास्तिक होने के कारण हिरण्यकशिपु ने इसी तरह सोचा। चूँकि उसे भगवान् विष्णु नहीं दिख पाये थे अतएव उसने सोचा कि वे मर गये हैं। आज भी बहुत से लोग इसी विचारधारा के हैं कि ईश्वर मृत है लेकिन ईश्वर कभी भी मृत नहीं होता। यहाँ तक कि जीव भी जो ईश्वर का अंश है कभी नहीं मरता। *न जायते म्रियते वा कदाचित्*—आत्मा का न तो कभी जन्म होता है, न मृत्यु। यह *भगवद्गीता* का कथन है (२.२०)। यहाँ तक कि सामान्य जीव भी न कभी जन्म लेता है, न मरता है। तो फिर उन भगवान् के विषय में क्या कहा जाये जो समस्त जीवों का स्वामी हैं? निश्चय ही, वे न तो कभी जन्मते हैं, न मरते हैं। *अजोऽपि सन्नव्ययात्मा* (*भगवद्गीता* ४.६)। भगवान् तथा जीव (आत्मा) दोनों ही अजन्मा तथा अव्यय व्यक्ति हैं। अतएव हिरण्यकशिपु का यह निष्कर्ष कि विष्णु मर गये गलत था।

जैसाकि *यतो नावर्तते पुमान्* शब्दों से सूचित होता है, अवश्य ही कोई आध्यात्मिक लोक है और वहाँ जाने पर जीव फिर कभी इस भौतिक जगत में नहीं लौटता। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (४.९) में हुई है—*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।* भौतिक दृष्टि से तो हर जीव मरता है; मृत्यु अवश्यम्भावी है। किन्तु कर्मी, ज्ञानी तथा योगीजन मृत्यु के बाद इस भौतिक जगत में लौट आते हैं जबकि भक्त नहीं लौटते। हाँ, यदि भक्त परि-पूर्ण नहीं होता तो वह इस भौतिक जगत में फिर से जन्म लेता है, किन्तु किसी उच्चपद पर या धनी कुल में या शुद्ध ब्राह्मण के घर में जन्म लेता है (*शुचीनां श्रीमतां गेहे*) जिससे उसकी आध्यात्मिक चेतना का विकास पूरा हो सके। जिन्होंने कृष्णभावनामृत का अध्ययन पूर्ण कर लिया है और जो निष्काम हैं, वे भगवद्धाम को वापस जाते हैं (*यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम*)। यहाँ इसी तथ्य का वर्णन हुआ है—*यतो नावर्तते पुमान्।* जो व्यक्ति भगवान् के धाम को वापस चला जाता है, वह फिर इस भौतिक जगत में लौटकर नहीं आता।

वैरानुबन्ध एतावानामृत्योरिह देहिनाम् ।
अज्ञानप्रभवो मन्युरहंमानोपबृंहितः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

वैर-अनुबन्धः—शत्रुभाव, शत्रुता; एतावान्—इतनी अधिक; आमृत्योः—मृत्यु पर्यन्त; इह—इस; देहिनाम्—देहात्मबुद्धि में लिप्त पुरुषों का; अज्ञान-प्रभवः—अज्ञान के महान् प्रभाव वश; मन्युः—क्रोध; अहम्-मान—अहंकार से; उपबृंहितः—बढ़ा हुआ।

भगवान् विष्णु के प्रति हिरण्यकशिपु का क्रोध उसकी मृत्यु तक बना रहा। देहात्मबुद्धि वाले अन्य लोग केवल मिथ्या अहंकार तथा अज्ञान के प्रबल प्रभाव के कारण क्रोध बनाये रखते हैं।

तात्पर्य : सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि बद्धजीव यद्यपि क्रुद्ध हो जाए तो उसका क्रोध शाश्वत न होकर क्षणिक होता है। ऐसा अज्ञान के कारण है। किन्तु हिरण्यकशिपु विष्णु के प्रति अपनी शत्रुता एवं अपने क्रोध को आमरण बनाये रहा। वह विष्णु से बदला लेने की प्रवृत्ति को कभी नहीं भुला पाया क्योंकि उन्होंने उसके भाई को मारा था। देहात्मबुद्धि से ग्रस्त अन्य लोग अपने शत्रुओं पर क्रुद्ध रहते हैं लेकिन भगवान् विष्णु पर नहीं। किन्तु हिरण्यकशिपु लगातार क्रुद्ध रहा। वह न केवल मिथ्या प्रतिष्ठा के कारण अपितु निरन्तर शत्रुता के कारण विष्णु के प्रति क्रुद्ध था।

पिता प्रह्लादपुत्रस्ते तद्विद्वान्द्विजवत्सलः ।
स्वमायुर्द्विजलिङ्गेभ्यो देवेभ्योऽदात्स याचितः ॥ १४॥

शब्दार्थ

पिता—पिता; प्रह्लाद-पुत्रः—महाराज प्रह्लाद का पुत्र; ते—तुम्हारा; तत्-विद्वान्—यद्यपि यह उसे ज्ञात था; द्विज-वत्सलः—फिर भी ब्राह्मणों के प्रति प्रेम होने से; स्वम्—अपनी; आयुः—उम्र; द्विज-लिङ्गेभ्यः—जो ब्राह्मणों के वेश में थे; देवेभ्यः—देवताओं को; अदात्—दे दिया; सः—उसने; याचितः—माँगे जाने पर।

तुम्हारे पिता विरोचन, जो महाराज प्रह्लाद के पुत्र थे, ब्राह्मणों के प्रति अत्यन्त स्नेहिल थे। यद्यपि वे भलीभान्ति जानते थे कि ब्राह्मणों का वेश धारण करके देवतागण उनके समक्ष आये थे, किन्तु उनके मांगने पर उन्होंने उन्हें अपनी आयु दे डाली।

तात्पर्य : बलि के पिता महाराज विरोचन ब्राह्मण वर्ग से इतने प्रसन्न थे कि यह जानते हुए भी कि उनसे दान लेने के लिए ब्राह्मणों का वेश धारण करके देवता आये हैं, उन्होंने दान देना स्वीकार किया।

भवानाचरितान्धर्मानास्थितो गृहमेधिभिः ।
ब्राह्मणैः पूर्वजैः शूरैरन्यैश्चोद्दामकीर्तिभिः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

भवान्—आपने; आचरितान्—सम्पन्न किया; धर्मान्—धार्मिक सिद्धान्तों को; आस्थितः—स्थित होकर; गृहमेधिभिः—गृहस्थों के द्वारा; ब्राह्मणैः—ब्राह्मणों के द्वारा; पूर्व-जैः—अपने पुरखों के द्वारा; शूरैः—वीरों केद्वारा; अन्यैः च—तथा अन्यों के द्वारा भी; उद्दाम-कीर्तिभिः—अत्यन्त उच्च तथा प्रसिद्ध।

तुमने भी गृहस्थ ब्राह्मणों, अपने पुरखों तथा महान् कार्यों के लिए सुविख्यात शूरवीरों जैसे महान् पुरुषों के सिद्धान्तों का पालन किया है।

तस्मात्त्वत्तो महीमीषद्वृणेऽहं वरदर्षभात् ।
पदानि त्रीणि दैत्येन्द्र सम्मितानि पदा मम ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—ऐसे व्यक्ति से; त्वत्तः—आपसे; महीम्—पृथ्वी; ईषत्—थोड़ी सी; वृणे—माँग रहा हूँ; अहम्—मैं; वरद-ऋषभात्—मुक्तहस्त दान देने वाले व्यक्ति से; पदानि—पग; त्रीणि—तीन; दैत्य-इन्द्र—हे दैत्यराज; सम्मितानि—माप के बराबर; पदा—पाँव के द्वारा; मम—मेरे।

हे दैत्यराज! ऐसे कुलीन एवं मुक्तहस्त दान देने वाले आपसे मैं अपने पैरों से मापकर केवल तीन पग भूमि की याचना करता हूँ।

तात्पर्य : भगवान् वामनदेव अपने पैरों से नापकर केवल तीन पग भूमि चाह रहे थे। उन्हें आवश्यकता से अधिक भूमि नहीं चाहिए थी। किन्तु यद्यपि उन्होंने सामान्य मानवी बालक का वेश बना रखा था, वास्तव में वे ऊर्ध्व, मध्य तथा अधो लोकों से घिरी भूमि को दान में लेना चाह रहे थे।

भगवान् ने अपना पराक्रम दिखलाने के लिए ऐसा किया था।

नान्यत्ते कामये राजन्वदान्याज्जगदीश्वरात् ।
नैनः प्राप्नोति वै विद्वान्यावदर्थप्रतिग्रहः ॥ १७॥

शब्दार्थ

न—नहीं; अन्यत्—अन्य कुछ; ते—तुमसे; कामये—याचना करता हूँ; राजन्—हे राजा; वदान्यात्—जो इतने दानी हैं; जगत्-ईश्वरात्—सारे ब्रह्माण्ड के राजा से; न—नहीं; एनः—दुख; प्राप्नोति—प्राप्त करता है; वै—निस्सन्देह; विद्वान्—विद्वान; यावत्-अर्थ—जिसे जितना चाहिए; प्रतिग्रहः—अन्यों से दान लेना।

हे समग्र ब्रह्माण्ड के नियामक राजा! यद्यपि आप अत्यन्त उदार हैं और जितनी भूमि चाहूँ मुझे दे सकते हैं, किन्तु मैं आपसे अनावश्यक वस्तु नहीं माँगना चाहता। यदि कोई विद्वान ब्राह्मण अन्यों से अपनी आवश्यकतानुसार दान लेता है, तो वह पापपूर्ण कर्मों में नहीं फँसता।

तात्पर्य : कोई ब्राह्मण या संन्यासी अन्यों से दान माँग सकता है, किन्तु यदि वह आवश्यकता से अधिक लेता है, तो वह दण्डनीय है। कोई भी व्यक्ति आवश्यकता से अधिक भगवान् की सम्पत्ति का उपभोग नहीं कर सकता। भगवान् वामनदेव अप्रत्यक्षत: बलि महाराज को इंगित कर रहे थे कि उसके पास आवश्यकता से अधिक भूमि है। भौतिक जगत में सारे क्लेश अपव्यय के कारण हैं। मनुष्य अंधाधुन्ध धन एकत्र कर लेता है और इसका वह अपव्यय भी करता है। ऐसे कार्यकलाप पापपूर्ण हैं। सारी सम्पत्ति भगवान् की है और सारे जीव भगवान् की सन्तानें होने के कारण अपने परम पिता की सम्पत्ति का उपयोग करने के अधिकारी हैं, किन्तु कोई आवश्यकता से अधिक नहीं ले सकता। इस सिद्धान्त का पालन ब्राह्मणों या संन्यासियों को विशेष रूप से करना चाहिए क्योंकि वे अन्यों के बल पर पलते हैं। इस तरह वामनदेव एक आदर्श याचक थे क्योंकि उन्होंने केवल तीनपग भूमि माँगी थी। निस्सन्देह, उनके पगों में तथा एक सामान्य व्यक्ति के पगों में अन्तर है। भगवान् अपने अचिन्त्य पराक्रम से अपने पदचाप को असीम नाप से सारे ब्रह्माण्ड को घेर सकते हैं जिसमें ऊर्ध्व, अधो तथा मध्य लोक सम्मिलित हैं।

श्रीबलिरुवाच
अहो ब्राह्मणदायाद वाचस्ते वृद्धसम्मताः ।
त्वं बालो बालिशमतिः स्वार्थं प्रत्यबुधो यथा ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-बलिः उवाच—बलि महाराज ने कहा; अहो—आह; ब्राह्मण-दायाद—ब्राह्मण पुत्र; वाचः—वचन; ते—तुम्हारे; वृद्ध-सम्मताः—विद्वानों तथा गुरुजनों को मान्य हैं; त्वम्—तुम; बालः—बालक; बालिश-मतिः—पर्याप्तज्ञान के बिना; स्व-अर्थम्—स्वार्थ या हित; प्रति—के प्रति; अबुधः—ठीक से न जानते हुए; यथा—मानो।

बलि महाराज ने कहा : हे ब्राह्मण पुत्र! तुम्हारे उपदेश विद्वान तथा वयोवृद्ध पुरुषों जैसे हैं। तो भी अभी तुम बालक हो और तुम्हारी बुद्धि अल्प है। अतएव तुम्हें अपने हित का पूरी तरह ज्ञान नहीं है।

तात्पर्य : भगवान् अपने में पूर्ण हैं अतएव उन्हें अपने स्वार्थ के लिए वास्तव में कुछ भी नहीं चाहिए। अत: भगवान् वामनदेव बलि महाराज के पास स्वार्थ साधन के लिए नहीं गये थे। जैसाकि *भगवद्गीता* (५.२९) में कहा गया है—*भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।* भगवान् इस लोक के तथा स्वर्गलोक के सभी लोकों के स्वामी हैं। भला उन्हें भूमि की क्या आवश्यकता? बलि महाराज ने ठीक ही कहा है कि वामनदेव को अपने हित के लिए तनिक भी बुद्धि से काम नहीं ले रहे हैं। वामनदेव अपने स्वार्थ के लिए नहीं अपितु अपने भक्तों के कल्याण के लिए बलि महाराज के पास गये थे। बुद्धि से काम नहीं ले रहे भक्तगण भगवान् को प्रसन्न करने के लिए अपने सारे स्वार्थों की बलि कर देते हैं। इसी तरह भगवान् भी अपना निजी स्वार्थ न रखते हुए, भक्तों के लिए कुछ भी कर सकते हैं। जो स्वयं पूर्ण है उसमें भला कोई स्वार्थ कैसे होगा?

मां वचोभिः समाराध्य लोकानामेकमीश्वरम् ।
पदत्रयं वृणीते योऽबुद्धिमान्द्वीपदाशुषम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

माम्—मुझको; वचोभिः—मधुर वचनों से; समाराध्य—पर्याप्त तुष्ट करके; लोकानाम्—इस ब्रह्माण्ड के सारे लोकों का; एकम्—एकमात्र; ईश्वरम्—स्वामी, नियन्ता; पद-त्रयम्—तीन पग; वृणीते—माँग रहा है; यः—जो; अबुद्धिमान्—मूर्ख; द्वीप-दाशुषम्—क्योंकि मैं तुम्हें समूचा द्वीप दे सकता हूँ।

मैं तुम्हें समूचा द्वीप दे सकता हूँ क्योंकि मैं ब्रह्माण्ड के तीनों विभागों का स्वामी हूँ। तुम मुझसे कुछ लेने आये हो और तुमने मुझे अपने मधुर वचनों से सन्तुष्ट किया है, किन्तु तुम केवल तीन पग भूमि माँग रहे हो अतएव तुम मुझे अधिक बुद्धिमान् नहीं लगते हो।

तात्पर्य : वैदिक ज्ञान के अनुसार समग्र ब्रह्माण्ड शून्य का सागर है। उस सागर में असंख्य लोक हैं और इनमें से प्रत्येक लोक एक द्वीप कहलाता है। जब वामनदेव बलि महाराज से भिक्षा माँगने गये तो सभी द्वीप वास्तव में उनके अधिकार में थे। बलि महाराज वामनदेव के स्वरूप को देखकर अत्यन्त

प्रसन्न थे और वे मुंहमाँगी भूमि देने को तैयार थे लेकिन जब वामनदेव ने केवल तीन पग भूमि माँगी तो बलि महाराज ने सोचा कि वे अधिक बुद्धिमान् नहीं हैं।

न पुमान्मामुपव्रज्य भूयो याचितुमर्हति ।
तस्माद्वृत्तिकरीं भूमिं वटो कामं प्रतीच्छ मे ॥ २० ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; पुमान्—कोई व्यक्ति; माम्—मेरे पास; उपव्रज्य—पास आकर; भूयः—पुनः; याचितुम्—माँगने के लिए; अर्हति—योग्य होता है; तस्मात्—इसलिए; वृत्ति-करीम्—अपना पालन करने के लिए उपयुक्त; भूमिम्—भूमि को; वटो—हे लघु ब्रह्मचारी; कामम्—जीवन की आवश्यकता के अनुसार; प्रतीच्छ—ले लो; मे—मुझसे।.

हे बालक! जो एक बार कुछ माँगने के लिए मेरे पास आता है उसे अन्यत्र कुछ भी माँगने की आवश्यकता नहीं रहनी चाहिए। अतएव, चाहो तो तुम मुझसे उतनी भूमि माँग सकते हो जितने से तुम्हारी जीवन-यापन संबंधी आवश्यकता पूरी हो सके।

श्रीभगवानुवाच
यावन्तो विषयाः प्रेष्ठास्त्रिलोक्यामजितेन्द्रियम् ।
न शक्नुवन्ति ते सर्वे प्रतिपूरयितुं नृप ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; यावन्तः—यथासम्भव; विषयाः—इन्द्रिय भोग के विषय; प्रेष्ठाः—हर एक के लिए सुहावना; त्रि-लोक्याम्—तीनों लोकों में; अजित-इन्द्रियम्—जिसकी इन्द्रियाँ वश में न हों; न शक्नुवन्ति—असमर्थ हैं; ते—वे; सर्वे—सभी मिलाकर; प्रतिपूरयितुम्—सन्तुष्ट करने के लिए; नृप—हे राजा।.

भगवान् ने कहा : हे राजा! जिस मनुष्य की इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं उसे तीनों लोकों में इन्द्रियों को तृप्त करने के लिए जो कुछ भी है संतुष्ट नहीं कर सकता।

तात्पर्य : भौतिक जगत वह माया है, जो जीवों को आत्म-साक्षात्कार के मार्ग से विचलित करती है। इस संसार का प्रत्येक व्यक्ति अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए अधिक से अधिक वस्तुएँ पाने के लिए उत्सुक रहता है। किन्तु वास्तव में जीवन का उद्देश्य इन्द्रियतृप्ति न होकर आत्म-साक्षात्कार है। अतएव जो लोग इन्द्रियतृप्ति के प्रति अधिक आसक्त होते हैं उन्हें अष्टांगयोग पद्धति का अभ्यास करने की सलाह दी जाती है, जिसमें *यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार* आदि सम्मिलित हैं। इस प्रकार से इन्द्रियों को वश में किया जा सकता है। इन्द्रियों को वश में करने का उद्देश्य मनुष्य को जन्म-मरण के चक्र में पड़ने से रोकना है। जैसाकि ऋषभदेव ने कहा है—

नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म

यदिन्द्रियप्रीतय आपृणोति।

न साधु मन्ये यत आत्मनोऽयम्

असन्नपि क्लेशद आस देह:॥

''जब कोई मनुष्य इन्द्रियतृप्ति को जीवन का लक्ष्य मान बैठता है, तो वह निश्चित रूप से भौतिक जीवन के पीछे उन्मत्त हो जाता है और सभी प्रकार के पापकर्मों में लिप्त रहने लगता है। वह यह नहीं जानता कि विगत दुष्कर्मों के परिणामस्वरूप ही उसे यह शरीर प्राप्त हुआ है, जो क्षणिक होते हुए भी उसके दुख का कारण है। वास्तव में जीव को यह भौतिक शरीर नहीं ग्रहण करना चाहिए था, किन्तु इन्द्रियतृप्ति के लिए ही उसे यह शरीर दिया गया है। अतएव मेरे विचार से किसी भी बुद्धिमान् व्यक्ति के लिए यह उपयुक्त नहीं होगा कि वह पुन: इन्द्रियतृप्ति के कार्यों में लिप्त हो जिनसे वह लगातार एक के बाद दूसरा भौतिक शरीर प्राप्त करता रहता है।'' (*भागवत* ५.५.४)। इस तरह ऋषभदेव के अनुसार इस भौतिक जगत के सारे मनुष्य पागलों की तरह उन कार्यों में लगे रहते हैं, जिन्हें उन्हें नहीं करना चाहिए, किन्तु जिन्हें वे मात्र इन्द्रियतृप्ति के लिए अवश्य सम्पन्न करते हैं। ऐसे कार्य उत्तम नहीं हैं क्योंकि इससे उसे अगले जीवन में अपने दुष्कर्मों के दण्डस्वरूप पुन: शरीर प्राप्त होता है और पुन: दूसरा शरीर प्राप्त होने पर उसे संसार में बार-बार कष्ट भोगना पड़ता है। अतएव वैदिक या ब्राह्मण संस्कृति मनुष्य को सिखाती है कि किस प्रकार जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं से सन्तुष्ट रहा जाये।

इस सर्वोच्च संस्कृति की शिक्षा देने के लिए वर्णाश्रम धर्म की संस्तुति की गई है। वर्णाश्रम विभागों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास का उद्देश्य इन्द्रियों को वश में करने और कम से कम आवश्यकताओं से सन्तुष्ट रहने की शिक्षा देना है। आदर्श ब्रह्मचारी के रूप में भगवान् वामनदेव बलि महाराज की इस भेंट को ठुकराते हैं कि वे जो चाहें सो माँग लें। वे कहते हैं कि सन्तोष के बिना कोई कभी सुखी नहीं रह सकता भले ही उसे सारे जगत या सारे ब्रह्माण्ड की सम्पत्ति क्यों न प्राप्त हो ले। अतएव मानव समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य संस्कृतियों का पालन होना चाहिए और लोगों को उतने से ही सन्तुष्ट रहने की शिक्षा दी जानी चाहिए जितने की उन्हें आवश्यकता हो। आधुनिक सभ्यता में ऐसी कोई शिक्षा नहीं है; प्रत्येक व्यक्ति अधिक से अधिक प्राप्त करना चाहता है और प्रत्येक व्यक्ति असन्तुष्ट तथा दुखी है। इसीलिए कृष्णभावनामृत आन्दोलन विशेष

रूप से अमरीका में विविध कृषि क्षेत्रों की स्थापना कर रहा है, जिससे सुखी बनने और जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं से सन्तुष्ट रहने एवं हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन—हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे। हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे—करके बड़ी आसानी से आत्म-साक्षात्कार के लिए समय बचाया जा सके।

त्रिभिः क्रमैरसन्तुष्टो द्वीपेनापि न पूर्यते ।
नववर्षसमेतेन सप्तद्वीपवरेच्छया ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

त्रिभिः—तीन; क्रमैः—क्रमवार; असन्तुष्टः—असन्तुष्ट; द्वीपेन—द्वीप से; अपि—यद्यपि; न पूर्यते—सन्तुष्ट नहीं होता; नव-वर्ष-समेतेन—नौ वर्षों को प्राप्त करके भी; सप्त-द्वीप-वर-इच्छया—सातों द्वीपों पर अधिकार पाने की इच्छा।

यदि मैं तीन पग भूमि से सन्तुष्ट न होऊँ तब तो यह निश्चित है कि नौ वर्षों से युक्त सातों द्वीपों में से एक द्वीप पाकर भी मैं सन्तुष्ट नहीं हो सकूँगा। यदि मुझे एक द्वीप भी मिल जाये तो मैं अन्य द्वीपों को पाने की आशा करूँगा।

सप्तद्वीपाधिपतयो नृपा वैण्यगयादयः ।
अर्थैः कामैर्गता नान्तं तृष्णाया इति नः श्रुतम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

सप्त-द्वीप-अधिपतयः—सात द्वीपों के मालिक; नृपाः—राजा; वैण्य-गय-आदयः—महाराज पृथु, महाराज गय तथा अन्य; अर्थैः—उद्देश्यपूर्ति के लिए; कामैः—अपनी इच्छाओं की तुष्टि हेतु; गताः न—नहीं पहुँच सके; अन्तम्—अन्त तक; तृष्णायाः—अपनी इच्छाओं के; इति—इस प्रकार; नः—हमारे द्वारा; श्रुतम्—सुना गया।

हमने सुना है कि यद्यपि महाराज पृथु तथा महाराज गय जैसे शक्तिशाली राजाओं ने सातों द्वीपों पर स्वामित्व प्राप्त कर लिया था, किन्तु फिर भी उन्हें न तो सन्तोष प्राप्त हुआ न ही वे अपनी आकांक्षाओं का कोई अन्त पा सके।

यदृच्छयोपपन्नेन सन्तुष्टो वर्तते सुखम् ।
नासन्तुष्टस्त्रिभिर्लोकैरजितात्मोपसादितैः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

यदृच्छया—अपने कर्म के अनुसार परम सत्ता द्वारा जो कुछ प्रदत्त है; उपपन्नेन—जो कुछ मिला है उससे; सन्तुष्टः—मनुष्य को सन्तुष्ट होना चाहिए; वर्तते—है; सुखम्—सुख; न—नहीं; असन्तुष्टः—असन्तुष्ट के लिए; त्रिभिः लोकैः—तीनों लोकों को पा लने पर; अजित-आत्मा—जो अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं कर सकता; उपसादितैः—भले ही प्राप्त क्यों न कर ले।

मनुष्य को अपने प्रारब्ध से जो कुछ मिलता है उससे सन्तुष्ट रहना चाहिए क्योंकि असन्तोष

से कभी भी सुख प्राप्त नहीं हो सकता। जो व्यक्ति आत्मसंयमी नहीं है, वह तीनों लोकों को पाकर भी सुखी नहीं होगा।

तात्पर्य : यदि सुख ही जीवन का चरम लक्ष्य है, तो प्रारब्ध से जो पद प्राप्त हुआ है उसी से मनुष्य को सन्तुष्ट रहना चाहिए। प्रह्लाद महाराज ने भी यही आदेश दिया है—

सुखम् ऐन्द्रियकं दैत्या देहयोगेन देहिनाम्।

सर्वत्र लभ्यते दैवाद् यथा दुःखम् अयत्नतः॥

''हे दैत्य मित्रो! देहस्पर्श के द्वारा इन्द्रियविषयों से अनुभव किया जाने वाला सुख जीवन के किसी भी रूप में अपने पूर्वकर्मों के अनुसार प्राप्त किया जा सकता है। ऐसा सुख बिना किसी प्रयास के स्वतः प्राप्त हो जाता है, जिस प्रकार कि हमें दुख प्राप्त होता है।'' (*भागवत*७.६.३)। सुख-प्राप्ति के सम्बन्ध में यह विचारधारा बिल्कुल सही है।

भगवद्गीता (६.२१) में असली सुख का वर्णन इस प्रकार हुआ है—

सुखम् आत्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।

वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः॥

''आध्यात्मिक रूप से हर्षमय स्थिति में मनुष्य असीम दिव्य सुख में रहता है और दिव्य इन्द्रियों के द्वारा उसका भोग करता है। इस प्रकार स्थापित हो जाने पर फिर वह सत्य से कभी दूर नहीं जाता।'' मनुष्य को सुख की अनुभूति परा इन्द्रियों से करनी होती है। परा इन्द्रियाँ भौतिक तत्त्वों से बनी इन्द्रियाँ नहीं होतीं। हममें से प्रत्येक व्यक्ति आध्यात्मिक प्राणी है (*अहं ब्रह्मास्मि*) और प्रत्येक व्यक्ति व्यष्टि देही है। इस समय हमारी इन्द्रियाँ भौतिक तत्त्वों से आच्छादित हैं और अज्ञान के कारण आच्छादित करने वाली इन इन्द्रियों को हम अपनी वास्तविक इन्द्रियाँ मान लेते हैं। किन्तु अपनी वास्तविक इन्द्रियाँ तो भौतिक आवरण के भीतर हैं। *देहिनोऽस्मिन यथा देहे*—भौतिक तत्त्वों के आवरण के भीतर आध्यात्मिक इन्द्रियाँ होती हैं। *सर्वोपाधि विनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्*—आध्यात्मिक इन्द्रियों के अनाच्छादित होते ही हम इन इन्द्रियों के द्वारा सुखी हो सकते हैं। आध्यात्मिक इन्द्रियों की तुष्टि का वर्णन इस प्रकार हुआ है—*हृषीकेन हृषीकेशसेवनं भक्तिरुच्यते।* जब इन्द्रियाँ हृषीकेश की भक्ति में लगी रहती हैं तब इन इन्द्रियों की पूर्ण तुष्टि होती है। इन्द्रियतृप्ति के इस श्रेष्ठ ज्ञान के बिना कोई अपनी

भौतिक इन्द्रियों को तुष्ट करने का प्रयास कर सकता है, किन्तु उसे सुख कभी नहीं मिल सकेगा। इन्द्रियतुष्टि की अपनी अभिलाषा को चाहे कोई बढ़ा ले और अपनी इन्द्रियतुष्टि के लिए इच्छित फल भी प्राप्त कर ले, किन्तु उसे कभी सुख एवं सन्तोष प्राप्त नहीं हो सकेगा क्योंकि यह भौतिक स्तर पर होता है।

ब्राह्मण संस्कृति के अनुसार मनुष्य को बिना किसी विशेष प्रयास के जो प्राप्त हो जाये उसी से सन्तुष्ट रहना चाहिए और आध्यात्मिक चेतना का अनुशीलन करना चाहिए। तभी वह सुखी होगा। कृष्णभावनामृत आन्दोलन का प्रयोजन इसी ज्ञान का प्रसार करना है। जिन व्यक्तियों को वैज्ञानिक आध्यात्मिक ज्ञान नहीं होता वे भ्रमवश सोचते हैं कि कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सदस्य भौतिक कार्यकलापों से दूर रहने का प्रयास करने वाले पलायनवादी हैं। जबकि तथ्य यह है कि हम जीवन के चरम सुख को प्राप्त करने के वास्तविक कार्यों में लगे रहते हैं। यदि किसी को आध्यात्मिक इन्द्रियों को तुष्ट करने का प्रशिक्षण न मिले और वह भौतिक इन्द्रियतृप्ति में लगा रहे तो उसे कभी भी नित्य तथा आनन्दमय सुख नहीं मिल सकेगा। अतएव *श्रीमद्भागवत* (५.५.१) में संस्तुति की गई है—

तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं

शुद्ध्येद् यस्माद् ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम्

मनुष्य को तपस्या करनी चाहिए जिससे उसकी अस्तित्व परक स्थिति पवित्र हो जाये और उसे असीम आनन्दमय जीवन की प्राप्ति हो सके।

पुंसोऽयं संसृतेर्हेतुरसन्तोषोऽर्थकामयोः ।
यदृच्छयोपपन्नेन सन्तोषो मुक्तये स्मृतः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

पुंसः—जीव का; अयम्—यह; संसृतेः—संसार में आवागमन का; हेतुः—कारण; असन्तोषः—भाग्य में लिखे फल से असंतोष; अर्थ-कामयोः—काम तथा अर्थ के लिए; यदृच्छया—प्रारब्ध से; उपपन्नेन—प्राप्त हुआ; सन्तोषः—सन्तोष; मुक्तये—मुक्ति के लिए; स्मृतः—उपयुक्त माना जाता है।

भौतिक जीवन कामेच्छा की पूर्ति एवं अधिक धन पाने की इच्छा में असन्तोष उत्पन्न करता है। बारम्बार जन्म तथा मृत्यु से पूर्ण भौतिक जीवन के बने रहने का यही कारण है। किन्तु प्रारब्ध से जो कुछ प्राप्त होता है उसी से सन्तुष्ट रहने वाला मनुष्य इस भौतिक जगत से मुक्ति पाने के योग्य है।

यद्दच्छालाभतुष्टस्य तेजो विप्रस्य वर्धते ।
तत्प्रशाम्यत्यसन्तोषादम्भसेवाशुशुक्षणिः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

यद्दच्छा-लाभ-तुष्टस्य—भगवान् की कृपा से जो कुछ प्राप्त हो जाये उसी से सन्तुष्ट; तेजः—तेज; विप्रस्य—ब्राह्मण का; वर्धते—बढ़ जाता है; तत्—वह (तेज); प्रशाम्यति—कम हो जाता है; असन्तोषात्—असन्तोष के कारण; अम्भसा—जल डालने से; इव—मानो; आशुशुक्षणिः—अग्नि।

जो ब्राह्मण प्रारब्ध से जो कुछ भी प्राप्त होता है उसी से सन्तुष्ट रहता है, वह आध्यात्मिक शक्ति में निरन्तर बढ़ते जाकर प्रबुद्ध होता रहता है, किन्तु असन्तुष्ट ब्राह्मण की आध्यात्मिक शक्ति उसी तरह क्षीण होती जाती है, जिस प्रकार पानी छिड़कने से अग्नि की ज्वलनशक्ति घटती है।

तस्मात्त्रीणि पदान्येव वृणे त्वद्वरदर्षभात् ।
एतावतैव सिद्धोऽहं वित्तं यावत्प्रयोजनम् ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—आसानी से मिली हुई वस्तुओं से सन्तुष्ट होने के कारण; त्रीणि—तीन; पदानि—पग; एव—निस्सन्देह; वृणे—मैं याचना करता हूँ; त्वत्—आपसे; वरद-ऋषभात्—मुक्तहस्त दान करने वाले से; एतावता एव—इतने ही से; सिद्धः अहम्—मैं पूर्ण सन्तोष अनुभव करूँगा; वित्तम्—उपलब्धि; यावत्—जहाँ तक; प्रयोजनम्—आवश्यक है।

अतएव हे राजा! दानियों में सर्वश्रेष्ठ आपसे मैं केवल तीन पग भूमि माँग रहा हूँ। इस दान से मैं अत्यधिक प्रसन्न हो जाऊँगा क्योंकि सुखी होने की विधि यही है कि जो नितान्त आवश्यक हो उसे पाकर पूर्ण सन्तुष्ट हो लिया जाये।

श्रीशुक उवाच
इत्युक्तः स हसन्नाह वाञ्छातः प्रतिगृह्यताम् ।
वामनाय महीं दातुं जग्राह जलभाजनम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति उक्तः—इस प्रकार कहे जाने पर; सः—उसने (बलि महाराज ने); हसन्—हँसते हुए; आह—कहा; वाञ्छातः—जैसी तुमने इच्छा की है; प्रतिगृह्यताम्—अब मुझसे ले लो; वामनाय—वामन भगवान् को; महीम्—भूमि; दातुम्—देने के लिए; जग्राह—लिया; जल-भाजनम्—जलपात्र।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : जब बलि महाराज से भगवान् इस प्रकार बोले तो बलि हँस पड़े और उन्होंने कहा ''बहुत अच्छा। अब जो इच्छा हो प्राप्त करो।'' वामनदेव को इच्छित भूमि देने के अपने वचन की पुष्टि करने के लिए उन्होंने अपना जलपात्र उठाया।

विष्णवे क्ष्मां प्रदास्यन्तमुशना असुरेश्वरम् ।
जानंश्चिकीर्षितं विष्णोः शिष्यं प्राह विदां वरः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

विष्णवे—भगवान् विष्णु (वामनदेव) को; क्ष्माम्—भूमि; प्रदास्यन्तम्—देने के लिए उद्यत; उशनाः—शुक्राचार्य ने; असुर-ईश्वरम्—असुरों के राजा (बलि महाराज) को; जानन्—भलीभाँति जानते हुए; चिकीर्षितम्—जो योजना थी; विष्णोः—भगवान् विष्णु की; शिष्यम्—अपने शिष्य से; प्राह—कहा; विदाम् वरः—हर बात को जानने वालों में श्रेष्ठ।

भगवान् विष्णु के प्रयोजन को जानते हुए विद्वानों में श्रेष्ठ शुक्राचार्य ने तुरन्त ही अपने शिष्य बलि से, जो भगवान् वामनदेव को सब कुछ देने जा रहे थे, इस प्रकार कहा।

श्रीशुक्र उवाच
एष वैरोचने साक्षाद्भगवान्विष्णुरव्ययः ।
कश्यपाददितेर्जातो देवानां कार्यसाधकः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक्रः उवाच—शुक्राचार्य ने कहा; एषः—यह (वामन रूप बालक); वैरोचने—हे विरोचनपुत्र; साक्षात्—प्रत्यक्ष; भगवान्—भगवान्; विष्णुः—विष्णु; अव्ययः—अव्यय; कश्यपात्—अपने पिता कश्यप से; अदितेः—अपनी माता अदिति के गर्भ से; जातः—उत्पन्न; देवानाम्—देवताओं का; कार्य-साधकः—हित में काम करने वाला।

शुक्राचार्य ने कहा : हे विरोचनपुत्र! यह वामन रूपधारी ब्रह्मचारी साक्षात् अव्यय भगवान् विष्णु है। यह कश्यप मुनि को अपना पिता और अदिति को अपनी माता स्वीकार करके देवताओं का हित साधने के लिए प्रकट हुआ है।

प्रतिश्रुतं त्वयैतस्मै यदनर्थमजानता ।
न साधु मन्ये दैत्यानां महानुपगतोऽनयः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

प्रतिश्रुतम्—वचन दिया गया; त्वया—तुम्हारे द्वारा; एतस्मै—उसको; यत् अनर्थम्—जो अहित होना है; अजानता—न जानने वाले तुम्हारे द्वारा; न—नहीं; साधु—उत्तम; मन्ये—मैं सोचता हूँ; दैत्यानाम्—असुरों का; महान्—महान्; उपगतः—प्राप्त किया हुआ; अनयः—अशुभ कार्य, अन्याय।

तुम यह नहीं जान पा रहे कि इन्हें भूमि देने का वचन देकर तुमने कैसी घातक स्थिति अंगीकार कर ली है। मेरी समझ में यह वचन (प्रतिज्ञा) तुम्हारे लिए उत्तम नहीं है। इससे असुरों को महान् क्षति होगी।

एष ते स्थानमैश्वर्यं श्रियं तेजो यशः श्रुतम् ।
दास्यत्याच्छिद्य शक्राय मायामाणवको हरिः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

एषः—यह व्यक्ति जो ब्रह्मचारी लग रहा है; ते—तुम्हारी; स्थानम्—अधिकृत भूमि; ऐश्वर्यम्—धन-धान्य; श्रियम्—भौतिक सौन्दर्य; तेजः—भौतिक शक्ति; यशः—कीर्ति, ख्याति; श्रुतम्—शिक्षा; दास्यति—देगा; आच्छिद्य—तुमसे लेकर; शक्राय—तुम्हारे शत्रु इन्द्र को; माया—नकली; माणवकः—मनुष्य का ब्रह्मचारी पुत्र; हरिः—वास्तव में भगवान् हरि है।

यह व्यक्ति जो ऊपर से ब्रह्मचारी लग रहा है वास्तव में भगवान् हरि है, जो तुम्हारी सारी भूमि, सम्पत्ति, सौन्दर्य, शक्ति, यश तथा शिक्षा लेने के लिए इस रूप में आया है। यह तुम्हारा सर्वस्व छीनकर तुम्हारे शत्रु इन्द्र को दे देगा।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इस प्रसंग में बताया है कि *हरिः* शब्द 'छीन लेने वाले' का द्योतक है। यदि कोई अपना सम्बन्ध भगवान् हरि से जोड़ता है, तो वे उसके सारे क्लेशों को हर लेते हैं और प्रारम्भ में ऊपर से ऐसा लगता है कि भगवान् उसकी सारी सम्पत्ति, कीर्ति, शिक्षा तथा सौन्दर्य का हरण कर रहे हैं। जैसा कि *श्रीमद्भागवत* (१०..) में कहा गया है— *यस्याहम् अनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः।* भगवान् ने महाराज युधिष्ठिर से कहा, ''मैं अपने भक्त पर जो पहला अनुग्रह करता हूँ वह यह है कि मैं उसका सब कुछ विशेषकर उसका भौतिक ऐश्वर्य अर्थात् धन हर लेता हूँ।'' निष्ठावान् भक्त के प्रति भगवान् का यह विशेष अनुग्रह होता है। यदि निष्ठावान् भक्त कृष्ण को सर्वोपरि चाहता है, किन्तु यदि वह भौतिक पदार्थों में भी आसक्त रहता है और उसका धन कृष्णभक्ति की प्रगति में बाधक बनता है, तो भगवान् चालाकी से उसका सारा धन हर लेते है। यहाँ पर शुक्राचार्य कहते हैं कि यह वामन ब्रह्मचारी तुम्हारा सर्वस्व हर लेगा। इस प्रकार वे यह सूचित करते हैं कि भगवान् मनुष्य का सारा धन और उसका मन भी छीन लेंगे। यदि कोई भगवान् के चरणकमलों पर अपना मन अर्पित कर देता है (*स वै मनः कृष्णपदारविन्दयोः*) तो वह सहज में उन्हें प्रसन्न करने के लिए अपना सर्वस्व दे सकता है। यद्यपि बलि महाराज भक्त थे, किन्तु वे भौतिक सम्पत्ति के प्रति अनुरक्त थे; अतएव भगवान् ने उन पर विशेष कृपा की और वामन रूप धारण करके उनकी सारी सम्पत्ति एवं उनके मन को भी उनसे छीन लिया।

त्रिभिः क्रमैरिमाल्लोकान्विश्वकायः क्रमिष्यति ।
सर्वस्वं विष्णवे दत्त्वा मूढ वर्तिष्यसे कथम् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

त्रिभिः—तीन; क्रमैः—पगों द्वारा; इमान्—इन सभी; लोकान्—तीनों लोकों को; विश्व-कायः—विश्व रूप धारण करके; क्रमिष्यति—वे क्रमशः विस्तार करेंगे; सर्वस्वम्—सब कुछ; विष्णवे—भगवान् विष्णु को; दत्त्वा—दान देकर; मूढ—हे मूर्ख; वर्तिष्यसे—तुम जीविका चलाओगे; कथम्—कैसे।

तुमने उन्हें दान में तीन पग भूमि देने का वचन दिया है, किन्तु जब तुम देने इसे दे दोगे तो वे तीनों लोकों में अधिकार जमा लेंगे। तुम निपट मूर्ख हो। तुम नहीं जानते कि तुमने कितनी बड़ी भूल की है। भगवान् विष्णु को सर्वस्व दान देने पर तुम्हारे पास जीविका का कोई साधन नहीं रहेगा। तब तुम कैसे जिओगे?

तात्पर्य : बलि महाराज तर्क कर सकते थे कि मैंने तो केवल तीन पग भूमि देने का वचन दिया है। किन्तु प्रकाण्ड विद्वान ब्राह्मण होने के नाते शुक्राचार्य तुरन्त समझ गये कि यह हरि की चाल है, जो वहाँ झूठे ही ब्रह्मचारी के रूप में प्रकट हुए हैं। *मूढ वर्तिष्यसे कथम्* शब्द बताते हैं कि शुक्राचार्य पुरोहित वर्ग के ब्राह्मण थे। ऐसे पुरोहित अपने शिष्यों से दक्षिणा प्राप्त करने में रुचि रखते हैं। अतएव जब शुक्राचार्य ने देखा कि बलि महाराज ने अपना सारा अधिपत्य खतरे में डाल दिया है, तो वे समझ गये कि इससे न केवल राजा पर अपितु स्वयं शुक्राचार्य के परिवार पर वज्रपात हो जायेगा क्योंकि उनका परिवार महाराज बलि की कृपा पर निर्भर था। एक वैष्णव तथा एक स्मार्त ब्राह्मण में यही अन्तर होता है। स्मार्त ब्राह्मण सदैव भौतिक लाभ की बात सोचता है, जबकि वैष्णव सदैव भगवान् को प्रसन्न करने में रुचि लेता है। शुक्राचार्य के कथन से प्रतीत होता है कि वे हर दृष्टि से स्मार्त ब्राह्मण थे जिन्हें निजी लाभ में ही रुचि थी।

क्रमतो गां पदैकेन द्वितीयेन दिवं विभोः ।
खं च कायेन महता तार्तीयस्य कुतो गतिः ॥ ३४॥

शब्दार्थ

क्रमतः—क्रमशः; गाम्—भूमि; पदा एकेन—एक पग से; द्वितीयेन—दूसरे पग से; दिवम्—सारा बाह्य आकाश; विभोः—विश्वरूप का; खम् च—आकाश भी; कायेन—उनके दिव्य शरीर के विस्तार से; महता—विश्वरूप से; तार्तीयस्य—जहाँ तक तीसरे पग की बात है; कुतः—कहाँ है; गतिः—पग रखने के लिए।

सर्वप्रथम वामनदेव एक पग से तीनों लोकों को घेर लेंगे, तत्पश्चात् वे दूसरा पग भरेंगे और बाह्य आकाश की प्रत्येक वस्तु को ले लेंगे और तब वे अपने विश्वरूप का विस्तार करके सर्वस्व पर अधिकार जमा लेंगे। तब तुम उन्हें तीसरा पग रखने के लिए कहाँ स्थान दोगे?

तात्पर्य : शुक्राचार्य बलि महाराज को बताना चाह रहे थे कि वे भगवान् वामन द्वारा ठगे जाएँगे।

उन्होंने कहा "तुमने तीन पग का वचन दिया है, किन्तु केवल दो ही पग में तुम्हारा सर्वस्व समाप्त हो जायेगा। तब तुम उन्हें तीसरे पग के लिए किस प्रकार स्थान दे पाओगे?" शुक्राचार्य को पता नहीं था कि भगवान् अपने भक्त की किस तरह रक्षा करते हैं। भक्त को चाहिए कि भगवान् की सेवा में वह अपने अधिकार की सारी वस्तुएँ खतरे में डाल दे किन्तु उसकी सदैव रक्षा होती है और वह कभी भी परास्त नहीं होता। शुक्राचार्य ने भौतिक दृष्टि से अनुमान लगाकर सोचा कि बलि महाराज किसी भी तरह ब्रह्मचारी भगवान् वामनदेव को दिया गया अपना वचन पूरा नहीं कर सकेंगे।

निष्ठां ते नरके मन्ये ह्यप्रदातुः प्रतिश्रुतम् ।
प्रतिश्रुतस्य योऽनीशः प्रतिपादयितुं भवान् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

निष्ठाम्—शाश्वत निवास स्थान; ते—तुम्हारा; नरके—नरक में; मन्ये—सोचता हूँ; हि—निस्सन्देह; अप्रदातुः—वचन पूरा न कर सकने वाले पुरुष का; प्रतिश्रुतम्—जिसको वचन दिया गया हो; प्रतिश्रुतस्य—किसी के द्वारा दिये गये वचन का; यः अनीशः—अशक्त; प्रतिपादयितुम्—पूरी तरह पूर्ण करने में; भवान्—आप।

तुम निश्चित रूप से अपना वचन पूरा करने में असमर्थ होगे और मैं सोचता हूँ कि अपनी इस असमर्थता के कारण तुम्हें नरक में शाश्वत निवास करना पड़ेगा।

न तद्दानं प्रशंसन्ति येन वृत्तिर्विपद्यते ।
दानं यज्ञस्तपः कर्म लोके वृत्तिमतो यतः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; तत्—उस; दानम्—दान की; प्रशंसन्ति—सन्तजन प्रशंसा करते हैं; येन—जिससे; वृत्तिः—जीविका; विपद्यते—संकट में पड़ जाये; दानम्—दान; यज्ञः—यज्ञ; तपः—तपस्या; कर्म—सकाम कर्म; लोके—इस संसार में; वृत्तिमतः—अपनी जीविका के अनुसार; यतः—जैसाकि है।

विद्वान व्यक्ति उस दान की प्रशंसा नहीं करते जिससे किसी की अपनी जीविका खतरे में पड़ जाये। दान, यज्ञ, तप तथा सकाम कर्म वही कर सकता है, जो अपनी जीविका कमाने में पूर्ण सक्षम हो (जो अपना भरण-पोषण न कर सके उसके लिए ये कार्य असम्भव हैं)।

धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च ।
पञ्चधा विभजन्वित्तमिहामुत्र च मोदते ॥ ३७॥

शब्दार्थ

धर्माय—धर्म के लिए; यशसे—अपने यश के लिए; अर्थाय—अपना ऐश्वर्य बढ़ाने के लिए; कामाय—इन्द्रियतृप्ति के हेतु; स्व-जनाय च—तथा कुटुम्बीजनों के पालन पोषण के लिए; पञ्चधा—इन पाँच भिन्न-भिन्न लक्ष्यों के लिए; विभजन्—बाँटते हुए; वित्तम्—अपने संचित धन को; इह—इस संसार में; अमुत्र—अगले संसार में; च—तथा; मोदते—भोग करता है।

अतएव जो ज्ञानी है उसे चाहिए कि अपने संचित धन को पाँच भागों में विभाजित कर दे—धर्म के लिए, यश के लिए, ऐश्वर्य के लिए, इन्द्रियतृप्ति के लिए तथा कुटुम्बी-जनों के भरण-पोषण के लिए। ऐसा व्यक्ति इस लोक में तथा परलोक में भी सुखी रहता है।

तात्पर्य : शास्त्रों का आदेश है कि यदि किसी के पास धन हो तो उसे पाँच भागों में विभाजित कर देना चाहिए—एक भाग धर्म के लिए, दूसरा भाग यश के लिए, तीसरा ऐश्वर्य के लिए, चौथा इन्द्रियतृप्ति के लिए तथा पाँचवाँ भाग कुटुम्बीजनों के भरणपोषण के लिए। किन्तु वर्तमान समय में सारे लोग ज्ञान से विहीन होने के कारण अपना सारा धन परिवार की तुष्टि के लिए खर्च करते हैं। श्रील रूप गोस्वामी ने अपने ही उदाहरण से हमें शिक्षा दी कि पचास प्रतिशत संचित धन कृष्ण के लिए, पच्चीस प्रतिशत अपने ऊपर तथा शेष पच्चीस प्रतिशत अपने कुटुम्बीजनों पर खर्च करना चाहिए। मनुष्य का मुख्य उद्देश्य कृष्णभावनामृत में प्रगति करना होना चाहिए। इसमें धर्म, अर्थ तथा काम सम्मिलित होंगे। किन्तु, क्योंकि उसके परिवार के लोग भी कुछ लाभ की आशा रखते हैं अतएव अपने संचित धन का कुछ अंश उन्हें भी देकर सन्तुष्ट करना चाहिए। यह शास्त्रीय आदेश है।

अत्रापि बह्वृचैर्गीतं शृणु मेऽसुरसत्तम ।
सत्यमोमिति यत्प्रोक्तं यन्नेत्याहानृतं हि तत् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

अत्र अपि—इस सम्बन्ध में भी (सत्य क्या है, क्या नहीं); बहु-ऋचैः—श्रुति मंत्रों के द्वारा जो बह्वृच श्रुति कहलाते हैं और वेदों का साक्ष्य हैं; गीतम्—गाया हुआ; शृणु—सुनो; मे—मुझसे; असुर-सत्तम—हे असुरश्रेष्ठ; सत्यम्—सत्य है; ओम् इति—ॐ से आरम्भ होने वाला; यत्—जो; प्रोक्तम्—कहा हुआ; यत्—जो; न—ॐ से आरम्भ नहीं होता; इति—इस प्रकार; आह—कहा जाता है; अनृतम्—असत्य; हि—निस्सन्देह; तत्—वह।

कोई यह तर्क कर सकता है कि चूँकि तुमने पहले ही वचन दे दिया है अतएव अब कैसे मना कर सकते हो? हे असुरश्रेष्ठ! तुम मुझसे बह्वृच-श्रुति का साक्ष्य ले सकते हो जो यह कहती है कि वह वचन सत्य है, जिसके आरम्भ में ॐ हो; वह असत्य है, जो ॐ से आरम्भ न हो।

सत्यं पुष्पफलं विद्यादात्मवृक्षस्य गीयते ।
वृक्षेऽजीवति तन्न स्यादनृतं मूलमात्मनः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

सत्यम्—वास्तविक सत्य; पुष्प-फलम्—फूल तथा फल; विद्यात्—समझा जाना चाहिए; आत्म-वृक्षस्य—शरीर रूपी वृक्ष के; गीयते—जैसा वेदों में वर्णित है; वृक्षे अजीवति—यदि वृक्ष ही न जीवित रहे; तत्—वह (पुष्पफलम्); न—नहीं; स्यात्—हो; अनृतम्—झूठ; मूलम्—जड़; आत्मनः—शरीर की।

वेदों का आदेश है कि शरीर रूपी वृक्ष का वास्तविक परिणाम तो इस से मिलने वाले उत्तम फल तथा फूल हैं। किन्तु यदि यह शरीर रूपी वृक्ष ही न रहे तो फिर इन वास्तविक फल-फूलों के होने की कोई सम्भावना नहीं है। यहाँ तक कि यदि शरीर असत्य की नींव पर भी टिका हो तो भी शरीर रूपी वृक्ष के बिना वास्तविक फल-फूल नहीं हो सकते।

तात्पर्य : यह श्लोक बताता है कि इस शरीर में रंचमात्र असत्य के बिना असली सत्य भी नहीं विद्यमान रह सकता। मायावादियों का कहना है—*ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या*—आत्मा सत्य है और माया असत्य है। किन्तु वैष्णव दार्शनिकों को मायावादी दर्शन मान्य नहीं है। यदि तर्क के लिए इस भौतिक जगत को मिथ्या मान भी लिया जाये तो माया में फँसा जीव शरीर की सहायता के बिना इससे बाहर निकल भी नहीं सकता। शरीर की सहायता के बिना कोई न तो धर्म का पालन कर सकता है, न कोई दार्शनिक पूर्णता का चिन्तन कर सकता है। अतएव फूल तथा फल (पुष्पफलम्) को शरीर के परिणाम के रूप में प्राप्त करना होता है। शरीर की सहायता के बिना वह फल प्राप्त भी नहीं हो सकता। इसलिए वैष्णव दर्शन युक्त-वैराग्य की संस्तुति करता है। ऐसा नहीं है कि सारा ध्यान शरीर पर ही दिया जाये, किन्तु उसके साथ-साथ शरीर के भरण-पोषण की उपेक्षा भी न की जाये। जब तक शरीर रहता है मनुष्य वैदिक आदेशों का पूरा अध्ययन करके जीवन के अन्त समय सिद्धि प्राप्त कर सकता है। इसकी व्याख्या *भगवद्गीता* (.६) में हुई है— *यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।* मृत्यु के समय हर बात की परीक्षा होती है। इसलिए यद्यपि यह शरीर नश्वर है, नित्य नहीं है, मनुष्य इससे अच्छी से अच्छी सेवा ले सकता है और अपने जीवन को पूर्ण बना सकता है।

तद्यथा वृक्ष उन्मूलः शुष्यत्युद्वर्ततेऽचिरात् ।
एवं नष्टानृतः सद्य आत्मा शुष्येन्न संशयः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

तत्—अतएव; यथा—जिस प्रकार; वृक्षः—वृक्ष; उन्मूलः—जड़ समेत उखाड़ने पर; शुष्यति—सूख जाता है; उद्वर्तते—गिर पड़ता है; अचिरात्—शीघ्र ही; एवम्—उसी तरह; नष्ट—नष्ट हुआ; अनृतः—यह नाशवान् शरीर; सद्यः—तुरन्त; आत्मा—शरीर; शुष्येत्—सूख जाता है; न—नहीं; संशयः—कोई सन्देह।

जड़ समेत उखाड़ने पर वृक्ष तुरन्त गिर जाता है और सूखने लगता है। इसी प्रकार यदि कोई इस शरीर की परवाह नहीं करता, जो असत्य माना जाता है—अर्थात् यदि इस असत्य का उन्मूलन कर दिया जाये—तो यह शरीर निश्चय ही सूख जाता है।

तात्पर्य : इस प्रसंग में श्रील रूप गोस्वामी कहते हैं—

प्रापञ्चिकतया बुद्ध्या हरिसम्बन्धिवस्तुनः।

मुमुक्षुभिः परित्यागो वैराग्यं फल्गु कथ्यते॥

''जो व्यक्ति वस्तुओं का कृष्ण से सम्बन्ध जाने बिना उन्हें बहिष्कृत कर देता है उसका वैराग्य अधूरा होता है।'' (*भक्तिरसामृत-सिन्धु* १.२.२६६)।

यदि शरीर कृष्ण की सेवा में निरत हो तो शरीर को भौतिक नहीं मानना चाहिए। कभी-कभी गुरु के आध्यात्मिक शरीर के विषय में भ्रम हो जाता है। किन्तु श्रील रूप गोस्वामी उपदेश देते हैं—*प्रापञ्चिकतया बुद्ध्या हरिसम्बन्धि-वस्तुनः।* कृष्ण की सेवा में पूर्णतय निरत शरीर की उपेक्षा भौतिक समझकर नहीं करनी चाहिए। जो उपेक्षा करता है उसका वैराग्य झूठा है। यदि शरीर का ठीक से भरण-पोषण नहीं होता तो यह जड़ से उखाड़े गये वृक्ष की भाँति गिर कर सूख जाता है, जिससे आगे फल-फूल नहीं लिए जा सकते। अत: वेदों का आदेश है—

ॐ इति सत्यं नेत्यनृतं तद् एतत्पुष्पं फलं वाचो यत् सत्यं सहेश्वरो यशस्वी कल्याणकीर्तिर्भविता। पुष्पं हि फलं वाचः सत्यं वदत्यथैतन्मूलं वाचो यदनृतं यद्यथा वृक्ष अविर्मूलः शुष्यति, स उद्वर्तत एवमेवानृतं वदन्नाविर्मूलम् आत्मानं करोति, स शुष्यति स उद्वर्तते, तस्मादनृतं न वदेद् दयेत त्वेतेन।

तात्पर्य यह है कि जो कार्य परम सत्य (*ॐ तत्सत्*) की तुष्टि के लिए शरीर की सहायता से किये जाते हैं, वे कभी नाशवान् नहीं होते, भले ही वे नाशवान् शरीर द्वारा सम्पन्न किए जाँए। निस्सन्देह, ऐसे कार्य शाश्वत होते हैं। अतएव शरीर की ठीक से देखभाल करनी चाहिए। चूँकि यह शरीर शाश्वत नहीं है, नाशवान् है कोई इसे शेर द्वारा खाया जाने नहीं दे सकता है, न किसी शत्रु के द्वारा वध होने दिया जा सकता है। शरीर की रक्षा के लिए सारी सावधानियाँ बरतनी चाहिए।

पराग्रिक्तमपूर्णं वा अक्षरं यत्तदोमिति ।

**यत्किञ्चिदोमिति ब्रूयात्तेन रिच्येत वै पुमान् ।
भिक्षवे सर्वम्ॐ कुर्वन्नालं कामेन चात्मने ॥ ४१ ॥**

शब्दार्थ

पराक्—जो पृथक् करे; रिक्तम्—जो आसक्ति से मुक्त बनाये; अपूर्णम्—अपूर्ण, अधूरा; वा—अथवा; अक्षरम्—यह अक्षर; यत्—जो; तत्—वह; ओम्—ओङ्कार; इति—इस प्रकार कहा गया; यत्—जो; किञ्चित्—जो कुछ भी; ॐ—ओङ्कार; इति—इस प्रकार; ब्रूयात्—यदि तुम कहो; तेन—ऐसा कहने से; रिच्येत—मुक्त हो जाता है; वै—निस्सन्देह; पुमान्—मनुष्य; भिक्षवे—भिक्षुक को; सर्वम्—सारा; ॐ कुर्वन्—ॐ शब्द का उच्चारण करते हुए दान देने से; न—नहीं; अलम्—पर्याप्त; कामेन—इन्द्रियतृप्ति के लिए; च—भी; आत्मने—आत्म-साक्षात्कार के लिए।

ॐ शब्द का उच्चारण ही मनुष्य के धनधान्य के वियोग का सूचक है। दूसरे शब्दों में, ॐ का उच्चारण करने से मनुष्य धन के प्रति आसक्ति से छूट जाता है क्योंकि उसका धन उससे ले लिया जाता है। किन्तु धनविहीन होना ठीक नहीं है क्योंकि ऐसी अवस्था में मनुष्य अपनी इच्छाओं को पूरा नहीं कर सकता। दूसरे शब्दों में, ॐ शब्द का उच्चारण करने से मनुष्य विपन्न हो जाता है। विशेषतया जब कोई किसी दरिद्र व्यक्ति या भिक्षुक को दान देता है, तो उसका आत्म-साक्षात्कार तथा उसकी इन्द्रियतृप्ति अधूरे रह जाते हैं।

तात्पर्य : बलि महाराज भिक्षुक रूप में आये वामनदेव को सर्वस्व दान कर देना चाहते थे, किन्तु बलि महाराज के कुलगुरु शुक्राचार्य उनके इस वचन को नहीं समझ पाये। शुक्राचार्य ने वैदिक साक्ष्य प्रस्तुत किया कि दरिद्र व्यक्ति को सर्वस्व दान नहीं देना चाहिए वरन् जब कोई दरिद्र दान माँगने आये तो उससे इस प्रकार झूठ बोले ''मेरे पास जितना था आपको दे दिया। अब मेरे पास और कुछ भी नहीं है।'' मनुष्य को चाहिए अपना सर्वस्व दान में न दे। वास्तव में ॐ शब्द *ओम् तत् सत्* अर्थात् परम सत्य के लिए है। ओङ्कार धन के प्रति आसक्ति से छुटकारे के लिए है क्योंकि धन का उपयोग परमेश्वर के हेतु करना चाहिए। आधुनिक सभ्यता में गरीबों को दान देने की प्रवृत्ति है। ऐसे दान का कोई आध्यात्मिक महत्त्व नहीं होता क्योंकि वास्तव में हम देखते हैं कि यद्यपि निर्धनों के लिए अनेक अस्पताल तथा अन्य संस्थान हैं, किन्तु प्रकृति के तीन गुणों के अनुसार निर्धन वर्ग तो सदैव रहेगा ही। अनेक धर्मार्थ संस्थाओं के होते हुए भी गरीबी को मानव समाज से दूर नहीं भगाया जा सका है। अतएव यहाँ पर संस्तुति की गई है—*भिक्षवे सर्वम् ओम् कुर्वन् नालं कामेन चात्मने।* मनुष्य को चाहिए कि निर्धन भिक्षुओं को अपना सारा धन न बाँटे।

इसका सर्वोत्तम हल है कृष्णभावनामृत आन्दोलन। यह आन्दोलन निर्धनों के प्रति सदैव दयालु रहता है—केवल इसलिए नहीं कि यह उन्हें भोजन देता है अपितु उन्हें कृष्णभावनाभावित होने की

विधि सिखा कर जागृत भी करता है। अतएव हम उन निर्धनों के लिए हजारों केन्द्र खोल रहे हैं, जो धन तथा ज्ञान दोनों में निर्धन हैं। इन निर्धनों को कृष्णभावनामृत का ज्ञान देने तथा उन्हें अवैध मैथुन, नशा, मांसाहार तथा जुआ खेलने से दूर रह कर अपना चरित्र सुधारने के लिए इन केन्द्रों को स्थापित किया जा रहा है। इन जघन्य पापकर्मों के कारण मनुष्यों को जन्म-जन्मांतर कष्ट भोगने पड़ते हैं। धन के सदुपयोग की सर्वश्रेष्ठ विधि है ऐसा केन्द्र खोलना जहाँ सभी लोग रहकर अपना चरित्र सुधार सकें और वे समस्त शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सभी सुविधाएँ प्राप्त कर सकें, किन्तु वहाँ वे आध्यात्मिक नियंत्रण में रहें जिससे वे सुखपूर्वक जीवन बिताते हुए कृष्णभावनामृत में प्रगति करने के लिए अपना समय बचा सकें। यदि किसी के पास धन है, तो उसे व्यर्थ ही नहीं बहाना चाहिए। इसका उपयोग कृष्णभावनामृत आन्दोलन को अग्रसर करने में होना चाहिए जिससे सारा मानव समाज सुखी, समृद्ध तथा भगवद्धाम वापस जाने के प्रति आशान्वित हो सके। इस सम्बन्ध में वैदिक मंत्र इस प्रकार है—

पराग्वा एतद् रिक्तमक्षरं यदेतद् ॐ इति तद्यत्किञ्चिद् ॐ इति आहात्रैवास्मै तद् रिच्यते। स यत्सर्वम् ॐ कुर्याद् रिच्यादात्मानं स कामेभ्यो नालं स्यात्।

अथैतत्पूर्णमभ्यात्मं यच्च नेत्यनृतं वचः ।
सर्वं नेत्यनृतं ब्रूयात्स दुष्कीर्तिः श्वसन्मृतः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

अथ—अतएव; एतत्—यह; पूर्णम्—पूर्णतया; अभ्यात्मम्—अपने आपको नितान्त निर्धन बताकर दूसरे की सहानुभूति माँगना; यत्—जो; च—भी; न—नहीं; इति—इस प्रकार; अनृतम्—मिथ्या, झूठा; वचः—शब्द; सर्वम्—पूर्णतया; न—नहीं; इति—इस प्रकार; अनृतम्—असत्य; ब्रूयात्—बोले; सः—ऐसा व्यक्ति; दुष्कीर्तिः—अपयश; श्वसन्—साँस लेता हुआ या जीवित; मृतः—मृत है या मार डाला जाये।

अतएव सुरक्षित उपाय है कि 'नहीं' कह दिया जाये। यद्यपि यह असत्य है, किन्तु इससे पूरी रक्षा हो जाती है, इससे अपने प्रति दूसरों की सहानुभूति भी मिलती है और अपने लिए अन्यों से धन एकत्र करने में पूरी सुविधा मिलती है। फिर भी यदि कोई सदा यही कहे कि उसके पास कुछ नहीं है, तो उसकी निन्दा होती है क्योंकि वह जीवित रहकर भी मृत है या उसे जीवित ही मार डालना चाहिए।

तात्पर्य : भिखारी सदैव अपने को निर्धन रूप में प्रस्तुत करते हैं। यह उनके लिए अच्छा हो

सकता है क्योंकि इस तरह से उनका धन नष्ट न होने का आश्वासन मिल जाता है और धन एकत्र करने की दिशा में अन्यों का ध्यानाकर्षण तथा सहानुभूति मिलती है। किन्तु इसकी भी भर्त्सना की जाती है। यदि कोई जान बूझकर भिक्षावृत्ति को पेशा बना लेता है, तो वह जीवित ही मृत माना जाता है या अन्य दृष्टिकोण से ऐसे झूठे व्यक्ति को जीवित ही मार देना चाहिए। इस सम्बन्ध में वैदिक आदेश इस प्रकार है—*अथैतत् पूर्णमभ्यात्मं यन्नेति स यत्सर्वं नेति ब्रूयात् पापिकास्य कीर्तिर्जायते। सैनं तत्रैव हन्यात्।* यदि कोई निरन्तर निर्धन होने का स्वाँग भरे और भीख द्वारा धन संचित करे तो उसका वध कर देना चाहिए (*सैनं तत्रैव हन्यात्*)।

स्त्रीषु नर्मविवाहे च वृत्त्यर्थे प्राणसङ्कटे ।
गोब्राह्मणार्थे हिंसायां नानृतं स्याज्जुगुप्सितम् ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

स्त्रीषु—स्त्री को प्रोत्साहित करके उसे अपने वश में करने के लिए; नर्म-विवाहे—हँसी में या विवाह में; च—भी; वृत्ति-अर्थे—अपनी जीविका कमाने के लिए; प्राण-सङ्कटे—अथवा संकट आने पर; गो-ब्राह्मण-अर्थे—गोरक्षा तथा ब्राह्मण संस्कृति के लिए; हिंसायाम्—शत्रुता के कारण हत्या किये जाने वाले व्यक्ति के लिए; न—नहीं; अनृतम्—असत्य; स्यात्—होता है; जुगुप्सितम्—गर्हित।

अपने वश में लाने के लिए किसी स्त्री से चिकनी-चुपड़ी बातें करने में, हास-परिहास में, विवाह-उत्सव में, अपनी जीविका कमाने में, प्राणों का संकट उपस्थित होने पर, गायों तथा ब्राह्मण संस्कृति की रक्षा करने या शत्रु के हाथों से किसी व्यक्ति की रक्षा करने में असत्य भाषण भी कभी निन्दनीय नहीं माना जाता।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कंध के अन्तर्गत ''बलि महाराज से भगवान् वामनदेव द्वारा दान की याचना'' नामक उन्नीसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter बीस

बलि महाराज द्वारा ब्रह्माण्ड समर्पण

बीसवें अध्याय का सारांश इस प्रकार है : यह जानते हुए भी कि वामनदेव उन्हें ठग रहे हैं, बलि महाराज ने दान में अपना सर्वस्व भगवान् को दे दिया। वामनदेव ने अपने शरीर को विस्तीर्ण करके भगवान् विष्णु जैसा विराट रूप धारण कर लिया।

शुक्राचार्य का शिक्षाप्रद उपदेश सुनकर बलि महाराज सोच में पड़ गये। चूँकि गृहस्थ का कर्तव्य है कि वह धर्म, अर्थ तथा काम विषयक सिद्धान्तों का पालन करे अतएव बलि महाराज को यह अनुचित लगा कि वे ब्रह्मचारी को दिया गया वचन वापस ले लें। ब्रह्मचारी को दिये गये वचन को पूरा न करना या झूठ बोलना कभी उचित नहीं होता क्योंकि झूठ बोलना अत्यन्त पापमय कार्य है। हर व्यक्ति को चाहिए कि झूठ बोलने के पापपूर्ण फलों से भयभीत रहे क्योंकि पृथ्वी माता पापमय झूठ बोलने वाले का भार तक सहन नहीं कर सकती। साम्राज्य का विस्तार करना क्षणिक है और यदि ऐसे विस्तार से प्रजा को कोई लाभ नहीं होता तो वह निरर्थक है। प्राचीन काल में सभी बड़े-बड़े राजा तथा सम्राट अपने राज्यों का विस्तार प्रजा के हित को ध्यान में रखकर करते थे। निस्सन्देह, जनता के लाभ के लिए किये जाने वाले ऐसे कार्यों में व्यस्त रहते हुए उत्कृष्ट व्यक्तियों को कभी-कभी अपना जीवन तक बलिदान करना पड़ा था। ऐसा कहा जाता है कि जिसके कार्य यशस्वी होते हैं वह कभी मरता नहीं, अमर हो जाता है। अतएव यश ही जीवन का लक्ष्य होना चाहिए और यदि किसी को सत्कीर्ति के लिए दरिद्र भी बनना पड़े तो इसमें कोई हानि नहीं है। बलि महाराज ने सोचा कि चाहे ये ब्रह्मचारी भगवान् वामनदेव विष्णु ही क्यों न हों और चाहे भगवान् उसका दान लेकर उसे बन्दी ही क्यों न बना लें वह उनसे द्वेष नहीं करेगा। इन सब बातों पर विचार करके अन्ततः बलि महाराज ने उन्हें अपना सर्वस्व दान में दे दिया।

तब वामनदेव ने तुरन्त विराट रूप में अपना विस्तार कर लिया। उनकी कृपा से बलि महाराज देख सके कि भगवान् सर्वव्यापी हैं और उनके शरीर में सब कुछ स्थित है। वे भगवान् वामनदेव का दर्शन परम विष्णु के रूप में कर सके जो किरीट, पीतवस्त्र, श्रीवत्स चिह्न, कौस्तुभ मणि, फूलों की माला तथा आभूषण धारण किये हुए थे, जो उनके सारे शरीर को सजाए हुए थे। भगवान् ने धीरे-धीरे सारे जगती तल को और फिर अपने शरीर का विस्तार करके सारे आकाश को आच्छादित कर लिया। उन्होंने अपने हाथों से सारी दिशाएँ घेर लीं और अपने द्वितीय पग से उन्होंने सारे ऊर्ध्वलोकों को आच्छादित कर लिया। इस तरह ऐसा कोई रिक्त स्थान न बचा जहाँ वे अपना तीसरा पग रख सकते।

श्रीशुक उवाच

बलिरेवं गृहपतिः कुलाचार्येण भाषितः ।

तूष्णीं भूत्वा क्षणं राजन्नुवाचावहितो गुरुम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; बलिः—महाराज बलि ने; एवम्—इस प्रकार; गृह-पतिः—गृहस्थी के स्वामी, यद्यपि पुरोहितों द्वारा मार्गदर्शित; कुल-आचार्येण—पारिवारिक गुरु के द्वारा; भाषितः—सम्बोधित किया गया; तूष्णीम्—मौन; भूत्वा—होकर; क्षणम्—एक क्षण के लिए; राजन्—हे राजा (महाराज परीक्षित); उवाच—कहा; अवहितः—पूर्ण विचार-विमर्श करने के बाद; गुरुम्—अपने गुरु से।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा परीक्षित! जब बलि महाराज को उनके गुरु एवं कुलपुरोहित शुक्राचार्य ने इस प्रकार सलाह दी तो वे कुछ समय तक चुप रहे और फिर पूर्ण विचार-विमर्श के बाद अपने गुरु से इस प्रकार बोले।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने टिप्पणी की है कि बलि महाराज इस आलोचनात्मक बिन्दु में मौन रहे। वे अपने गुरु शुक्राचार्य के आदेश की अवज्ञा कैसे कर सकते थे? बलि महाराज जैसे गम्भीर व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह अपने गुरु के आदेशों का तुरन्त पालन करे जैसा उन्होंने परामर्श दिया था। किन्तु बलि महाराज ने यह भी विचार किया कि शुक्राचार्य को अब गुरु स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि वे गुरु के कर्तव्य से विमुख हुए हैं। शास्त्रों के अनुसार गुरु का कर्तव्य है कि वह अपने शिष्य को भगवद्धाम वापस ले जाये। यदि वह ऐसा नहीं कर सकता और उल्टे, अपने शिष्य के भगवद्धाम वापस जाने में बाधा पहुँचाता है, तो वह गुरु नहीं रह सकता। *गुरुर्न स स्यात्* (*भागवत* ५.५.१)। यदि कोई अपने शिष्य को कृष्णभावन ामृत में अग्रसर होने में सक्षम नहीं बना सकता तो उसे गुरु नहीं बनना चाहिए। जीवन का लक्ष्य कृष्ण-भक्त बनना है, जिससे भवबन्धन से छुटकारा प्राप्त किया जा सके (*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन*)। गुरु कृष्णभावनामृत को विकसित करके शिष्य को इस अवस्था को प्राप्त करने में सहायता देता है। अब शुक्राचार्य ने बलि महाराज को सलाह दी थी कि वे वामनदेव को दिये गये वचन से मुकर जाँए। अतएव ऐसी परिस्थिति में बलि महाराज ने सोचा कि यदि वे अपने गुरु के आदेश की अवज्ञा कर दें तो इसमें कोई दोष नहीं होगा। उन्होंने इस विषय पर तर्क-वितर्क किया कि क्या वे अपने गुरु के आदेश को अस्वीकार कर दें या स्वतंत्र होकर भगवान् को प्रसन्न करने के लिए चाहे जो भी करें? इसमें उन्हें कुछ समय लगा। इसीलिए कहा गया है—*तूष्णीं भूत्वा क्षणं राजन्नुवाचावहितो गुरुम्।* इस बिन्दु पर तर्क-वितर्क करके उन्होंने निर्णय लिया कि प्रत्येक दशा में भगवान् विष्णु को प्रसन्न करना है भले ही इसमें गुरु-उपदेश की अवहेलना क्यों न करनी पड़े।

जिसे गुरु माना जाये, किन्तु यदि वह विष्णु-भक्ति के सिद्धान्त के विरुद्ध जाता हो तो उसे गुरु नहीं स्वीकार किया जा सकता। यदि किसी ने भूल से ऐसे गुरु को स्वीकार किया हो तो उसे उसको त्याग देना चाहिए। ऐसे गुरु का वर्णन इस प्रकार हुआ है (*महाभारत, उद्योग पर्व* १७९.२५)—

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।

उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते ॥

श्रील जीव गोस्वामी ने सलाह दी है कि इस प्रकार के व्यर्थ गुरु या कुलगुरु को त्याग देना चाहिए और सही प्रामाणिक गुरु को स्वीकार करना चाहिए।

षट्कर्मनिपुणो विप्रो मन्त्रतन्त्रविशारदः ।

अवैष्णवो गुरुर्न स्याद् वैष्णवः श्वपचो गुरुः ॥

"एक विद्वान ब्राह्मण वैदिक ज्ञान के समस्त विषयों में पटु होते हुए भी गुरु होने के योग्य नहीं है यदि वह वैष्णव नहीं है, किन्तु यदि निम्नकुल में उत्पन्न व्यक्ति वैष्णव है, तो वह गुरु बन सकता है।" (*पद्मपुराण*)

श्रीबलिरुवाच
सत्यं भगवता प्रोक्तं धर्मोऽयं गृहमेधिनाम् ।
अर्थं कामं यशो वृत्तिं यो न बाधेत कर्हिचित् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-बलिः उवाच—बलि महाराज ने कहा; सत्यम्—सत्य है; भगवता—आपके द्वारा; प्रोक्तम्—कहा गया; धर्मः—धर्म; अयम्—यह; गृहमेधिनाम्—विशेष रूप से गृहस्थों के लिए; अर्थम्—आर्थिक विकास; कामम्—इन्द्रियतृप्ति; यशः वृत्तिम्—यश एवं जीविका का साधन; यः—जो धर्म; न—नहीं; बाधेत—बाधा पहुँचाता है; कर्हिचित्—किसी समय।

बलि महाराज ने कहा : जैसा कि आप कह चुके हैं, जो धर्म किसी के आर्थिक विकास, इन्द्रियतृप्ति, यश तथा जीविका के साधन में बाधक नहीं होता वही गृहस्थ का असली धर्म है। मैं भी सोचता हूँ कि यही धर्म सही है।

तात्पर्य : बलि महाराज द्वारा शुक्राचार्य को दिया गया गम्भीर उत्तर भावपूर्ण है। शुक्राचार्य ने इस बात पर बल दिया था कि मनुष्य की जीविका का भौतिक साधन, उसका भौतिक यश, इन्द्रियतृप्ति तथा आर्थिक विकास उचित तरीके से बने रहने चाहिएँ। भौतिक मामलों में रुचि रखने वाले गृहस्थ का पहला कर्तव्य है कि वह इसका ध्यान रखे। यदि कोई धार्मिक सिद्धान्त किसी की भौतिक दशा को

प्रभावित नहीं करता तो उसे स्वीकार करना चाहिए। इस समय इस कलियुग में यह विचार अत्यन्त प्रधान है। कोई भी व्यक्ति ऐसा धर्म स्वीकार करने को तैयार नहीं है, जो भौतिक सम्पन्नता में बाधक हो। शुक्राचार्य भौतिकतावादी संसारी पुरुष होने के कारण भक्त के सिद्धान्तों को नहीं जानते थे। भक्त भगवान् की पूर्ण तुष्टि के लिए सेवा करने के लिए कृतसंकल्प रहता है। ऐसी कोई भी वस्तु जो इस संकल्प में बाधक बने त्याग कर देनी चाहिए। यही भक्ति का सिद्धान्त है। *आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्* (*चैतन्यचरितामृत, मध्य* २२.१००)। भक्ति करने के लिए मनुष्य को केवल वही स्वीकार करना चाहिए जो अनुकूल हो और उसका परित्याग कर देना चाहिए जो प्रतिकूल हो। बलि महाराज को वामनदेव के चरणकमलों पर अपना सर्वस्व अर्पित करने का सुयोग प्राप्त हुआ था, किन्तु शुक्राचार्य इस भक्तियोग में बाधा डालने के लिए भौतिक तर्क प्रस्तुत कर रहे थे। ऐसी परिस्थिति में बलि महाराज ने निर्णय लिया कि ऐसी बाधाओं से बचा जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, उन्होंने तुरन्त ही शुक्राचार्य की राय को अस्वीकार करने और अपना कर्तव्य पालने का निर्णय लिया। इस तरह उन्होंने भगवान् वामनदेव को अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया।

स चाहं वित्तलोभेन प्रत्याचक्षे कथं द्विजम् ।
प्रतिश्रुत्य ददामीति प्राह्लादिः कितवो यथा ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

सः—वह पुरुष; **च**—भी; **अहम्**—मैं हूँ; **वित्त-लोभेन**—धन के लालच से; **प्रत्याचक्षे**—मैं धोखा दूँ या हाँ कहकर अब ना करूँ; **कथम्**—कैसे; **द्विजम्**—ब्राह्मण को; **प्रतिश्रुत्य**—पहले ही वचन दे चुकने पर; **ददामि**—कि मैं दूँगा; **इति**—इस प्रकार; **प्राह्लादिः**—मैं जो महाराज प्रह्लाद के पौत्र के रूप में प्रसिद्ध हूँ; **कितवः**—सामान्य ठग; **यथा**—जिस तरह।

मैं महाराज प्रह्लाद का पौत्र हूँ। जब मैं पहले ही कह चुका हूँ कि मैं यह भूमि दान में दूँगा तो फिर धन के लालच से मैं अपने वचन से किस तरह विचलित हो सकता हूँ? मैं किस तरह एक सामान्य वञ्चक का आचरण कर सकता हूँ और वह भी एक ब्राह्मण के प्रति?

तात्पर्य : बलि महाराज को पहले ही उनके पितामह प्रह्लाद महाराज आशीर्वाद दे चुके थे। इसलिए असुर कुल में उत्पन्न होने पर भी वे विशुद्ध भक्त थे। उच्च भक्तों की दो कोटियाँ होती हैं—साधन-सिद्ध तथा कृपासिद्ध। साधनसिद्ध वह है, जो गुरु द्वारा निर्देशित शास्त्रोक्त विधि-विधानों का नियमित पालन करके भक्त बनता है। यदि कोई ऐसी नियमित भक्ति करता है, तो वह कालक्रम में अवश्य ही सिद्धि प्राप्त कर लेगा। किन्तु कुछ ऐसे भी भक्त होते हैं, जो भक्ति के सभी नियमित विधानों का पालन नहीं

किये रहते, किन्तु गुरु तथा कृष्ण की विशेष कृपा से तुरन्त ही शुद्ध भक्ति में सिद्धि प्राप्त किए होते हैं। ऐसे भक्तों के उदाहरण यज्ञपत्नियाँ, महाराज बलि तथा शुकदेव गोस्वामी हैं। यज्ञपत्नियाँ सकामकर्मी सामान्य ब्राह्मणों की पत्नियाँ थीं। यद्यपि ये ब्राह्मण अत्यन्त विद्वान तथा वैदिक ज्ञान में निपुण थे, किन्तु उन्हें कृष्ण-बलराम की कृपा प्राप्त नहीं हो पाई थी जबकि उनकी पत्नियों ने स्त्रियाँ होते हुए भी भक्ति में पूर्ण सिद्धि प्राप्त कर ली थीं। इसी प्रकार वैरोचनी बलि महाराज को प्रह्लाद महाराज की कृपा प्राप्त थी और प्रह्लाद महाराज की कृपा के बल पर उन्हें भगवान् विष्णु की कृपा भी प्राप्त हो गई थी जो उनके समक्ष ब्रह्मचारी भिक्षुक के रूप में प्रकट हुए। इस प्रकार बलि महाराज कृपासिद्ध बन गए क्योंकि उन पर गुरु तथा कृष्ण दोनों की विशेष कृपादृष्टि थी। चैतन्य महाप्रभु ने इस कृपा की पुष्टि की है—*गुरु कृष्णप्रसादे पाय भक्तिलताबीज* (*चैतन्यचरितामृत, मध्य* १९.१५१)। प्रह्लाद महाराज की कृपा से बलि महाराज को भक्ति का बीज मिला था और जब यह बीज विकसित हुआ तो उन्हें उस सेवा का परम फल अर्थात् ईश्वर-प्रेम भगवान् वामनदेव के तुरन्त प्रकट होने पर मिला हैं (*प्रेमा पुमर्थो महान्*)। बलि महाराज भगवान् की नियमित भक्ति करते थे और चूँकि वे शुद्ध हो चुके थे अतएव भगवान् उनके समक्ष प्रकट हुए। भगवान् के प्रति अनन्य प्रेम के कारण ही उन्होंने तुरन्त निर्णय लिया कि मैं इस वामन ब्राह्मण को उसका मुँहमाँगा दान दूँगा। यह प्रेम का चिह्न है। इस प्रकार बलि महाराज को *कृपासिद्ध* माना जाता है जिन्होंने भक्ति में उच्चतम सिद्धि विशेष कृपा से प्राप्त की।

न ह्यसत्यात्परोऽधर्म इति होवाच भूरियम् ।
सर्वं सोढुमलं मन्ये ऋतेऽलीकपरं नरम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

न—नहीं; हि—निस्सन्देह; असत्यात्—असत्य से; परः—बढ़कर; अधर्मः—अधर्म; इति—इस प्रकार; ह उवाच—सचमुच कहा है; भूः—माता पृथ्वी ने; इयम्—यह; सर्वम्—सर्वस्व; सोढुम्—सहन करने के लिए; अलम्—मैं समर्थ हूँ; मन्ये—यद्यपि मैं मानता हूँ; ऋते—के अतिरिक्त, सिवाय; अलीक-परम्—अत्यन्त जघन्य झूठा; नरम्—मनुष्य।

असत्य से बढ़कर पापमय कुछ भी नहीं है। इसी कारण से एक बार माता पृथ्वी ने कहा था, ''मैं किसी भी भारी बोझ को सहन कर सकती हूँ, किसी झूठे व्यक्ति को नहीं।''

तात्पर्य : पृथ्वी पर अनेक विशाल पर्वत तथा सागर हैं, जो अत्यन्त भारी हैं और उनको धारण करने में माता पृथ्वी को कोई कठिनाई नहीं होती। किन्तु वह अपने को तब अत्यधिक बोझिल अनुभव करती है जब उसे एक भी लबार (झूठे) व्यक्ति को वहन करना पड़ता है। कहा जाता है कि कलियुग

में असत्य एक सामान्य बात है—*मायैव व्यावहारिके* (*भागवत* १२.२.३)। यहाँ तक कि सामान्य व्यवहार में भी लोग अनेक झूठ बोलने के आदी होते हैं। कोई भी झूठ बोलने के पापफलों से मुक्त नहीं है। ऐसी परिस्थिति में कोई भी यह अनुमान लगा सकता है कि पृथ्वी कितनी बोझिल हो चुकी है! पृथ्वी क्या, सारा ब्रह्माण्ड बोझिल है।

नाहं बिभेमि निरयान्नाधन्यादसुखार्णवात् ।
न स्थानच्यवनान्मृत्योर्यथा विप्रप्रलम्भनात् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

न—न तो; अहम्—मैं; बिभेमि—डरता हूँ; निरयात्—नारकीय अवस्था से; न—न तो; अधन्यात्—गरीबी की अवस्था से; असुख-अर्णवात्—दुख रूपी समुद्र से; न—नहीं; स्थान-च्यवनात्—पदच्युत होने से; मृत्योः—मृत्यु से; यथा—जिस तरह; विप्र-प्रलम्भनात्—ब्राह्मण को ठगने से।

मैं नरक, दरिद्रता, दुख रूपी सुमद्र, पदच्युत होने या साक्षात् मृत्यु से उतना नहीं डरता जितना कि एक ब्राह्मण को ठगने से डरता हूँ।

यद्यद्धास्यति लोकेऽस्मिन्सम्परेतं धनादिकम् ।
तस्य त्यागे निमित्तं किं विप्रस्तुष्येन्न तेन चेत् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

यत् यत्—जो कुछ भी; हास्यति—छोड़ेगा; लोके—संसार में; अस्मिन्—इस; सम्परेतम्—पहले से मृत; धन-आदिकम्—उसका धनधान्य; तस्य—ऐसी सम्पत्ति के; त्यागे—त्याग में; निमित्तम्—हेतु; किम्—क्या है; विप्रः—ब्राह्मण जो गुप्त रूप में भगवान् विष्णु है; तुष्येत्—प्रसन्न किया जाना चाहिए; न—नहीं है; तेन—ऐसे धन से; चेत्—काश।

हे प्रभु! आप यह भी देख सकते हैं कि इस संसार का सारा भौतिक ऐश्वर्य उसके स्वामी की मृत्यु के समय निश्चित रूप से विलग हो जाता है। अतएव यदि ब्राह्मण वामनदेव दिये गये उपहारों (दान) से तुष्ट नहीं होते तो क्यों न उन्हें उस धन से तुष्ट कर लिया जाये जो मृत्यु के समय चला जाने वाला है?

तात्पर्य : *विप्र* शब्द का अर्थ ''ब्राह्मण'' होने के साथ-साथ ''गोपनीय'' भी होता है। बलि महाराज ने बिना विचार-विमर्श किये गुप्त रीति से वामनदेव को दान देने का निर्णय लिया था, किन्तु चूँकि ऐसे निर्णय से असुरों तथा उनके गुरु शुक्राचार्य के दिल दुखी होने थे इसलिए उन्होंने अनिश्चित रूप से बात कही। शुद्ध भक्त के रूप में बलि महाराज ने पहले ही भगवान् विष्णु को समस्त भूमि देने का निर्णय कर लिया था।

**श्रेयः कुर्वन्ति भूतानां साधवो दुस्त्यजासुभिः ।
दध्यङ्शिबिप्रभृतयः को विकल्पो धरादिषु ॥ ७॥**

शब्दार्थ

श्रेयः—अत्यधिक महत्त्व के कार्यकलाप; कुर्वन्ति—करते हैं; भूतानाम्—जन सामान्य के; साधवः—सन्त पुरुष; दुस्त्यज—जिनका त्याग पाना कठिन है; असुभिः—अपने प्राणों के द्वारा; दध्यङ्—महाराज दधीचि; शिबि—महाराज शिबि; प्रभृतयः—तथा अन्य महापुरुष; कः—क्या; विकल्पः—सोच-विचार; धरा-आदिषु—ब्राह्मण को भूमि देने में।

दधीचि, शिबि तथा अन्य अनेक महापुरुष जनसाधारण के लाभ हेतु अपने प्राणों तक की आहुति देने के इच्छुक थे। इतिहास इसका साक्षी है। तो फिर इस नगण्य भूमि को क्यों न त्याग दिया जाये? इसके लिए गम्भीर सोच विचार कैसा?

तात्पर्य : बलि महाराज भगवान् विष्णु को सर्वस्व देने के लिए तैयार थे, किन्तु शुक्राचार्य पेशेवर पुरोहित होने के कारण शायद उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे थे और सन्देह कर रहे थे कि इतिहास में क्या कोई ऐसा साक्ष्य है, जिसमें किसी ने अपना सर्वस्व दान दे दिया हो। किन्तु बलि महाराज ने महाराज शिबि तथा महाराज दधीचि के ठोस उदाहरण प्रस्तुत किये जिन्होंने जनता की भलाई के लिए अपने प्राण दे दिये थे। यह सच है कि मनुष्य में हर भौतिक वस्तु के प्रति, विशेषतया अपनी भूमि के लिए, आसक्ति होती है, किन्तु जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है मृत्यु के समय भूमि तथा अन्य सम्पत्ति बलपूर्वक छीन ली जाती हैं (*मृत्युः सर्वहरश्चाहम्*)। बलि महाराज से उनका सर्वस्व लेने के लिए साक्षात् भगवान् स्वयं प्रकट हुए थे और बलि महाराज परम भाग्यशाली थे कि वे उनका साक्षात् दर्शन कर सके। किन्तु जो अभक्त होते हैं, वे भगवान् का साक्षात् दर्शन नहीं कर पाते। ऐसे व्यक्तियों के लिए भगवान् मृत्यु के रूप में आते हैं और उसका सारा धनधान्य बलपूर्वक छीन लेते हैं। ऐसी दशा में, क्यों न हम अपने धनधान्य से विमुख होकर उसे भगवान् विष्णु को उनकी तुष्टि के लिए समर्पित कर दें? इस प्रसंग में श्री चाणक्य पण्डित का कहना है—*सन्निमित्ते वरं त्यागो विनाशे नियते सति* (*चाणक्य श्लोक* ३६)। चूँकि हमारा धनधान्य सदा नहीं रहने वाला है अपितु किसी न किसी बहाने छीन लिया जायेगा अतएव जब तक वह हमारे पास है, श्रेयस्कर यही होगा कि इसका उपयोग किसी शुभ कार्य के लिए दान देने में किया जाये। अतएव बलि महाराज ने अपने तथाकथित गुरु के आदेश का उल्लंघन किया।

यैरियं बुभुजे ब्रह्मन्दैत्येन्द्रैरनिवर्तिभिः ।
तेषां कालोऽग्रसील्लोकान्न यशोऽधिगतं भुवि ॥ ॥

शब्दार्थ

यैः—जिनके द्वारा; इयम्—यह जगत; बुभुजे—भोग किया गया; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण-श्रेष्ठ; दैत्य-इन्द्रैः—असुर कुलों में उत्पन्न शूरवीरों तथा राजाओं द्वारा; अनिवर्तिभिः—उनके द्वारा जो लड़कर मरने या विजयी होने के लिए दृढ़संकल्प थे; तेषाम्—ऐसे व्यक्तियों का; कालः—काल ने; अग्रसीत्—हर लिया; लोकान्—सारी सम्पत्ति, भोग की सारी वस्तुओं को; न—नहीं; यशः—यश; अधिगतम्—प्राप्त किया; भुवि—इस जगत में।

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! निस्सन्देह, उन महान् असुर राजाओं ने इस संसार का भोग किया है, जो युद्ध करने से कभी भी हिचकिचाते नहीं थे, किन्तु कालान्तर में उनकी कीर्ति के अतिरिक्त उनके पास की हर वस्तु छीन ली गई और वे उसी कीर्ति के बल पर आज भी विद्यमान हैं। दूसरे शब्दों में, मनुष्य को चाहिए कि सब कुछ छोड़कर सुयश अर्जित करने का प्रयास करे।

तात्पर्य : इस सन्दर्भ में चाणक्य पण्डित भी कहते हैं। (*चाणक्य श्लोक* ३४)—*आयुषः क्षण एकोऽपि न लभ्य स्वर्णकोटिभिः।* मनुष्य की आयु अत्यन्त अल्प है, किन्तु यदि कोई इस अल्प आयु में ऐसा कुछ कर लेता है, जिससे उसका यश बढ़ता है, तो वह लाखों वर्षों तक जीवित रह सकता है। अतएव बलि महाराज ने तय किया कि वे अपने गुरु के इस आदेश का पालन नहीं करेंगे कि वामनदेव को दिये गये वचन से वे विचलित हो जाँय। उल्टे, उन्होंने तय किया कि वे अपने वचन के अनुसार भूमि देंगे जिससे बारह *महाजनों* में उनकी भी गणना सदा होती रहे (*बलिर्वैयासकिर्वयम्*)।

सुलभा युधि विप्रर्षे ह्यनिवृत्तास्तनुत्यजः ।
न तथा तीर्थ आयाते श्रद्धया ये धनत्यजः ॥ ९॥

शब्दार्थ

सु-लभाः—सहज ही प्राप्त; युधि—युद्धभूमि में; विप्र-ऋषे—हे ब्राह्मणश्रेष्ठ; हि—निस्सन्देह; अनिवृत्ताः—लड़ने से न डरकर; तनु-त्यजः—इस प्रकार अपना जीवन होम दिया; न—नहीं; तथा—उसी तरह; तीर्थे आयाते—सन्त पुरुषों के आगमन पर, जिनसे तीर्थस्थल बनते हैं; श्रद्धया—श्रद्धा तथा भक्तिपूर्वक; ये—जो; धन-त्यजः—संचित धन को त्याग सकते हैं।

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! ऐसे अनेक लोग हैं जिन्होंने युद्ध से न डरकर युद्धभूमि में अपने प्राणों की बलि दे दी है, किन्तु ऐसा अवसर किसी को विरले ही मिला है जब किसी मनुष्य ने अपना संचित धन किसी ऐसे साधु पुरुष को निष्ठापूर्वक दान दिया हो जो तीर्थस्थल को जन्म देता है।

तात्पर्य : अनेक क्षत्रियों ने अपने राष्ट्रों के लिए अपने प्राणों की आहुति दे दी है, किन्तु ऐसा व्यक्ति विरले ही मिलेगा जिसने अपना संचित धन तथा अपनी सारी सम्पत्ति किसी सुपात्र को दान में

दी हो। *भगवद्गीता* (१७.२०) में कहा गया है—

दातव्यं इति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।

देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥

"वह दान सात्त्विक माना जाता है, जो कर्तव्य समझकर उचित समय तथा स्थान में सुपात्र को दिया जाता है और उसके बदले में किसी वस्तु की आशा नहीं की जाती।" इस प्रकार उचित स्थान पर दिया गया दान सात्त्विक कहलाता है। इस सात्त्विक दान से भी बढ़कर वह दिव्य दान है, जिसमें भगवान् के लिए सर्वस्व अर्पित कर दिया जाता है। भगवान् वामनदेव बलि महाराज के पास भिक्षा माँगने आये थे। भला दान देने का ऐसा सुयोग किसे मिल सकता था? अतएव बलि महाराज ने बिना किसी हिचक के भगवान् को मुँहमाँगा दान देने का निर्णय लिया। मनुष्य को युद्धभूमि में जीवन होम करने के अनेक अवसर प्राप्त हो सकते हैं, किन्तु इस प्रकार का अवसर शायद ही किसी को कभी मिलती हो।

मनस्विनः कारुणिकस्य शोभनं
यदर्थिकामोपनयेन दुर्गतिः ।
कुतः पुनर्ब्रह्मविदां भवादृशां
ततो वटोरस्य ददामि वाञ्छितम् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

मनस्विनः—अत्यन्त उदार; कारुणिकस्य—अत्यन्त कृपालु पुरुषों का; शोभनम्—अत्यन्त शुभ; यत्—जो; अर्थि—धन के लिए जरूरतमन्द व्यक्तियों का; काम-उपनयेन—इच्छापूर्ति द्वारा; दुर्गतिः—दरिद्रता का मारा; कुतः—क्या; पुनः—फिर; ब्रह्म-विदाम्—ब्रह्मविद्या में पटु पुरुषों का; भवादृशाम्—आप जैसे; ततः—अतएव; वटोः—ब्रह्मचारी का; अस्य—इस वामनदेव; ददामि—दूँगा; वाञ्छितम्—वह जो भी चाहता है।

दान देने से उदार तथा दयालु व्यक्ति निस्सन्देह और अधिक शुभ बन जाता है, विशेषतया जब वह आप जैसे व्यक्ति को दान देता है। ऐसी परिस्थिति में मुझे इस लघु ब्रह्मचारी को उसका मुँहमाँगा दान देना चाहिए।

तात्पर्य : यदि कोई व्यापार, जुआ, वेश्यागमन या नशा करने के कारण धन गँवा देता है और दरिद्र बन जाता है, तो कोई उसकी प्रशंसा नहीं करेगा, किन्तु यदि कोई दान में अपनी सारी सम्पत्ति देकर दरिद्र हो जाता है, तो वह विश्व-वंद्य बन जाता है। इसके अतिरिक्त, यदि कोई उदार तथा दयालु व्यक्ति अच्छे कार्य के लिए अपना सर्वस्व दान करके अपनी दरिद्रता पर गर्व दर्शाता है, तो उसकी दरिद्रता

स्वागत योग्य है और महापुरुष का शुभ लक्षण है। बलि महाराज ने तय किया कि वे वामनदेव को अपना सर्वस्व दान देकर भले ही दरिद्र बन जायें, किन्तु उन्हें यही अभीष्ट होगा।

यजन्ति यज्ञं क्रतुभिर्यमादृता
भवन्त आम्नायविधानकोविदाः ।
स एव विष्णुर्वरदोऽस्तु वा परो
दास्याम्यमुष्मै क्षितिमीप्सितां मुने ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

यजन्ति—पूजा करते हैं; यज्ञम्—यज्ञभोक्ता; क्रतुभिः—यज्ञ की विविध सामग्रियों द्वारा; यम्—परम पुरुष को; आदृताः—अत्यन्त आदरपूर्वक; भवन्तः—आप सभी; आम्नाय-विधान-कोविदाः—यज्ञ सम्पन्न करने के वैदिक नियमों से पूर्णतया ज्ञात महान् सन्त पुरुष; सः—वह; एव—निस्सन्देह; विष्णुः—भगवान् विष्णु है; वरदः—या तो वह आशीर्वाद देने के लिए तैयार है; अस्तु—हो जाता है; वा—अथवा; परः—शत्रु रूप में आता है; दास्यामि—दूँगा; अमुष्मै—उसको (विष्णु या वामनदेव को); क्षितिम्—भूमि; ईप्सिताम्—अभीष्ट; मुने—हे मुनि।

हे महामुनि! आप जैसे सन्त महापुरुष जो कर्मकाण्ड तथा यज्ञ सम्पन्न करने के वैदिक सिद्धान्तों से पूर्णतया ज्ञात हैं सभी परिस्थितियों में भगवान् विष्णु की आराधना करते हैं। अतएव वही भगवान् विष्णु यहाँ चाहे मुझे वरदान देने के लिए आये हों या शत्रु के रूप में मुझे दण्ड देने आये हों, मेरा कर्तव्य है कि मैं उनके आदेश का पालन करूँ और बिना हिचक के उनके द्वारा माँगी गई भूमि उन्हें दूँ।

तात्पर्य : जैसाकि शिवजी ने कहा है—

आराधनानां सर्वेषां विष्णोराराधनं परम्।

तस्मात् परतरं देवि तदीयानां समर्चनम्॥

(*पद्मपुराण*)

यद्यपि *वेदों* में अनेक देवताओं की पूजा करने की संस्तुतियाँ हैं, किन्तु भगवान् विष्णु परम पुरुष हैं और विष्णु-पूजा ही जीवन का चरम लक्ष्य है। *वर्णाश्रम धर्म* के वैदिक सिद्धान्त समाज को संगठित करने के निमित्त थे जिससे प्रत्येक व्यक्ति भगवान् विष्णु की पूजा हेतु तैयार हो सके।

वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान्।

विष्णुराराध्यते पन्था नान्यत् तत्तोषकारणम्॥

"वर्ण तथा आश्रम प्रणाली में संस्तुत कर्तव्यों के सही-सही पालन द्वारा भगवान् विष्णु की पूजा

की जाती है। भगवान् को तुष्ट करने का कोई अन्य साधन नहीं है।'' (*विष्णु पुराण* ३..९)। अन्ततोगत्वा मनुष्य को भगवान् विष्णु की पूजा करनी चाहिए और इस कार्य के लिए वर्णाश्रम प्रणाली समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यासी में संगठित करती है। बलि महाराज को उनके पितामह प्रह्लाद महाराज ने भक्ति की समुचित शिक्षा दी थी; अत: वे जानते थे कि क्या करना चाहिए। वे किसी के द्वारा बहकाये नहीं जा सकते थे, यहाँ तक कि अपने तथाकथित गुरु द्वारा भी। यह पूर्ण शरणागति का लक्षण है। भक्तिविनोद ठाकुर ने कहा है—

मारबि राखबि—यो इच्छा तोहारा

नित्य-दास-प्रति तुया अधिकारा

भगवान् विष्णु की शरण में जाकर मनुष्य को हर परिस्थिति में उनके आदेशों का पालन करने के लिए सन्नद्ध रहना चाहिए, चाहे वे किसी को मारें या शरण दें। भगवान् विष्णु की पूजा हर परिस्थिति में की जानी चाहिए।

यद्यप्यसावधर्मेण मां बध्नीयादनागसम् ।
तथाप्येनं न हिंसिष्ये भीतं ब्रह्मतनुं रिपुम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

यद्यपि—यद्यपि; असौ—भगवान् विष्णु; अधर्मेण—छल से; माम्—मुझको; बध्नीयात्—मारते हैं; अनागसम्—यद्यपि मैं पापी नहीं हूँ; तथापि—फिर भी; एनम्—उनके विरुद्ध; न—नहीं; हिंसिष्ये—बदला लूँगा; भीतम्—क्योंकि वे भयभीत हैं; ब्रह्म-तनुम्—ब्राह्मण ब्रह्मचारी का वेश धारण करके; रिपुम्—भले ही वे मेरे शत्रु हों।

यद्यपि वे साक्षात् विष्णु हैं, किन्तु भयवश उन्होंने मेरे पास भिक्षा माँगने आने के लिए ब्राह्मण का वेश धारण कर रखा है। ऐसी परिस्थिति में जब उन्होंने ब्राह्मण रूप धारण कर रखा है, तो वे चाहे अधर्म द्वारा मुझे बन्दी बनाते हैं या मेरा वध भी कर देते हैं तब भी मैं उनसे बदला नहीं लूँगा यद्यपि वे मेरे शत्रु हैं।

तात्पर्य : यदि भगवान् विष्णु जिस रूप में हैं उसी में बलि महाराज के पास आये होते और उन्होंने उनसे कुछ करने को कहा होता तो यह निश्चित है कि बलि महाराज उनकी प्रार्थना को अस्वीकार न करते। लेकिन अपने तथा अपने भक्त के बीच कुछ परिहास हेतु भगवान् ने ब्राह्मण- ब्रह्मचारी का रूप धारण किया और वे बलि महाराज से केवल तीन पग भूमि माँगने आये।

एष वा उत्तमश्लोको न जिहासति यद्यशः ।
हत्वा मैनां हरेद्युद्धे शयीत निहतो मया ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

एषः—यह (ब्रह्मचारी); वा—अथवा; उत्तम-श्लोकः—भगवान् विष्णु जिनकी पूजा वैदिक स्तुतियों से की जाती है; न—नहीं; जिहासति—त्यागना चाहता है; यत्—क्योंकि; यशः—यश; हत्वा—मारकर; मा—मुझको; एनाम्—इस भूमि; हरेत्—ले लेगा; युद्धे—युद्ध में; शयीत—लेट जायेगा; निहतः—मारा जाकर; मया—मेरे द्वारा।

यदि यह ब्राह्मण वास्तव में भगवान् विष्णु है, जिसकी पूजा वैदिक स्तुतियों द्वारा की जाती है, तो वह अपने सर्वव्यापक यश को कभी नहीं छोड़ेगा; वह या तो मेरे द्वारा मारा जाकर लेट जायेगा या युद्ध में मेरा वध कर देगा।

तात्पर्य : बलि महाराज के इस कथन कि विष्णु मारा जाकर लेट जायेगा सीधा अर्थ नहीं लेना चाहिए क्योंकि विष्णु किसी के द्वारा मारे नहीं जा सकते। वे सबको मार सकते हैं, किन्तु स्वयं नहीं मारे जा सकते। अतएव लेट जाने का वास्तविक अर्थ है कि भगवान् विष्णु बलि महाराज के हृदय में निवास करेंगे। भगवान् विष्णु भक्ति द्वारा भक्त से हारते हैं अन्यथा कोई उन्हें हरा नहीं सकता।

श्रीशुक उवाच
एवमश्रद्धितं शिष्यमनादेशकरं गुरुः ।
शशाप दैवप्रहितः सत्यसन्धं मनस्विनम् ॥ १४॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; अश्रद्धितम्—गुरु के आदेश का आदर न करने वाले; शिष्यम्—शिष्य को; अनादेश-करम्—जो अपने गुरु के आदेश का पालन करने को तैयार न था; गुरुः—गुरु (शुक्राचार्य) ने; शशाप—शाप दिया; दैव-प्रहितः—भगवान् से प्रेरित होकर; सत्य-सन्धम्—जो सत्य पर अडिग थे; मनस्विनम्—जिसका चरित्र अत्युच्च था, सच्चरित्र।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : तत्पश्चात् भगवान् से प्रेरित होकर गुरु शुक्राचार्य ने अपने उच्च शिष्य बलि महाराज को शाप दे दिया जो इतने उदार एवं सत्यनिष्ठ थे कि अपने गुरु के आदेशों को मानने की बजाये उनकी आज्ञा का उल्लघंन करना चाह रहे थे।

तात्पर्य : बलि महाराज तथा उनके गुरु शुक्राचार्य के आचरण में यही अन्तर था कि बलि महाराज में तो पहले से ही ईश-प्रेम विकसित हो चुका था, किन्तु नैत्यिक कर्मकाण्ड के पुरोहित मात्र होने के कारण शुक्राचार्य में ऐसा नहीं हो पाया था। इस प्रकार शुक्राचार्य को भगवान् से कभी प्रेरणा नहीं मिली कि भक्ति विकसित करे। *भगवद्गीता* (१०.१०) में स्वयं भगवान् ने कहा है—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

"जो लोग निरन्तर भक्ति करते हैं और प्रेमपूर्वक मेरी पूजा करते हैं उन्हें मैं ज्ञान देता हूँ जिससे वे मेरे पास आ सकते हैं।"

जो भक्तगण सचमुच श्रद्धा तथा प्रेमपूर्वक भक्ति में लगे रहते हैं उन्हें भगवान् प्रेरित करते हैं। वैष्णवजन कभी भी कर्मकाण्डी स्मार्त ब्राह्मणों की परवाह नहीं करते। इसीलिए श्रील सनातन गोस्वामी ने वैष्णवों के मार्गदर्शन के लिए जो स्मार्त विधि का कभी पालन नहीं करते। *हरि-भक्तिविलास* का संग्रह किया है। यद्यपि भगवान् जन-जन के हृदय में वास करते हैं, किन्तु जब तक कोई वैष्णव नहीं होता और जब तक वह भक्ति में निरत नहीं होता तब तक उसे सही उपदेश प्राप्त नहीं हो पाता जिससे वह भगवद्धाम वापस जा सके। ऐसे उपदेश केवल भक्तों के निमित्त होते हैं। अतएव इस श्लोक में *दैव-प्रहित:* शब्द महत्त्वपूर्ण है, जिसका अर्थ है "भगवान् द्वारा प्रेरित होकर।" शुक्राचार्य को चाहिए था कि वे बलि महाराज को प्रोत्साहित करते कि वे भगवान् विष्णु को सर्वस्व दे दें; यह भगवत्-प्रेम का लक्षण होता किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। उल्टे, उन्होंने अपने भक्त—शिष्य को शाप देकर दण्डित करना चाहा।

दृढं पण्डितमान्यज्ञः स्तब्धोऽस्यस्मदुपेक्षया ।
मच्छासनातिगो यस्त्वमचिराद्भ्रश्यसे श्रियः ॥ १५॥

शब्दार्थ

दृढम्—तुम अपने निर्णय में इतने दृढ़ हो; **पण्डित-मानी**—अपने को अत्यधिक विद्वान मानने वाले; **अज्ञः**—मूर्ख; **स्तब्धः**—धृष्ट, उद्धत; **असि**—हो गये हो; **अस्मत्**—हम सबकी; **उपेक्षया**—उपेक्षा करके; **मत्-शासन-अतिगः**—मेरे शासन की सीमा का अतिक्रमण करते हुए; **यः**—ऐसा व्यक्ति (जैसे तुम); **त्वम्**—तुम; **अचिरात्**—शीघ्र ही; **भ्रश्यसे**—नीचे गिर जाओगे; **श्रियः**—सारे ऐश्वर्य से।

यद्यपि तुम्हें कोई ज्ञान नहीं है फिर भी तुम तथाकथित विद्वान पुरुष बन गये हो; और इतने धृष्ट होकर तुम मेरे आदेश का उल्लंघन करने का दुस्साहस कर रहे हो। मेरी आज्ञा का उल्लंघन करने के कारण तुम शीघ्र ही सारे ऐश्वर्य से विहीन हो जाओगे।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि बलि महाराज *पण्डितमानी* नहीं थे अर्थात् अपने को झूठमूठ विद्वान नहीं समझते थे अपितु वे *पण्डित-मान्य-ज्ञ:* थे अर्थात् इतने पण्डित थे कि अन्य सारे पण्डित उनकी पूजा करते थे। चूँकि वे इतने पण्डित थे इसीलिए वे अपने तथाकथित गुरु के

आदेश का उल्लंघन कर सके। उन्हें संसार से किसी प्रकार की भौतिकता का भय नहीं था। जिसकी परवाह भगवान् विष्णु करते हों उसे किसी अन्य की परवाह करने की आवश्यकता नहीं होती। इस तरह बलि महाराज कभी भी समस्त ऐश्वर्य से वंचित नहीं हो सके। भगवान् द्वारा प्रदत्त ऐश्वर्य की तुलना कर्मकाण्ड से प्राप्त ऐश्वर्य से नहीं की जानी चाहिए। दूसरे शब्दों में, यदि कोई भक्त अत्यन्त ऐश्वर्यवान् हो जाये तो यह समझना चाहिए कि उसका ऐश्वर्य भगवान् का उपहार है। ऐसा ऐश्वर्य कभी नष्ट नहीं होगा जबकि सकाम कर्म द्वारा अर्जित ऐश्वर्य कभी भी नष्ट हो सकता है।

एवं शप्तः स्वगुरुणा सत्यान्न चलितो महान् ।
वामनाय ददावेनामर्चित्वोदकपूर्वकम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार से; शप्तः—शापित होकर; स्व-गुरुणा—अपने ही गुरु द्वारा; सत्यात्—सत्य से; न—नहीं; चलितः—चलायमान; महान्—महापुरुष; वामनाय—वामनदेव को; ददौ—दान में दे दिया; एनाम्—सारी भूमि; अर्चित्वा—पूजा करके; उदक-पूर्वकम्—पहले जल अर्पित करके।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : अपने गुरु द्वारा इस प्रकार शापित होने पर भी महापुरुष होने के नाते बलि महाराज अपने संकल्प से टले नहीं। अतएव प्रथा के अनुसार उन्होंने सर्वप्रथम वामनदेव को जल अर्पित किया और तब उन्हें वह भूमि भेंट की जिसके लिए वे वचन दे चुके थे।

विन्ध्यावलिस्तदागत्य पत्नी जालकमालिनी ।
आनिन्ये कलशं हैममवनेजन्यपां भृतम् ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

विन्ध्यावलिः—विन्ध्यावलि; तदा—उस समय; आगत्य—वहाँ आकर; पत्नी—महाराज बलि की पत्नी; जालक-मालिनी—मोतियों की माला से सुसज्जित; आनिन्ये—ले आई; कलशम्—जलपात्र; हैमम्—सोने का; अवनेजनि-अपाम्—भगवान् के चरण धोने के लिए जल से युक्त; भृतम्—भरा हुआ।

बलि महाराज की पत्नी विध्यावलि जो गले में मोतियों की माला पहने थीं वहाँ पर तुरन्त आईं और भगवान् के चरणकमलों को धोकर उनकी पूजा करने के निमित्त अपने साथ पानी से भरा सोने का एक बड़ा जलपात्र लेती आईं।

यजमानः स्वयं तस्य श्रीमत्पादयुगं मुदा ।
अवनिज्यावहन्मूर्ध्नि तदपो विश्वपावनीः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

यजमानः—पूजा करने वाला (बलि महाराज); स्वयम्—स्वयम्; तस्य—वामनदेव के; श्रीमत् पाद-युगम्—शुभ एवं सुन्दर चरणकमल युगुल; मुदा—प्रसन्नतापूर्वक; अवनिज्य—ठीक से धोकर; अवहत्—चढ़ाया; मूर्ध्नि—सिर पर; तत्—वह; अपः—जल; विश्व-पावनीः—सारे संसार को मुक्ति देने वाला।

वामनदेव की पूजा करने वाले बलि महाराज ने प्रसन्नतापूर्वक भगवान् के चरणकमलों को धोया; फिर उस जल को अपने सिर पर चढ़ाया क्योंकि वह जल सम्पूर्ण विश्व का उद्धार करता है।

तदासुरेन्द्रं दिवि देवतागणा
गन्धर्वविद्याधरसिद्धचारणाः ।
तत्कर्म सर्वेऽपि गृणन्त आर्जवं
प्रसूनवर्षैर्ववृषुर्मुदान्विताः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

तदा—उस समय; असुर-इन्द्रम्—असुरों के राजा बलि महाराज को; दिवि—स्वर्गलोक में; देवता-गणाः—देवता लोग; गन्धर्व—गन्धर्वगण; विद्याधर—विद्याधर; सिद्ध—सिद्धलोक के वासी; चारणाः—चारण लोक के वासी; तत्—उस; कर्म—काम; सर्वे अपि—सारे के सारे; गृणन्तः—घोषित करते हुए; आर्जवम्—सरल; प्रसून-वर्षैः—फूलों की वर्षा से; ववृषुः—वर्षा की; मुदा-अन्विताः—उससे परम प्रसन्न होकर।

उस समय स्वर्गलोक के निवासी—यथा देवता, गन्धर्व, विद्याधर, सिद्ध तथा चारण सभी—बलि महाराज के इस सरल द्वैतरहित कार्य से परम प्रसन्न हुए और उन्होंने उनके गुणों की प्रशंसा की तथा उन पर लाखों फूल बरसाये।

तात्पर्य : *आर्जवम्* अर्थात् सरलता या द्वैत से रहित होना ब्राह्मण तथा वैष्णव का गुण है। वैष्णव को स्वत: ब्राह्मण के सारे गुण प्राप्त हो जाते हैं—

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना
सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः

(*भागवत* ५.१.१२)

वैष्णव में ब्राह्मण के सारे गुण—यथा सत्य, शम, दम, तितिक्षा तथा आर्जव होने चाहिए। वैष्णव के आचरण में दोगलापन नहीं हो सकता। जब बलि महाराज ने अचल श्रद्धा तथा भक्ति के साथ भगवान् विष्णु के चरणकमलों की सेवा की तो स्वर्गलोक के समस्त वासियों ने इस कार्य की परम प्रशंसा की।

नेदुर्मुहुर्दुन्दुभयः सहस्रशो
गन्धर्वकिम्पूरुषकिन्नरा जगुः ।
मनस्विनानेन कृतं सुदुष्करं
विद्वानदाद्यद्रिपवे जगत्त्रयम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

नेदुः—बजने लगीं; मुहुः—पुनः पुनः; दुन्दुभयः—दुन्दुभियाँ; सहस्रशः—हजारों; गन्धर्व—गन्धर्वलोक के वासी; किम्पूरुष—किम्पुरुष लोक के वासी; किन्नराः—किन्नर लोक के वासी; जगुः—गाने लगे; मनस्विना—अत्यन्त पूज्य व्यक्ति के द्वारा; अनेन—बलि महाराज द्वारा; कृतम्—किया गया; सु-दुष्करम्—अत्यन्त कठिन कार्य; विद्वान्—विद्वान होने के कारण; अदात्—दान दिया; यत्—जो; रिपवे—शत्रु को, बलि महाराज के शत्रु देवताओं का पक्ष लेने वाले विष्णु को; जगत्-त्रयम्—तीनों लोक।

गन्धर्वों, किम्पुरुषों तथा किन्नरों ने पुनः पुनः हजारों दुन्दुभियाँ बजाईं और परम प्रसन्न होकर गाना शुरू किया, "बलि महाराज कितने महान् पुरुष हैं और उन्होंने कितना कठिन कार्य सम्पन्न किया है। यद्यपि वे जानते थे कि भगवान् विष्णु उनके शत्रुओं के पक्ष में हैं, तो भी उन्होंने भगवान् को दान में सम्पूर्ण तीनों लोक दे दिये।"

तद्वामनं रूपमवर्धताद्भुतं
हरेरनन्तस्य गुणत्रयात्मकम् ।
भूः खं दिशो द्यौर्विवराः पयोधय-
स्तिर्यङ्नृदेवा ऋषयो यदासत ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

तत्—वह; वामनम्—भगवान् वामन का अवतार; रूपम्—रूप; अवर्धत—बढ़ने लगा; अद्भुतम्—आश्चर्यजनक; हरेः—भगवान् का; अनन्तस्य—अनन्त का; गुण-त्रय-आत्मकम्—जिनका शरीर तीन गुणों से युक्त भौतिक शक्ति द्वारा विस्तारित है; भूः—भूमि; खम्—आकाश; दिशः—सभी दिशाएँ; द्यौः—लोक; विवराः—ब्रह्माण्ड के विभिन्न छिद्र; पयोधयः—महान् सागर; तिर्यक्—निम्न पशु, पक्षी; नृ—मनुष्य; देवाः—देवता; ऋषयः—ऋषिगण; यत्—जिसमें; आसत—निवास करते थे।

तब अनन्त भगवान्, जिन्होंने वामन का रूप धारण कर रखा था, भौतिक शक्ति की दृष्टि से आकार में बढ़ने लगे यहाँ तक कि ब्रह्माण्ड की सारी वस्तुएँ जिनमें पृथ्वी, अन्य लोक, आकाश, दिशाएँ, ब्रह्माण्ड के विभिन्न छिद्र, समुद्र, पक्षी, पशु, मनुष्य, देवता तथा ऋषिगण सम्मिलित थे, उनके शरीर के भीतर समा गये।

तात्पर्य : बलि महाराज वामनदेव को दान देना चाह रहे थे, किन्तु भगवान् ने अपने शरीर का ऐसा विस्तार किया कि बलि यह देख लें कि इस ब्रह्माण्ड की प्रत्येक वस्तु पहले से ही भगवान् के शरीर में है। वस्तुतः कोई भी व्यक्ति भगवान् को कुछ भी नहीं दे सकता क्योंकि वे प्रत्येक वस्तु से पूर्ण हैं। कभी-कभी कोई भक्त गंगानदी को गंगाजल अर्पित करते देखा जाता है। वह गंगा में स्नान करने के

बाद अंजुली में गंगा-जल भरकर गंगा को वापस अर्पित करता है। वस्तुत: जब कोई गंगा से एक अंजुली जल लेता है, तो गंगा का कुछ घटता नहीं। इसी प्रकार जब कोई भक्त गंगा में एक अंजुली जल डालता है, तो उससे गंगाजी में कोई वृद्धि नहीं होती। किन्तु ऐसे अर्पण से भक्त माता गंगा का भक्त बनने का यज्ञ प्राप्त करता है। इसी प्रकार जब हम श्रद्धा तथा भक्ति के साथ कोई वस्तु अर्पित करते हैं, तो अर्पित की गई वस्तु न तो हमारी होती है न ही इससे भगवान् के ऐश्वर्य में कोई वृद्धि होती है। किन्तु यदि कोई मनुष्य अपना सब कुछ अर्पित करता है, तो वह भक्त के रूप में मान्य हो जाता है। इस सम्बन्ध में यह उदाहरण दिया जाता है कि यदि कोई अपने मुखमण्डल को माला तथा चन्दन के लेप से सजाकर दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देखे तो उसके चेहरे का प्रतिबिम्ब अपने आप सुन्दर लगने लगता है। हर वस्तु के मूल स्रोत भगवान् हैं, जो हमारे भी आदि स्रोत हैं। अतएव जब भगवान् को सजाया जाता है, तो भक्त तथा सारे जीव स्वत: सज जाते हैं।

काये बलिस्तस्य महाविभूतेः
सहर्त्विगाचार्यसदस्य एतत् ।
ददर्श विश्वं त्रिगुणं गुणात्मके
भूतेन्द्रियार्थाशयजीवयुक्तम् ॥ २२॥

शब्दार्थ

काये—शरीर में; बलिः—महाराज बलि; तस्य—भगवान् का; महा-विभूतेः—समस्त अद्भुत ऐश्वर्यों से युक्त पुरुष का; सह-ऋत्विक्-आचार्य-सदस्यः—समस्त पुरोहितों, आचार्यों तथा उस पवित्र सभा के सदस्यों सहित; एतत्—यह; ददर्श—देखा; विश्वम्—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड; त्रि-गुणम्—तीन गुणों वाले; गुण-आत्मके—ऐसे समस्त गुणों के स्रोत में; भूत—भौतिक तत्त्वों समेत; इन्द्रिय—इन्द्रियाँ; अर्थ—इन्द्रिय-विषयों सहित; आशय—मन, बुद्धि तथा अहंकार सहित; जीव-युक्तम्—समस्त जीवों के सहित।

बलि महाराज ने अपने समस्त पुरोहितों, आचार्यों तथा सभा के सदस्यों सहित भगवान् के विश्वरूप को देखा जो षड्ऐश्वर्यों से युक्त था। उस शरीर में ब्रह्माण्ड की सारी वस्तुएँ विद्यमान थीं—सारे भौतिक तत्त्व, इन्द्रियाँ, इन्द्रिय-विषय, मन, बुद्धि, अहंकार, विविध जीव तथा प्रकृति के तीनों गुणों के कर्म तथा उनके फल।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* में भगवान् कहते हैं—*अहं सर्वस्य प्रभवो मत्त: सर्वं प्रवर्तते*—कृष्ण हर वस्तु के उद्गम हैं। *वासुदेव: सर्वमिति*—कृष्ण सर्वस्व हैं। *मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थित:*—सभी वस्तुएँ भगवान् के शरीर में विद्यमान हैं फिर भी भगवान् सर्वत्र नहीं हैं। मायावादी चिन्तक सोचते हैं

कि चूँकि भगवान् परब्रह्म सब कुछ हो गए हैं इसलिए उनका कोई पृथक् अस्तित्व नहीं है। उनका दर्शन *अद्वैतवाद* कहलाता है। किन्तु वास्तव में उनका दर्शन सही नहीं है। यहाँ पर बलि महाराज भगवान् के विराट रूप के द्रष्टा थे और वह शरीर दिख रहा था। यह द्वैतवाद है। सद दो प्राणी होते हैं—एक द्रष्टा और दूसरा दृश्य। द्रष्टा, पूर्ण का अंश होता है, किन्तु वह पूर्ण के तुल्य नहीं होता। पूर्ण का अंश, द्रष्टा पूर्ण से अभिन्न होता है, किन्तु अंश होने के कारण यह कभी पूर्ण नहीं हो सकता। यह अचिन्त्य जिसका प्रतिपादन भेदाभेद पूर्ण दर्शन भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा हुआ है।

रसामचष्टाङ्घ्रितलेऽथ पादयो-
र्महीं महीध्रान्पुरुषस्य जङ्घयोः ।
पतत्रिणो जानुनि विश्वमूर्ते-
रूर्वोर्गणं मारुतमिन्द्रसेनः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

रसाम्—अधोलोक; अचष्ट—देखा; अङ्घ्रि-तले—पाँव के नीचे, तलवे के नीचे; अथ—तत्पश्चात्; पादयोः—पाँवों पर; महीम्—भूमि को; महीध्रान्—पर्वतों को; पुरुषस्य—विराट पुरुष की; जङ्घयोः—पिंडलियों में; पतत्रिणः—उड़ने वाले जीव; जानुनि—घुटनों पर; विश्व-मूर्तेः—विराट भगवान् के रूप का; ऊर्वोः—जाँघों पर; गणम् मारुतम्—वायु के प्रकार; इन्द्र-सेनः—बलि महाराज जिसे इन्द्र के सिपाही मिल गये थे और जो इन्द्र पद पर आसीन थे।

तत्पश्चात् राजा इन्द्र के आसन पर आसीन बलि महाराज ने अधोलोकों को, यथा रसातल को, भगवान् के विराट रूप के पाँव के तलवों पर देखा। उन्होंने भगवान् के पाँवों पर पृथ्वी को, पिंडलियों पर सारे पर्वतों को, घुटनों पर विविध पक्षियों को तथा जाँघों पर वायु के विभिन्न प्रकारों (मरुद्गण) को देखा।

तात्पर्य : यहाँ पर भगवान् के विराट रूप की पूर्ण रचना के प्रसंग में विश्व की स्थिति का वर्णन है। इस विराट रूप का अध्ययन तलवों से शुरू होता है। तलवों के ऊपर पैर, पैर दों के ऊपर पिंडलियाँ तथा पिंडलियों के ऊपर घुटने तथा घुटनों के ऊपर जाँघें होती हैं। इस तरह विराट शरीर के सारे अंगों का एक-एक करके वर्णन हुआ है। घुटनों पर पक्षियों का स्थान है और उसके ऊपर मरुद्गण हैं। पक्षी पर्वतों के ऊपर उड़ सकते हैं और पक्षियों के ऊपर वायु के विविध प्रकार होते हैं।

सन्ध्यां विभोर्वाससि गुह्य ऐक्षत्
प्रजापतीञ्जघने आत्ममुख्यान् ।
नाभ्यां नभः कुक्षिषु सप्तसिन्धू-

नुरुक्रमस्योरसि चर्क्षमालाम् ॥ २४॥

शब्दार्थ

सन्ध्याम्—शाम; विभोः—परमेश्वर के; वाससि—वस्त्र में; गुह्ये—गुप्तांगों में; ऐक्षत्—उसने देखा; प्रजापतीन्—विभिन्न प्रजापतियों को, जिन्होंने सारे जीवों को जन्म दिया; जघने—कूल्हों पर; आत्म-मुख्यान्—बलि महाराज के विश्वस्त मंत्रियों; नाभ्याम्—नाभि पर; नभः—पूरा आकाश; कुक्षिषु—कमर में; सप्त—सात; सिन्धून्—समुद्रों के; उरुक्रमस्य—भगवान् के जो अद्भुत कार्य कर रहे थे; उरसि—वक्षस्थल पर; च—भी; ऋक्ष-मालाम्—तारों का समूह।

बलि महाराज ने अद्भुत कार्य करने वाले भगवान् के वस्त्रों के नीचे संध्या देखी, उनके गुप्तांगों में प्रजापतियों को देखा और उनके कटि प्रदेश के गोल भाग में उन्होंने अपने को तथा अपने विश्वस्त पार्षदों को देखा। उन्होंने भगवान् की नाभि में आकाश, कमर में सातों समुद्र तथा उनके वक्षस्थल में तारों के सारे समूह देखे।

हृद्यङ्ग धर्मं स्तनयोर्मुरारे-
ऋतं च सत्यं च मनस्यथेन्दुम् ।
श्रियं च वक्षस्यरविन्दहस्तां
कण्ठे च सामानि समस्तरेफान् ॥ २५॥
इन्द्रप्रधानानमरान्भुजेषु
तत्कर्णयोः ककुभो द्यौश्च मूर्ध्नि ।
केशेषु मेघाञ्छ्वसनं नासिकाया-
मक्ष्णोश्च सूर्यं वदने च वह्निम् ॥ २६॥
वाण्यां च छन्दांसि रसे जलेशं
भ्रुवोर्निषेधं च विधिं च पक्ष्मसु ।
अहश्च रात्रिं च परस्य पुंसो
मन्युं ललाटेऽधर एव लोभम् ॥ २७॥
स्पर्शे च कामं नृप रेतसाम्भः
पृष्ठे त्वधर्मं क्रमणेषु यज्ञम् ।
छायासु मृत्युं हसिते च मायां
तनूरुहेष्वोषधिजातयश्च ॥ २॥
नदीश्च नाडीषु शिला नखेषु
बुद्धावजं देवगणानृषींश्च ।
प्राणेषु गात्रे स्थिरजङ्गमानि
सर्वाणि भूतानि ददर्श वीरः ॥ २९॥

शब्दार्थ

हृदि—हृदय के भीतर; अङ्ग—हे राजा परीक्षित; धर्मम्—धर्म के; स्तनयोः—स्तनों पर; मुरारेः—मुरारि के; ऋतम्—अत्यन्त मधुर शब्द; च—भी; सत्यम्—सत्य को; च—भी; मनसि—मन में; अथ—तत्पश्चात्; इन्दुम्—चन्द्रमा को; श्रियम्—लक्ष्मी को; च—भी; वक्षसि—छाती पर; अरविन्द-हस्ताम्—अपने हाथ में सदैव कमल धारण करने वाली; कण्ठे—गले में; च—भी; सामानि—सारे वेद (साम, यजुर, ऋक् तथा अथर्व); समस्त-रेफान्—सारी ध्वनियों को; इन्द्र-प्रधानान्—इन्द्र आदि को;

अमरान्—सारे देवताओं को; भुजेषु—भुजाओं पर; तत्-कर्णयो:—कानों पर; ककुभ:—सारी दिशाएँ; द्यौ: च—तथा ज्योतिष्क; मूर्ध्नि—सिर के ऊपर; केशेषु—बालों में; मेघान्—बादलों को; श्वसनम्—श्वास; नासिकायाम्—नथुनों पर; अक्ष्णो: च—आँखों में; सूर्यम्—सूर्य को; वदने—मुख में; च—भी; वह्निम्—आग को; वाण्याम्—वाणी में; च—भी; छन्दांसि—वैदिक स्तुतियाँ; रसे—जीभ में; जल-ईशम्—जल के देवता को; भ्रुवो:—भौंहों पर; निषेधम्—चेतावनी; च—भी; विधिम्—विधि-विधान; च—भी; पक्ष्मसु—पलकों में; अह: च—दिन; रात्रिम्—रात; च—भी; परस्य—परम; पुंस:—पुरुष का; मन्युम्—क्रोध को; ललाटे—मस्तक पर; अधरे—होठों पर; एव—निस्सन्देह; लोभम्—लालच; स्पर्शे—स्पर्श में; च—भी; कामम्—कामेच्छाएँ; नृप—हे राजा; रेतसा—वीर्य से; अम्भ:—जल; पृष्ठे—पीठ पर; तु—लेकिन; अधर्मम्—अधर्म को; क्रमणेषु—अद्भुत कार्यों में; यज्ञम्—अग्नि यज्ञ को; छायासु—छाया में; मृत्युम्—मृत्यु को; हसिते—हँसी में; च—भी; मायाम्—माया को; तनू-रुहेषु—शरीर के बालों पर; ओषधि-जातय:—ओषधियों की सारी किस्में; च—तथा; नदी:—नदियों को; च—भी; नाडीषु—नाड़ियों में; शिला:—चट्टानें; नखेषु—नाखूनों में; बुद्धौ—बुद्धि में; अजम्—ब्रह्मा को; देव-गणान्—देवताओं को; ऋषीन् च—तथा ऋषियों को; प्राणेषु—इन्द्रियों में; गात्रे—शरीर में; स्थिर-जङ्गमानि—जड़ तथा चेतन को; सर्वाणि—सारे; भूतानि—जीवों को; ददर्श—देखा; वीर:—बलि महाराज ने।

हे राजा! उन्होंने भगवान् मुरारि के हृदय में धर्म, वक्षस्थल पर मधुर शब्द तथा सत्य, मन में चन्द्रमा, वक्षस्थल पर हाथ में कमल पुष्प लिए लक्ष्मीजी, गले में सारे वेद तथा सारी शब्द ध्वनियां, बाहुओं में इन्द्र इत्यादि सारे देवता, दोनों कानों में सारी दिशाएँ, सिर पर उच्चलोक, बालों में बादल, नथुनों में वायु, आँखों में सूर्य और मुख में अग्नि को देखा। उनके शब्दों से सारे वैदिक मंत्र निकल रहे थे, उनकी जीभ पर जलदेवता वरुणदेव थे, उनकी भौहों पर विधि-विधान तथा उनकी पलकों पर दिन-रात थे (आँखें खुली रहने पर दिन और बन्द होने पर रात्रि)। उनके मस्तक पर क्रोध और उनके होठों पर लालच था। हे राजा! उनके स्पर्श में कामेच्छाएँ, उनके वीर्य में सारे जल, उनकी पीठ पर अधर्म, उनके अद्भुत कार्यों या पगों में यज्ञ की अग्नि थी। उनकी छाया में मृत्यु, उनकी मुस्कान में माया थी और उनके शरीर के सारे बालों पर ओषधियाँ तथा लताएँ थीं। उनकी नाड़ियों में सारी नदियाँ, उनके नाखूनों में सारे पत्थर, उनकी बुद्धि में ब्रह्माजी, देवता तथा महान् ऋषिगण और उनके सारे शरीर तथा इन्द्रियों में सारे जड़ तथा चेतन जीव थे। इस प्रकार बलि महाराज ने भगवान् के विराट शरीर में प्रत्येक वस्तु को देखा।

सर्वात्मनीदं भुवनं निरीक्ष्य
सर्वेऽसुरा: कश्मलमापुरङ्ग ।
सुदर्शनं चक्रमसह्यतेजो
धनुश्च शार्ङ्गं स्तनयित्नुघोषम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

सर्व-आत्मनि—परम पूर्ण या भगवान् में; इदम्—यह ब्रह्माण्ड; भुवनम्—तीनों लोक; निरीक्ष्य—देखकर; सर्वे—सभी; असुराः—असुर, बलि महाराज के पार्षद; कश्मलम्—विलाप; आपुः—प्राप्त किया; अङ्ग—हे राजा; सुदर्शनम्—सुदर्शन नामक; चक्रम्—चक्र; असह्य—न सहा जाने योग्य; तेजः—ताप; धनुः च—तथा धनुष; शार्ङ्गम्—शार्ङ्ग नामक; स्तनयित्नु—घिरे हुए बादलों की ध्वनि; घोषम्—की तरह ध्वनि करती।

हे राजा! जब महाराज बलि के समस्त असुर अनुयायियों ने भगवान् के विराट रूप को देखा, जिन्होंने अपने शरीर के भीतर सब कुछ समा लिया था, और जब उन्होंने भगवान् के हाथ में सुदर्शन नामक चक्र को देखा जो असह्य ताप उत्पन्न करता है और जब उन्होंने उनके धनुष की कोलाहलपूर्ण ध्वनि सुनी तो इन सब के कारण उनके हृदयों में विषाद उत्पन्न हो गया।

पर्जन्यघोषो जलजः पाञ्चजन्यः
कौमोदकी विष्णुगदा तरस्विनी ।
विद्याधरोऽसिः शतचन्द्रयुक्त-
स्तूणोत्तमावक्षयसायकौ च ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

पर्जन्य-घोषः—बादलों जैसी गर्जन; जलजः—भगवान् का शंख; पाञ्चजन्यः—पाञ्चजन्य नामक; कौमोदकी—कौमोदकी नामक; विष्णु-गदा—विष्णु की गदा; तरस्विनी—अत्यन्त वेगवान्; विद्याधरः—विद्याधर नामक; असिः—तलवार; शत-चन्द्र-युक्तः—सैकड़ों चन्द्रमाओं से अलंकृत ढाल; तूण-उत्तमौ—श्रेष्ठ तरकस; अक्षयसायकौ—अक्षयसायक नामक; च—भी।

बादल की सी ध्वनि करने वाला भगवान् का पाञ्चजन्य नामक शंख, अत्यन्त वेगवान् कौमोदकी नामक गदा, विद्याधर नामक तलवार, सैकड़ों चन्द्रमा जैसे चिह्नों से अलंकृत ढाल एवं तरकसों में सर्वश्रेष्ठ अक्षयसायक—ये सभी भगवान् की स्तुति करने के लिए एक साथ प्रकट हुए।

सुनन्दमुख्या उपतस्थुरीशं
पार्षदमुख्याः सहलोकपालाः ।
स्फुरत्किरीटाङ्गदमीनकुण्डलः
श्रीवत्सरत्नोत्तममेखलाम्बरैः ॥ ३२ ॥
मधुव्रतस्रग्वनमालयावृतो
रराज राजन्भगवानुरुक्रमः ।
क्षितिं पदैकेन बलेर्विचक्रमे
नभः शरीरेण दिशश्च बाहुभिः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

सुनन्द-मुख्याः—सुनन्द आदि भगवान् के पार्षद; उपतस्थुः—स्तुति करने लगे; ईशम्—भगवान् की; पार्षद-मुख्याः—अन्य प्रमुख पार्षद; सह-लोक-पालाः—समस्त लोकों के प्रधान देवों सहित; स्फुरत्-किरीट—चमकीले मुकुट सहित; अङ्गद—बाजूबन्द; मीन-कुण्डलः—तथा मछली के आकार के कुण्डल; श्रीवत्स—उनके वक्षस्थल पर श्रीवत्स नामक बाल; रत्न-

उत्तम—श्रेष्ठ रत्न (कौस्तुभ); मेखला—पेटी; अम्बरैः—पीत वस्त्र सहित; मधु-व्रत—भौंरों का; स्रक्—माला; वनमालया—फूलों की माला से; आवृतः—ढका; रराज—प्रकट; राजन्—हे राजा; भगवान्—भगवान्; उरुक्रमः—अपने अद्‌भुत कार्यों से प्रत्यक्ष; क्षितिम्—सारे विश्व को; पदा एकेन—एक ही पग से; बलेः—बलि महाराज के; विचक्रमे—ढक लिया; नभः—आकाश; शरीरेण—अपने शरीर से; दिशः च—तथा सारी दिशाएँ; बाहुभिः—अपनी भुजाओं से।

सुनन्द तथा अन्य प्रमुख पार्षदों के साथ-साथ विभिन्न लोकों के प्रधान देवों ने भगवान् की स्तुति की जो चमकीला मुकुट, बाजूबन्द तथा चमकदार मकराकृत कुण्डल पहने हुए थे। भगवान् के वक्षस्थल पर श्रीवत्स नामक बालों का गुच्छा और दिव्य कौस्तुभ मणि थे। वे पीतवस्त्र पहने थे जिसके ऊपर कमर की पेटी बंधी थी। वे फूलों की माला से सज्जित थे जिसके चारों ओर भौंरे मँडरा रहे थे। हे राजा! इस प्रकार अपने आपको प्रकट करते हुए अद्‌भुत कार्यकलापों वाले भगवान् ने अपने एक पग से सम्पूर्ण पृथ्वी को, अपने शरीर से आकाश को और अपनी भुजाओं से समस्त दिशाओं को ढक लिया।

तात्पर्य : कोई तर्क कर सकता है; जब बलि महाराज ने वामनदेव को उनके पगों द्वारा नापी गई भूमि देने का वचन दिया था, तो भगवान् वामनदेव ने आकाश को क्यों घेर लिया? इस प्रसंग में श्रील जीव गोस्वामी कहते हैं कि पग के अन्तर्गत ऊपर तथा नीचे का सारा क्षेत्र सम्मिलित रहता है। जब कोई खड़ा होता है, तो वह निश्चित रूप से आकाश का कुछ भाग और अपने पगों के नीचे भूमि की कुछ मात्रा घेरता है। अतएव जब भगवान् ने अपने शरीर से समस्त आकाश को घेर लिया तो उनके लिए कोई असामान्य बात नहीं थी।

पदं द्वितीयं क्रमतस्त्रिविष्टपं
न वै तृतीयाय तदीयमण्वपि ।
उरुक्रमस्याङ्घ्रिरुपर्युपर्यथो
महर्जनाभ्यां तपसः परं गतः ॥ ३४॥

शब्दार्थ

पदम्—पग; द्वितीयम्—दूसरा; क्रमतः—आगे बढ़ाकर; त्रि-विष्टपम्—सारा स्वर्गलोक; न—नहीं; वै—निस्सन्देह; तृतीयाय—तीसरे पग के लिए; तदीयम्—भगवान् के; अणु अपि—भूमि का एक कण भी शेष बचा; उरुक्रमस्य—असामान्य कार्य करने वाले भगवान् का; अङ्घ्रिः—ऊपर तथा नीचे घेरने वाले पग; उपरि उपरि—ऊपर और उससे भी ऊपर; अथो—अब; महः-जनाभ्याम्—महर्लोक तथा जनलोक से भी; तपसः—तपोलोक; परम्—उससे भी परे; गतः—पहुँच गया।

जब भगवान् ने अपना दूसरा पग भरा तो उसमें सारे स्वर्गलोक आ गये। अब तीसरे पग के लिए रंचमात्र भी भूमि न बची क्योंकि भगवान् का पग महर्लोक, जनलोक, तपोलोक, यहाँ तक कि सत्यलोक से भी ऊपर तक फैल गया।

तात्पर्य : जब भगवान् का पग महर्लोक, जनलोक, तपोलोक तथा सत्यलोक सहित सारे लोकों की ऊँचाई से भी ऊपर चला गया तो उनके नाखून निश्चित रूप से ब्रह्माण्ड के आवरण में घुस गये। यह ब्रह्माण्ड पाँच तत्त्वों (*भूमिरापोऽनलो वायु: खम्*) से आच्छादित है। जैसाकि शास्त्रों में कहा गया है ये तत्त्व सतहों (स्तरों) के रूप में हैं और प्रत्येक सतह पिछली सतह से दस गुना मोटी होती जाती है। फिर भी भगवान् के नाखून इन सभी सतहों को बेध गये और ब्रह्मलोक में उन नाखूनों ने एक छेद बना दिया। इसी छेद से गंगा का पानी छनकर इस जगत में आया। इसीलिए कहा जाता है— *पदनखनीरजनितजनपावन* (*दशावतार स्तोत्र* ५)। चूँकि भगवान् ने ब्रह्माण्ड के आवरण में एक छेद कर दिया इसलिए पतितात्माओं के उद्धार हेतु गंगाजल इस जगत में आया।

इस प्रकार श्रीमद्‌भागवत के अष्टम स्कंध के अन्तर्गत ''बलि महाराज द्वारा ब्रह्माण्ड समर्पण'' नामक बीसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter इक्कीस

भगवान् द्वारा बलि महाराज को बन्दी बनाया जाना

इस अध्याय में बताया गया है कि भगवान् विष्णु ने किस प्रकार बलि महाराज के यश का विज्ञापन करने की इच्छा से तीसरे पग के लिए अपना वचन न निभा पाने के कारण बलि महाराज को बन्दी बना लिया।

जब भगवान् का दूसरा पग ब्रह्माण्ड के सर्वोच्च लोक ब्रह्मलोक जा पहुँचा तो उनके अँगूठे के नाखून के तेज से उस लोक का सौन्दर्य घट गया। तब ब्रह्माजी ने मरीचि इत्यादि ऋषियों तथा स्वर्ग के प्रधान देवों समेत भगवान् की विनम्र स्तुति और पूजा की। उन्होंने भगवान् के चरणों का प्रक्षालन किया और सारी सामग्री से उनका पूजन किया। ऋक्षराज जाम्बवान ने भगवान् की महिमा को गुँजाने के लिए अपना बिगुल बजाया। जब बलि महाराज का सर्वस्व छिन गया तो सारे असुर अत्यन्त क्रुद्ध हुए। बलि महाराज के ऐसा न करने की चेतावनी देने पर भी उन सबों ने भगवान् विष्णु के विरुद्ध अपने हथियार उठा लिये। किन्तु विष्णु के नित्य पार्षदों ने इन सबको हरा दिया और वे सब बलि महाराज के आदेशानुसार पाताललोक में चले गये। भगवान् विष्णु के वाहन गरुड़ ने भगवान् विष्णु का मन्तव्य

समझकर तुरन्त ही बलि महाराज को वरुण के पाश से बन्दी बना लिया। जब बलि महाराज इस असहाय अवस्था में पड़ गए तो भगवान् विष्णु ने उनसे तीसरे पग की भूमि माँगी। जब बलि महाराज अपना वचन पूरा न कर पाये तो भगवान् विष्णु ने उनके संकल्प तथा दृढ़ व्रत को देखते हुए उन्हें सुतललोक में स्थान प्रदान किया जो स्वर्गलोक से बढ़कर है।

श्रीशुक उवाच
सत्यं समीक्ष्याब्जभवो नखेन्दुभि-
र्हतस्वधामद्युतिरावृतोऽभ्यगात् ।
मरीचिमिश्रा ऋषयो बृहद्व्रताः
सनन्दनाद्या नरदेव योगिनः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; सत्यम्—सत्यलोक; समीक्ष्य—देखकर; अब्ज-भवः—कमल से उत्पन्न ब्रह्माजी ने; नख-इन्दुभिः—नाखूनों के तेज से; हत—क्षीण हुआ; स्व-धाम-द्युतिः—अपने धाम का प्रकाश; आवृतः—आच्छादित; अभ्यगात्—आया; मरीचि-मिश्राः—मरीचि जैसे मुनियों के साथ; ऋषयः—ऋषिगण; बृहत्-व्रताः—सारे के सारे परम ब्रह्मचारी; सनन्दन-आद्याः—सनक, सनातन, सनन्दन तथा सनत्कुमार जैसे; नर-देव—हे राजा; योगिनः—योगी।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : जब कमलपुष्प से उत्पन्न ब्रह्माजी ने देखा कि उनके धाम ब्रह्मलोक का तेज भगवान् वामनदेव के अँगूठे के नाखूनों के चमकीले तेज से कम हो गया है, तो वे भगवान् के पास गये। ब्रह्माजी के साथ मरीचि इत्यादि ऋषि तथा सनन्दन जैसे योगीजन थे, किन्तु हे राजा! उस तेज के समक्ष ब्रह्मा तथा उनके पार्षद भी नगण्य प्रतीत हो रहे थे।

वेदोपवेदा नियमा यमान्विता-
स्तर्केतिहासाङ्गपुराणसंहिताः ।
ये चापरे योगसमीरदीपित-
ज्ञानाग्निना रन्धितकर्मकल्मषाः ॥ २ ॥
ववन्दिरे यत्स्मरणानुभावतः
स्वायम्भुवं धाम गता अकर्मकम् ।
अथाङ्घ्रये प्रोन्नमिताय विष्णो-
रुपाहरत्पद्मभवोऽर्हणोदकम् ।
समर्च्य भक्त्याभ्यगृणाच्छुचिश्रवा
यन्नाभिपङ्केरुहसम्भवः स्वयम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

वेद—चारों वेद (साम, यजुर्, ऋग् तथा अथर्व), भगवान् द्वारा प्रदत्त मूल ज्ञान; उपवेदाः—पूरक तथा गौण वैदिक ज्ञान यथा आयुर्वेद, धनुर्वेद; नियमाः—विधि-विधान; यम—संयम करने की विधियाँ; अन्विताः—ऐसे मामलों में पटु; तर्क—तर्क;

इतिहास—इतिहास; अङ्ग—वैदिक शिक्षा; पुराण—पुराण; संहिताः—संहिताएँ यथा ब्रह्म-संहिता, वेदों के पूरक ग्रंथ; ये—अन्य; च—भी; अपरे—ब्रह्मा तथा उनके पार्षदों के अतिरिक्त; योग-समीर-दीपित—योगाभ्यास की वायु से प्रज्वलित; ज्ञान-अग्निना—ज्ञान की आग से; रन्धित-कर्म-कल्मषाः—जिनके लिए कर्म का सारा दूषण रुक चुका है; ववन्दिरे—स्तुति की; यत्-स्मरण-अनुभावतः—जिनका ध्यान मात्र करने से; स्वायम्भुवम्—ब्रह्माजी का; धाम—निवास स्थान; गताः—प्राप्त किया था; अकर्मकम्—जो सकाम कर्म से प्राप्त नहीं किया जा सकता; अथ—तत्पश्चात्; अङ्घ्रये—चरणकमलों पर; प्रोन्नमिताय—प्रणाम किया; विष्णोः—विष्णु के; उपाहरत्—पूजा की; पद्म-भवः—कमल से उत्पन्न ब्रह्माजी ने; अर्हण-उदकम्—जल द्वारा अर्घ्य देना; समर्च्य—पूजा करके; भक्त्या—भक्तिपूर्वक; अभ्यगृणात्—उन्हें प्रसन्न किया; शुचि-श्रवाः—परम प्रसिद्ध वैदिक विद्वान; यत्-नाभि-पङ्केरुह-सम्भवः स्वयम्—जिनकी नाभि से निकले कमल से उत्पन्न ब्रह्माजी।

जो महापुरुष भगवान् के चरणकमलों की पूजा के लिए आए उनमें वे भी थे जिन्होंने आत्मसंयम तथा विधि-विधानों में सिद्धि प्राप्त की थी। साथ ही वे तर्क, इतिहास, सामान्य शिक्षा तथा कल्प नामक (प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बन्धित) वैदिक वाङ्मय में दक्ष थे। अन्य लोग ब्रह्म संहिताओं जैसे वैदिक उपविषयों, वेदों के अन्य ज्ञान तथा वेदांगों (आयुर्वेद, धनुर्वेद, इत्यादि) में पटु थे। अन्य ऐसे थे जिन्होंने योगाभ्यास से जागृत दिव्यज्ञान के द्वारा कर्मफलों से अपने को मुक्त कर लिया था। कुछ ऐसे भी थे जिन्होंने सामान्य कर्म से नहीं प्रत्युत उच्च वैदिक ज्ञान द्वारा ब्रह्मलोक में निवासस्थान प्राप्त किया था। जल तर्पण द्वारा भगवान् के ऊपर उठे चरणकमलों की भक्तिपूर्वक पूजा कर लेने के बाद भगवान् विष्णु की नाभि से निकले कमल से उत्पन्न ब्रह्माजी ने भगवान् की स्तुति की।

धातुः कमण्डलुजलं तदुरुक्रमस्य
पादावनेजनपवित्रतया नरेन्द्र ।
स्वर्धुन्यभून्नभसि सा पतती निमार्ष्टि
लोकत्रयं भगवतो विशदेव कीर्तिः ॥ ४॥

शब्दार्थ

धातुः—ब्रह्माजी का; कमण्डलु-जलम्—कमण्डल का पानी; तत्—वही; उरुक्रमस्य—भगवान् विष्णु का; पाद-अवनेजन-पवित्रतया—भगवान् विष्णु के चरणकमलों को धोने और इस तरह दिव्य रूप से पवित्र होने से; नर-इन्द्र—हे राजा; स्वर्धुनी—दिव्यलोक की स्वर्धुनी नामक नदी; अभूत्—हो गई; नभसि—बाह्य आकाश में; सा—वह; पतती—नीचे गिरती हुई; निमार्ष्टि—पवित्र करती; लोक-त्रयम्—तीनों लोकों को; भगवतः—भगवान् के; विशदा—इतनी पवित्र; इव—मानो; कीर्तिः—यश या यशस्वी कार्यकलाप।

हे राजा! ब्रह्मा के कमण्डल से निकला जल अद्‌भुत कार्यों को करने वाले उरुक्रम भगवान् वामनदेव के चरणकमलों को धोने लगा। इस प्रकार यह जल इतना शुद्ध हो गया कि यह गंगाजल में परिणत होकर आकाश से नीचे बहता हुआ तीनों लोकों को शुद्ध करने लगा मानो भगवान् का विमल यश हो।

तात्पर्य : यहाँ हमें पता चलता है कि जब ब्रह्माजी के कमण्डल के जल से भगवान् वामनदेव के चरणकमल धुले तो गंगाजी बहने लगीं। किन्तु पंचम स्कंध में कहा गया है कि जब वामनदेव का बायाँ पाँव ब्रह्माण्ड के आवरण में घुस गया तो उससे होकर कारणार्णव सागर का दिव्य जल निकलने लगा। अन्यत्र यह भी बताया गया है कि भगवान् नारायण गंगाजल के रूप में प्रकट हुए। अतएव गंगा का जल तीन दिव्य जलों का मेल है और इस तरह गंगा तीनों लोकों को शुद्ध करने में समर्थ हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने यह विवरण दिया है।

ब्रह्मादयो लोकनाथाः स्वनाथाय समादृताः ।
सानुगा बलिमाजह्रुः सङ्क्षिप्तात्मविभूतये ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्म-आदयः—ब्रह्मा इत्यादि महापुरुष; लोक-नाथाः—विभिन्न लोकों के प्रमुख देवता; स्व-नाथाय—अपने परम स्वामी को; समादृताः—अत्यधिक आदर के साथ; स-अनुगाः—अपने अनुयायियों सहित; बलिम्—पूजा की सामग्री; आजह्रुः—एकत्र किया; सङ्क्षिप्त-आत्म-विभूतये—भगवान् को, जिन्होंने अपने निजी ऐश्वर्य का विस्तार किया था, किन्तु अब वामन रूप में घटा लिया था।

ब्रह्माजी तथा विभिन्न लोकों के समस्त प्रधान देवता अपने उन परम स्वामी भगवान् वामनदेव की पूजा करने लगे जिन्होंने अपने सर्वत्र-व्यापक रूप को छोटा करके अपना आदि रूप ग्रहण कर लिया था। उन्होंने पूजा की सारी सामग्री एकत्रित की।

तात्पर्य : सर्वप्रथम वामनदेव ने अपना विस्तार विराट रूप में किया और फिर वे अपने आदि वामन रूप में आ गये। इस तरह उन्होंने भगवान् कृष्ण जैसा ही किया जिन्होंने अर्जुन को पहले अपना विराट रूप प्रकट किया था और बाद में अपना आदि रूप ग्रहण कर लिया था। भगवान् इच्छानुसार कोई भी रूप धारण कर सकते हैं लेकिन उनका आदि रूप कृष्ण का होता है (*कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्*)। भक्त की क्षमता के अनुसार भगवान् विभिन्न रूप धारण करते हैं जिससे भक्त उनसे व्यवहार कर सके। यह उनकी अहैतुकी कृपा है। जब भगवान् वामनदेव ने अपना आदि रूप धारण कर लिया तो ब्रह्माजी तथा उनके पार्षदों ने उन्हें प्रसन्न करने के लिए पूजा की विविध सामग्री एकत्र की।

तोयैः समर्हणैः स्रग्भिर्दिव्यगन्धानुलेपनैः ।
धूपैर्दीपैः सुरभिभिर्लाजाक्षतफलाङ्कुरैः ॥ ६ ॥
स्तवनैर्जयशब्दैश्च तद्वीर्यमहिमाङ्कितैः ।

नृत्यवादित्रगीतैश्च शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनैः ॥ ७॥

शब्दार्थ

तोयैः—चरणकमल धोने तथा स्नान के लिए आवश्यक जल से; समर्हणैः—भगवान् की पूजा के लिए पाद्य, अर्घ्य इत्यादि सामग्री से; स्रग्भिः—फूल की मालाओं से; दिव्य-गन्ध-अनुलेपनैः—चन्दन अगुरु से भगवान् वामनदेव के शरीर पर करने के लिए लेप के द्वारा; धूपैः—धूप के द्वारा; दीपैः—दीपकों के द्वारा; सुरभिभिः—अत्यन्त सुगन्धित; लाज—लावा से; अक्षत—अक्षत द्वारा; फल—फलों से; अङ्कुरैः—जड़ों तथा अंकुरों से; स्तवनैः—स्तुतियों से; जय-शब्दैः—जयजयकार द्वारा; च—भी; तत्-वीर्य-महिमा-अङ्कितैः—जिससे भगवान् के यशस्वी कार्य सूचित होते हैं; नृत्य-वादित्र-गीतैः च—नाच, संगीत यंत्रो के वादन तथा गीतगायन से; शङ्ख—शंख; दुन्दुभि—दुन्दुभि; निःस्वनैः—ध्वनि से।

उन्होंने सुगन्धित पुष्प, जल, पाद्य तथा अर्घ्य, चन्दन तथा अगुरु के लेप, धूप, दीप, लावा, अक्षत, फल, मूल तथा अंकुर से भगवान् की पूजा की। ऐसा करते समय उन्होंने भगवान् के यशस्वी कार्यों को सूचित करने वाली स्तुतियाँ कीं और जयजयकार किया। इस तरह भगवान् की पूजा करते हुए उन्होंने नृत्य किया, वाद्ययंत्र बजाये, गाया और शंख और दुन्दुभियां बजाईं।

जाम्बवानृक्षराजस्तु भेरीशब्दैर्मनोजवः ।
विजयं दिक्षु सर्वासु महोत्सवमघोषयत् ॥ ॥

शब्दार्थ

जाम्बवान्—जाम्बवान ने; ऋक्ष-राजः तु—रीछों के राजा; भेरी-शब्दैः—बिगुल बजाकर; मनः-जवः—मनमौज में; विजयम्—विजय, जीत; दिक्षु—सारी दिशाओं में; सर्वासु—सर्वत्र; महा-उत्सवम्—महोत्सव; अघोषयत्—घोषित कर दिया।

रीछों के राजा जाम्बवान भी इस उत्सव में सम्मिलित हो गये। उन्होंने सारी दिशाओं में बिगुल बजाकर भगवान् वामनदेव की विजय का महोत्सव घोषित कर दिया।

महीं सर्वां हृतां दृष्ट्वा त्रिपदव्याजयाच्ञया ।
ऊचुः स्वभर्तुरसुरा दीक्षितस्यात्यमर्षिताः ॥ ९॥

शब्दार्थ

महीम्—पृथ्वी को; सर्वाम्—सारी; हृताम्—छीनी हुई; दृष्ट्वा—देखकर; त्रि-पद-व्याज-याच्ञया—केवल तीन पग भूमि माँगने के बहाने; ऊचुः—कहा; स्व-भर्तुः—अपने स्वामी; असुराः—असुरगण; दीक्षितस्य—यज्ञ के लिए दृढ़संकल्प बलि महाराज के; अति—अत्यधिक; अमर्षिताः—यह उत्सव जिनके लिए असह्य था।

जब बलि महाराज के असुर अनुयायियों ने देखा कि उनके स्वामी ने जिन्होंने यज्ञ सम्पन्न करने का संकल्प कर रखा था। वामनदेव द्वारा तीन पग भूमि माँगे जाने के बहाने सब कुछ गँवा दिया है, तो वे अत्यधिक क्रुद्ध हुए और इस प्रकार बोले।

न वायं ब्रह्मबन्धुर्विष्णुर्मायाविनां वरः ।
द्विजरूपप्रतिच्छन्नो देवकार्यं चिकीर्षति ॥ १०॥

शब्दार्थ

न—नहीं; वा—अथवा; अयम्—यह; ब्रह्म-बन्धुः—ब्राह्मण वेश में वामनदेव; विष्णुः—साक्षात् विष्णु है; मायाविनाम्—सारे ठगों में; वरः—श्रेष्ठ; द्विज-रूप—ब्राह्मण का रूप बनाकर; प्रतिच्छन्नः—ठगने के लिए वेश धारण किये है; देव-कार्यम्—देवताओं के हित के लिए; चिकीर्षति—प्रयत्न कर रहा है।

यह वामन निश्चित रूप से ब्राह्मण न होकर ठगराज भगवान् विष्णु है। उसने ब्राह्मण का रूप धारण करके अपने असली रूप को छिपा लिया है और इस तरह यह देवताओं के हित के लिए कार्य कर रहा है।

अनेन याचमानेन शत्रुणा वटुरूपिणा ।
सर्वस्वं नो हृतं भर्तुर्न्यस्तदण्डस्य बर्हिषि ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

अनेन—इसके द्वारा; याचमानेन—भिखारी के पद को प्राप्त; शत्रुणा—शत्रु के द्वारा; वटु-रूपिणा—ब्रह्मचारी के वेश में; सर्वस्वम्—सर्वस्व; नः—हमारे; हृतम्—ले लिया गया है; भर्तुः—स्वामी का; न्यस्त—फेंका गया; दण्डस्य—दण्ड देने की शक्ति का; बर्हिषि—अनुष्ठान का व्रत लेने के कारण।

हमारे स्वामी बलि महाराज यज्ञ करने की स्थिति में होने के कारण दण्ड देने की अपनी शक्ति त्याग बैठे हैं। इसका लाभ उठाकर हमारे शाश्वत शत्रु विष्णु ने ब्रह्मचारी भिखारी के वेश में उनका सर्वस्व छीन लिया है।

सत्यव्रतस्य सततं दीक्षितस्य विशेषतः ।
नानृतं भाषितुं शक्यं ब्रह्मण्यस्य दयावतः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

सत्य-व्रतस्य—सत्यसन्ध महाराज बलि का; सततम्—सदैव; दीक्षितस्य—यज्ञ सम्पन्न करने के लिए दीक्षित हुए; विशेषतः—विशेष रूप से; न—नहीं; अनृतम्—झूठ, असत्य; भाषितुम्—बोलने के लिए; शक्यम्—समर्थ है; ब्रह्मण्यस्य—ब्राह्मण सभ्यता या ब्राह्मण का; दया-वतः—दयावान्।

हमारे स्वामी बलि महाराज सदैव सत्य पर दृढ़ रहते हैं और इस समय तो विशेष रूप से क्योंकि उन्हें यज्ञ करने के लिए दीक्षा दी गई है। वे ब्राह्मणों के प्रति सदैव दयालु तथा सदय रहते हैं और कभी भी झूठ नहीं बोल सकते।

तस्मादस्य वधो धर्मो भर्तुः शुश्रूषणं च नः ।
इत्यायुधानि जगृहुर्बलेरनुचरासुराः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—इसलिए; अस्य—इस ब्रह्मचारी वामन का; वधः—वध; धर्मः—हमारा कर्तव्य है; भर्तुः—हमारे स्वामी की; शुश्रूषणम् च—तथा सेवा करने का तरीका भी है; नः—हमारा; इति—इस प्रकार; आयुधानि—हथियार; जगृहुः—उठा लिया; बलेः—बलि महाराज के; अनुचर—अनुयायी; असुराः—सारे असुरों ने।

अतएव इस वामनदेव भगवान् विष्णु को मार डालना हमारा कर्तव्य है। यह हमारा धर्म है और अपने स्वामी की सेवा करने का तरीका है। इस निर्णय के बाद महाराज बलि के असुर अनुयायियों ने वामनदेव को मारने के उद्देश्य से अपने-अपने हथियार उठा लिये।

ते सर्वे वामनं हन्तुं शूलपट्टिशपाणयः ।
अनिच्छन्तो बले राजन्प्राद्रवञ्जातमन्यवः ॥ १४॥

शब्दार्थ

ते—वे असुर; सर्वे—सभी; वामनम्—भगवान् वामनदेव को; हन्तुम्—मारने के लिए; शूल—त्रिशूल; पट्टिश—भाले; पाणयः—हाथ में लेकर; अनिच्छन्तः—इच्छा के विपरीत; बलेः—बलि महाराज की; राजन्—हे राजा; प्राद्रवन्—आगे बढ़े; जात-मन्यवः—सामान्य क्रोध के द्वारा भड़क कर।

हे राजा! असुरों का सामान्य क्रोध भड़क उठा, उन्होंने अपने-अपने भाले तथा त्रिशूल अपने हाथों में ले लिये और बलि महाराज की इच्छा के विरुद्ध वे वामनदेव को मारने के लिए आगे बढ़ गये।

तानभिद्रवतो दृष्ट्वा दितिजानीकपान्नृप ।
प्रहस्यानुचरा विष्णोः प्रत्यषेधन्नुदायुधाः ॥ १५॥

शब्दार्थ

तान्—उनको; अभिद्रवतः—इस प्रकार आगे बढ़ते; दृष्ट्वा—देखकर; दितिज-अनीक-पान्—असुरों के सैनिक; नृप—हे राजा; प्रहस्य—हँसकर; अनुचराः—सहयोगी; विष्णोः—भगवान् विष्णु के; प्रत्यषेधन्—मना किया; उदायुधाः—अपने हथियार ग्रहण करने को।

हे राजा! जब विष्णु के सहयोगियों ने देखा कि असुर सैनिक हिंसा पर उतारू होकर आगे बढ़े आ रहे हैं, तो वे हँसने लगे। उन्होंने अपने हथियार उठाते हुए असुरों को ऐसा प्रयत्न करने से मना किया।

नन्दः सुनन्दोऽथ जयो विजयः प्रबलो बलः ।
कुमुदः कुमुदाक्षश्च विष्वक्सेनः पतत्त्रिराट् ॥ १६॥
जयन्तः श्रुतदेवश्च पुष्पदन्तोऽथ सात्वतः ।
सर्वे नागायुतप्राणाश्चमूं ते जघ्नुरासुरीम् ॥ १७॥

शब्दार्थ

नन्दः सुनन्दः—विष्णु के संगी यथा नन्द तथा सुनन्द; अथ—इस प्रकार; जयः विजयः प्रबलः बलः कुमुदः कुमुदाक्षः च विष्वक्सेनः—तथा जय, विजय, प्रबल, बल, कुमुद, कुमुदाक्ष तथा विष्वक्सेन; पतत्रि-राट्—पक्षिराज गरुड़; जयन्तः श्रुतदेवः च पुष्पदन्तः अथ सात्वतः—जयन्त, श्रुतदेव, पुष्पदन्त तथा सात्वत; सर्वे—सभी; नाग-अयुत-प्राणाः—दस हजार हाथियों के समान शक्तिशाली; चमूम्—सेना को; ते—उन्होंने; जघ्नुः—मार डाला; आसुरीम्—असुरों की।

नन्द, सुनन्द, जय, विजय, प्रबल, बल, कुमुद, कुमुदाक्ष, विष्वक्सेन, पतत्रिराट् (गरुड़), जयन्त, श्रुतदेव, पुष्पदन्त तथा सात्वत—ये सभी भगवान् विष्णु के संगी थे। वे दस हजार हाथियों के तुल्य बलवान् थे। अब वे असुरों के सैनिकों को मारने लगे।

हन्यमानान्स्वकान्दृष्ट्वा पुरुषानुचरैर्बलिः ।
वारयामास संरब्धान्काव्यशापमनुस्मरन् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

हन्यमानान्—मारे जा रहे; स्वकान्—अपने सैनिकों को; दृष्ट्वा—देखकर; पुरुष-अनुचरैः—परम पुरुष के अनुचरों द्वारा; बलिः—बलि महाराज ने; वारयाम् आस—मना किया; संरब्धान्—अत्यधिक क्रुद्ध होते हुए भी; काव्य-शापम्—शुक्राचार्य के द्वारा प्रदत्त शाप को; अनुस्मरन्—याद करते हुए।

जब बलि महाराज ने देखा कि उनके अपने सैनिक भगवान् विष्णु के अनुचरों द्वारा मारे जा रहे हैं, तो उन्हें शुक्राचार्य का शाप याद आया और उन्होंने अपने सैनिकों को युद्ध जारी रखने से मना कर दिया।

हे विप्रचित्ते हे राहो हे नेमे श्रूयतां वचः ।
मा युध्यत निवर्तध्वं न नः कालोऽयमर्थकृत् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

हे विप्रचित्ते—हे विप्रचित्ति; हे राहो—हे राहु; हे नेमे—हे नेमि; श्रूयताम्—सुनो तो; वचः—मेरे शब्द; मा—मत; युध्यत—लड़ो; निवर्तध्वम्—यह लड़ाई बन्द करो; न—नहीं; नः—हमारा; कालः—उपयुक्त समय; अयम्—यह; अर्थ-कृत्—सफल होने का।

हे विप्रचित्ति, हे राहु, हे नेमि! जरा मेरी बात तो सुनो! तुम लोग मत लड़ो। तुरन्त रुक जाओ क्योंकि यह समय हमारे अनुकूल नहीं है।

यः प्रभुः सर्वभूतानां सुखदुःखोपपत्तये ।
तं नातिवर्तितुं दैत्याः पौरुषैरीश्वरः पुमान् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

यः प्रभुः—जो परम पुरुष, स्वामी; सर्व-भूतानाम्—सभी जीवों का; सुख-दुःख-उपपत्तये—सुख तथा दुख देने के लिए; तम्—उसको; न—नहीं; अतिवर्तितुम्—जीतने के लिए; दैत्याः—हे दैत्यो; पौरुषैः—मानवीय प्रयास से; ईश्वरः—परम नियन्ता; पुमान्—पुरुष।

हे दैत्यो! कोई भी व्यक्ति मानवीय प्रयासों से उन भगवान् को परास्त नहीं कर सकता जो

समस्त जीवों को सुख तथा दुख देने वाले हैं।

यो नो भवाय प्रागासीदभवाय दिवौकसाम् ।
स एव भगवानद्य वर्तते तद्विपर्ययम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

यः—भगवान् का प्रतिनिधि काल; नः—हम सबकी; भवाय—उन्नति के लिए; प्राक्—पहले; आसीत्—स्थित था; अभवाय—हार के लिए; दिव-ओकसाम्—देवताओं का; सः—वही काल; एव—निस्सन्देह; भगवान्—परम पुरुष का प्रतिनिधि; अद्य—आज; वर्तते—उपस्थित है; तत्-विपर्ययम्—हमारे पक्ष के विपरीत।

परम काल जो भगवान् का प्रतिनिधि है और जो पहले हमारे अनुकूल और देवताओं के प्रतिकूल था, वही काल अब हमारे विरुद्ध है।

बलेन सचिवैर्बुद्ध्या दुर्गैर्मन्त्रौषधादिभिः ।
सामादिभिरुपायैश्च कालं नात्येति वै जनः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

बलेन—बल द्वारा; सचिवैः—मंत्रियों की सलाह से; बुद्ध्या—बुद्धि से; दुर्गैः—किलों से; मन्त्र-औषध-आदिभिः—योगमंत्रों या औषधियों के द्वारा; साम-आदिभिः—राजनीति तथा अन्य ऐसे साधनों से; उपायैः च—इसी प्रकार के अन्य उपायों से; कालम्—काल जो भगवान् का प्रतिनिधि है; न—कभी नहीं; अत्येति—जीत सकता है; वै—निस्सन्देह; जनः—कोई व्यक्ति।

कोई भी व्यक्ति भौतिक बल, मंत्रियों की सलाह, बुद्धि, राजनय, किला, मंत्र, औषधि, जड़ी-बूटी या अन्य किसी उपाय से भगवान् स्वरूप काल स्वरूप को परास्त नहीं कर सकता।

भवद्भिर्निर्जिता ह्येते बहुशोऽनुचरा हरेः ।
दैवेनर्द्धैस्त एवाद्य युधि जित्वा नदन्ति नः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

भवद्भिः—तुम सारे असुरों के द्वारा; निर्जिताः—पराजित किये गये थे; हि—निस्सन्देह; एते—देवताओं के सारे सैनिक; बहुशः—बड़ी संख्या में; अनुचराः—अनुयायी; हरेः—विष्णु के; दैवेन—भाग्यवश; ऋद्धैः—ऐश्वर्य बढ़ने से; ते—वे (देवता); एव—निस्सन्देह; अद्य—आज; युधि—युद्ध में; जित्वा—जीतकर; नदन्ति—हर्ष से नाद कर रहे हैं; नः—हमें।

पहले तुम सब ने भाग्य द्वारा शक्ति प्राप्त करके भगवान् विष्णु के ऐसे अनेक अनुयायियों को परास्त किया था। किन्तु आज वे ही अनुयायी हमें परास्त करके शेरों की तरह हर्ष से दहाड़ रहे हैं।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* में हार या जीत के पाँच कारण बताये गये हैं। इनमें से दैव सबसे अधिक शक्तिमान है (*न च दैवात् परं बलम्*)। बलि महाराज इस रहस्य को जानते थे कि वे पूर्वकाल में दैव अनुकूल होने के कारण किस प्रकार विजयी हुए थे। चूँकि वही दैव अब उनके अनुकूल नहीं था

अतएव उनकी विजय की कोई संभावना नहीं थी। इस प्रकार उन्होंने अपने अनुचरों को बड़ी बुद्धिमानी से लड़ने से वर्जित किया।

एतान्वयं विजेष्यामो यदि दैवं प्रसीदति ।
तस्मात्कालं प्रतीक्षध्वं यो नोऽर्थत्वाय कल्पते ॥ २४॥

शब्दार्थ

एतान्—देवताओं के इन सारे सैनिकों को; वयम्—हम; विजेष्यामः—जीत लेंगे; यदि—यदि; दैवम्—भाग्य; प्रसीदति—हमारे अनुकूल है; तस्मात्—इसलिए; कालम्—अनुकूल काल की; प्रतीक्षध्वम्—तब तक प्रतीक्षा करो; यः—जो; नः—हमारा; अर्थत्वाय कल्पते—पक्ष में माना जाना चाहिए।

जब तक भाग्य हमारे अनुकूल न हो तब तक हम विजय प्राप्त नहीं कर सकेंगे। अतएव हमें उस उपयुक्त काल की प्रतीक्षा करनी चाहिए जब हम उन्हें पराजित कर सकेंगे।

श्रीशुक उवाच
पत्युर्निगदितं श्रुत्वा दैत्यदानवयूथपाः ।
रसां निर्विविशू राजन्विष्णुपार्षद ताडिताः ॥ २५॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; पत्युः—अपने स्वामी (बलि महाराज) को; निगदितम्—जिसका इस तरह वर्णन हुआ; श्रुत्वा—सुनकर; दैत्य-दानव-यूथ-पाः—दैत्यों तथा दानवों के सेनापति; रसाम्—रसातल लोक में; निर्विविशूः—घुस गये; राजन्—हे राजा; विष्णु-पार्षद—विष्णु के अनुचरों द्वारा; ताडिताः—खदेड़े जाकर।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : हे राजा! अपने स्वामी बलि महाराज के आदेश के अनुसार दैत्यों तथा दानवों के सारे सेनापति ब्रह्माण्ड के निचले भागों में प्रविष्ट हुए जहाँ उन्हें विष्णु के सैनिकों ने खदेड़ दिया था।

अथ तार्क्ष्यसुतो ज्ञात्वा विराट्प्रभुचिकीर्षितम् ।
बबन्ध वारुणैः पाशैर्बलिं सूत्येऽहनि क्रतौ ॥ २६॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; तार्क्ष्य-सुतः—गरुड़ ने; ज्ञात्वा—जानकर; विराट्—पक्षिराज; प्रभु-चिकीर्षितम्—भगवान् वामनदेव की इच्छा से; बबन्ध—बन्दी बना लिया; वारुणैः—वरुण से सम्बन्धित; पाशैः—रस्सियों से; बलिम्—बलि को; सूत्ये—सोमरस पान के; अहनि—दिन; क्रतौ—यज्ञ के समय।

तत्पश्चात् यज्ञ समाप्त हो जाने के बाद सोमपान के दिन पक्षिराज गरुड़ ने अपने स्वामी की इच्छा जानकर बलि महाराज को वरुणपाश से बन्दी बना लिया।

तात्पर्य : भगवान् का नित्य संगी गरुड़ भगवान् की आन्तरिक इच्छा को जानने वाला है। बलि

महाराज की सहिष्णुता तथा भक्ति असंदिग्ध रूप से अतिश्रेष्ठ थी। सारे विश्व को बलि महाराज की महती सहिष्णुता दिखलाने के लिए गरुड़ ने उन्हें बन्दी बना लिया।

हाहाकारो महानासीद्रोदस्यो: सर्वतो दिशम् ।
निगृह्यमाणेऽसुरपतौ विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ २७॥

शब्दार्थ

हाहा-कार:—विलाप का कोलाहलपूर्ण नाद; महान्—अत्यधिक; आसीत्—था; रोदस्यो:—अधो एवं ऊर्ध्व दोनों लोकों में; सर्वत:—सर्वत्र; दिशम्—सारी दिशाएँ; निगृह्यमाणे—दबाये जाने के कारण; असुर-पतौ—असुरों के स्वामी बलि महाराज को; विष्णुना—विष्णु द्वारा; प्रभविष्णुना—जो सर्वत्र अत्यन्त शक्तिशाली है।

जब बलि महाराज परम शक्तिशाली भगवान् विष्णु द्वारा इस प्रकार बन्दी बना लिये गये तो ब्रह्माण्ड के अधो तथा ऊर्ध्व लोकों की समस्त दिशाओं में विलाप का आर्तनाद हुआ।

तं बद्धं वारुणै: पाशैर्भगवानाह वामन: ।
नष्टश्रियं स्थिरप्रज्ञमुदारयशसं नृप ॥ २ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; बद्धम्—बाँधे गये; वारुणै: पाशै:—वरुण पाश द्वारा; भगवान्—भगवान्; आह—कहा; वामन:—वामनदेव ने; नष्ट-श्रियम्—शारीरिक कान्ति से विहीन बलि महाराज से; स्थिर-प्रज्ञम्—किन्तु फिर भी अपने निर्णय पर अटल; उदार-यशसम्—अत्यन्त सुन्दर एवं विख्यात; नृप—हे राजा।

हे राजा! तब भगवान् वामनदेव अत्यन्त उदार एवं विख्यात बलि महाराज से बोले जिन्हें उन्होंने वरुणपाश से बन्दी बनवा लिया था। यद्यपि बलि महाराज के शरीर की सारी कान्ति जा चुकी थी तो भी वे अपने निर्णय पर अटल थे।

तात्पर्य : जब किसी की सारी सम्पत्ति छिन जाती है, तो निश्चय ही, उसकी शारीरिक कान्ति घट जाती है। किन्तु बलि महाराज अपना सर्वस्व छिन जाने पर भी भगवान् वामनदेव को तुष्ट करने के अपने संकल्प पर अटल थे। *भगवद्गीता* में ऐसे व्यक्ति को *स्थितप्रज्ञ* कहा गया है। शुद्ध भक्त कभी भी भगवान् की सेवा से विचलित नहीं होता, चाहे माया द्वारा कितने ही कष्ट तथा व्यवधान क्यों न आयें। सामान्यतया जिनके पास सम्पत्ति तथा ऐश्वर्य होते हैं, वे विख्यात होते हैं, किन्तु बलि महाराज अपना सर्वस्व छिन जाने के कारण सदा-सदा के लिए विख्यात हो गये। यह भगवान् की अपने भक्तों पर विशेष कृपा है। भगवान् कहते हैं—*यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनै: ।* जब भगवान् अपने भक्त पर प्रथम विशेष कृपा के रूप में सर्वप्रथम उसका सारा धन हर लेते हैं। किन्तु भक्त कभी ऐसी क्षति से

विचलित नहीं होता। वह सेवा में डटा रहता है और भगवान् उसे एक सामान्य पुरुष की आशाओं से कहीं बढ़कर पुरस्कार प्रदान करते हैं।

पदानि त्रीणि दत्तानि भूमेर्मह्यं त्वयासुर ।
द्वाभ्यां क्रान्ता मही सर्वा तृतीयमुपकल्पय ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

पदानि—पग; त्रीणि—तीन; दत्तानि—दिये गये; भूमेः—भूमि के; मह्यम्—मुझको; त्वया—तुम्हारे द्वारा; असुर—हे असुरराज; द्वाभ्याम्—दो पगों द्वारा; क्रान्ता—घेरी हुई; मही—सारी भूमि; सर्वा—पूर्णतया; तृतीयम्—तीसरे पग के लिए; उपकल्पय—साधन ढूँढो।

हे असुरराज! तुमने मुझे तीन पग भूमि देने का वचन दिया है, किन्तु मैंने तो दो ही पग में सारा ब्रह्माण्ड घेर लिया है। अब बताओ कि मैं अपना तीसरा पग कहाँ रखूँ?

यावत्तपत्यसौ गोभिर्यावदिन्दुः सहोडुभिः ।
यावद्वर्षति पर्जन्यस्तावती भूरियं तव ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

यावत्—जब तक; तपति—चमक रहा है; असौ—सूर्य; गोभिः—प्रकाश द्वारा; यावत्—जब तक या जहाँ तक; इन्दुः—चन्द्रमा; सह-उडुभिः—अन्य तारों के साथ; यावत्—जहाँ तक; वर्षति—वर्षा करते हैं; पर्जन्यः—बादल; तावती—उतनी दूरी तक; भूः—पृथ्वी; इयम्—यह; तव—तुम्हारे अधिकार में।

जहाँ तक सूर्य तथा तारों सहित चन्द्रमा चमक रहे हैं और जहाँ तक बादल वर्षा करते हैं, वहाँ तक ब्रह्माण्ड की सारी भूमि आपके अधिकार में है।

पदैकेन मयाक्रान्तो भूर्लोकः खं दिशस्तनोः ।
स्वर्लोकस्ते द्वितीयेन पश्यतस्ते स्वमात्मना ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

पदा एकेन—एक पग से ही; मया—मेरे द्वारा; आक्रान्तः—आच्छादित; भूर्लोकः—समस्त भूर्लोक; खम्—आकाश; दिशः—तथा सारी दिशाएँ; तनोः—मेरे शरीर द्वारा; स्वर्लोकः—उच्च स्वर्गलोक; ते—तुम्हारे अधिकार में हैं, वे; द्वितीयेन—दूसरे पग में; पश्यतः ते—तुम्हारे देखते-देखते; स्वम्—तुम्हारा अपना; आत्मना—मेरे द्वारा।

इन में से मैंने एक पग से भूर्लोक को अपना बना लिया है और अपने शरीर से मैंने सारा आकाश तथा सारी दिशाएँ अपने अधिकार में कर ली हैं। तुम्हारी उपस्थिति में ही मैंने अपने दूसरे पग से उच्च स्वर्गलोक को अपना लिया है।

तात्पर्य : वेदों के अनुसार सभी ग्रह पूर्व से पश्चिम की ओर घूमते हैं। सूर्य, चन्द्र तथा अन्य पाँच ग्रह जैसे मंगल और बृहस्पति एक दूसरे के ऊपर चक्कर लगाते हैं। किन्तु वामनदेव ने अपने शरीर तथा

अपने पग का विस्तार करते हुए सारे ग्रह लोकों पर अधिकार कर लिया।

प्रतिश्रुतमदातुस्ते निरये वास इष्यते ।
विश त्वं निरयं तस्माद्गुरुणा चानुमोदितः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

प्रतिश्रुतम्—वचन दिया गया; अदातुः—न दे सका; ते—तुम्हारा; निरये—नरक में; वासः—वासस्थान; इष्यते—संस्तुत; विश—अब प्रवेश करो; त्वम्—तुम; निरयम्—नरकलोक में; तस्मात्—इसलिए; गुरुणा—अपने गुरु द्वारा; च—भी; अनुमोदितः—अनुमोदन किया हुआ।

चूँकि तुम अपने वचन के अनुसार दान देने में असमर्थ रहे हो अतएव नियम कहता है कि तुम नरकलोक में रहने के लिए चले जाओ। इसलिए अपने गुरु शुक्राचार्य के आदेश से अब तुम नीचे जाओ और वहाँ रहो।

तात्पर्य : कहा गया है—

नारायणपराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति।

स्वर्गापवर्ग नरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिनः ॥

"जो भक्त एकमात्र भगवान् नारायण की भक्ति में लगे रहते हैं, वे जीवन की किसी भी परिस्थिति से डरते नहीं। उनके लिए स्वर्ग, मुक्ति तथा नरकलोक एकसमान हैं क्योंकि ऐसे भक्त मात्र भगवद्भक्ति में रुचि रखते हैं।" (*भागवत* ६.१७.२)। नारायण की सेवा में लग ा हुआ भक्त सदैव सन्तुलित रहता है। वह वस्तुतः दिव्य जीवन बिताता है। भले ही ऐसा लगे कि वह स्वर्ग या नरक गया है, किन्तु वह इनमें से कहीं नहीं रहता प्रत्युत वह सदा वैकुण्ठ में रहता है (*स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते*)। वामनदेव ने सारे विश्व को मात्र यह दिखलाने के लिए कि बलि महाराज कितने सहिष्णु हैं उन्हें नरकलोक में जाने को कहा, किन्तु बलि महाराज ने आज्ञापालन में तनिक भी आनाकानी नहीं की। भक्त कभी अकेले नहीं रहता। निस्सन्देह, हर व्यक्ति भगवान् के साथ रहता है लेकिन भक्त भगवान् की सेवा में लगे रहने के कारण, किसी भौतिक अवस्था में नहीं रहता। भक्तिविनोद ठाकुर का गीत है—*कीटजन्म हओ यथा तुया दास।* वे भक्तों की संगति में एक तुच्छ कीट के रूप में जन्म लेने के लिए प्रार्थना करते हैं। चूँकि भक्त भगवान् की सेवा में लगे रहते हैं अतएव जो कोई उनकी संगति में रहता है, वह भी वैकुण्ठ में निवास करता है।

वृथा मनोरथस्तस्य दूरः स्वर्गः पतत्यधः ।
प्रतिश्रुतस्यादानेन योऽर्थिनं विप्रलम्भते ॥ ३३॥

शब्दार्थ

वृथा—किसी अच्छे फल से रहित; मनोरथः—मन की इच्छाएँ; तस्य—उसकी; दूरः—दूर; स्वर्गः—स्वर्गलोक को जाना; पतति—गिरता है; अधः—जीवन की नारकीय अवस्था में; प्रतिश्रुतस्य—जिन वस्तुओं के लिए वचन दिया गया हो; अदानेन—न दे सकने के कारण; यः—जो कोई; अर्थिनम्—भिखारी को; विप्रलम्भते—ठगता है।

जो कोई भिखारी को वचन देकर ठीक से दान नहीं देता उसका स्वर्ग जाना या उसकी इच्छा पूरी होना तो दूर रहा वरन् वह नारकीय जीवन में जा गिरता है।

विप्रलब्धो ददामीति त्वयाहं चाढ्यमानिना ।
तद्व्यलीकफलं भुङ्क्ष्व निरयं कतिचित्समाः ॥ ३४॥

शब्दार्थ

विप्रलब्धः—मैं ठगा गया हूँ; ददामि—तुम्हें दूँगा ऐसा वचन देता हूँ; इति—इस प्रकार; त्वया—तुम्हारे द्वारा; अहम्—मैं; च—भी; आढ्य-मानिना—अपने ऐश्वर्य पर गर्वित होने के कारण; तत्—अतएव; व्यलीक-फलम्—ठगने का दुष्परिणाम; भुङ्क्ष्व—भोगो; निरयम्—नारकीय जीवन में; कतिचित्—थोड़े; समाः—वर्ष।

अपने वैभव पर वृथा गर्वित होकर तुमने मुझे भूमि देने का वचन दिया, किन्तु तुम अपना वचन पूरा नहीं कर पाये। अतएव अब तुम्हारे वचन (वादे) झूठे हो जाने के कारण तुम्हें कुछ वर्षों तक नारकीय जीवन बिताना होगा।

तात्पर्य : भौतिक जीवन का दूसरा पहलू यह सोचना है कि मैं धनी हूँ और मेरे पास प्रभूत सम्पत्ति है। यह मिथ्या प्रतिष्ठा है। हर वस्तु भगवान् की है, अन्य व्यक्ति के पास कुछ नहीं है। यह वास्तविक तथ्य है। *ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।* बलि महाराज असंदिग्ध रूप से महान् भक्त थे, किन्तु इसके पूर्व वे मिथ्या प्रतिष्ठा पाले हुए थे। अब ईश्वर की परमेच्छा से उन्हें नरकलोक जाना पड़ा, किन्तु वे वहाँ भगवान् के आदेश से गये थे अत: वे वहाँ स्वर्गलोक की अपेक्षा अधिक ठाट से रहे। भक्त सदैव भगवान् की संगति में रहकर उनकी सेवा में व्यस्त रहता है; अतएव उसे नरक या स्वर्ग वास की कोई परवाह नहीं रहती।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कन्ध के अन्तर्गत "भगवान् द्वारा बलि महाराज को बन्दी बनाया जाना" नामक इक्कीसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter बाईस

बलि महाराज द्वारा आत्मसमर्पण

इस अध्याय का सारांश इस प्रकार है—बलि महाराज के आचरण से भगवान् प्रसन्न हुए। अतएव उन्होंने उन्हें सुतललोक में भेज दिया और वहाँ उन्हें वर देकर स्वयं उनका द्वारपाल बनना स्वीकार कर लिया।

बलि महाराज अत्यन्त सत्यवादी थे। अपना वचन पूरा न कर सकने के कारण वे अत्यन्त भयभीत थे क्योंकि वे जानते थे कि जो अपने सत्य से डिग जाता है, वह समाज की आँखों से गिर जाता है। एक सम्मानित व्यक्ति नारकीय जीवन का कष्ट भोग सकता है लेकिन वह सत्य के मार्ग से विपथ होकर बदनाम होने से अत्यन्त भयभीत रहता है। बलि महाराज ने भगवान् द्वारा दिये गये दण्ड को सहर्ष स्वीकार कर लिया। बलि महाराज के वंश में ऐसे अनेक *असुर* हो चुके थे जिन्होंने विष्णु से शत्रुता रखने के कारण अनेक योगियों से भी उच्च स्थान प्राप्त किया था। बलि महाराज को विशेष रूप से प्रह्लाद महाराज की भक्ति-निष्ठा का स्मरण था। इन सब बातों पर विचार करते हुए उन्होंने विष्णु के तीसरे पग के लिए अपना सिर दान में देने का निर्णय लिया। उन्होंने इस पर भी विचार किया कि भगवान् को प्रसन्न करने के लिए किस प्रकार महापुरुष अपने पारिवारिक सम्बन्ध तथा भौतिक सम्पत्ति को छोड़ देते हैं। निस्सन्देह, वे कभी-कभी भगवान् को तुष्ट करने तथा मात्र उनके निजी सेवक बनने के लिए अपने प्राणों तक का उत्सर्ग कर देते हैं। इस तरह पूर्ववर्ती आचार्यों एवं भक्तों का अनुसरण करते हुए बलि महाराज ने अपने आपको कृतकृत्य अनुभव किया।

जब वरुणपाश द्वारा बन्दी बनाये गये बलि महाराज भगवान् की स्तुति कर रहे थे तो उनके पितामह प्रह्लाद महाराज वहाँ प्रकट हुए और उन्होंने बतलाया कि किस तरह भगवान् ने छल से बलि महाराज की सारी सम्पत्ति लेकर उनका उद्धार किया है। उनकी उपस्थिति में ही ब्रह्माजी तथा बलि की पत्नी विन्ध्यावलि ने भगवान् की श्रेष्ठता का वर्णन किया। चूँकि बलि महाराज ने भगवान् को दान में सर्वस्व दे दिया था अतएव उन सबने उनके छोड़े जाने के लिए विनती की। तब भगवान् ने बताया कि अभक्त के पास सम्पत्ति का होना कितना घातक है जब कि भक्त का ऐश्वर्य भगवान् का वरदान होता है। तत्पश्चात् बलि महाराज से प्रसन्न होकर भगवान् ने उन्हें रक्षा के लिए अपना चक्र दिया और उनके साथ रहने का वचन दे दिया।

श्रीशुक उवाच

एवं विप्रकृतो राजन्बलिर्भगवतासुरः ।
भिद्यमानोऽप्यभिन्नात्मा प्रत्याहाविक्लवं वचः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार, जैसाकि पहले कहा जा चुका है; विप्रकृतः—संकट में पड़कर; राजन्—हे राजा; बलिः—बलि महाराज ने; भगवता—भगवान् वामनदेव द्वारा; असुरः—असुरराज; भिद्यमानः अपि—इस कष्टदायक स्थिति में रहकर भी; अभिन्न-आत्मा—शरीर या मन से विचलित हुए बिना; प्रत्याह—उत्तर दिया; अविक्लवम्—अविचल भाव से; वचः—निम्नलिखित शब्द।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा! यद्यपि ऊपर से ऐसा लग रहा था कि भगवान् ने बलि महाराज के साथ दुर्व्यवहार किया है, किन्तु बलि महाराज अपने संकल्प पर अडिग थे। यह सोचते हुए कि मैंने अपना वचन पूरा नहीं किया है, वे इस प्रकार बोले।

श्रीबलिरुवाच

यद्युत्तमश्लोक भवान्ममेरितं
वचो व्यलीकं सुरवर्य मन्यते ।
करोम्यृतं तन्न भवेत्प्रलम्भनं
पदं तृतीयं कुरु शीर्ष्णि मे निजम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-बलिः उवाच—बलि महाराज ने कहा; यदि—यदि; उत्तमश्लोक—हे परमेश्वर; भवान्—आप; मम—मेरा; ईरितम्—वादा किया गया; वचः—वचन, शब्द; व्यलीकम्—झूठे; सुर-वर्य—हे सुरों (देवताओं) में महानतम; मन्यते—ऐसा सोचते हों; करोमि—करूँगा; ऋतम्—सत्य; तत्—वह (वादा); न—नहीं; भवेत्—होगा; प्रलम्भनम्—धोखा; पदम्—पग; तृतीयम्—तीसरा; कुरु—करें; शीर्ष्णि—सिर पर; मे—मेरे; निजम्—अपने चरणकमलों को।

बलि महराज ने कहा : हे परमेश्वर, हे सभी देवताओं के परम पूज्य! यदि आप सोचते हैं कि मेरा वचन झूठा हो गया है, तो मैं उसे सत्य बनाने के लिए अवश्य ही भूल सुधार दूँगा। मैं अपने वचन को झूठा नहीं होने दे सकता। अतएव आप कृपा करके अपना तीसरा कमलरूपी पग मेरे सिर पर रखें।

तात्पर्य : बलि महाराज भगवान् वामनदेव की चाल समझ गये थे कि वे देवताओं के पक्षधर भिक्षुक बनकर उनके समक्ष आये थे। यद्यपि भगवान् का उद्देश्य बलि को ठगना था, किन्तु बलि को आनन्द आ रहा था कि भगवान् किस प्रकार अपने भक्त को ठगकर उसको महिमा प्रदान कर रहे हैं। कहा जाता है कि भगवान् बड़े अच्छे हैं और यह सच है। वे चाहे ठगें या पुरस्कृत करें, वे सदैव अच्छे हैं। इसीलिए बलि महाराज ने उन्हें उत्तमश्लोक कहकर सम्बोधित किया। उन्होंने कहा "आपकी प्रशंसा सदा उत्तम श्लोकों से की जाती है। आपने देवताओं की ओर से अपना यह कहकर मुझे ठगने

के लिए वेश बदला कि आपको केवल तीन पग भूमि चाहिए, किन्तु बाद में आपने अपना शरीर इस हद तक विस्तारित कर लिया कि आपने अपने दो ही पगों में सारा ब्रह्माण्ड घेर लिया। चूँकि आप अपने भक्तों की ओर से काम कर रहे थे अतएव आप इसे ठगी नहीं मानते है। कोई बात नहीं। मैं भक्त नहीं माना जा सकता। फिर भी चूँकि आप लक्ष्मीपति होकर भी मेरे पास दान माँगने आये हैं अतएव मुझे यथाशक्ति आपको सन्तुष्ट करना चाहिए। अतएव आप यह न सोचें कि मैं आपको ठगना चाहता था; मुझे तो अपना वचन पूरा करना ही होगा। अब भी मेरे पास एक सम्पत्ति बची है—वह है मेरा शरीर। आपने मेरी सम्पत्ति तो ले ली, किन्तु मेरे पास अपना शरीर अब भी बचा है। अब आपकी तुष्टि के लिए मैं अपना शरीर दे रहा हूँ तो आप अपना तीसरा पग मेरे सिर पर रख लें?'' कोई यह पूछ सकता है कि जब भगवान् ने दो ही पगों में पूरा ब्रह्माण्ड घेर लिया तो भला उनके तीसरे पग के लिए बलि महाराज का सिर कैसे पर्याप्त हो सकता था? किन्तु बलि महाराज ने सोचा कि सम्पत्ति की अपेक्षा सम्पत्ति के अधिकारी को बड़ा होना चाहिए। इसलिए यद्यपि भगवान् ने उनकी सारी सम्पत्ति ले ली थी तो भी सम्पत्ति के अधिकारी बलि महाराज का सिर भगवान् के तीसरे पग के लिए पर्याप्त स्थान प्रदान कर सकेगा।

बिभेमि नाहं निरयात्पदच्युतो
न पाशबन्धाद्व्यसनाद्दुरत्ययात् ।
नैवार्थकृच्छ्राद्भवतो विनिग्रहा-
दसाधुवादाद्भृशमुद्विजे यथा ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

बिभेमि—डरता हूँ; न—नहीं; अहम्—मैं; निरयात्—नरक जाने से; पद-च्युतः—न ही अपने स्थान से नीचे गिरने से डरता हूँ; न—न तो; पाश-बन्धात्—वरुण के पाश द्वारा बाँधे जाने से; व्यसनात्—कष्ट से; दुरत्ययात्—असह्य; न—न तो; एव—निश्चय ही; अर्थ-कृच्छ्रात्—गरीबी से, धनाभाव से; भवतः—आप; विनिग्रहात्—उस दंड से जिसे अब मैं भोग रहा हूँ; असाधु-वादात्—अपयश से; भृशम्—अत्यधिक; उद्विजे—चिन्तित हूँ; यथा—जिस तरह।

मैं अपनी सारी सम्पत्ति से वंचित होने, नारकीय जीवन बिताने, गरीबी के लिए वरुणपाश द्वारा बाँधे जाने या आपके द्वारा दण्डित होने से उतना भयभीत नहीं होता हूँ जितना कि मैं अपनी अपकीर्ति से डरता हूँ।

तात्पर्य : यद्यपि बलि महाराज ने भगवान् को पूर्ण आत्म-समर्पण कर दिया था, किन्तु वे ब्राह्मण-ब्रह्मचारी को ठगने के लिए बदनाम होना नहीं सह सकते थे। अपने यश के विषय में पूरी तरह सतर्क

रहने के कारण उन्होंने गम्भीरतापूर्वक सोचा कि बदनामी से कैसे बचा जाये। अतएव भगवान् ने उन्हें अपनी बदनामी को रोकने के लिए अच्छी सलाह दी कि वे अपना सिर अर्पित कर दें। वैष्णव कभी किसी दण्ड से डरता नहीं। *नारायणपराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति* (*भागवत* ६.१७.२)।

पुंसां श्लाघ्यतमं मन्ये दण्डमर्हत्तमार्पितम् ।
यं न माता पिता भ्राता सुहृदश्चादिशन्ति हि ॥ ४॥

शब्दार्थ

पुंसाम्—मनुष्यों का; श्लाघ्य-तमम्—अत्यन्त प्रशंसनीय; मन्ये—मानता हूँ; दण्डम्—दण्ड को; अर्हत्तम-अर्पितम्—परम आराध्य आपके द्वारा दिये गये; यम्—जो; न—न तो; माता—माता; पिता—पिता; भ्राता—भाई; सुहृदः—मित्रगण; च—भी; आदिशन्ति—अर्पित करते हैं; हि—निस्सन्देह।

यद्यपि कभी-कभी किसी व्यक्ति के पिता, माता, भाई या मित्र उसके हितैषी होने के कारण उसे दण्डित कर सकते हैं, किन्तु वे कभी भी अपने आश्रित को इस प्रकार दण्डित नहीं करते। किन्तु आप परम पूज्य भगवान् हैं अतएव आपने मुझे जो दण्ड दिया है उसे मैं अत्यन्त प्रशंसनीय समझता हूँ।

तात्पर्य : भगवान् द्वारा दिया गया दण्ड भक्त के द्वारा परम कृपा के रूप में स्वीकार किया जाता है—

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो
भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन् नमस्ते जीवेत
यो मुक्तिपदे स दायभाक्॥

''जो आपकी कृपा चाहता है और फलस्वरूप अपने विगत कर्मों के कारण सभी प्रकार की विषम परिस्थितियों को सहता है, जो तन, मन तथा वाणी से सदैव आपकी भक्ति में लगा रहता है और आपको सदैव नमस्कार करता है, वह निश्चित रूप से मुक्ति का योग्य पात्र है।'' (*भागवत* १०.१४.)। भक्त जानता है कि भगवान् द्वारा दिया गया तथाकथित दण्ड अपने भक्त को सुधारने तथा सन्मार्ग पर लाने का उनका एकमात्र अनुग्रह है। अतएव भगवान् द्वारा दिये गये दण्ड की तुलना अपने पिता, माता, भाई या मित्र द्वारा दिये गये बड़े से बड़े लाभ से भी नहीं की जा सकती।

त्वं नूनमसुराणां नः परोक्षः परमो गुरुः ।
यो नोऽनेकमदान्धानां विभ्रंशं चक्षुरादिशत् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; नूनम्—निस्सन्देह; असुराणाम्—असुरों का; नः—हम जिस तरह हैं; परोक्षः—अप्रत्यक्ष; परमः—परम; गुरुः—गुरु; यः—जो (आप); नः—हमारा; अनेक—कई; मद-अन्धानाम्—भौतिक ऐश्वर्य से अन्धा बना; विभ्रंशम्—हमारी मिथ्या प्रतिष्ठा को विनष्ट करके; चक्षुः—ज्ञान का नेत्र; आदिशत्—दिया ।

चूँकि आप हम असुरों के अप्रत्यक्ष रूप से महानतम शुभचिन्तक हैं, आप हमारे शत्रु का वेश धारण करके भी हमारे सर्वोच्च कल्याण के लिए कर्म करते हैं। चूँकि हम-जैसे असुर सदैव मिथ्या प्रतिष्ठा का पद पाने की महत्त्वाकांक्षा करते हैं, अतएव आप हमें दण्डित करके हमारे ज्ञान-नेत्र खोलते हैं जिनसे हम सन्मार्ग देख सकें।

तात्पर्य : बलि महाराज ने भगवान् को देवताओं की अपेक्षा असुरों का मित्र अधिक समझा। इस भौतिक जगत में जिसे जितना ही अधिक धन मिलता है, वह उतना ही अधिक आध्यात्मिक जीवन के प्रति अन्धा बन जाता है। देवतागण भौतिक सम्पत्ति के लिए भगवान् के भक्त हैं किन्तु यद्यपि भगवान् प्रत्यक्ष रूप से असुरों के पक्ष में नहीं रहते फिर-भी वे उन्हें मिथ्या-प्रतिष्ठा के पदों से वंचित करके उनके शुभचिन्तक के रूप में कार्य करते हैं। चूँकि मिथ्या प्रतिष्ठा से लोग दिग्भ्रमित हो जाते हैं इसलिए भगवान् उन पर विशेष कृपा करके उनकी मिथ्या-प्रतिष्ठा को हर लेते हैं।

यस्मिन्वैरानुबन्धेन व्यूढेन विबुधेतराः ।
बहवो लेभिरे सिद्धिं यामु हैकान्तयोगिनः ॥ ६ ॥
तेनाहं निगृहीतोऽस्मि भवता भूरिकर्मणा ।
बद्धश्च वारुणैः पाशैर्नातिव्रीडे न च व्यथे ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

यस्मिन्—जिसको; वैर-अनुबन्धेन—लगातार शत्रु-जैसा व्यवहार करके; व्यूढेन—ऐसी बुद्धि द्वारा स्थिर; विबुध-इतराः—असुर (देवताओं से भिन्न); बहवः—उनमें से अनेक ने; लेभिरे—प्राप्त की; सिद्धिम्—सिद्धि; याम्—जिसको; उ ह—यह भलीभाँति ज्ञात है; एकान्त-योगिनः—अत्यन्त सफल योगियों की उपलब्धियों के तुल्य; तेन—अतएव; अहम्—मैं; निगृहीतः अस्मि—यद्यपि मैं दण्डित हो रहा हूँ; भवता—आपके द्वारा; भूरि-कर्मणा—अद्भुत कर्म करने वाला; बद्धः च—मैं बन्दी हूँ; वारुणैः पाशैः—वरुण के पाश द्वारा; न अति-व्रीडे—मैं इससे तनिक भी लज्जित नहीं हूँ; न च व्यथे—न ही मुझे अधिक कष्ट है ।

आपसे लगातार शत्रुता रखने वाले अनेक असुरों ने अन्ततः महान् योगियों की सिद्धि प्राप्त की। आप एक ही कार्य से अनेक उद्देश्यों की पूर्ति कर सकते हैं; फलस्वरूप यद्यपि आपने मुझे अनेक प्रकार से दण्डित किया है फिर भी मुझे वरुणपाश से बंदी बनाये जाने की न तो लज्जा है न ही मैं कोई कष्ट अनुभव कर रहा हूँ।

तात्पर्य : बलि महाराज ने न केवल अपने ऊपर भगवान् की कृपा की प्रशंसा की अपितु अनेक अन्य असुरों के प्रति की गई कृपा को भी सराहा। चूँकि यह कृपा उदारतापूर्वक वितरित की जाती है इसलिए परमेश्वर सर्वकृपालु कहलाते हैं। बलि महाराज तो निस्सन्देह, पूर्णतया शरणागत भक्त थे, किन्तु कुछ ऐसे असुरों ने जो रंचमात्र भी भक्त नहीं थे अपितु भगवान् के शत्रु मात्र थे वही उच्च स्थान प्राप्त किया जो अनेक योगियों ने प्राप्त किया था। इस तरह बलि महाराज की समझ में यह आया कि उन्हें दण्डित करने में भगवान् का कोई गुप्त मन्तव्य था। फलस्वरूप वे भगवान् द्वारा जिस विषम स्थिति में डाल दिये गये थे उससे वे न तो दुखी थे, न ही लज्जित।

पितामहो मे भवदीयसम्मतः
प्रह्लाद आविष्कृतसाधुवादः ।
भवद्विपक्षेण विचित्रवैशसं
सम्प्रापितस्त्वं परमः स्वपित्रा ॥ ॥

शब्दार्थ

पितामहः—बाबा; मे—मेरे; भवदीय-सम्मतः—आपके भक्तों द्वारा मान्य; प्रह्लादः—प्रह्लाद महाराज; आविष्कृत-साधु-वादः—सर्वत्र भक्त के रूप में प्रसिद्ध; भवत्-विपक्षेण—आपके विरुद्ध होने मात्र से ही; विचित्र-वैशसम्—विभिन्न प्रकार से उत्पीड़न करते हुए; सम्प्रापितः—कष्ट उठाया; त्वम्—तुमने; परमः—परम आश्रय; स्व-पित्रा—अपने ही पिता द्वारा।

मेरे बाबा प्रह्लाद महाराज आपके सारे भक्तों द्वारा मान्य होकर प्रसिद्ध हैं। यद्यपि उनके पिता हिरण्यकशिपु ने उन्हें अनेक प्रकार से कष्ट दिए थे, फिर भी वे आपके चरणकमलों का आश्रय लेकर आज्ञाकारी बने रहे।

तात्पर्य : प्रह्लाद महाराज जैसा शुद्ध भक्त परिस्थितिवश अनेक प्रकार की यातनाएँ दिये जाने पर भी कभी भी भगवान् की शरण छोड़कर अन्य किसी की शरण ग्रहण नहीं करता। शुद्ध भक्त कभी भी भगवान् की कृपा के विरुद्ध शिकायत नहीं करता। इसके ज्वलन्त उदाहरण प्रह्लाद महाराज हैं। यदि हम उनके जीवन का अवलोकन करें तो हम देख सकते हैं कि यद्यपि उनके अपने ही पिता हिरण्यकशिपु ने उन्हें बहुत कठोर कष्ट दिए थे तो भी वे भगवान् के ध्यान से तनिक भी विचलित नहीं हुए। बलि महाराज अपने पितामह प्रह्लाद महाराज के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए भगवान् द्वारा दण्ड दिए जाने के बावजूद भी भगवद्भक्ति में अचल रहे।

किमात्मनानेन जहाति योऽन्ततः
किं रिक्थहारैः स्वजनाख्यदस्युभिः ।
किं जायया संसृतिहेतुभूतया
मर्त्यस्य गेहैः किमिहायुषो व्ययः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

किम्—क्या लाभ; आत्मना अनेन—इस शरीर से; जहाति—त्याग देता है; यः—जो (शरीर); अन्ततः—जीवन के अन्त में; किम्—क्या लाभ; रिक्थ-हारैः—धन के लुटेरों से; स्वजन-आख्य-दस्युभिः—जो स्वजनों के नाम से वास्तव में लुटेरे हैं; किम्—क्या लाभ; जायया—पत्नी से; संसृति-हेतु-भूतया—जो भौतिक दशाओं की वृद्धि की स्रोत है; मर्त्यस्य—मरणशील व्यक्ति का; गेहैः—घर, परिवार तथा जाति से; किम्—क्या लाभ; इह—जिस घर में; आयुषः—जीवन का; व्ययः—मात्र विनाश।

उस भौतिक शरीर से क्या लाभ जो जीवन के अन्त में अपने स्वामी को स्वतः छोड़ देता है? और परिवार के उन सभी सदस्यों से क्या लाभ जो वास्तव में उस धन का अपहरण कर लेते हैं, जो दिव्य ऐश्वर्य के लिए भगवान् की सेवा में उपयोगी हो सकता है? उस पत्नी से भी क्या लाभ जो भौतिक दशाओं को बढ़ाने की स्रोत मात्र है। उस परिवार, घर, देश तथा जाति से भी क्या लाभ जिसमें आसक्त होने से सारे जीवन की मूल्यवान शक्ति का मात्र अपव्यय होता है।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण उपदेश देते हैं—*सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज*—सारे धर्मों को छोड़कर केवल मेरी शरण में आओ। सामान्य व्यक्ति भगवान् के ऐसे कथन को महत्त्व नहीं देता क्योंकि वह सोचता है कि उसके जीवन काल में उसका परिवार, समाज, देश, शरीर तथा कुटुम्बी ही सब कुछ हैं। भला इन्हें छोड़कर कोई भगवान् की शरण क्यों ले? किन्तु प्रह्लाद महाराज तथा बलि महाराज जैसे महापुरुषों के आचरण से हम यह समझते हैं कि एक बुद्धिमान् व्यक्ति के लिए भगवान् की शरण में जाना सही कर्म है। प्रह्लाद महाराज ने अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध विष्णु की शरण ली। इसी प्रकार बलि महाराज ने अपने गुरु शुक्राचार्य तथा अन्य सभी प्रमुख असुरों की इच्छा के विरूद्ध वामनदेव की शरण ली। लोगों को आश्चर्य हो सकता है कि प्रह्लाद महाराज तथा बलि महाराज ने अपने परिवार, तथा घर-बार के सहज आकर्षण को त्यागकर अपने शत्रु के पक्ष की शरण ग्रहण क्यों की? इस प्रसंग में बलि महाराज बतलाते हैं कि यह शरीर भी जो कि समस्त भौतिक कार्यकलापों का केन्द्रबिन्दु है, एक बाह्य तत्त्व है। यद्यपि हम शरीर को स्वस्थ एवं अपने कार्यकलापों में सहायक बनाये रखना चाहते हैं, किन्तु शरीर सदा काम नहीं कर सकता। यद्यपि मैं आत्मा हूँ, जो कि नित्य है, किन्तु इस शरीर को कुछ काल तक उपयोग में लाने के बाद मुझे प्रकृति के नियमानुसार दूसरा शरीर ग्रहण

करना पड़ता है (*तथा देहान्तर-प्राप्तिः*) यदि मैं इस शरीर से भक्ति में उन्नति के लिए कुछ सेवाकार्य न करूं। मनुष्य को जानना चाहिए कि यदि वह शरीर का उपयोग किसी अन्य कार्य के लिए करता है, तो वह यह समय का अपव्यय करता है क्योंकि जब समय आ जायेगा तो आत्मा स्वयमेव शरीर को छोड़ देगा।

हम समाज, मित्रता तथा प्रेम में अत्यधिक रुचि दिखलाते हैं, किन्तु ये हैं क्या? मित्र तथा कुटुम्बियों के वेश में वे लोग मोहग्रस्त जीव के परिश्रमपूर्वक अर्जित धन को मात्र लूटते रहते हैं। हर व्यक्ति अपनी पत्नी के प्रति आसक्त रहता है और वह उसे प्रिय होती है लेकिन यह पत्नी है क्या? पत्नी स्त्री कहलाती है, जिसका अर्थ है ''भौतिकता का विस्तार करने वाली।'' जो व्यक्ति पत्नी के बिना जीवन बिताता है उसकी भौतिक अवस्थाएँ कम विस्तृत होती हैं। ज्योंही मनुष्य विवाह करके पत्नी से सम्बन्ध जोड़ता है, त्योंही उसकी भौतिक आवश्यकताऐ बढ़ जाती हैं।

पुंसः स्त्रिया मिथुनीभावमेतं

तयोर्मिथो हृदयग्रंथिमाहुः।

अतो गृहक्षेत्रसुताप्तवित्तै

र्जनस्य मोहोऽयमहं ममेति॥

''इस भौतिक संसार का मूल सिद्धान्त नर तथा नारी के मध्य आर्कषण है। इस भ्रान्त धारणा से जिससे नर तथा नारी के हृदय बँधते हैं मनुष्य अपने शरीर, घर, सम्पत्ति, सन्तान, कुटुम्बी तथा धन के प्रति आकृष्ट हो जाता है। इस प्रकार जीवन का मोह बढ़ता जाता है और जीव ''मैं तथा मेरे'' के रूप में सोचने लगता है। (*भागवत* ५.५.)। मनुष्य जीवन तो आत्म-स ाक्षात्कार के लिए है—अवांछित वस्तुओं की वृद्धि के लिए नहीं। वस्तुतः पत्नी अवांछित वस्तुओं को बढ़ाती है। मनुष्य का जीवनकाल, उसका घर, उसके पास की प्रत्येक वस्तु, यदि वे भगवान् की सेवा में उचित ढंग से नहीं लगाई जातीं तो वे तीन प्रकार के कष्टों (आध्यात्मिक, अधिभौतिक तथा अधिदैविक) के लिए स्थायी दुखदायक भौतिक अवस्थाएँ उत्पन्न करने वाली बनती हैं। दुर्भाग्यवश समाज में इस विषय पर शिक्षा देने वाली कोई संस्था नहीं है। लोगों को जीवन उद्देश्य के विषय में अंधकार में रखा जाता है, जिससे निरन्तर जीवन-संघर्ष चलता रहता है। हम ''योग्यतम की उत्तरजीविता'' की बात करते हैं किन्तु इससे कोई

बचता नहीं क्योंकि इस भौतिक अवस्थाओं से कोई भी स्वतंत्र नहीं है।

इत्थं स निश्चित्य पितामहो महा-
नगाधबोधो भवतः पादपद्मम् ।
ध्रुवं प्रपेदे ह्यकुतोभयं जनाद्
भीतः स्वपक्षक्षपणस्य सत्तम ॥ १० ॥

शब्दार्थ

इत्थम्—इसके कारण; सः—वे प्रह्लाद महाराज; निश्चित्य—इस बात को निश्चित करके; पितामहः—मेरे बाबा; महान्—महान् भक्त; अगाध-बोधः—मेरे पितामह जिन्होंने अपनी भक्ति के द्वारा असीम ज्ञान प्राप्त किया; भवतः—आपके; पाद-पद्मम्—चरणकमल की; ध्रुवम्—अच्युत नित्य आश्रय; प्रपेदे—शरण ग्रहण की; हि—निस्सन्देह; अकुतः-भयम्—पूर्णतया निर्भय; जनात्—सामान्यजनों से; भीतः—डरकर; स्वपक्ष-क्षपणस्य—आपका, जो हमारे पक्ष के असुरों का वध करते हैं; सत्-तम—हे श्रेष्ठों में श्रेष्ठ।

मेरे पितामह जो सभी मनुष्यों में श्रेष्ठ थे और जिन्होंने असीम ज्ञान प्राप्त किया था और जो हर एक द्वारा पूज्य थे, इस जगत के सामान्य लोगों से भयभीत रहते थे। आपके चरणकमलों में प्राप्त होने वाले आश्रय को पूर्णतया समझकर ही उन्होंने आपके द्वारा मारे गये अपने पिता तथा अपने असुर मित्रों की इच्छा के विरुद्ध आपके चरणकमलों की शरण ग्रहण की थी।

अथाहमप्यात्मरिपोस्तवान्तिकं
दैवेन नीतः प्रसभं त्याजितश्रीः ।
इदं कृतान्तान्तिकवर्ति जीवितं
ययाध्रुवं स्तब्धमतिर्न बुध्यते ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

अथ—इसलिए; अहम्—मैं; अपि—भी; आत्म-रिपोः—परिवार के परम्परागत शत्रु का; तव—तुम्हारे; अन्तिकम्—आश्रय; दैवेन—विधिवश; नीतः—लाया गया; प्रसभम्—बलपूर्वक; त्याजित—विहीन; श्रीः—सारे ऐश्वर्य से; इदम्—जीवन का यह दर्शन; कृत-अन्त-अन्तिक-वर्ति—मृत्यु की सुविधा प्राप्त; जीवितम्—आयु; यया—ऐसे ऐश्वर्य से; अध्रुवम्—क्षणिक; स्तब्ध-मतिः—ऐसा मूर्ख व्यक्ति; न बुध्यते—समझ नहीं सकता।

मैं तो दैववश ही मजबूर होकर आपके चरणों में लाया गया हूँ और अपने समस्त ऐश्वर्य से विहीन हो गया हूँ। सामान्य संसारी लोग भौतिक स्थितियों में रहते हुए नश्वर ऐश्वर्य द्वारा उत्पन्न मोह के कारण पग पग पर आकस्मिक मृत्यु का सामना करते हुए भी नहीं समझ पाते कि यह जीवन नश्वर है। मैं तो दैववश ही उस स्थिति से बच गया हूँ।

तात्पर्य : बलि महाराज ने भगवान् के कामों की सराहना की यद्यपि प्रह्लाद महाराज तथा बलि महाराज के अतिरिक्त, असुर परिवारों के सारे सदस्य विष्णु को अपना नित्य पारम्परिक शत्रु मानते थे।

जैसाकि बलि महाराज ने वर्णन किया है, वास्तव में भगवान् विष्णु उनके परिवार के शत्रु नहीं अपितु सर्वोत्तम मित्र थे। इस मैत्री का सिद्धान्त पहले ही बतलाया जा चुका है। *यस्याहम् अनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनै*—भगवान् अपने भक्त का सारा भौतिक ऐश्वर्य छीनकर उस पर विशेष कृपा करते हैं। बलि महाराज ने भगवान् के इस व्यवहार की सराहना की। इसीलिए उन्होंने कहा—*दैवेन नीतः प्रसभं त्याजितश्रीः*—आपने शाश्वत जीवन के सही पद पर लाने के उद्देश्य से ही मुझे इस परिस्थिति में डाल दिया है।

वस्तुतः हर एक मनुष्य को चाहिए कि वह तथाकथित समाज, मैत्री तथा प्रेम से डरे जिनके लिए वह अहर्निश श्रम करता रहता है। जैसाकि बलि महाराज है *जनाद् भीतः*, शब्दों के द्वारा संकेत किया है, प्रत्येक कृष्णभावनाभावित भक्त को सामान्य मनुष्य से भयभीत रहना चाहिए जो भौतिक सम्पत्ति के पीछे भागता रहता है। ऐसा व्यक्ति *प्रमत्त* या पागल कहलाता है, जो मायाजाल का पीछा करता रहता है। ऐसे व्यक्ति यह नहीं जानते कि कठिन जीवन-संघर्ष के बाद मनुष्य को शरीर बदलना पड़ता है और इसकी कोई गारंटी नहीं है कि अगला शरीर किस तरह का होगा। जो पूर्णरूपेण कृष्णभावनाभावित हैं और जीवन के लक्ष्य को समझते हैं, वे कभी भी भौतिक कार्यकलापों की घुड़दौ में नहीं पड़ते। किन्तु यदि कोई निष्ठावान् भक्त किसी तरह च्युत हो ही जाता है, तो भगवान् उसे सुधार लेते हैं और नारकीय जीवन के घोरतम अंधकार में गिरने से बचा लेते हैं।

अदान्तगोभिर्विशतां तमिस्रं

पुनः पुनश्चर्वितचर्वणानाम्

(*भागवत* ७.५.३०)

भौतिक जीवनशैली आखिर है क्या मात्र चबाये हुए को बारम्बार चबाना। यद्यपि ऐसे जीवन से कोई लाभ नहीं मिलता, किन्तु लोग असंयमित इन्द्रियों के कारण उसकी ओर आकृष्ट होते हैं। *नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म।* असंयमित इन्द्रियों के कारण लोग पापकर्मों में पूरी तरह लग जाते हैं जिनसे कष्टदायक शरीर प्राप्त होता है। बलि महाराज सराह रहे थे कि भगवान् ने किस तरह उन्हें ऐसे अज्ञान के मोहग्रस्त जीवन से बचा लिया है। इसलिए उन्होंने कहा कि उनकी बुद्धि चकरा गई थी। *स्तब्धमतिर्न बुध्यते।* वे समझ ही नहीं सके कि भगवान् किस प्रकार भक्तों के भौतिकतावादी कार्यकलापों को

जबरन रोककर उन पर कृपा करते हैं।

श्रीशुक उवाच
तस्येत्थं भाषमाणस्य प्रह्लादो भगवत्प्रियः ।
आजगाम कुरुश्रेष्ठ राकापतिरिवोत्थितः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; तस्य—बलि महाराज का; इत्थम्—इस प्रकार; भाषमाणस्य—अपनी भाग्यशाली स्थिति का वर्णन करते हुए; प्रह्लादः—महाराज प्रह्लाद; भगवत्-प्रियः—भगवान् के सर्वाधिक प्रिय भक्त; आजगाम—वहाँ प्रकट हुए; कुरु-श्रेष्ठ—हे कुरुओं में श्रेष्ठ महाराज परीक्षित; राका-पतिः—चन्द्रमा; इव—सदृश; उत्थितः—उदित हुए।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे कुरुश्रेष्ठ! जब बलि महाराज इस प्रकार अपने भाग्य की प्रशंसा कर रहे थे तो भगवान् के परम प्रिय भक्त प्रह्लाद महाराज वहाँ प्रकट हुए मानो रात्रि में चन्द्रमा उदय हो गया हो।

तमिन्द्रसेनः स्वपितामहं श्रिया
विराजमानं नलिनायतेक्षणम् ।
प्रांशुं पिशङ्गाम्बरमञ्जनत्विषं
प्रलम्बबाहुं शुभगर्षभमैक्षत ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

तम्—उन प्रह्लाद महाराज को; इन्द्र-सेनः—बलि महाराज जिनके पास इन्द्र की सारी सेना थी; स्व-पितामहम्—अपने पितामह को; श्रिया—सारे सुन्दर अंगों से युक्त उपस्थित; विराजमानम्—वहाँ पर खड़े; नलिन-आयत-ईक्षणम्—कमल की पंखड़ियों जितनी चौड़ी आँखों से; प्रांशुम्—अत्यन्त सुन्दर शरीर को; पिशङ्ग-अम्बरम्—पीत वस्त्र धारण किये; अञ्जन-त्विषम्—आँखों के अंजन सदृश शरीर से; प्रलम्ब-बाहुम्—अत्यन्त लम्बी भुजाएँ; शुभग-ऋषभम्—सर्वश्रेष्ठ शुभ पुरुष; ऐक्षत—देखा।

तब बलि महाराज ने परम भाग्यशाली व्यक्ति अपने पितामह प्रह्लाद महाराज को देखा जिनका श्यामल शरीर आँखों के अंजन जैसा लग रहा था। उनका लम्बा, भव्य शरीर पीताम्बर धारण किये था, उनकी भुजाएँ लम्बी थीं और उनकी सुन्दर आँखें कमल की पंखड़ियों के समान थीं। वे सबके अत्यन्त प्रिय तथा मोहक थे।

तस्मै बलिर्वारुणपाशयन्त्रितः
समर्हणं नोपजहार पूर्ववत् ।
ननाम मूर्ध्नाश्रुविलोललोचनः
सव्रीडनीचीनमुखो बभूव ह ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

तस्मै—प्रह्लाद महाराज को; बलिः—बलि महाराज ने; वारुण-पाश-यन्त्रितः—वरुणपाश द्वारा बाँधा गया; समर्हणम्—उपयुक्त सम्मान; न—नहीं; उपजहार—प्रदान किया; पूर्व-वत्—पहले की तरह; ननाम—प्रणाम किया; मूर्ध्ना—सिर के बल; अश्रु-विलोल-लोचनः—अश्रुपूरित नेत्र; स-व्रीड—लज्जा सहित; नीचीन—नीचा; मुखः—मुख; बभूव ह—हो गया।

वरुणपाश से बँधे होने के कारण बलि महाराज पहले की तरह प्रह्लाद महाराज को भलीभाँति सम्मान नहीं दे पाये। उन्होंने केवल सिर के द्वारा प्रणाम किया, उनके नेत्र अश्रुपूरित थे और लज्जा से उनका सिर नीचा था।

तात्पर्य : चूँकि बलि महाराज को भगवान् वामनदेव ने बन्दी बना लिया हुआ था अतएव वे निस्सन्देह, अपराधी माने जाने के योग्य थे और बलि महाराज गम्भीरतापूर्वक अनुभव भी कर रहे थे कि वे भगवान् के अपराधी हैं। प्रह्लाद महाराज को निश्चित रूप से यह अच्छा नहीं लगा होगा। इसीलिए बलि महाराज लज्जा से अपना सिर नीचा किये थे।

स तत्र हासीनमुदीक्ष्य सत्पतिं
हरिं सुनन्दाद्यनुगैरुपासितम् ।
उपेत्य भूमौ शिरसा महामना
ननाम मूर्ध्ना पुलकाश्रुविक्लवः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

सः—प्रह्लाद महाराज ने; तत्र—वहाँ; ह आसीनम्—बैठे हुए को; उदीक्ष्य—देखकर; सत्-पतिम्—मुक्तात्माओं के स्वामी भगवान्; हरिम्—हरि को; सुनन्द-आदि-अनुगैः—सुनन्द आदि अपने अनुयायियों द्वारा; उपासितम्—पूजित; उपेत्य—पास जाकर; भूमौ—भूमि पर; शिरसा—सिर के बल (झुककर); महा-मनाः—महान् भक्त; ननाम—प्रणाम किया; मूर्ध्ना—सिर के बल; पुलक-अश्रु-विक्लवः—हर्ष के आँसुओं से विचलित।

जब प्रह्लाद महाराज ने देखा कि वहाँ पर सुनन्द जैसे अपने घनिष्ठ संगियों से घिर कर एवं पूजित होकर भगवान् बैठे हैं, तो उनकी आँखें प्रेमाश्रुओं से छलछला उठीं। उनके पास जाकर और भूमि पर गिरकर उन्होंने सिर के बल भगवान् को प्रणाम किया।

श्रीप्रह्राद उवाच
त्वयैव दत्तं पदमैन्द्रमूर्जितं
हृतं तदेवाद्य तथैव शोभनम् ।
मन्ये महानस्य कृतो ह्यनुग्रहो
विभ्रंशितो यच्छ्रिय आत्ममोहनात् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

श्री-प्रह्रादः उवाच—प्रह्लाद महाराज ने कहा; त्वया—आपके द्वारा; एव—निस्सन्देह; दत्तम्—दिया गया; पदम्—यह स्थान; ऐन्द्रम्—इन्द्र का; ऊर्जितम्—अत्यन्त महान्; हृतम्—छीन लिया गया; तत्—वह; एव—निस्सन्देह; अद्य—आज; तथा—जिस प्रकार; एव—निस्सन्देह; शोभनम्—सुन्दर; मन्ये—मानता हूँ; महान्—महान्; अस्य—इसका (बलि महाराज का); कृतः—

आपके द्वारा की गई; हि—निस्सन्देह; अनुग्रहः—कृपा; विभ्रंशितः—से विहीन; यत्—क्योंकि; श्रियः—उस ऐश्वर्य से; आत्म-मोहनात्—जो आत्म-साक्षात्कार की प्रक्रिया को आच्छादित करने वाला था।

प्रह्लाद महाराज ने कहा : हे प्रभु! इस बलि को इन्द्र पद का महान् ऐश्वर्य आपकी ही देन है और अब उस को आपने ही छीन लिया है। मेरे विचार से आपका देना-लेना एक सा सुन्दर है। चूँकि स्वर्ग के राजा का उच्च पद उसे अज्ञान के अंधकार में डाले हुए था अतएव आपने उसका सारा ऐश्वर्य छीनकर उसके ऊपर महान् अनुग्रह किया है।

तात्पर्य : कहा गया है—*यस्याहम् अनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः* (*भागवत* १०..)। भगवान् की कृपा से ही मनुष्य को सारा भौतिक ऐश्वर्य प्राप्त होता है, किन्तु यदि इस ऐश्वर्य से मनुष्य गर्वित हो उठता है और आत्म-साक्षात्कार की विधि को भूल जाता है, तो भगवान् उस ऐश्वर्य को अवश्य छीन लेते हैं। भगवान् अपने भक्त को उसका वैधानिक पद ढूँढने में सहायक बनकर अनुग्रह करते हैं। इसके लिए भगवान् भक्त की हर सहायता करने के लिए सदैव तैयार रहते हैं। लेकिन कभी-कभी भौतिक ऐश्वर्य घातक हो जाता है क्योंकि इससे मनुष्य का ध्यान इस मिथ्या प्रतिष्ठा की ओर खिंच जाता है कि मैं ही हर वस्तु का स्वामी हूँ जबकि तथ्य इसके विपरीत रहता है। भक्त को इस भ्रम से बचाने के लिए भगवान् विशेष कृपा प्रदर्शित करके कभी कभी उसका सारा धन छीन लेते हैं। *यस्याह्म अनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः।*

यया हि विद्वानपि मुह्यते यत-
स्तत्को विचष्टे गतिमात्मनो यथा ।
तस्मै नमस्ते जगदीश्वराय वै
नारायणायाखिललोकसाक्षिणे ॥ १७॥

शब्दार्थ

यया—जिस ऐश्वर्य से; हि—निस्सन्देह; विद्वान् अपि—विद्वान भी; मुह्यते—मोहित हो जाता है; यतः—आत्म-नियंत्रित; तत्—वह; कः—कौन; विचष्टे—ढूँढ सकता है; गतिम्—उन्नति; आत्मनः—अपनी; यथा—भलीभाँति; तस्मै—उसको; नमः—सादर नमस्कार करता हूँ; ते—तुमको; जगत्-ईश्वराय—ब्रह्माण्ड के स्वामी को; वै—निस्सन्देह; नारायणाय—नारायण को; अखिल-लोक-साक्षिणे—समस्त सृष्टि के साक्षी।

भौतिक ऐश्वर्य इतना मोहक है कि विद्वान तथा आत्मसंयमी व्यक्ति भी आत्म-साक्षात्कार के लक्ष्य को खोजना भूल जाता है। लेकिन भगवान् नारायण, जो ब्रह्माण्ड के स्वामी हैं, अपनी इच्छानुसार प्रत्येक वस्तु को देख सकते हैं। अतएव मैं उन्हें सादर प्रणाम करता हूँ।

तात्पर्य : *को विचष्टे गतिम् आत्मनो यथा* शब्द सूचित करते हैं कि जब मनुष्य भौतिक ऐश्वर्य का

स्वामी होने की झूठी प्रतिष्ठा से फूल जाता है, तो वह आत्म-साक्षात्कार के लक्ष्य की निश्चित रूप से उपेक्षा करने लगता है। आधुनिक जगत की ऐसी ही स्थिति है। भौतिक ऐश्वर्य में तथाकथित वैज्ञानिक प्रगति के कारण लोगों ने आत्म-साक्षात्कार के मार्ग को पूरी तरह त्याग दिया है। व्यावहारिक दृष्टि से कोई भी व्यक्ति ईश्वर, ईश्वर के साथ अपने सम्बन्ध या वह किस तरह कर्म करे—इन सबके विषय में रुचि नहीं रखता। आधुनिक व्यक्तियों ने ऐसे प्रश्नों को सर्वथा भुला दिया है क्योंकि वे भौतिक सम्पत्ति के पीछे पागल हुए रहते हैं। यदि इस प्रकार की सभ्यता जारी रही तो वह समय शीघ्र ही आयेगा जब भगवान् सारा भौतिक ऐश्वर्य छीन लेंगे। तब लोगों की आँखें खुलेंगी।

श्रीशुक उवाच

तस्यानुशृण्वतो राजन्प्रह्लादस्य कृताञ्जलेः ।
हिरण्यगर्भो भगवानुवाच मधुसूदनम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; तस्य—उस; अनुशृण्वतः—जिससे वह सुन सके; राजन्—हे राजा परीक्षित; प्रह्लादस्य—प्रह्लाद महाराज का; कृत-अञ्जलेः—हाथ जोड़े खड़ा; हिरण्यगर्भः—ब्रह्माजी ने; भगवान्—सर्वशक्तिमान; उवाच—कहा; मधुसूदनम्—मधुसूदन भगवान् से।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : हे राजा परीक्षित! तब ब्रह्माजी अपने पास हाथ जोड़कर खड़े प्रह्लाद महाराज को सुनाकर भगवान् से कहने लगे।

बद्धं वीक्ष्य पतिं साध्वी तत्पत्नी भयविह्वला ।
प्राञ्जलिः प्रणतोपेन्द्रं बभाषेऽवाङ्मुखी नृप ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

बद्धम्—बन्दी किया गया; वीक्ष्य—देखकर; पतिम्—अपने पति को; साध्वी—सती स्त्री; तत्-पत्नी—बलि महाराज की पत्नी ने; भय-विह्वला—डर के मारे अत्यन्त उद्विग्न; प्राञ्जलिः—हाथ जोड़े; प्रणता—नमस्कार करके; उपेन्द्रम्—वामनदेव को; बभाषे—सम्बोधित किया; अवाक्-मुखी—सिर नीचा किये; नृप—हे महाराज परीक्षित।

लेकिन बलि महाराज की सती पत्नी अपने पति को बन्दी देखकर भयभीत तथा दुःखी थी। उसने तुरन्त भगवान् वामनदेव (उपेन्द्र) को नमस्कार किया और हाथ जोड़कर इस प्रकार बोली।

तात्पर्य : यद्यपि ब्रह्माजी बोल रहे थे, उन्हें थोड़ी देर तक रुकना पड़ा क्योंकि बलि महाराज की पत्नी विन्ध्यावलि, जो अत्यन्त क्षुब्ध एवं भयभीत थी, कुछ कहना चाह रही थी।

श्रीविन्ध्यावलिरुवाच

क्रीडार्थमात्मन इदं त्रिजगत्कृतं ते
स्वाम्यं तु तत्र कुधियोऽपर ईश कुर्युः ।
कर्तुः प्रभोस्तव किमस्यत आवहन्ति
त्यक्तह्रियस्त्वदवरोपितकर्तृवादाः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

श्री-विन्ध्यावलिः उवाच—बलि महाराज की पत्नी विन्ध्यावलि ने कहा; क्रीडा-अर्थम्—लीला के लिए; आत्मनः—अपनी; इदम्—यह; त्रि-जगत्—तीनों लोक (ब्रह्माण्ड); कृतम्—उत्पन्न किया गया; ते—आपके द्वारा; स्वाम्यम्—स्वामित्व; तु—लेकिन; तत्र—तत्पश्चात्; कुधियः—मूर्खजन; अपरे—अन्य; ईश—हे परम पालक, हे प्रभु; कुर्युः—स्थापित किया है; कर्तुः—परमस्त्रष्टा के लिए; प्रभोः—परम पालक के लिए; तव—तुम्हारे लिए; किम्—क्या; अस्यतः—परम संहारक को; आवहन्ति—अर्पित कर सकते हैं; त्यक्त-ह्रियः—निर्लज्ज, बुद्धिहीन; त्वत्—आपके द्वारा; अवरोपित—अल्पज्ञान के कारण आरोपित; कर्तृ-वादाः—ऐसे मूर्खों का स्वामित्व।

श्रीमती विन्ध्यावलि ने कहा : हे प्रभु! आपने निजी लीलाओं का आनन्द उठाने के लिए सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना की है, किन्तु मूर्ख तथा बुद्धिहीन व्यक्तियों ने भौतिक भोग के लिए उस पर अपना स्वामित्व जताया है। निस्सन्देह, वे निर्लज्ज संशयवादी हैं। वे झूठे ही स्वामित्व जताकर यह सोचते हैं कि वे उसको दान दे सकते हैं और भोग सकते हैं। ऐसी दशा में भला वे आपकी कौन सी भलाई कर सकते हैं, जो इस ब्रह्माण्ड के स्वतंत्र स्त्रष्टा, पालक तथा संहारक हैं?

तात्पर्य : बलि महाराज की पत्नी ने अत्यन्त बुद्धिमती होने के कारण अपने पति के बन्दी बनाये जाने का अनुमोदन किया और उन पर बुद्धिहीन होने का आरोप लगाया क्योंकि उन्होंने भगवान् की सम्पत्ति पर अपना स्वामित्व जताया था। ऐसा दावा आसुरी जीवन का लक्षण है। यद्यपि देवतागण, जिन्हें भगवान् ने व्यवस्था चलाने के लिए कर्मचारी नियुक्त किया है, भौतिक भोगों के प्रति आसक्त रहते हैं, किन्तु वे कभी भी ब्रह्माण्ड पर अपना स्वामित्व नहीं जताते क्योंकि उन्हें ज्ञात है कि हर वस्तु का वास्तविक स्वामी भगवान् है। देवताओं की यह योग्यता है। किन्तु असुरगण भगवान् के एकाधिकार को स्वीकार न करने के बजाये राष्ट्रीयता की हद-बन्दी के माध्यम से ब्रह्माण्ड की सम्पत्ति का दावा करते हैं। वे कहते हैं, ''यह अंश मेरा है, यह अंश तुम्हारा है। मैं इस भाग को दान में दे सकता हूँ और इस भाग को निजी भोग के लिए रख सकता हूँ।'' ये सब आसुरी धारणाएँ हैं। इसका वर्णन *भगवद्गीता* (१६.१३) में हुआ है—*इदम् अद्य मया लब्धम् इमं प्राप्स्ये मनोरथम्*—अभी तक मैंने इतना धन तथा इतनी भूमि प्राप्त की है। अब मुझे इसमें और भी वृद्धि करनी है। इस प्रकार मैं सबसे बड़ा स्वामी बन जाऊँगा। भला मेरी बराबरी कौन कर सकता है? ये सब आसुरी विचार हैं।

बलि महाराज की पत्नी ने अपने पति पर यह दोष लगाया कि यद्यपि भगवान् ने उन पर असामान्य अनुग्रह करके उन्हें बन्दी बनाया है और यद्यपि वे भगवान् के तीसरे पग के लिए अपना शरीर अर्पित कर रहे हैं, किन्तु वे फिर भी अज्ञान के अंधकार में हैं। वास्तव में वह शरीर उनका नहीं है, किन्तु दीर्घकालीन आसुरी मनोवृत्ति के कारण वे इसे समझ नहीं पाये। उन्होंने सोचा कि वे अपने दान के वचन को पूरा न कर पाने से अपयश के भागी हुए हैं और चूँकि शरीर उनका है अतएव वे अपना शरीर दान देकर इस अपयश से मुक्त हो जायेंगे। किन्तु वास्तविकता तो यह है कि शरीर किसी का न होकर भगवान् का है क्योंकि उन्हीं ने यह शरीर प्रदान किया है। जैसाकि *भगवद्गीता* (१.६१) में कहा गया है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

भगवान् हर एक के हृदय में विराजमान हैं और वे अपनी माया शक्ति के द्वारा जीव को उसकी इच्छानुसार एक विशेष प्रकार का यंत्र अर्थात् शरीर प्रदान करते हैं। यह शरीर वास्तव में उस जीव का नहीं होता अपितु वह भगवान् का है। ऐसी दशा में बलि महाराज शरीर को अपना कैसे कह सकते थे?

इस प्रकार बलि महाराज की बुद्धिमती पत्नी विन्ध्यावलि ने प्रार्थना की कि भगवान् अपनी अहैतुकी कृपा से उनके पति को छोड़ दें। अन्यथा बलि महाराज क्या थे—एक लज्जाहीन असुर जिन्हें *त्यक्तह्रियस्त्वदवरोपितकर्तृवादाः* कहा गया है अर्थात् ऐसा मूर्ख व्यक्त जो परम पुरुष की सम्पत्ति पर अपना स्वामित्व जता रहा हो। इस कलियुग में ऐसे निर्लज्ज बुद्धिहीनों की जो भगवान् के अस्तित्व में विश्वास नहीं रखते संख्या बढ़ गई है। भगवान् की सत्ता का उल्लंघन करने के प्रयास में तथाकथित विज्ञानी, दार्शनिक तथा राजनीतिज्ञ विश्व के विनाश की योजनाएँ तैयार करते रहते हैं। वे विश्व कल्याण के लिए कुछ भी नहीं कर सकते और दुर्भाग्यवश कलियुग के कारण उन्होंने विश्व के मामलों को अव्यवस्थित कर दिया है। इस तरह उन अबोध लोगों के लाभ के लिए, जो ऐसे असुरों के प्रचार द्वारा भ्रमित हो रहे हैं, कृष्णभावनामृत आन्दोलन की नितान्त आवश्यकता है। यदि वर्तमान स्थिति को इसी रूप में रहने दिया गया तो लोगों को इन असुर दुर्बुद्धियों के नायकत्व में अधिकाधिक कष्ट झेलने होंगे।

श्रीब्रह्मोवाच
भूतभावन भूतेश देवदेव जगन्मय ।
मुञ्चैनं हृतसर्वस्वं नायमर्हति निग्रहम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

श्री-ब्रह्मा उवाच—ब्रह्माजी ने कहा; भूत-भावन—हे सबके शुभेच्छु; भूत-ईश—हे सबके स्वामी; देव-देव—हे देवताओं के भी पूज्य देव; जगत्-मय—हे सर्वव्यापक; मुञ्च—कृपया छोड़ दें; एनम्—इस बेचारे बलि महाराज को; हृत-सर्वस्वम्—जिसका सर्वस्व छिन गया है; न—नहीं; अयम्—यह बेचारा; अर्हति—पात्र है; निग्रहम्—दण्ड का।

ब्रह्माजी ने कहा : हे समस्त जीवों के हितैषी एवं स्वामी, हे सभी देवताओं के पूज्य देव, हे सर्वव्यापी भगवान्! अब यह व्यक्ति पर्याप्त दण्ड पा चुका है क्योंकि आपने इसका सर्वस्व ले लिया है। अब आप इसे छोड़ दें। अब यह अधिक दण्डित होने का पात्र नहीं है।

तात्पर्य : जब ब्रह्माजी ने देखा कि प्रह्लाद महाराज तथा विन्ध्यावलि पहले ही भगवान् के पास बलि महाराज के लिए कृपायाचना करने पहुँच चुके हैं, तो वे भी उनके साथ हो लिए और सांसारिक गणनाओं के आधार पर बलि महाराज को मुक्त किये जाने की संस्तुति करने लगे।

कृत्स्ना तेऽनेन दत्ता भूर्लोकाः कर्मार्जिताश्च ये ।
निवेदितं च सर्वस्वमात्माविक्लवया धिया ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

कृत्स्नाः—सभी; ते—तुमको; अनेन—बलि महाराज द्वारा; दत्ताः—दिया जा चुका; भूः लोकाः—सारी भूमि तथा सारे लोक; कर्म-अर्जिताः च—जो कुछ उसने अपने पुण्यकर्मों से प्राप्त किया था; ये—जो; निवेदितम् च—आपको अर्पित हो चुके; सर्वस्वम्—उसके पास जो कुछ था वह सब; आत्मा—यहाँ तक कि शरीर भी; अविक्लवया—बिना हिचक के; धिया—ऐसी बुद्धि से।(०).

बलि महाराज ने आपको पहले ही अपना सर्वस्व दे दिया था। उन्होंने बिना हिचक के अपनी भूमि, अपने सारे लोक तथा अपने पुण्यकर्मों से जो कुछ अन्य भी अर्जित किया था, यहाँ तक कि अपने शरीर को भी अर्पित कर दिया है।

यत्पादयोरशठधीः सलिलं प्रदाय
दूर्वाङ्कुरैरपि विधाय सतीं सपर्याम् ।
अप्युत्तमां गतिमसौ भजते त्रिलोकीं
दाश्वानविक्लवमनाः कथमार्तिमृच्छेत् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

यत्-पादयोः—आपके चरणकमलों पर; अशठ-धीः—द्वैतरहित विशाल हृदय वाला व्यक्ति; सलिलम्—जल; प्रदाय—देकर; दूर्वा—घास; अङ्कुरैः—तथा फूल की कलियों से; अपि—यद्यपि; विधाय—अर्पित करके; सतीम्—परम पूज्य; सपर्याम्—पूजा सहित; अपि—यद्यपि; उत्तमाम्—अत्यन्त उच्च; गतिम्—लक्ष्य; असौ—ऐसा पूजक; भजते—पात्र होता है; त्रि-लोकीम्—तीनों

लोकों को; दाश्वान्—आपको देते हुए; अविक्लव-मनाः—बिना किसी मानसिक द्वैत के; कथम्—कैसे; आर्तिम्—बन्दी बनाये जाने के क्लेश का; ऋच्छेत्—भागी है।

जिनके मन में द्वैत नहीं होता वे आपके चरणों में केवल जल, दूर्वादल या अंकुर अर्पित करके वैकुण्ठ में उच्चतम स्थान प्राप्त कर सकते हैं। इन बलि महाराज ने अब बिना द्वैत के तीनों लोकों की प्रत्येक वस्तु आपको अर्पित कर दी है। तो फिर वे बन्दी होने के कष्ट के भागी कैसे हो सकते हैं?

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (९.२६) में कहा गया है—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।

तदहं भक्त्युपहृतम् अश्नामि प्रयतात्मनः॥

भगवान् इतने दयालु हैं कि यदि कोई निष्कपट व्यक्ति भक्तिपूर्वक एवं द्वैतरहित होकर भगवान् के चरणकमलों पर थोड़ा सा जल, फूल, फल या पत्ती चढ़ाता है, तो भगवान् उसे स्वीकार कर लेते हैं। तब वह भक्त स्वर्गलोक भेज दिया जाता है। ब्रह्माजी ने भगवान् का ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट किया और प्रार्थना की कि वे बलि महाराज को छोड़ दें क्योंकि उन्हें वरुणपाश से बन्दी होने के कारण कष्ट हो रहा था और उन्होंने पहले ही तीनों लोक तथा अपना सर्वस्व उन्हें भेंट कर दिया था।

श्रीभगवानुवाच
ब्रह्मन्यमनुगृह्णामि तद्विशो विधुनोम्यहम् ।
यन्मदः पुरुषः स्तब्धो लोकं मां चावमन्यते ॥ २४॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; ब्रह्मन्—हे ब्रह्माजी; यम्—जिस पर; अनुगृह्णामि—मैं दया करता हूँ; तत्—उसका; विशः—ऐश्वर्य; विधुनोमि—छीन लेता हूँ; अहम्—मैं; यत्-मदः—इस धन के कारण झूठी प्रतिष्ठा होने से; पुरुषः—ऐसा व्यक्ति; स्तब्धः—कुंद बुद्धि होकर; लोकम्—तीनों लोक; माम् च—मेरी भी; अवमन्यते—अवहेलना करता।

भगवान् ने कहा : हे ब्रह्माजी! भौतिक ऐश्वर्य के कारण मूर्ख व्यक्ति मन्दबुद्धि एवं पागल हो जाता है। इस तरह तीनों लोकों में वह किसी का सम्मान नहीं करता और मेरी सत्ता की भी अवहेलना करता है। सर्वप्रथम ऐसे व्यक्ति की सारी सम्पत्ति छीनकर मैं उस पर विशेष अनुग्रह प्रदर्शित करता हूँ।

तात्पर्य : जो सभ्यता भौतिक ऐश्वर्य में उन्नति के कारण ईश्वरविहीन हो गई है, वह अत्यन्त घातक होती है। ऐश्वर्य के कारण भौतिकतावादी इतना घमंडी हो जाता है कि वह किसी का सम्मान नहीं

करता और भगवान् की भी सत्ता को नकारता है। ऐसी मनोवृत्ति का परिणाम निश्चित रूप से अत्यन्त घातक होता है। विशेष अनुग्रह दिखलाने के लिए भगवान् कभी-कभी बलि महाराज जैसे व्यक्ति एक उदाहरण बनाते हैं।

यदा कदाचिज्जीवात्मा संसरन्निजकर्मभिः ।
नानायोनिष्वनीशोऽयं पौरुषीं गतिमाव्रजेत् ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

यदा—जब; कदाचित्—कभी-कभी; जीव-आत्मा—जीव; संसरन्—जन्म तथा मृत्यु के चक्र में घूमते हुए; निज-कर्मभिः—अपने कर्मों के कारण; नाना-योनिषु—अनेक योनियों में; अनीशः—पराश्रित (माया के वश में); अयम्—यह जीव; पौरुषीम् गतिम्—मनुष्य का पद; आव्रजेत्—प्राप्त करना चाहता है।

अपने ही सकाम कर्मों के कारण विभिन्न योनियों में जन्म-मरण के चक्र में बारम्बार घूमते हुए परतंत्र जीव भाग्यवश मनुष्य का शरीर प्राप्त कर सकता है। यह मनुष्य-जन्म विरले ही प्राप्त हो पाता है।

तात्पर्य : भगवान् पूर्ण स्वतंत्र हैं। इस प्रकार यह सदा सच नहीं होता कि किसी जीव के सारे ऐश्वर्य की हानि उस पर भगवत्कृपा की सूचक हो। भगवान् जैसा भी चाहें कर सकते हैं। वे किसी का ऐश्वर्य छीन सकते हैं या नहीं भी छीनते। जीव की अनेक योनियाँ हैं और भगवान् परिस्थितियों को ध्यान में रखकर उनके साथ इच्छानुसार व्यवहार करते हैं। सामान्यतः यह समझा जाता है कि मनुष्य योनि सबसे अधिक दायित्वपूर्ण है।

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान्।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु॥

"भौतिक प्रकृति में जीव तीनों गुणों का भोग करता हुआ जीवन बिताता है। यह भौतिक प्रकृति के साथ उसकी संगति का फल है। इस तरह विविध योनियों में उसे अच्छी और बुरी परिस्थितियाँ मिलती रहती हैं" (*भगवद्गीता* १३.२२)। इस प्रकार अनेकानेक योनियों में घूमता हुआ जीव मनुष्य-जीवन का अवसर प्राप्त करता है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को, विशेष रूप से सभ्य राष्ट्र या संस्कृति वाले मनुष्य को अपने कार्यों में अत्यधिक उत्तरदायी रहना चाहिए। उसे अगले जीवन में स्वयं को संकट में नहीं डालना चाहिए। चूँकि शरीर बदल जायेगा (*तथा देहान्तर प्राप्तिः*) अतएव हमें अत्यधिक सतर्क रहना चाहिए। कृष्णभावनामृत का उद्देश्य यह देखना है कि जीवन का सही उपयोग हो। मूर्ख

जीव अपने को सभी प्रकार के नियंत्रण से मुक्त घोषित करता है, जबकि वास्तव में वह मुक्त नहीं रहता। वह पूरी तरह प्रकृति के नियंत्रण में रहता है। अतएव उसे अपने जीवन के कार्यों में अत्यन्त सावधान एवं उत्तरदायी होना चाहिए।

जन्मकर्मवयोरूपविद्यैश्वर्यधनादिभिः ।
यद्यस्य न भवेत्स्तम्भस्तत्रायं मदनुग्रहः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

जन्म—कुलीन परिवार में जन्म लेकर; कर्म—अद्भुत कर्मों या पुण्य कर्मों के द्वारा; वयः—आयु से, विशेषतया युवावस्था में जब मनुष्य अनेक कार्य कर सकता है; रूप—निजी सौन्दर्य से, जिससे सभी आकृष्ट होते हैं; विद्या—विद्या से; ऐश्वर्य—ऐश्वर्य से; धन—धन; आदिभिः—इत्यादि से; यदि—यदि; अस्य—स्वामी का; न—नहीं; भवेत्—है; स्तम्भः—घमंड; तत्र—ऐसी अवस्था में; अयम्—व्यक्ति; मत्-अनुग्रहः—समझो कि उसे मेरी विशेष कृपा प्राप्त हो गई है।

यदि कोई मनुष्य उच्चकुल में जन्मा हो, यदि वह अद्भुत कर्म करे, यदि वह तरुण हो, यदि उसके पास सौन्दर्य, उत्तम शिक्षा तथा प्रचुर सम्पत्ति हो और यदि वह इतने पर भी अपने ऐश्वर्य पर न इतराये तो यह समझना चाहिए कि उस पर भगवान् की विशेष कृपा है।

तात्पर्य : यदि इन सब ऐश्वर्यों के होते हुए भी कोई मनुष्य घमंडी नहीं होता तो यह समझना चाहिए कि वह भली भाँति यह जानता है कि उसका सारा ऐश्वर्य भगवान् की कृपा के फलस्वरूप है। अतएव वह अपनी सारी सम्पत्ति भगवान् की सेवा में लगा देता है। भक्त भलीभाँति जानता है कि उसका सर्वस्व—यहाँ तक कि उसका शरीर भी—भगवान् का है। यदि कोई पूर्णतः ऐसे कृष्णभावनामृत में रहता है, तो यह समझना चाहिए कि उस पर भगवान् की विशेष कृपा है। निष्कर्ष यह निकला कि धन से वञ्चित होने को भगवान् की विशेष कृपा नहीं मानना चाहिए। प्रत्युत यदि कोई अपने ऐश्वर्यपूर्ण पद पर निरन्तर बना रहता है, और व्यर्थ ही यह घमंड नहीं करता और यह नहीं सोचता कि वह हर वस्तु का स्वामी है, तो यह भगवान् की विशेष कृपा है।

मानस्तम्भनिमित्तानां जन्मादीनां समन्ततः ।
सर्वश्रेयःप्रतीपानां हन्त मुह्येन्न मत्परः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

मान—झूठी प्रतिष्ठा का; स्तम्भ—इस धृष्टता के कारण; निमित्तानाम्—कारणों का; जन्म-आदीनाम्—उच्चकुल में जन्म इत्यादि; समन्ततः—सब मिलाकर; सर्व-श्रेयः—जीवन के परम लाभ के लिए; प्रतीपानाम्—बाधाओं का; हन्त—भी; मुह्येत्—मोहग्रस्त हो जाता है; न—नहीं; मत्-परः—मेरा अनन्य भक्त।

यद्यपि उच्चकुल में जन्म एवं ऐसे अन्य ऐश्वर्य भक्ति की उन्नति में बाधक होते हैं क्योंकि ये

झूठी प्रतिष्ठा तथा घमंड के कारण हैं, किन्तु ये ऐश्वर्य भगवान् के अनन्य भक्त को कभी विचलित नहीं करते।

तात्पर्य : ध्रुव महाराज जैसे भक्तों पर जिन्हें असीम भौतिक ऐश्वर्य प्राप्त था, भगवान् की विशेष कृपा होती है। एक बार कुवेर ने ध्रुव महाराज को एक वर देना चाहा, किन्तु ध्रुव ने उनसे यही याचना की कि मैं भगवान् की भक्ति करता रहूँ यद्यपि वे चाहते तो उनसे कितना ही भौतिक ऐश्वर्य माँग सकते थे। जब भक्त भगवान् ऐश्वर्य की भक्ति में स्थिर होता है, तो भगवान् को उसे उसके भौतिक ऐश्वर्य से वंचित करने की आवश्यकता नहीं रहती। भगवान् भक्ति के कारण अर्जित धन को कभी नहीं छीनते यद्यपि वे कभी-कभी पुण्य कर्मों के द्वारा अर्जित धन को हर लेते हैं। वे ऐसे भक्त को घमण्ड-रहित करने के लिए या उसे भक्ति के बेहतर पद पर स्थित करने के लिए करते हैं। यदि किसी विशेष भक्त का कार्य प्रचार करना हो, किन्तु यदि वह अपने पारिवारिक जीवन या ऐश्वर्य को त्यागकर भगवत्सेवा नहीं करता तो भगवान् निश्चित रूप से उसका भौतिक ऐश्वर्य छीन लेते हैं और उसे भक्ति में स्थापित कर देते हैं। इस तरह शुद्ध भक्त कृष्णभावनामृत के पूर्ण प्रचार कार्य में लग जाता है।

एष दानवदैत्यानामग्रनीः कीर्तिवर्धनः ।
अजैषीदजयां मायां सीदन्नपि न मुह्यति ॥ २॥

शब्दार्थ

एषः—यह बलि महाराज; दानव-दैत्यानाम्—असुरों तथा नास्तिकों में; अग्रनीः—अग्रगण्य भक्त; कीर्ति-वर्धनः—अत्यन्त विख्यात; अजैषीत्—पहले ही बाजी मार चुका है; अजयाम्—अजेय; मायाम्—माया को; सीदन्—(सारे ऐश्वर्य से) विहीन होकर; अपि—यद्यपि; न—नहीं; मुह्यति—मोहग्रस्त होता है।

बलि महाराज असुरों एवं नास्तिकों में सर्वाधिक विख्यात हो गये हैं क्योंकि अपने सारे ऐश्वर्य से वंचित होकर भी वे अपनी भक्ति में अचल हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक में *सीदन्नपि न मुह्यति* पद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। कभी-कभी भक्ति करते हुए भक्त संकट में फँस जाता है। संकट में हर व्यक्ति शोक करता है और दुखी होता है, किन्तु भक्त भगवत्कृपा से बुरी से बुरी स्थिति में भी यह समझ सकता है कि भगवान् उसकी कठिन परीक्षा ले रहे हैं। बलि महाराज ऐसी सारी परीक्षाओं में उत्तीर्ण रहे जैसाकि अगले श्लोकों से प्रकट है।

क्षीणरिक्थश्च्युतः स्थानात्क्षिप्तो बद्धश्च शत्रुभिः ।

ज्ञातिभिश्च परित्यक्तो यातनामनुयापितः ॥ २९ ॥
गुरुणा भर्त्सितः शप्तो जहौ सत्यं न सुव्रतः ।
छलैरुक्तो मया धर्मो नायं त्यजति सत्यवाक् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

क्षीण-रिक्थः—समस्त प्रकार के धनधान्य से विहीन; च्युतः—गिरा हुआ; स्थानात्—अपने श्रेष्ठ स्थान से; क्षिप्तः—बलपूर्वक फेंका गया; बद्धः च—तथा जबरदस्ती बाँधा गया; शत्रुभिः—अपने शत्रुओं द्वारा; ज्ञातिभिः च—तथा अपने कुटुम्बियों द्वारा; परित्यक्तः—त्यागा गया; यातनाम्—सभी प्रकार के कष्ट; अनुयापितः—असामान्य रूप से गहन दुख भोगा हुआ; गुरुणा—अपने गुरु द्वारा; भर्त्सितः—भर्त्सना किया गया; शप्तः—तथा शापित; जहौ—छोड़ दिया; सत्यम्—सत्य को; न—नहीं; सु-व्रतः—अपने व्रत में अटल; छलैः—छल द्वारा; उक्तः—कहा गया; मया—मेरे द्वारा; धर्मः—धर्म; न—नहीं; अयम्—यह बलि महाराज; त्यजति—त्याग देता है; सत्य-वाक्—अपने वचन का पक्का।

बलि महाराज यद्यपि धनविहीन, अपने मौलिक पद से च्युत, अपने शत्रुओं द्वारा पराजित तथा बन्दी बनाये गये, अपने कुटुम्बियों तथा मित्रों द्वारा भर्त्सित हुए और परित्यक्त, बाँधे जाने की पीड़ा से पीड़ित तथा अपने गुरु द्वारा भर्त्सित तथा शापित थे, किन्तु वे अपने व्रत में अटल रहे। उन्होंने अपना सत्य नहीं छोड़ा। मैंने तो निश्चित रूप से छल से धर्म के विषय में बातें कहीं, किन्तु उन्होंने अपना धर्म नहीं छोड़ा क्योंकि वे अपने वचन के पक्के हैं।

तात्पर्य : बलि महाराज ने भगवान् द्वारा ली गई कठिन परीक्षा उत्तीर्ण की। यह भगवान् द्वारा अपने भक्त पर कृपा का अन्य प्रमाण है। कभी-कभी भगवान् भक्त की इतनी कठिन परीक्षाएँ लेते हैं, जो लगभग असह्य होती हैं। बलि महाराज को जिस स्थिति में पहुँचा दिया गया था उसमें किसी के लिए भी जीवित रह पाना कठिन था। किन्तु बलि महाराज ने इन कठिन परीक्षाओं तथा तपस्याओं को सह लिया तो यह भगवान् की कृपा ही है। भगवान् निश्चय ही भक्त की सहनशीलता को सराहते हैं और भक्त के भावी महिमागान के लिए इसे अंकित कर लिया जाता है। यह कोई सरल परीक्षा न थी। जैसाकि इस श्लोक में वर्णन हुआ है, शायद ही कोई ऐसी परीक्षा में सफल हो सके, किन्तु महाजनों में से एक बलि महाराज के भावी महिमागान के लिए भगवान् ने न केवल उनकी परीक्षा ली अपितु ऐसी विपदा सहने के लिए उन्हें शक्ति भी प्रदान की। भगवान् अपने भक्त पर इतने दयालु हैं कि उस की कठिन परीक्षा लेते समय वे उसे आवश्यक शक्ति प्रदान करते हैं जिससे वह उसे सह सके और यशस्वी भक्त बना रह सके।

एष मे प्रापितः स्थानं दुष्प्रापममरैरपि ।
सावर्णेरन्तरस्यायं भवितेन्द्रो मदाश्रयः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

एषः—बलि महाराज; मे—मेरे द्वारा; प्रापितः—प्राप्त किया है; स्थानम्—स्थान; दुष्प्रापम्—प्राप्त करने में अत्यन्त कठिन; अमरैः अपि—यहाँ तक कि देवताओं के द्वारा भी; सावर्णेः अन्तरस्य—सावर्णि मनु के काल में; अयम्—यह बलि महाराज; भविता—होगा; इन्द्रः—स्वर्ग का स्वामी; मत्-आश्रयः—पूर्णतः मेरे संरक्षण में।

भगवान् ने आगे कहा : उसकी महान् सहनशक्ति के कारण मैंने उसे वह स्थान प्रदान किया है, जो देवताओं को भी सुलभ नहीं हो पाता। वह सावर्णि मनु के काल में स्वर्ग का राजा बनेगा।

तात्पर्य : यह भगवान् की कृपा है। यहाँ तक कि जब भगवान् भक्त के ऐश्वर्य को भी छीनते हैं, तो वे उसे तुरन्त ऐसा स्थान प्रदान करते हैं, जो देवताओं को स्वप्न में भी सुलभ नहीं हो सकता। भक्ति के इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं। ऐसा एक उदाहरण सुदामा विप्र का ऐश्वर्य है। सुदामा विप्र को भौतिक सम्पत्ति की सख्त तंगी थी, किन्तु वह विचलित नहीं हुआ और भक्ति के पथ से हटा नहीं। अन्त में भगवान् कृष्ण ने कृपा करके उसे उच्च स्थान प्रदान किया। यहाँ पर *मदाश्रयः* शब्द अत्यन्त सार्थक है। चूँकि भगवान् बलि महाराज को इन्द्र का उच्च पद देना चाहते थे अतएव स्वभावतः सारे देवता उनसे ईर्ष्यालु हो जाते और उन्हें उस पद से विचलित करने के लिए लड़ाई करते। किन्तु भगवान् ने बलि महाराज को आश्वासन दिया कि वे उनके आश्रय में (*मदाश्रयः*) रहेंगे।

तावत्सुतलमध्यास्तां विश्वकर्मविनिर्मितम् ।
यदाधयो व्याधयश्च क्लमस्तन्द्रा पराभवः ।
नोपसर्गा निवसतां सम्भवन्ति ममेक्षया ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

तावत्—जब तक तुम इन्द्र के पद पर नहीं हो; सुतलम्—सुतल नामक लोक; अध्यास्ताम्—वहाँ जाकर उस स्थान पर अधिकार जमाओ; विश्वकर्म-विनिर्मितम्—विश्वकर्मा द्वारा विशेष रूप से निर्मित; यत्—जिसमें; आधयः—मानसिक क्लेश; व्याधयः—शरीर सम्बन्धी कष्ट; च—भी; क्लमः—थकान; तन्द्रा—आलस्य; पराभवः—पराजित होकर; न—नहीं; उपसर्गाः—अन्य उपद्रवों के लक्षण; निवसताम्—वहाँ रहने वालों का; सम्भवन्ति—सम्भव होते हैं; मम—मेरी; ईक्षया—विशेष निगरानी से।

जब तक बलि महाराज स्वर्ग के राजा (इन्द्र) का पद प्राप्त नहीं कर लेते तब तक वे सुतललोक में रहेंगे जिसे विश्वकर्मा ने मेरे आदेश से निर्मित किया था। चूँकि इसकी रक्षा मेरे द्वारा विशेष रूप से होती है अतएव यह मानसिक तथा शारीरिक व्याधियों, थकान, आलस्य, पराजय तथा अन्य सभी उपद्रवों से मुक्त है। हे बलि महाराज! अब तुम वहाँ जाकर शान्तिपूर्वक रह सकते हो।

तात्पर्य : विश्वकर्मा स्वर्गलोक के उच्च प्रासादों के इंजीनियर या शिल्पी हैं। चूँकि इन्हें बलि

महाराज का आवास बनाने के लिए लगाया गया था अतएव सुतललोक के महल कम से कम स्वर्गलोक जैसे अवश्य होने चाहिए थें। बलि महाराज के लिए तैयार कराये गये इस स्थान का एक अन्य लाभ यह था कि उन्हें वहाँ न तो किसी बाहरी आपत्ति से विचलित होना पड़ेगा, न ही उन्हें कोई मानसिक या शारीरिक क्लेश सतायेगा। सुतललोक के ये अद्वितीय लक्षण हैं जहाँ बलि महाराज रहेंगे।

वैदिक ग्रंथों में हमें अनेक विभिन्न लोकों के वर्णन मिलते हैं जहाँ अनेकानेक प्रासाद हैं, जो धरालोक की तुलना में हजारों गुना श्रेष्ठ हैं। जब हम प्रासादों की बात करते हैं, तो स्वभावत: उसमें बड़े-बड़े शहरों तथा नगरों का भाव निहित होता है। दुर्भाग्यवश जब आधुनिक विज्ञानी अन्य लोकों की खोज करने का प्रयास करते हैं, तो उन्हें चट्टानों तथा बालू के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलता। भले ही वे अपनी तुच्छ यात्राओं का आयोजन करते रहें, किन्तु वैदिक साहित्य का अध्येता न तो कभी उन पर विश्वास करेगा न उन्हें अन्य लोकों की खोज का श्रेय प्रदान करेगा।

इन्द्रसेन महाराज याहि भो भद्रमस्तु ते ।
सुतलं स्वर्गिभि: प्रार्थ्यं ज्ञातिभि: परिवारित: ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

इन्द्रसेन—हे महाराज बलि; महाराज—हे राजा; याहि—जाओ; भो:—हे राजा; भद्रम्—कल्याण; अस्तु—हो; ते—तुम्हारा; सुतलम्—सुतललोक में; स्वर्गिभि:—देवताओं द्वारा; प्रार्थ्यम्—वांछित; ज्ञातिभि:—आपके कुटुम्बियों द्वारा; परिवारित:—घिरे हुए।

हे बलि महाराज (इन्द्रसेन)! तुम उस सुतललोक में जाओ जिसकी कामना देवता भी करते हैं। वहाँ अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों की संगति में शान्तिपूर्वक रहो। तुम्हारा कल्याण हो।

तात्पर्य : जैसाकि *स्वर्गिभि: प्रार्थ्यम्* शब्दों से सूचित होता है सुतललोक स्वर्गलोक से सैकड़ों गुना अच्छा है जहाँ बलि महाराज को स्वर्ग लोक से स्थानान्तरित किया गया। जब भगवान् अपने भक्त को भौतिक ऐश्वर्य से विहीन करते हैं, तो इसका अर्थ यह नहीं होता कि वे उसे दरिद्र बना देते हैं; प्रत्युत वे उसे उच्चतर पद प्रदान करते हैं। भगवान् ने बलि महाराज को अपने कुटुम्ब से विलग होने के लिए नहीं कहा अपितु उन्हें अपने कुटुम्बियों के साथ ठहरने की अनुमति प्रदान की (*ज्ञातिभि: परिवारित:*)।

न त्वामभिभविष्यन्ति लोकेशा: किमुतापरे ।
त्वच्छासनातिगान्दैत्यांश्चक्रं मे सूदयिष्यति ॥ ३४॥

शब्दार्थ

न—नहीं; त्वाम्—तुमको; अभिभविष्यन्ति—जीत सकेंगे; लोक-ईशाः—विभिन्न लोकों के प्रधान देवता; किम् उत अपरे—सामान्य लोगों के विषय में क्या कहा जाये; त्वत्-शासन-अतिगान्—जो तुम्हारे आदेशों का उल्लंघन करते हैं; दैत्यान्—ऐसे दैत्यों को; चक्रम्—चक्र; मे—मेरा; सूदयिष्यति—मार डालेगा।.

सुतललोक में, सामान्य लोग तो क्या, अन्य लोकों के प्रधान देवता भी तुम्हें नहीं जीत पायेंगे। रही असुरों की बात, यदि वे तुम्हारे शासन का उल्लंघन करेंगे तो मेरा चक्र उनका वध कर देगा।

रक्षिष्ये सर्वतोऽहं त्वां सानुगं सपरिच्छदम् ।
सदा सन्निहितं वीर तत्र मां द्रक्ष्यते भवान् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

रक्षिष्ये—रक्षा करूँगा; सर्वतः—सभी प्रकार से; अहम्—मैं; त्वाम्—तुम्हारी; स-अनुगम्—तुम्हारे संगियों सहित; स-परिच्छदम्—साज-सामान सहित; सदा—सदैव; सन्निहितम्—पास ही रहकर; वीर—हे शूरवीर; तत्र—वहाँ, अपने स्थान में; माम्—मुझको; द्रक्ष्यते—देख सकोगे; भवान्—तुम।.

हे शूरवीर! मैं सदैव तुम्हारे साथ रहूँगा और तुम्हारे संगियों तथा साज-सामग्री समेत तुम्हें सभी प्रकार से संरक्षण प्रदान करूँगा। साथ ही, तुम वहाँ मुझे सदैव देख सकोगे।

तत्र दानवदैत्यानां सङ्गात्ते भाव आसुरः ।
दृष्ट्वा मदनुभावं वै सद्यः कुण्ठो विनङ्‌क्ष्यति ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

तत्र—उस स्थान में; दानव-दैत्यानाम्—असुरों तथा दानवों की; सङ्गात्—संगति से; ते—तुम्हारी; भावः—मनोवृत्ति; आसुरः—आसुरी; दृष्ट्वा—देखकर; मत्-अनुभावम्—मेरी सर्वश्रेष्ठ शक्ति; वै—निस्सन्देह; सद्यः—तुरन्त; कुण्ठः—चिन्ता; विनङ्‌क्ष्यति—नष्ट हो जायेगी।.

चूँकि तुम्हें वहाँ मेरे परम पराक्रम का दर्शन होगा अतएव असुरों तथा दानवों की संगति से तुममें जो भौतिकतावादी विचार एवं चिन्ताएँ उदित हुई हैं, वे तुरन्त ही विनष्ट हो जायेंगी।

तात्पर्य : भगवान् ने बलि महाराज को सभी प्रकार की सुरक्षा के लिए आश्वस्त किया और अन्त में यह भी आश्वासन दिया कि असुरों की कुसंगति के प्रभावों से उनकी रक्षा करेंगे। बलि महाराज निश्चय ही महान् भक्त बन गये, किन्तु उन्हें कुछ चिन्ता थी कि उनकी संगति शुद्ध भक्तिमयी नहीं है। इसलिए भगवान् ने उन्हें आश्वस्त किया कि उनकी आसुरी मनोवृत्ति नष्ट हो जायेगी। दूसरे शब्दों में, भक्तों की संगति से आसुरी मनोवृत्ति जाती रहती है—

सतां प्रसङ्गान् मम वीर्यसंविदो

भवन्ति हृत्कर्णरसायना: कथा:

(*भागवत ३.२५.२५*)

जब कोई असुर भगवान् की महिमा का गायन करने वाले भक्तों की संगति करता है, तो वह क्रमश: शुद्ध भक्त बन जाता है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कन्ध के अन्तर्गत ''बलि महाराज द्वारा आत्मसमर्पण'' नामक बाईसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter तेईस

देवताओं को स्वर्गलोक की पुनर्प्राप्ति

इस अध्याय में बतलाया गया है कि बलि महाराज अपने पितामह प्रह्लाद महाराज सहित किस प्रकार सुतललोक गये और भगवान् ने किस तरह इन्द्र को स्वर्गलोक में प्रवेश करने की अनुमति दी।

महात्मा बलि महाराज ने अनुभव किया कि जीवन का सर्वोच्च लाभ भगवान् के चरणकमलों की पूर्ण शरण में रहकर भक्ति प्राप्त करना है। ऐसे निर्णय पर पहुँचकर उन्हों ने प्रेमा-भक्ति से पूरित हृदय एवं अश्रुओं से पूरित नेत्रों से भगवान् को नमस्कार किया और फिर अपने पार्षदों सहित सुतललोक में प्रवेश किया। इस प्रकार भगवान् ने अदिति की इच्छा पूरी की और इन्द्र को पुन:स्थापित किया। जब प्रह्लाद महाराज ने सुना कि बलि को बन्धन से मुक्त कर दिया गया है, तो उन्होंने इस जगत में भगवान् की दिव्य लीलाओं का वर्णन किया। उन्होंने इस भौतिक जगत की सृष्टि करने, सब पर समदृष्टि रखने तथा भक्तों पर कल्पवृक्ष के समान अत्यन्त उदार होने के लिए भगवान् की प्रशंसा की। निस्सन्देह, उन्होंने यह भी कहा कि भगवान् न केवल अपने भक्तों पर वरन् असुरों पर भी दयालु रहते हैं। इस प्रकार उन्होंने भगवान् की असीम अहैतुकी कृपा का वर्णन किया। तत्पश्चात् हाथ जोड़कर भगवान् को सादर नमस्कार किया और फिर उनकी प्रदक्षिणा करके भगवान् के आदेशानुसार वे भी सुतललोक में प्रविष्ट हुए। तब भगवान् ने शुक्राचार्य को आदेश दिया कि वे बलि महाराज द्वारा यज्ञ सम्पन्न करते समय की गई त्रुटियों और कमियों का विवरण दें। शुक्राचार्य भी भगवान् का पवित्र नाम जपने से सकाम कर्म के बन्धन से मुक्त हो गये और उन्होंने बतलाया कि बद्धजीव किस तरह जप द्वारा अपने

दोषों को कम कर सकता है। तब उन्होंने बलि महाराज के यज्ञोत्सव को पूरा किया। समस्त महान् ऋषियों तथा मुनियों ने वामनदेव को इन्द्र का उपकार-कर्ता स्वीकार किया क्योंकि उन्होंने इन्द्र को स्वर्गलोक वापस दिलवाया। उन्होंने भगवान् को ब्रह्माण्ड के सारे कार्यों का पालक स्वीकार किया। इन्द्र ने अपने साथियों सहित अत्यन्त प्रसन्न होकर वामनदेव को अपने समक्ष रखा और तब अपने विमान से स्वर्गलोक वापस गये। सारे देवताओं, सन्तों, पितरों, भूतों तथा सिद्धों ने बलि महाराज की यज्ञशाला में भगवान् विष्णु के अलौकिक कार्यों को देखकर भगवान् की महिमा का पुनः-पुनः गान किया। इस अध्याय का अन्त इस कथन के साथ होता है कि बद्धजीव का सबसे शुभ कार्य है भगवान् विष्णु के महिमायुक्त कार्यों के विषय में श्रवण तथा कीर्तन करना।

श्रीशुक उवाच

इत्युक्तवन्तं पुरुषं पुरातनं
महानुभावोऽखिलसाधुसम्मतः ।
बद्धाञ्जलिर्बाष्पकलाकुलेक्षणो
भक्त्युत्कलो गद्गदया गिराब्रवीत् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; उक्तवन्तम्—भगवान् के आदेश पर; पुरुषम्—भगवान् को; पुरातनम्—सबसे अधिक पुरातन; महा-अनुभावः—बलि महाराज जो महात्मा थे; अखिल-साधु-सम्मतः—सभी सन्त पुरुषों द्वारा अनुमोदित; बद्ध-अञ्जलिः—हाथ जोड़कर; बाष्प-कल-आकुल-ईक्षणः—अश्रुपूरित नेत्रों से; भक्ति-उत्कलः—प्रेमा-भक्ति से पूरित; गद्गदया—भक्ति-भाव में अवरुद्ध होती; गिरा—वाणी से; अब्रवीत्—कहा।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जब परम पुरातन नित्य भगवान् ने सर्वत्रमान्य शुद्ध भक्त एवं महात्मा बलि महाराज से यह कहा तो बलि महाराज ने आँखों में आँसू भरकर, हाथ जोड़कर तथा भक्ति-भाव के कारण लड़खड़ाती वाणी से इस प्रकार कहा।

श्रीबलिरुवाच

अहो प्रणामाय कृतः समुद्यमः
प्रपन्नभक्तार्थविधौ समाहितः ।
यल्लोकपालैस्त्वदनुग्रहोऽमरै-
रलब्धपूर्वोऽपसदेऽसुरेऽर्पितः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-बलिः उवाच—बलि महाराज ने कहा; अहो—ओह; प्रणामाय—अपना सादर नमस्कार अर्पित करने के लिए; कृतः—मैंने किया; समुद्यमः—केवल एक प्रयास; प्रपन्न-भक्त-अर्थ-विधौ—शुद्ध भक्तों द्वारा माने जाने वाले विधि-विधानों में; समाहितः—समर्थ है; यत्—जो; लोक-पालैः—विभिन्न लोकों के प्रधानों द्वारा; त्वत्-अनुग्रहः—आपकी अहैतुकी कृपा;

अमरैः—देवताओं द्वारा; अलब्ध-पूर्वः—इसके पूर्व अप्राप्त; अपसदे—मुझ जैसे पतित व्यक्ति पर; असुरे—असुर वंश वाले; अर्पितः—अर्पित।

बलि महाराज ने कहा : आपको सादर नमस्कार करने के प्रयास में भी कैसा अद्‌भुत प्रभाव है! मैंने तो आपको अपना नमस्कार अर्पित करने का प्रयास ही किया था, किन्तु वह प्रयास शुद्ध भक्तों के प्रयासों के समान सफल सिद्ध हुआ। आपने मुझ पतित असुर पर जो अहैतुकी कृपा प्रदर्शित की है, वह देवताओं या लोकपालों को भी कभी प्राप्त नहीं हुई।

तात्पर्य : जब वामनदेव बलि महाराज के समक्ष प्रकट हुए तो उन्होंने वामनदेव को तुरन्त सादर नमस्कार करना चाहा, किन्तु शुक्राचार्य एवं अन्य असुर संगियों की उपस्थिति के कारण वे वैसा न कर पाये। लेकिन भगवान् इतने दयालु हैं कि यद्यपि बलि महाराज वास्तव में नमस्कार न कर पाये और, केवल मन में ही वैसा करने का प्रयास किया, तथापि भगवान् ने उन पर इतनी कृपा दिखला दी जितनी की देवता भी कभी आशा नहीं कर सकते थे। जैसाकि *भगवद्गीता* (२.४०) में पुष्टि की गई है—*स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्*—इस पथ पर थोड़ी सी प्रगति से भी अत्यन्त घातक भय से मनुष्य की रक्षा हो सकती है। भगवान् *भावग्राही जनार्दन* कहलाते हैं क्योंकि वे भक्त के भाव का सार मात्र ग्रहण कर लेते हैं। यदि भक्त निष्ठापूर्वक शरणागत बनता है, तो प्रत्येक हृदय में स्थित परमात्मा-स्वरूप भगवान् इसे तुरन्त समझ जाते हैं। इस प्रकार भले ही कोई भक्त ऊपर से पूर्ण सेवा न करे, किन्तु यदि वह अन्त:करण से निष्ठावान् एवं गम्भीर होता है, तो भगवान् उसकी सेवा का स्वागत करते हैं। इस तरह भगवान् *भावग्राही जनार्दन* कहलाते हैं क्योंकि वे मनुष्य की भक्तिमयी प्रवृत्ति के सार को ग्रहण करते हैं।

श्रीशुक उवाच

इत्युक्त्वा हरिमानत्य ब्रह्माणं सभवं ततः ।
विवेश सुतलं प्रीतो बलिर्मुक्तः सहासुरैः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति उक्त्वा—यह कहकर; हरिम्—हरि को; आनत्य—नमस्कार करके; ब्रह्माणम्—ब्रह्माजी को; स-भवम्—शिवजी के साथ; ततः—तत्पश्चात्; विवेश—प्रवेश किया; सुतलम्—सुतललोक में; प्रीतः—पूरी तरह प्रसन्न; बलिः—बलि महाराज ने; मुक्तः—इस प्रकार बन्धन से मुक्त; सह असुरैः—अपने असुर संगियों के साथ।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : इस प्रकार कहने के पश्चात् बलि महाराज ने सर्वप्रथम भगवान् हरि को और फिर ब्रह्माजी तथा शिवजी को नमस्कार किया। इस तरह वे नागपाश

(वरुणपाश) से मुक्त कर दिये गये और पूर्णतया सन्तुष्ट होकर सुतललोक में प्रविष्ट हुए।

एवमिन्द्राय भगवान्प्रत्यानीय त्रिविष्टपम् ।
पूरयित्वादितेः काममशासत्सकलं जगत् ॥ ४॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह; इन्द्राय—इन्द्र को; भगवान्—भगवान् ने; प्रत्यानीय—वापस देकर; त्रि-विष्टपम्—स्वर्ग लोकों में अपनी श्रेष्ठता; पूरयित्वा—पूरा करके; अदितेः—अदिति की; कामम्—इच्छा; अशासत्—शासन किया; सकलम्—पूर्ण; जगत्—ब्रह्माण्ड।

इस प्रकार इन्द्र को स्वर्गलोकों का स्वामित्व प्रदान करके तथा देवमाता अदिति की इच्छा पूरी करके भगवान् ब्रह्माण्ड के कार्यकलापों पर शासन करने लगे।

लब्धप्रसादं निर्मुक्तं पौत्रं वंशधरं बलिम् ।
निशाम्य भक्तिप्रवणः प्रह्लाद इदमब्रवीत् ॥ ५॥

शब्दार्थ

लब्ध-प्रसादम्—जिसे भगवान् का आशीर्वाद प्राप्त हुआ था; निर्मुक्तम्—बन्धन से छोड़ा गया; पौत्रम्—अपने नाती को; वंश-धरम्—वंशज; बलिम्—बलि महाराज को; निशाम्य—सुनकर; भक्ति-प्रवणः—भक्ति-भाव से पूरित; प्रह्लादः—प्रह्लाद महाराज ने; इदम्—यह; अब्रवीत्—कहा।

जब प्रह्लाद महाराज ने सुना कि उनका पौत्र तथा वंशज बलि महाराज किस तरह बन्धन से मुक्त किया गया है और उसे भगवान् का आशीर्वाद प्राप्त हुआ है, तो वे अत्यधिक प्रेमा-भक्ति के स्वर में इस प्रकार बोले।

श्रीप्रह्लाद उवाच
नेमं विरिञ्चो लभते प्रसादं
न श्रीर्न शर्वः किमुतापरेऽन्ये ।
यन्नोऽसुराणामसि दुर्गपालो
विश्वाभिवन्द्यैरभिवन्दिताङ्घ्रिः ॥ ६॥

शब्दार्थ

श्री-प्रह्लादः उवाच—प्रह्लाद महाराज ने कहा; न—नहीं; इमम्—यह; विरिञ्चः—ब्रह्माजी भी; लभते—प्राप्त कर सकता है; प्रसादम्—आशीर्वाद; न—न तो; श्रीः—लक्ष्मीजी; न—न तो; शर्वः—शिवजी; किम् उत—क्या कहा जाये; अपरे अन्ये—अन्य; यत्—जो आशीर्वाद; नः—हम; असुराणाम्—असुरों का; असि—हो; दुर्ग-पालः—पालक; विश्व-अभिवन्द्यैः—समस्त ब्रह्माण्ड में पूजित ब्रह्माजी तथा शिवजी जैसे महापुरुषों के द्वारा; अभिवन्दित-अङ्घ्रिः—जिनके चरणकमल पूज्य हैं।

प्रह्लाद महाराज ने कहा : हे भगवान्! आप विश्वपूज्य हैं, यहाँ तक कि ब्रह्माजी तथा शिवजी भी आपके चरणकमलों की पूजा करते हैं। इतने महान् होते हुए भी आपने कृपापूर्वक हम असुरों

की रक्षा करने का वचन दिया है। मेरा विचार है कि ब्रह्माजी, शिवजी या लक्ष्मीजी को भी कभी ऐसी दया प्राप्त नहीं हुई; तो अन्य देवताओं या सामान्य व्यक्तियों की बात ही क्या है!

तात्पर्य : *दुर्गपाल* शब्द महत्त्वपूर्ण है। *दुर्ग* का अर्थ है "जो सरलता से नहीं जाता।" सामान्यत: दुर्ग का अर्थ किला होता है, जिसमें आसानी से प्रवेश नहीं किया जा सकता। दुर्ग का अन्य अर्थ "कठिनाई" है। चूँकि भगवान् ने बलि महाराज तथा उनके संगियों की सभी संकटों से रक्षा करने का वचन दिया इसीलिए उन्हें यहाँ दुर्गपाल कहा गया है—अर्थात् वे भगवान् जो समस्त कष्टप्रद दशाओं में संरक्षण देते हैं।

यत्पादपद्ममकरन्दनिषेवणेन
ब्रह्मादय: शरणदाश्नुवते विभूती: ।
कस्माद्वयं कुसृतय: खलयोनयस्ते
दाक्षिण्यदृष्टिपदवीं भवत: प्रणीता: ॥ ७॥

शब्दार्थ

यत्—जिसके; पाद-पद्म—चरणकमल के; मकरन्द—मधु का; निषेवणेन—सेवा करने की मिठास को चखकर; ब्रह्म-आदय:—ब्रह्माजी जैसे महापुरुष; शरण-द—हे सबके परम आश्रय भगवान्; अश्नुवते—भोग करते हैं; विभूती:—आपके द्वारा दिये गये आशीर्वाद; कस्मात्—कैसे; वयम्—हम सब; कु-सृतय:—सारे धूर्त तथा चोर; खल-योनय:—ईर्ष्या रखने वाले वंश (असुर वंश) में उत्पन्न; ते—वे असुर; दाक्षिण्य-दृष्टि-पदवीम्—दयादृष्टि से प्राप्त पद; भवत:—आपका; प्रणीता:—प्राप्त किया है।.

हे सबके परम आश्रय! ब्रह्माजी जैसे महापुरुष आपके चरणकमलों की सेवा रूपी मधु का स्वाद चखने मात्र से सिद्धि को भोग पाते हैं। किन्तु हम लोगों पर, जो सारे के सारे धूर्त हैं और असुरों के ईर्ष्यालु वंश में जन्मे हैं आपकी कृपा किस प्रकार हो सकी? यह तो केवल इसीलिए सम्भव हो सका है क्योंकि आपकी कृपा अहैतुकी है।

चित्रं तवेहितमहोऽमितयोगमाया-
लीलाविसृष्टभुवनस्य विशारदस्य ।
सर्वात्मन: समदृशोऽविषम: स्वभावो
भक्तप्रियो यदसि कल्पतरुस्वभाव: ॥ ॥

शब्दार्थ

चित्रम्—अत्यन्त अद्भुत; तव ईहितम्—तुम्हारे सारे कार्यकलाप; अहो—ओह; अमित—असीम; योगमाया—आपकी आध्यात्मिक शक्ति की; लीला—लीला द्वारा; विसृष्ट-भुवनस्य—आपका, जिन्होंने समस्त ब्रह्माण्डों की सृष्टि की है; विशारदस्य—सभी प्रकार से पटु आपका; सर्व-आत्मन:—सर्वव्यापी भगवान् का; सम-दृश:—सबके प्रति समभाव रखने

वाला; अविषमः—बिना भेदभाव के; स्वभावः—यही आपका लक्षण है; भक्त-प्रियः—ऐसी परिस्थिति में आप भक्तों के अत्यन्त अनुकूल बन जाते हो; यत्—क्योंकि; असि—हो; कल्पतरु-स्वभावः—कल्पवृक्ष के गुण वाला।.

हे प्रभु! आपकी लीलाएँ आपकी अचिन्त्य आध्यात्मिक शक्ति द्वारा विचित्र ढंग से सम्पन्न होती हैं और अपने विकृत प्रतिबिम्ब अर्थात् भौतिक शक्ति (माया) द्वारा आपने सारे ब्रह्माण्डों की सृष्टि की है। आप सभी जीवों के परमात्मा के रूप में हर बात जानते हैं; अतएव निश्चय ही, आप सब पर समान दृष्टि रखते हैं। तो भी आप अपने भक्तों का पक्ष लेते हैं। यह पक्षपात नहीं है क्योंकि आपका यह गुण उस कल्पवृक्ष की तरह है, जो इच्छानुसार कोई भी वस्तु प्रदान करता है।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (९.२९) में भगवान् कहते हैं—

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।

ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

''न मैं किसी से द्वेष करता हूँ, न किसी का पक्ष लेता हूँ। मैं सब पर समभाव रखता हूँ। किन्तु जो भक्तिपूर्वक मेरी सेवा करता है, वह मेरा मित्र है, वह मुझमें है और मैं भी उसका मित्र हूँ।'' भगवान् निस्सन्देह सभी जीवों पर समदर्शी हैं, किन्तु भक्त जो भगवान् के चरणकमलों में पूर्णतया समर्पित हो जाता है अभक्त से भिन्न होता है। दूसरे शब्दों में, भगवान् से समान वर पाने के लिए हर व्यक्ति उनके चरणकमलों में शरण ले सकता है, किन्तु अभक्त ऐसा नहीं करते; अतएव उन्हें माया द्वारा उत्पन्न परिणाम भोगने पड़ते हैं। इसे हम एक साधारण उदाहरण द्वारा समझ सकते हैं। कोई राजा या सरकार समस्त नागरिकों पर समभाव रखती है। इसलिए यदि कोई व्यक्ति इस योग्य है कि उसे सरकार से विशेष कृपा प्राप्त हो और यदि उसे कोई ऐसी कृपा प्रदान की जाती है, तो इसका अर्थ यह नहीं होता कि सरकार पक्षपात करती है। जो यह जानता है कि अपने अधिकारी की कृपा कैसे प्राप्त की जाती है, वह ऐसी कृपा प्राप्त कर सकता है, किन्तु जो ऐसा नहीं जानता वह इसकी परवाह नहीं करता और उसे नहीं पाता। मनुष्यों की दो कोटियाँ होती हैं—असुर तथा सुर (देवता)। देवताओं को परमेश्वर के पद का पूर्ण ज्ञान रहता है; अतएव वे उनके आज्ञाकारी होते हैं, किन्तु असुरगण भगवान् की श्रेष्ठता जानते हुए भी उनकी सत्ता का जानबूझ कर उल्लंघन करते हैं। अतएव भगवान् जीवों की मनोवृत्ति के अनुसार भेदभाव बरतते हैं अन्यथा वे समदर्शी हैं। कल्पवृक्ष की तरह भगवान् उसकी सारी इच्छाएँ पूरी

करते हैं, जो उनकी शरण ग्रहण करता हैं, किन्तु जो शरण नहीं ग्रहण करता वह शरणागत से पृथक् होता है। जो भगवान् के चरणकमलों की शरण लेता है उस पर भगवान् कृपा करते हैं चाहे वह असुर हो या देवता।

श्रीभगवानुवाच
वत्स प्रह्लाद भद्रं ते प्रयाहि सुतलालयम् ।
मोदमानः स्वपौत्रेण ज्ञातीनां सुखमावह ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; वत्स—हे प्रिय पुत्र; प्रह्राद—हे प्रह्लाद महाराज; भद्रम् ते—तुम्हारा कल्याण हो; प्रयाहि—जाओ; सुतल-आलयम्—सुतल नामक स्थान को; मोदमानः—प्रसन्न मन से; स्व-पौत्रेण—अपने पौत्र (बलि महाराज) सहित; ज्ञातीनाम्—कुटुम्बियों तथा मित्रों का; सुखम्—सुख; आवह—भोग करो।

भगवान् ने कहा : हे मेरे प्रिय पुत्र प्रह्लाद! तुम्हारा मंगल हो। अभी तुम सुतल नामक स्थान को जाओ और वहाँ अपने पौत्र एवं अन्य कुटुम्बियों तथा मित्रों सहित सुख भोगो।

नित्यं द्रष्टासि मां तत्र गदापाणिमवस्थितम् ।
मद्दर्शनमहाह्लादध्वस्तकर्मनिबन्धनः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

नित्यम्—निरन्तर; द्रष्टा—देखने वाला; असि—हो; माम्—मुझको; तत्र—वहाँ (सुतललोक में); गदा-पाणिम्—हाथ में गदा लिए; अवस्थितम्—वहाँ स्थित; मत्-दर्शन—उस रूप में मेरा दर्शन करके; महा-आह्लाद—दिव्य आनन्द से; ध्वस्त—विनष्ट; कर्म-निबन्धनः—सकाम कर्मों का बन्धन।

भगवान् ने प्रह्लाद महाराज को आश्वासन दिया कि तुम वहाँ पर हाथों में शंख, चक्र, गदा तथा कमल लिए मेरे नित्य रूप का दर्शन कर सकोगे। वहाँ मेरे निरन्तर प्रत्यक्ष दर्शन से दिव्य आनन्द प्राप्त करके तुम और अधिक कर्म-बन्धन में नहीं पड़ोगे।

तात्पर्य : *कर्मबन्धन* में जन्म तथा मृत्यु का पिष्टपेषण होता है। मनुष्य इस तरह सकाम कर्म करता है कि वह अपने अगले जीवन के लिए एक दूसरा शरीर बना लेता है। जब तक वह सकाम कर्म में लिप्त रहता है उसे दूसरा भौतिक शरीर स्वीकार करना पड़ता है। भौतिक शरीरों की यह बारम्बार स्वीकृति संसार बन्धन कहलाती है। इसे रोकने के लिए भक्त को सलाह दी जाती है कि वह निरन्तर भगवान् का दर्शन करे। इसलिए कनिष्ठ अधिकारी या नवदीक्षित भक्त को प्रतिदिन मंदिर जाने और नियमित रूप से भगवान् के स्वरूप का दर्शन करने की सलाह दी जाती है। इस प्रकार नवदीक्षित भक्त कर्मबन्धन से छूट सकता है।

श्रीशुक उवाच

आज्ञां भगवतो राजन्प्रह्रादो बलिना सह ।
बाढमित्यमलप्रज्ञो मूर्ध्न्याधाय कृताञ्जलिः ॥ ११ ॥
परिक्रम्यादिपुरुषं सर्वासुरचमूपतिः ।
प्रणतस्तदनुज्ञातः प्रविवेश महाबिलम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; आज्ञाम्—आदेश; भगवतः—भगवान् का; राजन्—हे राजा (परीक्षित महाराज); प्रह्लादः—प्रह्लाद महाराज; बलिना सह—बलि महाराज के साथ-साथ; बाढम्—महोदय, आप जो कहते हैं ठीक है; इति—इस प्रकार; अमल-प्रज्ञः—विमल बुद्धि वाले प्रह्लाद महाराज; मूर्ध्नि—अपने सिर पर; आधाय—रखकर; कृत-अञ्जलिः—हाथ जोड़े; परिक्रम्य—प्रदक्षिणा करके; आदि-पुरुषम्—परम आदि पुरुष भगवान् को; सर्व-असुर-चमूपतिः—असुरों के समस्त नायकों के स्वामी; प्रणतः—नमस्कार करके; तत्-अनुज्ञातः—उनसे (वामन से) अनुमति पाकर; प्रविवेश—प्रवेश किया; महा-बिलम्—सुतल नामक लोक में।

श्रील शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा परीक्षित! समस्त असुर-पतियों के स्वामी प्रह्लाद महाराज ने बलि महाराज समेत हाथ जोड़कर भगवान् के आदेश को सिर पर चढ़ाया। भगवान् से हाँ कह कर, उनकी प्रदक्षिणा करके तथा उन्हें सादर प्रणाम करके उन्होंने सुतल नामक अधोलोक में प्रवेश किया।

अथाहोशनसं राजन्हरिर्नारायणोऽन्तिके ।
आसीनमृत्विजां मध्ये सदसि ब्रह्मवादिनाम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; आह—कहा; उशनसम्—शुक्राचार्य से; राजन्—हे राजा; हरिः—भगवान् ने; नारायणः—स्वामी; अन्तिके—निकट ही; आसीनम्—बैठे हुए; ऋत्विजाम् मध्ये—सभी पुरोहितों की टोली में; सदसि—सभा में; ब्रह्म-वादिनाम्—वैदिक नियमों के पालनकर्ताओं की।

तत्पश्चात् भगवान् हरि या नारायण ने शुक्राचार्य को सम्बोधित किया जो पुरोहितों (ब्रह्म, होता, उद्‌गाता तथा अध्वर्यु) के निकट ही सभा में बैठे थे। हे महाराज परीक्षित! ये सभी पुरोहित ब्रह्मवादी थे अर्थात् यज्ञ सम्पन्न करने के लिए वैदिक सिद्धान्तों का पालन करने वाले थे।

ब्रह्मन्सन्तनु शिष्यस्य कर्मच्छिद्रं वितन्वतः ।
यत्तत्कर्मसु वैषम्यं ब्रह्मदृष्टं समं भवेत् ॥ १४॥

शब्दार्थ

ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; सन्तनु—कृपया वर्णन करें; शिष्यस्य—अपने शिष्य का; कर्म-छिद्रम्—सकाम कर्म के दोष; वितन्वतः—यज्ञकर्ता के; यत् तत्—जो; कर्मसु—कार्यों में; वैषम्यम्—त्रुटि; ब्रह्म-दृष्टम्—ब्राह्मणों की दृष्टि में; समम्—सम; भवेत्—हो जाती है।

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ शुक्राचार्य! आप यज्ञ में लगे अपने शिष्य बलि महाराज का अपराध या कमी बतलाइये। इस अपराध का निराकरण योग्य ब्राह्मणों की उपस्थिति में निर्णय लेने पर हो जाएगा।

तात्पर्य : जब बलि महाराज तथा प्रह्लाद महाराज सुतललोक के लिए रवाना हो गये तो भगवान् विष्णु ने शुक्राचार्य से पूछा कि बलि महाराज में वह कौन सा अपराध था जिसके कारण उन्होंने उन्हें शाप दे दिया था। यह तर्क किया जा सकता है कि जब बलि महाराज उस स्थान से चले गये थे तो उनके दोषों का निर्णय कैसे हो सकता था? इसके उत्तर में भगवान् विष्णु ने शुक्राचार्य को बताया कि वहाँ बलि महाराज की उपस्थिति आवश्यक नहीं थी क्योंकि ब्राह्मणों की उपस्थिति में निर्णय हो जाने पर उनके सारे दोषों एवं कमियों का निराकरण हो जायेगा। जैसाकि अगले श्लोक में बताया गया है, बलि महाराज का कोई दोष न था; शुक्राचार्य ने वृथा ही उन्हें शाप दे दिया था। फिर भी बलि महाराज के लिए यह अच्छा ही हुआ। शुक्राचार्य के शाप से उनकी सारी सम्पत्ति जाती रही जिसका परिणाम यह हुआ कि भगवान् ने उनकी भक्ति में प्रगाढ़ श्रद्धा के कारण उन पर कृपा की। निस्सन्देह, भक्त को सकाम कर्मों में लगने की आवश्यकता नहीं पड़ती। जैसा कि शास्त्र का कथन है—*सर्वार्हणम् अच्युतेज्या* (*भागवत* ४.३१.१४)। अच्युत भगवान् की पूजा करके हर एक को प्रसन्न किया जा सकता है। चूँकि बलि महाराज ने भगवान् को प्रसन्न कर लिया था अतएव उनके यज्ञ करने में कोई कमी नहीं थी।

श्रीशुक्र उवाच
कुतस्तत्कर्मवैषम्यं यस्य कर्मेश्वरो भवान् ।
यज्ञेशो यज्ञपुरुषः सर्वभावेन पूजितः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक्रः उवाच—श्री शुक्राचार्य ने कहा; कुतः—कहाँ है; तत्—उसका (बलि का); कर्म-वैषम्यम्—सकाम कर्म करने में त्रुटि; यस्य—जिसका (बलि का); कर्म-ईश्वरः—सारे सकाम कर्मों के स्वामी; भवान्—आप; यज्ञ-ईशः—सारे यज्ञों के भोक्ता; यज्ञ-पुरुषः—आप ही वे पुरुष हैं जिनकी प्रसन्नता के लिए सारे यज्ञ किये जाते हैं; सर्व-भावेन—सभी प्रकार से; पूजितः—पूजित होकर।

शुक्राचार्य ने कहा : हे प्रभु! आप यज्ञ के भोक्ता हैं और सभी यज्ञों को सम्पन्न कराने वाले हैं। आप यज्ञपुरुष हैं अर्थात् आप ही वे पुरुष हैं जिनके लिए सारे यज्ञ किये जाते हैं। यदि किसी ने आपको पूरी तरह संतुष्ट कर लिया तो फिर उसके यज्ञ करने में त्रुटियों अथवा दोषों के होने

का अवसर ही कहाँ रह जाता है?

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (५.२९) में भगवान् कहते हैं— *भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोक महेश्वरम्*—परम स्वामी भगवान् ही वे असली पुरुष हैं, जिन्हें यज्ञों के द्वारा संतुष्ट करना होता है। *विष्णु पुराण* (३..९) में कहा गया है—

वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान्।

विष्णुराराध्यते पन्था नन्यत् तत्तोषकारणम्॥

समस्त वैदिक कर्मकाण्डीय यज्ञ यज्ञपुरुष भगवान् विष्णु को तुष्ट करने के उद्देश्य से सम्पन्न किये जाते हैं। समाज के आश्रम—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास—भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने के लिए है। इस वर्णाश्रम प्रणाली के अनुसार कर्म करने को *वर्णाश्रमाचरण* कहते हैं। *श्रीमद्भागवत* (१.२.१३) में सूत गोस्वामी कहते हैं—

अतः पुम्भिर्द्विजश्रेष्ठा वर्णाश्रमविभागशः।

स्वनुष्ठितस्य धर्मस्य संसिद्धिर्हरितोषणम्॥

"हे द्विजश्रेष्ठ! अतएव यह निष्कर्ष निकला जाता है कि सर्वोच्च सिद्धि की प्राप्ति भगवान् की तुष्टि है, जो वर्णाश्रम धर्म के विभाजन के अनुसार अपने नियत कर्तव्यों को करने से प्राप्त की जा सकती है।" हर वस्तु भगवान् को प्रसन्न करने के निमित्त है। अतएव बलि महाराज में कोई दोष न था क्योंकि उन्होंने भगवान् को प्रसन्न कर लिया था और शुक्राचार्य ने स्वीकार किया कि उनको शाप देना ठीक नहीं था।

मन्त्रतस्तन्त्रतश्छिद्रं देशकालार्हवस्तुतः ।
सर्वं करोति निश्छिद्रमनुसङ्कीर्तनं तव ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

मन्त्रतः—वैदिक मंत्रों का गलत उच्चारण करने से; तन्त्रतः—कर्मकाण्ड पालन के लिए अधूरे ज्ञान से; छिद्रम्—दोष; देश—देश; काल—तथा समय; अर्ह—तथा पात्र; वस्तुतः—तथा सामग्री; सर्वम्—ये सब; करोति—बनाता है; निश्छिद्रम्—त्रुटिहीन; अनुसङ्कीर्तनम्—पवित्र नाम का निरन्तर कीर्तन; तव—आपका।.

मंत्रों के उच्चारण तथा कर्मकाण्ड के पालन में त्रुटियाँ हो सकती हैं। देश, काल, व्यक्ति तथा सामग्री के विषय में भी कमियाँ रह सकती हैं। किन्तु भगवन्! यदि आपके पवित्र नाम का कीर्तन किया जाए तो हर वस्तु दोषरहित बन जाती है।

तात्पर्य : श्री चैतन्य महाप्रभु ने संस्तुति की है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

''इस कलह तथा दिखावे के युग में उद्धार का केवल एक ही साधन है और वह है भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन। इसके अतिरिक्त अन्य कोई रास्ता नहीं है। अन्य कोई रास्ता नहीं है। अन्य कोई रास्ता नहीं है।'' (*बृहन्नारदीय पुराण* ३.१२६)। इस कलियुग में वैदिक क र्मकाण्डों या यज्ञों को पूरी तरह से सम्पन्न कर सकना अत्यन्त दुष्कर है। शायद ही कोई वैदिक मंत्रों का ठीक से उच्चारण कर सकता हो या वैदिक अनुष्ठानों के लिए सामग्री का संग्रह कर सकता हो। इसलिए इस युग के लिए जिस यज्ञ की संस्तुति की गई है, वह है सङ्कीर्तन—अर्थात् भगवान् के पवित्र नाम का निरन्तर कीर्तन। *यज्ञैः सङ्कीर्तनः प्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः* (*भागवत* ११.५.२९)। जो लोग बुद्धिमान् हैं और जिनके पास अच्छी दिमागी शक्ति है, वे वैदिक यज्ञों को सम्पन्न करने में समय न गँवाकर भगवान् के पवित्र नामका कीर्तन करें और इस तरह यज्ञ को अच्छी तरह पूरा करें। मैंने देखा है कि अनेक धार्मिक नेताओं को यज्ञ करने एवं अपूर्ण यज्ञ की सम्पन्नता में लाखों रुपया खर्च करने की लत है। यह उन लोगों के लिए शिक्षा है, जो ऐसे अपूर्ण यज्ञ व्यर्थ ही सम्पन्न करते हैं। हमें श्री चैतन्य महाप्रभु की सलाह ग्रहण करनी चाहिए (*यज्ञैः सङ्कीर्तन-प्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः*)। यद्यपि शुक्राचार्य कट्टर कर्मकाण्डी ब्राह्मण थे, किन्तु उन्होंने भी स्वीकार किया है—*निश्छिद्रम् अनुसङ्कीर्तनं तव*—हे भगवान्! आपके पवित्र नाम का निरन्तर कीर्तन सब कुछ पूर्ण कर देता है। कलियुग में वैदिक कर्मकाण्डों को पहले की तरह पूरी तरह सम्पन्न नहीं किया जा सकता। इसलिए श्रील जीव गोस्वामी ने संस्तुति की है कि यद्यपि हर प्रकार का आध्यात्मिक कर्म करते समय सभी सिद्धान्तों के पालन में पूरी सतर्कता बरतनी चाहिए, विशेषतया दैव पूजा में, फिर भी कुछ न कुछ त्रुटि रह सकती है और मनुष्य को चाहिए कि वह इस कमी को पूरा करने के लिए भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करें। इसलिए हम अपने कृष्णभावनामृत आन्दोलन में सभी कर्मों में हरे कृष्ण मंत्र के कीर्तन पर विशेष बल देते हैं।

तथापि वदतो भूमन्करिष्याम्यनुशासनम् ।

एतच्छ्रेयः परं पुंसां यत्तवाज्ञानुपालनम् ॥ १७॥

शब्दार्थ

तथापि—यद्यपि बलि महाराज का कोई दोष न था, तो भी; वदतः—आपके आदेश के कारण; भूमन्—हे परम; करिष्यामि—मैं करूँगा; अनुशासनम्—क्योंकि यह आपका आदेश है; एतत्—यह; श्रेयः—शुभ; परम्—परम; पुंसाम्—सभी मनुष्यों का; यत्—क्योंकि; तव आज्ञा-अनुपालनम्—आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए।

हे भगवान् विष्णु! तो भी मैं आपके आदेशानुसार आपकी आज्ञा का पालन करूँगा क्योंकि आपके आदेश का पालन करना परम शुभ है और हर एक का सर्वोपरि कर्तव्य है।

श्रीशुक उवाच
प्रतिनन्द्य हरेराज्ञामुशना भगवानिति ।
यज्ञच्छिद्रं समाधत्त बलेर्विप्रर्षिभिः सह ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; प्रतिनन्द्य—नमस्कार करके; हरेः—भगवान् की; आज्ञाम्—आज्ञा को; उशनाः—शुक्राचार्य; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; इति—इस प्रकार; यज्ञ-छिद्रम्—यज्ञ करने में त्रुटियाँ; समाधत्त—पूरा करने का निश्चय किया; बलेः—बलि महाराज का; विप्र-ऋषिभिः—योग्यब्राह्मणों के; सह—साथ।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : इस प्रकार परम शक्तिशाली शुक्राचार्य ने आदरपूर्वक भगवान् की आज्ञा स्वीकार कर ली। उन्होंने श्रेष्ठ ब्राह्मणों के साथ बलि महाराज द्वारा सम्पन्न यज्ञ की त्रुटियों को पूरा करना शुरू कर दिया।

एवं बलेर्महीं राजन्भिक्षित्वा वामनो हरिः ।
ददौ भ्रात्रे महेन्द्राय त्रिदिवं यत्परैर्हृतम् ॥ १९॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; बलेः—बलि महाराज से; महीम्—भूमि को; राजन्—हे राजा परीक्षित; भिक्षित्वा—माँगकर; वामनः—भगवान् वामनदेव; हरिः—भगवान् ने; ददौ—दे दिया; भ्रात्रे—अपने भाई को; महा-इन्द्राय—स्वर्ग के राजा इन्द्र को; त्रिदिवम्—देवलोक; यत्—जो; परैः—अन्यों द्वारा; हृतम्—छीन लिया गया था।

हे राजा परीक्षित! इस प्रकार भिक्षा के रूप में बलि महाराज की सारी भूमि लेकर भगवान् वामनदेव ने उसे अपने भाई इन्द्र को दे दिया जिसे इन्द्र के शत्रु ने ले लिया था।

प्रजापतिपतिर्ब्रह्मा देवर्षिपितृभूमिपैः ।
दक्षभृग्वङ्गिरोमुख्यैः कुमारेण भवेन च ॥ २०॥
कश्यपस्यादितेः प्रीत्यै सर्वभूतभवाय च ।
लोकानां लोकपालानामकरोद्वामनं पतिम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

प्रजापति-पतिः—सारे प्रजापतियों के स्वामी; ब्रह्मा—ब्रह्माजी ने; देव—देवताओं सहित; ऋषि—सन्त पुरुषों के साथ; पितृ—पितृलोक के निवासियों के साथ; भूमिपैः—मनुओं के साथ; दक्ष—दक्ष; भृगु—भृगु मुनि; अङ्गिरः—अंगिरा मुनि के साथ; मुख्यैः—विभिन्न लोकों के प्रधानों के साथ; कुमारेण—कार्तिकेय के साथ; भवेन—शिवजी के साथ; च—भी; कश्यपस्य—कश्यप मुनि की; अदितेः—अदिति की; प्रीत्यै—प्रसन्नता के लिए; सर्व-भूत-भवाय—समस्त जीवों के मंगल हेतु; च—भी; लोकानाम्—सारे लोकों के; लोक-पालानाम्—समस्त लोकों के प्रधान पुरुषों का; अकरोत्—बना दिया; वामनम्—वामन को; पतिम्—परम नेता।

ब्रह्माजी ने (जो राजा दक्ष तथा अन्य सभी प्रजापतियों के स्वामी हैं) सारे देवताओं, महान् सन्तों, पितृलोक के वासियों, मनुओं, मुनियों और दक्ष, भृगु तथा अंगिरा जैसे नायकों एवं कार्तिकेय तथा शिवजी सहित भगवान् वामनदेव को हर एक के संरक्षक के रूप में ग्रहण किया। यह सब उन्होंने कश्यप मुनि तथा उनकी पत्नी अदिति की प्रसन्नता के लिए एवं ब्रह्माण्ड के समस्त वासियों तथा उनके विभिन्न नायकों के कल्याण के लिए किया।

वेदानां सर्वदेवानां धर्मस्य यशसः श्रियः ।
मङ्गलानां व्रतानां च कल्पं स्वर्गापवर्गयोः ॥ २२॥
उपेन्द्रं कल्पयां चक्रे पतिं सर्वविभूतये ।
तदा सर्वाणि भूतानि भृशं मुमुदिरे नृप ॥ २३॥

शब्दार्थ

वेदानाम्—समस्त वेदों की (रक्षा के लिए); सर्व-देवानाम्—सारे देवताओं का; धर्मस्य—सारे धर्मों का; यशसः—सारे यश का; श्रियः—समस्त ऐश्वर्यों का; मङ्गलानाम्—सारे कल्याण का; व्रतानाम् च—तथा सारे व्रतों का; कल्पम्—अत्यन्त पटु; स्वर्ग-अपवर्गयोः—स्वर्ग जाने या भवबन्धन से मुक्ति के लिए; उपेन्द्रम्—भगवान् वामनदेव को; कल्पयाम् चक्रे—यह योजना बनाई; पतिम्—स्वामी को; सर्व-विभूतये—सभी कार्यों के लिए; तदा—उस समय; सर्वाणि—सभी; भूतानि—जीवों को; भृशम्—अत्यधिक; मुमुदिरे—प्रसन्न हो गये; नृप—हे राजा।

हे राजा परीक्षित! इन्द्र को सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का राजा माना जाता था, किन्तु ब्रह्माजी समेत अन्य देवता उपेन्द्र अर्थात् वामनदेव को वेदों, धर्म, यश, ऐश्वर्य, मंगल, व्रत, स्वर्गलोक तक उन्नति तथा मुक्ति के रक्षक के रूप मे चाहते थे। इसलिए उन्होंने उपेन्द्र अर्थात् भगवान् वामनदेव, को सबका परम स्वामी स्वीकार कर लिया। इस निर्णय से सारे जीव अत्यधिक प्रसन्न हो गए।

ततस्त्विन्द्रः पुरस्कृत्य देवयानेन वामनम् ।
लोकपालैर्दिवं निन्ये ब्रह्मणा चानुमोदितः ॥ २४॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; तु—लेकिन; इन्द्रः—स्वर्ग का राजा; पुरस्कृत्य—आगे रखकर; देव-यानेन—देवताओं द्वारा प्रयुक्त वायुयान द्वारा; वामनम्—वामनदेव को; लोक-पालैः—अन्य सभी लोकों के प्रधानों द्वारा; दिवम्—स्वर्ग को; निन्ये—ले आया; ब्रह्मणा—ब्रह्माजी द्वारा; च—भी; अनुमोदितः—अनुमति प्राप्त।

तत्पश्चात् स्वर्गलोकों के सारे प्रधानों सहित स्वर्ग के राजा, इन्द्र, वामनदेव को अपने समक्ष

करके ब्रह्मा की अनुमति से, उन्हें दैवी वायुयान में बैठा कर स्वर्गलोक ले आये।

प्राप्य त्रिभुवनं चेन्द्र उपेन्द्रभुजपालितः ।
श्रिया परमया जुष्टो मुमुदे गतसाध्वसः ॥ २५॥

शब्दार्थ

प्राप्य—प्राप्त करके; त्रि-भुवनम्—तीनों लोक; च—भी; इन्द्रः—स्वर्ग के राजा ने; उपेन्द्र-भुज-पालितः—उपेन्द्र अर्थात् वामनदेव के बाहुबल से रक्षित होकर; श्रिया—ऐश्वर्य के द्वारा; परमया—परम; जुष्टः—सेवा किया गया; मुमुदे—भोग किया; गत-साध्वसः—असुरों के भय से रहित।

इस प्रकार भगवान् वामनदेव की बाहुओं से रक्षित होकर स्वर्ग के राजा इन्द्र ने तीनों लोकों का अपना राज्य पुनः प्राप्त कर लिया और निर्भय होकर तथा पूर्णतया सन्तुष्ट होकर वे अपने परम ऐश्वर्यशाली पद पर पुनः प्रतिष्ठित कर दिए गए

ब्रह्मा शर्वः कुमारश्च भृग्वाद्या मुनयो नृप ।
पितरः सर्वभूतानि सिद्धा वैमानिकाश्च ये ॥ २६॥
सुमहत्कर्म तद्विष्णोर्गायन्तः परमद्भुतम् ।
धिष्ण्यानि स्वानि ते जग्मुरदितिं च शशंसिरे ॥ २७॥

शब्दार्थ

ब्रह्मा—ब्रह्माजी; शर्वः—शिवजी; कुमारः च—तथा कार्तिकेय; भृगु-आद्याः—सप्तर्षियों में से एक भृगुमुनि आदि; मुनयः—मुनिगण; नृप—हे राजा; पितरः—पितृलोक के निवासी; सर्व-भूतानि—अन्य जीव; सिद्धाः—सिद्धलोक के निवासी; वैमानिकाः च—वायुयान द्वारा आकाश में कहीं भी विचरण कर सकने वाले मनुष्य; ये—जो लोग; सुमहत्—अत्यधिक प्रशंसनीय; कर्म—कार्यकलाप; तत्—वे सब (कर्म); विष्णोः—भगवान् विष्णु द्वारा किये गये; गायन्तः—महिमागायन करते हुए; परम् अद्भुतम्—असामान्य तथा अद्भुत; धिष्ण्यानि—लोकों को; स्वानि—अपने-अपने; ते—वे सब; जग्मुः—चले गये; अदितिम् च—अदिति को भी; शशंसिरे—भगवान् के इन कार्यकलापों की प्रशंसा की।

ब्रह्मा, शिव, कार्तिकेय, महर्षि भृगु, अन्य सन्त, पितृलोक के वासी तथा सिद्धलोक के निवासी एवं वायुयान द्वारा बाह्य आकाश की यात्रा करने वाले जीवों के समेत वहाँ पर उपस्थित सारे मनुष्यों ने भगवान् वामनदेव के असामान्य कार्यों की महिमा का गायन किया। हे राजा! भगवान् का कीर्तन एवं उनकी महिमा का गायन करते हुए वे सभी अपने-अपने स्वर्ग लोकों को लौट गये। उन्होंने अदिति के पद की भी प्रशंसा की।

सर्वमेतन्मयाख्यातं भवतः कुलनन्दन ।
उरुक्रमस्य चरितं श्रोतॄणामघमोचनम् ॥ २॥

शब्दार्थ

सर्वम्—सब; एतत्—ये घटनाएँ; मया—मेरे द्वारा; आख्यातम्—वर्णित की गई हैं; भवतः—आपकी; कुल-नन्दन—अपने वंश के आनन्द, हे महाराज परीक्षित; उरुक्रमस्य—भगवान् के; चरितम्—कार्यकलापों को; श्रोतृणाम्—श्रोताओं का; अघ-मोचनम्—पापों के फलों को नष्ट करने।

हे महाराज परीक्षित! हे अपने वंश के आनन्द! मैंने अब तुमसे भगवान् वामनदेव के अद्भुत कार्यों के विषय में सारा वर्णन कर दिया है। जो लोग इसे सुनते हैं, वे निश्चित रूप से पापकर्मों के सभी फलों से मुक्त हो जाते हैं।

पारं महिम्न उरुविक्रमतो गृणानो
य: पार्थिवानि विममे स रजांसि मर्त्य: ।
किं जायमान उत जात उपैति मर्त्य
इत्याह मन्त्रदृगृषि: पुरुषस्य यस्य ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

पारम्—माप; महिम्नः—यश की; उरुविक्रमतः—अद्भुत कर्म करने वाले भगवान् का; गृणानः—गिन सकता है; यः—जो व्यक्ति; पार्थिवानि—सम्पूर्ण पृथ्वी लोक का; विममे—गिन सकता है; सः—वह; रजांसि—कण; मर्त्यः—मरणशील मनुष्य; किम्—क्या; जायमानः—भविष्य में जन्म लेकर; उत—या तो; जातः—उत्पन्न; उपैति—कर सकता है; मर्त्यः—मरणशील व्यक्ति; इति—इस प्रकार; आह—कहा; मन्त्र-दृक्—जो वैदिक मंत्रों को पहले से ही देख सकते थे; ऋषिः—वसिष्ठ मुनि; पुरुषस्य—परम पुरुष का; यस्य—जिसका।

मरणशील व्यक्ति भगवान् त्रिविक्रम अर्थात् विष्णु की महिमा की थाह नहीं पा सकता जिस प्रकार कि वह सम्पूर्ण पृथ्वी लोक के कणों की संख्या नहीं जान सकता। कोई भी व्यक्ति जिसने जन्म धारण किया है या जो जन्म लेने वाला है ऐसा नहीं कर सकता। इसका गायन महर्षि वसिष्ठ ने किया है।

तात्पर्य : वसिष्ठ मुनि ने भगवान् विष्णु के विषय में एक मंत्र दिया है—*न ते विष्णोर्जायमानो न जातो महिम्नः पारम् अनन्तम् आप।* कोई भी व्यक्ति भगवान् विष्णु के असामान्य महिमायुक्त कार्यकलापों की कल्पना नहीं कर सकता। दुर्भाग्यवश तथाकथित विज्ञानी जो किसी भी क्षण काल के ग्रास बन सकते हैं, चिन्तन द्वारा ब्रह्माण्ड की अद्भुत सृष्टि को समझने का प्रयास करते हैं। यह मूर्खतापूर्ण प्रयास है। बहुत काल पूर्व वसिष्ठ मुनि ने कहा था कि ऐसा कोई नहीं है, जो भूतकाल में भगवान् की महिमाओं को माप सका हो, न ही कोई भविष्य में ऐसा कर सकेगा। मनुष्य को भगवान् की सृष्टि के यशस्वी कार्यों को ही देखकर सन्तुष्ट मात्र रहना चाहिए। इसीलिए भगवान् *भगवद्गीता* (१०.४२) में कहते हैं—*विष्टभ्याहम् इदं कृत्सनम् एकांशेन स्थितो जगत्*—मैं अपने एकाकी अंश से इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त रहता हूँ और इसका पालन करता हूँ। भौतिक जगत में असंख्य ब्रह्माण्ड

हैं, उनमें से प्रत्येक में असंख्य लोक हैं, जो भगवान् की भौतिक शक्ति के प्रतिफल माने जाते हैं। फिर भी यह ईश्वर की सृष्टि का चतुर्थांश ही होता है। शेष तीन चौथाई सृष्टि आध्यात्मिक जगत है। तथाकथित विज्ञानी एक ही ब्रह्माण्ड के अनन्त लोकों में से चन्द्रमा तथा मंगल तक को नहीं समझ पाते, किन्तु वे भगवान् की सृष्टि तथा उनकी असाधारण शक्ति की अवहेलना करने का प्रयास करते हैं। ऐसे लोगों को सनकी कहा गया है। *नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म* (*भागवत* ५.५.४)। ऐसे सनकी लोग भगवान् उरुक्रम के यशस्वी कार्यों को नकारने में व्यर्थ ही समय, शक्ति तथा धन का अपव्यय करते हैं।

य इदं देवदेवस्य हरेरद्भुतकर्मणः ।
अवतारानुचरितं शृण्वन्याति परां गतिम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

यः—जो कोई; इदम्—यह; देव-देवस्य—भगवान् का, जो देवताओं द्वारा पूज्य हैं; हरेः—भगवान् कृष्ण या हरि का; अद्भुत-कर्मणः—जिनके कार्यकलाप अद्भुत हैं; अवतार-अनुचरितम्—उनके विभिन्न अवतारों में सम्पन्न कार्यकलाप; शृण्वन्—सुनते हुए; याति—जाता है; पराम् गतिम्—परम सिद्धि को, भगवद्धाम को।

यदि कोई भगवान् के विभिन्न अवतारों के असामान्य कार्यकलापों का श्रवण करता है, तो वह निश्चित रूप से स्वर्गलोक को भेजा जाता है या भगवान् के धाम को वापस जाता है।

क्रियमाणे कर्मणीदं दैवे पित्र्येऽथ मानुषे ।
यत्र यत्रानुकीर्त्येत तत्तेषां सुकृतं विदुः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

क्रियमाणे—सम्पन्न हो जाने पर; कर्मणि—अनुष्ठान का; इदम्—वामनदेव के गुणों का यह विवरण; दैवे—देवताओं को प्रसन्न करने के लिए; पित्र्ये—या पूर्वजों को प्रसन्न करने यथा श्राद्ध उत्सव में; अथ—या तो; मानुषे—मानव समाज के आनन्द के लिए यथा विवाहों में; यत्र—जहाँ भी; यत्र—जब भी; अनुकीर्त्येत—वर्णन किया जाता है; तत्—वह; तेषाम्—उनके लिए; सुकृतम्—शुभ; विदुः—हर एक को समझना चाहिए।

जब भी कर्मकाण्ड के दौरान, चाहे देवताओं को प्रसन्न करने के लिए या पितृलोक के पितरों को प्रसन्न करने के लिए कोई उत्सव किया जाए, या विवाह जैसा सामाजिक कृत्य मनाने के लिए वामनदेव के कार्यकलापों का वर्णन हो, तो उस उत्सव को परम मंगल-मय समझना चाहिए।

तात्पर्य : उत्सव तीन प्रकार के होते हैं—भगवान् या देवताओं को प्रसन्न करने के लिए उत्सव, सामाजिक उत्सव यथा विवाह तथा जन्मदिन एवं पितरों को प्रसन्न करने वाले उत्सव यथा श्राद्ध। इन सभी उत्सवों में विविध कार्यों पर प्रचुर धन खर्च किया जाता है, किन्तु यहाँ पर यह सुझाव दिया गया

है कि यदि इनके साथ-साथ वामनदेव के अद्भुत कार्यों का पाठ होता रहे तो निश्चित रूप से वह उत्सव सफल तथा त्रुटिरहित होगा।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कन्ध के अन्तर्गत ''देवताओं को स्वर्गलोकों की पुनर्प्राप्ति '' नामक तेईसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter चौबीस

भगवान् का मत्स्यावतार

इस अध्याय में भगवान् के मत्स्यावतार के वर्णन और महाराज सत्यव्रत के एक बाढ़ से बचने का उल्लेख हुआ है।

भगवान् स्वांश तथा विभिन्नांश द्वारा अपना विस्तार करते हैं। जैसाकि *भगवद्गीता* (४.) में कहा गया है—*परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्*—भगवान् इस लोक में साधुओं या भक्तों की रक्षा करने और दुष्टों या अभक्तों का विनाश करने के लिए प्रकट होते हैं। वे विशेषतया गायों, ब्राह्मणों, देवताओं, भक्तों तथा वैदिक धर्म की रक्षा करने के लिए अवतरित होते हैं। इस प्रकार वे विभिन्न रूपों में प्रकट होते हैं—कभी मछली के रूप में, कभी शूकर के रूप में, तो कभी नृसिंहदेव या वामनदेव के रूप में। किन्तु किसी भी रूप या अवतार में वे प्रकृति के गुणों वाले वातावरण में आने पर भी कभी इनसे प्रभावित नहीं होते। यह उनकी परम नियामक शक्ति का द्योतक है। यद्यपि वे भौतिक वातावरण में आते हैं, किन्तु माया उन्हें छू तक नहीं पाती। अतएव उन पर कोई भी भौतिक गुण किसी भी मात्रा में लागू नहीं हो सकते।

एक बार पिछले कल्प के अन्त में हयग्रीव नामक एक असुर ने प्रलय के समय वैदिक ज्ञान को ब्रह्माजी से छीनना चाहा। अत: भगवान् ने स्वायंभुव मनु के काल के आरम्भ में मत्स्यावतार धारण करके वेदों की रक्षा की। चाक्षुष मनु के काल में सत्यव्रत नाम का एक राजा हुआ जो अत्यन्त धर्मात्मा शासक था। उसकी रक्षा हेतु भगवान् ने दूसरी बार मत्स्यावतार धारण किया । बाद में यही राजा सत्यव्रत सूर्यदेव का पुत्र बना और श्राद्धदेव कहलाया। भगवान् ने इन्हें मनु के रूप में स्थापित किया।

भगवान् की कृपा पाने के लिए राजा सत्यव्रत ने केवल जल पीकर जीवित रहने की तपस्या प्रारम्भ

की। एक बार कृतमाला नदी के तट पर तपस्या करते हुए जब वे अपनी अंजलि से जल दे रहे थे तो उन्हें एक छोटी सी मछली मिली। मछली ने राजा से अपनी रक्षा के लिए सुरक्षित स्थान में रखे जाने की विनती की। यद्यपि राजा को पता नहीं था कि मछली साक्षात् भगवान् है, किन्तु उसने राजा होने के नाते उसकी रक्षा की और उसे एक जलपात्र में सुरक्षित रख दिया। इस मछली ने भगवान् होने के कारण राजा को अपनी शक्ति दिखलानी चाही। अत: उसने अपने शरीर का इस तरह विस्तार किया कि वह जलपात्र में न रखी जा सकी। तब राजा ने इस मछली को एक बड़े कुएँ में डाल दिया, किन्तु कुँआ भी उसके लिए छोटा पड़ गया। तब राजा ने उसे एक झील में डाल दिया, किन्तु वह भी छोटी पड़ गई। अन्त में राजा ने इस मछली को समुद्र में डाल दिया, किन्तु समुद्र भी उसे अपने में समा न पाया। तब राजा समझ गया कि मछली भगवान् के अतिरिक्त और कोई नहीं है; अतएव उसने भगवान् से अपने मत्स्यावतार का वर्णन करने के लिए प्रार्थना की। भगवान् इस राजा पर प्रसन्न हो गये और उन्होंने राजा को बतलाया कि एक सप्ताह के भीतर सारे विश्व में बाढ़ आयेगी और यह मछली ऋषियों, वनस्पतियों, बीजों तथा अन्य जीवों समेत राजा की रक्षा अपने नथुने में बँधी नाव के द्वारा करेगी। यह कहकर भगवान् अदृश्य हो गये। राजा सत्यव्रत ने भगवान् को सादर प्रणाम किया और वे उनके ध्यान में लगे रहे। समय आने पर प्रलय आई और राजा ने एक नाव को निकट आते देखा। उसमें वह विद्वान ब्राह्मणों एवं ऋषियों समेत बैठ गया और भगवान् की पूजा करने के लिए उनकी स्तुति करने लगा। भगवान् सबों के हृदय में स्थित हैं। इस तरह उन्होंने महाराज सत्यव्रत तथा ऋषियों को अपने अन्त:स्थल से वैदिक ज्ञान की शिक्षा दी। अगले जन्म में सत्यव्रत ने वैवस्वत मनु के रूप में जन्म लिया जिसका वर्णन *भगवद्गीता* में हुआ है—*विवस्वान् मनवे प्राह*—सूर्यदेव ने *भगवद्गीता* का विज्ञान अपने पुत्र मनु को बतलाया। विवस्वान् का पुत्र होने के कारण यह मनु वैवस्वत मनु कहलाता है।

श्रीराजोवाच
भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि हरेरद्भुतकर्मण: ।
अवतारकथामाद्यां मायामत्स्यविडम्बनम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा परीक्षित ने कहा; **भगवन्—**हे शक्तिमान; **श्रोतुम्—**सुनने की; **इच्छामि—**इच्छा करता हूँ; **हरे:—**भगवान् हरि के; **अद्भुत-कर्मण:—**जिनके कार्यकलाप अद्भुत हैं; **अवतार-कथाम्—**अवतार की लीलाएँ; **आद्याम्—**प्रथम; **माया-मत्स्य-विडम्बनम्—**जो मछली का अनुकरण मात्र है।

महाराज परीक्षित ने कहा : भगवान् हरि नित्य ही अपने दिव्य पद पर स्थित हैं; फिर भी वे इस भौतिक जगत में अवतरित होते हैं और विभिन्न रूपों में अपने आपको प्रकट करते हैं। उनका पहला अवतार एक बड़ी मछली के रूप में हुआ। हे सर्व-शक्तिमान शुकदेव गोस्वामी! मैं आपसे उस मत्स्यावतार की लीलाएँ सुनने का इच्छुक हूँ।

तात्पर्य : भगवान् सर्वशक्तिमान हैं; फिर भी उन्होंने एक असाधारण मछली का रूप धारण किया। यह भगवान् के दस मूल अवतारों में से एक है।

यदर्थमदधाद्रूपं मात्स्यं लोकजुगुप्सितम् ।
तमःप्रकृतिदुर्मर्षं कर्मग्रस्त इवेश्वरः ॥ २ ॥
एतन्नो भगवन्सर्वं यथावद्वक्तुमर्हसि ।
उत्तमश्लोकचरितं सर्वलोकसुखावहम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

यत्-अर्थम्—किस हेतु; अदधात्—स्वीकार किया; रूपम्—रूप; मात्स्यम्—मछली का; लोक-जुगुप्सितम्—इस संसार में तुच्छ मानी जाने वाली; तमः—तमोगुणी; प्रकृति—आचरण; दुर्मर्षम्—जो अत्यन्त पीड़ा-दायक तथा गर्हित है; कर्म-ग्रस्तः—कर्म के नियमों के अधीन; इव—सदृश; ईश्वरः—भगवान्; एतत्—ये सारे तथ्य; नः—हमको; भगवन्—हे अत्यन्त शक्तिशाली साधु; सर्वम्—हर वस्तु; यथावत्—ठीक से; वक्तुम् अर्हसि—कृपा करके बतलायें; उत्तमश्लोक-चरितम्—भगवान् की लीलाएँ; सर्व-लोक-सुख-आवहम्—जिसको सुनने से सभी सुखी होते हैं।.

किस कारण से भगवान् ने कर्म-नियम के अन्तर्गत विविध रूप धारण करने वाले सामान्य जीव की भाँति गर्हित मछली का रूप स्वीकार किया? मछली का रूप निश्चित रूप से गर्हित एवं घोर पीड़ा से पूर्ण होता है। हे प्रभु! इस अवतार का क्या उद्देश्य था? कृपा करके मुझे समझाइये क्योंकि भगवान् की लीलाओं का श्रवण हर एक के लिए मंगलकारी होता है।

तात्पर्य : महाराज परीक्षित ने शुकदेव गोस्वामी से जो प्रश्न पूछा वह *भगवद्गीता* (४.७) में स्वयं भगवान् द्वारा बताये गये इस सिद्धान्त पर आधारित था—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

"जब-जब और जहाँ जहाँ धर्म का ह्रास होता है और अधर्म का उत्थान होता है तब-तब हे भरत के वंशज! मैं स्वयं अवतरित होता हूँ।" भगवान् अपने हर अवतार में जगत को अधर्म से बचाने और विशेषकर अपने भक्तों की रक्षा करने के लिए प्रकट होते हैं (*परित्राणाय साधूनाम्*)। उदाहारणार्थ,

वामनदेव अपने भक्त बलि महाराज को बचाने के लिए प्रकट हुए। इसी प्रकार जब भगवान् ने गर्हित मछली का रूप स्वीकार किया, तो अवश्य ही किसी भक्त पर कृपा करने के लिए ऐसा किया होगा। महाराज परीक्षित उस भक्त के विषय में जानने को उत्सुक थे जिसके लिए उन्होंने यह स्वरूप धारण किया था।

श्रीसूत उवाच
इत्युक्तो विष्णुरातेन भगवान्बादरायणिः ।
उवाच चरितं विष्णोर्मत्स्यरूपेण यत्कृतम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

श्री-सूतः उवाच—श्री सूत गोस्वामी ने कहा; इति उक्तः—इस प्रकार पूछे जाने पर; विष्णु-रातेन—महाराज परीक्षित द्वारा, जो विष्णुरात कहलाते हैं; भगवान्—अत्यन्त शक्तिमान; बादरायणिः—व्यासदेव के पुत्र शुकदेव गास्वामी ने; उवाच—कहीं; चरितम्—लीलाएँ; विष्णोः—भगवान् विष्णु की; मत्स्य-रूपेण—मछली के रूप में उनके द्वारा; यत्—जो भी; कृतम्—की गईं।.

सूत गोस्वामी ने कहा : जब परीक्षित महाराज ने शुकदेव गोस्वामी से इस प्रकार जिज्ञासा प्रकट की तो उस महान् शक्तिशाली साधु पुरुष ने भगवान् के मत्स्यावतार की लीलाओं का वर्णन करना प्रारम्भ कर दिया।

श्रीशुक उवाच
गोविप्रसुरसाधूनां छन्दसामपि चेश्वरः ।
रक्षामिच्छंस्तनूर्धत्ते धर्मस्यार्थस्य चैव हि ॥ ५॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; गो—गायों का; विप्र—ब्राह्मणों का; सुर—देवताओं का; साधूनाम्—तथा भक्तों का; छन्दसाम् अपि—यहाँ तक कि वैदिक वाङ्मय का भी; च—तथा; ईश्वरः—परम नियन्ता; रक्षाम्—रक्षा; इच्छन्—चाहते हुए; तनूः धत्ते—अवतारों के रूप धारण करते हैं; धर्मस्य—धर्म का; अर्थस्य—जीवन के उद्देश्य के नियमों का; च—तथा; एव—निस्सन्देह; हि—निश्चय ही।.

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजन्! गायों, ब्राह्मणों, देवताओं, भक्तों, वैदिक वाङ्मय, धार्मिक सिद्धान्तों तथा जीवन के उद्देश्य को पूरा करने वाले नियमों की रक्षा करने के लिए भगवान् अवतरित होते हैं।

तात्पर्य : भगवान् सामान्यतः गायों तथा ब्राह्मणों की रक्षा करने के लिए विभिन्न प्रकार के रूपों में अवतरित होते हैं। भगवान् को *गोब्राह्मणहिताय च* कहा गया है—अर्थात् वे गायों तथा ब्राह्मणों का उपकार करने के लिए सदैव उत्सुक रहते हैं। जब भगवान् कृष्ण अवतरित हुए तो वे जानबूझकर

ग्वालबाल बने और उन्होंने स्वयं यह दिखलाया कि किस तरह गायों तथा बछड़ों की रक्षा करनी चाहिए। इसी प्रकार उन्होंने सुदामा विप्र को, जो असली ब्राह्मण थे, सम्मान प्रदान किया। भगवान् के निजी कार्यों से मानव समाज को चाहिए कि गायों तथा ब्राह्मणों की रक्षा करना सीखे। तभी धर्म, जीवन के उद्देश्य की पूर्ति तथा वैदिक ज्ञान की रक्षा की जा सकती है। गायों की सुरक्षा के बिना न तो ब्राह्मण संस्कृति को स्थिर रखा जा सकता है और न ही ब्राह्मण संस्कृति के बिना जीवन का उद्देश्य (अर्थ) पूरा किया जा सकता है। अतएव भगवान् को *गोब्राह्मणहिताय* कहा गया है क्योंकि उनका अवतार केवल गायों तथा ब्राह्मणों की रक्षा के लिए होता है। दुर्भाग्यवश, क्योंकि कलियुग में गायों की तथा ब्राह्मण-संस्कृति की रक्षा नहीं हो पाती, प्रत्येक वस्तु डांवाडोल स्थिति में है। यदि मानव समाज ऊपर उठना चाहता है, तो समाज के नायकों को *भगवद्‌गीता* के आदेशों का पालन करना चाहिए और गायों, ब्राह्मणों तथा ब्राह्मण संस्कृति को रक्षा प्रदान करनी चाहिए।

उच्चावचेषु भूतेषु चरन्वायुरिवेश्वरः ।
नोच्चावचत्वं भजते निर्गुणत्वाद्धियो गुणैः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

उच्च-अवचेषु—उच्च या निम्न स्वरूपों वाले; भूतेषु—जीवों में; चरन्—आचरण करते हुए; वायुः इव—वायु की भाँति; ईश्वरः—परमेश्वर; न—नहीं; उच्च-अवचत्वम्—उच्च या निम्न कोटि के जीवन का गुण; भजते—स्वीकार करते हैं; निर्गुणत्वात्—समस्त भौतिक गुणों से ऊपर या दिव्य होने के कारण; धियः—सामान्यतया; गुणैः—प्रकृति के गुणों के द्वारा।

यद्यपि भगवान् कभी मनुष्य रूप में और कभी निम्न पशु के रूप में प्रकट होते हैं, किन्तु वे विभिन्न प्रकार के वायुमण्डल में से गुजरने वाली वायु की तरह प्रकृति से सदैव परे रहते हैं। प्रकृति के गुणों से परे रहने के कारण वे उच्च तथा निम्न रूपों से प्रभावित नहीं होते।

तात्पर्य : भगवान् भौतिक प्रकृति के स्वामी हैं (*मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्*)। इसलिए प्रकृति के परम नियामक होने के कारण भगवान् उसके प्रभाव में नहीं आ सकते। यहाँ पर वायु का उदाहरण दिया गया है। यद्यपि वायु अनेक स्थानों से होकर बहती है, किन्तु वह इन स्थानों के गुणों से प्रभावित नहीं होती। यद्यपि वायु में कभी-कभी गंदे स्थान की गंध आ जाती है, किन्तु उसे उस स्थान से कुछ लेना-देना नहीं रहता। इसी प्रकार भगवान् सर्व-शुभ तथा सर्व-मंगलकारी होने के कारण कभी भी किसी साधारण जीव की भाँति भौतिक गुणों से प्रभावित नहीं होते। *पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान्* (*भगवद्‌गीता* १३.२१)। जब जीव भौतिक प्रकृति में रहता है, तो वह उसके गुणों से

प्रभावित होता है। किन्तु भगवान् कभी भी प्रभावित नहीं होते। जो इसे नहीं जानता वह भगवान् का निरादर करता हुआ उन्हें सामान्य जीव मानता है (*अवजानन्ति मां मूढा:*)। *परं भावम् अजानन्त:*—ऐसे निष्कर्ष पर मूर्ख ही पहुँचते हैं क्योंकि वे भगवान् के दिव्य गुणों से अनजान रहते हैं।

आसीदतीतकल्पान्ते ब्राह्मो नैमित्तिको लय: ।
समुद्रोपप्लुतास्तत्र लोका भूरादयो नृप ॥ ७॥

शब्दार्थ

आसीत्—था; अतीत—भूतकाल में; कल्प-अन्ते—कल्प के अन्त में; ब्राह्म:—ब्रह्मा के एक दिन का; नैमित्तिक:—उसके कारण; लय:—प्लावन, बाढ़; समुद्र—समुद्र में; उपप्लुता:—जलमग्न हो गये; तत्र—वहाँ; लोका:—सारे लोक; भू:-आदय:—भू:, भुव: तथा स्व: ये तीनों लोक; नृप—हे राजा।

हे राजा परीक्षित! विगत कल्प के अन्त में, ब्रह्मा का दिन समाप्त होने पर ब्रह्मा की निद्रा के कारण रात में प्रलय आ गई और तीनों लोक समुद्र के जल से प्लवित हो गये।

कालेनागतनिद्रस्य धातु: शिशयिषोर्बली ।
मुखतो नि:सृतान्वेदान्हयग्रीवोऽन्तिकेऽहरत् ॥ ॥

शब्दार्थ

कालेन—काल (ब्रह्मा के दिन के अन्त) के कारण; आगत-निद्रस्य—जब उन्हें नींद आने लगी; धातु:—ब्रह्मा का; शिशयिषो:—सोने के लिए लेटने की इच्छा करते हुए; बली—शक्तिशाली; मुखत:—मुख से; नि:सृतान्—निकलता हुआ; वेदान्—वैदिक ज्ञान को; हयग्रीव:—हयग्रीव नामक असुर ने; अन्तिके—पास ही; अहरत्—चुरा लिया।

ब्रह्मा का दिन समाप्त होने पर जब ब्रह्मा को नींद आने लगी और वे लेटने की इच्छा करने लगे तब उस समय उनके मुख से वेद निकल रहे थे। तभी हयग्रीव नामक महान् राक्षस ने उस वैदिक ज्ञान को चुरा लिया।

ज्ञात्वा तद्दानवेन्द्रस्य हयग्रीवस्य चेष्टितम् ।
दधार शफरीरूपं भगवान्हरिरीश्वर: ॥ ९॥

शब्दार्थ

ज्ञात्वा—जानकर; तत्—उस; दानव-इन्द्रस्य—महान् असुर; हयग्रीवस्य—हयग्रीव का; चेष्टितम्—कार्यकलाप; दधार—धारण किया; शफरी-रूपम्—मछली का रूप; भगवान्—भगवान्; हरि:—हरि ने; ईश्वर:—परम नियन्ता।

यह जानकर कि यह कार्य महान् असुर हयग्रीव ने किया है, सर्व-ऐश्वर्यशाली भगवान् हरि ने मछली का रूप धारण किया और उस असुर को मारकर वेदों को बचाया।

तात्पर्य : चूँकि प्रत्येक वस्तु जल में निमग्न हो गई थी, वेदों को बचाने के लिए भगवान् के लिए

मछली का रूप धारण करना आवश्यक हो गया था।

तत्र राजऋषिः कश्चिन्नाम्ना सत्यव्रतो महान् ।
नारायणपरोऽतपत्तपः स सलिलाशनः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

तत्र—उस प्रसंग में; राज-ऋषिः—राजा जो ऋषि के समान भी योग्य हो; कश्चित्—कोई; नाम्ना—नाम वाला; सत्यव्रतः—सत्यव्रत; महान्—महापुरुष; नारायण-परः—भगवान् नारायण का महान् भक्त; अतपत्—तपस्या की; तपः—तपस्या; सः—उसने; सलिल-आशनः—केवल जल पीकर।

चाक्षुष मन्वन्तर में सत्यव्रत नाम का एक महान् राजा हुआ जो भगवान् का बड़ा भक्त था। उसने केवल जल-पान को आधार बनाकर तपस्या की।

तात्पर्य : भगवान् ने वेदों को बचाने के लिए एक बार स्वायंभुव मन्वन्तर के शुरू में मछली का रूप धारण किया और दुबारा चाक्षुष मन्वन्तर में केवल सत्यव्रत नामक महान् राजा पर कृपा करने के लिए मछली का रूप धारण किया। जिस प्रकार वराह के दो अवतार हुए उसी प्रकार मछली के भी दो अवतार हुए थे। भगवान् ने एक मत्स्यावतार हयग्रीव को मारकर वेदों की रक्षा करने के लिए धारण किया और दूसरा मत्स्यावतार राजा सत्यव्रत पर कृपा करने के लिए।

योऽसावस्मिन्महाकल्पे तनयः स विवस्वतः ।
श्राद्धदेव इति ख्यातो मनुत्वे हरिणार्पितः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; असौ—वह (परम पुरुष); अस्मिन्—इसमें; महा-कल्पे—महा कल्प में; तनयः—पुत्र; सः—वह; विवस्वतः—सूर्यदेव का; श्राद्धदेवः—श्राद्धदेव के नाम से; इति—इस प्रकार; ख्यातः—प्रसिद्ध; मनुत्वे—मनु के पद पर; हरिणा—भगवान् द्वारा; अर्पितः—स्थित था।

इस (वर्तमान) कल्प में राजा सत्यव्रत बाद में सूर्यलोक के राजा विवस्वान का पुत्र बना और श्राद्धदेव के नाम से विख्यात हुआ। भगवान् की कृपा से उसे मनु का पद प्राप्त हुआ।

एकदा कृतमालायां कुर्वतो जलतर्पणम् ।
तस्याञ्जल्युदके काचिच्छफर्येकाभ्यपद्यत ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

एकदा—एक दिन; कृतमालायाम्—कृतमाला नदी के तट पर; कुर्वतः—देते हुए; जल-तर्पणम्—जल का अर्घ्य; तस्य—उसकी; अञ्जलि—अंजुलि भर; उदके—जल में; काचित्—कोई; शफरी—छोटी मछली; एका—एक; अभ्यपद्यत—प्रकट हुई।

एक दिन जब राजा सत्यव्रत कृतमाला नदी के तट पर जल का तर्पण करके तपस्या कर रहा

था, तो उसकी अंजुली के जल में एक छोटी सी मछली प्रकट हुई।

सत्यव्रतोऽञ्जलिगतां सह तोयेन भारत ।
उत्ससर्ज नदीतोये शफरीं द्रविडेश्वरः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

सत्यव्रतः—राजा सत्यव्रत; अञ्जलि-गताम्—राजा की अंजुली के पानी में आई हुई; सह—साथ; तोयेन—जल के; भारत—हे राजा परीक्षित; उत्ससर्ज—फेंक दिया; नदी-तोये—नदी के जल में; शफरीम्—छोटी मछली को; द्रविड-ईश्वरः—द्रविड देश के राजा सत्यव्रत ने।

हे भरतवंशी राजा परीक्षित! द्रविडदेश के राजा सत्यव्रत ने अपनी अंजुली के जल के साथ उस मछली को नदी के जल में फेंक दिया।

तमाह सातिकरुणं महाकारुणिकं नृपम् ।
यादोभ्यो ज्ञातिघातिभ्यो दीनां मां दीनवत्सल ।
कथं विसृजसे राजन्भीतामस्मिन्सरिज्जले ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

तम्—उससे (सत्यव्रत से); आह—कहा; सा—उस छोटी मछली ने; अति-करुणम्—अत्यन्त करुणामय; महा-कारुणिकम्—अत्यन्त कृपालु; नृपम्—राजा सत्यव्रत को; यादोभ्यः—जलचरों के द्वारा; ज्ञाति-घातिभ्यः—जो छोटी मछलियों को खाने के लिए सदैव उत्सुक रहते हैं; दीनाम्—बेचारी; माम्—मुझको; दीन-वत्सल—हे दीनों के रक्षक; कथम्—क्यों; विसृजसे—फेंक रहे हो; राजन्—हे राजा; भीताम्—अत्यन्त भयभीत; अस्मिन्—इस; सरित्-जले—नदी के जल में।

उस बेचारी छोटी मछली ने अत्यन्त कृपालु राजा सत्यव्रत से करुणापूर्ण स्वर में कहा : हे दीनों के रक्षक राजा! आप मुझे नदी के जल में क्यों फेंक रहे हैं जहाँ पर अन्य जलचर हैं, जो मुझे मार सकते हैं? मैं उनसे बहुत भयभीत हूँ।

तात्पर्य : *मत्स्यपुराण* में कहा गया है—

अनन्त शक्तिर्भगवान् मत्स्यरूपी जनार्दनः ।

क्रीडार्थं याचयामास स्वयं सत्यव्रतं नृपम् ॥

"भगवान् में अनन्त शक्ति होती है। फिर भी उन्होंने अपने मत्स्यरूप की लीला में सत्यव्रत से रक्षा की भीख माँगी।"

तमात्मनोऽनुग्रहार्थं प्रीत्या मत्स्यवपुर्धरम् ।
अजानन्रक्षणार्थाय शफर्याः स मनो दधे ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस; आत्मनः—निजी; अनुग्रह-अर्थम्—अनुग्रह दिखाने के लिए; प्रीत्या—अत्यधिक प्रसन्न होकर; मत्स्य-वपुः-धरम्—मछली का शरीर धारण करने वाले भगवान् को; अजानन्—बिना जाने; रक्षण-अर्थाय—रक्षा करने के लिए; शफर्याः—मछली की; सः—उस राजा ने; मनः—मन में; दधे—निश्चय किया।

राजा सत्यव्रत ने यह न जानते हुए कि यह मछली भगवान् है अपनी प्रसन्नता के लिए सहर्ष उस मछली को संरक्षण प्रदान करने का निर्णय लिया।

तात्पर्य : यहाँ पर बिना जाने भगवान् की सेवा करने का दृष्टान्त प्रस्तुत है। ऐसी सेवा अज्ञात-सुकृति कहलाती है। राजा सत्यव्रत ने अपनी दया दिखानी चाही; उसे पता न था कि यह मछली भगवान् विष्णु है। ऐसी अज्ञात भक्ति से भगवान् की कृपा प्राप्त होती है। भगवान् की सेवा चाहे ज्ञात भाव से हो या अज्ञात से, कभी व्यर्थ नहीं जाती।

तस्या दीनतरं वाक्यमाश्रुत्य स महीपतिः ।
कलशाप्सु निधायैनां दयालुर्निन्य आश्रमम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

तस्याः—उस मछली के; दीन-तरम्—अत्यन्त कारुणिक; वाक्यम्—वचन को; आश्रुत्य—सुनकर; सः—वह; मही-पतिः—राजा; कलश-अप्सु—कलश में रखे जल में; निधाय—रखकर; एनाम्—इस मछली को; दयालुः—दयालु; निन्ये—ले आया; आश्रमम्—अपने घर।

उस मछली के कारुणिक शब्दों से प्रभावित होकर उस दयालु राजा ने उस मछली को एक जलपात्र में रख लिया और उसे अपने घर ले आया।

सा तु तत्रैकरात्रेण वर्धमाना कमण्डलौ ।
अलब्ध्वात्मावकाशं वा इदमाह महीपतिम् ॥ १७॥

शब्दार्थ

सा—वह मछली; तु—लेकिन; तत्र—वहाँ; एक-रात्रेण—एक ही रात में; वर्धमाना—बढ़कर; कमण्डलौ—जलपात्र में; अलब्ध्वा—न पाकर; आत्म-अवकाशम्—अपने शरीर के लिए सुविधाजनक स्थान; वा—अथवा; इदम्—यह; आह—कहा; मही-पतिम्—राजा से।

किन्तु मछली एक ही रात में इतनी बड़ी हो गई कि उसे उस जलपात्र में अपना शरीर इधर-उधर घुमाने में कठिनाई होने लगी। तब उसने राजा से इस प्रकार कहा।

नाहं कमण्डलावस्मिन्कृच्छ्रं वस्तुमिहोत्सहे ।
कल्पयौकः सुविपुलं यत्राहं निवसे सुखम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; अहम्—मैं; कमण्डलौ—जलपात्र में; अस्मिन्—इस; कृच्छ्रम्—बड़ी कठिनाई से; वस्तुम्—रहने के लिए; इह—यहाँ; उत्सहे—पसन्द करती हूँ; कल्पय—जरा सोचो; ओकः—रहने का स्थान; सु-विपुलम्—अधिक विस्तृत; यत्र—जहाँ; अहम्—मैं; निवसे—रह सकूँ; सुखम्—सुखपूर्वक।

"हे मेरे प्रिय राजा! मैं इस जलपात्र में इतनी कठिनाई से रहना पसन्द नहीं करती हूँ। अतएव कृपा करके इससे अच्छा जलाशय ढूँढें जहाँ मैं सुखपूर्वक रह सकूँ।"

स एनां तत आदाय न्यधादौदञ्चनोदके ।
तत्र क्षिप्ता मुहूर्तेन हस्तत्रयमवर्धत ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

सः—राजा ने; एनाम्—मछली को; ततः—तत्पश्चात; आदाय—निकाल कर; न्यधात्—डाल दिया; औदञ्चन-उदके—कुएँ के जल में; तत्र—वहाँ; क्षिप्ता—फेंकी जाकर; मुहूर्तेन—एक ही क्षण में; हस्त-त्रयम्—तीन हाथ; अवर्धत—तुरन्त बढ़ गई।

तत्पश्चात् राजा ने उस मछली को जलपात्र से निकाल कर एक विशाल कुएँ में डाल दिया। किन्तु वह मछली एक क्षण में ही बढ़कर तीन हाथ की हो गई।

न म एतदलं राजन्सुखं वस्तुमुदञ्चनम् ।
पृथु देहि पदं मह्यं यत्त्वाहं शरणं गता ॥ २० ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; मे—मुझको; एतत्—यह; अलम्—उपयुक्त; राजन्—हे राजा; सुखम्—सुख से; वस्तुम्—रहने के लिए; उदञ्चनम्—जलाशय; पृथु—काफी बड़ा; देहि—दीजिये; पदम्—स्थान; मह्यम्—मुझको; यत्—जो; त्वा—तुम्हारी; अहम्—मैं; शरणम्—शरण में; गता—आई हुई।

तब मछली ने कहा : हे राजा! यह जलाशय मेरे सुखमय निवास के लिए उपयुक्त नहीं है। कृपया और अधिक विस्तृत जलाशय प्रदान करें क्योंकि मैं आपकी शरण में आई हूँ।

तत आदाय सा राज्ञा क्षिप्ता राजन्सरोवरे ।
तदावृत्यात्मना सोऽयं महामीनोऽन्ववर्धत ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

ततः—वहाँ से; आदाय—लाकर; सा—वह मछली; राज्ञा—राजा द्वारा; क्षिप्ता—डाली जाकर; राजन्—हे राजा परीक्षित; सरोवरे—झील में; तत्—उस; आवृत्य—ढककर; आत्मना—शरीर से; सः—मछली; अयम्—यह; महा-मीनः—विशाल मछली; अन्ववर्धत—तुरन्त बढ़ गई।

हे महाराज परीक्षित! राजा ने उस मछली को कुएँ से निकाला और उसे एक झील में डाल दिया, किन्तु तब उस मछली ने जल के विस्तार से भी अधिक विशाल रूप धारण कर लिया।

नैतन्मे स्वस्तये राजन्नुदकं सलिलौकसः ।

निधेहि रक्षायोगेन ह्रदे मामविदासिनि ॥ २२॥

शब्दार्थ

न—नहीं; एतत्—यह; मे—मुझको; स्वस्तये—सुखी; राजन्—हे राजा; उदकम्—जल; सलिल-ओकसः—क्योंकि मैं विशाल जलचर हूँ; निधेहि—रख दें; रक्षा-योगेन—किसी उपाय से; ह्रदे—झील में; माम्—मुझको; अविदासिनि—शाश्वत।

तब मछली ने कहा : हे राजा! मैं विराट जलचर हूँ और यह जल मेरे लिए तनिक भी उपयुक्त नहीं है। अब कृपा करके मुझे बचाने का कोई उपाय ढूँढ निकालिए। अच्छा हो यदि आप मुझे ऐसी झील के जल में रखें जो कभी न घटे।

इत्युक्तः सोऽनयन्मत्स्यं तत्र तत्राविदासिनि ।
जलाशयेऽसम्मितं तं समुद्रे प्राक्षिपज्झषम् ॥ २३॥

शब्दार्थ

इति उक्तः—इस प्रकार प्रार्थना किया गया; सः—राजा; अनयत्—ले गया; मत्स्यम्—मछली को; तत्र—वहाँ; तत्र—जहाँ; अविदासिनि—जल कभी नहीं घटता; जल-आशये—जल के आगार में; असम्मितम्—असीम; तम्—उसको; समुद्रे—समुद्र में; प्राक्षिपत्—डाल दिया; झषम्—विशाल मछली को।

इस प्रकार प्रार्थना किये जाने पर राजा सत्यव्रत उस मछली को जल के सबसे बड़े आगार में ले आया। किन्तु जब वह भी अपर्याप्त सिद्ध हुआ तो राजा ने अन्त में उस मछली को समुद्र में डाल दिया।

क्षिप्यमाणस्तमाहेदमिह मां मकरादयः ।
अदन्त्यतिबला वीर मां नेहोत्स्रष्टुमर्हसि ॥ २४॥

शब्दार्थ

क्षिप्यमाणः—समुद्र में फेंके जाने पर; तम्—राजा से; आह—मछली ने कहा; इदम्—यह; इह—इस स्थान में; माम्—मुझको; मकर-आदयः—मगर जैसे घातक जलचर; अदन्ति—खा लेंगे; अति-बलाः—अत्यन्त बलशाली होने के कारण; वीर—हे वीर राजा; माम्—मुझको; न—नहीं; इह—इस जल में; उत्स्रष्टुम्—फेंकना; अर्हसि—तुम्हें चाहिए।

समुद्र में फेंके जाते समय मछली ने राजा सत्यव्रत से कहा : हे वीर! इस जल में अत्यन्त शक्तिशाली एवं घातक मगर हैं, जो मुझे खा जायेंगे। अतएव तुम मुझे इस स्थान में मत डालो।

एवं विमोहितस्तेन वदता वल्गुभारतीम् ।
तमाह को भवानस्मान्मत्स्यरूपेण मोहयन् ॥ २५॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; विमोहितः—मोहग्रस्त; तेन—उस मछली के द्वारा; वदता—कहे जाने पर; वल्गु-भारतीम्—मधुर वचन; तम्—उससे; आह—कहा; कः—कौन; भवान्—आप; अस्मान्—हमको; मत्स्य-रूपेण—मछली के रूप में; मोहयन्—मोहित करने वाले।

मत्स्यरूप भगवान् से इन मधुर वचनों को सुनकर मोहित हुए राजा ने पूछा : आप कौन हैं? आप तो हम सबको मोहित कर रहे हैं।

नैवं वीर्यो जलचरो दृष्टोऽस्माभिः श्रुतोऽपि वा ।
यो भवान्योजनशतमह्नाभिव्यानशे सरः ॥ २६॥

शब्दार्थ

न—नहीं; एवम्—इस प्रकार; वीर्यः—शक्तिशाली; जल-चरः—जलचर; दृष्टः—देखा गया; अस्माभिः—हमारे द्वारा; श्रुतः अपि—न ही सुना गया; वा—अथवा; यः—जो; भवान्—आप; योजन-शतम्—सैकड़ों मील तक; अह्ना—एक दिन में; अभिव्यानशे—बढ़कर; सरः—जल।

हे प्रभु! एक ही दिन में आपने अपना विस्तार सैकड़ों मील तक करके नदी तथा समुद्र के जल को आच्छादित कर लिया है। इससे पहले मैंने न तो ऐसा जलचर पशु देखा था और न ही सुना था।

नूनं त्वं भगवान्साक्षाद्धरिर्नारायणोऽव्ययः ।
अनुग्रहाय भूतानां धत्से रूपं जलौकसाम् ॥ २७॥

शब्दार्थ

नूनम्—निश्चय ही; त्वम्—तुम हो; भगवान्—भगवान्; साक्षात्—प्रत्यक्ष; हरिः—भगवान्; नारायणः—भगवान्; अव्ययः—अव्यय; अनुग्रहाय—दया दिखाने के लिए; भूतानाम्—सारे जीवों के लिए; धत्से—धारण किया है; रूपम्—रूप; जल-ओकसाम्—जलचर की तरह।

हे प्रभु! आप निश्चय ही अव्यय भगवान् नारायण श्री हरि हैं। आपने जीवों पर अपनी कृपा प्रदर्शित करने के लिए ही अब जलचर का स्वरूप धारण किया है।

नमस्ते पुरुषश्रेष्ठ स्थित्युत्पत्त्यप्ययेश्वर ।
भक्तानां नः प्रपन्नानां मुख्यो ह्यात्मगतिर्विभो ॥ २॥

शब्दार्थ

नमः—मैं सादर नमस्कार करता हूँ; ते—तुमको; पुरुष-श्रेष्ठ—हे जीवों में श्रेष्ठ, समस्त भोक्ताओं में श्रेष्ठ; स्थिति—पालन; उत्पत्ति—सृष्टि; अप्यय—तथा संहार के; ईश्वर—परमेश्वर; भक्तानाम्—अपने भक्तों के; नः—हम जैसे; प्रपन्नानाम्—शरणागतों के; मुख्यः—परम; हि—निस्सन्देह; आत्म-गतिः—परम गन्तव्य; विभो—भगवान् विष्णु।

हे प्रभु, हे सृष्टि, पालन तथा संहार के स्वामी! हे भोक्ताओं में श्रेष्ठ भगवान् विष्णु! आप हम जैसे शरणागत भक्तों के नेता तथा गन्तव्य हैं। अतएव मैं आपको सादर प्रणाम करता हूँ।

सर्वे लीलावतारास्ते भूतानां भूतिहेतवः ।

ज्ञातुमिच्छाम्यदो रूपं यदर्थं भवता धृतम् ॥ २९॥

शब्दार्थ

सर्वे—सारी; लीला—लीलाएँ; अवताराः—अवतार; ते—आपके; भूतानाम्—जीवों के; भूति—फूलने-फलने (अभ्युदय) की स्थिति के लिए; हेतवः—कारण; ज्ञातुम्—जानने के लिए; इच्छामि—इच्छा करता हूँ; अदः—यह; रूपम्—रूप; यत्-अर्थम्—जिसलिए; भवता—आपके द्वारा; धृतम्—धारण किया गया।

आपकी सारी लीलाएँ तथा अवतार निश्चय ही समस्त जीवों के कल्याण के लिए होते हैं। अतएव हे प्रभु! मैं वह प्रयोजन जानना चाहता हूँ जिसके लिए आपने यह मत्स्यरूप धारण किया है।

न तेऽरविन्दाक्ष पदोपसर्पणं
मृषा भवेत्सर्वसुहृत्प्रियात्मनः ।
यथेतरेषां पृथगात्मनां सता-
मदीदृशो यद्वपुरद्भुतं हि नः ॥ ३०॥

शब्दार्थ

न—कभी नहीं; ते—आपके; अरविन्द-अक्ष—हे कमलनेत्रों वाले मेरे प्रभु; पद-उपसर्पणम्—चरणकमलों की पूजा; मृषा—व्यर्थ; भवेत्—हो सकती है; सर्व-सुहृत्—सबों के मित्र; प्रिय—सबों के प्यारे; आत्मनः—हर एक के परमात्मा; यथा—जिस प्रकार; इतरेषाम्—अन्यों (देवताओं) का; पृथक्-आत्मनाम्—आत्मा से भिन्न देहधारी जीव; सताम्—अध्यात्म में स्थित लोगों का; अदीदृशः—आपने दिखलाया है; यत्—जो; वपुः—शरीर; अद्भुतम्—अद्‌भुत; हि—निस्सन्देह; नः—हमको।

हे कमल की पंखुरियों के समान नेत्रों वाले प्रभु! देहात्मबुद्धि वाले देवताओं की पूजा सभी तरह से व्यर्थ है। चूँकि आप हर एक के परम मित्र तथा प्रियतम परमात्मा हैं अतएव आपके चरणकमलों की पूजा कभी व्यर्थ नहीं जाती। इसलिए आपने मछली का रूप दिखलाया है।

तात्पर्य : इन्द्र, चन्द्र तथा सूर्य जैसे देवता सामान्य जीव हैं, जो भगवान् के विभिन्नांश हैं। भगवान् जीवों के माध्यम से अपना विस्तार करते हैं (*नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्*)। उनके साकार विष्णुतत्त्व रूप सभी आध्यात्मिक हैं, स्वांश कहलाते हैं किन्तु सारे जीव जो उनसे पृथक् हैं उनके विभिन्नांश कहलाते हैं। कुछ विभिन्नांश रूप आध्यात्मिक होते हैं और कुछ पदार्थ तथा आत्मा के संमेल होते हैं। इस जगत में बद्धजीवात्माएँ भौतिक शक्ति से निर्मित अपने बाह्य शरीरों से भिन्न होती हैं। इस तरह स्वर्ग में रहने वाले देवता तथा अधोलोक में रहने वाले जीव समान प्रकृति वाले होते हैं। फिर भी इस लोक के मनुष्य कभी-कभी स्वर्गलोक के देवताओं की पूजा करने के लिए लालायित हो जाते हैं। ऐसी पूजा अस्थायी है। जिस प्रकार इस लोक के मनुष्यों को अपने शरीर बदलने होते हैं (तथा देहान्तरप्राप्तिः) उसी प्रकार से इन्द्र, चन्द्र, वरुण इत्यादि जीवात्माओं को भी यथासमय अपने-अपने

शरीर बदलने होंगे। जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है—*अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्*—अल्पबुद्धि वाले लोग देवताओं को पूजते हैं, किन्तु उनके फल सीमित तथा अस्थायी होते हैं। *कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञाना: प्रपद्यन्तेऽन्य देवता:*—जो लोग देवताओं के पद को नहीं जानते वे किसी भौतिक प्रयोजन से उनकी पूजा करने की ओर झुकते हैं, किन्तु ऐसी पूजा का फल कभी स्थायी नहीं होता। फलत: यहाँ पर कहा गया है—*यथेतरेषां पृथगात्मनां सताम्, पदोपसर्पणं मृषा भवेत्।* दूसरे शब्दों में, यदि किसी को किसी की पूजा करनी ही है, तो उसे भगवान् की पूजा करनी चाहिए। तब उसकी पूजा कभी व्यर्थ नहीं जायेगी। *स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्*—भगवान् की पूजा करने का स्वल्प प्रयास भी स्थायी निधि होती है। अतएव जैसी कि *श्रीमद्भागवत* में संस्तुति की गई है—*त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्बुजं हरे:।* मनुष्य को चाहिए कि वह हरि के चरणकमलों की पूजा करे, चाहे इसके लिए प्राप्त शरीर-विशेष के तथाकथित वृत्तिपरक धर्म को छोडना क्यों न पड़े। चूँकि शरीर की पूजा अस्थायी है इसलिए इसका फल स्थायी नहीं होता। किन्तु भगवान् की पूजा से बहुत बड़ा लाभ मिलता है।

श्रीशुक उवाच

इति ब्रुवाणं नृपतिं जगत्पति:
सत्यव्रतं मत्स्यवपुर्युगक्षये ।
विहर्तुकाम: प्रलयार्णवेऽब्रवी-
च्चिकीर्षुरेकान्तजनप्रिय: प्रियम् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; ब्रुवाणम्—बोलते हुए; नृपतिम्—राजा को; जगत्-पति:—सम्पूर्ण विश्व के स्वामी; सत्यव्रतम्—सत्यव्रत को; मत्स्य-वपु:—मत्स्य का शरीर धारण करने वाले भगवान् ने; युग-क्षये—युग के अन्त में; विहर्तु-काम:—अपनी लीलाओं का भोग करने के लिए; प्रलय-अर्णवे—बाढ़ के जल में; अब्रवीत्—कहा; चिकीर्षु:—करने का इच्छुक; एकान्त-जन-प्रिय:—भक्तों के परम प्रिय; प्रियम्—अत्यन्त लाभप्रद वस्तु।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जब राजा सत्यव्रत ने इस तरह कहा तो अपने भक्त को लाभ पहुँचाने तथा बाढ़ के जल में अपनी लीलाओं का आनन्द उठाने के लिए युग के अन्त में मछली का रूप धारण करने वाले भगवान् ने इस प्रकार उत्तर दिया।

श्रीभगवानुवाच

सप्तमे ह्यद्यतनादूर्ध्वमहन्येतदरिन्दम ।

निमङ्क्ष्यत्यप्ययाम्भोधौ त्रैलोक्यं भूर्भुवादिकम् ॥ ३२॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; सप्तमे—सातवें; हि—निस्सन्देह; अद्यतनात्—आज से; ऊर्ध्वम्—आगे; अहनि—दिन में; एतत्—यह सृष्टि; अरिन्दम—हे शत्रुओं को दमन कर सकने वाले राजा; निमङ्क्ष्यति—जल में डूब जायेगी; अप्यय-अम्भोधौ—प्रलय के सागर में; त्रैलोक्यम्—तीनों लोक; भूः-भुव-आदिकम्—भूर्लोक, भुवर्लोक तथा स्वर्लोक।

भगवान् ने कहा : हे शत्रुओं को दमन कर सकने वाले राजा! आज से सातवें दिन भूः, भुवः, तथा स्वः ये तीनों लोक बाढ़ के जल में डूब जायेंगे।

त्रिलोक्यां लीयमानायां संवर्ताम्भसि वै तदा ।
उपस्थास्यति नौः काचिद्विशाला त्वां मयेरिता ॥ ३३॥

शब्दार्थ

त्रि-लोक्याम्—तीनों लोकों; लीयमानायाम्—जलमग्न हो जाने पर; संवर्त-अम्भसि—प्रलय के जल में; वै—निस्सन्देह; तदा—उस समय; उपस्थास्यति—प्रकट होगी; नौः—नाव; काचित्—एक; विशाला—बहुत बड़ी; त्वाम्—तुम्हारे पास; मया—मेरे द्वारा; ईरिता—भेजी गयी।

जब तीनों लोक जल में डूब जायेंगे तो मेरे द्वारा भेजी गई एक विशाल नाव तुम्हारे समक्ष प्रकट होगी।

त्वं तावदोषधीः सर्वा बीजान्युच्चावचानि च ।
सप्तर्षिभिः परिवृतः सर्वसत्त्वोपबृंहितः ॥ ३४॥
आरुह्य बृहतीं नावं विचरिष्यस्यविक्लवः ।
एकार्णवे निरालोके ऋषीणामेव वर्चसा ॥ ३५॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; तावत्—उस समय तक; ओषधीः—औषधियाँ; सर्वाः—सभी तरह की; बीजानि—बीज; उच्च-अवचानि—उच्च तथा निम्न; च—तथा; सप्त-ऋषिभिः—सात ऋषियों से; परिवृतः—घिरा हुआ; सर्व-सत्त्व—सभी प्रकार के जीव; उपबृंहितः—से घिरा; आरुह्य—चढ़कर; बृहतीम्—अत्यन्त बड़ी; नावम्—नाव में; विचरिष्यसि—विचरण करोगे; अविक्लवः—खिन्नतारहित; एक-अर्णवे—बाढ़ के सागर में; निरालोके—बिना प्रकाश के; ऋषीणाम्—ऋषियों के; एव—निस्सन्देह; वर्चसा—तेज से।

हे राजा! तत्पश्चात् तुम सभी तरह की औषधियाँ एवं बीज एकत्र करोगे और उन्हें उस विशाल नाव में लाद लोगे। तब सप्तर्षियों समेत एवं सभी प्रकार के जीवों से घिरकर तुम उस नाव में चढ़ोगे और बिना किसी खिन्नता के तुम अपने संगियों सहित बाढ़ के समुद्र में सुगमता से विचरण करोगे। उस समय ऋषियों का तेज ही एकमात्र प्रकाश होगा।

दोधूयमानां तां नावं समीरेण बलीयसा ।

उपस्थितस्य मे शृङ्गे निबध्नीहि महाहिना ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

दोधूयमानाम्—डगमगाती; ताम्—उस; नावम्—नाव को; समीरेण—हवा से; बलीयसा—शक्तिशाली; उपस्थितस्य—पास ही उपस्थित; मे—मेरे; शृङ्गे—सींग में; निबध्नीहि—बाँध देना; महा-अहिना—महान् सर्प (वासुकी) से।

तब ज्योंही नाव तेज हवा से डगमगाने लगे तुम उसे महान् सर्प वासुकि के द्वारा मेरे सींग से बाँध देना क्योंकि मैं तुम्हारे पास ही उपस्थित रहूँगा।

अहं त्वामृषिभिः सार्धं सहनावमुदन्वति ।
विकर्षन्विचरिष्यामि यावद्ब्राह्मी निशा प्रभो ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

अहम्—मैं; त्वाम्—तुमको; ऋषिभिः—सारे ऋषियों के; सार्धम्—साथ; सह—से युक्त; नावम्—नाव; उदन्वति—प्रलय के जल में; विकर्षन्—खींचते हुए; विचरिष्यामि—विचरण करूँगा; यावत्—जब तक; ब्राह्मी—ब्रह्मा की; निशा—रात्रि; प्रभो—हे राजा।

हे राजा! नाव में बैठे तुम्हं तथा सारे ऋषियों को खींचते हुए, प्रलय-जल में मैं तब तक विचरण करूँगा जब तक ब्रह्मा की शयन-रात्रि समाप्त नहीं हो जाती।

तात्पर्य : यह विशेष प्रलय वास्तव में ब्रह्मा की रात्रि में नहीं अपितु उनके दिन के समय हुई थी क्योंकि यह घटना चाक्षुष मनु के काल में घटी थी। ब्रह्मा जब सोने चले जाते हैं तब उनकी रात होती है, किन्तु दिन के समय चौदह मनु रहते हैं जिनमें से एक चाक्षुष मनु है। इसलिए श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर टीका करते हैं कि यद्यपि ब्रह्मा के लिए दिन था, किन्तु भगवान् की परम इच्छा से उन्हें कुछ समय के लिए नींद आने लगी। यह थोड़ा सा समय ब्रह्मा की रात्रि माना जाता है। श्रील रूप गोस्वामी ने अपने *लघु-भागवतामृत* में इसकी विस्तार से विवेचना की है, जिसका सारांश इस प्रकार है—अगस्त्य मुनि के शाप के कारण स्वायम्भुव मनु के काल में प्रलय हुई। इस प्रलय का वर्णन *मत्स्य पुराण* में पाया जाता है। भगवान् की इच्छानुसार चाक्षुष मनु के समय में अकस्मात् एक दूसरी प्रलय हुई। इसका वर्णन मार्कण्डेय ऋषि ने *विष्णु-धर्मोत्तर* में किया है। मनु के काल की समाप्ति पर प्रलय आवश्यक नहीं होती है, किन्तु चाक्षुष मन्वन्तर के अन्त में भगवान् ने अपनी माया से सत्यव्रत को प्रलय का प्रभाव दिखलाना चाहा। श्रील श्रीधर स्वामी भी इस मत से सहमत हैं।

लघु-भागवतामृत में कहा गया है—

मध्ये मन्वन्तरस्यैव मुनेः शापान् मनुं प्रति।

प्रलयोऽसौ बभूवेति पुराणे क्वचिदीर्यते॥

अयम् आकस्मिको जातश्चाक्षुषस्यान्तरे मनो:।

प्रलय: पद्मनाभस्य लीलयेति च कुत्रचित्॥

सर्वमन्वन्तरस्यान्ते प्रलयो निश्चितं भवेत्।

विष्णुधर्मोत्तरे त्वेतत् मार्कण्डेयेण भाषितम्॥

मनोरन्ते लयो नास्ति मनवेऽदर्शि मायया।

विष्णुनेति ब्रुवाणैस्तु स्वामिभिर्नैष मन्यते॥

मदीयं महिमानं च परं ब्रह्मेति शब्दितम् ।
वेत्स्यस्यनुगृहीतं मे सम्प्रश्नैर्विवृतं हृदि ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

मदीयम्—मेरी; महिमानम्—महिमा; च—तथा; परम् ब्रह्म—परम ब्रह्म, परम सत्य; इति—इस प्रकार; शब्दितम्—विख्यात; वेत्स्यसि—तुम समझोगे; अनुगृहीतम्—कृपा पाकर; मे—मेरे द्वारा; सम्प्रश्नै:—प्रश्नों के द्वारा; विवृतम्—पूर्णतया व्याख्या किया गया; हृदि—हृदय में।

मैं तुम्हें ठीक से सलाह दूँगा और तुम्हारा पक्ष भी लूँगा और मुझ परब्रह्म की महिमाओं के विषय में तुम्हारी जिज्ञासाओं के कारण हर बात तुम्हारे हृदय के भीतर प्रकट होगी। इस तरह तुम मेरे विषय में सब कुछ जान लोगे।

तात्पर्य : जैसाकि *भगवद्गीता* (१५.१५) में कहा गया है—*सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्त: स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च*—परमात्मा सबों के हृदयों में स्थित हैं और उन्हीं से स्मृति, ज्ञान तथा विस्मृति आती है। जो जितना शरणागत होता है उसी अनुपात में भगवान् अपने को प्रकट करते हैं। *ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।* आदान-प्रदान के सहयोग में भगवान् मनुष्य की शरणागति के अनुपात में अपने को प्रकट करते हैं। जो पूरी तरह शरण में आता है उसे आंशिक रूप से शरण में आने वाले की तुलना में भिन्न रूप में प्राकट्य किया जाता है। हर व्यक्ति स्वभावत: प्रत्यक्ष था अप्रत्यक्ष रूप से भगवान् की शरण में जाता है। बद्धजीव संसार में प्रकृति के नियमों के प्रति भौतिक रूप से आत्म-समर्पण करता है, किन्तु जो व्यक्ति पूर्णरूपेण भगवान् की शरण में जाता है उस पर भौतिक प्रकृति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ऐसे पूर्ण शरणागत व्यक्ति पर भगवान् प्रत्यक्षत: कृपा करते हैं। *मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।* जो पूर्णतया भगवान् की शरण में जाता है उसे प्रकृति के गुणों का भय

नहीं रह जाता क्योंकि हर वस्तु भगवान् की महिमा का विस्तार मात्र है (*सर्वं खल्विदं ब्रह्म*) और ये महिमाएँ क्रमशः प्रकट होती हैं और अनुभव की जाती हैं। भगवान् परम शुद्धिकर्ता हैं (*परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्*)। जो जितना ही पवित्र हो जाता है और ब्रह्म के बारे में जितना अधिक जानना चाहता है, भगवान् उसके समक्ष उतना ही अधिक प्रकट करते हैं। शुद्ध भक्तों को ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् का पूर्ण ज्ञान प्रकट किया जाता है। भगवान् *भगवद्गीता* (१०.११) में कहते हैं—

तेषामेवानुकम्पार्थम् अहं अज्ञानजं तमः।

नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥

"मैं उन पर कृपा करके उनके हृदयों में बस कर, ज्ञान के चमकते हुए दीप से अज्ञानजन्य अंधकार को विनष्ट कर देता हूँ।"

इत्थमादिश्य राजानं हरिरन्तरधीयत ।
सोऽन्ववैक्षत तं कालं यं हृषीकेश आदिशत् ॥ ३९॥

शब्दार्थ

इत्थम्—जैसाकि पहले कहा जा चुका है; आदिश्य—आदेश देकर; राजानम्—राजा (सत्यव्रत) को; हरिः—भगवान्; अन्तरधीयत—उस स्थान से अदृश्य हो गये; सः—वह (राजा); अन्ववैक्षत—प्रतीक्षा करने लगा; तम् कालम्—उस समय की; यम्—जो; हृषीक-ईशः—समस्त इन्द्रियों के स्वामी, हृषीकेश ने; आदिशत्—आदेश दिया।

राजा को इस प्रकार आदेश देने के बाद भगवान् तुरन्त अन्तर्धान हो गये। तब राजा सत्यव्रत उस काल की प्रतीक्षा करने लगा, जिसका आदेश भगवान् दे गये थे।

आस्तीर्य दर्भान्प्राक्कूलान्राजर्षिः प्रागुदङ्मुखः ।
निषसाद हरेः पादौ चिन्तयन्मत्स्यरूपिणः ॥ ४०॥

शब्दार्थ

आस्तीर्य—फैलाकर; दर्भान्—कुशों; प्राक्-कूलान्—जिसके सिरे पूर्व की ओर थे; राज-ऋषिः—सन्तराजा सत्यव्रत; प्राक्-उदक्-मुखः—उत्तर पूर्व (ईशान्) की ओर मुख किये; निषसाद—बैठ गया; हरेः—भगवान् के; पादौ—चरणकमलों पर; चिन्तयन्—ध्यान करते हुए; मत्स्य-रूपिणः—जिसने मछली का रूप धारण किया था।

सन्त राजा ने कुशों के सिरों को पूर्व दिशा की ओर करके उन्हें बिछा दिया और स्वयं उत्तर पूर्व की ओर मुख करके कुशों पर बैठकर उन भगवान् विष्णु का ध्यान करने लगा जिन्होंने मछली का रूप धारण किया था।

ततः समुद्र उद्वेलः सर्वतः प्लावयन्महीम् ।
वर्धमानो महामेघैर्वर्षद्भिः समदृश्यत ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; समुद्रः—समुद्र; उद्वेलः—उमड़ता हुआ; सर्वतः—सर्वत्र; प्लावयन्—जलमग्न करते हुए; महीम्—पृथ्वी को; वर्धमानः—अधिकाधिक बढ़कर; महा-मेघैः—विशाल बादलों के द्वारा; वर्षद्भिः—लगातार वर्षा द्वारा; समदृश्यत—राजा ने देखा।

तत्पश्चात् विशाल बादलों ने झड़ी लगाकर समुद्र के जल को और अधिक चढ़ा दिया। इससे समुद्र बढ़कर स्थल के ऊपर बहने लगा और उसने समस्त विश्व को जलमग्न करना आरम्भ कर दिया।

ध्यायन्भगवदादेशं ददृशे नावमागताम् ।
तामारुरोह विप्रेन्द्रैरादायौषधिवीरुधः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

ध्यायन्—स्मरण करते हुए; भगवत्-आदेशम्—भगवान् के आदेश; ददृशे—उसने देखा; नावम्—नाव को; आगताम्—पास आती हुई; ताम्—उसमें; आरुरोह—चढ़ गया; विप्र-इन्द्रैः—साधु ब्राह्मणों सहित; आदाय—लेकर; औषधि—औषधियाँ; वीरुधः—तथा लताएँ।

ज्योंही सत्यव्रत को भगवान् का आदेश स्मरण आया त्योंही उसे अपनी ओर आती हुई एक नाव दिखी। तब उसने वनस्पतियों तथा लताओं को एकत्र किया और वह साधु ब्राह्मणों को साथ लेकर उस नाव में चढ़ गया।

तमूचुर्मुनयः प्रीता राजन्ध्यायस्व केशवम् ।
स वै नः सङ्कटादस्मादविता शं विधास्यति ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस राजा से; ऊचुः—कहा; मुनयः—सारे सन्त ब्राह्मणों ने; प्रीताः—प्रसन्न होकर; राजन्—हे राजा; ध्यायस्व—ध्यान करो; केशवम्—भगवान् केशव का; सः—वह; वै—निस्सन्देह; नः—हमको; सङ्कटात्—संकट से; अस्मात्—जैसा अब दिख रहा है; अविता—बचायेगा; शम्—कल्याण की; विधास्यति—योजना करेगा।

उन सन्त ब्राह्मणों ने प्रसन्न होकर राजा से कहा : हे राजा! भगवान् केशव का ध्यान कीजिए। वे हमें इस आसन्न संकट से उबार लेंगे और हमारे कल्याण की व्यवस्था करेंगे।

सोऽनुध्यातस्ततो राज्ञा प्रादुरासीन्महार्णवे ।
एकशृङ्गधरो मत्स्यो हैमो नियुतयोजनः ॥ ४४॥

शब्दार्थ

सः—भगवान्; अनुध्यातः—ध्यान किये जाने पर; ततः—तत्पश्चात् (सन्त ब्राह्मणों के वचन सुनकर); राज्ञा—राजा के द्वारा; प्रादुरासीत्—(उसके समक्ष) प्रकट हुई; महा-अर्णवे—प्रलय सागर में; एक-शृङ्ग-धरः—एक सींग धारण किये; मत्स्यः—बड़ी मछली; हैमः—सोने की बनी; नियुत-योजनः—अस्सी लाख मील लम्बी।

जब राजा भगवान् का निरन्तर ध्यान कर रहे थे तो प्रलय सागर में एक बड़ी सुनहरी मछली प्रकट हुई। इस मछली के एक सींग था और वह अस्सी लाख मील लम्बी थी।

निबध्य नावं तच्छृङ्गे यथोक्तो हरिणा पुरा ।
वरत्रेणाहिना तुष्टस्तुष्टाव मधुसूदनम् ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

निबध्य—बांध कर; नावम्—नाव को; तत्-शृङ्गे—बड़ी मछली के सींग पर; यथा-उक्तः—जैसी सलाह दी गई थी; हरिणा—भगवान् द्वारा; पुरा—पहले; वरत्रेण—रस्सी के द्वारा; अहिना—विशाल सर्प (वासुकि) द्वारा; तुष्टः—प्रसन्न होकर; तुष्टाव—उसने प्रसन्न कर लिया; मधुसूदनम्—मधु के हन्ता भगवान् को।

जैसा कि भगवान् पहले आदेश दे चुके थे उसका पालन करते हुए राजा ने वासुकि सर्प को रस्सी बनाकर उस नाव को मछली के सींग में बाँध दिया। फिर सन्तुष्ट होकर भगवान् की स्तुति करनी प्रारम्भ कर दी।

श्रीराजोवाच
अनाद्यविद्योपहतात्मसंविद-
स्तन्मूलसंसारपरिश्रमातुराः ।
यदृच्छयोपसृता यमाप्नुयु-
र्विमुक्तिदो नः परमो गुरुर्भवान् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा ने निम्नवत् स्तुति की; अनादि—अनन्त काल से; अविद्या—अज्ञान से; उपहत—विनष्ट हो गया है; आत्म-संविदः—आत्म-ज्ञान; तत्—वह है; मूल—जड़; संसार—भौतिक बन्धन; परिश्रम—दुखद स्थिति तथा कठिन श्रम से पूर्ण; आतुराः—कष्ट सहने वाले; यदृच्छया—परम इच्छा से; उपसृताः—आचार्य का कृपापात्र; यम्—भगवान् को; आप्नुयुः—प्राप्त कर सकता है; विमुक्ति-दः—मुक्ति की प्रक्रिया; नः—हमारा; परमः—परम; गुरुः—गुरु; भवान्—आप।

राजा ने कहा : भगवान् की कृपा से उन लोगों को जो अनन्त काल से आत्मज्ञान खो बैठे हैं और इस अविद्या के कारण भौतिक कष्टमय बद्ध जीवन में रह रहें हैं भगवद्भक्तों से भेंट करने का अवसर मिलता है। मैं उन भगवान् को परम आध्यात्मिक गुरु स्वीकार करता हूँ।

तात्पर्य : वास्तव में भगवान् परम आध्यात्मिक गुरु हैं। वे बद्धजीवों के कष्ट के विषय में सब कुछ जानते हैं; अतएव वे इस भौतिक जगत में वास्तविक स्वयं प्रकट होते हैं, कभी अवतार के रूप में तो कभी किसी जीव को अपना प्रतिनिधि बनाकर। फिर भी वे सभी दशाओं में आदि आध्यात्मिक गुरु हैं,

जो इस संसार में कष्ट भोगने वाली बद्ध जीवात्माओं को प्रकाश प्रदान करता है। भगवान् सदैव बद्धजीवों की कई प्रकार की सहायता देने में लगे रहते हैं। इसीलिए उन्हें यहाँ पर *परमो गुरुर्भवान्* कहकर सम्बोधित किया गया है। भगवान् का प्रतिनिधि भी जो कृष्णभावनामृत का प्रसार-कार्य करता है भगवान् के आदेश को पूरा करने के लिए भगवान् द्वारा मार्गदर्शन पाता है। ऐसा व्यक्ति भले ही एक सामान्य मनुष्य लगे, किन्तु परम गुरु-रूप भगवान् की ओर से काम करने के कारण उसे सामान्य व्यक्ति की तरह उपेक्षित नहीं किया जाना चाहिए। इसीलिए कहा गया है—*आचार्यं मां विजानीयात्*—आचार्य को जो भगवान् की ओर से कार्य करता है साक्षात् भगवान् जैसा मानना चाहिए।

साक्षाद् धरित्वेन समस्तशास्त्रै-

रुक्तस्तथा भाव्यत एव सद्भिः।

किन्तु प्रभोर्यः प्रिय एव तस्य

वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥

विश्वनाथ चक्रवती ठाकुर ने सलाह दी है कि गुरु जो भगवान् की ओर से कार्य करता है भगवान् की ही भाँति पूजा जाना चाहिए क्योंकि इस भौतिक संसार में फँसे बद्धजीवों को लाभ पहुँचाने के लिए भगवान् के सन्देश के प्रचार हेतु वह भगवान् का सर्वाधिक विश्वनीय दास होता है।

जनोऽबुधोऽयं निजकर्मबन्धनः
सुखेच्छया कर्म समीहतेऽसुखम् ।
यत्सेवया तां विधुनोत्यसन्मतिं
ग्रन्थिं स भिन्द्याद्धृदयं स नो गुरुः ॥ ४७॥

शब्दार्थ

जनः—जन्म तथा मृत्यु के अधीन बद्धजीव; अबुधः—शरीर को आत्मा स्वीकार करने के कारण सर्वाधिक मूर्ख; अयम्—यह; निज-कर्म-बन्धनः—अपने पापपूर्ण कार्यों के फलस्वरूप विभिन्न प्रकार के शरीरों को स्वीकार करते हुए; सुख-इच्छया—इस जगत में सुखी बनने की इच्छा से; कर्म—सकाम कर्म; समीहते—योजना बनाता है; असुखम्—केवल दुख के लिए; यत्-सेवया—जिसकी सेवा करने से; ताम्—कर्म बन्धन को; विधुनोति—स्वच्छ बनाता है; असत्-मतिम्—मलिन मनोवृत्ति (शरीर को आत्मा मानते हुए); ग्रन्थिम्—कठिन गाँठ; सः—भगवान्; भिन्द्यात्—काटी जाकर; हृदयम्—हृदय में; सः—वह (भगवान्); नः—हमारा; गुरुः—गुरु।

इस संसार में सुखी बनने की आकांक्षा से मूर्ख बद्धजीव सकाम कर्म करता है जिनसे केवल कष्ट ही मिलते हैं। किन्तु भगवान् की सेवा करने से मनुष्य सुख की ऐसी झूठी इच्छाओं से मुक्त हो जाता है। हे मेरे गुरु! मेरे हृदय से झूठी इच्छाओं की ग्रंथि को काट दें।

तात्पर्य : भौतिक सुख के लिए बद्धजीव सकाम कर्मों में संलग्न होता है, किन्तु वस्तुतः वे उसे भौतिक दुख में डाल देते हैं। बद्धजीव इसे न जानने के कारण अविद्या में रहता कहा जाता है। बद्धजीव सुख की झूठी आशा से विविध भौतिक योजनाओं को अपनाने में लग जाता है। यहाँ महाराज सत्यव्रत प्रार्थना कर रहे हैं कि भगवान् झूठे सुख की इस कठोर गाँठ को काट दें और उसके परम आध्यात्मिक गुरु बन जाँय।

यत्सेवयाग्नेरिव रुद्ररोदनं
पुमान्विजह्यान्मलमात्मनस्तमः ।
भजेत वर्णं निजमेष सोऽव्ययो
भूयात्स ईशः परमो गुरोर्गुरुः ॥ ४॥

शब्दार्थ

यत्-सेवया—जिस (भगवान् की) सेवा से; अग्नेः—अग्नि के स्पर्श में; इव—मानो; रुद्र-रोदनम्—चाँदी या सोने का टुकड़ा पवित्र हो जाता है; पुमान्—पुरुष; विजह्यात्—त्याग सकता है; मलम्—संसार की सारी गंदी वस्तुओं को; आत्मनः—अपनी; तमः—तमोगुण, जिसके अन्तर्गत मनुष्य पवित्र तथा अपवित्र कर्म करता है; भजेत—असली रूप को प्राप्त करता है; वर्णम्—मूल पहचान; निजम्—अपनी; एषः—ऐसा; सः—वह; अव्ययः—अव्यय; भूयात्—हो; सः—वह; ईशः—भगवान्; परमः—परम; गुरोः गुरुः—गुरुओं के गुरु।

भवबन्धन से जो छूटना चाहता है उसे भगवान् की सेवा करनी चाहिए और पवित्र तथा अपवित्र कर्मों से युक्त तमोगुण का संसर्ग छोड़ देना चाहिए। इस तरह मनुष्य को अपनी मूल पहचान फिर से प्राप्त होती है, जिस प्रकार अग्नि में तपाने पर चाँदी या सोने का टुकड़ा अपना सारा मल छुड़ा कर शुद्ध हो जाता है। ऐसे अव्यय भगवान्! आप हमारे गुरु बनें क्योंकि आप अन्य सभी गुरुओं के आदि गुरु हैं।

तात्पर्य : मनुष्य जीवन अपने को शुद्ध बनाने के लिए तपस्या करने के निमित्त है। *तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं शुद्ध्येत।* प्रकृति के गुणों के कल्मष के कारण मनुष्य जन्म-मृत्यु के चक्र में पड़ा रहता है (*कारणं गुणसङ्गोऽस्य सद्असद्-योनिजन्मसु*); अतएव मनुष्य जीवन का उद्देश्य इस कल्मष से अपने को शुद्ध करना है, जिससे उसे अपना आध्यात्मिक स्वरूप पुनः प्राप्त हो सके और जन्म-मृत्यु के इस चक्र में उसे न पड़ना पड़े। कल्मषहीन बनने की संस्तुत विधि है भगवान् की भक्ति। आत्म-साक्षात्कार की अनेक विधियाँ हैं यथा *कर्म, ज्ञान* तथा *योग,* किन्तु इनमें से कोई भी भक्ति की विधि के तुल्य नहीं है। जिस प्रकार सोने तथा चाँदी के मल को मात्र जल से धोकर नहीं, अपितु अग्नि में

तपाकर दूर किया जा सकता है उसी प्रकार जीव को भक्ति के द्वारा उसके मूल स्वरूप में जागृत किया जा सकता है (*यत्सेवया*), *कर्म, ज्ञान* या *योग* से नहीं। चिन्तनपरक ज्ञान या योगासन प्रक्रिया से कोई लाभ नहीं हो सकता।

वर्णम् शब्द किसी के मूल स्वरूप की कान्ति को बताता है। चाँदी या सोने की मूल कान्ति चमकीली होती है। इसी प्रकार जीव की मूल कान्ति आनन्द की कान्ति है क्योंकि जीव *सच्चिदानन्द विग्रह* का अंशरूप है। *आनन्दमयोऽभ्यासात्।* सच्चिदानन्द विग्रह अर्थात् कृष्ण का अंश होने के कारण प्रत्येक जीव को आनन्दमय होने का अधिकार है। तो फिर प्रकृति के भौतिक गुणों द्वारा मलीन कल्मष के कारण जीव कष्ट क्यों उठाये? जीव को चाहिए कि शुद्ध हो और अपना मूल स्वरूप फिर से प्राप्त करे। ऐसा वह भक्ति द्वारा ही कर सकता है। इसलिए मनुष्य को भगवान् की शिक्षाएँ ग्रहण करनी चाहिए जिन्हें यहाँ *गुरोर्गुरुः* अर्थात् गुरुओं का गुरु कहा गया है।

भले ही हमें भगवान् से प्रत्यक्ष सम्पर्क करने का सौभाग्य प्राप्त न हो, किन्तु भगवान् का प्रतिनिधि साक्षात् भगवान् जैसा होता है क्योंकि ऐसा प्रतिनिधि ऐसा कुछ भी नहीं कहता जो भगवान् द्वारा न कहा गया हो। इसलिए चैतन्य महाप्रभु ने गुरु की यह परिभाषा दी है—*यारे देख, तारे कह 'कृष्ण'-उपदेश*—प्रामाणिक गुरु वह है, जो अपने शिष्यों को कृष्ण द्वारा कहे गये सिद्धान्तों के अनुसार उपदेश देता है। प्रामाणिक गुरु वह है, जिसने कृष्ण को गुरु स्वीकार किया है। यह गुरु-परम्परा प्रणाली है। आदि गुरु तो व्यासदेव हैं क्योंकि वे *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* के वक्ता हैं जिनमें लिखी सारी बातें कृष्ण से सम्बन्ध रखती हैं। अतएव *गुरुपूजा* को व्यासपूजा कहा जाता है। अन्ततः आदि गुरु कृष्ण हैं, नारद उनके शिष्य हैं और व्यास नारद के शिष्य हैं। इस प्रकार क्रमशः गुरु-परम्परा प्राप्त होती है। कोई व्यक्ति गुरु नहीं बन सकता यदि वह यह नहीं जानता कि कृष्ण या उनके अवतार क्या चाहते हैं। गुरु का सन्देश भगवान् का सन्देश है और वह संदेश है सारे विश्व में कृष्णभावनामृत का प्रसार।

न यत्प्रसादायुतभागलेश-
मन्ये च देवा गुरवो जनाः स्वयम् ।
कर्तुं समेताः प्रभवन्ति पुंस-
स्तमीश्वरं त्वां शरणं प्रपद्ये ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; यत्-प्रसाद—भगवान् की कृपा; अयुत-भाग-लेशम्—मात्र दस हजारवाँ भाग; अन्ये—अन्य; च—भी; देवाः—देवता तक; गुरवः—तथाकथित गुरु; जनाः—सारे लोग; स्वयम्—स्वयं; कर्तुम्—सम्पन्न करने के लिए; समेताः—कुल मिलाकर; प्रभवन्ति—समान रूप से समर्थ बन सकते हैं; पुंसः—भगवान् द्वारा; तम्—उसको; ईश्वरम्—ईश्वर को; त्वाम्—तुम्हारी; शरणम्—शरण; प्रपद्ये—ग्रहण करने दें।

न तो सारे देवता, न तथाकथित गुरू, न ही अन्य सारे लोग, स्वतंत्र रूप से या साथ मिलकर, आपकी कृपा के दस हजारवें भाग के बराबर भी कृपा प्रदान कर सकते हैं। अतएव मैं आपके चरणकमलों की शरण लेना चाहता हूँ।

तात्पर्य : कहा गया है कि—*कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः*—सामान्य लोग भौतिक इच्छाओं से प्रेरित होकर शीघ्र ही फल प्राप्त करने के लिए देवताओं की पूजा करते हैं। सामान्यतः लोग भगवान् विष्णु के भक्त नहीं बनते क्योंकि भगवान् विष्णु उनके आदेश-पूरक नहीं बनते। वे भक्त को कभी भी ऐसा वर नहीं देते जिससे भक्त के मन में और वरों की इच्छा उत्पन्न हो। देवताओं की पूजा करने से फल प्राप्त हो सकते हैं किन्तु जैसाकि *भगवद्गीता* में वर्णन हुआ है—*अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्*—देवताओं से जो भी वर लिये जा सकते हैं, वे क्षणिक होते हैं। चूँकि देवता स्वयं नश्वर होते हैं अतएव उनके वर भी नश्वर होते हैं और उनका कोई स्थायी महत्त्व नहीं होता। जो लोग ऐसे वरों की आकांक्षा करते हैं, वे अल्पज्ञ हैं (*तद्भवत्यल्पमेधसाम्*)। भगवान् विष्णु के वर भिन्न हैं। भगवान् विष्णु की कृपा होने पर मनुष्य भौतिक कल्मष से पूर्णतया मुक्त होकर भगवद्धाम को वापस जा सकता है। इसलिए देवताओं द्वारा दिये गये वर भगवान् के वरों के दस हजारवें भाग के भी बराबर नहीं होते। अतएव मनुष्य को चाहिए कि वह देवताओं या झूठे गुरुओं से वर प्राप्त करने का प्रयास न करे। उसे केवल भगवान् से वर पाने की कामना करनी चाहिए। जैसाकि भगवान् *भगवद्गीता* (१.६६) में कहते हैं—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

''सारे धर्मों को छोड़कर केवल मेरी शरण में आओ। मैं तुम्हें सारे पापों के फल से उबार लूँगा। तुम डरो मत।'' यही सबसे बड़ा वर है।

अचक्षुरन्धस्य यथाग्रणीः कृतस्

तथा जनस्याविदुषोऽबुधो गुरुः ।
त्वमर्कदृक्सर्वदृशां समीक्षणो
वृतो गुरुर्नः स्वगतिं बुभुत्सताम् ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

अचक्षुः—जिसमें देखने की शक्ति न हो; अन्धस्य—अन्धे पुरुष का; यथा—जिस तरह; अग्रणीः—आगे चलने वाला नेता; कृतः—स्वीकृत; तथा—उसी प्रकार; जनस्य—ऐसे व्यक्ति का; अविदुषः—जिसे जीवन के लक्ष्य का कोई ज्ञान नहो; अबुधः—मूर्ख, मूढ़; गुरुः—गुरु; त्वम्—तुम; अर्क-दृक्—सूर्य के समान प्रतीत होते हो; सर्व-दृशाम्—ज्ञान के सारे स्रोतों में से; समीक्षणः—पूर्ण द्रष्टा; वृतः—स्वीकृत; गुरुः—गुरु; नः—हमारा; स्व-गतिम्—अपने असली जीवन-लक्ष्य को जानने वाला; बुभुत्सताम्—ऐसे प्रबुद्ध व्यक्ति को।

जिस प्रकार एक अन्धा पुरुष न देख सकने के कारण दूसरे अन्धे को अपना नायक मान लेता है, उसी तरह जो लोग जीवन-लक्ष्य को नहीं जानते वे किसी न किसी धूर्त तथा मूर्ख को अपना गुरु बना लेते हैं, किन्तु हमारा लक्ष्य आत्म-साक्षात्कार है अतएव हम आपको अपना गुरु स्वीकार करते हैं क्योंकि आप सभी दिशाओं में देखने में समर्थ हैं और सूर्य की तरह सर्वज्ञ हैं।

तात्पर्य : अज्ञान में डूबा रहने एवं जीवन-लक्ष्य न जानने के कारण बद्धजीव ऐसा गुरु बनाता है, जो शब्दों की जादूगरी जानता हो और ऐसा जादू दिखा सकता हो जो किसी मूर्ख के लिए आश्चर्यजनक हो। कभी-कभी मूर्ख व्यक्ति किसी को इसलिए गुरु बना लेता है क्योंकि वह अपनी योगशक्ति से थोड़ा सा सोना भी बना सकता है। चूँकि ऐसे शिष्य के पास अल्पज्ञान रहता है अतएव वह यह तै नहीं कर सकता कि सोना बनाना गुरु की कसौटी है या नहीं। क्यों न उन भगवान् कृष्ण को गुरु बनाया जाये जिनसे सोने की अनन्त खानें उत्पन्न होती हैं? *अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।* सोने की सारी खानें भगवान् की शक्ति द्वारा उत्पन्न की जाती हैं; अतएव उस जादूगर को क्यों गुरु बनाया जाये जो थोड़ा सा सोना ही बना सकता है? ऐसे गुरुओं को वे ही मानते हैं, जो अन्धे हैं और जीवन का लक्ष्य नहीं जानते। किन्तु महाराज सत्यव्रत जीवन का लक्ष्य जानते थे। वे भगवान् को जानते थे; अतएव उन्होंने भगवान् को अपना गुरु बनाया। या तो भगवान् या उनका प्रतिनिधि ही गुरु बन सकता है। भगवान् कहते हैं—*मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते*—ज्योंही कोई मेरी शरण में आ जाता है उसे माया के जाल से छुटकारा मिल सकता है। अतएव यह गुरु का कार्य है कि वह अपने शिष्य को उपदेश दे कि यदि वह भवबन्धन से छूटना चाहता है, तो भगवान् की शरण में जाये। यही गुरु का लक्षण है। इसी सिद्धान्त का उपदेश श्री चैतन्य महाप्रभु ने दिया—*यारे देख, तारे कह 'कृष्ण'-उपदेश।* दूसरे शब्दों में, मनुष्य को यह सलाह दी जाती है कि वह किसी ऐसे को गुरु न बनाए जो भगवान्

कृष्ण द्वारा दिये गये उपदेश के मार्ग पर न चलता हो।

जनो जनस्यादिशतेऽसतीं गतिं
यया प्रपद्येत दुरत्ययं तमः ।
त्वं त्वव्ययं ज्ञानममोघमञ्जसा
प्रपद्यते येन जनो निजं पदम् ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

जनः—व्यक्ति जो प्रामाणिक गुरु नहीं है (साधारण मनुष्य); जनस्य—उस साधारण व्यक्ति का जिसे जीवन का लक्ष्य ज्ञात नहीं है; आदिशते—आदेश देता है; असतीम्—नश्वर, भौतिक; गतिम्—जीवन लक्ष्य; यया—ऐसे ज्ञान से; प्रपद्येत—शरण में जाता है; दुरत्ययम्—दुर्लंघ्य; तमः—अज्ञान; त्वम्—तुम; तु—लेकिन; अव्ययम्—जो विनष्ट न किया जा सके; ज्ञानम्—ज्ञान; अमोघम्—बिना भौतिक कल्मष के; अञ्जसा—तुरन्त; प्रपद्यते—प्राप्त करता है; येन—ऐसे ज्ञान से; जनः—व्यक्ति; निजम्—अपना; पदम्—मूल स्थान।

तथाकथित भौतिकतावादी गुरु अपने भौतिकतावादी शिष्यों को आर्थिक विकास एवं इन्द्रियतृप्ति के विषय में उपदेश देता है और ऐसे उपदेशों से मूर्ख शिष्य अज्ञान के भौतिक संसार में पड़े रहते है। किन्तु आप शाश्वत ज्ञान प्रदान करते हैं और बुद्धिमान् व्यक्ति ऐसा ज्ञान प्राप्त करके तुरन्त ही अपनी मूल वैधानिक स्थिति को प्राप्त कर लेता है।

तात्पर्य : तथाकथित गुरू अपने शिष्यों को भौतिक लाभ के लिए शिक्षा देते हैं। कुछ गुरू उपदेश देते हैं कि ऐसा ध्यान किया जाये जिससे उसकी बुद्धि शरीर को इन्द्रियतृप्ति के योग्य बनाये रखने में बढ़े। दूसरे प्रकार के गुरू उपदेश देते हैं कि काम (यौन) ही जीवन का चरम लक्ष्य है; अतएव शक्तिभर सम्भोग करना चाहिए। ये उपदेश मूर्ख गुरुओं के हैं। दूसरे शब्दों में, मूर्ख गुरु के उपदेशों के कारण मनुष्य भौतिक संसार में हमेशा के लिए पड़ा रहता है और इसके कष्ट सहता रहता है। किन्तु यदि कोई बुद्धिमान् व्यक्ति भगवान् से आदेश ग्रहण करता है, जैसाकि *भगवद्गीता* में या कपिलदेव के सांख्य दर्शन में बताया गया है, तो उसे शीघ्र ही मुक्ति मिल सकती है और वह आध्यात्मिक जीवन के मूल पद पर स्थित हो सकता है। *निजं पदम्* शब्द सार्थक हैं। भगवान् का अंश होने के कारण जीव को वैकुण्ठलोक में स्थान पाने का जन्मसिद्ध अधिकार है जहाँ किसी प्रकार की चिन्ता नहीं होती। अतएव मनुष्य को चाहिए कि भगवान् के आदेशों का पालन करे। तब *भगवद्गीता* के कथन के अनुसार इस शरीर को त्यागने के बाद मनुष्य भगवद्धाम वापस जायेगा—*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।* भगवान् अपने मूल स्व-रूप में वैकुण्ठ में रहते हैं और भगवान् के आदेशों का पालन करने वाला भक्त

उनके पास चला जाता है (*माम् एति*)। आध्यात्मिक व्यक्ति के रूप में ऐसा भक्त भगवान् के पास लौट जाता है जहाँ वह उनके साथ खेलता तथा नाचता है। यही जीवन का चरम लक्ष्य है।

त्वं सर्वलोकस्य सुहृत्प्रियेश्वरो
ह्यात्मा गुरुर्ज्ञानमभीष्टसिद्धिः ।
तथापि लोको न भवन्तमन्धधी-
र्जानाति सन्तं हृदि बद्धकामः ॥५२॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम, हे भगवान्; सर्व-लोकस्य—सारे लोकों एवं उनके निवासियों के; सुहृत्—शुभचिन्तक; प्रिय—अत्यन्त प्यारे; ईश्वरः—परम नियन्ता; हि—भी; आत्मा—परमात्मा; गुरुः—गुरु; ज्ञानम्—परम ज्ञान; अभीष्ट-सिद्धिः—समस्त इच्छाओं की पूर्ति; तथा अपि—फिर भी; लोकः—लोग; न—नहीं; भवन्तम्—आपको; अन्ध-धीः—अन्धी बुद्धि के कारण; जानाति—जान सकता है; सन्तम्—स्थित; हृदि—उसके हृदय में; बद्ध-कामः—भौतिक कामेच्छाओं से मोहित होने के कारण।

हे प्रभु! आप सबों के परम हितैषी तथा प्रियतम मित्र, नियन्ता, परमात्मा, परम उपदेशक, परम ज्ञान के दाता तथा समस्त इच्छाओं को पूरा करने वाले हैं। यद्यपि आप हृदय में रहते हैं, किन्तु हृदय में बसी कामेच्छाओं के कारण मूर्ख व्यक्ति आपको समझ नहीं पाता।

तात्पर्य : यहाँ पर मूर्खता का कारण बताया गया है। चूँकि इस जगत में बद्धजीव भौतिकतावादी कामेच्छाओं से पूर्ण रहता है अतएव वह भगवान् को नहीं समझ पाता यद्यपि भगवान् सबों के हृदय में वास करते हैं (*ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति*)। इसी मूर्खता के कारण वह भगवान् से उपदेश नहीं ग्रहण कर पाता यद्यपि भगवान् प्रत्येक व्यक्ति को बाहर और भीतर से उपदेश देने के लिए उद्यत रहते हैं। भगवान् कहते हैं—*ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।* दूसरे शब्दों में, भगवान् भक्ति के विषय में उपदेश दे सकते हैं जिससे मनुष्य भगवद्धाम लौट सकता है। किन्तु दुर्भाग्यवश लोग भक्ति को नहीं अपनाते। भगवान् सबों के हृदय में स्थित होकर मनुष्य को भगवद्धाम वापस जाने का पूरा-पूरा उपदेश दे सकते हैं, किन्तु मनुष्य कामेच्छाओं के कारण भौतिकतावादी कार्यों में लगा रहता है और भगवान् की सेवा नहीं करता। अतएव वह भगवान् के उपदेश के महत्त्व से वंचित रह जाता है। ज्ञान के बल पर मनुष्य यह समझ सकता है कि वह शरीर न होकर आत्मा है, किन्तु जब तक वह भक्ति में नहीं लगता तब तक जीवन का असली प्रयोजन पूरा पहीं हो पाता। जीवन का असली प्रयोजन भगवद्धाम वापस जाकर भगवान् के साथ रहना, उनके साथ खेलना नाचना तथा खाना-पीना है। ये सब आनन्द के विविध साधन हैं—आध्यात्मिक विविधताओं में आध्यात्मिक आनन्द। भले ही कोई ज्ञान के बल पर

ब्रह्मभूत पद को क्यों न पा ले तथा अपने आध्यात्मिक स्वरूप को क्यों न समझ ले, किन्तु भगवान् को समझे बिना वह आध्यात्मिक जीवन का आनन्द नहीं उठा सकता। इसका संकेत *अभीष्टसिद्धिः* शब्द से मिलता है। भगवान् की भक्ति में लगने से ही जीवन के चरम लक्ष्य को पूरा किया जा सकता है। तब भगवान् मनुष्य को सही उपदेश देंगे कि भगवद्धाम किस तरह वापस जाया जाये।

त्वं त्वामहं देववरं वरेण्यं
प्रपद्य ईशं प्रतिबोधनाय ।
छिन्ध्यर्थदीपैर्भगवन्वचोभि-
र्ग्रन्थीन्हृदय्यान्विवृणु स्वमोकः ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—आप कितने उच्च हैं; त्वाम्—तुमको; अहम्—मैं; देव-वरम्—देवताओं द्वारा पूजित; वरेण्यम्—सबों में महान्; प्रपद्ये—पूरी तरह शरणागत; ईशम्—परम नियन्ता को; प्रतिबोधनाय—जीवन के असली प्रयोजन को समझने के लिए; छिन्धि—काट दो; अर्थ-दीपैः—साभिप्राय उपदेश रूपी प्रकाश के द्वारा; भगवन्—हे भगवान्; वचोभिः—अपने शब्दों से; ग्रन्थीन्—गाँठों को; हृदय्यान्—हृदय के भीतर बँधी; विवृणु—बतलाइये; स्वम् ओकः—जीवन में मेरा गन्तव्य।

हे परमेश्वर! आत्म-साक्षात्कार के लिए मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूँ। आप सभी वस्तुओं के परम नियन्ता के रूप में देवताओं द्वारा पूजित होते हैं। आप अपने उपदेशों से जीवन के प्रयोजन को प्रकट करते हुए कृपया मेरे हृदय की ग्रंथि को काट दीजिये और मुझे जीवन का लक्ष्य बतलाइये।

तात्पर्य : कभी-कभी यह तर्क किया जाता है कि लोग यह नहीं जानते कि गुरु कौन होता है और ऐसा गुरु ढूँढ़ पाना जो जीवनलक्ष्य के विषय में प्रकाश दे सके अत्यन्त कठिन है। इन सारे प्रश्नों का उत्तर देने के लिए राजा सत्यव्रत हमें रास्ता दिखलाते हैं कि भगवान् को असली गुरु के रूप में स्वीकार किया जाये। भगवान् ने *भगवद्गीता* में सारी बातें बतलाई हैं कि इस संसार में प्रत्येक वस्तु के साथ कैसे व्यवहार किया जाये और किस तरह भगवद्धाम वापस जाया जाये। अतएव तथाकथित गुरुओं से, जो मूढ़ तथा मूर्ख होते हैं, भ्रमित नहीं होना चाहिए। प्रत्युत मनुष्य को चाहिए कि भगवान् को साक्षात् गुरु के रूप में देखे। किन्तु बिना गुरु की सहायता के *भगवद्गीता* को समझ पाना कठिन है। अतएव गुरु परम्परा प्रणाली में प्रकट होता है। *भगवद्गीता* (४.३४) में भगवान् संस्तुति करते हैं—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥

''गुरु के पास जाकर सत्य जानने का प्रयास करो। उससे विनीत भाव से प्रश्न पूछो और उसकी सेवा करो। स्वरूपसिद्ध व्यक्ति तुम्हें ज्ञान दे सकता है क्योंकि उसने सत्य का दर्शन किया है।'' भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को प्रत्यक्ष उपदेश दिया। अतएव अर्जुन तत्त्वदर्शी या गुरु है। अर्जुन ने भगवान् को स्वीकार किया। *परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।* इसी तरह भगवान् के साकार भक्त श्री अर्जुन के चरणचिह्नों पर चलकर भगवान् कृष्ण की श्रेष्ठता स्वीकार करनी चाहिए जिसकी पुष्टि व्यास, देवल, असित, नारद तथा रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, निम्बार्क तथा विष्णुस्वामी इत्यादि परवर्ती आचार्यों एवं उनके भी बाद महानतम आचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा हुई है। तो फिर गुरु ढूँढने में कठिनाई है कहाँ? यदि कोई निष्ठावान् है, तो वह गुरु पा सकता है और हर बात सीख सकता है। मनुष्य को चाहिए कि गुरु से शिक्षा ग्रहण करे और जीवनलक्ष्य की खोज करे। अतएव महाराज सत्यव्रत हमें महाजन का मार्ग प्रदर्शित करते हैं। *महाजनो येन गतः स पन्थाः।* मनुष्य को चाहिए कि वह भगवान् (दशावतार) की शरण ग्रहण करे और उनसे आध्यात्मिक जगत एवं जीवनलक्ष्य के बारे में सीखे।

श्रीशुक उवाच
इत्युक्तवन्तं नृपतिं भगवानादिपूरुषः ।
मत्स्यरूपी महाम्भोधौ विहरंस्तत्त्वमब्रवीत् ॥५४॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; उक्तवन्तम्—महाराज सत्यव्रत के द्वारा कहे जाने पर; नृपतिम्—राजा को; भगवान्—भगवान्; आदि-पूरुषः—आदि पूरुष; मत्स्य-रूपी—मछली के रूप में; महा-अम्भोधौ—बाढ़ के जल में; विहरन्—विचरण करते; तत्त्वम् अब्रवीत्—परम सत्य के विषय में बतलाया।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : जब सत्यव्रत ने मत्स्य रूप धारण करने वाले भगवान् से इस प्रकार प्रार्थना की तो उसको बाढ़ के जल में विचरण करते हुए भगवान् ने परम सत्य के विषय में उपदेश दिया।

पुराणसंहितां दिव्यां साङ्ख्ययोगक्रियावतीम् ।
सत्यव्रतस्य राजर्षेरात्मगुह्यमशेषतः ॥५५॥

शब्दार्थ

पुराण—पुराणों में, विशेष रूप से मत्स्य पुराण में, बतलाई गई विषय-वस्तु; संहिताम्—ब्रह्म-संहिता तथा अन्य संहिताओं में निहित वैदिक आदेश; दिव्याम्—सारा दिव्य वाङ्मय; साङ्ख्य—सांख्ययोग; योग—आत्म-साक्षात्कार का विज्ञान या भक्तियोग; क्रियावतीम्—जीवन में व्यवहारिक रूप में प्रयुक्त; सत्यव्रतस्य—राजा सत्यव्रत के; राज-ऋषेः—राजर्षि; आत्म-गुह्यम्—आत्म-साक्षात्कार के सारे रहस्य; अशेषतः—सभी शाखाओं सहित।

इस प्रकार भगवान् ने राजा सत्यव्रत को वह आध्यात्मिक विज्ञान बतलाया जो सांख्ययोग कहलाता है, जिससे पदार्थ तथा आत्मा का अन्तर (अर्थात् भक्तियोग) जाना जाता है। इसके साथ ही भगवान् ने पुराणों (प्राचीन इतिहास) तथा संहिताओं में पाये जाने वाले उपदेश भी बतलाये। भगवान् ने इन सारे ग्रंथों में अपनी व्याख्या की है।

अश्रौषीदृषिभिः साकमात्मतत्त्वमसंशयम् ।
नाव्यासीनो भगवता प्रोक्तं ब्रह्म सनातनम् ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ

अश्रौषीत्—उसने सुना; ऋषिभिः—ऋषियों के; साकम्—साथ; आत्म-तत्त्वम्—आत्म-साक्षात्कार का विज्ञान; असंशयम्—बिना किसी सन्देह के (क्योंकि यह भगवान् द्वारा कहा गया था); नावि आसीनः—नाव में बैठा; भगवता—भगवान् द्वारा; प्रोक्तम्—बताया गया; ब्रह्म—सारा दिव्य साहित्य; सनातनम्—सदा विद्यमान।

राजा सत्यव्रत ने ऋषियों सहित नाव में बैठे-बैठे आत्म-साक्षात्कार के विषय में भगवान् के उपदेशों को सुना। ये सारे उपदेश शाश्वत वैदिक साहित्य (ब्रह्म) से थे। इस तरह राजा तथा ऋषियों को परम सत्य (परब्रह्म) के विषय में कोई संशय नहीं रहा।

अतीतप्रलयापाय उत्थिताय स वेधसे ।
हत्वासुरं हयग्रीवं वेदान्प्रत्याहरद्धरिः ॥ ५७ ॥

शब्दार्थ

अतीत—बीता हुआ; प्रलय-अपाये—बाढ़ के अन्त में; उत्थिताय—निद्रा के बाद होश में लाने के लिए; सः—भगवान् ने; वेधसे—ब्रह्मा को; हत्वा—मारकर; असुरम्—असुर; हयग्रीवम्—हयग्रीव को; वेदान्—सारे वैदिक अभिलेख; प्रत्याहरत्—लाकर दे दिए; हरिः—भगवान् ने।

(स्वायंभुव मनु के काल में) पिछली बाढ़ के अन्त में भगवान् ने हयग्रीव नामक असुर को मारा और ब्रह्मा के निद्रा से जगने पर उन्हें सारा वैदिक साहित्य प्रदान कर दिया।

स तु सत्यव्रतो राजा ज्ञानविज्ञानसंयुतः ।
विष्णोः प्रसादात्कल्पेऽस्मिन्नासीद्वैवस्वतो मनुः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; तु—निस्सन्देह; सत्यव्रतः—सत्यव्रत; राजा—राजा; ज्ञान-विज्ञान-संयुतः—ज्ञान तथा उसके व्यावहारिक उपयोग से अभिज्ञ; विष्णोः—भगवान् विष्णु की; प्रसादात्—कृपा से; कल्पे अस्मिन्—इस काल में (वैवस्वत मनु के राज्य में); आसीत्—हो गया; वैवस्वतः मनुः—वैवस्वत मनु।

भगवान् विष्णु की कृपा से राजा सत्यव्रत को सारा वैदिक ज्ञान प्राप्त हो गया और इस काल में उसने अब सूर्यदेव के पुत्र वैवस्वत मनु के रूप में जन्म लिया है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर का निर्णय है कि सत्यव्रत चाक्षुष मन्वन्तर में प्रकट हुआ। चाक्षुष मन्वन्तर के बाद वैवस्वत मनु का काल प्रारम्भ हुआ। भगवान् विष्णु की कृपा से सत्यव्रत को द्वितीय मत्स्यावतार से उपदेश प्राप्त हुए और इस तरह उसे सारा आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त हुआ।

सत्यव्रतस्य राजर्षेर्मायामत्स्यस्य शार्ङ्गिणः ।
संवादं महदाख्यानं श्रुत्वा मुच्येत किल्बिषात् ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ

सत्यव्रतस्य—राजा सत्यव्रत का; राज-ऋषेः—महान् राजा; माया-मत्स्यस्य—तथा मत्स्यावतार का; शार्ङ्गिणः—सिर पर एक सींग वाला; संवादम्—वर्णन या व्यवहार; महत्-आख्यानम्—महान् कथा; श्रुत्वा—सुनकर; मुच्येत—उबर जाता है; किल्बिषात्—सारे पापों के फलों से।

महान् राजा सत्यव्रत तथा भगवान् विष्णु के मत्स्यावतार से सम्बन्धित यह कथा एक महान् दिव्य आख्यान है। जो भी इसे सुनता है, वह पापमय जीवन के फलों से छूट जाता है।

अवतारं हरेर्योऽयं कीर्तयेदन्वहं नरः ।
सङ्कल्पास्तस्य सिध्यन्ति स याति परमां गतिम् ॥ ६० ॥

शब्दार्थ

अवतारम्—अवतार; हरेः—भगवान् का; यः—जो भी; अयम्—यह; कीर्तयेत्—कहता है और कीर्तन करता है; अन्वहम्—रोज; नरः—ऐसा व्यक्ति; सङ्कल्पाः—सारी आकांक्षाएं; तस्य—उसकी; सिध्यन्ति—सफल होती हैं; सः—ऐसा व्यक्ति; याति—वापस जाता है; परमाम् गतिम्—भगवद्धाम या परम स्थान को।

जो कोई मत्स्य अवतार तथा राजा सत्यव्रत के इस वर्णन को सुनाता है उसकी सारी आकांक्षाएं पूरी होंगी और वह निश्चित रूप से भगवद्धाम वापस जाएगा।

प्रलयपयसि धातुः सुप्तशक्तेर्मुखेभ्यः
श्रुतिगणमपनीतं प्रत्युपादत्त हत्वा ।
दितिजमकथयद्यो ब्रह्म सत्यव्रतानां
तमहमखिलहेतुं जिह्ममीनं नतोऽस्मि ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ

प्रलय-पयसि—बाढ़ के जल में; धातुः—ब्रह्माजी से; सुप्त-शक्तेः—जो नींद के कारण निष्क्रिय था; मुखेभ्यः—मुँहों से; श्रुति-गणम्—वैदिक अभिलेख; अपनीतम्—चुराये गये; प्रत्युपादत्त—वापस दे दिया; हत्वा—मारकर; दितिजम्—महान् असुर को; अकथयत्—बतलाया; यः—जो; ब्रह्म—वैदिक ज्ञान; सत्यव्रतानाम्—सत्यव्रत तथा महर्षियों के प्रकाश हेतु; तम्—उसको; अहम्—मैं; अखिल-हेतुम्—समस्त कारणों के कारण को; जिह्म-मीनम्—बड़ी मछली का बहाना करके प्रकट होने वाले को; नतः अस्मि—मैं सादर नमस्कार करता हूँ।

मैं उन भगवान् को सादर नमस्कार करता हूँ जिन्होंने उस विशाल मछली का रूप धारण

करने का बहाना किया जिसने ब्रह्मा के निद्रा से जगने पर उन्हें वैदिक साहित्य वापस लाकर दिया और राजा सत्यव्रत तथा महर्षियों को वैदिक साहित्य का सार कह समझाया।

तात्पर्य : यह भगवान् विष्णु के मत्स्यावतार से सत्यव्रत की भेंट का सारांश है। भगवान् विष्णु का उद्देश्य हयग्रीव असुर से सारे वेद वापस लेकर ब्रह्माजी को सौंपना था। संयोगवश भगवान् ने अपनी अहैतुकी कृपा के कारण सत्यव्रत से बात की। *सत्यव्रतानाम्* शब्द महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह सूचित करता है कि जो लोग सत्यव्रत के स्तर पर हैं, वे भगवान् द्वारा प्रदत्त वेदों से ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। भगवान् जो भी बोलते हैं वह वेद मान लिया जाता है। जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है—*वेदान्तकृद् वेदवित्*—भगवान् सारे वैदिक ज्ञान के संग्रहकर्ता हैं और वे वेदों के तात्पर्य को जानते हैं। अतएव जो कोई भगवान् कृष्ण से या *भगवद्गीता* यथारूप से ज्ञान ग्रहण करता है, वह वेदों के प्रयोजन को जानता है (*वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः*)। कोई वेदवादरतों से अर्थात् जो वेद पढ़कर उनका दूसरा अर्थ लगाते हैं वैदिक ज्ञान नहीं समझ सकता। वेदों को तो भगवान् से जानना होता है।

भगवान् तथा आचार्यों की कृपा से यह टीका आज १ सितम्बर १९७६ को राधाष्टमी के दिन हमारे नई दिल्ली केन्द्र में समाप्त हुई। श्रील नरोत्तमदास ठाकुर कहते हैं—*ताँदेर चरण सेवि भक्त-सने वास जनमे जनमे हय, एइ अभिलाष।* मैं अपने गुरु श्रीमद् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के आदेश से *श्रीमद्भागवत* को अंग्रेजी भाषा में प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा हूँ और उनकी कृपा से यह अनुवाद-कार्य क्रमशः प्रगति पर है। यूरोपीय तथा अमरीकी भक्त जो कृष्णभावनामृत आन्दोलन में सम्मिलित हुए हैं मेरी पर्याप्त सहायता कर रहे हैं। इस प्रकार मैं अपने प्रयाण के पूर्व इस महान् कार्य को समाप्त करने के लिए आशान्वित हूँ। श्री गुरु तथा गौरांग की जय हो।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कन्ध के अन्तर्गत "भगवान् का मत्स्यावतार" नामक चौबीसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Preliminary pages starts here:

Preliminary page 1

श्री श्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

कृष्णद्वैपायन व्यास

कृत

श्रीमद्भागवतम्

सत्त्वेन प्रतिलभ्याय नैष्कर्म्येण विपश्चिता।

नमः कैवल्यनाथाय निर्वाणसुखसंविदे ॥११ ॥

(श्रीमद्भागवतम् .३.११)

Preliminary page 3

श्रीमद्भागवतम्

(भगवत्-सन्देश)

अष्टम स्कन्ध

''ब्रह्माण्डीय सृष्टि का निवर्तन''

मूल संस्कृत पाठ, शब्दार्थ,

अनुवाद तथा विस्तृत तात्पर्य सहित

द्वारा

कृष्णकृपामूर्ति

श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य : अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट

Preliminary page 5

आमुख

प्रस्तावना

अध्याय एक

ब्रह्माण्ड के प्रशासक मनु

अध्याय का सारांश

ईश्वर के अवतार की पुष्टि कैसे की जाए?